आर्यसमाज कलकत्ता का इतिहास

[१८८५ से १९८५ ई.]

प्रो. उमाकान्त उपाध्याय

आचार्य,

आर्यसमाज, कलकत्ता

प्रकाशक

आर्यसमाज कलकत्ता

१९ विधान सरणी, कलकत्ता-६

समर्पण

आर्यसमाज कलकत्ता के

आचार्य

पण्डित रमाकान्तजी शास्त्री

को

सादर सश्रद्ध

पूज्य भाई जी,

पूज्य पिताजी का देहान्त हो गया था। शव घर पर था, हम सब कलकत्ता में, मन से, शव के समीप ही बैठे थे। भाई शिवाकान्त बहुत अधीर हो उठे थे, अधीर मैं भी था। एक निस्स्वार्थ-निरलस तपस्वी जीवन का अवसान हो गया था। असंख्य स्मृतियाँ भभक-भभक कर कलेजे से उठतीं, आँखों से चूपड़तीं। आप धीर, शान्त अन्तस्तरङ्गों को समेटे बैठे थे।

मैंने कहा था, आवश्यक समझें तो मुझे घर भेज दें, मैं खेतीबारी सँभाल लूँगा। अब आपकी शान्ति भङ्ग हो गयी, हृदय की भावनाएँ आँखों से बह निकलीं। आपने कहा था, "उमेश, तुम्हें घर के लिए नहीं तैयार किया है, आवश्यकता होगी, तो मैं घर सँभालूँगा, तुम तो आर्यसमाज का कार्य करो।"

मेरे लिए पिता के शव के पास बैठे अग्रज की यह धरोहर है! जो कुछ बन पा रहा है, पूरी श्रद्धाभक्तिसे करता जा रहा हूँ। उसी की एक कड़ी आपके प्रिय "आर्यसमाज कलकत्ता" का इतिहास पूरी चेष्टा से लिखकर प्रस्तुत किया है। मेरे लिए यहाँ के सभी पूर्व-पुरुषों, पुण्य-पुरुषों के आप प्रतिनिधि हैं। उनके यश की धरोहर उन्हींके प्रतिनिधिरूप में आपको समर्पित है— अनुज

—उमेश

(उमाकान्त उपाध्याय)

अनुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या
	आत्मनिवेदन	XV
	प्रकाशकीय	XXII
१.	पूर्व पीठिका :	२-१६
	स्वामी दयानन्द सरस्वती का कलकत्ता आगमन	४
	श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर से सम्पर्क	३
	बंगाल में चार मास	११
२.	आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना और आरम्भिक काल :	१७-३४
	प्रगति के चरण	२३
	प्रगति का एक और आयाम	२६
	एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न	२९
३.	आर्यसमाज मन्दिर का निर्माण :	३५-५१
	आर्यसमाज मन्दिर की पवित्र भूमि	३८
	मन्दिर का निर्माण : रजत-जयन्ती वर्ष	४१
	आर्यसमाज कलकत्ता का पंजीकरण	४८
४.	शिक्षा-प्रचार :	५२-७५
	आर्यकन्या महाविद्यालय	५५
	आर्य महिला-शिक्षामण्डल कलकत्ता	५७
	रघुमल आर्य विद्यालय	६४
५.	क्रान्ति केन्द्र : आर्यसमाज मन्दिर : अमर शहीद भगत सिंह का आश्रय स्थल :	७६-८४
	आर्यसमाज कलकत्ता में प्रथम प्रवास	७७
	आर्यसमाज कलकत्ता में द्वितीय प्रवास	७९

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या
६.	सहायता-कार्य :	८५-११२
	बिहार का भूकम्प	८६
	मिदनापुर का समुद्री तूफान	८८
	बंगाल का दुर्भिक्ष : अकाल	९४
	पूर्वी बंगाल का दुर्भिक्ष	९५
	सीधी कार्यवाही और देश का विभाजन	१०२
	हावड़ा स्टेशन पर शरणार्थी शिविर	१०४
	विलोनिया केन्द्र	१०५
	वानपुर केन्द्र	१०६
	सुन्दरवन का केन्द्र	१०७
	आसाम का भूकम्प	१०७
	सेवाकार्य के परवर्ती चरण	१०८
	स्फुट कार्य	११२
७.	गोवंश के रक्षार्थ प्रयास :	११३-११८
	गो-रक्षा जीवदया संघ की स्थापना	११६
८.	आर्यसमाज और सनातन धर्म का सम्बन्ध	११९-१३२
	टकराव के क्षुब्ध चरण	१२२
	सहयोग के स्नेहिल पग	१२६
	सन् १९४६ ई० का साम्प्रदायिक दंगा	१२९
	गोरक्षार्थ सहयोग	१३१
९.	आर्यसमाज कलकत्ता और ब्राह्मसमाज का सम्बन्ध :	१३३-१४६
	बृटिश सरकार भक्त एवं ईसाभक्त ब्राह्मसमाजी	१३५
	स्वामी दयानन्द की प्रतिक्रिया	१३६
	आर्यसमाज एवं ब्राह्मसमाज में सहयोग	१३८
१०.	विद्वान् प्रचारक :	१४७-२६२
	पं० शंकरनाथजी पण्डित	१४८

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या
	सम्पादकाचार्य पं० रुद्रदत्त शर्मा	१५१
	स्वामी मुनीश्वरानन्दजी	१५४
	पं० रामावतार शर्मा षट्तीर्थ	१५७
	श्री राधामोहन गोकुल	१५६
	पं० अयोध्याप्रसादजी, वैदिक रिसर्च स्कॉलर	१६३
	पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति	१८७
	श्रीमती प्रभावती देवी काव्यतीर्थ	१६२
	पं० श्री अवध बिहारी लाल	१६४
	आचार्य पण्डित ऋषिरामजी	१६७
	श्री सत्यचरण राय शास्त्री	१६६
	श्री ब्रजेश्वर रायजी	१६६
	श्री कृष्णजी शर्मा	२००
	श्री धनुर्धरजी शर्मा	२०१
	आचार्य पण्डित दीनबन्धुजी वेदशास्त्री	२०२
	आचार्य पं० रमाकान्तजी शास्त्री	२१२
	पं० सदाशिवजी शर्मा	२१६
	पं० रामरीझनजी शर्मा	२२३
	ठाकुर अमरसिंहजी आर्यपथिक	२२५
	पं० शिवनन्दन प्रसादजी वैदिक	२२६
	आचार्य पण्डित प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण	२३२
	पं० रामनरेशजी मिश्र शास्त्री	२४१
	आचार्य पं० उमाकान्तजी उपाध्याय	२४४
	डा० श्रीकान्तजी उपाध्याय	२५०
	पं० शिवाकान्तजी उपाध्याय	२५२
	विद्याभास्कर पं० आत्मानन्दजी शास्त्री	२५४

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या
	स्वामी श्रद्धानन्दजी सरस्वती	२५६
	डा० वाचस्पतिजी उपाध्याय	२५८
११.	साहित्यिक कार्य :	२६३-२९५
	श्री गोविन्दराम हासानन्दजी	२६५
	वेदभाष्य की योजना	२७४
	पं० अयोध्या प्रसादजी	२७६
	पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति	२८१
	पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री	२८२
	आचार्य रमाकान्तजी शास्त्री	२८४
	ठाकुर अमर सिंहजी आर्यपथिक	२८५
	पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण	२८५
	पं० उमाकान्तजी उपाध्याय	२८६
	श्री हेमचन्द्र चक्रवर्ती की डायरी : दयानन्द प्रसंग	२९१
	सत्यार्थ-प्रकाश का बंगला अनुवाद	२९२
	श्री विन्ध्यवासिनी प्रसाद 'अनुगामी'	२९४
१२.	पत्र-पत्रिकाएँ :	२९६-३१९
	आर्यावर्त	२९७
	सत्यसनातन धर्म	३००
	सुधारक	३०३
	आर्य-धर्म-प्रवर्तक	३०४
	आर्य गौरव	३०५
	शास्त्र सिन्धु	३०७
	आर्य	३०७
	आर्यरत्न	३०८
	वेदमाता	३०९
	आर्य-संसार	३१२

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या

१३. शास्त्रार्थ और शास्त्र-विचार : — ३२०-३७६.
- हुगली शास्त्रार्थ — ३२३.
- आर्य सन्मार्ग सन्दर्शिनी सभा — ३२४.
- कलकत्ता शास्त्रार्थ — ३३२.
- मेदिनीपुर का शास्त्रार्थ — ३४१.
- डलहौसी स्क्वायर का शास्त्रार्थ — ३५१
- संन्यासीतल्ला का शास्त्रार्थ — ३५५.
- तमलुक में शास्त्रार्थ — ३५७.
- मालिग्राम का शास्त्रार्थ — ३५८.
- भाटपाड़ा शास्त्रार्थ — ३५९
- रामपुरहाट का शास्त्रार्थ — ३६१
- संस्कृत कॉलेज कलकत्ता की पण्डित-सभा — ३६४.
- श्री बिड़लाजी के घर पर पण्डित सभा — ३६८.
- श्री चपलाकान्त भट्टाचार्यजी के घर पर पण्डित सभा — ३७२.
- हाउर का शास्त्रार्थ — ३७६.

१४. सत्याग्रहों में सहयोग : — ३७७-३९४.
- हैदराबाद का सत्याग्रह — ३७८.
- बंगाल का योगदान — ३८१
- पंजाब का हिन्दी सत्याग्रह — ३८७.

१५. बिड़ला परिवार की सहायता : — ३९५-४०१.
- बिड़ला परिवार और आर्य अतिथिशाला — ३९९.

१६. पोद्दार परिवार — ४०२-४२९.
- श्री जयनारायणजी पोद्दार — ४०२.
- श्री रामचन्द्रजी पोद्दार — ४१०
- श्री दीपचन्दजी पोद्दार — ४११.

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या
	श्री किशनलालजी पोद्दार	४१५
	श्री आनन्दीलालजी पोद्दार	४१६
	श्री बद्रीप्रसादजी पोद्दार	४२२
	श्री शिवरामजी पोद्दार	४२५
	श्री राजेन्द्र कुमारजी पोद्दार	४२६
	श्री देवकीनन्दनजी पोद्दार	४२८
१७.	सेवाव्रती पदाधिकारी :	४३०-४५१
१८.	पूर्व पुरुष : पुण्य पुरुष :	४५२-५२६

राजा तेज नारायण सिंहजी, बाबू महावीर प्रसादजी, रायबहादुर रलारामजी, श्री विष्णु दासजी बांसल, चौधरी छाजूरामजी, श्री रघुमलजी खण्डेलवाल, बैरिस्टर श्यामकृष्ण सहायजी, श्री नागरमलजी मोदी, श्री बालकृष्णजी मोहता, श्री रामगोपालजी सर्राफ, श्री लक्ष्मीनारायणजी खेमानी, श्री हरगोविन्दजी गुप्त, श्री सुरेन्द्रनाथजी विद्यालंकार, महाशय श्री रघुनन्दन लाल, श्री मिहिरचन्दजी धीमान, श्री नित्यानन्दजी, श्री हंसराजजी हांडा, श्रीमती कौशल्या देवीजी हांडा, श्री हंसराजजी चड्ढा, श्री बनमाली रावजी पारिख, श्री रक्खारामजी गम्भीर, श्रीमती यशवन्त कौर गम्भीर, श्री जाइयाँशाहजी सभरवाल, प्रोफेसर रामनारायण सिंहजी, श्री सौदागर मलजी चोपड़ा, श्रीमती कौशल्या देवी चोपड़ा, श्री गंगाप्रसादजी भौतिका, श्री सीताराम आर्य (बाबाजी), श्री लाल-मनजी आर्य, श्री प्रभुदयाल अग्रवाल, श्री अचर्ज-रामजी भारद्वाज, श्री बैजनाथजी अरोड़ा, श्री बनारसीदासजी अरोड़ा, डा० रोशनलाल खट्टर

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या
१९.	वर्तमान आयाम	५२७-६९३
	आर्यसमाज कलकत्ता का भवन	५२६
	यज्ञशाला	५३१
	दिव्यदयानन्द दर्शन	५३३
	अतिथिशाला और ऊपर का सभाकक्ष	५३५
	महर्षिदयानन्द दातव्य औषधालय	५४१
	पुस्तकालय एवं वाचनालय	५४३
	साप्ताहिक सत्संग	५४८
	बालसत्संग	५५१
	आर्य स्त्री-समाज कलकत्ता	५५२
	बंगला सत्संग	५५३
	आर्यसमाज कलकत्ता का प्रचार पुरोगम	५५५
	वार्षिकोत्सव	५५६
	आर्य प्रतिनिधि सभा के साथ सम्बन्ध	५६३
	उपदेशक विद्यालय	५६७
	आर्यसमाज कलकत्ता का संगठन	५६६
	अन्तरंग सभासद और सदस्यों की सूची	५७६
	आर्यसमाज के कार्यकर्त्ता	५८४
	श्री रुलियाराम गुप्त, श्री जंगीलाल आर्य, श्री बटुकृष्ण वर्मन, श्री श्रीनाथदास गुप्त, श्री हरिश्चन्द्र वर्मा, श्री देवी प्रसाद मस्करा, श्री कृष्णलाल खट्टर, श्री लक्ष्मण सिंह, श्री छबीलदास सैनी, श्रीसुखदेव शर्मा, श्रीमती सुनीतिदेवीशर्मा, श्री प्यारेलाल मनचंदा, श्रीसीताराम आर्य, श्री पूनमचन्द आर्य, श्री श्रीराम खट्टर, श्री किशोरीलाल दवे, श्रीमती लोचनमणि दवे, श्रीजगदीश त्तिवारी, श्री रामलखन सिंह, श्री यशपाल वेदालंकार	

क्रम विषय पृष्ठ संख्या

श्री राधाकृष्णजी ओझा, श्रीमती ओमवती देवी, श्री शिवदासजी जायसाव, श्री लालचन्दजी बाहरी, श्री चिरंजीवलालजी बाहरी, श्री ब्रह्मानन्दजी गोयल, श्री रामयशजी आर्य, श्री गोपालदासजी गुप्त, स्व० नलिन बिहारीलालजी, श्री भीमसेनजी कपूर, श्री प्रकाश चन्दजी पोद्दार, श्री यशवन्त रायजी चोपड़ा, श्री राम प्रतापजी अग्रवाल, श्री अतुलकान्त गुप्त, माता विद्यावती सभरवाल, श्रीमती केकनवती बंसल, श्री घनश्यामदासजी गोयल, श्री गजानन्दजी आर्य, श्री रघुवीर प्रसादजी गुप्त, श्री ओम प्रकाशजी गोयल, श्री शिवचन्दरायजी अग्रवाल, श्रीमती विद्यावती दत्त, श्री फूलचन्दजी आर्य, श्री दिनेशचन्द्र जी शर्मा, श्री दयानन्दजी आर्य, श्री मोहनलालजी अग्रवाल, प्रो० श्यामकुमार राव (स्वामी अग्निवेशजी), श्री कुलभूषणजी आर्य, श्री सत्यनारायणजी सेठ आर्य, श्री रामधनीजी आर्य, श्री सत्यानन्दजी आर्य, श्री राजेन्द्र प्रसादजी जायसवाल, श्री श्रीरामजी आर्य, श्री ओम प्रकाशजी घीया, श्री सोमदेवजी गुप्त, श्री दशरथजी गुप्त, श्रीमती सरोज अरोड़ा, श्री अशोक कुमारजी सिंह, श्री मनीरामजी आर्य, श्री राजकुमार जी जायसवाल, श्री महेन्द्र प्रतापजी आर्य, श्री मनसारामजी वर्मा, श्री सुरेशकुमारजी अग्रवाल, श्री घनश्यामजी मौर्य, श्री अच्छेलालजी जायसवाल, श्री लाला हंसराजजी गुप्त।

२०. समापन ६९४-७०२

सन्दर्भ-सूची ७०३

आत्मनिवेदन

सन् १९६०-६१ ई० में जब आर्यसमाज कलकत्ता की हीरक-जयन्ती मनाने का उपक्रम हो रहा था, उसी समय से आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं के मन में यह भाव आया था कि आर्यसमाज कलकत्ता का इतिहास लिखा जाना चाहिये। इससे भी कुछ वर्ष पूर्व ऐतिहासिक सामग्रियों का यत्र-तत्र संकलन पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री के लेखों में मिलता था। हमने भी कुछ भूले-बिसरे सूत्रों को जोड़ने का प्रयास एक-दो लेखों में किया था। किन्तु यह सब अत्यन्त ही बिखरा हुआ स्फुट प्रयास था। हीरक-जयन्ती मनाने के साथ इतिहास-लेखन की आवश्यकता का अनुभव अधिक उग्र हो उठा और अन्य उप-समितियों के साथ आर्यसमाज कलकत्ता के वार्षिक निर्वाचन के पश्चात् प्रतिवर्ष इतिहास उप-समिति का निर्माण कर दिया जाने लगा। इस उप-समिति में प्रायः पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री, महाशय रघुनन्दनलालजी, श्री मिहिरचन्दजी धीमान और मुझे (उमाकान्त उपाध्याय) सम्मिलित कर दिया जाता था। वर्ष पर वर्ष कटते गये, किन्तु कुछ

उल्लेखनीय प्रगति न बन सकी। कई बार अपनी इस निष्क्रियता पर हम सब को लज्जा के साथ खीझ भी आती थी, किन्तु न कुछ सामग्री संगृहीत हुई, न कार्य आगे बढ़ाने की कोई रूप-रेखा बनी। मैं चाहता था कि इतिहासलेखन का कार्य पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री कर दें और मैं सर्वात्मना उनके सहयोग में समर्पित हो जाऊँ, किन्तु यह बात भी न बनी। पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री ने आर्यसमाज कलकत्ता को पर्याप्त आरम्भिक समय से, समीप से, देखा था, और यदि वे यह इतिहास लिख पाते तो सम्भवतः वह कुछ और निराला ही होता, किन्तु पं० दीनबन्धुजी का स्वास्थ्य गिरता गया और वे न इतिहास लिख सके, न इतिहास के लिये सामग्री दे सके और इस संसार से चल बसे। उनके दो-चार ऐतिह्यगर्भित लेखों का हमने पूरा उपयोग किया है, उनकी संकलित अन्य सामग्री भी हमें उपलब्ध न हो सकी। वस्तुतः ये लेख भी हमने विषय देकर विशेष आग्रहपूर्वक पं० दीनबन्धुजी से लिखवाये थे। अस्तु, यह तो सुस्पष्ट ही दिखायी पड़ रहा था कि नियति का चक्र यह कार्य मेरे ही ऊपर न्यस्त कर रहा है। चलाचली के चक्कर में महाशय रघुनन्दन लालजी भी आ गये। इधर अधिकारियों की चिन्ता इतिहास-प्रकाशन के सम्बन्ध में बढ़ने लगी। फलतः उप-समिति की जगह पर, इतिहास के लिये सामग्री एकत्र करने और इतिहास लिखने का उत्तरदायित्व एकाकी मेरे ऊपर ही आ पड़ा।

मैं इतिहास का विद्यार्थी नहीं रहा हूँ। संस्कृत व्याकरण और साहित्य पढ़ा, अर्थशास्त्र पढ़कर महाविद्यालय का अध्यापक बन गया। किन्तु इतिहास में मेरी रुचि रही है, पूर्व-पुरुषों के प्रति और उनकी उपलब्धियों के प्रति मेरे हृदय में सदा से श्रद्धा के भाव रहे हैं। अतः मुझे इतिहास पढ़ने में रुचि रही है, किन्तु लिखने की भावना कभी मन में आती न थी। जब साथी-सहायकों से रहित होकर एकाकी आर्यसमाज कलकत्ता के इतिहास को लिखने का निर्णय कर लिया तो

हमें अपनी सीमाओं का और इतिहास की सामग्री का सम्यक् बोध था। किन्तु आर्यसमाज कलकत्ता जैसे गौरवगाथा से भरपूर आर्यसमाज का इतिहास न लिखा जाय या अन्यथा लिखा जाय, इसे स्वीकार करने को मन कभी तैयार न था। फलतः अगत्या ही सही, हमने अपनी सम्पूर्ण शक्ति संजोकर इतिहास के लिये सामग्री-संकलन का कार्य आरम्भ कर दिया। हमने आर्यसमाज के रजिस्टर, कार्यवाही की पुस्तिकाएँ, वार्षिक विवरण, इत्यादि तो पढ़े ही, बहुत सारी पुस्तकें बाहर की भी पढ़ीं, जिनमें आर्यसमाज कलकत्ता के प्राचीन ऐतिह्य की सामग्री का मिलना सम्भव था। सन् १९३३-३४ ई० के पूर्व की कार्यवाही पुस्तकें न मिल सकीं, कहाँ नष्ट हो गयीं, पता नहीं। किन्तु कानून की दृष्टि से जितने कागज़ों की आवश्यकता थी वे सब हमें पूर्ण सुरक्षित और अच्छी अवस्था में मिल गये। हमने इन सब दस्तावेज़ों का इस इतिहास में पूरा उपयोग किया है।

कई वर्षों की संकलित टिप्पणियाँ एकत्र हो गई थीं, किन्तु यह सब तथ्यों का बेसिलसिलेवार, बेतरतीब, अव्यवस्थित, विशाल वन सा लगता था। तथ्यों को अध्यायों में बाँटना, अध्यायों का निश्चय करना, इत्यादि दुरूह सा प्रतीत हो रहा था, किन्तु सामग्री की प्रभूत उपलब्धि उत्साहवर्धक थी और मुझे परिणाम का प्रतिफल सुस्पष्ट दिखायी दे रहा था। कई ऐसे तथ्य सामने आ गये थे जिसका ध्यान भूत के विस्मरणशील महासागर में धीमें-धीमें विलीन हो गया था। अमर शहीद सरदार भगत सिंह ने कलकत्ता की दो यात्राएँ की थीं और दोनों वार छद्म रूप से आर्यसमाज कलकत्ता में ही रहे थे, रिलीफ का कार्य करते-करते अंग्रेज सरकार ने पं० दीनबन्धुजी को गिरफ्तार कर लिया था, पं० दीनबन्धुजी ने बण्डेल से गया तक की पैदल यात्रा की थी, सम्पादकाचार्य पं० रुद्रदत्तजी शर्मा आर्यसमाज कलकत्ता के प्रथम वेतन भोगी उपदेशक थे, कलकत्ता में पं० शंकरनाथजी ने योग-

दर्शन व्यास भाष्य का हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन किया था, इस तरह सैकड़ों-सैकड़े तथ्य-सामग्री-संकलन में आते जा रहे थे। एक ओर सफलता पर उत्साह बढ़ रहा था, तो दूसरी ओर सम्पूर्ण बिखरी हुई, बेतरतीब सामग्री को किस तरह अध्यायों में बाँट कर व्यवस्थित रूप दिया जाय, यह प्रश्न भी मस्तिष्क को मथ रहा था। इस समस्या के समाधान के लिये कई आर्यसमाजों की रिपोर्ट और इतिहास पढ़े, किन्तु आत्मबलम् हि बलम्, ही अन्त में सहायक बना।

सन् १९८१ ई० की गर्मियों में आर्यसमाज के वयोवृद्ध एवं उत्साही कार्यकर्ता श्री किशनलालजी पोद्दार बंगलौर से कलकत्ता आये। उन्होंने अपने संस्मरण के आधार पर बहुत कुछ ऐतिहासिक सूत्र सुनाये, कुछ सन्धान की दिशाएँ भी बतायीं। हमने जब सामग्री संकलन के अगम सागर में चकराने की अपनी निर्बलता बतायी तो उन्होंने एक सुझाव दिया कि जैसा भी मन में आता हो, अध्याय विभाजन का एक प्रारूप तैयार करके जनता के सम्मुख प्रस्तुत कर देना चाहिये। कुछ लोग सामग्री भेजने में रुचि लेंगे और कुछ अपना भी चिन्तन अधिक दृढ़ीभूत होगा। फलतः 'आर्य-संसार' के जुलाई, सन् १९८१ ई० के अंक में हमने एक लेख लिखा, जिसका शीर्षक था—'आर्यसमाज कलकत्ता का इतिहास : रूपरेखा का पूर्व रूप।' इसमें हमने १५ अध्याय बनाये थे, किन्तु संकलित सामग्री को व्यवस्थित करके अध्याय क्रम से पुस्तक का रूप देने में इससे बड़ी भारी सहायता मिल गयी। असूझ परिस्थिति में इतिहास लेखन का रूप सूझने लगा, फलस्वरूप आर्यसमाज कलकत्ता का विगत १०० वर्षों का इतिहास २० अध्यायों में लिखा गया और वह आज सहृदय कृपालु पाठकों के सम्मुख श्रद्धा और प्रेम से प्रस्तुत कर दिया गया है।

इस इतिहास के लिखने में सर्वाधिक सहयोग श्री किशनलालजी

पोद्दार ने दिया है, उनका सहयोग न मिलता तो सम्भवतः बहुत कुछ सामग्री इस रूप में प्रस्तुत न हो पाती। आर्यसमाज के स्थानीय व्यक्तियों में श्री वटुकृष्णजी वर्मन, श्री मिहिरचन्दजी धीमान, श्री कृष्ण-लालजी खट्टर आदि सभी सहयोगी सज्जनों ने यथाशक्ति हमारी सहायता की है और हम सबके धन्यवादी हैं। आदरणीय पं० प्रिय-दर्शनजी ने हमें बहुत सारी सूचनाएँ, अपनी टिप्पणियाँ और रिलीफ के फोटो आदि दिये। हमने यथास्थान उनका उपयोग किया है। अखिल भारतीय स्तर पर डा० भवानीलालजी भारतीय—अध्यक्ष, दयानन्दपीठ विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़, डा० सत्यकेतु विद्यालंकार—कुलाधिपति, गुरुकुल कांगड़ी, पं० युधिष्ठिरजी मीमांसक, सोनीपत, आचार्य विश्वश्रवाजी व्यास, बरेली, श्री अमर स्वामीजी महाराज, —गाजियाबाद, श्री दयारामजी पोद्दार, रांची, श्री देवेन्द्रजी सत्यार्थी, बिहार ने हमें सामग्री संचयन में और इतिहास लेखन में जो सुझाव परामर्श दिया है, उसके लिये हम उनके आभारी हैं। प्रिय बन्धु देवेन्द्र सत्यार्थीजी ने राजा तेजनारायण सिंह और पं० शंकरनाथजी पंडित के केमरा फोटो भेजकर ऐसा सहयोग किया, जिसके बिना यह इतिहास अधूरा ही रह जाता। बाबू महावीर प्रसादजी का फोटो हमें कहीं से भी न मिल सका, इस अपूर्णता का खेद मन में बना हुआ ही है।

आदरणीय श्री ओम्प्रकाशजी त्यागी, महामन्त्री सार्वदेशिक सभा ने रिलीफ कार्य की सूचनाएँ और कई महत्त्वपूर्ण फोटो हमें भेजे हैं। एतदर्थ उनका आभारी हूँ।

इस तरह के इतिहासों में अपूर्णता स्वाभाविक है। कहीं पिष्टपेषण, कहीं अतिरंजन और कहीं विस्मरण सब कुछ सहज स्वाभाविक है। फिर भी जिस रूप में यह १०० वर्षों का इतिहास प्रस्तुत हो सका है, हमें उससे सन्तोष, प्रसन्नता और सफलता का एहसास होता है।

आर्यसमाज कलकत्ता के अधिकारियों ने समाज के १०० वर्षों के इतिहास को लिखने का दायित्व मेरे ऊपर न्यस्त करके मेरे प्रति जिस आस्था और विश्वास का परिचय दिया है, उसे व्यक्त करने के लिये मेरी भावनाओं में शब्द नहीं हैं, केवल इतना ही कह सकता हूँ कि मैं उनका हूँ और वे हमारे हैं। इस 'हम-हमार' के सूत्र में प्रभुकृपा से यह प्रेम, विश्वास, आस्था, आत्मीयता बनी रहे, तो हम सब का यह परम सौभाग्य है। आर्यसमाज कलकत्ता के अधिकारियों ने इस ग्रन्थ पर लगभग एक लाख रुपया व्यय कर दिया और इसका बंगला अनुवाद आदरणीय विद्वान् पं० प्रियदर्शनजी कर रहे हैं, उसे भी पृथक् प्रकाशित करने की योजना है। इतिहास लिखने की प्यारी कली मेरे हृदय में ही मुरझा गयी होती यदि आर्यसमाज कलकत्ता के उदार अधिकारियों ने इतनी बड़ी धन राशि इसमें लगाने का प्रसन्नता, आनन्द एवं उल्लासपूर्ण उत्साह न दिखाया होता। यह ग्रन्थ जितना मेरा है, उससे अधिक उनका है। मैं अपने अधिकारियों एवं सहयोगियों के प्रति कृतज्ञतावाधित हूँ।

ग्रन्थ के प्रकाशन की साज-सज्जा, चित्रों का चयन-प्रकाशन, प्रूफ आदि पढ़ने में श्री राजकुमारजी मल्लिक का प्रेमपूर्ण सहयोग मिला है। हमारे अनुज प्रो० डा० श्रीकान्त उपाध्याय, पी-एच० डी० ने प्रूफ पढ़ने में हमारा बड़े स्नेह से सहयोग किया है। पुस्तक को इतने सुन्दर रूप से इतने कम समय में जिस दक्षता और खूबी के साथ मुद्रित किया गया है, उसके लिये हम सुराना प्रेस के स्वामी श्री भागचन्दजी जैन और उनके कर्मचारियों का, विशेष रूप से श्री शोभाकान्तजी झा का हार्दिक धन्यवाद करते हैं। पुस्तक की पाण्डुलिपि को तैयार करने और टाइप करने के लिये मैं श्री श्यामलालजी मौर्य का हार्दिक धन्यवाद करता हूँ।

हमने कितने स्रोतों से सामग्री-संग्रह किया है, यह कहना कठिन है। जिन ग्रन्थों, पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं का हमने सन्दर्भ रूप में प्रयोग किया है, हम उन सब के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करते हैं।

अन्त में जिन सहयोगियों का स्मरण भी नहीं आ रहा है, उन सब के प्रति 'सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः' करके यह पुस्तक अपने सहृदय पाठकों के हाथों में पहुँचाते हुए अपार सन्तोष का बोध कर रहा हूं।

कार्तिक पूर्णिमा
२०४२ वि०

आर्यसमाज का सेवक :
उमाकान्त उपाध्याय

प्रकाशकीय

पन्द्रह-बीस वर्ष पूर्व का संस्मरण है। पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री के एकनिष्ठ प्रचारकार्य और वैदुष्यपूर्ण पुस्तकप्रणयन, महाशय रघुनन्दन लालजी की दृढ़तापूर्ण संगठन-क्षमता और पं० उमाकान्तजी उपाध्याय के सम्पादन और लेखन से आर्यसमाज कलकत्ता दीपित था। उस समय आर्यसमाज कलकत्ता का इतिहास तैयार करने का प्रसङ्ग तो चला, किन्तु दुर्योगवश बात आगे नहीं बढ़ी। फिर पं० दीनबन्धुजी का स्वास्थ्य गिरने लगा, महाशय रघुनन्दन लाल की वृद्धावस्था बढ़ने लगी और पं० उमाकान्त उपाध्याय एकाकीपन बोध करने लगे।

इधर आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना के सौ वर्ष पूरे होने को आये। पाँच-सात वर्ष पूर्व अन्तरंग सभा में निर्णय हुआ कि हमलोग अपने आर्यसमाज का शताब्दी समारोह मनायें। निर्णय सम्यक् और समीचीन था। इस प्रसंग में यह बात उठी कि हमलोग इस अवसर पर ऐसा कोई कीर्त्तिमान स्थापित करें जिसे हम आर्यसामाजिक विश्व-मञ्च पर उपस्थित कर सकें और आनेवाली पीढ़ी इससे प्रेरणा प्राप्त कर ऋषिप्रवर के मिशन को मूर्त्तरूप प्रदान करती रहे।

अब बात आयी शतवर्षीय इतिहास तैयार करने की जिसका बीज-वपन प्रायः बीस वर्ष पूर्व हो चुका था। इतिहास भूतकाल की गाथा होता है, पूर्व पुरुषों पुण्य-पुरुषों के कृतित्वों और व्यक्तित्वों का प्रेरक दर्पण होता है और होता है आगामी पीढ़ियों के लिये प्रेरणा-स्रोत।

इतिहास लेखन के लिए चाहिएँ क्रमबद्ध सामग्रियाँ जो इतिहास के सर्वाङ्ग को सम्पुष्ट कर सकें और लेखक को आत्मतोष दे सकें। कलकत्ता परदेशियों की महानगरी है। लोग लक्ष्य विशेष को लेकर यहाँ आते हैं और उसकी पूर्ति के पश्चात् प्रायः लौट जाते हैं। आर्य-समाज कलकत्ता के पुण्य-पुरुष कुछ ऐसे भी थे। चित्रों एवं अन्य सामग्रियों का संचय करना अनुसन्धानात्मक कार्य था। इस दुरूह कार्य का भार पं० उमाकान्तजी उपाध्याय पर सौंपा गया। पण्डितजी आर्यसमाज के मिशन के प्रति पूर्णतः समर्पित और निष्ठावान विद्वान् हैं। वे इस कार्यभार को वहन करने के लिए पहले से ही कटिबद्ध थे।

अति व्यस्त रहते हुए भी पण्डितजी ने कितनी स्मारिकाएँ पढ़ीं, कितनी पुस्तकों के पन्ने उलटे, कितने वर्तमान लोगों से परामर्श लिये, तब कहीं चार-पाँच वर्षों के अथक और अहर्निश प्रयासों के बाद साम-ग्रियाँ एकत्र हो पायीं और कार्यारम्भ हो गया।

पण्डितजी ने सर्वात्मना इस कार्यभार का वहन किया है। हम उन्हें धन्यवाद नहीं दे सकते, क्योंकि उन्होंने तो स्वतःप्रेरित भाव से अपना कार्य किया है। हमलोगों ने उन्हें सहयोग किया है।

आर्यसमाज कलकत्ता का इतिहास इतने सुन्दर विशद रूप में प्रकाशित करके हमलोग धन्य-धन्य हो गए हैं।

सुधी पाठक इसे अपनायेंगे, ऐसा हमारा विश्वास है।

सीताराम आर्य
प्रधान

पूनमचन्द आर्य
मन्त्री

आर्यसमाज कलकत्ता

१९८५ ई०
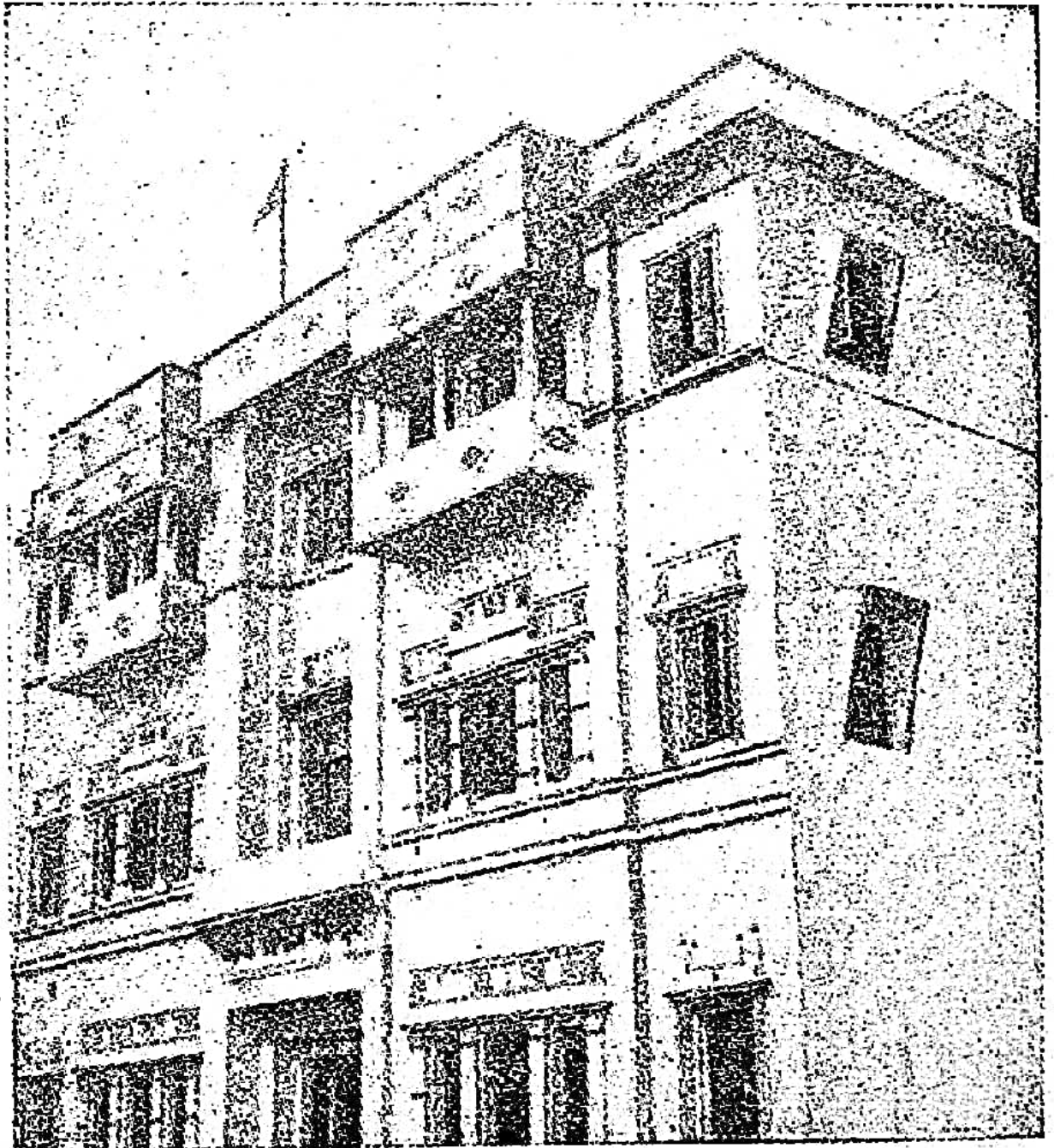
पूर्वाञ्चल में अनेकानेक धार्मिक एवं सामाजिक गतिविधियों का केन्द्र
आर्यसमाज मन्दिर कलकत्ता

महर्षि दयानन्द सरस्वती का परामर्श :

"जो उन्नति चाहो, तो आर्यसमाज के साथ मिलकर उसके उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिए, नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा। क्योंकि हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे होगा, उसकी उन्नति तन-मन-धन से सब जने मिलकर प्रीति से करें। इसलिए जैसा आर्यसमाज आर्यावर्त्त देश की उन्नति का कारण है वैसा दूसरा नहीं हो सकता।"

—सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास

ओ३म्

आर्यसमाज कलकत्ता
का
इतिहास

प्रथम अध्याय

पूर्वपीठिका

बंगाल में आर्यसमाज के इतिहास का आरम्भ उस दिन से मानना चाहिये जिस दिन स्वामी दयानन्दजी का यहाँ आगमन हुआ था। स्वामीजी १६ दिसम्बर, १८७२ ई० को हावड़ा स्टेशन पर उतरे थे और यहाँ लगभग चार मास रहकर यहाँ से लौटे थे। इस बंगाल आगमन का यहाँ के आर्यसमाज के लिये और इससे भी अधिक सम्पूर्ण आर्यसमाज एवं स्वामी दयानन्दजी की विभिन्न प्रकार की

गतिविधियों के लिये विशेष महत्त्व है। बंगाल आने से पूर्व स्वामी दयानन्दजी कई वर्षों तक उत्तर प्रदेश और उन पश्चिमी स्थानों का भ्रमण और उन प्रदेशों में अपनी मान्यताओं का प्रचार करते रहे जो बंगाल से पर्याप्त भिन्न थीं। स्वामीजी के आगमन से पूर्व बंगाल में अंग्रेजी शिक्षा का पर्याप्त प्रचार हो गया था। अच्छे सुधी, सम्पन्न आभिजात्य लोग अंग्रेजी शिक्षा की ओर झुक चुके थे और एक सीमा तक नवीनता का, पाश्चात्य दृष्टिकोण का प्रचार बंगाल में हो रहा था। बंगाल में राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और केशवचन्द्र सेन जैसे सुधारकों का कार्य भी चल रहा था। इन सुधारकों में आदि-ब्राह्मसमाज के नेता भारतीयता के प्रति उन्मुख थे तो, नवीन ब्राह्मसमाज के नेता विशेषकर केशवचन्द्र सेन पश्चिमी विचारधारा और ईसाइयत से अनुप्राणित हो रहे थे। इन्हीं के साथ भारतीय मनीषा के परम आग्रही पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर अपने ढंग से शिक्षा और सुधार के कार्यों में लगे हुये थे। ईश्वरचन्द्रजी ने कन्याओं के लिए पाठशालायें खोली थीं। संस्कृत की कई पुस्तकें लिखी थीं और अपना एक निज का प्रेस भी खोल रखा था जिसमें उनकी पुस्तकें अति शुद्ध रूपमें छपती थीं। रामकृष्ण परमहंस का अपनी जगह पर अपना महत्त्व है। इन सब गतिविधियों से परिचित होने और अपने भावी कार्यक्रमों को निर्धारित करने में स्वामी दयानन्दजी को पर्याप्त सहायता मिली होगी। यहाँ से लौटने के बाद उनकी कार्यसरणि में पर्याप्त अन्तर दिखायी पड़ता है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती का कलकत्ता आगमन

१६ दिसम्बर, १८७२ ई० को जब स्वामीजी हावड़ा स्टेशन पर उतरे तो उनके स्वागत के लिए कलकत्ता के प्रसिद्ध बैरिस्टर चन्द्रशेखर

जी स्टेशन पर पहुँचे थे। स्वामीजी को आमन्त्रित करनेवालों में देवेन्द्रनाथ ठाकुर भी थे जिनसे स्वामीजी की भेंट प्रयाग में कुम्भ मेले पर हुई थी।

बैरिस्टर चन्द्रशेखरजी स्वामीजी को सौरेन्द्रमोहनजी के पास ले गये और उन्होंने अपने बाग प्रमोदकानन में स्वामीजी के ठहरने का सब प्रबन्ध कर दिया।

पंडित लेखरामजी की सूचना के अनुसार, "जिस स्थान पर स्वामीजी ठहरे थे वह बैरकपुर ट्रंक रोड के साथ टालागांव के समीप प्रमोदकानन नाम का बाग है, जिसका दूसरा नाम निनयान (नाईनान) भी है। अंग्रेजी केप्रसिद्ध समाचारपत्र इण्डियन मिरर (Indian Mirror) कलकत्ता के ३० दिसम्बर, १८७२ ई० के अंक में लिखा है कि एक बड़ा प्रबल मूर्ति-भंजक हिन्दू अर्थात् पं० दयानन्द सरस्वती, जिसने अभी कुछ पहले बनारस के सर्वश्रेष्ठ पण्डितों को एक सार्वजनिक शास्त्रार्थ में पराजित किया और अपने अन्य कार्यों से पूर्वी भारत में बड़ी प्रसिद्धि पायी है, कलकत्ता में आया है और राजा ज्योतीन्द्र मोहन टैगोर के बाग के बंगले में निनयान (नाईनान) नामक स्थान पर ठहरा है।"[१]

स्वामीजी के कलकत्ता आगमन को यहां के विद्वानों, सुधारकों और पत्रकारों की निगाह में बहुत महत्त्व दिया गया है। धर्मतत्त्व नामक पत्र के १ चैत्र १७६७ शक संवत् के अंक में 'दयानन्द सरस्वती' शीर्षक से एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसमें निम्नलिखित पंक्तियां हैं—

> "यह एक दिग्गज पंडित है, यह हिन्दू-शास्त्र-विशारद है, संस्कृत भाषा में उनकी अबाध गति है, इनकी संस्कृत भाषा इतनी प्राञ्जल श्रुतिमधुर है कि संस्कृत से अनभिज्ञ पुरुष भी उसे अनायास भी बहुत कुछ समझ सकते हैं। स्वामी

१. पं० लेखरामकृत जीवन-चरित्र, पृष्ठ २२५-२६

दयानन्द सरस्वती की बुद्धि परिष्कृत तथा तीक्ष्ण है, उनकी क्षमता असाधारण है, उनमें लोगों को आकर्षित करने की विलक्षण शक्ति है, वह बड़े मिष्टभाषी हैं, एक ईश्वर की उपासना का प्रचार और मूर्तिपूजा का खण्डन उनके जीवन का प्रधान लक्ष्य है। पाश्चात्य-विज्ञान के आलोक से आलोकित न होने पर भी वह जिस विशद रूप से उदारता के साथ सारे विषयों को प्रकट करते हैं उसे देखकर अवाक् होना पड़ता है।[1]"
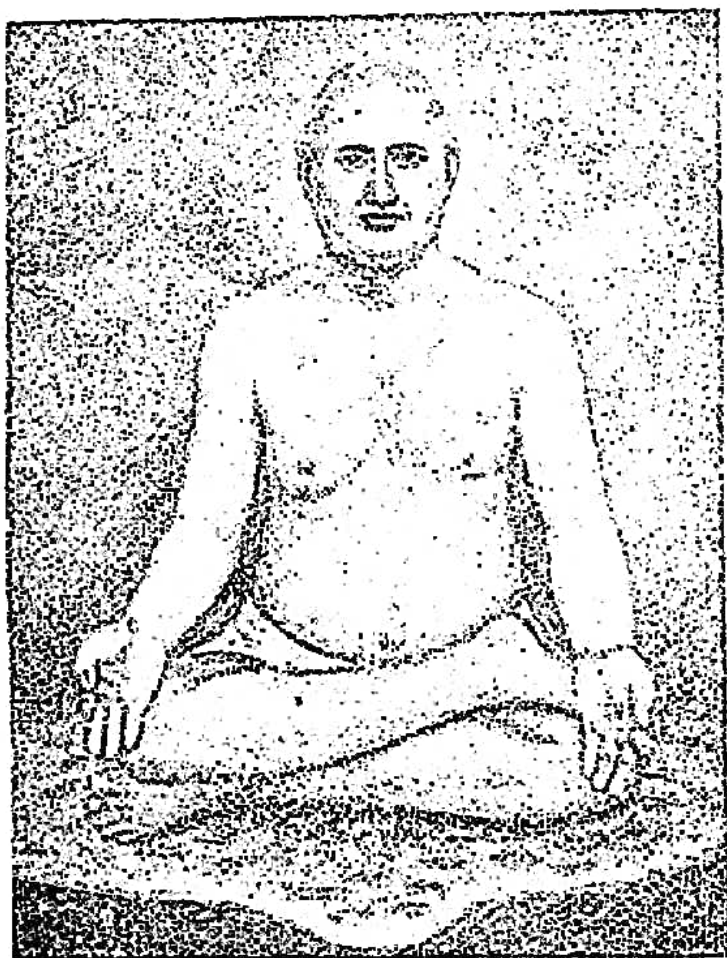
स्वामी दयानन्द सरस्वती कलकत्ता आगमन पर

स्वामी दयानन्द जिस समय बंगाल आये थे, तब तक एक कोपीन-धारी नग्न संन्यासी का उनका रूप था और वे संस्कृत में ही व्याख्यान देते थे। यह स्वामीजी के लिए अधिक असुविधाजनक नहीं था, क्योंकि

१. आर्यसमाज का इतिहास—डा० सत्यकेतु विद्यालंकार, पृष्ठ २२४-२५

अनवरत तीन तीन घण्टे व्याख्यान देने का क्रम कलकत्ता में भी चलता रहा। इण्डियन मिरर (Indian Mirror) में एक टिप्पणी कुछ इस प्रकार प्रकाशित हुई थी—

"पं० दयानन्द सरस्वती ने इस मास की ६वीं तारीख को रविवार के दिन अपराह्न ३॥ बजे वराहनगर नाइट स्कूल में वैदिक सिद्धान्त विषय पर एक व्याख्यान दिया। बहुत-से शिक्षित एवं सम्भ्रान्त व्यक्ति वहाँ उपस्थित थे, यद्यपि व्याख्यान संस्कृत भाषा में था, पर सरस्वती दयानन्द महोदय की संस्कृत सरल, मधुर तथा धाराप्रवाह थी। वे तीन घण्टे से भी अधिक समय तक व्याख्यान देते रहे, उन्होंने वेदों के आधार पर सरल युक्तियों द्वारा यह सिद्ध किया कि ईश्वर एक है, जाति-भेद न्याययुक्त नहीं है और बालविवाह हानिकारक है। उनकी वाग्मिता आश्चर्यजनक है, उनकी भाषा सरल होते हुए भी अत्यन्त शानदार है, उनके भाषण को सुनकर यह सुगमता से समझ में आ जाता है कि केवल उनकी विद्वत्ता ही अगाध नहीं है अपितु उनका चिन्तन भी अत्यन्त गम्भीर है, और उनकी दृष्टि भी बहुत विशाल है, उनकी युक्तियाँ नितान्त प्रबल हैं और वे पूर्णतया निर्भय तथा वीर हैं"।[१]

इन उद्धरणों को इतने विस्तृत रूप में लेने का एक प्रयोजन यह है कि जिस आर्यसमाज की स्थापना कलकत्ता में १८८५ ई० में हुई उसके संस्थापक महर्षि दयानन्द जब १३ वर्ष पूर्व कलकत्ता पधारे थे तो उस समय यहाँ के उदारमना सुधारवादी विद्वत्समाज का स्वामीजी के प्रति क्या दृष्टिकोण बना था। स्वाभाविक है कि यह सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण स्वामीजी के बंगाल से लौट जाने के १३ वर्षों पश्चात् भी काफी कुछ सहयोगी सिद्ध हुआ होगा।

---

१. आर्यसमाज का इतिहास—डा० सत्यकेतु विद्यालंकार, पृष्ठ २२५

उस समय कलकत्ता के बौद्धिक इतिहास में एशियाटिक सोसाइटी (Asiatic Society) का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान था। यहाँ से भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में शोधकार्य हो रहे थे। यहाँ के कार्यों में जो अच्छाई थी उसके साथ ही भारतीय ऐतिह्य के प्रति एक कुण्ठा और हीनता की भावना भी काम कर रही थी। स्वामी दयानन्द ने भारतीय इतिहास के गौरव की स्थापना का महत्त्वबोध यहाँ अवश्य किया होगा। स्वामीजी ने एशियाटिक सोसाइटी (Asiatic Society) से कुछ पुस्तकें क्रय की थीं। ऐतिहासिक शोध के सम्बन्ध में निम्न विचार द्रष्टव्य है—

> "भारत के प्राचीन इतिहास का जिस ढंग से अनुशीलन इस युग में किया जा रहा था और जिसकी बहुत-सी मान्यतायें प्रायः पाश्चात्य विद्वानों की विचारसरिणी के अनुरूप थीं, श्री रमेशचन्द्र दत्त, श्री राजेन्द्रलाल मित्र उसीके समर्थक थे और उन्होंने स्वयं भी अनेक ऐसी पुस्तकें लिखी थीं जो इन मान्यताओं का पोषण करती थीं। आर्यों तथा भारत के पुराने गौरव के सम्बन्ध में स्वामीजी के विचार इन विद्वानों से बहुत भिन्न थे। पर इनसे विचार-विमर्श कर स्वामीजी को प्राचीन भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में आधुनिक विद्वानों के विचारों से परिचित होने का अवसर मिला होगा, और उन्होंने इस बात की आवश्यकता प्रबल रूप से अनुभव की होगी कि धर्म-प्रचार तथा समाज-सुधार के साथ-साथ उन्हें इतिहास के विषय में भी अपनी मान्यताओं को प्रकाश में लाना चाहिए।"[१]

स्वामी दयानन्द न केवल समाज-सुधारक और धर्म-प्रचारक के रूप में सामने आये, अपितु उनका इतिहास उद्धारक का रूप भी कम गौरव-

---

१. आर्यसमाज का इतिहास—डा० सत्यकेतु विद्यालंकार, पृष्ठ २२६

पूर्ण नहीं है। हम उनके प्रचार में देखते हैं कि कलकत्ता प्रवास के पूर्व उनका रूप पाखण्ड-खण्डन में कुछ अधिक उजागर हो रहा था। बंगाल में प्रवास के पश्चात् उन्होंने इतिहास के शुद्ध गौरवमय रूप को भी प्रस्तुत किया। स्वाभाविक है कि जिन लोगों में भारतीय इतिहास के प्रति यह गौरवबोध अधिक था, वे स्वामी दयानन्द और उनके मिशन की ओर अधिक आकृष्ट हुए।

श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर से सम्पर्क

कलकत्ता में उस समय गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज चल रहा था, किन्तु स्वामी दयानन्द के लिये इस साहित्य-व्याकरण, अथवा यों कहें कि वेद के अध्ययन-अध्यापन से रहित संस्कृत कालेज का कुछ अधिक महत्त्व न था। स्वामी दयानन्द बंगाल में एक वैदिक पाठशाला खोलना चाहते थे। प्रयाग में कुम्भ मेले के अवसर पर जब श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने स्वामी दयानन्द को कलकत्ता आने के लिए आमन्त्रित किया था, उस समय भी स्वामी दयानन्द ने देवेन्द्रनाथ ठाकुर से वैदिक पाठशाला आरम्भ करने की बात कही थी। देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने उस समय यह कहा था कि आप जब कलकत्ता आयेंगे उस समय वैदिक पाठशाला की बात करेंगे। सच्चाई यह है कि उस समय सारे भारतवर्ष में वेदों का अध्ययन-अध्यापन सन्तोषजनक नहीं हो रहा था। देवेन्द्रनाथ ठाकुर इस बात का स्वयं अनुभव करते थे। श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने आत्मचरित्र में पृष्ठ ४१ पर स्वयं लिखा है—

> "The Vedas had become virtually extinct in Bengal. Nyaya and Smriti-Shastras were studied in every Tol (Sanskrit-School) and many Pandits versed in these Shastras came forth thence, but the Vedas were totally ignored. The business of the Brahmins, that of learning and teaching of the Vedas had altogether disappeared from the country,

thence remained Brahmins only in name, bereft of all Vedic knowledge, bearing the sacred thread alone, with the exception of one or two learned Brahmin Pandits, they did not even know the meaning of their daily prayer. अर्थात् "वेद बंगाल से सर्वथा लुप्त हो चुके थे। न्याय और स्मृतिशास्त्र सब पाठशालाओं में पढ़ाये जाते थे और इन शास्त्रों में निपुण अनेक पंडित बंगाल में थे, किन्तु वेदों की सर्वथा उपेक्षा की जाती थी। देश से ब्राह्मणों का वेदों के पढ़ने-पढ़ाने का कार्य सर्वथा नष्ट हो गया था, केवल नाममात्र के ब्राह्मण रह गये थे जो वैदिक ज्ञान से सर्वथा शून्य थे। वे केवल यज्ञोपवीतधारी थे। एक दो विद्वान् ब्राह्मणों को छोड़कर उनको दैनिक सन्ध्यावन्दन के मन्त्रों का अर्थ भी नहीं आता था।"[१]

फिर भी वैदिक पाठशाला की स्थापना उस रूप में नहीं हो सकी जिस रूप में स्वामी दयानन्द चाहते थे। तथापि यह भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि स्वामीजी के कहने से श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने विश्वभारती (बोलपुर) बनने से पहले शान्ति-निकेतन में प्रतिदिन होम करने के लिए एक वेदपाठी श्रोत्रीय नियत कर रखा था।[२]

स्मरण रहे कि वैदिक पाठशाला खोलने की प्रेरणा स्वामी दयानन्दजी देवेन्द्रनाथजी को देते रहे और विश्वभारती शान्तिनिकेतन का मूल नाम 'ब्रह्मचर्य आश्रम' था।[३]

पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री ने लिखा है कि पं० शंकरनाथजी ने देवेन्द्रनाथ ठाकुर के आग्रह पर आर्यसमाज के पण्डित अच्युत मिश्र

---

१. धर्मदेव विद्यामार्तण्ड—वेदों का यथार्थ स्वरूप, पृष्ठ-३३.

२. योगी का आत्म-चरित्र—पृष्ठ २ और ३

३. इन्द्र विद्यावाचस्पति—आर्यसमाज का इतिहास, भाग-१, पृष्ठ ८७

को शान्तिनिकेतन (वोलपुर) में दैनिक होम करने के लिए भेजा था। जबतक देवेन्द्रनाथ ठाकुर जीवित रहे तब तक वहाँ दैनिक होम चलता रहा।

बंगाल में चार मास

स्वामी दयानन्दजी कलकत्ता में लगभग चार मास रहे। यहाँ उनका सम्पर्क उच्चकोटि के समाजसुधारकों, धनी और सम्पन्न बंगालियों से रहा। एक महत्त्वपूर्ण बात ध्यान देने की यह है कि हिन्दी भाषा-भाषी सेठ लोग या मध्यवित्त व्यवसायी लोग स्वामीजी के अधिक सम्पर्क में नहीं आये थे। कम-से-कम इतिहास में ऐसा कोई उल्लेखनीय प्रसंग नहीं आता। स्वाभाविक था कि बंगाली जनता पर स्वामीजी के आगमन का अधिक प्रभाव पड़ा। हम इस ऐतिहासिक तथ्य पर इसलिए भी विचार करना चाहते हैं कि आर्यसमाज की स्थापना के पश्चात् कलकत्ता में आर्यसमाज के स्थानीय संगठनों में अबंगालियों का प्राबल्य बढ़ गया। स्थानीय लोगों के सम्पर्क में कम आने का या सम्पर्क में आकर अलग हो जाने का कारण अवश्य खोजना चाहिए। फिर भी इतना तो निर्विवाद रूप से अवश्य कहा जा सकता है कि स्वामी दयानन्द ने उच्चकोटि के बंगालियों में अपना बहुत बड़ा प्रभाव डाला था। लगता है लोग उनके जीवन, विचार और मिशन पर मुग्ध-से थे। पं० दीनबन्धुजी के अनुसंधानों से पता चलता है कि स्वामीजी ने अपनी आत्मकथा बड़े विस्तृत रूप में यहाँ बतायी थी। स्वामीजी ने अपने जीवन की कई बातें यहाँ बतायीं जो अन्यत्र और कहीं नहीं बतायी थीं। लगता है स्वामीजी भी यहाँ के लोगों से पर्याप्त प्रसन्न थे। लोगों ने स्वामीजी की जीवनचर्या को यहाँ नजदीक से देखा था। श्री सत्यकेतुजी विद्यालंकार डी० लिट्० आर्यसमाज के इतिहास भाग १ पृष्ठ २३० पर लिखते हैं—

"चौधरी नामक एक बंगाली युवक हुगली में स्वामीजी के साथ रहे

थे। उन्होंने स्वामीजी के जीवन तथा दिनचर्या के सम्बन्ध में कुछ बातें लिखी हैं जो उल्लेखनीय हैं—"वे तीन बजे के लगभग उठा करते थे और प्रातः काल तक योगाभ्यास करते रहते थे। फिर शौचादि से निवृत्त होते थे, तत्पश्चात् स्नान करते थे और देह पर भस्मी रमाते थे। ६ बजे वे दर्शकों से मिलते थे और १२ बजे तक उनसे बातचीत करते थे। फिर वे भोजन करते थे और एक बजे से रात्रि के ६ बजे तक निरन्तर दर्शकों के साथ विचार करते रहते थे। वह इतना बोलते थे कि प्रतिदिन उनका गला बैठ जाता था, परन्तु अगले दिन वे फिर उसी कार्य के लिए प्रस्तुत हो जाते थे। रात्रि में वे सूक्ष्म आहार करते थे और बहुधा कुछ भी न खाते थे।··· यदि कोई मनुष्य पूर्णतया स्वतन्त्र चरित्र लेकर उत्पन्न हुआ तो वे स्वामीजी ही थे।·····मैंने उनके पास राजाओं-महाराजाओं को बहुधा आते देखा है जो यह आशा करते थे कि उनका विशेष रूप से स्वागत किया जायगा, परन्तु स्वामीजी उनके प्रति लवलेशमात्र भी सम्मान प्रकट नहीं करते थे। हम बहुत बार निःस्वार्थ पुरुषों और देशभक्तों का वर्णन सुनते हैं परन्तु मेरी जानकारी में तो वही एक पुरुष निःस्वार्थ और देशभक्त थे। यदि मुझे उनके निरन्तर सहवास का सौभाग्य प्राप्त न हुआ होता तो मुझे यह कभी ज्ञान न होता कि साम्यवाद क्या होता है।"

कलकत्ता में स्वामीजी के व्याख्यान कई महत्त्वपूर्ण स्थानों पर हुये। कई स्कूलों में, ब्राह्मसमाज के उत्सव में, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के घर में, बाबू केशवचन्द्र सेन के घर में, इत्यादि कई महत्त्वपूर्ण स्थानों पर स्वामीजी ने अपने विचार व्यक्त किये। बंगाल के सुधारकों में उस समय भारतीयता के परिपोषक पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर रुग्ण और वृद्ध हो गये थे, ब्राह्मसमाजियों का जोर बढ़ रहा था, केशवचन्द्र-सेन का बोलबाला था। स्वामी दयानन्द ब्राह्मसमाजियों को ऋषि-

मुनियों की विचारधारा से अलग होते हुए देख रहे थे। उन्होंने निराकार ईश्वर का वर्णन, वेदों की महिमा, मूर्तिपूजा का खण्डन, इत्यादि सभी मार्मिक स्थलों का स्पर्श किया और लोग स्वामी दयानन्द के मिशन से बहुत प्रभावित हुए।

यह सब संचित प्रभाव, परवर्ती काल में आर्यसमाज की स्थापना के लिए, आर्यसमाज की संचित निधि की तरह काम आया। लोग स्वामीजी के विचारों से दूर-दूर तक प्रभावित हुए। श्री ज्ञानेन्द्रलाल एम० ए०, बी० एल० 'पताका' नामक एक बंगला पत्रिका के संपादक थे। उन्होंने अपनी पत्रिका में लिखा है—

> "स्वामी दयानन्द जब धर्मप्रचार के निमित्त कलकत्ता आये थे तब चारों ओर उसका बहुत ही आन्दोलन होने लगा था। क्या बच्चे, क्या बूढ़े, क्या स्त्रियाँ, सभी उनके दर्शन और उनके मुख की बात सुनने के निमित्त आतुर थे। उनके व्याख्यान देने की शक्ति और तर्कशक्ति तथा शास्त्रों के पूर्ण ज्ञान को देखकर सब कोई आश्चर्यचकित होने लगे। लोग दल के दल बाँधे उनके समीप धर्मजिज्ञासु होकर आते और अपने प्रश्नों का उत्तर पाकर अति तृप्त होकर वापस जाते। जो मनुष्य गुणी होता है वही गुण के ग्रहण में समर्थ होता है अन्य नहीं। स्वर्गवासी केशवचन्द्र सेन ने स्वामीजी का बहुत ही आदर किया था। उनको अपने घर ले जाकर और सभा करके उनका व्याख्यान सबको सुनवाया। केशव बाबू के मकान में जब हमने पहले पहल स्वामीजी का भाषण सुना तो उस दिन हमने एक नवीन बात देखी कि संस्कृत भाषा में ऐसी सरल और मधुर वक्तृता जो हमने पहले कहीं न सुनी थी और न देखी थी। वह ऐसी सहज संस्कृत में व्याख्यान देने लगे कि संस्कृत से अत्यन्त अनभिज्ञ व्यक्ति भी उनके व्याख्यान को समझने लगा। और भी एक विषय में हमको बहुत आश्चर्य

हुआ कि अंग्रेजी भाषा के न जानने वाले एक हिन्दू संन्यासी के धर्म और समाज के सम्बन्ध में ऐसा उदारमत अर्थात् निष्पक्ष धर्म पहले कभी नहीं सुना था। नागेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय ने भी ऐसा ही लिखा है[1]।"

यद्यपि कलकत्ता में आर्यसमाज की स्थापना स्वामी दयानन्दजी के कलकत्ता आगमन के १३ वर्ष बाद सन् १८८५ ई० में हुई, फिर भी

स्वामी दयानन्द सरस्वती कलकत्ता से लौटने पर

कलकत्तामें आर्यसमाज की स्थापना के लिए तो चाहे कम, किन्तु आर्यसमाज के संगठन के लिए इस कलकत्ता-निवास का बहुत महत्त्व है—

"आर्यसमाज के इतिहास में उन महीनों का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है जो कि स्वामीजी ने सन् १८७२-७३ ई० में कलकत्ता में विताये थे। आर्यसमाज के रूप में अपना संगठन

१. पं० लेखरामकृत जीवन-चरित्र—पृष्ठ २२८।

स्थापित करने की प्रेरणा सम्भवतः स्वामीजी ने इसी काल में प्राप्त की थी। यद्यपि इससे पूर्व भी वे आरा में एक सभा की स्थापना कर चुके थे, पर शीघ्र ही उसका अन्त हो गया। कलकत्ता में आकर उन्होंने ब्राह्मसमाज के संगठन और कार्य-पद्धति को समीप से देखा और उससे कुछ-न-कुछ प्रेरणा अवश्य प्राप्त की। संस्कृत के बजाय हिन्दी में प्रचार करना और वस्त्र पहनकर रहना स्वामीजी के जीवन में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन था। उसका सूत्रपात भी कलकत्ता-निवास में ही हुआ था। कलकत्ता के प्रगतिशील वातावरण में रहकर और वहाँ के विद्वानों के निकट सम्पर्क में आकर उनके दृष्टिकोण में कुछ-न-कुछ परिवर्तन आना भी स्वाभाविक था। इन कारणों से स्वामीजी के कलकत्ता निवास को उनके जीवन का संक्रान्तिकाल कहा जा सकता है"[१]।

स्वामीजी ने आर्यसमाज की स्थापना की और वैदिक यन्त्रालय अजमेर (सन् १८८० ई०) को भी चालू किया। बहुत कुछ सम्भव है कि इस योजना का मानसिक बीजारोपण भी कलकत्ता में ही हो गया था। पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर उदारमना समाज-सुधारक थे। उन्होंने शिक्षालय और प्रकाशन संस्था का आश्रय लिया था। उनकी अपनी पुस्तकें अपने ही प्रेस में छपती थीं। बहुत कुछ सम्भव है, इन सब बातों का प्रभाव स्वामीजी पर पड़ा था। अथवा अवसर आने पर इन प्रसंगों ने निर्णायक भूमिका निभाई हो।

स्वामी दयानन्द के आगमन से कलकत्ता के सुधारक और विद्वत् समाज में बड़ा तहलका मचा था। यों तो कुछ ब्राह्मसमाजी भी स्वामी दयानन्द के भारतीयतापन और कट्टर वैदिकता से कुछ खिंचे-खिंचे से थे किन्तु पौराणिक पण्डितमण्डल कुछ विशेष रूप से क्षुब्ध था। होते-होते

---

१. डा० सत्यकेतु विद्यालंकारकृत आर्यसमाज का इतिहास—पृष्ठ २२२

एक ओर स्वामीजी के समर्थकों का बल बढ़ रहा था तो दूसरी ओर स्वामीजी से विरोध रखनेवाले लोगों का संगठन भी यथातथा अपनी सक्रियता बनाए हुये था। स्वामी दयानन्द सन् १८७३ ई० में बंगाल से चले गये थे। सन् १८७५ ई० में उन्होंने बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की थी। सन् १८८३ ई० में स्वामी दयानन्दजी का देहान्त हो गया, फिर भी सन् १८८१ ई० में कलकत्ता के प्रसिद्ध सिनेटहाल में स्वामीजी की मान्यताओं के विरुद्ध निर्णय देने के लिए २२ जनवरी सन् १८८१ ई० में रविवार के दिन बड़े-बड़े पंडितों और रईसों की एक सभा हुई थी।[1]

इस सभा का प्रबन्ध प्रिंसिपल पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न ने किया था। इसमें कलकत्ता, नवद्वीप, कानपुर, वृन्दावन, तञ्जौर, मद्रास प्रेसीडेंसी आदि के ३०० पंडितों ने भाग लिया था। इस सभा में कलकत्ता के बड़े-बड़े ८ रईस और सेठों ने भी भाग लिया था। कोई ५०० व्यक्ति इस सभा में उपस्थित थे। इससे पता चलता है कि भले ही आर्यसमाज की स्थापना विधिवत् सन् १८८५ ई० में हुई, किन्तु कलकत्ता में आर्यसमाज की गतिविधि किसी-न-किसी रूप में स्वामी दयानन्दजी के आगमन-काल से ही अग्रसर होती रही। यों तो विधिपूर्वक आर्यसामज की स्थापना सन् १८८५ ई० में हुई।

---

१. द्रष्टव्य पं० लेखरामकृत जीवन-चरित्र—पृष्ठ ६७

महर्षि दयानन्द सरस्वती जिनके कलकत्ता आगमन से आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना का वातावरण तैयार हुआ
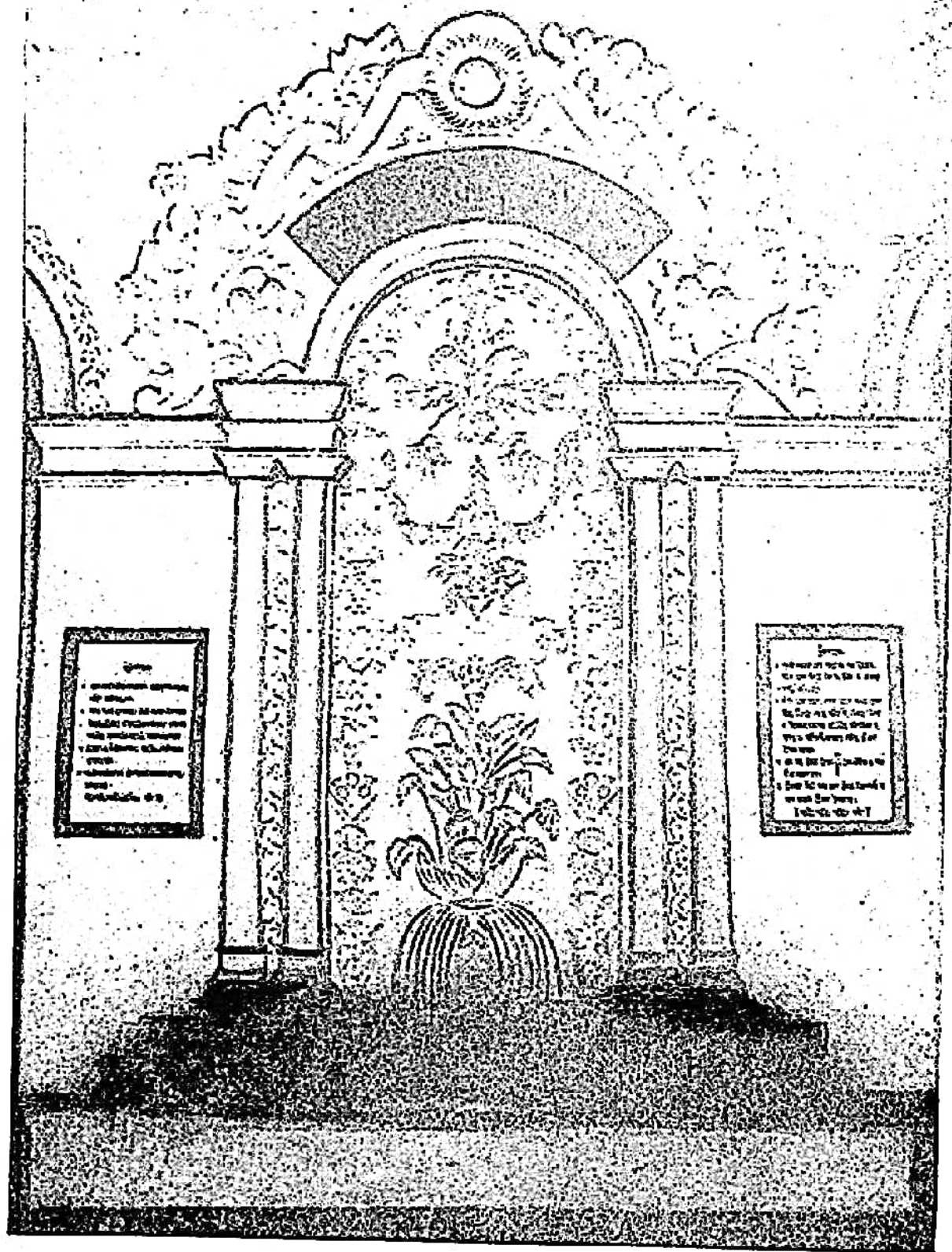
श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर के जोड़ासाँकू स्थित निवास-भवन का हॉल जहाँ स्वामी दयानन्द सरस्वती का व्याख्यान हुआ था

द्वितीय अध्याय

आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना और आरम्भिक काल

स्वामी दयानन्दजी सन् १८७३ ई० में बंगाल से चले गए। सन् १८८३ ई० में उनका देहान्त हो गया और सन् १८८५ ई० में कलकत्ता में आर्यसमाज की स्थापना हुई। इन १२-१३ वर्षों में स्वामीजी के भक्त कलकत्ता में क्या कुछ करते रहे, इसका छिटपुट ही वृत्तान्त मिलता है। कम से कम सन् १८७३ से १८८५ ई० तक स्वामीजी के भक्तों की गतिविधि का कुछ विस्तृत रूप हमारे सम्मुख नहीं आया है। फिर भी इतना तो ज्ञात होता है कि भागलपुर के राजा तेजनारायण सिंह स्वामीजी के भक्तों में थे और कलकत्ता के प्रारम्भिक काल में उनका सराहनीय प्रयास दिखायी पड़ता है। स्वामी दयानन्दजी के देहान्त के पश्चात् कलकत्ता में स्वामीजी के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने के लिये स्वामीजी के देहान्त के दिन—दीपमालिका पर सभा हुआ करती थी। इन सभाओं में पं० ईश्वरचन्द्रजी विद्यासागर जैसे अग्रगण्य

मूर्धन्य व्यक्ति सभापति बनते थे और बहुत सारे गण्यमान बुद्धिजीवी, उदारचेता उपस्थित होते थे। इन सभाओं का स्वरूप प्रमाणित करता है कि ऋषिभक्त उच्चकोटि के प्रभावशाली और साधनसम्पन्न व्यक्ति थे। आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् श्री दीनबन्धुजी वेदशास्त्री ने आर्यसमाज कलकत्ता की हीरक-जयन्ती विशेषांक में एक सुन्दर रुचिकर विवरण प्रस्तुत किया है। उस विवरण से, आर्यसमाज की स्थापना बंगाल में कैसे हुई, इसपर कुछ विस्तृत प्रकाश पड़ता है। श्री पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री ने लिखा है—

"आदि ब्राह्मसमाज के मन्दिर में (अपर चितपुर रोड पर) और अल्वर्ट स्कूल (ठनठनियाँ) में पं० ईश्वरचन्द्रजी विद्यासागर की अध्यक्षता में उस सभा का अधिवेशन हुआ। तत्कालीन कलकत्ता के देशविख्यात प्रसिद्ध नायक बड़ी संख्या में सभामें उपस्थित थे, जिन्होंने अपने भाषणों में स्वामीजी के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। उनके अन्दर ब्राह्मसमाज के सुप्रसिद्ध नेता श्री राजनारायण बसु (श्री अरविन्द घोष के मातामह), श्री दुर्गामोहन दास (कांग्रेस नेता चित्तरंजन दास के चाचा), ऐतिहासिक विद्वान् व ऋग्वेद के बंगानुवादक श्री रमेशचन्द्र दत्त (आई० सी० एस०), इतिहासज्ञ और प्रत्नवित् राजा राजेन्द्रलाल मित्र, साहित्यिक श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। श्री शम्भुनाथ पंडित के पुत्र श्री शंकरनाथ पंडित भी उस सभा में उपस्थित थे। उस सभा के प्रधान संयोजक थे भागलपुर के ज़मींदार राजा तेजनारायण सिंह।

"उस समय बंगाल और बिहार सम्मिलित थे और भारत की राजधानी कलकत्ता ही थी। राजा तेजनारायण सिंह की जमींदारी और सरकारी दफ्तर कलकत्ता में भी था। उस दफ्तर का कार्यभार राजा साहब के एक सम्बन्धी बाबू महावीर प्रसादजी के ऊपर था। राजा तेजनारायण सिंह और बाबू महावीर प्रसादजी दोनों ही महर्षि दयानन्द के परम भक्त थे। कलकत्ता आने से पहले स्वामीजी ने सन्

१८७२ ई० में २० अक्टूबर को भागलपुर में वैदिक धर्म पर उपदेश दिया था और शास्त्रार्थ भी किया था। स्वामीजी के उपदेश सुनकर तेजनारायणजी और महावीर प्रसादजी दोनों ही स्वामीजी के परम भक्त और अनुयायी बन गये थे। स्वामीजी के देहान्त के बाद उत्तर भारत में स्थान-स्थान में आर्यसमाज कायम होने लगे। महावीर प्रसादजी कलकत्ता में अपने दफ्तर के कार्य के लिए रहा करते थे। कलकत्ता में आर्यसमाज कायम करने के लिये उनकी इच्छा जगी। उस समय ब्राह्मसमाज के अन्दर दोनों तरह के सदस्य थे—एक वेद-पन्थी और दूसरे वेद-विरोधी। वेद को अपौरुषेय माननेवाले वेदपन्थी और नहीं माननेवाले वेद-विरोधी थे। लाहौर के ब्राह्मसमाज के वेदपंथी सदस्यों के द्वारा ही वहाँ के आर्यसमाज की स्थापना हुई थी। कलकत्ता के वेदपंथी ब्राह्मसमाजियों के नेता श्री राजनारायण बसु की अध्यक्षता में श्री महावीर प्रसादजी के आमन्त्रण पर उन्हीं के दफ्तर-गृह में सन् १८८५ ई० में परामर्श सभा की बैठक हुई। उसी सभा में आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना हुई। राजा तेजनारायण सिंह आर्यसमाज के प्रधान और श्री महावीर प्रसादजी मन्त्री निर्वाचित हुए। उस सभा में पंडित शंकरनाथजी और श्री बलाईचन्द्रजी मल्लिक आर्यसमाज के सदस्य बने। पं० शंकरनाथ के पिता जस्टिस शम्भुनाथ पंडित ब्राह्म-समाजी थे और बलाईचन्द मल्लिक एनीबेसेन्ट के शिष्य और थियोसोफिस्ट थे। ११ सज्जन उसी दिन आर्यसमाज के सदस्य बने। श्री राजनारायण वसु सदस्य नहीं बन सके।

"समाज के प्रधान राजा तेजनारायण सिंह कभी-कभी कलकत्ता आया करते थे। कार्यतः महावीर प्रसादजीके ऊपर ही प्रधान मन्त्री और उपदेशक के कार्य का भार निर्भर था। बड़ाबाजार के किसी स्थान में उन्हींके दफ्तर और गोदाम में सत्संग के अधिवेशन होने लगे। महावीर प्रसादजी को बहुत आदमी प्रधान बोलकर पुकारते थे।"

आर्यसमाज कलकत्ता के हीरक-जयन्ती विशेषांक से इतना बड़ा उद्धरण पंडित श्री दीनबन्धुजी वेद शास्त्री के लेख से हमने इसलिए दे दिया कि आरम्भ की परिस्थिति और आर्यसमाज की स्थापना की भूमिका का इससे अधिक सुन्दर और विश्वासी चित्रण मिलना कठिन है।

आर्यसमाज का इतिहास, प्रथम भाग में पृष्ठ २८३ पर श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति ने आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना के सम्बन्ध में निम्न प्रकार से लिखा है :—

> "स्वामीजी के परलोक गमन के पश्चात् कलकत्ता में जो शोकसभा हुई, उसमें बंगाल के अनेक प्रसिद्ध बैरिस्टर तथा सुधारक विद्वान् सम्मिलित हुए थे। दूसरे वर्ष सन् १८८४ ई० में दीपमाला के अवसर पर एक स्मारक सभा हुई जिसमें बंगाल के प्रसिद्ध समाज सुधारक नेता पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर सभापति बने थे। तीसरे वर्ष सन् १८८५ ई० में जो स्मारक सभा हुई, उसके प्रधान आदि ब्राह्मसमाज के संचालक श्री राजनारायण बसु थे। बसु महोदय ,वर्तमान काल के प्रसिद्ध वेदज्ञ महात्मा अरविन्द घोष के मातामह थे। उसी सभा में आर्यसमाज की स्थापना का प्रस्ताव उठाया गया जो शीघ्र ही कार्यान्वित हो गया। कलकत्ता आर्यसमाज की स्थापना हो गयी, जिसके पहले प्रधान भागलपुर के जमींदार श्री महावीर प्रसादजी चुने गये।"

आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना के सम्बन्ध में ये दोनों विवरण दो पृथक् स्रोतों से हैं। पं० दीनबन्धुजी ने स्थापना की परिस्थितियों का अधिक विस्तार से वर्णन किया है। वस्तुस्थिति की दृष्टि से बहुत अन्तर नहीं है। दोनों विवरणों को एकत्र करके पढ़ने पर यों प्रतीत होता है कि स्वामीजी के देहान्त के पश्चात् सन् १८८४ और ८५ के

वर्षों में स्वामीजी के स्मरण में जो श्रद्धांजलि सभायें हुईं उनमें बंगाल के चोटी के विद्वान् सुधारक श्री ईश्वरचन्द्रजी विद्यासागर और श्री राजनारायणजी बसु जैसे लोग सम्मिलित हुए। इससे एक निष्कर्ष यह आसानी से निकाला जा सकता है कि उन आरम्भिक दिनों में भी आर्यसमाज का संचालन उच्चकोटि के प्रभावशाली लोगों के हाथों में था। इनमें भागलपुर के राजा तेजनारायण सिंह और महावीर प्रसादजी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यह भी कम महत्त्व की बात नहीं है कि ऋषि के देहान्त के तीसरे वर्ष ही कलकत्ता में आर्यसमाज की स्थापना हो गयी।

आपाततः दोनों वर्णनों में दो स्थलों पर विभेद के लिए अवकाश है। श्री इन्द्रजी के अनुसार सन् १८८५ ई० की स्मारक-सभा में आर्य-समाज की स्थापना का प्रस्ताव किया गया जो शीघ्र ही कार्यान्वित हो गया। पं० दीनबन्धुजी के अनुसार श्री महावीर प्रसादजी ने आर्य-समाज की स्थापना के लिए एक परामर्श सभा अपने दफ्तर में बुलायी और उसी सभा में आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना हो गयी। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि स्मारक सभा और परामर्श सभा दोनों के ही प्रधान श्री राजनारायण बसु थे, अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि सन् १८८५ ई० में जो स्मारक सभा ऋषि दयानन्द के निर्वाण-दिवस पर हुई, उसके भी प्रधान श्री राजनारायणजी बसु थे और उसी सभा में आर्यसमाज की स्थापना का प्रस्ताव गृहीत किया गया। श्री इन्द्रजी लिखते हैं—"जो शीघ्र ही कार्यान्वित हो गया"। यह शीघ्र कार्यान्वयन का वर्णन श्री दीनबन्धुजी वेदशास्त्री के लेख में है, जिसका भाव यह है कि आर्यसमाज की स्थापना के उद्देश्य से श्री महावीर प्रसादजी ने एक परामर्श सभा बुलायी और इस परामर्श सभा के भी प्रधान श्री राज-नारायणजी बसु थे। इसी परामर्श सभा में आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना हो गई। राजा तेजनारायण सिंह आर्यसमाज कलकत्ता के प्रथम प्रधान और श्री महावीर प्रसादजी प्रथम मन्त्री निर्वाचित हुए।

दोनों वर्णनों में एक सुस्पष्ट मतभेद है। श्री इन्द्रजी विद्यावाचस्पति के अनुसार आर्यसमाज कलकत्ता के "पहले प्रधान भागलपुर के जमींदार श्री महावीर प्रसादजी चुने गए।" श्री पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री के अनुसार आर्यसमाज कलकत्ता के प्रथम प्रधान भागलपुर के "राजा तेजनारायण सिंह और मन्त्री श्री महावीर प्रसादजी" निर्वाचित हुए। इन मतभेदों में पं० दीनबन्धुजी का वर्णन अधिक संगत लगता है। चूंकि तेजनारायणजी कलकत्ता में कम रहते थे और महावीर प्रसादजी कलकत्ता में ही रहते थे तथा प्रधान मन्त्री और उपदेशक का भार स्वयं वहन करते थे, अतः पं० दीनबन्धुजी के अनुसार "महावीर प्रसादजी को ही बहुत आदमी प्रधान बोलकर पुकारते थे"।

इस प्रकार आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना के दिन ही आर्यसमाज के ११ सदस्य बने, जिनमें ४ सदस्यों के नाम श्री दीनबन्धुजी के लेख में उल्लिखित हैं :—

(१) राजा तेजनारायण सिंहजी (भागलपुर के जमींदार) आर्यसमाज कलकत्ता के प्रथम प्रधान,

(२) श्री महावीर प्रसादजी (राजा तेजनारायण के सम्बन्धी, कलकत्ता में राजाजी के दफ्तर का काम संभालते थे) प्रथम मन्त्री,

(३) पं० शंकरनाथजी (जस्टिस शम्भुनाथजी पंडित ब्राह्मसमाजी के पुत्र, प्रसिद्ध विद्वान् और लेखक),

(४) श्री बलाईचन्दजी मल्लिक (श्रीमती एनीबेसेन्ट के शिष्य और थियोसोफिस्ट)।

अन्य सात सदस्यों के नाम हमें नहीं मिलते, किन्तु जिन चार के नाम मिलते हैं उनपर किसी भी संस्था को गर्व हो सकता है। अकेले पं० शंकरनाथजी ने साहित्यजगत् में उल्लेखनीय कार्य किया। कम से कम उनके द्वारा छोटी-बड़ी आठ पुस्तकें अंग्रेजी में और

सोलह मौलिक तथा अनूदित बंगला में लिखी गयीं। ये लोग शुद्ध सिद्धान्तों से प्रभावित होकर ऋषि के मिशन के भक्त बनकर आर्य-समाज में आये थे।

प्रगति के चरण

आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना के पश्चात् यहाँ आर्यसमाज का काम बड़े उत्साह से आरम्भ हुआ। राजा तेजनारायण सिंह जैसे सम्पन्न व्यक्ति का कोष और पं० शंकरनाथजी जैसे विद्वान् का सहयोग आर्यसमाज की प्रगति के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। पं० दीनबन्धुजी के उल्लिखित लेख से विदित होता है कि पं० शंकरनाथजी आर्यसमाज कलकत्ता के उपप्रधान बने थे। पं० श्री दीनबन्धु वेदशास्त्री ने आर्यसमाज कलकत्ता की हीरक-जयन्ती की स्मारिका में एक और महत्त्वपूर्ण वर्णन दिया है—"राजा तेजनारायण सिंह ने आर्यसमाज के प्रचारार्थ २०,००० रुपया दान दिया था। उस रुपये से 'आर्यावर्त यन्त्रालय' नामक छापाखाना खुल गया। पं० शंकरनाथजी ने अपने गृह (६२, शम्भुनाथ पंडित रोड) के दो कमरे छापाखाना के लिये दे दिये थे। वहाँ से 'आर्यधर्म प्रवर्त्तक' नाम का मासिक पत्र हिन्दी भाषा में प्रकाशित होने लगा। प्रसिद्ध विद्वान् पं० रुद्रदत्तजी शास्त्री उस मासिकपत्र के संपादक और आर्यसमाज कलकत्ता के प्रचारक नियुक्त हुए। पं० रुद्रदत्तजी शास्त्री को ही हम आर्यसमाज कलकत्ता का सर्वप्रथम प्रचारक कह सकते हैं। इन्हींके द्वारा राजा तेजनारायण सिंहजी ने पतंजलि का योगदर्शन व्यासभाष्य भोजवृत्ति हिन्दी अनुवाद सहित निकाला था। साहित्य प्रकाशन और आर्य-समाज के प्रचार के प्रति कई सज्जनों की दृष्टि आकृष्ट हुई। इन कामों के लिये दान भी मिलने लगा। दानदाताओं में श्रीमान् सेठ जयनारायणजी पोद्दार, श्रीमान् छाजूरामजी चौधरी, श्रीमान् जगन्नाथ प्रसादजी गुप्त, श्रीमान् लाला रघुमलजी के नाम विशेषरूप से उल्लेख-

योग्य हैं। पं० शंकरनाथजी ने 'सत्यार्थ प्रकाश' का बंगानुवाद अपने खर्च से निकाला। परोपकारिणी सभा अजमेर से भी 'सत्यार्थ प्रकाश' का बंगानुवाद प्रकाशित हुआ था। श्रीमान् सेठ छाजूरामजी चौधरी के दान से "ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका" का पं० शंकरनाथजी कृत बंगानुवाद प्रकाशित हुआ। श्रीमान् सेठ जयनारायणजी के दान से "पंचमहायज्ञविधि" और "आर्याभिविनय" के भी बंगानुवाद पं० शंकरनाथजी ने निकाले। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी, हिन्दी और बंगला में बहुत-सी पुस्तकें पं० शंकरनाथजी ने निकालीं।"

प्रगति के इस चरण में यह साहित्यिक कार्य की कहानी है। पं० शंकरनाथजी ने आर्यसमाज के साहित्य-निर्माण में जो प्रशंसनीय योगदान दिया है, उसका एक परिचय उनके द्वारा विरचित साहित्य की निम्न सूची से प्राप्त होता है :—

अंग्रेजी साहित्य

(1) What is Arya Samaj—Part I and Part II.

(2) The Vedas as the Revelation.

(3) The study of the Vedas by the Women and the Shudras.

(4) Destiny and Self-Exertion.

(5) Classification of Caste.

(6) Dwaita & Adwaita Philosophy.

(7) Bible Exposed with Comments—Parts I & II.

(8) Duty towards our depressed brethren.

बंगला साहित्य

(९) सत्यार्थ प्रकाश (बंगानुवाद)

(१०) आर्याभिविनय („)

(११) पंचमहायज्ञविधि (बंगानुवाद)
(१२) ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका („)
(१३) ऋषीन्द्र जीवन (दयानन्द चरित्र)
(१४) बाइबलेर आत्मखण्डन
(१५) आस्तिक दर्शन ओ ईश्वर निरूपण
(१६) उपदेश रत्नावली
(१७) गुरु उ शिष्य विषय शास्त्रमत
(१८) दान विषय शास्त्रमत
(१९) वेद नित्य उ अपौरुषेय
(२०) स्त्री-शूद्रादि वेदपाठ
(२१) धर्मवीर (हिन्दी भाषा में भी)
(२२) मानवजीवनेर कर्म उद्देश्य उ परिणाम
(२३) आर्यसमाज परिचय

आज एक सौ वर्षों के पश्चात् एक इतिहास लेखक की दृष्टि से हम देखते हैं तो प्रतीत होता है कि आर्यसमाज कलकत्ता के तात्कालिक कर्णधारोंने प्रचार-कार्य की अति उचित दिशा अपनायी थी। सभाएँ और सत्संग तो होते ही थे, होते ही रहते हैं। किन्तु स्थायी प्रचार का कार्य तो साहित्य-निर्माण से ही सम्भव होता है। यह साहित्य-निर्माण का कार्य अपने में एक मानदण्ड की तरह खड़ा हुआ आज भी अपने लिये स्वयं ही मानमापक है।

साहित्य-कार्य चिरस्थायी एवं दूरगामी प्रभाव वाला होता है। इसमें तो किसी सन्देह के लिये अवकाश नहीं। यह प्रभावशाली कार्यसरणि प्रायः कार्यकर्त्ताओं के ध्यान में भी होती है। ; किन्तु साहित्य-निर्माण एवं प्रकाशन के लिये जहाँ सुयोग्य, लेखन-कला-विज्ञ विद्वान् चाहिये, वहीं प्रकाशन के लिये धन और व्यवस्था के लिये बुद्धि और सुकरता के लिये शऊर भी चाहिये। उस समय दैव योग से

सब कुछ था। पण्डित शङ्करनाथजी की विद्या एवं लेखन-कला, राजा तेजनारायणजी का धन और उनकी दान-बुद्धि, साथ ही अन्य कार्यकर्त्ताओं की समन्वय-बुद्धि एवं क्रियाशीलता, सभी कुछ आर्यसमाज के कार्य को अग्रगति देने में कृतकार्य हो रहे थे।

पण्डित शङ्करनाथजी के साहित्य की सूची पर दृष्टि डालने से सुस्पष्ट प्रतीत होता है कि इस साहित्य-कार्य के पीछे प्रचारकार्य को अग्रसारित करने की तीव्र आकांक्षा कार्य कर रही थी।

प्रगति का एक और आयाम

आर्यसमाज कलकत्ता का कार्य जिस तीव्र गति से आरम्भ हुआ था और जिस प्रकार के महत्त्वपूर्ण लोगों ने इसमें भाग लिया यह ऊपर के विवरण से पर्याप्त सुस्पष्ट है। कलकत्ता उस समय भारत की राजधानी, विद्या का केन्द्र, समाजसुधार का केन्द्र, व्यवसाय का केन्द्र, सब कुछ था। कलकत्ता की गतिविधियों का देशव्यापी महत्त्व था। धनिक वर्ग ने, विशेष करके श्री तेजनारायण सिंह ने और उन्हींके साथ श्री छाजूराम चौधरी, श्री सेठ जयनारायण पोद्दार, श्री लाला रघुमल आदि ने आर्यसमाज के काम को आगे बढ़ाया। साथ ही पं० शंकरनाथजी जैसे विद्वान्, सम्पन्न व्यक्ति का सहयोग अपने में एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक संयोग था। आर्यसमाज की ओर स्थानीय बंगाली सज्जनों का भी ध्यान जाना स्वाभाविक था। आर्यसमाज वेदों को स्वतः प्रमाण मानता है, ऋषि-मुनियों के साहित्य पर आस्था और विश्वास रखता है, समाज सुधारके काम में अग्रणी रहा है, विधवा विवाह, अछूतोद्धार इत्यादि आर्यसमाज के प्रमुख कार्य रहे हैं। आर्यसमाज सन्ध्या, अग्निहोत्र, स्वाध्याय, सदाचार, देशभक्ति, देश-गौरव इत्यादि सभी विचारों का केन्द्र स्थान था। स्वाभाविक है कि पढ़ेलिखे विद्वान् लोग और उदारचेता व्यवसायी लोग आर्यसमाज की ओर झुकते।

कलकत्ता ब्राह्मसमाज का गढ़ रहा है। राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर इत्यादि सभी का यह कार्यक्षेत्र था, अतः यहाँ के वायुमंडल में ब्राह्मसमाज के लिये भी आकर्षण बहुत था। एक विशेष बात ध्यान देने योग्य यह लगती है कि ब्राह्मसमाज में भारतीय ऋषि-मुनियों के प्रति, भारतीय इतिहास के गौरव के प्रति, वेदशास्त्र के सम्मान के प्रति वह आदर का भाव न था जो स्वामी दयानन्दजी की शिक्षाओं में विद्यमान है। स्वामी दयानन्दजी जब कलकत्ता आये थे तो उनका सम्बन्ध ब्राह्मसमाजियों से बहुत नजदीक से हुआ था। ब्राह्मसमाज के उत्सव में उन्होंने व्याख्यान भी दिया था। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के घर पर और बाबू केशवचन्द्र सेन के घर पर भी उन्होंने व्याख्यान दिया था। ब्राह्मसमाज को उन्होंने इतने नजदीक से देखकर जो अपनी राय बनायी थी वह महत्त्वपूर्ण है, उसका कलकत्ता में आर्यसमाज के आरम्भिक विकास पर पर्याप्त प्रभाव पड़ना अनिवार्य था। स्वामीजी ने ब्राह्मसमाज की कुछ अच्छी बातों की सराहना करके अपनी राय इस प्रकार लिखी है—

> "इन लोगों में स्वदेशभक्ति बहुत न्यून है। ईसाइयों के आचरण बहुत से ले लिये हैं। खानपान, विवाहादि के नियम भी बदल दिये हैं। अपने देश की प्रशंसा व पूर्वजों की बड़ाई करनी तो दूर रही, उसके स्थान में पेटभर निन्दा करते हैं। व्याख्यानों में ईसाई आदि अंग्रेजों की प्रशंसा भरपेट करते हैं। ब्रह्मादि महर्षियों का नाम भी नहीं लेते। प्रत्युत् ऐसा कहते हैं कि बिना अंग्रेजों के सृष्टि में अद्य पर्यन्त कोई भी विद्वान् नहीं हुआ, आर्यावर्तीय लोग सदा से मूर्ख चले आये हैं, इनकी उन्नति कभी नहीं हो पायी। वेदादिकों की प्रतिष्ठा तो दूर रही, परन्तु निन्दा करने से भी पृथक् नहीं रहते। ब्राह्मसमाज के उद्देश्य की पुस्तक में साधुओं की संख्या में

ईसा-मूसा, मोहम्मद, नानक और चैतन्य लिखे हैं। किसी ऋषि-महर्षि का नाम भी नहीं लिखा। इससे जाना जाता है कि इन लोगों ने जिनका नाम लिखा है उन्हींके मतानुसारी मत वाले हैं।

भला जब आर्यावर्त्त में उत्पन्न हुए हैं, इसी देश का अन्न-जल खाया-पिया, अब भी खाते-पीते हैं, तब अपने माता-पिता, पितामहादि के मार्ग को छोड़कर दूसरे विदेशी मतों पर अधिक झुक जाना, ब्राह्मसमाजी और प्रार्थनासमाजियों का एतद् देशस्थ संस्कृत विद्या से रहित अपने को विद्वान् प्रकाशित करना, इंगलिश भाषा पढ़ के पंडिताभिमानी होकर झटिति एकमत चलाने में प्रवृत होना, मनुष्यों का स्थिर और वृद्धिकारक काम क्योंकर हो सकता है[१]।"

यह उस युग में भारतीय संस्कृति के गौरव और इतिहास के गौरव का उच्चतम स्वर था। महर्षि स्वामी दयानन्दजी ने यावज्जीवन इसी भावना से काम किया था। आर्यसमाज भी इस भावना को पूर्णरूप से अपनाकर चलता रहा। स्वाभाविक था कि जिन लोगों में देश के प्रति भक्ति, अपने इतिहास के गौरव के प्रति सम्मान का भाव था वे आर्यसमाज की ओर अधिक तीव्रता से आकृष्ट होते। कलकत्ता में भी पर्याप्त लोग आर्यसमाज की ओर आकृष्ट होने लगे। श्री पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री की सूचना के अनुसार आर्यसमाज में सम्मिलित होने की अभिलाषा बहुत सज्जनों के अन्दर काम कर रही थी। सन् १९०० ई० तक लगभग एक सौ व्यक्ति आर्यसमाज के सदस्य बन गये थे। आरम्भिक युग में आर्यसमाज के कार्यकर्त्ताओं ने जिस तत्परता से काम किया था उस सम्बन्ध में पं० दीनबन्धुजी ने लिखा है—

---

१ सत्यार्थप्रकाश : एकादश समुल्लास।

"आर्यसमाज के सदस्य बनने के लिये बहुत-बहुत सज्जनों के अन्दर अभिलाषा थी, लेकिन उपयुक्त साहित्य के अभाव के कारण यहाँ समाज का कार्य पूरा नहीं हो सका। तो भी भिन्न-भिन्न अंचलों के करीब एक सौ आदमी सन् १९०० ई० तक समाज के सदस्य बन गये। प्रथम आर्यसमाज बम्बई की स्थापना के समय आर्यसमाज के २८ नियम रखे गये थे। लाहौर आर्यसमाज की स्थापना के बाद स्वामीजी ने २८ नियमों को संक्षिप्त करके १० नियम बनाये। इन नियमों को स्वीकार करके बहुत-से बंगाली सज्जन सदस्य बन गये थे। साप्ताहिक सत्संग कभी तुलापट्टी या सूतापट्टी में, कभी घी की दूकान में, कभी ईडेनगार्डेन में, कभी ब्राह्मसमाज के विद्यालय में होने लगे। स्थानाभाव के कारण सत्संगों में २५-३० से अधिक उपस्थिति नहीं होती थी[1]।"

एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न

स्वामी दयानन्दजी के देहान्त के पश्चात् कुछ ही समय के भीतर एक सिद्धान्त सम्बन्धी प्रश्न उठ खड़ा हुआ। प्रश्न था कि मांस-भक्षण आर्यसमाज के सिद्धान्तों के अनुकूल है या नहीं। यह प्रश्न स्वामीजी के जीवन में किसी ने आन्दोलन के रूप में उठाया नहीं था। एक-दो बार शंका होने पर स्वामीजी ने मांसाहार को अनुचित और धर्मविरुद्ध सुस्पष्ट रूप से घोषित कर दिया था।

एकाध मांसाहारी आर्यसमाज और परोपकारिणी सभा में महत्त्व-पूर्ण स्थान पर थे। स्वामीजी के देहान्त के पश्चात् वे सुस्पष्टतः मुखर हो उठे। पंजाब तो विशेष रूप से, थोड़ा-बहुत राजस्थान इस विवाद के भँवर में आ गया। राजस्थान के मांसाहार समर्थक तो दब-से गये

---

१ आर्यसमाज कलकत्ता का हीरक-जयन्ती विशेषांक।

किन्तु पंजाब में उनका एक दल आर्यसमाज के भीतर ही शक्तिशाली बना रहा। खुल्लम-खुल्ला व्याख्यान-विवाद हुए, पुस्तकें छापी गयीं और यह विवाद काफ़ी दूर तक आगे बढ़ गया। आर्यसमाज का जनमत सदा सर्वत्र मांसाहार के विरोध में रहा। और एक-दो जगह मांसाहारी प्रभावपूर्ण होकर भी आर्यसमाज के सिद्धान्त और मान्यता को कभी बदल न सके। फलतः आर्यसमाज का संगठन सिद्धान्त रूप से मांसाहार का कट्टर विरोधी सर्वत्र सदा बना रहा।

पंजाब का विवाद सार्वजनिक रूप में था और उस दिशा में बंगाल में आर्यसमाजियों का चिन्तित होना और फ़लतः सावधान होना स्वाभाविक ही था।

अतः बंगाल में आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार के साथ एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न आरम्भ से ही लग गया था। यह सुविदित है कि बहुसंख्यक बंगाली मत्स्यभोजी होते हैं। यहाँ मत्स्य-मांस में भेद किया जाता है और मत्स्यभोजी मांसभोजियों से अपने को पृथक् ही नहीं बल्कि बढ़कर भी मानते हैं। स्वामी दयानन्दजी ने जिस आचारसंहिता का उपदेश किया उसके अनुसार मत्स्य-मांस-भक्षण त्याज्य है, अधार्मिक है। बंगाली आर्यसमाज की ओर कम से कम तीन बार बड़े वेग से झुके, किन्तु सदा ही यही दुर्लंघ्य प्रश्न बीच में आकर रुकावट डाल देता था। सर्वप्रथम आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना के पश्चात्, आर्यसमाज के विचारों-सिद्धान्तों से आकृष्ट होकर बुद्धिजीवी देशभक्त बंगाली वर्ग आकृष्ट हुआ था, किन्तु इसी प्रश्न ने उन्हें रोक लिया था। दूसरी बार सन् १९४७ ई० की स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व स्वामी स्वतन्त्रानन्द और स्वामी वेदानन्द ने बंगाल का दौरा किया था। उस समय के राजशाही आदि कई जिलों में यज्ञ-उपदेश और प्रचार का काम तीव्रता से बढ़ा था। उस समय बंगाली सज्जनों के बढ़ते हुए आकर्षण को देखकर स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी ने कहा था कि जिस वेग से लोग

पूर्वी बंगाल में आर्यसमाज की ओर आकृष्ट हो रहे हैं, उन्हें संभालना कठिन हो जायगा। इस समय भी यही पर्वतप्रश्न कि 'क्या मत्स्य-भोजी आर्यसमाज में भाग ले सकते हैं?' बीच में आ पड़ा था और वह आकर्षण भी शिथिल हो गया था। तीसरी बार जब पाकिस्तान का बनना अवश्यम्भावी-सा हो गया था, उस समय डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी, श्री एन० सी० चटर्जी इत्यादि चोटी के वरिष्ठतम नेताओं और कार्य-कर्त्ताओं ने आर्यसमाज के मिशन को आगे करके मुस्लिमलोगों के सामने हिन्दूकरण का मोर्चा लगाना चाहा था। उस समय भी यही प्रश्न सामने आ गया था। श्री एन० सी० चटर्जी और डा० श्यामा-प्रसाद मुखर्जी जैसे विद्वान् लोगों से यह बात छिपी न थी कि इस प्रश्न पर पंजाब में काफी शिथिलता रही है। वहाँ दो दल बने और कई दिशाओं में आर्यसमाज का काम काफी कुछ आगे बढ़ा, पर बंगाल में उस तरह की शिथिलता आज तक न आ पायी है और यहाँ के आर्य-नेता इस मुद्दे पर न पहले कोई समझौता करना चाहते थे, न आज ही कोई समझौता करना चाहते हैं।

हम इस प्रश्न के औचित्य-अनौचित्य पर बिना कुछ विचार किये इतिहास की दृष्टि से घटनाक्रम का वर्णन कर रहे हैं। यह कुछ आवश्यक नहीं कि खानपान के प्रश्न पर शिथिलता बंगाल में भी डी० ए० वी० कालेजों का जाल बिछा देती, अथवा आर्यसमाज एक प्रौढ़तम अन्दोलन के रूप में खड़ा हो जाता, फिर भी इतिहास की दृष्टि से जो प्रश्न उठता रहा है उसका अपनी जगह पर महत्त्व है और इतिहास में उसे सन्निविष्ट करना अपना विशेष महत्त्व रखता है। इस दृष्टि से हम इस प्रसंग को पं० श्री दीनबन्धुजी वेदशास्त्री के शब्दों में लिखते हैं—

> "उस समय श्री रुद्रदत्तजी शास्त्री ने वृहत् सवाल रखा कि मत्स्य-मांस-भोजी किसी आदमी को आर्यसमाज का सदस्य बनने का अधिकार है या नहीं।

इस विषय पर सिद्धान्त ग्रहण करने के लिये पं० शंकर-नाथजी के घर पर आर्यसमाज का अधिवेशन हुआ। इसमें यह सिद्धान्त ग्रहण किया गया कि मत्स्य-मांसभोजी या वेद को अपौरुषेय न मानने वाले किसी को आर्यसमाज का सदस्य बनने का अधिकार नहीं है। इस सिद्धान्त पर बहुत बंगाली जनता के अन्दर यह मनोभाव प्रगट रहा कि आर्यसमाज उनके लिए उपयोगी नहीं है[१]।"

हमने ऊपर पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री के लेख का उद्धरण दिया है। यह इस बात को भी बताता है कि आर्यसमाज में बंगीय जनता का प्रवेश कम क्यों हुआ। बंगाल में आर्यसमाज में बंगालियों की संख्या कम रही हैं, इस सम्बन्ध में यहाँ एक ऐतिहासिक पक्ष हमने ऊपर दिखाया है वहीं दूसरी भी चिन्तनधारा है जिसे उद्धृत करके हम इस अंश को समाप्त करते हैं। आर्यसमाज के इतिहास में श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखते हैं—

"प्रारम्भ में ब्राह्मसमाज ने महर्षि का हार्दिक स्वागत किया, पर कुछ समय पीछे जिन कारणों से दोनों सभाओं का मतभेद हो गया उनकी चर्चा दूसरे काण्ड में हो चुकी है। मतभेद होने का परिणाम यह हुआ कि आर्यसमाज के बंगाली सदस्यों की संख्या में वृद्धि होनी बन्द हो गयी। यह एक ध्यान देने योग्य बात है कि बंगदेश के निवासी भावनाप्रधान होने के कारण प्रायः विचारक्षेत्र के छोर पर रहते हैं। या तो पूरे सनातन धर्म के माननेवाले बनेंगे अथवा पुरानी रस्सियों को तोड़कर सर्वथा स्वच्छन्द होने का यत्न करेंगे। वे या तो भक्ति की मस्ती में आ के गाने लगेंगे अथवा प्राचीन भारतीय मर्यादा को छोड़कर पाश्चात्य विचारों के प्रवाह में बह जायेंगे

---

१ आर्यसमाज कलकत्ता का हीरक-जयन्ती विशेषांक।
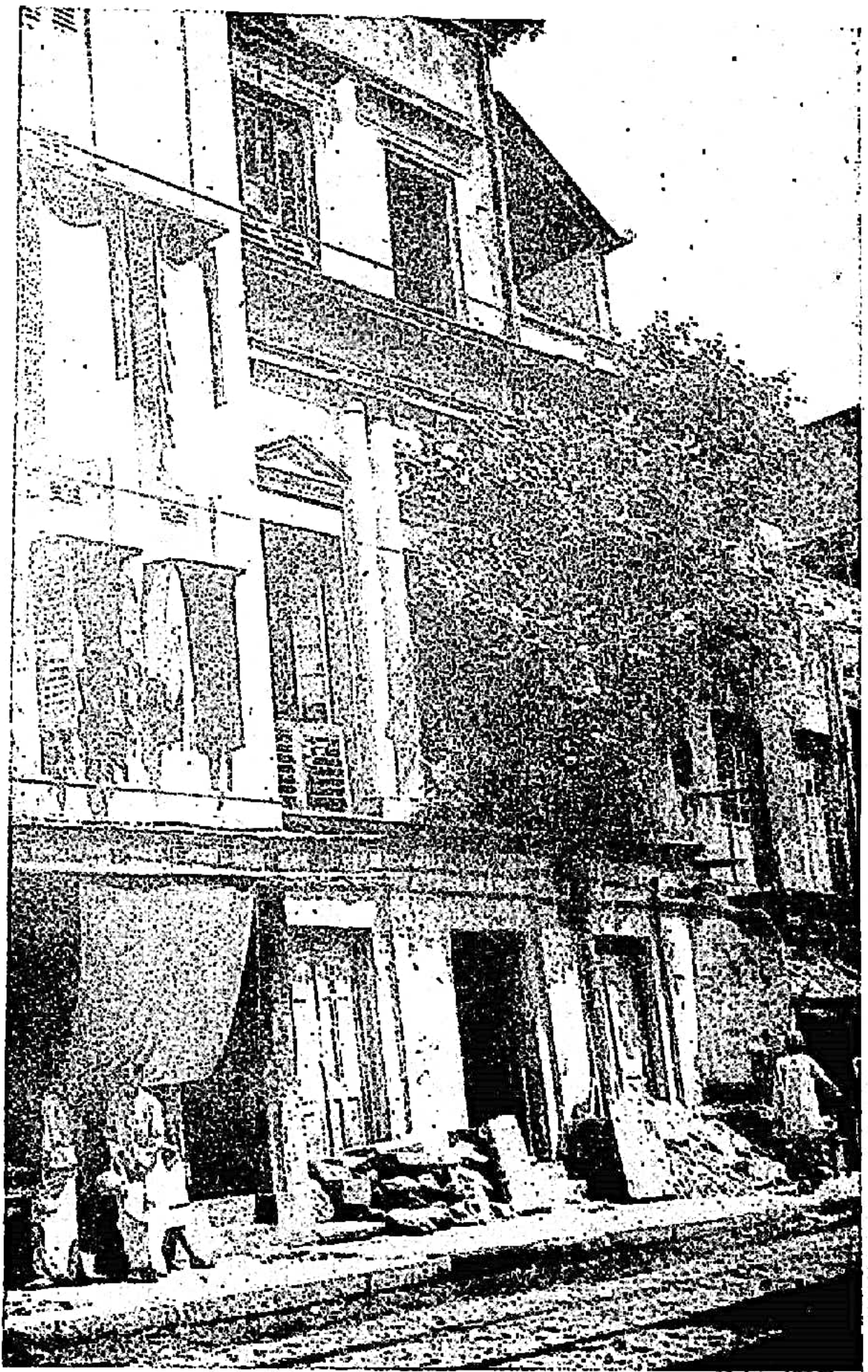
अपर चितपुर रोड स्थित आदि ब्राह्मसमाज का मन्दिर जहाँ
स्वामी दयानन्द सरस्वती ने व्याख्यान दिया था

चित्तरञ्जन एवेन्यू स्थित श्री केशवचन्द्र सेन का निवास-गृह जहाँ
स्वामी दयानन्द सरस्वती का व्याख्यान हुआ था
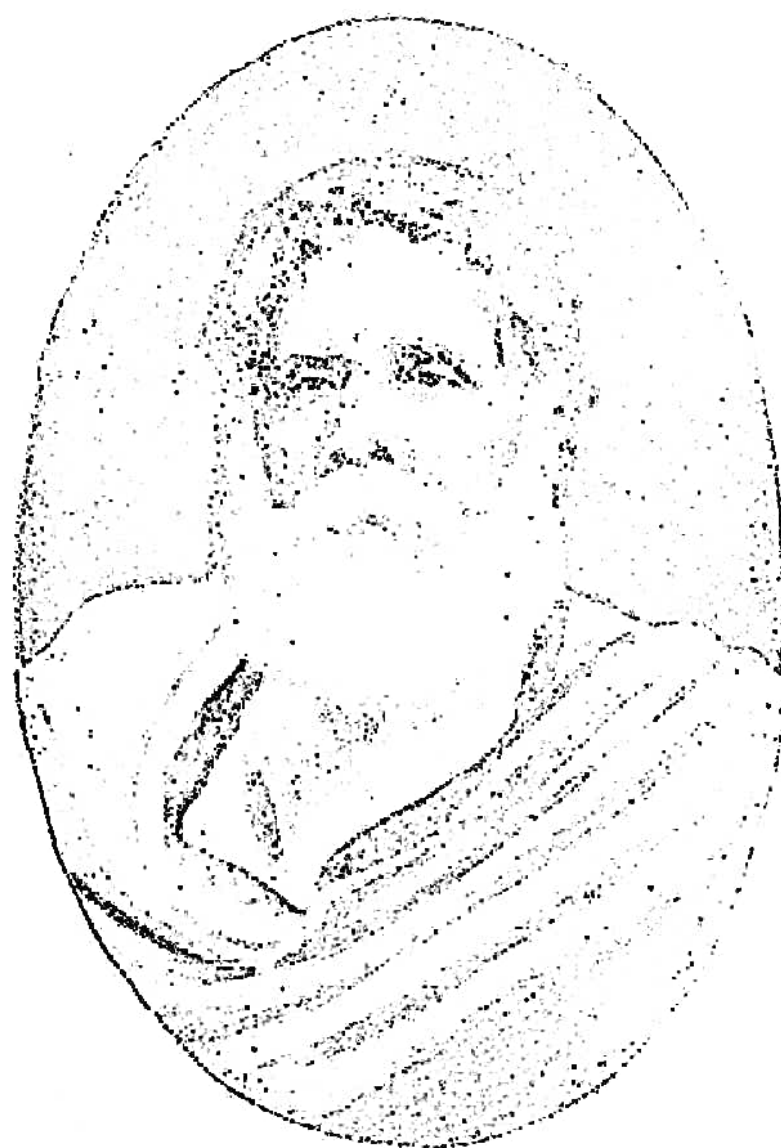
श्री राजनारायण वसु जिनकी अध्यक्षता में आर्यसमाज
कलकत्ता की स्थापना हुई थी

आर्यसमाज कलकत्ता के संस्थापक प्रधान भागलपुर के रईस
राजा तेजनारायण सिंह

आर्यसमाज कलकत्ता के संस्थापक उप-प्रधान पण्डित शंकरनाथजी पण्डित

भावनाप्रधान व्यक्तियों के लिए मध्यमार्ग बहुत कठिन हो जाते हैं। आर्यसमाज के कार्यक्रम में प्रारम्भ से ही भक्ति और तर्क का, प्राचीन और अर्वाचीन का मिश्रण रहा है। जिन शिक्षित बंगालियों की प्रवृत्ति भक्ति की ओर थी वे रामकृष्ण परमहंस के अनुयायी बन गये और जो बुद्धिवादी थे वे ब्राह्मसमाज के तत्त्वावधान में प्रविष्ट हो गये। चिरकाल तक कलकत्ता के आर्यसमाज में उत्तरीय भारत और बिहार से कलकत्ता गये हुए लोगों की ही प्रधानता रही। कुछ-न-कुछ बंगाली सदस्य तो सदा ही बने रहे।[1]"

आर्यसमाज के लिए यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। आरम्भ से लेकर आज तक आर्यसमाज कलकत्ता में बंगीय तत्त्व की अप्रधानता रही है। यद्यपि आर्यसमाज कलकत्ता ने बंगला में पर्याप्त साहित्य प्रकाशित किया है जिसका विवरण हम अलग देंगे, बंगाली विद्वानों, प्रचारकों को प्रचार के कार्य में लगाया है और उनकी सहायता की है। बंगला में पत्र-पत्रिकाएँ भी प्रकाशित कीं, बंगला माध्यम से कन्या विद्यालय भी चलाया, समय-समय पर बंगभाषी व्यक्तियों को आर्यसमाज के प्रचार में दीक्षित करके प्रचारक बनाने का प्रयास किया, कई वर्षों तक पार्कों में बंगला भाषा के माध्यम से आर्यसमाज के मिशन को फैलाने का प्रयास किया, फिर भी यह नितान्त सत्य है कि कलकत्ता आर्यसमाज में बंगीय तत्त्व गौणरूप में ही रहा है। ऊपर कारण रूप में दो विकल्प दिये जा चुके हैं। दोनों का अपनी-अपनी जगह पर महत्त्व है, और उन्हें इनकार नहीं किया जा सकता। पर एक तीसरी बात भी समझ में आती है, यह उन दोनों से सर्वथा पृथक् है। संगठन की ईकाइयाँ मिलने-जुलने वाले लोगों को केन्द्र करके अपनी

---

१ श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति—आर्यसमाज का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ २८४-२८५

शाखा-प्रशाखाओं को फैलाती हैं। आर्यसमाज कलकत्ता में भी राजा तेजनारायण सिंह के समय से जो अबंगीय तत्त्व प्रभावी हुआ, वह बंगाल की जनता की हर प्रकार की उदारतापूर्वक सेवा करता हुआ आज भी अपने प्रभाव को अक्षुण्ण रखता चला जा रहा है। पण्डित शङ्करनाथजी, और उन्हींके साथ कुछ अन्य बंगाली सज्जन आर्य-समाज कलकत्तामें प्रविष्ट हुए। किन्तु वे संगठन पर अपनी प्रभविष्णुता द्वारा कभी हावी न हो सके। इसका कारण खोजना कठिन नहीं है। संगठनों में धन और विद्या दोनों की आवश्यकता है और प्रायः धन ही प्रभावशाली हो उठता है। विद्या या तो द्वितीय पंक्ति पर चली जाती है या फिर परमुखापेक्षी हो जाती है। सभी संगठनों में धन का वर्चस्व प्रभावी हो जाता है और आर्यसमाज कलकत्ता उसका अपवाद नहीं है। इस प्रकार एक ओर व्यवसायी वर्ग का प्रभाव और संख्या बढ़ी तो दूसरी ओर बंगाली बुद्धिजीवियों का सम्पर्क न्यून ही होता चला गया।

तृतीय अध्याय

आर्यसमाज मन्दिर
का
निर्माण

सन् १८८५ ई० में आर्यसमाज की स्थापना के साथ ही कलकत्ता में लक्ष्मी और सरस्वती का अच्छा संगम आरम्भ हो गया था। राजा तेजनारायणजी धनवान्, सम्पन्न और श्रद्धावान् व्यक्ति थे। वे आर्यसमाज के लिये धन व्यय करने में भी नहीं हिचकते थे। थोड़े ही दिनों बाद चौधरी छाजूरामजी, सेठ जयनारायण पोद्दार, लाला रघुमलजी, रायबहादुर रलारामजी, इत्यादि सम्पन्न व्यक्तियों का सहयोग आर्यसमाज को मिलने लगा था। इसीके साथ यह भी महत्त्वपूर्ण बात है कि जहाँ राजा तेजनारायणजी आर्यसमाज कलकत्ता के प्रथम प्रधान बने, वहीं पं० शंकरनाथजी आर्यसमाज कलकत्ता के प्रथम उपप्रधान बने। पं० शंकरनाथजी ने आर्यसमाज के विद्या एवं साहित्यपक्ष को खूब संभाला। पं० शंकरनाथजी विद्वान् ही नहीं, सम्पन्न व्यक्ति भी थे। कलकत्ता जैसे शहर में आर्यसमाज के 'आर्यावर्त्त यन्त्रालय' के लिये उन्होंने अपने निवास-गृह में दो कमरे दिये थे। क्योंकि आर्यसमाज के पास अपनी कोई जगह नहीं थी। आर्यसमाज के

सदस्य अपनी कट्टरता और प्रचार की तन्मयता के कारण साप्ताहिक सत्संग अवश्य करते थे। छिटपुट विवरणों में यत्रतत्र जो वर्णन और सूचनाएँ मिलती हैं उनसे यह विदित होता है कि आर्यसमाज के सत्संग के लिये स्थान का अभाव सदा ही बना रहता था। सदस्यों की तन्मयता और मनोयोग के कारण उस समय आर्यसमाज का सत्संग गोदामों में भी होता था। कहते हैं, उस समय तूलापट्टी या सूतापट्टी में गोदाम थे। आर्यसमाज वहाँ के गोदामों में सत्संग किया करता था। कभी-कभी ईडन गार्डेन में भी सत्संग का आयोजन होता था। आज जब आर्यसमाज कलकत्ता के पास कई लाख रु० का इतना बड़ा अपना भवन है और इतने बड़े-बड़े दो विद्यालय कई लाख रु० के भवनों में चलाये जा रहे हैं, तो इस समय ईडन गार्डेन में सत्संग की बात कुछ वन-विहार का-सा आभास देती है। किन्तु वास्तव में, जैसा उस समय की परिस्थितियों और आवश्यकताओं को देखने पर समझ में आता है, यह वन-विहार या आनन्द-उत्सव की अपेक्षा स्थान के अभाव का कारण अधिक था। सेठ श्री किशनलालजी पोद्दार की सूचना के अनुसार जिन दिनों आर्यसमाज का सत्संग इधर-उधर लगा करता था, उनमें एक स्थान हेयर स्कूल के बाहर का मैदान भी है। वैसे यह बात समझ में आती है कि बड़ाबाजार के गोदामों में सत्संग की सुविधा गोदाम के मालिकों के अनुग्रह से मिल जाती थी। ब्राह्मसमाज के स्कूल में सत्संग की सुविधा ब्राह्मसमाजियों की सहानुभूति से मिलती थी। हेयर स्कूल के सामने का मैदान सार्वजनिक तो था नहीं और किसकी कृपा से यह सुविधा मिलती थी, आज इसका कुछ महत्त्व नहीं। फिर भी आर्यसमाज कलकत्ता का साप्ताहिक सत्संग हेयर स्कूल के सामने के मैदान में पर्याप्त समय तक लगता रहा।

कुछ दिन पीछे आर्यसमाज कलकत्ता का सत्संग कालेज स्ट्रीट मार्केट के सामने एक स्कूल में होने लगा था। आज तो यह समझ में नहीं आता

कि वह स्कूल कहाँ था और किस भवन में था, किन्तु पं० दीनबन्धुजी की सूचना के अनुसार यह ब्राह्मसमाजियों का स्कूल था। स्कूल में रविवार को अवकाश रहता था। उसी दिन आर्यसमाज का सत्संग लगता था। विद्यालय के अधिकारियों ने आर्य भाइयों को यह सुविधा दे रखी थी कि वे विद्यालय में सत्संग कर लें, किन्तु यह कार्यभार आर्य भाइयों के ऊपर ही था कि वे विद्यालय की बेंचों को हटाकर एक जगह कर लेते थे, खाली स्थान को बुहार-पोंछकर सत्संग के लायक बना लेते थे, और जब सत्संग समाप्त हो जाता था तब स्कूल की बेंचों को यथास्थान विद्यार्थियों के बैठने लायक फिर सजा देते थे। कुछ दिनों तक यह क्रम चलता रहा। आज के इस ऐश्वर्य-सम्पन्न युग में जहाँ कई-कई सेवक समाजों में नियुक्त हैं, आज के सदस्य समाज मन्दिरों में झाड़ू लगाना, दरी-चादरें बिछाने जैसे कामों के पास कम ही पहुँचते हैं। सब काम वेतनभोगी सेवकों पर न्यस्त है। इस भूमिका में पूर्व आर्यपुरुषों की वह तपस्या और आर्यसमाज के मिशन को विस्तार देने की तमन्ना शतशः स्मरणीय एवं वन्दनीय है। काश! यह सेवा-भाव, यह सरल भाव, हम सदस्यों के हृदय में आज भी स्थान पा जाता।

आर्यसमाज मन्दिर के निर्माण के पूर्व कुछ समय आर्यसमाज का सत्संग एल्बर्ट हॉल में भी लगा करता था। एल्बर्ट हॉल कहाँ था, इस सम्बन्ध में एक सूचना के अनुसार एल्बर्ट हॉल कहीं ठनठनियाँ में था। श्री पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण की सूचना के अनुसार प्रेसीडेन्सी कालेज के सामने प्रसिद्ध काफी हाउस वाली जगह है। ठनठनियाँ एक मोहल्ला है और काफी हाउस से कुल ४-५ मिनट पैदल की दूरी पर है। सम्भवतः उस समय ठनठनियाँ का आयाम एल्बर्ट हॉल तक रहा हो। श्री पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण आर्यसमाज के विद्वान् प्रचारक, 'वेदमाता' नामक मासिक पत्र के सम्पादक हैं।

आर्यसमाज के प्रति उनकी दृढ़ निष्ठा है, अतः उनकी सूचना अधिक भरोसे की है।

जो भी हो, आर्यसमाज मन्दिर के निर्माण से पूर्व आर्यसमाज कलकत्ता के पास कोई भाड़े-किराये का मकान रहा हो या किसी किराये की जगह पर सत्संग लगता रहा हो, ऐसी कोई सूचना नहीं मिलती। ऐसासमझ में आता है कि ऐसे धनीमानी सज्जनों ने भाड़े पर कोई जगह लेने की अपेक्षा, भूमि क्रय करके मन्दिर बनवाना अधिक ठीक समझा होगा। यह भी पता नहीं चलता कि उस समय आर्यसमाज का कार्यालय किस स्थान पर था। इसके कागज़-पत्र, फाइलें, रजिस्टर कहाँ रहते थे, इस तरह की कोई सूचना नहीं मिली है।

आर्यसमाज मन्दिर की पवित्र भूमि

जिस स्थान पर आज आर्यसमाज मन्दिर, १९, विधानसरणी का विशाल भवन, सभागार, यज्ञशाला, इत्यादि का निर्माण हुआ है, वह स्थान सन् १९०७ ई० में आर्यसमाज कलकत्ता ने क्रय कर लिया था। इसका पंजीकृत विक्रयपत्र आर्यसमाज कलकत्ता के कार्यालय में सुरक्षित रखा हुआ है।

यह भूमि अपने ऐतिहासिक महत्त्व के कारण पवित्र भूमि के रूप में वन्दनीय है। यह स्वदेशी आन्दोलन का प्रसिद्ध मैदान था। इसका उस समय का नाम पान्तिका माठ है। बंगाल में मैदान को माठ कहते हैं। यह पान्तिका माठ क्यों कहलाता था, यह इतिहास अज्ञात-सा है। पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री ने एक लेख में इस पवित्र भूमि की ऐतिहासिक गौरवगाथा निम्न प्रकार लिखी है—

"आज जहाँ आर्यसमाज मन्दिर और विद्यासागर कालेज होस्टल खड़े हैं, वहीं पान्तिका माठ नाम से एक मैदान था। यहाँ स्वदेशी मेला लगता था। लार्ड कर्जन वाइसराय के

शासनकाल में बंगाल-बिहार का विभाजन हुआ। स्वदेशी आन्दोलन शुरू हुआ। बम का जमाना आ गया। इसी मैदान में स्वदेशी मेले में बालगंगाधर तिलक, विपिनचन्द्र पाल और लाला लाजपत राय के भाषण हुए थे। हजारों रुपये के विलायती कपड़ों के ढेर को यहाँ आग से जला दिया गया। यहाँ ही स्वदेशी राखीबन्धन हुआ। मुजफ्फरपुर बम-केस के बाद प्रफुल्ल चाकी और खुदीराम बोस जब शहीद हुए, इसी मैदान में निर्भीक स्वदेशी युवकों ने इकट्ठे होकर क्षोभ प्रकट किया। बात-बात पर इसी मैदान में पुलिस की लाठियाँ चलती थीं। उस जमाने में बंगाली युवक इस मैदान को पुण्य और प्रिय भूमि समझते थे। सन् १९०७ ई० में आर्यसमाज कलकत्ता ने इस मैदान का एक अंश खरीद लिया। सन् १९१० ई० में आर्यसमाज के विशाल मन्दिर का यहाँ निर्माण हुआ[१]।"

यद्यपि यह एक तुक की बात है कि जिस भूमि पर आर्यसमाज मन्दिर खड़ा है उसके साथ इतिहास का यह गौरव जुड़ा हुआ है। आर्यसमाज मन्दिर जिस किसी भी भूमि पर बनता, मन्दिर ही होता, किन्तु यह भावी-पीढ़ियों के लिए गौरव की बात है कि जिस स्थान पर आज आर्यसमाज का सत्संग लग रहा है, जिस स्थान पर यज्ञशाला में पवित्र वेदमन्त्रों से आहुतियाँ पड़ रही हैं, वह कोई साधारण स्थान नहीं है। उस स्थान के इतिहास के साथ बंगाल-बिहार के विभाजन के विरोध में लाल-बाल-पाल तीन स्तम्भों के भाषण हुए थे। स्वदेशी मेला और क्रान्तिकारी सभाएँ इस मन्दिर की पवित्र भूमि के इतिहास का पृष्ठभाग बन रही हैं। मन्दिर और धर्मशाला, यज्ञशाला और पुस्तकालय तो हजारों-लाखों जगहों पर बनते ही रहते

१ आर्यसमाज हीरक-जयन्ती अंक पृष्ठ ४७-४८

हैं, किन्तु देशप्रियता और स्वदेशी राखीबन्धन के जिस महिमामय इतिहास का गौरव आर्यसमाज कलकत्ता की भूमि को है, वह कम स्थानों को सुलभ रहा है। इस प्रकार आर्यसमाज मन्दिर जहाँ खड़ा है वहाँ की भूमि भी एक राष्ट्रीय स्मारक के रूप में स्मरणीय है।

आर्यसमाज मन्दिर के लिये भूमि का क्रय

जिस स्थान पर आर्यसमाज कलकत्ता का मन्दिर १६, विधान सरणी में बना हुआ है यह पहले १६, कार्नवालिस स्ट्रीट था और क्रय-पत्र को देखने से यह सूचना मिलती है कि उससे भी पहले यह १७ नं० कार्नवालिस स्ट्रीट था किन्तु जब यह भूमि खरीदी गई थी उस समय में इसका नम्बर १६ कार्नवालिस स्ट्रीट था। इस भूमि को खरीदते समय आर्यसमाज कलकत्ता का एक ट्रस्ट बना था। विक्रीपत्र में आर्यसमाज कलकत्ता के ट्रस्टियों के नाम का हवाला निम्नप्रकार से मिलता है—

(१) राय साहब रलाराम—ये पूर्वी बंगाल राज रेलवे के इन्जीनियर थे।

(२) सेठ जयनारायण (पोद्दार)—इनका पेशा ब्रोकरेज था।

(३) (चौधरी) छाजूराम—ये भी ब्रोकरेज का काम करते थे।

(४) पं० शंकरनाथ—जमींदार।

(५) श्री टेकचन्द्र—व्यवसायी।

(६) श्री देवीबक्श—व्यवसायी।

(७) श्री अनन्तराम—व्यवसायी।

(८) श्री जमुनादास—ब्रोकर।

(९) श्री रामगोपाल—व्यवसायी।

आर्यसमाज कलकत्ता के ये सभी ट्रस्टी थे। भूमि इन सभी के नाम आर्यसमाज कलकत्ता ट्रस्ट के लिए खरीदी गयी थी। बेचने वाले श्री ब्रजेन्द्रनारायण दास और श्री महेन्द्र नारायण दास थे। भूमि का क्षेत्रफल ९ कट्ठा १ छटाँक १२ वर्गफीट है और भूमि का मूल्य

विक्रीपत्र के अनुसार १३,६१८ रु० १२ आ० था। यह विक्रीपत्र १ अगस्त १९०७ ई० को रजिस्टर्ड किया गया था।

मन्दिर का निर्माण : रजत-जयन्ती वर्ष

यह बात इतिहास में कई जगह आ चुकी है कि आर्यसमाज कलकत्ता के मन्दिर का निर्माण सन् १९१० ई० में हुआ। एक बात सहज रूप से ध्यान में आती है कि आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना सन् १८८५ ई० में हुई और इस प्रकार १९१० ई० में आर्यसमाज कलकत्ता की रजत-जयन्ती का वर्ष था। यह हो सकता है कि इतने समर्थ श्रद्धावान्, धनीमानी सेठ-साहूकारों के हृदय में यह टीस उठती रही हो कि आर्यसमाज कलकत्ता का रजत-जयन्ती वर्ष आ गया और अपना मन्दिर न बन सका। सन् १९०७ ई० में क्षेत्रफल और मूल्य के हिसाब से ज़मीन भी सस्ती नहीं, बल्कि काफी महँगी लगती है। यह भूमि मन्दिर-निर्माण के लिए उस समय कार्यकर्ताओं के मन में सम्भवतः बहुत अच्छी और उपयोगी रही होगी। यह स्थान अमहर्स्ट स्ट्रीट स्थित राजा राममोहन राय के मकान से २-४ मिनट के रास्ते के अन्तराल पर है। केशवचन्द्र सेन के स्थान से भी ५-७ मिनट से अधिक की दूरी नहीं है। आदिब्राह्मसमाज के मन्दिर से अधिक से अधिक १० मिनट पैदल की दूरी है। कलकत्ता विश्वविद्यालय, संस्कृत कालेज एवं शिक्षा के अन्य केन्द्रों से भी ५-१० मिनट की ही दूरी है। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर का निवासस्थान जोड़ासाँकू भी लगभग १० मिनट की दूरी पर है। इस प्रकार प्राचीन कलकत्ता में १९ नं० कार्नवालिस स्ट्रीट, हरिसन रोड एवं विवेकानन्द रोड, अमहर्स्ट स्ट्रीट एवं चितपुर रोड, सभी महत्त्वपूर्ण स्थलों के केन्द्र में पड़ता था।

इतनी अच्छी और मध्य कलकत्ता के केन्द्र में भूमि का क्रय और एक विशाल मन्दिर का निर्माण गौरव की वस्तु है। भूमि कितने रुपयों में खरीदी गई थी, यह तो विक्रीपत्र से ज्ञात होता है। यह राशि

१३६१८ रु० १२ आ० दी हुई है। किन्तु मन्दिर कितने में बना, इसका कोई संकेत नहीं है।
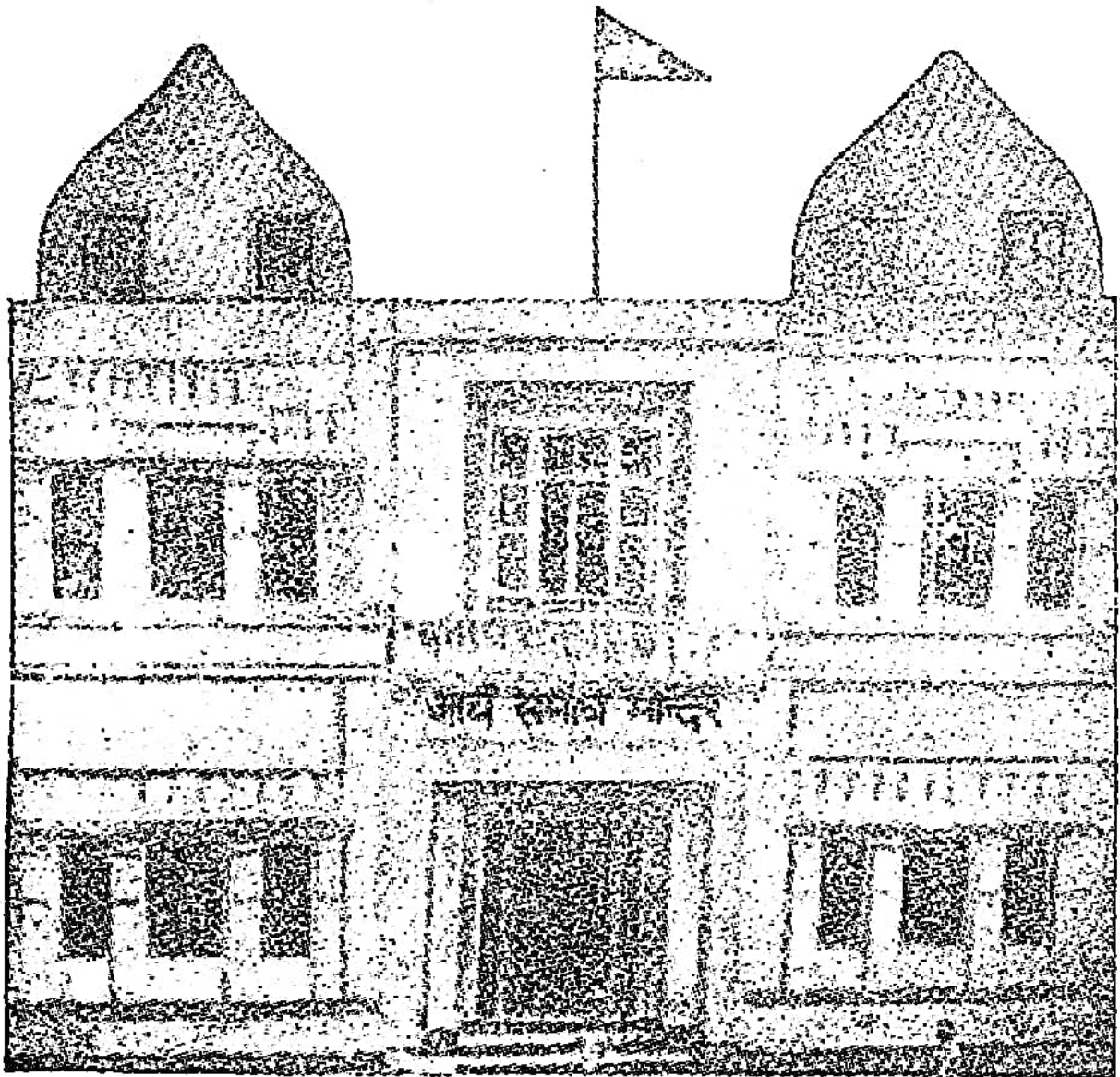
आर्यसमाज कलकत्ता का पुराना मन्दिर

कलकत्ता आर्यसमाज का पूर्वमन्दिर भी विशाल था। जो सभाकक्ष आज विद्यमान है, आरम्भ में भी ऐसा ही था। गैलरी भी ऐसी ही थी। अभिनवीकरण में सामने का अंश जोड़ा गया, जिस पर आज पुस्तकालय और औषधालय हैं। फर्श और छत, रंग-रोशन, भित्ति-चित्र, संगमरमर की शिलाओं पर उत्कीर्ण लेख, ये सब अभिनवीकरण के समय जोड़े गये हैं। किन्तु मन्दिर का विशाल सभाकक्ष, व्यासपीठ वाली वेदी, गैलरी सब पुरानी ही हैं।

यह मन्दिर जिस समय बना है, उस समय अपनी विशालता के लिए मध्य कलकत्ता के इस अंचल में सुविख्यात रहा है। यह विशाल मन्दिर आर्यजगत् में पूर्वाञ्चल में बहुविध गतिविधियों का केन्द्र तो सदा ही बना रहा है। साम्प्रदायिक दंगों के समय विपत्ति-ग्रस्त सैकड़ों व्यक्तियों का आश्रयस्थल बन जाता है। पूर्वाञ्चल में कहीं भी कोई दैवी विपत्ति आ जाती, तो सहायताकार्य का केन्द्र यहीं खोला जाता। आसाम या बंगाल में बाढ़ का प्रकोप हो, या तूफान की विनाशलीला, सहायता का कार्य, यहीं से केन्द्रित होकर सब जगह फैल जाता था। दिल्ली, पंजाब से आनेवाले स्वयंसेवकों और कार्यकर्त्ताओं का आवासस्थल, रिलीफ का कार्यालय, यह मन्दिर जैसे स्वयं नियुक्त स्थल था।

अमर शहीद भगत सिंह और उनके सहयोगी साथी क्रान्तिकारी, स्थानीय बंगाली और प्रान्तीय क्रान्तिकारियों का संगम-स्थल और कार्यस्थल यही पवित्र स्थान रहा है, इसकी झाँकी हम इसी इतिहास में अन्यत्र प्रस्तुत कर रहे हैं[1]।

मध्य कलकत्ता में जब बड़े-बड़े राष्ट्रिय नेताओं की सभाओं का आयोजन होता था तो उस समय इससे अधिक अच्छी विशाल जगह तजबीज करना कठिन था। प्रसिद्ध हिन्दू महासभाई नेता यहाँ अपनी विशाल सभाएँ करते थे। वीरविनायक दामोदर सावरकर डा० मुञ्जे आदि जैसे नेता इस सभाकक्ष में आते थे। श्री जवाहर लाल नेहरू और लोकनायक जयप्रकाश जैसे नेताओं की सभाएँ भी इस सभाकक्ष में होती थीं।

मुस्लिम लीग की सीधी कार्यवाही में सुहरावर्दी की सरकार ने जब कलकत्ता में प्रलय-सा मचा रखा था, उस समय यह मन्दिर शरणार्थी शिविर के रूप में परिवर्तित हो गया था। सैकड़ों व्यक्ति

---

१ द्रष्टव्य पञ्चम अध्याय

अपनी बहू-बेटियों के साथ यहाँ अपने को सुरक्षित समझकर रह रहे थे।

स्वतन्त्रता के पश्चात् राजनीतिक दलों में राष्ट्रहित की अपेक्षा दलगत स्वार्थ, एवं आर्यसमाज की दृष्टि से अवांछनीय राजनीतिकता की बढ़ती देखकर आर्यसमाज कलकत्ता के अधिकारियों ने नियम बना दिया कि आर्यसमाज से भिन्न गतिविधियों के लिए यह मन्दिर नहीं मिल सकेगा।

एक बार जब एक स्थानीय राजनीतिक पार्टी ने ज़बरदस्ती अपनी सभा इसी सभाकक्ष में करना चाहा तो पुराने दीवाने नेता वयोवृद्ध महाशय रघुनन्दन लाल मन्दिर के द्वार की सीढ़ी पर लेट गये और बोले कि सभा करनी ही हो तो मेरे शरीर को कुचलकर मेरी लाश पर से जाना होगा। इस प्रकार अन्य पार्टियों की सभाएँ होना यहाँ बन्द हुआ।

इस भूमि को खरीदने और मन्दिर बनवाने में पर्याप्त धनराशि लगी होगी। यह धन कहाँ से आया, इसका कुछ पता नहीं। दान करने वालों ने इस दान में श्रद्धा को मुख्य रखा, वे अपनी ख्याति को छिपा गये। लोग अपना यश अमर करने के लिए अपने दान के पत्थर लगवा देते हैं। यहाँ अभिनवीकरण के समय के दान-दाताओं के पत्थर तो लगे हैं किन्तु मूलरूप में जिनके उदार दान से यह भव्य अट्टालिका खड़ी हुई उनके नाम का अनुमान कोई कर सकता है, किन्तु निश्चित पता नहीं। लगता है उन दानी महानुभावों के यशःपुष्पों की अमर सुगन्ध सदा आती रहेगी किन्तु किनके यशःपुष्प हैं, यह अतीत के इतिहास के गर्भ में सदा के लिए तिरोहित हो गया है।

एक अवान्तर प्रसङ्ग इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है। यह उन दानियों के यश की धरोहर संकेत रूप में उपलब्ध होती है। श्री सुरेन्द्रनाथजी विद्यालङ्कार कई वर्षों तक आर्यसमाज कलकत्ता में मंत्री रहे

हैं। उनके मंत्रित्व का काल १९३०-३३ ई० के आस-पास रहा है। उनके मंत्रित्वकाल से २०-२२ वर्ष पूर्व १९१० ई० में आर्यसमाज मन्दिर का निर्माण हुआ था। आर्यसमाज कलकत्ता के हीरक-जयन्ती विशेषाङ्क—(दिसम्बर १९६१) में उन्होंने अपने संस्मरणों में एक प्रसङ्ग लिखा है :—

स्व० सेठ छाजूरामजी चौधरी

"यू तो आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना सन् १८८५ ई० में हुई परन्तु वर्तमान मन्दिर का निर्माण सन् १९१० ई० में हुआ। प्रारम्भ में साप्ताहिक अधिवेशन वर्तमान एलबर्ट हॉल के स्थान पर स्वनामधन्य स्व० श्री केशवचन्द्र सेन की पत्नी द्वारा स्थापित पाठशाला के अधिकारियों के सहयोग से एक वट-वृक्ष के नीचे हुआ करते थे, और स्व० पं० शङ्कर-

नाथजी मुख्यतः कार्य का सञ्चालन करते थे। तदुपरान्त सूतापट्टी में आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशन होते रहे। बाबू जगन्नाथजी गुप्त, स्व० टेकचन्दजी टण्डन तथा स्व० बाबू हरगोविन्दजी गुप्त वगैरह के पुरुषार्थ व लगन से कलकत्ता जैसी बड़ी नगरी में आर्यसमाज अधिक लोकप्रिय होने लगा। उन्हीं दिनों स्व० रायबहादुर रलारामजी का कलकत्ते

स्व० सेठ जयनारायणजी पोद्दार

में आगमन हुआ। रायबहादुरजी ने तन-मन-धन से आर्य-समाज के कार्य में निष्कामभाव से सहयोग दिया। उस समय न आर्यसमाज का निजी भवन था, न आर्य-कन्या-विद्यालय का। उन्होंने कुछ दानी उदारचेता व्यक्तियों के सामने भवन-निर्माण की अपील की और उसी मीटिंग में बैठे-बैठे एक लाख रुपये एकत्र हो गये। इनमें से रायबहादुर

के अतिरिक्त स्व० सेठ छाजूरामजी चौधरी, स्व० सेठ जय-नारायणजी पोद्दार, स्व० सेठ रघुमलजी आर्य, स्व० श्री विनय कृष्णजी, स्व० श्री तुलसी दासजी दत्त और पं० शङ्करनाथजी आदि दानियों का विशेष सहयोग था। उसी धनराशि से आर्यकन्या विद्यालय का भवन खरीदा गया तथा आर्य-समाज के मन्दिर की नींव रखी गयी[१]।"

यह किसी इतिहास या रिपोर्ट का अंश नहीं है, यह मात्र स्मृति पर आधारित एक पुराने कार्यकर्त्ता का पुराना संस्मरण है। फिर भी जहाँ कुछ न पता चलता हो, वहाँ इस संस्मरण में दी हुई नामावली ही भावी पीढ़ियों के लिये कृतज्ञता प्रकाश का अवसर प्रदान करती है। काल का अजस्र प्रवाह चलता जायगा और जब भी इस भव्य भवन के निर्माताओं का स्मरण होगा, भावी पीढ़ियाँ कृतज्ञता बोध करेंगी।

आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं ने रजत-जयन्ती वर्ष में इतने सुन्दर मन्दिर का निर्माण कर लिया यह गौरव की बात है। प्रधान सभा-कक्ष में ४००-५०० व्यक्तियों के बैठने की जगह है और इस सभाकक्ष में खुलती हुई एक तल्ले की गैलरी, जो व्यासपीठ की ओर तीन दिशाओं से सम्मुखीन होती है, लगभग ३०० व्यक्तियों के बैठने की जगह है। छत के ऊपर कार्नवालिस स्ट्रीट की ओर पश्चिम की तरफ दो किनारों पर दो कोठरियाँ और उनके ऊपर मन्दिर के आकार के दो गुम्बज बने हुए थे। यह भी एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है कि अमर शहीद भगतसिंह इन्हीं गुम्बजवाली कोठरियों में भेष बदल कर अंग्रेज सरकार की आँखों से छिपकर कुछ दिन रहे थे। जाते समय वे अपनी थाली और लोटा आर्यसमाज के सेवक तुलसीराम को दे गये थे, किन्तु उन्होंने अपना कोई परिचय न दिया था। इतिहास का इतना महत्त्वपूर्ण स्थान अतिथिशाला के निर्माण और मन्दिर के नवीनीकरण के समय

---

१ आर्यसमाज हीरक-जयन्ती विशेषांक पृष्ठ १।

आँखों से ओझल हो गया और इतिहास की अशेष स्मृतियों में विलीन गया।

आर्यसमाज कलकत्ता का पंजीकरण

सन् १८८५ ई० की स्थापना और सन् १९१० ई० के मन्दिर-निर्माण के समय आर्यसमाज कलकत्ता एक ट्रस्ट के रूप में था। सन् १९१९ ई० में ३ दिसम्बर को, सन् १८६० ई० के सोसाइटीज ऐक्ट के अनुसार

स्व विष्णुदास बांसलजी

आर्यसमाज कलकत्ता का पंजीकरण हुआ। पंजीकरण का दस्तावेज समाज में सुरक्षित रखा हुआ है। पंजीकरण के समय पदाधिकारियों और अंतरंग के सदस्यों की सूची निम्न प्रकार दी हुई है:—
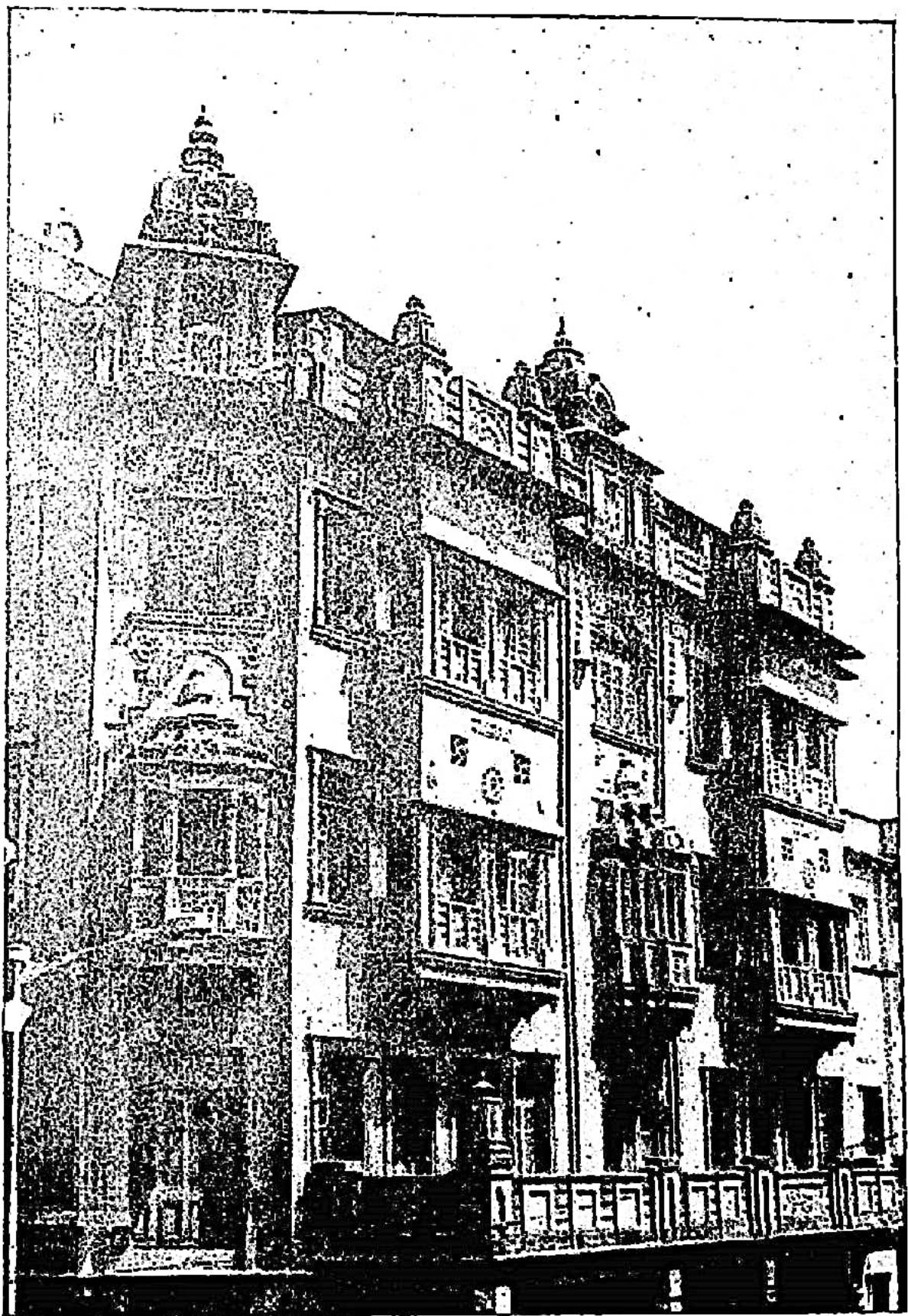
आर्य कन्या महाविद्यालय का रानी बिड़ला भवन
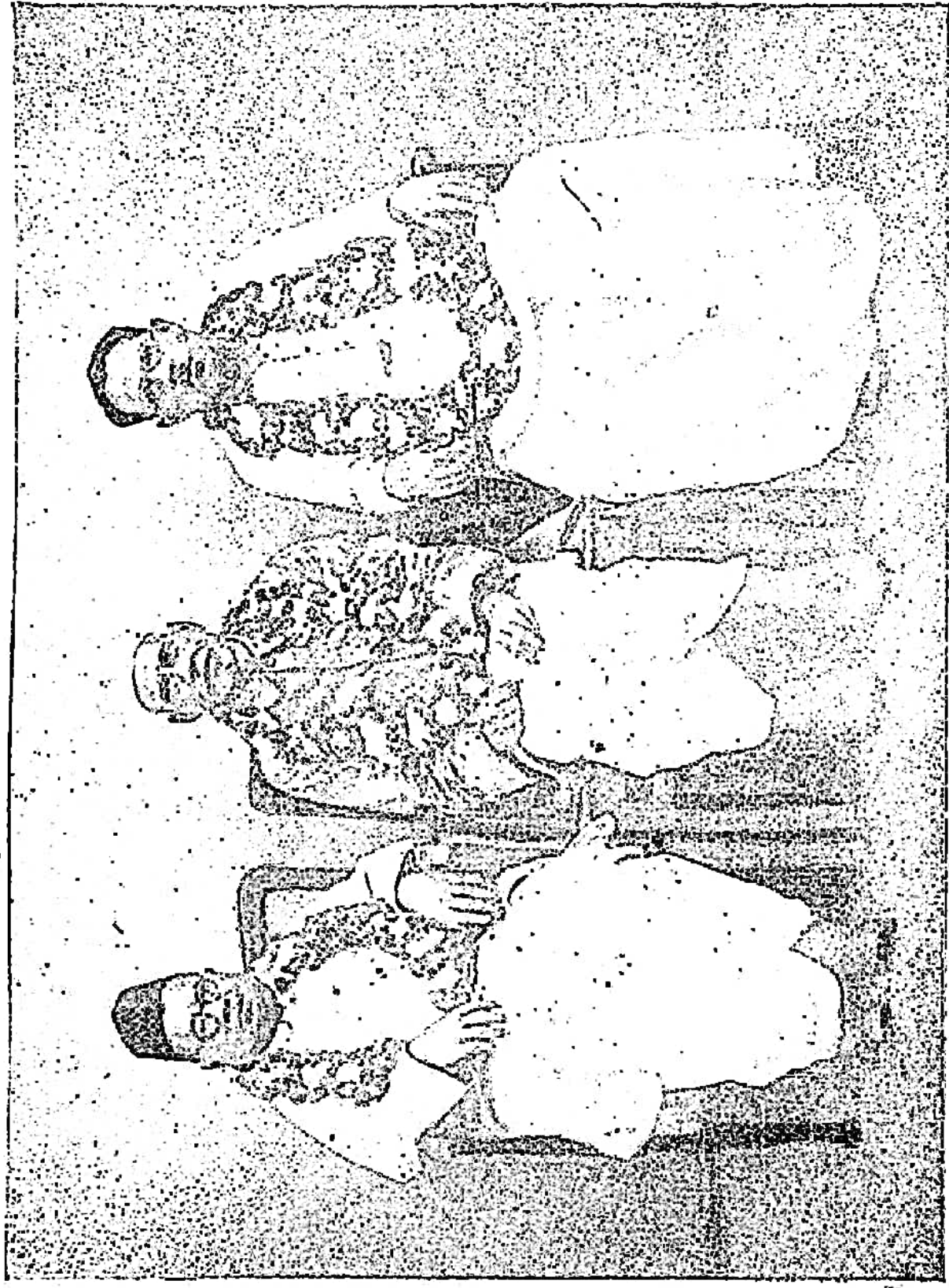
रघुमल आर्य विद्यालय के भूतपूर्व प्रधानाध्यापकत्रय : (बायें से) पण्डित अयोध्या प्रसादजी, श्री जनार्दनजी भट्ट एवं श्री रामनारायण लालजी

(१) राय बहादुर रलारामजी—प्रधान
(२) पं० शंकरनाथजी—उपप्रधान
(३) श्री हरगोविन्द गुप्त—उपप्रधान
(४) श्री विष्णुदास बांसल—मन्त्री
(५) पं०मुसद्दीलाल हकीम—उपमन्त्री
(६) सेठ छाजूराम चौधरी—कोषाध्यक्ष
(७) महाशय धुवालाल—पुस्तकाध्यक्ष
(८) सेठ कालीप्रसाद डालमिया—लेखानिरीक्षक

इन्हींके साथ कार्यकारिणी के सदस्यों की सूची निम्न प्रकार दी हुई है :—

(९) श्री जगन्नाथ प्रसाद
(१०) श्री महाशय गोकुलचन्द भाटिया
(११) श्री महाशय लक्ष्मणदास
(१२) सेठ दीपचन्द पोद्दार
(१३) पं० रामभरोसे शर्मा
(१४) श्री बिशुन स्वरूप
(१५) पं० किशनलाल शर्मा
(१६) महाशय नवरतन नारायण
(१७) महाशय रामकिशन गुप्त
(१८) महाशय भान्जीदेवजी

यहाँ इतिहास की एक कड़ी महत्त्वपूर्ण लगती है कि बिहार-बंगाल प्रतिनिधि सभा की स्थापना सन् १८९९ ई० में हुई है और दोनों प्रान्तों की प्रतिनिधि-सभाएँ सन् १९२६ ई० में अलग-अलग हुई हैं। श्री पं० इन्द्रजी विद्यावाचस्पति ने आर्यसमाज के इतिहास में निम्न-प्रकार से लिखा है :—

"बिहार तथा बंगाल की संयुक्त आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना सन् १८९९ ई० में दानापुर के उत्सव के अवसर पर हुई। पहले इसका कार्यालय पटना में था, फिर रांची गया, अन्त में कलकत्ता में स्थिर हो गया। जब तक बिहार प्रान्त

अलग नहीं बना तब तक दोनों प्रान्तों की प्रतिनिधि सभाओं का केन्द्र कलकत्ता में ही रहा। बिहार की अलग प्रतिनिधि-सभा सन् १९२६ ई० में बनी। तब तक दोनों प्रान्तों का प्रबन्ध कलकत्ता केन्द्र से ही होता रहा।"[१]

यह केन्द्र आर्यसमाज कलकत्ता ही था। सार्वदेशिक सभा ३१ अगस्त सन् १९०९ ई० को बनी थी। उसमें बिहार-बंगाल से संयुक्त रूप से ४ प्रतिनिधि गये थे।

आर्यसमाज कलकत्ता के पंजीकरण के समय स्वाभाविक रूप से समाज का कार्यालय १९, कार्नवालिस स्ट्रीट था। संसार का कल्याण करना, वैदिक धर्म का प्रचार करना, साहित्य-प्रकाशन करना, धर्मप्रचार की व्यवस्था करना और वे सब काम करने जिनसे वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में सुविधा-सहूलियत मिले। मेमोरैण्डम आफ एसोशिएशन में सम्पत्ति खरीदना-बेंचना, समाज की भूमि पर भवन बनवाना, परिवर्तन करना इत्यादि सम्मिलित है। इस पंजीकृत सोसाइटी की समाप्ति पर इसकी शेष सम्पत्ति इसके सदस्यों को न मिलकर आर्यसमाज की सार्वदेशिक प्रतिनिधि सभा को मिलेगी।

इस प्रकार आर्यसमाज कलकत्ता का रजिस्ट्रेशन सन् १९१७ ई० में ३ दिसम्बर को आर्यसमाज के नियम और उपनियमों के साथ पंजीकृत हो गया। इस मेमोरैण्डम में समाज की आय का दशमांश समाज की सुरक्षित निधि में रखने की व्यवस्था है। यह भी मेमोरैण्डम में उल्लिखित है कि समाज के सदस्यों से यह आशा की जाती है कि वे संस्कृत और आर्यभाषा हिन्दी सीखेंगे। इस मेमोरैण्डम में सुख-दुःख में एक दूसरे को सहयोग-सहायता करने का प्रावधान है। यह भी प्रावधान है कि यदि कोई आर्य असहाय हो या किसी आर्य की

---

१. पं० इन्द्रविद्यावाचस्पति कृत—आर्यसमाज का इतिहास—प्रथम भाग, पृष्ठ २८३।

मृत्यु के कारण उसकी विधवा पत्नी और बच्चे सहायता की अपेक्षा रखते हों, तो उनकी सब प्रकार से सहायता की जाय।

यह इतिहासप्रसिद्ध आर्यसमाज कलकत्ता १८८५ ई० में स्थापित हुआ। स्थापन तिथि का कहीं कोई विवरण अभी तक हमें दृष्टिगोचर नहीं हुआ। १९०७ में भूमिक्रय और १९१० में भवन निर्माण हुआ। इस प्रकार रजत-जयन्ती (२५ वां वार्षिकोत्सव) महोत्सव मनाते समय कार्यकर्त्ताओं के मन में यह सन्तोष रहा होगा कि रजत-जयन्ती अपने स्थान आर्यसमाज मन्दिर की व्यवस्था में मनायी गयी। साथ ही ऐसा विशाल मन्दिर रजत-जयन्ती का चिरन्तन स्मारक भी बन गया।

आर्यसमाज कलकत्ता आरम्भ में ट्रस्ट के रूप था। पश्चात् १९१७ ई० में सोसाइटीज़ ऐक्ट के तहत इसका पञ्जीकरण करा लिया गया।

चतुर्थ अध्याय

शिक्षा-प्रचार

स्वामी दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना की और उसके १० नियम बनाये। उनमें अष्टम नियम है—"अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये"। नवम नियम है—"प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये"। तृतीय नियम है—"वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।"

इन सब नियमों को एक साथ पढ़ने से विद्या का प्रचार, सबकी उन्नति में अपनी उन्नति का बोध और वेद का प्रचार आर्यसमाज के नियमों में सम्मिलित है। इसके लिये प्रत्येक आर्यसमाज के सदस्य को प्रयासशील रहना चाहिये। शिक्षा के सम्बन्ध में आर्यसमाज ने जो प्रारम्भिक प्रयास किये, वे पर्याप्त प्रशंसनीय रहे। सन् १८७५ ई० में स्वामी दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना की थी और सन् १८८३ ई० में उनका देहान्त हो गया। अपने जीवनकाल में स्वामीजी ने कई संस्कृत विद्यालय इस उद्देश्य से खोले थे कि उनके माध्यम से संस्कृत भाषा और वेद-विद्या का प्रचार होगा। स्वामी दयानन्द की दृष्टि केवल परम्परागत पंडितों पर ही नहीं थी, वे संस्कृत भाषा और वेदों को जनसाधरण तक पहुँचाना चाहते थे। यह हिन्दी भाषा के इतिहास

में बड़े गौरव की बात है कि संस्कृत व्याकरण पर स्वामी दयानन्द ने "वेदांग प्रकाश" नामक विशाल ग्रन्थ पाणिनीय सूत्रों के हवाले से हिन्दी में लिखा। यह अपने में निराला कार्य तो था ही, साथ ही जो पाणिनीय व्याकरण अबतक पंडितों का एकाधिकार समझा जाता था, अब वह जनसाधारण के सम्पर्क में आ गया। इसी प्रकार वेदों के प्रचार के लिये भी स्वामी दयानन्द ने अद्भुत कार्य किया और अपने वेदभाष्य को संस्कृत तथा हिन्दी दोनों में प्रस्तुत किया। इन कार्यों को देखने पर यह बात आसानी से समझ में आ जाती है कि स्वामी दयानन्द वेद और संस्कृत को जनसाधारण तक पहुँचाना चाहते थे।

परम्परागत रूप से संस्कृत भाषा सामान्य रूप में और वेद का पठन-पाठन विशेषरूप में पंडितों के एकाधिकार के विषय बन गये थे। स्वामी दयानन्द ने इन्हें जनसाधारण के लिये सुलभ कराया। पौराणिक विद्वान् तो स्त्री एवं शूद्रों को विद्या पढ़ाने और वेद पढ़ाने के सर्वथा विरोध में थे। यह स्वामी दयानन्द का अदम्य साहस था कि सम्पूर्ण पंडित-मण्डल के विरोध को सहते हुए उन्होंने वेदों को सबके लिये पठनीय प्रमाणित किया और साथ ही उस दिशा में हिन्दी भाषा के माध्यम से प्रयास भी किया।

स्वामी दयानन्द ने अपने जीवनकाल में कई संस्कृत और वेद के विद्यालय आरम्भ किये थे। वे कलकत्ता में भी एक वेद विद्यालय खोलना चाहते थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर को प्रेरणा भी दी थी और यह स्मरणीय है कि शान्ति-निकेतन का ब्रह्मचर्य आश्रम और वहाँ की जीवनचर्या बहुत दूर तक इन विचारों से प्रभावित थी। फिर भी यह तो इतिहास की सच्चाई है कि कलकत्ता में न कोई वेद विद्यालय खुला न स्वामी दयानन्द की दृष्टि में आर्यपद्धति पर कोई संस्कृत विद्यालय ही खुल सका। हाँ, स्वामी दयानन्द के आगमन से पूर्व ही सरकारी व्यवस्था से प्रचलित पौराणिक पद्धति पर कलकत्ता

में संस्कृत कालेज चल रहा था। स्वामी दयानन्द ने यहाँ के पंडितों, विद्वानों, नेताओं से सुस्पष्ट कह दिया था कि ऐसे संस्कृत विद्यालय का कुछ विशेष महत्त्व नहीं है जिसमें न ऋषिकृत ग्रन्थ पढ़ाये जाते हैं और न वेद का ही पठन-पाठन होता है। स्वाभाविक है कि संस्कृत कालेज के प्रिन्सिपल इससे क्षुब्ध हुए थे, और क्या पता स्वामी दयानन्द के जाने के पश्चात् स्वामी दयानन्द के विरोध में कलकत्ता विश्वविद्यालय के दरभंगा हाल में जो पंडित-सभा हुई थी, उसकी जड़ में इस क्षोभ का भी कुछ हाथ रहा हो।

शिक्षा के सम्बन्ध में स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ-प्रकाश में शिक्षा को सबके लिये अनिवार्य, निःशुल्क और राज एवं समाज का दायित्व माना है। उनके निम्न उद्धरण बड़े महत्त्व के हैं—

> इसमें (शिक्षा में) राज-नियम और जाति-नियम होना चाहिये कि ५वें अथवा ८वें वर्ष के आगे कोई अपने लड़कों-लड़कियों को घर में न रख सके। पाठशाला में अवश्य भेज देवें। जो न भेजे वह दण्डनीय हो।
>
> सब को तुल्य वस्त्र, खानपान, आसन दिये जायँ, चाहे वह राजकुमार व राजकुमारी हो, चाहे दरिद्र के सन्तान हो। सबको तपस्वी होना चाहिये"।[१]

शिक्षा को आज से सौ वर्ष पूर्व सब के लिए अनिवार्य, विशेष रूप से लड़कियों और शूद्रों के लिए भी शिक्षा का अनिवार्य करना अपने में अद्भुत क्रान्तिकारी प्रयास था। सबको अवसर की समानता देना और शिक्षा का दायित्व समाज और राज के जिम्मे लगाना भी उस युग में अविश्वसनीय क्रान्तिकारी विचार थे। स्वामी दयानन्द को जीवन थोड़ा मिला और वह लिखने, बोलने, शास्त्रार्थ करने आदि में

---

१. सत्यार्थ-प्रकाश तृतीय समुल्लास।

अधिक कट गया। फिर भी क्रान्ति की दृष्टि से इन विचारों का अपनी जगह पर महत्त्व कम नहीं होता।

सन् १८८३ ई० में दीपावली के दिन जब स्वामी दयानन्द का देहावसान हो गया तो स्वामी दयानन्द के भक्तों के मन में उनकी स्मृति को चिरस्थायी करने के लिए शिक्षालय खोलने की बात आयी। तभी से पंजाब के डी० ए० वी० स्कूल और कालेज, और धीरे-धीरे सारे देश में आर्यसमाज ने स्कूल और कालेज, कन्या पाठशाला, गुरुकुल, कन्या गुरुकुल इत्यादि का बड़ा व्यापक क्षेत्र बना दिया। कम से कम कन्याओं और शूद्रों को शिक्षा देने के क्षेत्र में तो आर्य-समाज का प्रयास प्रथम और अद्वितीय रहा है।

आर्य कन्या महाविद्यालय

कलकत्ता इस विचारधारा से कैसे अछूता रह सकता था! यहाँ के आर्यसमाजी कार्यकर्ताओं के हृदय में शिक्षा-प्रचार की भावना बड़ी बलवती रही। उस समय कलकत्ता में ईसाई मिशन के स्कूल थे, किन्तु जिस हिन्दू समाज में १०-१२ वर्ष की लड़कियों का विवाह अनिवार्य समझा जाता था वहाँ कन्याओं को पढ़ाने की बात उन्हें सीधा ही ख्रीस्तान बनाने जैसी लगती थी। लड़कियों को शिक्षा देने की बात सोच ही कौन सकता था? आर्यसमाज के अधिकारियों ने आर्य कन्या विद्यालय सन् १९०२ ई० में नाईटोला में खोला। स्वाभाविक था, लोग हिचकिचाते रहे और विद्यालय चलाना, उसके लिए अध्यापिकाओं की व्यवस्था करना, इत्यादि बहुत कठिन कार्य थे। फिर भी आर्यसमाज के कार्यकर्ता अपनी धुन के इतने पक्के थे कि उन्होंने आर्य कन्या महाविद्यालय चालू ही कर दिया।

आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना १८८५ ई० में हुई थी। सन् १९१० ई० में इसका रजत-जयन्ती वर्ष था। इन कुछेक वर्षों की

गतिविधि देखने पर ऐसा लगता है कि आर्यसमाजी कार्यकर्ता, सेठ-साहूकार, दान-दाता बहुमुखी प्रयास चला रहे थे। सन् १९०७ ई० में आर्यसमाज के लिए भूमि ली गयी। सन् १९१० ई० में आर्यसमाज का मन्दिर बना। उसीमें एक कड़ी यह भी है कि सन् १९०९ ई० में कन्या विद्यालय का भवन खरीदा गया। आर्यसमाज के पुराने कार्यकर्त्ता और कई पीढ़ियों से आर्यसमाज की सेवा में समर्पित पोद्दार परिवार के अन्यतम आर्यसमाज के सेवक सेठ श्री किशनलाल पोद्दार की सूचना के अनुसार सन् १९०९ ई० में कन्या विद्यालय का भवन बनाने के निमित्त एक सभा हुई थी। उस सभा में निम्न रूप से दानी सज्जनों ने दान की घोषणा की थी—

(१) सेठ जुगलकिशोरजी बिड़ला : रु० २५,०००)
(२) श्री सेठ छाजूरामजी चौधरी : रु० २५,०००)
(पीछे इन्होंने इसे ५०,००० रु० कर दिया था)
(३) श्री सेठ जयनारायणजी पोद्दार : रु० २५,०००)
(४) श्री तुलसीदासजी दत्त : रु० २५,०००)

सेठ श्री किशनलालजी पोद्दार ने बताया था कि विद्यालय की लड़कियों ने एक ऐसा गीत प्रस्तुत किया था जिससे सेठ श्री छाजूराम जी का हृदय पिघल गया और घर जाकर उन्होंने २५,००० रुपये की राशि को ५०,००० रुपया कर दिया।

सेठ श्री जुगलकिशोरजी बिड़ला ने कन्या विद्यालय के भवन-निर्माण में पूर्व उल्लिखित राशि के अतिरिक्त ७५,००० रुपया और देकर रानी बिड़ला की स्मृति में २० नं० कार्नवालिस स्ट्रीट का प्रसिद्ध आर्य-कन्या महाविद्यालय भवन बनवाया। कन्या महाविद्यालय के पृष्ठभाग में जो भवन बना है उसके निर्माण में श्री गुरु प्रतापजी पोद्दार ने सेठ रघुमल चैरिटी ट्रस्ट से ७५,००० रुपया दिलवाने का प्रसंशनीय कार्य किया था। श्री गुरु प्रतापजी पोद्दार रघुमल चैरिटी ट्रस्ट के ट्रस्टी थे

और उनके प्रयत्न से ही इस राशि का मिलना सम्भव हो सका था। मकान का स्वामी ट्रस्ट है। ट्रस्ट ने इस भवन में विद्यालय चलाया।

सेठ श्री जुगलकिशोरजी बिड़ला

आर्यमहिला-शिक्षामण्डल कलकत्ता

कन्या विद्यालय की उन्नति के लिए साथ ही महिलाओं में बहुविध शिक्षा प्रचार करने की दृष्टि से २४ सितम्बर सन् १९३५ ई० को आर्यमहिला-शिक्षामण्डल कलकत्ता के नाम से एक ट्रस्ट की रजिस्ट्री करायी गयी। यह आर्य महिला शिक्षा मण्डल इण्डियन सोसाइटीज़ ऐक्ट १८६० के अनुच्छेद २१ के अनुसार रजिस्ट्री कराया गया। इस मण्डल ट्रस्ट का मुख्य कार्यालय २० नं० कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता में ही रखा गया। यही २० नं० कार्नवालिस स्ट्रीट आर्य कन्या विद्यालय के भवन का भी नम्बर है। कन्या विद्यालय की

प्रबन्धक समिति ने १६ जून सन् १९३५ ई० को इस तरह का निर्णय लिया था। इस ट्रस्ट का मुख्य उद्देश्य कन्या विद्यालय को अच्छी तरह से संचालित करना था। यह उल्लेखनीय बात है कि यह आर्य महिला शिक्षा मण्डल आर्य कन्या विद्यालय २० नं० कार्नवालिस स्ट्रीट की व्यवस्था के लिए तो बनाया ही गया, साथ ही इसके उद्देश्यों में भवानीपुर आर्य कन्या विद्यालय, ३१ नं० चक्रबेड़िया रोड, दक्षिण कलकत्ता, की भी व्यवस्था और कन्याओं के अन्य प्राइमरी स्कूल खोलने की बात भी सम्मिलित थी।

जिन व्यक्तियों ने मण्डल का निर्माण किया था उनका नाम और पता ट्रस्ट डीड में निम्न प्रकार दिया हुआ है—

(1) Sir Chhajuram Ji Chowdhary, K. T., C. I. E., Banker & Merchant, 21, Belvedere Road, Calcutta.

(2) Rai Ralaram Bahadur, C. I. E., I. S. O., Retd. Chief Engineer, E. B. Railway, Campbell Street, Karanchi.

(3) Seth Jugal Kishor Ji Birla, Banker & Merchant, No. 8, Royal Exchange Place, Calcutta.

(4) Syt. Nagarmal Ji Modi, Banker & Merchant, Ranchi.

(5) Syt. Tulsiram Ji Dutt, Banker & Jewellers, 65, Alipur Road, Calcutta.

(6) Syt. Deepchand Ji Paddar, Banker & Merchant, 14B, Chittaranjan Avenue, Calcutta.

(7) Lala Hansraj Ji Gupta, M.A. B. L, Chowri Bazar, Delhi.

(8) Syt. Hargovind Ji Gupta, Broker & Merchant, 22, Ramtanu Bose Lane, Calcutta.

ये ट्रस्टी ट्रस्ट के आजीवन सदस्य होंगे। आर्यसमाज कलकत्ता के मन्त्री और प्रधान पदेन मण्डल के सदस्य होंगे। मण्डल के ७ सदस्य आर्यसमाज कलकत्ता द्वारा निर्वाचित होंगे और इनका कार्यकाल ट्रस्ट डीड के अनुसार ३ वर्षों का है। इस प्रकार ६ सदस्य आर्यसमाज

कलकत्ता द्वारा मण्डल में भेजे जायेंगे। जब मण्डल का गठन हुआ था उस समय इन ६ सदस्यों की सूची निम्न प्रकार है—

(१) श्री विष्णुदासजी बांसल, २५, लैंसडाउन रोड, कलकत्ता।

(२) पं० सुरेन्द्रनाथजी विद्यालंकार, ५/१, किण्डरलाइन रोड, कलकत्ता।

(३) श्रीमती कौशल्या देवी (हिन्दी आनर्स), सहायक प्रधानाध्यापिका, आर्य कन्या विद्यालय, भवानीपुर, ५/१, किण्डरलाइन लेन, कलकत्ता।

(४) पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति, आर्यसमाज, १६, कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता।

(५) श्रीमती प्रभावती देवी, धर्म शिक्षिका, आर्य कन्या विद्यालय, २०, कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता।

(६) श्रीयुत् किशनलालजी पोद्दार, १४बी०, चित्तरंजन एवेन्यू, कलकत्ता।

(७) श्रीयुत् नित्यानन्दजी, ८३, अपर चितपुर रोड, कलकत्ता।

(८) श्रीयुत् रघुनन्दनलालजी (क्रते प्रधान आर्यसमाज कलकत्ता)।

(९) श्रीयुत् गंगाप्रसादजी भौतिका, एम० ए० बी० एल०।

इस ट्रस्ट की प्रारम्भिक कार्यकारिणी समिति (Managing Body) के अधिकारी निम्न प्रकार थे—

(१) सर छाजूरामजी चौधरी — प्रधान
(२) श्रीयुत् हरगोविन्दजी गुप्त — मन्त्री
(३) सेठ दीपचन्दजी पोद्दार — कोषाध्यक्ष
(४) श्रीयुत् रामकिशनजी गुप्त — प्रबन्धक

इस मण्डल की संचालक समिति (Governing Body) के अधिकारी निम्न प्रकार थे—

(१) सेठ दीपचन्दजी पोद्दार — प्रधान
(२) श्री विष्णुदासजी बांसल — मन्त्री
(३) सेठ किशनलालजी पोद्दार — कोषाध्यक्ष

जिस समय ट्रस्ट का निर्माण हुआ था, इसकी चल-अचल सम्पत्ति का मूल्यांकन रु० १,६१,८२४) किया गया था।

आज वर्तमान में इस मण्डल के प्रधान श्री किशनलालजी पोद्दार हैं और मन्त्री श्री रूलियारामजी गुप्त हैं। मण्डल के सदस्य निम्न-प्रकार हैं—

श्री महेन्द्रकुमार चौधरी	श्री देवीप्रसाद मस्करा
श्री लक्ष्मीनिवास बिड़ला	श्री सीताराम आर्य
श्री किशनलाल पोद्दार	श्री पूनमचन्द आर्य

श्री रूलियाराम गुप्त, मन्त्री

इन संगठनों को, मण्डल और ट्रस्ट इत्यादि को देखने से यह सहज ही समझ में आ जाता है कि आर्यसमाज कलकत्ता के अधिकारी और कार्यकर्त्ता लड़कियों की शिक्षा को पर्याप्त महत्त्व दे रहे थे। कलकत्ता शिक्षा का केन्द्र है। यहाँ स्कूल और कॉलेज बहुत बड़ी संख्या में हैं। किन्तु एक विशेषता सब जगह दिखाई पड़ती है कि जिन स्कूलों की व्यवस्था बंगला-भाषियों के हाथ में है उन स्कूलों में पढ़ाई और परीक्षा का माध्यम बंगला ही है। इसी प्रकार जिन स्कूलों की प्रबन्ध-व्यवस्था हिन्दी-भाषियों के हाथ में है उन स्कूलों में शिक्षा और परीक्षा का माध्यम हिन्दी है। यह भी ठीक है कि कहीं-कहीं बंगला भाषा-भाषियों की व्यवस्था में अंग्रेजी माध्यम है और कहीं-कहीं हिन्दी भाषियों की व्यवस्था में भी अंग्रेजी भाषा माध्यम है। किन्तु ऐसा बहुत कम है कि हिन्दी-भाषा-भाषी बंगला भाषा माध्यम से पढ़ा रहे हों या बंगला-भाषा-भाषी हिन्दी माध्यम से पढ़ा रहे हों। इस दृष्टि से आर्यसमाज कलकत्ता द्वारा संचालित और इसकी प्रबन्ध-व्यवस्था में चलने वाला आर्य कन्या महाविद्यालय हिन्दी और बंगला दोनों माध्यमों से शिक्षा और परीक्षा की व्यवस्था बड़ी सफलता से करता चला आ रहा है। कन्या विद्यालय की व्यवस्था प्रधान रूप से

हिन्दीभाषा-भाषियों के हाथ में रही है, किन्तु एक महत्त्वपूर्ण निर्णय प्रबंधक समिति ने यह भी लिया था कि बंगभाषी कन्याओं से शुल्क कम लिया जाता था, हिन्दी-भाषी-छात्राओं से अधिक लिया जाता था। सम्भवतः यह व्यवस्था बंगभाषियों को कन्या विद्यालय और आर्यसमाज की ओर आकृष्ट करने के उद्देश्य से रही हो। आज तो उच्चतर माध्यमिक

श्री किशनलालजी पोद्दार

तक की सम्पूर्ण शिक्षा पं० बंगाल में निःशुल्क है, अतः विशेष रियायत की बात नहीं रह गयी है।

कन्या विद्यालय १९०२ ई० में नाईटोला में स्थापित हुआ था। १९०८-९ ई० में इसके लिए यहीं २० नं० कार्नवालिस स्ट्रीट में एक पुराना भवन खरीद लिया गया था और १९३७ ई० तक आर्य कन्या विद्यालय का रानी बिड़ला भवन, जो आज कन्या विद्यालय का प्रधान भवन है, श्री युगल किशोरजी बिड़ला के दान और सहयोग से बन कर तैयार हो गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय कलकत्ता में अव्यवस्था फैलना, शिक्षण-संस्थाओं का बन्द होना, बहुत सारे लोगों का कलकत्ता छोड़ कर भागना साधारण-सी बात थी। युद्ध के पश्चात् आर्य कन्या विद्यालय को हाई स्कूल के रूप में १९४८ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय से मान्यता प्राप्त हुई। यह इतिहास का पक्ष है कि अभी तक हाई स्कूल की परीक्षाएँ कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा ली जाती थीं और अभी पश्चिम बंगाल माध्यमिक शिक्षा पर्षत् का निर्माण नहीं हुआ था।

कन्या विद्यालय धीमे-धीमे प्रगति के पथ पर अग्रसर होता रहा। १९५९ ई० में बोर्ड ने एकादश श्रेणी तक की उच्चतर माध्यमिक शिक्षा चालू की तो कन्या विद्यालय ने Humanities Course के लिये १९५९ ई० में उच्चतर माध्यमिक की मान्यता प्राप्त की। अपेक्षित प्रयोगशाला इत्यादि का निर्माण कराकर १९६२ ई० में विज्ञान विभाग की मान्यता प्राप्त की। १९७६ ई० में जब उच्चतर माध्यमिक बोर्ड ने उच्चतर माध्यमिक शिक्षा को १०+२ की व्यवस्था के अन्तर्गत द्वादश श्रेणी तक किया तो विद्यालय ने १०+२ की व्यवस्था के अन्तर्गत द्वादश श्रेणी तक की मान्यता प्राप्त की। कन्या विद्यालय में कला, विज्ञान एवं वाणिज्य तीनों विभागों की शिक्षा हिन्दी और बंगला दोनों भाषाओं के माध्यम से बहुत अच्छी तरह से दी जा रही है।

१९७७ ई० में कन्या विद्यालय ने अपनी हीरक-जयन्ती बड़े उत्साह से मनायी थी जिसमें विद्यालय की महत्ता को स्वीकार करते हुए मुख्यमंत्री श्री ज्योति बसु ने अध्यक्ष का पद ग्रहण किया था और तत्कालीन राज्यपाल श्री टी. एन. सिंह ने प्रधान अतिथि का पद सुशोभित किया था।

कन्या विद्यालय में इस लम्बी अवधि में कई प्रधानाध्यापिकाएँ नियुक्त होती रहीं। उनकी जो सूची उपलब्ध हो सकी है, वह निम्न प्रकार है :—

(१) श्रीमती गुरुदेवीजी
(२) श्रीमती शकुन्तलाजी सक्सेना
(३) कुमारी सुशीला सक्सेना
(४) श्रीमती प्रतिमा मुखर्जी
(५) श्रीमती प्राणकुमारी मेहरा
(६) श्रीमती शकुन्तला कंकन मित्रा
(७) श्रीमती प्रतिमा मुखर्जी
(८) श्रीमती राजकुमार वाधवा
(९) श्रीमती कुलदीप कौर
(१०) श्रीमती कमल सूद

इस समय कन्या विद्यालय की प्रधानाध्यापिका श्रीमती सरोजिनी शुक्ल हैं।

कन्या विद्यालय की वर्तमान प्रबन्धक समिति निम्न प्रकार है :—

(१) श्री किशनलाल पोद्दार, अध्यक्ष
(२) श्री मिहिरचन्द धीमान, उपाध्यक्ष (दिवंगत)
(३) श्री सुखदेव शर्मा, मंत्री
(४) श्रीमती सरोजिनी शुक्ल, पदेन संयुक्त मंत्री

सदस्यगण :—

(५) श्री सीताराम आर्य
(६) श्री पूनमचन्द आर्य
(७) प्रो० उमाकान्त उपाध्याय
(८) श्री रामस्वरूप खन्ना
(९) श्री उपेन्द्रनाथ राय (सरकार द्वारा मनोनीत)
(१०) श्रीमती रेखा सेन } शिक्षक प्रतिनिधि
(११) श्रीमती प्रभाती बनर्जी }

रघुमल आर्य विद्यालय

इस विद्यालय का आरम्भिक नाम आर्य विद्यालय कलकत्ता है। इस विद्यालय की स्थापना सन् १९३६ ई० में हुई थी। जिस समय इस विद्यालय की स्थापना हुई उस समय कलकत्ता में हिन्दी भाषा-भाषी कई स्कूल थे। श्री विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय, श्री माहेश्वरी विद्यालय, श्री डीडू माहेश्वरी पंचायत विद्यालय, श्री सनातन धर्म विद्यालय और सारस्वत खत्री विद्यालय उस समय हिन्दी भाषा-भाषी प्रसिद्ध विद्यालय थे। ये सभी विद्यालय सनातनधर्मी पौराणिक आस्थावालों के प्रबन्ध से चलते थे। एक ओर शिक्षा के प्रति यह आस्था और कर्तव्य का भाव जहाँ आदरणीय है वहाँ यह अत्यन्त चिन्तनीय था कि इन विद्यालयों में जाति-वर्ण निर्विशेष प्रवेश नहीं लिया जाता था। विशेष रूप से अछूत कहे जाने वाले वर्ग के बच्चों के लिए कोई विद्यालय न था। आर्य समाज के नेता-कार्यकर्ताओं ने कन्याओं की शिक्षा की महत्ता का अनुभव करके कन्या विद्यालय की स्थापना तो सन् १९०२ ई० में ही कर दी थी। बालकों के लिए विद्यालयों का अभाव न था। फिर भी यह न्यूनता तो अवश्य ही खटकती थी कि हमारे धर्मप्राण-धर्मभीरु सेठ-साहूकार दानी-मानी परिवारों के बच्चे ईसाइयों के विद्यालय में गर्व के साथ पढ़ते थे। उस समय हमारी धार्मिक कट्टरता शिथिल हो जाती थी। सनातन धर्म में छुआछूत पर आस्था रखने वाले लोग भी अपने बच्चों को सेंट जेवियर्स और स्कॉटिश चर्च या ऐसे ही अन्य दूसरे विद्यालयों में पढ़ाने में सन्तोष और गर्व का अनुभव करते थे। उस समय न तो स्पर्शदोष से धर्मभ्रष्ट होने का डर ही सामने आता था और न कोई छुआछूत का प्रश्न ही खड़ा होता था। इन ईसाई विद्यालयों और महाविद्यालयों में ईसाइयों की व्यवस्था तो थी ही, साथ ही ईसाई, मुसलमान, अछूत सभी तरह के विद्यार्थी यहाँ बिना किसी भेदभाव के पढ़ते थे। धार्मिक कट्टरता और अन्धविश्वास की कैसी उत्कट पराकाष्ठा थी कि इन्हीं

अपने पैरों पर खड़ा कर दिया। आर्य विद्यालय विशाल कलकत्ता नगरी में एक नामी विद्यालय के रूप में प्रतिष्ठित हो गया।
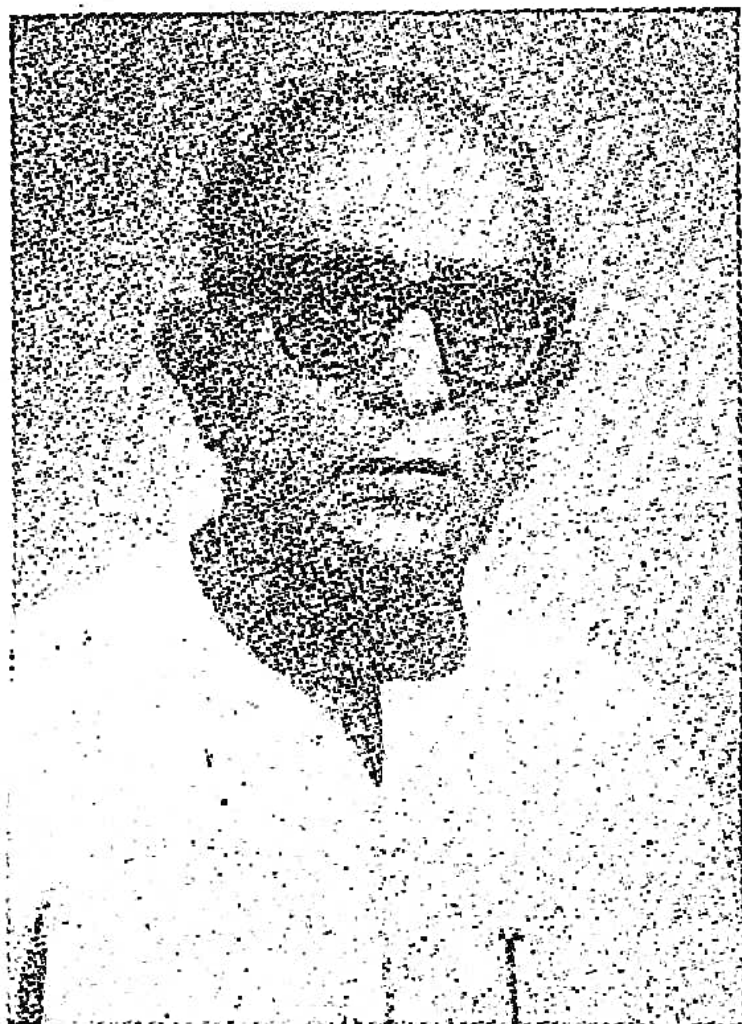
श्री कृष्णलालजी खट्टर

आर्य विद्यालय आर्यसमाज कलकत्ता द्वारा स्थापित है और इसे पश्चिम बंग सरकार द्वारा विशेष संविधान प्राप्त है, किन्तु कुछ कानूनी दाँव-पेंच के कारण इतने अच्छे विद्यालय की वर्तमान स्थिति न उत्साहजनक है न अधिक आशाजनक। फिर भी कलकत्ता जैसे नगर में आर्यसमाज की प्रतिष्ठा के अनुरूप विद्यालय अपने निजी भवन में चल रहा है। विद्यालय अपने अंचल में पर्याप्त जनप्रिय है। विद्यालय का प्राइमरी विभाग प्रातःकाल अपने विद्यालय भवन में लगता है और दिन में ७४-बी, आमहर्स्ट रो, कलकत्ता-९ में लगता है।

धर्मशील अछूतों से स्पर्शदोष माननेवालों के बच्चे कालेजों में इन बातों का कोई विचार नहीं करते थे। वहाँ तो अछूत क्या, ईसाई-मुसलमानों के सम्पर्कदोष का भी कोई विचार न था। पर वहीं धर्म-भीरु व्यवस्थापक अपने विद्यालय में अपने ही भाइयों को अछूत, त्याज्य और शूद्र कहकर प्रवेश लेने से इन्कार कर देते थे।

आर्यसमाज वर्णव्यवस्था गुण-कर्म-स्वभाव से मानता है, जन्म से नहीं। अतः आर्यसमाजियों की निगाह में छूत-अछूत का मसला केवल इस रूप में था कि अछूतों को कैसे बृहद् हिन्दू समुदाय का अंग बना लिया जाय। उधर इन्हीं कारणों से बहुत से पढ़े-लिखे उन्नति-कामी अछूत वर्ग के लोग ईसाई-मुसलमान बन जाते थे। बृहद् हिन्दू समुदाय इधर से प्रायः निरपेक्ष-सा ही था। इस परिस्थिति में आर्य-समाज के कार्यकर्त्ता अपने साधन और शक्ति के अनुसार पूरी चेष्टा करते थे कि अछूतों के साथ भेदभाव समाप्त किया जाय। उन दिनों साल में एक दो बार सामूहिक सहभोज, विशेषरूप से तथाकथित अछूतवर्ग के लोगों को लेकर, आर्यसमाज मन्दिरों में होता ही रहता था। इसी योजना की अन्तिम कड़ी यह भी थी कि जहाँ कहीं सम्भव हो विद्यालय खोले जायँ जिनमें सवर्ण-असवर्ण, छूत-अछूत, ब्राह्मण-शूद्र सभी समान रूप से पढ़ सकें।

इन्हीं सब उद्देश्यों की भूमिका में सन् १९३६ ई० में आर्य विद्यालय की स्थापना हुई। वस्तुतः सन् १९३५ ई० में ही आर्य विद्यालय की स्थापना का निर्णय ले लिया गया था। सन् १९३५ ई० में आर्य-समाज कलकत्ता की स्वर्ण-जयन्ती मनाई गई थी। उस स्वर्ण-जयन्ती के शुभ अवसर पर इस शुभसंकल्प को कार्यरूप में परिणत करने का निर्णय लिया गया। आर्य विद्यालय रजत-प्रतिष्ठा-समारोह की सूचना के अनुसार इस कार्य में निम्नलिखित सज्जनों ने विशेष सहयोग किया—

(१) श्री बिशनदासजी बांसल
(२) सेठ श्री दीपचन्दजी पोद्दार
(३) श्री हरगोविन्दजी गुप्त
(४) पं० श्री विद्याप्रसादजी
(५) श्री मूलचन्दजी अग्रवाल
(६) श्री किशनलालजी पोद्दार
(७) श्री रघुनन्दन लालजी
(८) श्री लक्ष्मीप्रसादजी

श्री मूलचन्द्रजी अग्रवाल

इसी सूचना के अनुसार १६ जनवरी १६३६ ई० को आर्यसमाज मन्दिर, १६ नं० कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता में एक विशाल सभा का आयोजन किया गया। इस सभा की अध्यक्षता प्रसिद्ध उद्योगपति सेठ श्री मंगतूरामजी जयपुरिया ने की थी। इसी सभा के साथ आर्य

विद्यालय कलकत्ता की स्थापना हुई। विद्यालय का उद्घाटन प्रसिद्ध पत्रकार, दैनिक विश्वमित्र के संचालक बाबू मूलचन्दजी अग्रवाल ने किया। श्री अग्रवालजी यावज्जीवन विद्यालय की सेवा-सहायता करते रहे। एक बार सन् १९४८ ई० के आरम्भ में किसी जटिल समस्या के कारण जब विद्यालय बन्द होने की स्थिति में आ गया था, बाबू श्री मूलचन्दजी अग्रवाल ने विद्यालय का अध्यक्ष पद त्याग कर स्वयं ही प्रबन्धक समिति का मन्त्री-पद सम्भाला और अपनी कार्य-कुशलता, दक्षता एवं दूरदर्शिता से विद्यालय को उस संकट से उबार लिया।

आर्य विद्यालय सर्वप्रथम ४८ नं० मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट में आरम्भ किया गया। उस समय विद्यालय के सर्वप्रथम प्रधानाध्यापक श्री जनार्दनजी भट्ट, एम० ए०, नियुक्त किए गये। श्री भट्टजी अनुभवी शिक्षाविद् एवं प्रबन्धक थे। थोड़े ही दिनों में आर्य विद्यालय हिन्दी भाषा-भाषी विद्यालयों में प्रमुख माना जाने लगा। सन् १९४०-४२ई० में द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण कलकत्ता की शिक्षण-संस्थाएँ अनिश्चित काल के लिए बन्द होने लगीं, उन्हीं परिस्थितियों में आर्य विद्यालय भी बन्द हो गया। डेढ़ वर्षों के बाद जब युद्ध की विभीषिका शान्त होने लगी और कलकत्ता की दशा सामान्य होने लगी तब अन्य शिक्षण-संस्थाओं के साथ आर्य विद्यालय कलकत्ता भी फिर से चालू किया गया। इस बार युद्ध के पश्चात् विद्यालय की आर्थिक स्थिति निर्बल दिखाई पड़ रही थी। अतः विद्यालय पूर्व स्थान में न खुलकर आर्यसमाज मन्दिर, १९ नं० विधान सरणी में खुला। इस समय विद्यालय का व्ययभार विशेष रूप से दान एवं चन्दों द्वारा वहन किया जाता था। यह क्रम सन् १९४३ ई० से सन् १९४८ ई० तक रहा।

विद्यालय के पास अपना स्थान न होने के कारण एक कठिनाई सन् १९५८ ई० में यह आयी कि आर्यसमाज कलकत्ता की छत आदि की

मरम्मत करानी थी। अब तक तो विद्यालय आर्यसमाज मन्दिर के हाल, गैलरी इत्यादि में काठ का पार्टीशन देकर लगता रहा। अब बड़े संकट की स्थिति थी। उस समय विद्यालय के लिये खोजने पर भी कोई उपयुक्त स्थान न मिल सका। इस जटिल स्थिति में आर्यकन्या महाविद्यालय के अधिकारियों ने उदारतापूर्वक अपने नवीन भवन का प्रयोग प्रातःकाल के लिए स्वीकार कर लिया। वस्तुतः कन्या विद्यालय या आर्य विद्यालय दोनों ही आर्यसमाज कलकत्ता की संस्थाएँ हैं। अतः आर्य विद्यालय जून सन् १९५८ ई० से जनवरी सन् १९६७ ई० तक प्रातःकाल कन्या विद्यालय के इसी भवन में लगता रहा।

विद्यालय-भवन-निधि के संग्रह का कार्य चालू हो गया था। सेठ श्री दीपचन्दजी पोद्दार ने जयनारायण पोद्दार ट्रस्ट से ११,००० रु० की राशि दी। सेठ श्री मगतूरामजी जयपुरिया ने ५,००० रु० दिये। यों तो आर्यसमाज कलकत्ता ने सेठ श्री जगन्नाथजी द्वारा प्रदत्त १५,००० रु० की सुरक्षित धनराशि विद्यालय के आरम्भिक व्यय में लगा दी। विद्यालय-भवन निर्माण के लिए आर्य विद्यालय ट्रस्ट का निर्माण किया गया। २८ जनवरी सन् १९५९ ई० को इस ट्रस्ट का निर्माण हुआ। जिस समय ट्रस्ट बना, इसके ९ ट्रस्टी बने थे। उनके नाम निम्न-प्रकार हैं—

(१) श्री किशनलालजी पोद्दार (तात्कालिक प्रधान, आर्यविद्यालय प्रबन्धक समिति)

(२) श्री एम० पी० अग्रवाल (तात्कालिक सदस्य, आर्यविद्यालय) प्रबन्धक समिति)

(३) श्री देवीप्रसादजी मस्करा (तात्कालिक प्रधान, आर्यसमाज कलकत्ता)

(४) श्री मिहिरचन्दजी धीमान (आर्यसमाज कलकत्ता की कार्यकारिणी के तात्कालिक सदस्य)

(५) श्री आनन्दीलालजी पोद्दार (जयनारायण पोद्दार ट्रस्ट द्वारा मनोनीत)
(६) श्री भगीरथजी कानोड़िया (रघुमल चैरिटी ट्रस्ट के एक तात्कालिक ट्रस्टी)
(७) श्री मंगतूरामजी जयपुरिया
(८) श्री कृष्णकुमारजी बिड़ला
(९) श्री रघुवीर प्रसादजी गुप्त

रघुमल आर्य विद्यालय के वर्तमान ट्रस्टियों की सूची निम्न प्रकार है—

(१) श्री भगवती प्रसाद खेतान, प्रधान
(२) देवकीनन्दन पोद्दार, मन्त्री
(३) श्री राजेन्द्र प्रसाद पोद्दार
(४) श्री नन्दलाल कानोड़िया
(५) श्री देवीप्रसाद मस्करा
(६) श्री सीताराम आर्य
(७) श्री रघुवीर प्रसाद गुप्त
(८) श्री कृष्णलाल खट्टर
(९) रिक्त

आर्य विद्यालय ट्रस्ट के उत्साही सदस्यों ने विद्यालय के अपने भवन के लिए ३३-सी०, मदन मित्र लेन, कलकत्ता-६ में ५५,००० रु० की लागत से ९ कट्ठा ५ छँटाक ३२ वर्गफीट भूमि क्रय कर ली। भवन निर्माण का अनुमानिक व्यय ३,२०,००० रु० लगाया गया था। इस परिस्थिति में श्री किशनलालजी पोद्दार ने बड़ी सूझबूझ और दूरदर्शिता का परिचय देते हुए रघुमल चैरिटी ट्रस्ट के सदस्यों को प्रेरणा दी और रघुमल चैरिटी ट्रस्ट ने १,००,००० रु० का आदर्श दान दे दिया। सन् १९६२ ई० आर्यसमाज कलकत्ता का हीरक-जयन्ती वर्ष था। आर्यसमाज कलकत्ता के स्वर्ण-जयन्ती महोत्सव पर आर्य विद्यालय की

स्थापना का निर्णय हुआ और यह चाहे केवल तुक-सा ही लगे, किन्तु आर्यसमाज कलकत्ता की हीरक-जयन्ती वर्ष में ३ जनवरी सन् १९६२ ई० को पश्चिम वंग विधानसभा के तात्कालिक अध्यक्ष श्री केशवचन्द्र वसु की अध्यक्षता में स्वर्गीय सेठ श्री रघुमलजी की सुपुत्री श्रीमती अंगिरा देवी के कर-कमलों द्वारा विद्यालय भवन का शिला-

श्रीमती अंगिरा देवी

न्यास हुआ। उस समय विद्यालय भवन के निर्माण के लिए श्री किशनलालजी पोद्दार के सत्प्रयास से रघुमल चैरिटी ट्रस्ट ने १,२५,००० रुपए का अतिरिक्त दान किया। कुल २,५५,००० रु० हुए। उसी समय से रघुमल चैरिटी ट्रस्ट के प्रति कृतज्ञता ज्ञापनार्थ आर्य विद्यालय का नाम रघुमल आर्य विद्यालय हो गया। विद्यालय भवन निर्माण के समय सेठ श्री किशनलालजी पोद्दार ने २५,००० रुपये जयनारायण पोद्दार ट्रस्ट

से दिया और विद्यालय की कई प्रकार से साज-सज्जा, लाइब्रेरी इत्यादि के लिए १२,१०० रु० की राशि से सहायता की।

श्री जनार्दनजी भट्ट के पश्चात्, प्रसिद्ध वैदिक विद्वान्, पं० अयोध्या प्रसादजी ने थोड़े समय के लिये आर्य विद्यालय का प्रधानाध्यापक पद ग्रहण किया था। उनके विदेश चले जाने पर तात्कालिक

श्री रघुमलजी आर्य

उपप्रधानाध्यापक बाबू रामनारायण लालजी प्रधानाध्यापक बने। सन् १९४८ ई० में उन्होंने निर्बल स्वास्थ्य के कारण अवकाश ग्रहण कर लिया। इसी समय श्री कृष्णलालजी खट्टर, एम० एड०, आर्य विद्यालय के गौरवपूर्ण प्रधानाध्यापक बने। श्री कृष्णलालजी खट्टर विद्यालय के प्रधानाध्यापक के रूप में वरदान सिद्ध हुए। इन्होंने रातदिन परिश्रम करके विद्यालय को सरकारी सहायता दिलायी और विद्यालय को

रघुमल आर्य विद्यालय प्राथमिक विभाग की वर्त्तमान कार्यकारिणी समिति के सदस्य निम्न प्रकार हैं—

१. श्री देवकीनन्दन पोद्दार,	अध्यक्ष,	संस्थापक सदस्य
२. श्री लक्ष्मण सिंह,	मन्त्री	,, ,,
३. श्री सीताराम आर्य	सदस्य	,, ,,
४. श्री रामलखन सिंह	सदस्य	शिक्षाविद्
५. श्री आर्य कुमार जायसवाल	,,	अभिभावक प्रतिनिधि
६. श्री रामविलास जायसवाल	,,	,, ,,
७. श्री उमाशंकर मिश्र	,,	प्रधानाध्यापक पदेन
८. श्री चन्द्रसेन दुबे	,,	शिक्षक प्रतिनिधि
९. स्थान रिक्त	,,	सरकारी मनोनीत
१०. श्री राजकिशोर गुप्त	,,	वार्ड काउन्सिलर

रघुमल आर्य विद्यालय की प्रबन्धक समिति इस समय अति अपूर्ण स्थिति में है। इस समय प्रबन्धकारिणी-समिति के निम्न सदस्य हैं—

(१) श्री देवकीनन्दन पोद्दार, अध्यक्ष
(२) श्री रघुवीर प्रसाद गुप्त, मन्त्री
(३) श्री सुखदेव शर्मा } संस्थापक प्रतिनिधि
(४) प्रो० उमाकान्त उपाध्याय } संस्थापक प्रतिनिधि
(५) श्री किशोरीरमण तिवारी, शिक्षक प्रतिनिधि
(६) श्री रामलखन सिंह, शिक्षक प्रतिनिधि एवं कार्यकारी प्रधानाध्यापक

जिस समय बंगाल सरकार ने अन्य अल्पसंख्यक समुदायों के साथ आर्यसमाज को भी अल्पसंख्यक मानकर आर्यसमाज की शिक्षण संस्थाओं को विशेष संविधान दे दिया, उस समय तीन अभिभावकों और कमिटी के चिकित्सक प्रतिनिधि ने विशेष संविधान के विरुद्ध

इंजंक्शन (स्थगन आदेश) ले लिया। फलतः वही पुरानी समिति कार्यभार वहन कर रही है। जो अभिभावक कमिटी से पृथक् हुए उनकी जगह पर नये अभिभावक निर्वाचित नहीं हो सकते। समिति की अन्य रिक्तताएँ भी पूर्ण नहीं हो सकतीं। इधर जो अधूरी प्रबन्धक समिति है उस पर भी कोर्ट का इंजंक्शन है। इधर वामपंथी सरकार ने अल्पसंख्यकों की शिक्षण-संस्थाओं को दिये हुए विशेष संविधान को वापस ले लिया, तो आर्यसमाज के प्रान्तीय संगठन ने सरकार के कदम के विरुद्ध कोर्ट से इंजंक्शन ले लिया। फलतः अदालत और इंजंक्शन के दौर से चलते हुए रघुमल आर्य विद्यालय में कोई सर्वाङ्ग-पूर्ण प्रबन्धक समिति बनाने की स्थिति असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो गयी है। इसी बीच विद्यालय के यशस्वी प्रधानाध्यापक श्री कृष्णलाल खट्टर विद्यालय से अवकाश ग्रहण कर चुके और सहायक प्रधानाध्यापक श्री रामलखन सिंहजी ने स्थानापन्न प्रधानाध्यापक का कार्यभार सम्भाला। यह सब प्रबन्धक समिति का सर्वसम्मत निर्णय था। किन्तु इसके पश्चात् प्रबन्धक समिति पारस्परिक मतभेद के कारण न तो स्थायी प्रधानाध्यापक नियुक्त कर सकी और न अध्यापकों की रिक्तताएँ ही पूर्ण कर सकी। कुछ नियुक्तियाँ यदि किसी प्रकार हो भी सकीं तो उनकी स्वीकृति शिक्षा विभाग ने नहीं दी, क्योंकि शिक्षा विभाग विद्यालय की वर्त्तमान स्थिति में साधारण-सामान्य सहयोग नहीं कर रहा है। शिक्षा विभाग ने अपनी ओर से एक प्रशासक नियुक्त करना चाहा तो आर्य प्रतिनिधि सभा ने एवं श्री मंत्रीजी ने इस आदेश के विरुद्ध इंजंक्शन ले लिया और फिर वही पुरानी अधूरी प्रबन्धक समिति अपनी जगह पर रह गयी। शिक्षा विभाग इस समिति के कार्यों को मान्यता नहीं प्रदान करता। फलतः न प्रधाना-ध्यापक की स्थायी नियुक्ति हो रही है और न ही अध्यापकों की रिक्तता ही पूरी हो रही है। प्रधानाध्यापक का कार्य तो स्थानापन्न

प्रधानाध्यापक करते जा रहे हैं, किन्तु अध्यापकों के अभाव में कक्षाओं को चलाना कठिन हो गया है।

यह संक्षेप में कानूनी दाँव-पेचों की वह स्थिति है जिसमें पड़कर रघुमल आर्य विद्यालय अपने पुराने गौरवपूर्ण स्थान की रक्षा करने में असमर्थ हो गया है। इन सारी परिस्थितियों को ध्यान में रखकर विद्यालय के संस्थापक—आर्यसमाज कलकत्ता ने कोर्ट से यह प्रार्थना की है कि वर्त्तमान परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए जबतक अन्य स्थगन आदेशों का निर्णय नहीं हो जाता तबतक के लिए संस्थापक आर्यसमाज को सर्वाङ्ग परिपूर्ण प्रबन्धक समिति, विशेष संविधान के अनुसार, बनाने का अधिकार दिया जाय। इन परिस्थितियों में क्या कुछ अन्तिम स्वरूप ग्रहण करेगा, कहना कठिन है, किन्तु इतना सुस्पष्ट दिखाई दे रहा है कि रघुमल आर्य विद्यालय जैसा सुव्यवस्थित, सुप्रतिष्ठित विद्यालय कानूनी दाँव-पेंच के जाल में बड़ी बुरी तरह उलझ गया है।

पञ्चम अध्याय

क्रान्ति-केन्द्र : आर्यसमाज मन्दिर : अमर शहीद भगतसिंह का आश्रयस्थल

आर्यसमाज कलकत्ता की भूमि स्वदेशी आन्दोलन की भूमि रही है। यहाँ लाल-बाल-पाल—लाला लाजपत राय, बाल गंगाधर तिलक और विपिनचन्द्र पाल जैसे स्वदेशभक्त क्रान्तिकारी राष्ट्र-नेताओं के व्याख्यान हो चुके थे। यह मन्दिर-निर्माण से पूर्व का इतिहास है। हम अन्यत्र लिख आये हैं कि इसी मैदान में विलायती वस्त्रों की होली जली थी और इसी मैदान में स्वदेशी राखी-बन्धन हुआ था। इस मैदान में बात की बात में पुलिस लाठीचार्ज कर देती थी। यह मैदान आर्यसमाज के मन्दिर के निर्माण से पूर्व क्रान्ति का मैदान और क्रान्तिकारियों का कार्यस्थल था[1]।

केवल कलकत्ता में ही नहीं, सम्पूर्ण भारत में आर्यसमाज स्वतन्त्रता, स्वदेशप्रियता और जागरण का शंखनाद कर रहा था। भारत सरकार को आर्यसमाज और आर्यसमाजियों पर बहुत सन्देह हो गया था। आर्यसमाज कलकत्ता और यहाँ के सदस्य भी स्वदेश-प्रियता में कहीं से कम न थे। इसका एक बड़ा आकर्षक इतिहास यह है कि अमर शहीद भगत सिंह आर्यसमाज कलकत्ता में दो बार आकर ठहरे थे।

---

१ द्रष्टव्य—तृतीय अध्याय।

आर्यसमाज कलकत्ता में प्रथम प्रवास

प्रथम बार सान्दर्स वध से पूर्व भगतसिंह कुछ केमिकल्स खरीदने के विचार से कलकत्ता आये थे। सान्दर्स का वध १६२८ ई० की घटना है। उस समय कलकत्ता यात्रा में श्री कमलनाथ तिवारी, जो पीछे संसद सदस्य भी बने, उनके साथ इस खरीदारी में थे। श्री कमलनाथ तिवारी के शब्दों में एक संस्मरण श्रीमती वीरेन्द्र सिन्धु एम० ए० ने 'युगद्रष्टा भगत सिंह और उनके मृत्युञ्जय पुरखे' नामक ग्रन्थ में दिया है। हम उसे वहीं से अविकल उद्धृत कर रहे हैं।

उन्हीं दिनों एक महत्त्वपूर्ण और इतिहास की कड़ियों को जोड़ने-वाला एक संस्मरण श्री कमलनाथ तिवारी (लाहौर केस के अभियुक्त और बाद में संसद सदस्य) के शब्दों में—

"सान्दर्स हत्याकाण्ड से कुछ दिन पहले भगत सिंह देशी बम बनाने के लिये कुछ आवश्यक केमिकल्स खरीदने के उद्देश्य से कलकत्ता आये। यह काम मुझे सौंपा गया। उनका बाज़ार में जाना सन्देहास्पद हो सकता था। मैं बहुत-सी दुकानों पर गया। अधिकतर दुकानदारों ने सरकारी प्रतिबन्ध के कारण केमिकल्स देने से इन्कार कर दिया। बाद में क्रान्ति-कारीदल से सहानुभूति रखनेवाले दुकानदारों के यहाँ मैं भाई बैजनाथ सिंह 'विनोद' (बाद में जायसवाल युवक और विश्ववाणी के सम्पादक) के साथ गया। उनसे आवश्यक केमिकल्स मिल गये। उनमें बी० पाल का नाम मुझे आज भी याद है।

उनके मिकल्स को एक मुटिया-मज़दूर के सिर पर रखवा कर हम दोनों आर्यसमाज (आर्यसमाज कलकत्ता जो उस समय क्रान्तिकारियों का केन्द्र था) लौट रहे थे कि मुटिया की टोकरी उसके सिर से गिरने को हुई। हमने उसको ऐसे

डाँट-डपट करनी शुरू कर दी जैसे कि हमारा उससे कोई सम्बन्ध ही न हो। बात यह थी कि सामने ही एक सर्जेन्ट खड़ा था, हमें भय हुआ कि यदि कहीं उसको केमिकल्स के बारे में सन्देह हो गया तो हम दोनों उसके चंगुल से बच न सकेंगे। हमारी डाँट-डपट काम आ गयी। मुटिया संभलकर आगे बढ़ गया और सर्जेन्ट का ध्यान उसकी ओर से हटकर हम पर लग गया। उसने हमको समझाया कि उस मामूली सी बात पर ग़रीब मुटिया को डाँटने की क्या ज़रूरत थी। थोड़ी दूर जाकर सामान रिक्शा पर रख दिया और हम दोनों सकुशल सामान के साथ आर्यसमाज पहुँच गये।"

"दूसरे दिन सवेरे भगत सिंह, फणीन्द्रनाथ घोष (बाद में सरकारी गवाह) और यतीन्द्रनाथ दास (बाद में शहीद) तीनों ने मिलकर देशी बम में काम आने वाली देशी गन काटन तैयार की। शेष केमिकल्स और गन काटन लेकर भगत सिंह आगरा के लिए रवाना हो गये"[१]।

इतना बड़ा उद्धरण हमने इसलिए दिया है कि जनश्रुतियों में यह बात तो है कि सरदार भगत सिंह एसेम्बली बमकाण्ड से पूर्व, दुर्गा भाभी के साथ, कलकत्ता आये थे, और आर्यसमाज मन्दिर में रहे भी थे, किन्तु सान्दर्स वध से पूर्व केमिकल्स ख़रीदने के उद्देश्य से कलकत्ता आने पर भी भगत सिंह आर्यसमाज मन्दिर में आये, यह कलकत्ता के लोग भी कम जानते हैं।

इस उद्धरण से एक और बात सुस्पष्ट समझ में आती है कि आर्य-समाज क्रान्तिकारियों का केन्द्र था। इस पवित्र वेदमन्दिर में क्रांतिकारी न केवल निवास की दृष्टि से अपने को निरापद समझते थे; अपितु कई-कई क्रान्तिकारी एक साथ इकट्ठे होकर क्रान्ति के

---

१. वीरेन्द्र सिन्धु कृत युगद्रष्टा भगत सिंह—पृ० १६३-६४

कुछ कार्यों की योजना कार्यान्वित करते थे। गन काटन बनाने की बात तो ऊपर उद्धरण में ही है, क्रान्तिकारियों के इस केन्द्र में और भी बहुत कुछ होता रहा होगा।

आर्यसमाज कलकत्ता में द्वितीय प्रवास

सरदार भगत सिंह दूसरी बार सान्दर्स वध के पश्चात् फरार होकर पुलिस की निगाहों से बचते हुए, कलकत्ता आये थे। उस समय दुर्गा भाभी अपने पुत्र को लेकर भगत सिंह के साथ दिखाने के लिए उनकी पत्नी का रूप धारण किये हुए कलकत्ता स्टेशन पर उतरी हुई थीं। यह इतिहास-प्रसिद्ध घटना है कि पुलिस भगत सिंह को अविवाहित सिख नौजवान के रूप में पहचानती थी। पुत्र सहित दुर्गा भाभी जब उनके साथ लग गयी तो पुलिस की निगाहें यह दूर की भी सम्भावना न कर सकती थीं कि यह नौजवान भगत सिंह हो सकता था। उन दिनों सुशीला दीदी कलकत्ता में थीं और सर सेठ छाजूराम से उनका परिचय था। सुशीला दीदी ने छाजूरामजी की पत्नी श्रीमती लक्ष्मीदेवी से बातें कीं और भगत सिंह तथा दुर्गा भाभी को सर छाजूराम की कोठी में अतिथि के रूप में ले आयीं। सर छाजूराम उन दिनों आर्यसमाज के कर्णधारों में थे। वे आर्यसमाज ट्रस्टी और उस के प्रतिष्ठित अधिकारी भी थे। 'युगद्रष्टा भगत सिंह' नामक ग्रन्थ में इस प्रसंग को इस रूप में दिया गया है—

> "भगत सिंह और दुर्गा भाभी एक दिन होटल में रहे। दूसरे दिन छाजूरामजी की कोठी में चले गये और एक सप्ताह से अधिक वहीं रहे······भगत सिंह को वहाँ रखने की और निश्चिन्त रहने की स्वीकृति सर सेठ की पत्नी लक्ष्मीदेवीजी ने ही सुशीला दीदी को दी थी। इन लोगों को ऊपर की मंजिल में ठहराया गया था और भोजन इत्यादि की व्यवस्था स्वयं लक्ष्मी देवी

ही करती थीं। उन दो के अतिरिक्त भगत सिंह का सही परिचय किसी को भी न था।.......यह इतिहास का चरित्र है कि उसने एक सप्ताह के आतिथ्य के बदले में माता लक्ष्मी देवी और उनके पति सर सेठ छाजूराम को सदा के लिए अपना अतिथि बना लिया"।[१]

आगे इतिहास इतना ही बताता है कि सर छाजूराम की कोठी में एक सप्ताह रहने के बाद सरदार भगत सिंह को और अधिक सुरक्षित स्थान में स्थानान्तरित कर दिया गया। भगत सिंह कलकत्ता में "हरि" नाम से अपना परिचय देते थे। श्रीमती वीरेन्द्र सिन्धु ने 'युगद्रष्टा भगत सिंह' पृष्ठ १७६ पर लिखा है—

"भगत सिंह और दूसरे साथियों के लिये बाद में दूसरे सुरक्षित मकान का प्रबन्ध हो गया और वे सर सेठ की कोठी से वहाँ बदल दिये गये। कुछ दिन वे उसमें रहे और तब आगरा चले गये।"

इस छोटे से उद्धरण से एक बात यह सुस्पष्ट हो जाती है कि कलकत्ता आकर भगत सिंह क्रान्तिकारी साथियों के सम्पर्क में आये। एक अतिथि तो सर छाजूराम की कोठी में अतिथि बनकर रह सकता था किन्तु यह सर और सेठ की कोठी क्रान्तिकारियों का अड्डा तो नहीं बन सकती थी। इसके लिये तो कोई सार्वजनिक स्थान ही उपयुक्त हो सकता था और यह सार्वजनिक स्थान क्रान्तिकारियों का केन्द्र आर्यसमाज मन्दिर ही था।

आर्यसमाज मन्दिर की छत पर ट्राम रास्ते की ओर उत्तर-दक्षिण दोनों कोनों पर गुम्बजनुमा दो कोठरियाँ थीं। इन्हीं दोनों में से एक कोठरी में भगत सिंह रहते थे। छत की कोठरी होने के कारण इनमें

---

१. युगद्रष्टा भगत सिंह—पृष्ठ १७४

सुरक्षित होने का आश्वासन भी अधिक था। सरदार भगत सिंह का

अमर शहीद सरदार भगत सिंह

फ्लैट हैट वाला प्रसिद्ध जनप्रिय चित्र यहीं कलकत्ता का है। इसी रूप

में 'हरि' नाम से वे यहाँ रहते थे। यहाँ से जाते समय आगे के निर्णायक कदम लगभग तय थे। एसेम्बली बमकाण्ड की मानसिक तैयारी भगत सिंह के मस्तिष्क में पूर्ण हो चुकी थी। अतः वे जब कलकत्ता से चले तो सुशीला दीदी ने तो उन्हें अपने रक्त से टीका किया था और आर्यसमाज मन्दिर की छत की कोठरी ने एक बलिदानी वीर को जीवन के अन्तिम किन्तु अद्भुत कार्य के लिये मौन विदा दी थी। भगत सिंह भी इस यात्रा के गौरव को समझते थे और परवर्ती घटनाओं के लिये सजग थे। उन्होंने आर्यसमाज के तात्कालिक सेवक तुलसीराम को अपना थाली-लोटा (जहाँ तक मुझे ध्यान है जस्ता या निकिल का) यादगार के रूप में दिया था और उसको इस यादगारी का कुछ आभास भी दे दिया था, पर सरल तुलसीराम उस रहस्यमय संकेत को कैसे समझ सकता! यहाँ से जाने पर एसेम्बली बमकाण्ड के पश्चात् जब सरदार भगत सिंह पकड़े गये और उनका फोटो समाचार-पत्रों में छपा तब लोगों ने पहचाना कि यह वही नौजवान है जो यहाँ आर्यसमाज मन्दिर की छत पर रह कर गया है। तुलसीराम तो उस थाली-लोटे को अपनी अमूल्य निधि और पवित्र धरोहर मानकर रखता था। वह उसे दिखा तो देता था पर किसी को देने के लिये तैयार न था। तुलसीराम जब कलकत्ता छोड़ कर जाने लगा तब भी इस पवित्र स्मारक को अपने साथ लेता गया, उसे यहाँ छोड़ने के लिये वह तैयार न था। महाशय रघुनन्दन लाल और पं० दीनबन्धु वेदशास्त्री जी ने (जनश्रुतियों के आधार पर) उससे यह स्मारक यहाँ छोड़ जाने का आग्रह किया था। पर वह उन्हें अपना समझता था और उन्हें अपने साथ लेता गया।

यहाँ एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि अमर शहीद सरदार भगत सिंह दोनों बार आर्यसमाज कलकत्ता में ही क्यों ठहरे? पहली बार बम बनाने हेतु केमिकल्स खरीदने आये तो इस मन्दिर में केवल ठहरे

ही नहीं, अपितु क्रान्तिकारियों का मिलना-जुलना भी यहीं होता रहा, गन काटन भी यहीं बनायी गयी।

इसका एक सहज-सा उत्तर यह हो सकता है कि सरदार भगत सिंह का तो परिवार ही आर्यसमाजी था और आर्यसमाज के वातावरण में ही स्वदेशभक्ति का नशा था। किन्तु इस सन्दर्भ में इतनी-सी भूमिका से कैसे क्रान्तिकारी यहाँ इकट्ठे हुए और इस स्थान की सुरक्षा के सम्बन्ध में आश्वस्त हुए। यहाँ फणीन्द्रनाथ घोष और यतीन्द्रनाथ दास जैसे बंगाली क्रान्तिकारी भी गन-काटन आदि बनाने के लिये इकट्ठे हुए थे। ऐसा लगता है कि ये बंगाली युवक भी इस क्रान्ति-केन्द्र में सुरक्षा की दृष्टि से आश्वस्त थे।

द्वितीय बार चौधरी छाजूराम जी के आतिथ्य के पश्चात् अधिक सुरक्षा की दृष्टि से वे आर्यसमाज मन्दिर में आ गये। यह आसानी से समझ में आ जाता है कि भगत सिंह स्वयं भी अपने पूर्व परिचित क्रान्ति केन्द्र में अधिक विस्तृत रूप में क्रान्ति-कार्य कर सके होंगे जो चौधरी छाजूरामजी की कोठी से सम्भव नहीं हो सकता था। आर्यसमाज कलकत्ता के तात्कालिक अधिकारी जानते रहे होंगे कि कोई युवक समाज मन्दिर में आकर टिका हुआ है। दूसरे युवक उससे मिलते हैं। वहाँ क्रान्ति के परामर्श ही नहीं, क्रान्तिकारियों की गतिविधियाँ भी सक्रिय हैं।

इस अनुमान से यह सहज ही बोधगम्य है कि आर्यसमाज मन्दिर और आर्यसमाजी, सभी स्वतन्त्रता के रंग में पूर्णरूप से सराबोर थे। यही स्थिति प्रायः सम्पूर्ण भारतवर्ष में थी। कलकत्ता का अपना राजनीतिक और प्रशासनिक महत्त्वपूर्ण स्थान था। भगत सिंह जैसे क्रान्तिकारी का इस मन्दिर में दो बार निवास करना, यह बताता है कि आर्यसमाज कलकत्ता इस कड़ी में किसी अन्य स्थान से पीछे नहीं था। यहाँ लोग भगत सिंह का वास्तविक परिचय चाहे उनकी

गिरफ्तारी के बाद जान सके किन्तु लोग क्रान्ति के उस गोपनीय स्वरूप से सर्वथा अनभिज्ञ नहीं थे। मन्दिर यदि क्रान्ति-केन्द्र बना हुआ था तो अधिकारियों की सहमति से ही।

परवर्ती काल में भी आर्यसमाज मन्दिर स्वदेशी गतिविधियों का केन्द्र बना रहा है। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी राजा महेन्द्र प्रताप, पं० जवाहरलाल नेहरू, क्रांतिकारी जयप्रकाश नारायण इत्यादि नेतागण इस मन्दिर के ऐतिहासिक सभाकक्ष में अपने क्रान्तिकारी विचार प्रकट करते रहे हैं। वास्तव में आर्यसमाज मन्दिर क्रान्ति का केन्द्र रहा है।

षष्ठ अध्याय

सहायता-कार्य

आर्यसमाज का छठा नियम है 'संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है—अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।' आर्यसमाज अपने इस नियम के प्रति आरम्भ से ही आस्थावान् रहा है। देश में कहीं भी कोई आपद्-विपद् आयी तो आर्यसमाज के कार्यकर्त्ता सहायताकार्य करने के लिए आगे बढ़ निकलते थे। अंग्रेजों का राज्य अपने पूरे प्रभुत्व पर था और भारतवर्ष में इस तरह की स्वयंसेवी समितियाँ या संगठन बहुत कम थे। आज की तरह उस समय क्लबों, रिलीफ सोसाइटियों, सेवा-सहयोग मण्डलों की भरमार न थी। लोगों का दृष्टिकोण भी व्यक्तिवादी था। सामाजिकता और समाजवाद की चर्चा बहुत अपरिचित-सी थी। सामाजिक सहायता के क्षेत्र में आरम्भिक परिस्थितियों का सामना आर्यसमाज के त्यागी-बलिदानी कार्यकर्ताओं ने बड़ी सूझबूझ से किया था। जहाँ कहीं भी सहायता की आवश्यकता पड़ती थी, आर्यसमाज के कार्यकर्त्ताओं की संवेदनशीलता जाग्रत हो उठती थी। पश्चिम में चाहे जालियाँवाला बाग का काण्ड हो, चाहे क्वेटा का भूकम्प, दक्षिण भारत में मोपाल काण्ड, भारत के मध्यांचल में बिहार का भूकम्प, सर्वत्र आर्यसमाज अपने सेवा-सहायता—दल को लेकर उपस्थित होता रहा है।

आर्यसमाज कलकत्ता के अधिकारी आरम्भ से ही बौद्धिकरूप से सजग और आर्थिक रूप से समर्थ थे। यहाँ के कार्यकर्त्ताओं में सदा से विद्वान् भी रहे हैं तो धनवान् भी रहे हैं। अंग्रेजों के राज्य में कलकत्ता बौद्धिकता का केन्द्र तो था ही, व्यवसाय का भी केन्द्र था। समाज का आरम्भ ही राजा तेजनारायण सिंह जैसे रईस और पं० शंकरनाथ जैसे विद्वान् से हुआ था। यह कड़ी सेठों, व्यवसायियों और विद्वानों के सहयोग से निरन्तर वनी रही है। जहाँ तक रिलीफ, सहायता का प्रश्न है, इतना तो कह ही सकते हैं कि कलकत्ता का आर्यसमाज और आर्यसमाजी अपने कर्मक्षेत्र में कभी पीछे नहीं रहे।

बिहार का भूकम्प

विहार का भूकम्प सन् १९३४ ई० में हुआ था। यह अपने में अति दयार्द्र करने वाली घटना थी। भूकम्प के समाचार से सारा देश बिहार की सहायता के लिए तड़प-सा उठा था। आर्यसमाज का ज़ोर उन दिनों पंजाव में वहुत अधिक था। पंजाव के कार्यकर्त्ता कलकत्ता के आर्यसमाजियों की सहायता से विहार में रिलीफ के कार्य करने में लगे थे। कलकत्ता में विहार के लोग भी पर्याप्त रूप में हैं। आर्य-समाज में भी विहार के लोग योगदान करते रहे हैं। इस प्रकार आर्यसमाज कलकत्ता और यहाँ के आर्यसमाजी भूकम्प-पीड़ितों की सहायता में तत्पर हो गये थे।

महात्मा खुशहालचन्द का दौरा : लाला खुशहालचन्द खुरसन्द के नेतृत्व में आर्यसमाज का एक दल कलकत्ता आया। यह बिहार के भूकम्पपीड़ितों की सहायता के लिए चन्दा एकत्र करने आया था। खुशहालचन्दजी, जो संन्यास ग्रहण के पश्चात् महात्मा आनन्द स्वामी के नाम से विख्यात हुए, उन दिनों भी पोद्दार परिवार के साथ अच्छा सम्बन्ध रखते थे। श्री किशनलालजी पोद्दार ने बताया कि उस समय आनन्दी लालजी पोद्दार ने वहुत आगे बढ़कर आर्यसमाज के

रिलीफकार्य में सहायता की थी। महात्मा आनन्द स्वामी की प्रेरणा से आनन्दीलालजी स्वयं भी विहार के भूकम्प पीड़ित अंचलों में गये थे।

महात्मा आनन्द स्वामी

आनन्दपुष्पी में सार्वजनिक सेवा के सम्बन्ध में कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार लिखी हैं—

"आनन्दीलालजी अपने साथ सेवा सामग्री ले गये। कुछ दिन वे मुजफ्फरपुर में भी रहे। वहाँ देश भर के कार्यकर्त्ता आये हुए थे। पीड़ा का क्षेत्र कई सौ वर्गमील का विस्तार पा चुका था। १०-१० मील की दूरी पर सेवा-कैम्प स्थापित थे। आनन्दीलालजी ने भी अपनी शक्तिभर सामग्री आदि का वितरण किया। सीतामढ़ी भी गये। महीने भर तक शायद वहाँ रहे भी।[१]"

१ आनन्दीलाल पोद्दार स्मृतिपुष्पी पृ० ६३।

स्व० सेठ आनन्दीलालजी पोद्दार

२० वर्ष के इस श्रेष्ठी-पुत्र के सेवाकार्य के पीछे जहाँ आर्य समाज की भूमिका थी, वहीं लाला खुशहालचन्द की प्रेरणा भी कुछ कम न थी।"

मिदनापुर का समुद्री तूफान

सन् १९४२ ई० के अक्टूबर मास में बंगाल के जिला मिदनापुर का अंचल समुद्री तूफान और बाढ़ से बड़ी बुरी तरह त्रस्त हो गया। कई जगह गाँव के गाँव बह गये। धन-जन की कितनी क्षति हुई, कुछ अनुमान नहीं। जो लोग बचे वे निरन्न, निर्वस्त्र, घर-विहीन थे। उनके ऊपर आसमान और नीचे दलदली धरती थी। इस विषम स्थिति में मिदनापुर में सहायता का कार्य आर्यसमाज ने बड़े उत्साह से आरम्भ किया।

मिदनापुर सहायता कार्य की विषम परिस्थिति का एक और भी प्रतिकूल पक्ष था। सन् १९४२ ई० के अगस्त मास में गाँधीजी ने 'अंग्रेजो! भारत छोड़ो' और 'करो या मरो' का नारा लगा दिया था। मिदनापुर में प्रबल आन्दोलन चल रहा था। पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण ने बताया कि उस समय अंग्रेजी सरकार मिदनापुर के स्वदेशी क्रान्तिकारी आन्दोलन को लेकर बहुत क्षुब्ध थी। अंग्रेज शासक मिदनापुर में संग्रामी लोगों से पूरा परेशान था। श्री सुशील कुमार धाड़ा के नेतृत्व में मिदनापुर में "स्वतन्त्र मिदनापुर राज्य" कायम कर लिया गया था। क्रान्तिकारियों को पकड़-पकड़ कर सुन्दरवन भेज दिया जाता था। ऐसी परिस्थिति में अंग्रेजी शासन ने मिदनापुर को निषिद्ध क्षेत्र घोषित कर दिया था। मिदनापुर के रास्ते काट दिये गये थे। जिस समय सरकार का यह क्रूर दमनचक्र मिदनापुर पर चल रहा था उसी समय वहाँ समुद्री तूफान आया और मिदनापुर का दक्षिणांचल जैसे संसार से सर्वथा विच्छिन्न हो गया। एक ओर शासन का दमनचक्र, दूसरी ओर समुद्री तूफान, मिदनापुर इन दो विपत्तियों की चक्की के बीच पिस रहा था। अगणित जन, पशु, धन सब की हानि हुई, यह एक बात, जो बच गये उनके रहने के लिये न सूखी भूमि रही, न पीने के लिये साफ पानी रहा, न खाने का अन्न-वस्त्र और मकान का तो प्रश्न ही क्या ? कहते हैं कन्टाई और तमलुक का क्षेत्र ध्वस्त और जनहीन हो गया था।

आर्यसमाज रिलीफ सोसाइटी की स्थापना :

पंडित दीनबन्धुजी की गिरफ्तारी :—

इस परिस्थिति में बंगाल आर्य प्रतिनिधि सभा ने आर्यसमाज कलकत्ता में रिलीफ सोसाइटी की स्थापना की और कलकत्ता के सभी आर्यसमाजी एकबद्ध होकर मिदनापुर के रिलीफकार्य में लग गये।

सर्वप्रथम आर्यसमाज के त्यागी, तपस्वी, अथकसेवाव्रती पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री को मिदनापुर भेजा गया। आशय यह था कि वे सारी परिस्थिति का आकलन करें, रिलीफ की सम्भावनाओं पर विचार करें, और उनके सुझावों के अनुसार सहायता कार्य आरम्भ कर दिया जाय। सन् १६४२ ई० की क्रान्ति के कारण अंग्रेज सरकार ने

पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री

मिदनापुर को निषिद्ध क्षेत्र तो घोषित कर ही दिया था। पं० दीनबन्धुजी पाँशकुड़ा स्टेशन पर गिरफ्तार कर लिये गये। आज सोचने पर स्थिति क्या विचित्र लगती है? एक ओर अगणित प्राणी मृत्यु के मुख में समा गये थे, दूसरी ओर अंग्रेज सरकार की ऐसी क्रूरता थी कि उसने इस क्षेत्र को इतनी दृढ़ता और कठोरता से संसार से अलग कर रखा था। पं० दीनबन्धुजी पकड़ लिए गये थे, किन्तु पीछे जब उनकी यात्रा

का उद्देश्य अधिकारियों को पता चला तो उन्होंने उन्हें छोड़ तो दिया, किन्तु उन्हें यह कहा गया कि वे परमिट लेकर आयें फिर सहायता कार्यार्थ मिदनापुर जाने की स्वीकृति उन्हें मिल जायगी। पंडितजी कलकत्ता लौट आये। रिलीफ सोसाइटी ने परमिट की व्यवस्था की और फिर पंडितजी ने यथाशक्ति तूफानपीड़ित क्षेत्र का दौरा किया और रिलीफ का कार्य आरम्भ हो गया। यों तो मिदनापुर में रिलीफ

श्री बनमाली रावजी पारीख

का कार्य बहुत व्यापक था फिर भी दो सहायता-केन्द्र खोलकर कार्य आरम्भ कर दिया गया। इन सारे कार्यों में बनमाली रावजी पारिख सर्वाधिक अग्रणी रहे। इस मिदनापुर रिलीफ सोसाइटी के मन्त्री थे स्वर्गीय महाशय रघुनन्दन लालजी। दो केन्द्र सहायतार्थ चालू किए गये—एक तमलुक में और दूसरा बिशतुबाड़ में।

तमलुक सहायता केन्द्र : आरम्भ में तमलुक सहायता केन्द्र का कार्य पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण को सुपुर्द किया गया। पं०

प्रियदर्शनजी उन दिनों राजशाही में आर्यसमाज के प्रचारकार्य में लगे हुए थे। महाशय रघुनन्दन लालजी ने पं० प्रियदर्शनजी को इस गुरु-तर कार्य का भार उठाने के लिए तमलुक बुलाया और पं० प्रियदर्शनजी भी राजशाही का प्रचारकार्य स्थगित कर तमलुक के इस सेवा-कार्य में आ जुटे। तमलुक सेवा-केन्द्र पर वलिया निवासी वैद्य रामविलास सिंह भी कार्य की देखभाल करते थे। न्यावर्ता हाट में भी एक केन्द्र खोला गया था। इन केन्द्रों से चावल, वस्त्र, वर्तन, औषधियाँ आदि सामान हज़ारों-हज़ार नर-नारियों को वितरित किया जा रहा था। पीछे इसी तमलुक केन्द्र पर आर्य वीरदल के कई कार्यकर्त्ताओं को लेकर श्री ओम् प्रकाशजी त्यागी आ गये और तमलुक केन्द्र पर सहायता का कार्य आर्य वीरदल के सहयोग से श्री ओम् प्रकाशजी त्यागी और रामविलास सिंह वैद्यजी चलाने लगे। इस कार्य में सार्वदेशिक सभा और पंजाब की प्रतिनिधि सभाओं ने भी सहयोग किया था।

बिश्नुबाड़ सहायता केन्द्र : विश्नुबाड़ गाँव में आर्यसमाज का पहले से कुछ कार्य था। अतः रिलीफ कार्य करने की भूमिका पहले से तैयार थी। विश्नुबाड़ में श्री भुवन मोहनदेव शर्मा ने रिलीफ का कार्य संभाला। श्री नागेन्द्रनाथ राय और स्वर्गीय कुमुद वाबू आदि कई सज्जनों की सहायता एवं सहयोग से रिलीफ का वहुमुखी कार्य चलता रहा। पीछे परिस्थिति अनुकूल होने पर रिलीफ सोसाइटी की सहायता से बिश्नुबाड़ गाँव में आर्यसमाज के भवन का निर्माण भी किया गया। वहाँ एक पाठशाला का भी प्रबन्ध किया गया। उसीमें छात्रावास भी रहा। कुछ काल तक कुछ विद्यार्थी पढ़ते रहे।

उस रिलीफ के कार्य में श्री बनमालीजी राव पारिख का सहयोग वहुत प्रशंसनीय रहा। श्री पारिखजी रिलीफ कार्य के लिए बर्तन, वस्त्र इत्यादि माँग कर लाते थे और रिलीफ सोसाइटी को दे देते थे। आर्यसमाज के प्रसिद्ध कार्यकर्ता श्री मिहिरचन्द धीमान, महाशय श्री

रघुनन्दनलाल इत्यादि सज्जन कार्य की देखभाल पूरी तन्मयता से करते थे। ये लोग समय-समय पर मिदनापुर जाते भी थे। अन्य रिलीफ केन्द्रों का भी निरीक्षण करते थे और सारी व्यवस्था को सुचारु रूप से सम्पन्न कराते थे। इस कार्य में श्री गिरीशचन्द्र कण्डार ने अच्छा सहयोग किया था।

सार्वदेशिक सभा और प्रादेशिक सभा की सहायता : बंगाल में रिलीफ का कार्य एक देशव्यापी मुद्दा बन गया था। मिदनापुर की
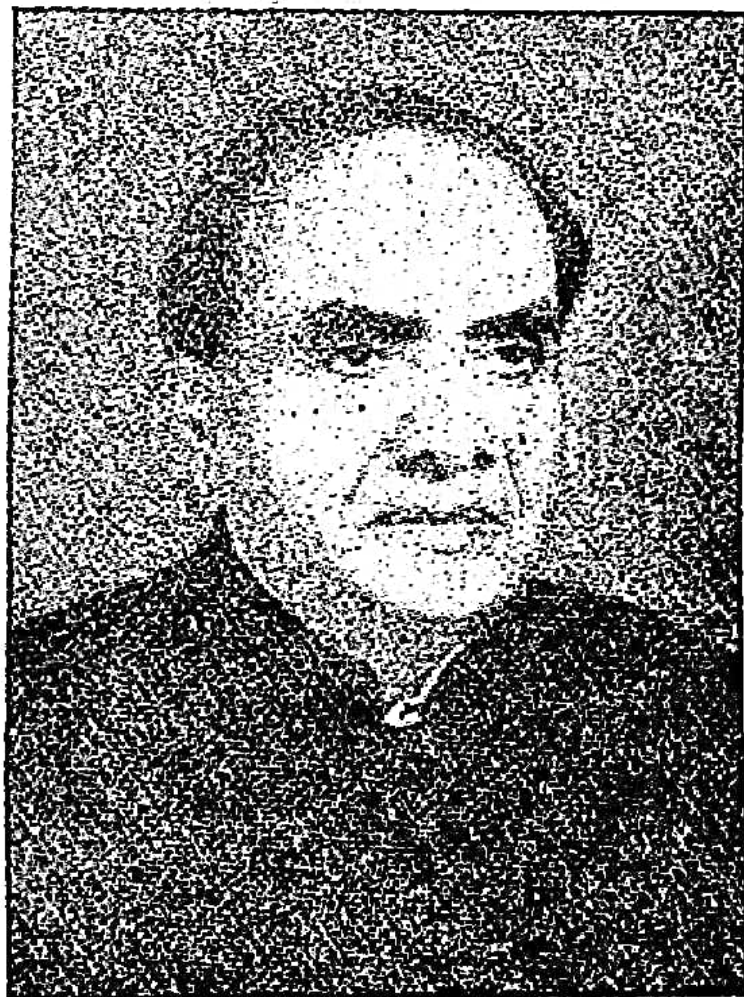
श्री ओम् प्रकाशजी त्यागी

उस विपत्ति में सार्वदेशिक स्तर पर सहयोग मिला। सार्वदेशिक सभा ने आर्य वीरदल के सेनापति श्री ओम् प्रकाशजी त्यागी और कई अन्य आर्यवीरों को इस रिलीफ कार्य के संचालन के लिए भेजा। श्री त्यागीजी की देखरेख में मिदनापुर में रिलीफ का कार्य चलता रहा।

प्रादेशिक सभा पंजाब ने भी पूरी सहायता की थी। गाँठ के गाँठ वस्त्र, और बोरे के बोरे चावल दिल्ली और पंजाब से रिलीफ कार्य के लिए आये थे। पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण की सूचना के अनुसार पंजाब सभा ने बहुत उच्च कोटि के अच्छे चावल रिलीफकार्य के लिए भेजे थे। अभी यह रिलीफ का कार्य चल ही रहा था कि एक और दुर्दैव बंगाल के भाग्य में आ जुड़ा और आर्यसमाज रिलीफ सोसाइटी मिदनापुर के रिलीफ कार्य से अभी निवृत्त भी न हुई थी कि दुर्भिक्ष की ओर सहयोग पहुँचाना आवश्यक हो गया।

बंगाल का दुर्भिक्ष : अकाल

मिदनापुर के समुद्री तूफान और बाढ़की विपत्ति से निकलते-निकलते बंगाल एक अत्यन्त दुर्दैव-दुर्भाग्य में ग्रस्त हो गया। इस समय बंगाल में भीषण दुर्भिक्ष-अकाल का समय आ उपस्थित हुआ। यह द्वितीय विश्वयुद्ध का समय था। मँहगाई चरमकोटि पर पहुँच गयी थी। अन्न-वस्त्र खोजे भी न मिलता था। अंग्रेजी सरकार अधिक से अधिक मूल्य देकर सेना के लिए भोजन-वस्त्र एकत्र करने में लगी थी। साधारण व्यक्ति को क्रयशक्ति न थी कि वह खरीद कर खाता। बेकारी-भुखमरी-मंहगाई तीनों का आलम बड़े ज़ोर पर था। इतिहासकार कहते हैं कि एक ओर कलकत्ता के बन्दरगाह से हजारों टन गेहूँ, चावल आदि खाद्य द्रव्य विदेशों के लिए भेजा जा रहा था, दूसरी ओर वहीं बंगाल की राजधानी कलकत्ता में हजारों-हजार निरीह व्यक्ति भूख की ज्वाला में तड़प-तड़प कर मर रहे थे। जब गाँव में खाद्यान्न का अभाव हो गया तो मरता क्या न करता—चारों ओर से ग्रामांचलों से झुण्ड के झुण्ड लोग कलकत्ता आने लगे। उद्देश्य मात्र इतना था कि इस महानगरी में किसी तरह से उस भुखमरी से ग्रस्त लोगों के प्राणों की रक्षा हो सके। स्वाभाविक था कि ऐसी परिस्थिति में आर्यसमाज रिलीफ सोसाइटी का

ध्यान गाँव के रिलीफ केन्द्रों से हटकर कलकत्ता पर केन्द्रित हो गया और यहाँ रिलीफ का कार्य पूरे जोर से होने लगा। जहाँ शहर की सड़कों, गली-कूँचों पर अन्न और रोटी माँगने वाले झुण्ड के झुण्ड घूम रहे हों वहाँ आर्यसमाज रिलीफ के कार्य से पीछे कैसे रह सकता था। कहा जाता है कि भूखे लोगों में जब माँगने और चलने की भी शक्ति नहीं रह जाती थी तो वहीं सड़क पर ही बैठ कर रोटी, भात, अन्न की याचना करने लग जाते थे। उन्हें मुट्ठी भर चना और एक गिलास पानी देना भी कितना बड़ा पुण्य का कार्य था। कहा जाता है कि जब ये लोग कई दिन बिना खाये-पीये रह जाते तो मांगने, बोलने की भी क्षमता न रह जाती, सड़कों के फुटपाथों पर असहाय पड़े रहते और इनके प्राणपखेरू उड़ जाते। सुहरावर्दी की लीगी मिनिस्ट्री थी और इन मरने वालों में बहुसांख्यिक हिन्दूबहुल अंचलों के लोग थे। सवेरे कार्पोरेशन की गाड़ियाँ आतीं और सड़क पर से मृतकों की लाशें उठा ले जातीं। इस दयनीय परिस्थिति में आर्यसमाज के सीमित साधनों से जो कुछ भी सम्भव हो सका वह किया गया। आर्यसमाज मन्दिर रिलीफ का केन्द्र बन गया। यहाँ के अधिकारी, कार्यकर्त्ता इस सेवा के कार्य में लग गये। इस समय पं० सदाशिवजी शर्मा और श्री सांवरमलजी आदि कलकत्ता के रिलीफ कार्य में आकर जुट गये। एक प्रकार से आर्यसमाज के रिलीफ की सभी शक्ति कलकत्ता को केन्द्र बनाकर रिलीफ कार्य करने लगी। भोजन, वस्त्र, आवास सब कुछ आर्यसमाज की ओर से यथाशक्ति दिया जा रहा था। सार्वदेशिक सभा और पंजाब प्रतिनिधि सभाओं ने उस परिस्थिति में पूरी सहायता की। आर्यसमाज मन्दिर, कन्या विद्यालय सब रिलीफ के स्थल बने रहे।

पूर्वी बंगाल का दुर्भिक्ष

एक कहावत है कि विपत्ति आती है तो अकेले नहीं आती।

बंगाल के साथ यही कुछ हो रहा था। सन् १९४२ ई० की क्रान्ति चल रही थी कि मिदनापुर को समुद्री तूफ़ान ने ध्वस्त कर दिया। अभी यहाँ रिलीफ का कार्य पूरा भी नहीं हो पाया था कि बंगाल का प्रसिद्ध दुर्भिक्ष आ पड़ा। यहाँ भी अभी रिलीफ का कार्य चल ही रहा था कि पूर्वी बंगाल एक बार फिर दुर्भिक्ष की लपेट में आ गया और आर्यसमाज ने अपनी पूरी शक्ति से पूर्वी बंगाल में सेवा का कार्य आरम्भ कर दिया। पूर्वी बंगाल के रिलीफ कार्य का संचालन कलकत्ता में महाशय रघुनन्दन लालजी की देखरेख में हो रहा था। यह एक संयोग की ही बात थी कि जिस समय पूर्वी बंगाल में अकाल पड़ा था उस समय सन् १९४३ ई० में सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में पूर्व से ही आज़ाद हिन्द फौज का स्वतन्त्रता-संग्राम भी चल रहा था। पूर्वी बंगाल में रिलीफ का एक केन्द्र चाँदपुर में खोला गया। वहाँ का कार्य सम्भालने के लिए महाशय रघुनन्दनलालजी ने पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण को भेजा। पंडितजी ने स्वर्गीय उपेन्द्रनाथ घोष के घर पर ही रिलीफ का कार्य आरम्भ कर दिया। यहाँ श्री घोषजी का आवासगृह ही रिलीफ केन्द्र में परिणत हो गया। उन्हींके घर में रिलीफ सोसाइटी का कार्यालय भी खुला। कलकत्ता से रिलीफ की सहायता तो जाती ही थी सार्वदेशिक और पंजाब ने भी बड़ी आदर्श सहायता की थी। पंजाब से बासमती चावल, वस्त्र, कम्बल पर्याप्त मात्रा में गाँठ के गाँठ आने लगे। कई स्वयंसेवक भी पंजाब से आ गये थे। सन् १९४२ ई० की क्रान्ति का अन्तिम चरण होने के कारण कई क्रान्तिकारी इधर-उधर छिपकर भी रह रहे थे। उत्तरप्रदेश के कुछ क्रान्तिकारी नाम बदल कर कलकत्ता पहुँचे थे और आर्यसमाज ने उन्हें रिलीफ कार्य के लिए पूर्वी बंगाल भेज दिया था। एक तरह से उन्हें अभयारण्य मिल गया था। वे लोग अपना सही परिचय नहीं देते थे। इनमें एक अच्छे कार्यकर्ता का परिवर्तित नाम
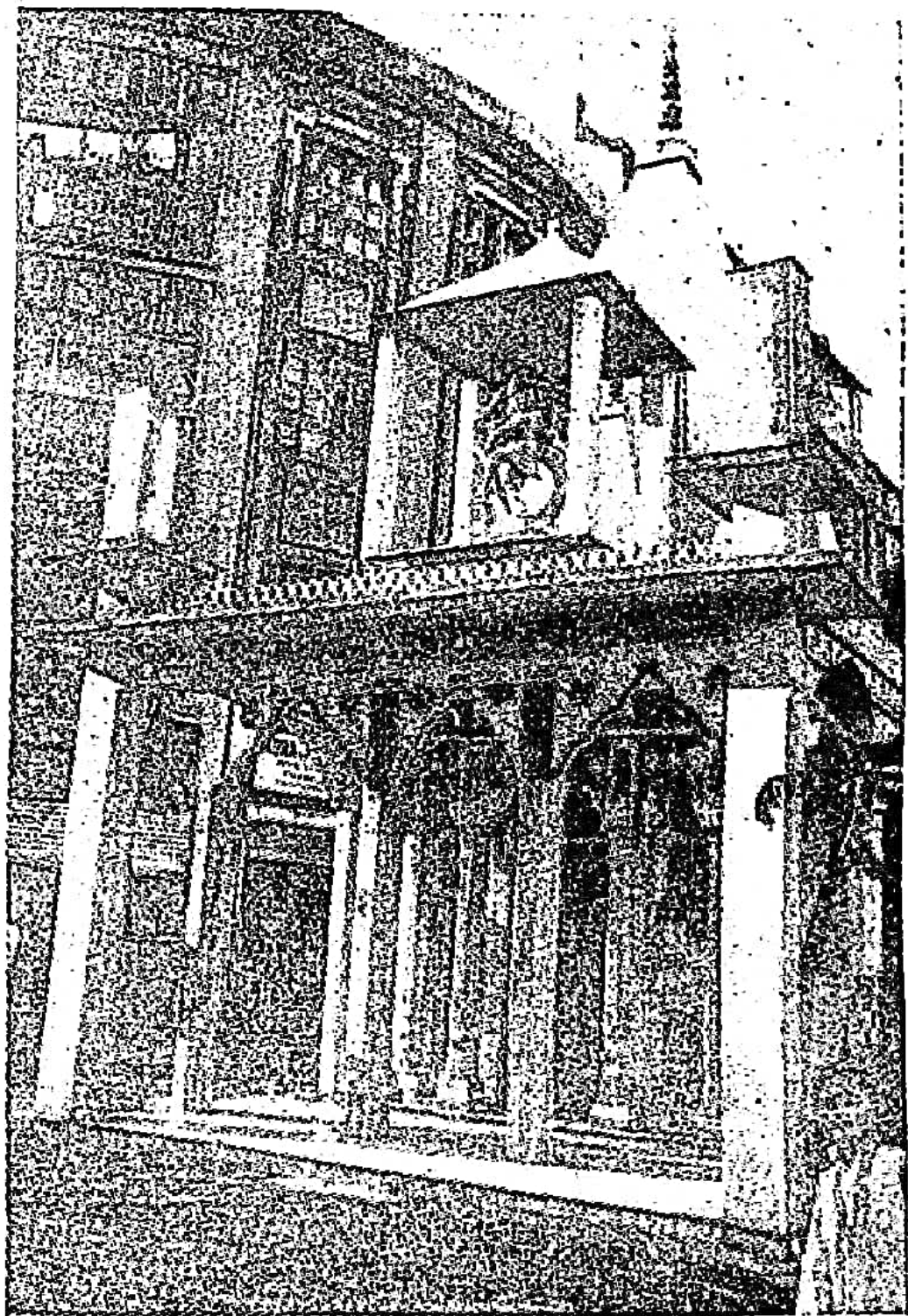
जकरिया स्ट्रीट स्थित शिव मन्दिर, जिसे आर्यसमाजियों ने मुसलमानों के ध्वंसात्मक आक्रमण से बचाया
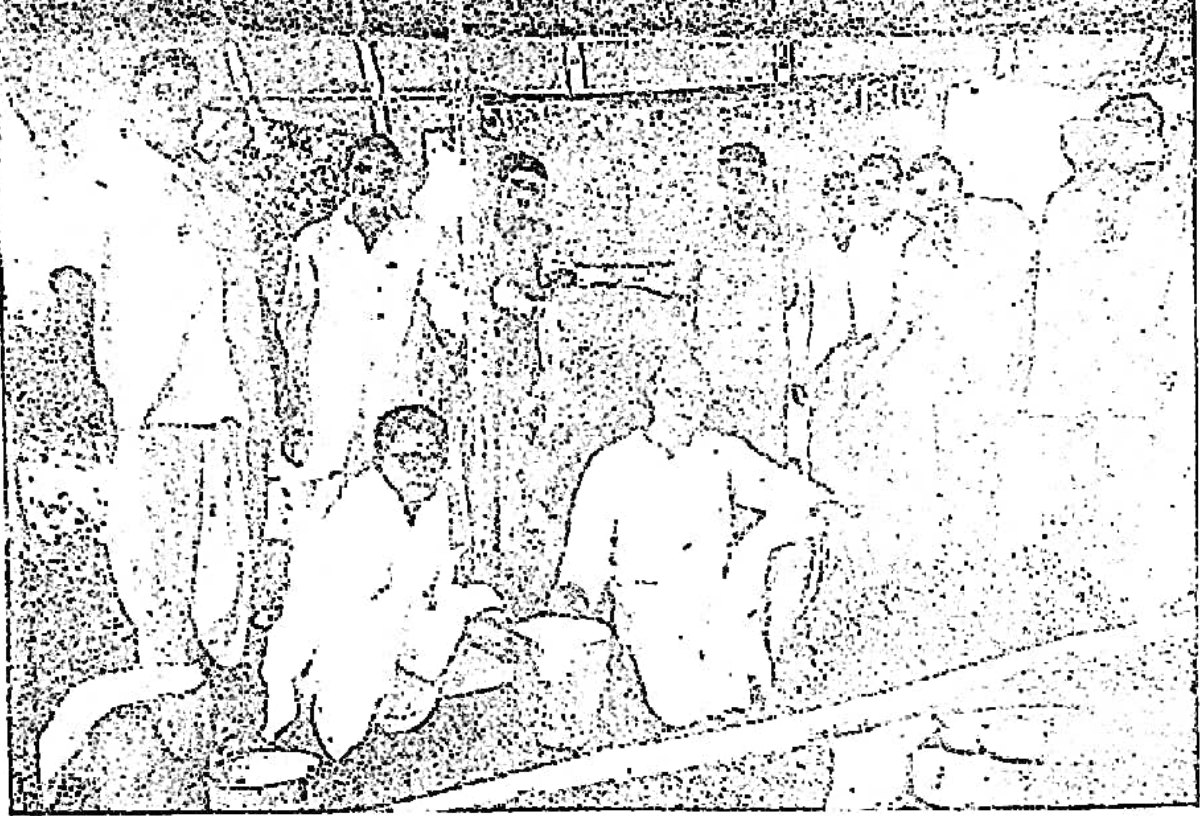
गेन्दे स्टेशन पर शरणार्थी-सहायता-शिविर : सार्वदेशिक के प्रधान
स्वामी ध्रुवानन्दजी के साथ आर्यसमाज कलकत्ता के कतिपय कार्यकर्त्ता
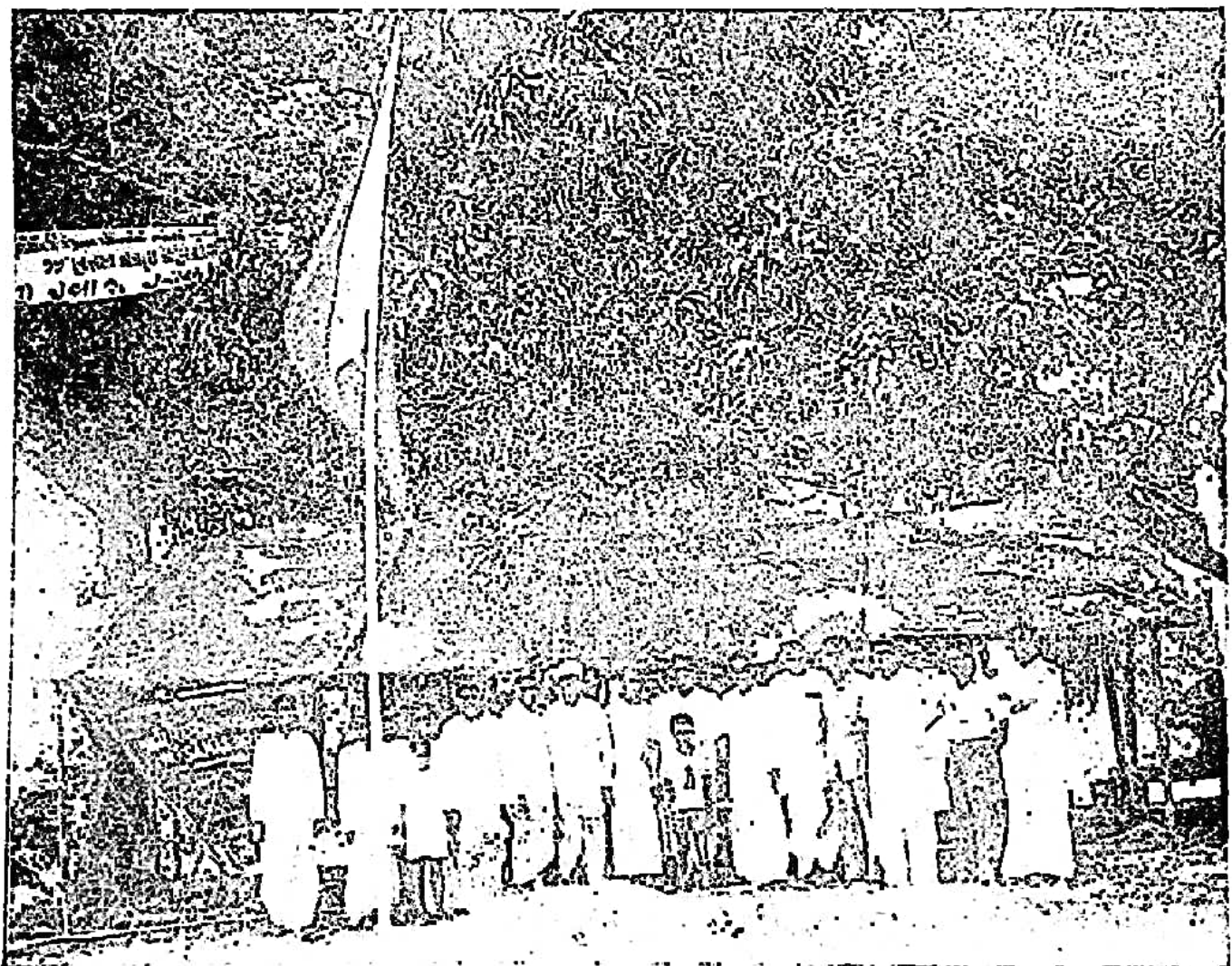
नोआखाली का सहायता-शिविर : आर्यसमाज के कार्यकर्त्ताओं का दृश्य

विश्वनाथ था। शायद वे बलिया के थे और उनका पूर्व का नाम सूर्यवंशपुरी था।

पूर्वी बंगाल का वह रीलिफ-कार्य कष्टसाध्य तो था ही, भयानक और विपद्ग्रस्त भी था। कभी-कभी ८-८, १०-१० मील नाव में चावल-वस्त्र भरकर नदी में यात्रा करनी पड़ती थी। पं० प्रियदर्शनजी ने एक घटना बतायी कि एक रात पं० सदाशिवजी शर्मा, पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण और ऊपरलिखित क्रान्तिकारी श्री विश्वनाथ ८ बजे के करीब नाव में सामान भरकर दश-एक मील दूर किसी गाँव में सहायता करने जा रहे थे। पानी के हिलोरों में जल की थपकी और निशा की नीरवता में तीनों सो गये। नाविक नाव चलाता गया। रात को २-३ बजे विश्वनाथ ने अनुभव किया कि उसकी पीठ में पानी लग रहा है। उसने सबको जगाया। नाव में इतना पानी भर गया था कि वह किसी क्षण भी डूब सकती थी। सबने पानी उलीचना शुरू किया और किसी तरह सबके प्राण बचे। यह एक ओर संयोग तो है, पर दूसरी ओर, इस बात का प्रबल प्रमाण है कि आर्यसमाज के विद्वान् और स्वयंसेवक किस त्याग और बलिदान की भावना से रिलीफ का कार्य कर रहे थे।

बारिशाल और फरीदपुर केन्द्र : रिलीफ का कार्य कुछ अधिक ही उत्साह से हो रहा था। बारिशाल और फरीदपुर में रिलीफ सोसाइटी ने अपने केन्द्र खोले। बसीरहाट और गोपालगंज में रिलीफ का कार्य हो रहा था। यह सारा कार्य तपस्वी विद्वान् पं० सदाशिवजी शर्मा की देखरेख में बड़ी कुशलता से चल रहा था। रिलीफ का कार्य करने के लिये पर्याप्त पैदल चलना पड़ता था और पूर्वी बंगाल तो नदियों का देश है, प्रायः नाव और स्टीमर पर आना-जाना होता था। स्वर्गीय उपेन्द्रनाथ घोष की पत्नी स्वर्गीया विभावतीजी ने गाँव-गाँव घूम कर रिलीफ का कार्य किया था। ननीगोपाल नाग और

हरदयालजी के सुपुत्र मनकुमार नाग ने आर्यसमाज के सहायता केन्द्र में अच्छी सहायता की थी। सर्वेण्ट ऑफ इण्डिया सोसाइटी (Servant of India Society) के कार्यकर्ताओं ने भी आर्यसमाज रिलीफ सोसाइटी के साथ मिलकर इन्हींके तत्त्वावधान में कार्य किया था।

त्रिपुरा में सहायता केन्द्र : त्रिपुरा में अपनी अलग ही समस्या थी। बाढ़, तूफान, अकाल, ये सब समस्याएँ प्रकृति तो भेजती है किन्तु सन् १९४२-४३ ई० की क्रान्ति के दबते-दबते और द्वितीय विश्व-युद्ध समाप्त होते-होते देश का विभाजन, साम्प्रदायिक दंगे इत्यादि सुस्पष्ट परिलक्षित होने लगे थे। सन् १९४६ ई० में नोआखाली, त्रिपुरा आदि इस धर्मान्ध साम्प्रदायिकता के भयानक शिकार हो गये। अग्निकाण्ड, लूटमार, अपहरण, बलात्कार, यह सब जैसे साम्प्रदायिक अन्धेर का सीधा-सा नियम बन गया था। त्रिपुरा में सहासली और मेहरकाली में सहायताकेन्द्र खोल कर रिलीफ कार्य आरम्भ कर दिया गया था।

इधर जब साम्प्रदायिक उत्पात अधिक प्रकाश में आने लगा तो सार्वदेशिक सभा ने भी सहायता कार्य की योजना बनाकर तात्कालिक आर्य वीरदल के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं को कलकत्ता भेज दिया। कलकत्ता की सहायता का विवरण तो हम आगे के पृष्ठों में करेंगे, यहाँ पूर्वी बंगाल और त्रिपुरा का विशेषरूप से प्रसंग है।

सार्वदेशिक सभा की सक्रियता : ऐसे विपत्ति के क्षणों में सार्व-देशिक सभा तत्काल सक्रिय हो उठी। सभा की ओर से श्री ओम् प्रकाशजी पुरुषार्थी अपने आर्यवीरों के जत्थे के साथ कलकत्ता भेज दिये गये थे। सार्वदेशिक सभा की ओर से रिलीफ कार्य के लिये अपील प्रकाशित की गयी। इस अपील के फलस्वरूप रिलीफ कार्य के लिये एक लाख रुपये से अधिक की धनराशि प्राप्त हुई और रिलीफ

के कार्य पर व्यय की गयी। स्थानीय कार्यकर्त्ताओं के साथ आर्यवीर दल के सैनिक इन सहायता कार्यों में कई महीने लगे रहे।

कलकत्ता के अतिरिक्त बंगाल के पूर्वाञ्चल में आर्यसमाज की सहायता के सात केन्द्र बनाये गये थे। इन सातों केन्द्रों में सहायता-कार्य निम्न कार्यकर्त्ताओं की देखरेख में होता रहा—

(१) पं० सदाशिवजी शर्मा, पंजाब (पीछे ये यहीं बंगाल में ही रह गये)

(२) पं० वीरेन्द्रजी, उत्तर प्रदेश

(३) मेहता सांवलदासजी, दयानन्द सालवेशन मिशन

(४) पं० सुरेन्द्र कुमारजी, बंगाल

(५) श्री ज्योति स्वरूपजी, बंगाल

(६) श्री भुवनमोहन देव शर्मा, बंगाल

(७) श्री मानकरणजी, बंगाल

इन सब केन्द्रों पर देखभाल का कार्य श्री ओम् प्रकाशजी पुरुषार्थी करते रहे। कार्यों के महत्त्व और परिस्थिति की गम्भीरता को देखते हुए सार्वदेशिक सभा के जीवनदानी कार्यकर्त्ता राजगुरु श्री धुरेन्द्रजी शास्त्री, परोपकारिणी सभा अजमेर के श्री चांदकरणजी शारदा, अखिल भारतीय कार्यकर्त्ता श्री स्वामी अभेदानन्दजी महाराज (बिहार) आदि नेताओं ने समय-समय पर इस क्षेत्र का दौरा किया और इन केन्द्रों का निरीक्षण किया। इससे एक ओर स्वयंसेवकों ने अधिक उत्साह से कार्य किया तो दूसरी ओर सारे देश का ध्यान इस सहायताकार्य की ओर आकृष्ट हो गया। दिल्ली और पंजाब से अन्न-वस्त्र बड़ी प्रचुर मात्रा में आया था। अनुमान है कि इन केन्द्रों पर एक लाख रुपये से अधिक नक़द की सहायता के अतिरिक्त दो हजार मन से भी अधिक चावल, दाल आदि अन्न वितरित किये गये थे। परिवारों को कपड़े

बाँटे गये, विधवाओं एवं अन्य प्रकार से असमर्थ व्यक्तिओं को मासिक सहायता भी दी जाने लगी।

इस सहायता-कार्य में केन्द्र स्थान दिल्ली के अतिरिक्त भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में, आर्यसमाजियों तथा अच्छी संख्या में गैर आर्यसमाजिओं ने भी प्रचुर सहायता की थी।

सिलहट केन्द्र : नोआखाली का साम्प्रदायिक दंगा अपने ढंग का बेजोड़ ही हुआ था। मारपीट, अग्निकाण्ड, बलात्कार, सब दृष्टि से बेजोड़ था। नोआखाली से हिन्दू भागने लगे। भाग निकलना भी दूभर हो गया। जबरदस्ती धर्म नष्ट कर देना, मुसलमान बना लेना साधारण-सा कार्य हो गया था। छिन्नमूल हिन्दू कई जगहों को भाग-भागकर जा रहे थे। पर्याप्त संख्या में नोआखाली के हिन्दू भागकर सिलहट पहुँचने लगे। पहले तो लोगों ने यह सोचा कि उन्हें फिर से नोआखाली में बसा दिया जाय, किन्तु गाँधी जी समेत सभी नेताओं की चेष्टा विफल रही।

नोआखाली के साम्प्रदायिक दंगे के मध्य एक ऐसी घटना घटी जो घटना की दृष्टि से तो ऐसी थी कि वैसी सैकड़ों घटनाएँ रोज घट रही थीं, किन्तु इतिहास की दृष्टि से इस घटना का पर्याप्त महत्त्व है। नोआखाली के दंगे के समय महात्मा गाँधी भी वहाँ गये हुये थे। उनके साथ छोटेमोटे नेता और स्वयंसेवक तो थे ही, साथ ही, श्रीमती सुचेता कृपलानी भी गयी हुई थीं। आर्यसमाज के दीवाने आर्यवीरों के रहते मुसलमान गुण्डों की गुण्डा-गिरी काफी नियन्त्रित हो चुकी थी। फिर भी वे श्रीमती सुचेता कृपलानी को गायब कर देना चाहते थे, जिससे एक अन्तर्राष्ट्रीय धड़ाका हो जाता। काँग्रेस और आर्यसमाज के कैम्प साथ-साथ बने हुए थे, अतः मुसलमान गुण्डों के लिए सुचेताजी को चुरा ले जाना आसान काम न था। मुसलमान लोग गाँधीजी के और सुचेताजी के कान भरते

रहते और आर्यसमाज की शिकायतें किया करते। सुचेताजी ने इस शिकायत की चर्चा ओम् प्रकाश त्यागी से भी की। त्यागीजी ने मुसलमानों की नियत साफ न होने की बात भी सुचेताजी को बता दी। एकाध दिन पीछे ही मुसलमान गुण्डों ने सुचेताजी के आश्रम पर धावा बोल दिया और जबरदस्ती वे उन्हें निकाल ले जाने की योजना में थे ही कि आर्यसमाज के कैम्प में समाचार पहुँचा। श्री ओम् प्रकाश त्यागी के नेतृत्व में आर्यवीर सैनिक 'ओ३म्' ध्वज के साथ पूरी तैयारी से बात-की-बात में कांग्रेस के कैम्प के सामने सुचेताजी को बचाने के लिए पहुँच गये और गुण्डों की योजना सफल न हो सकी। सुचेताजी को तो इस घटना से प्रभावित होना ही था, साथ ही आर्यवीरों की प्रतिष्ठा भी बहुत बढ़ गयी।

नोआखाली में मुसलमानों की उग्रता, धर्मान्धता इतनी बढ़ गई थी कि वे लौटे हुए हिन्दुओं को बसने नहीं देना चाहते थे। इससे मुसलमानों को आर्थिक लाभ तो था ही, साथ ही निकट भविष्य में देश का विभाजन दिखाई पड़ रहा था। नोआखाली को पूर्वी पाकिस्तान में जाना ही था। हिन्दू भी धन-सम्पत्ति से हीन तो हो ही गये थे, अब किसी तरह उन्हें अपना धर्म और अपने परिवार को बचाने की चिन्ता लग रही थी। जो लोग सिलहट भाग कर आये, उनके लिए सिलहट में ही एक सहायता केन्द्र खोला गया। कलकत्ता के आर्यसमाज ने अपने परखे हुए सफल कार्यकर्त्ता पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण को सिलहट केन्द्र पर भेज दिया और यह केन्द्र पं० प्रियदर्शनजी की देख-रेख में चलने लगा।

चौमोहानी केन्द्र : नोआखाली के उत्पात से प्रताड़ित लोगों को जहाँ भी शरण मिलती वहीं पहुँचने की चेष्टा करते। आर्यसमाज ने अपना एक केन्द्र चौमोहानी में भी खोला था। इस केन्द्र की व्यवस्था श्री भुवनमोहन देवजी शर्मा के सुपुर्द की गई थी। बंगाल के स्थानीय

स्वयंसेवकों के साथ अन्य प्रान्तों से भी सहायतार्थ स्वयंसेवक इन केन्द्रों पर आ गए थे।

सीधी कार्यवाही और देश का विभाजन

जिस समय बंगाल अकाल से जूझ रहा था और बंगाल के मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में हिन्दू सब प्रकार से प्रताड़ित एवं छिन्नमूल हो रहे थे उस समय दुर्भाग्य की एक और बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना है कि बंगाल में सुहरावर्दी लीगी मिनिस्ट्री सरकार शासनरत थी। सन् १९४६ ई० में मुस्लिम लीग ने सीधी कार्यवाही की घोषणा की। नोआखाली आदि मुस्लिमबहुल क्षेत्रों में हिन्दू प्रताड़ित, अपमानित, धर्मभ्रष्ट, घरद्वारहीन हुए ही, कलकत्ता में भी मुस्लिम सरकार की सहायता से हिन्दुओं पर गज़ब का जुल्म ढाया गया। मुस्लिमबहुल मोहल्लों में हिन्दू हज़ारों की संख्या में फँस गये थे। एक ओर उनको निकाल कर सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने की समस्या थी तो दूसरी ओर इस प्रकार शरणार्थी बने लोगों को भोजन, वस्त्र और उससे भी बढ़ कर रहने की जगह देने का प्रश्न था। जकरिया स्ट्रीट और कोल्हू-टोला के बहुतेरे सारे हिन्दू ग़रीब और अमीर, छोटे या बड़े अच्छी खासी संख्या में चित्तरंजन एवेन्यू स्थित आर्यसमाजी परिवार—पोद्दारों के मकान में इकट्ठे हो गए। वहाँ से उन्हें सुरक्षित रीति से आर्य-समाज मन्दिर भेजा गया। कुछ लोग सीधे ही आर्यसमाज मन्दिर भागकर पहुँचे थे। केलाबगान का इलाका तो आर्यसमाज मन्दिर के पास ही है। आर्यसमाज मन्दिर और कन्या विद्यालय का भवन पूर्णरूप से शरणार्थी शिविर बना दिया गया था। पार्क सर्कस, मल्लिक बाज़ार, राजा बाज़ार, तिरहट्टी इत्यादि मुस्लिम मोहल्लों से हिन्दुओं को बसों और ट्रकों में भर-भर कर आर्यसमाज मन्दिर पहुँ-चाया जा रहा था। मल्लिक बाज़ार के आर्यसमाज के युवक कार्यकर्त्ता श्री रामलखन गुप्त अपने दो-चार साथियों के साथ हिन्दुओं को ट्रकों

पर लेकर आर्यसमाज मन्दिर पहुँचाने में बड़ी वीरता से जुटे थे। इसी प्रकार श्री ए० आर० भारद्वाज और उनके पुत्र श्री प्रकाश चन्द पोद्दार, आर्यवीर दल के दूसरे और सैनिक रातोदिन इस कार्य में लगे थे। आर्य कन्या विद्यालय के दोनों ड्राइवर—सरदार स्वर्ण सिंह और सरदार करतार सिंह, चपरासी और कन्या विद्यालय के दरवान हृदय नारायण झा इत्यादि प्राणों की बाजी लगाकर हिन्दुओं को निकालने और आर्यसमाज मन्दिर पहुँचाने में लगे थे।

आर्यसमाज मन्दिर शरणार्थी शिविर तो बना ही दिया गया था। खिचड़ी, चूड़ा, भूजा, सत्तू जो कुछ भी हो सकता था वह शरणार्थियों

श्रीमती कौशल्या देवी हांडा

को प्रेम से खिला दिया जाता था। विपत्ति के दिनों में इन बातों का कुछ अधिक महत्त्व न था। वे दिन आर्यसमाज के जीवनदानी

कार्यकार्त्ताओं की याद दिलाते हैं। श्री हंसराज हाण्डा और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कौशल्या देवी हाण्डा, महाशय रघुनन्दनलाल, श्री सौदागरमल चोपड़ा, श्री ए०आर० भारद्वाज जैसे आर्यसमाज के दीवाने कार्यकर्त्ताओं की रातोदिन की सेवा इतिहास का अंग बन गयी है। किसने क्या किया, और कितना किया, यह कहना बहुत कठिन है, पर यह आसानी से कहा जा सकता है कि जो कोई जो कुछ भी कर सकता था उसने वह सब कुछ करने में कोई कसर नहीं लगा रखी। इन सब कार्यकर्त्ताओं के बीच से श्रीमती कौशल्या देवी हाण्डा की छवि अविस्मरणीय रूप से आँखों में नाच उठती है। आंचल खोंसे, कछाड़ मारे, मर्दाना भेष में सन्नद्ध यह देवी शरणार्थिओं को परोसना, खिलाना, उनकी झिड़कियों को भी प्यार से मुस्करा कर सह लेना, यह सब आज गौरवपूर्ण संस्मरण के रूप में रह गया है।

हावड़ा स्टेशन पर शरणार्थी शिविर

एक ओर स्वतन्त्रता आयी तो दूसरी ओर उसीकी पीठ पर कालिमा लगाये देश-विभाजन की घटना भी घट गयी। पंजाब के शरणार्थी तो दिल्ली पहुँचे, किन्तु पूर्वी बंगाल के शरणार्थी कलकत्ता पहुँच रहे थे। यह स्वाभाविक भी था, अवश्यम्भावी भी था। ये शरणार्थी इतनी बड़ी संख्या में आ रहे थे कि कलकत्ता के गलीकूचे इनसे भर गये थे। आने वालों को हावड़ा और सियालदह स्टेशनों पर संभालने की बड़ी आवश्यकता थी। उनकी परिस्थिति की कल्पना से मन सिहर उठता है। धन-सम्पत्ति, जमीन, मकान उनका लुट गया था। किसी की इज्जत लुट गयी थी तो किसी के परिवार के सदस्य हत्या के शिकार हो गये थे। कोई स्वयं चोट खाये, घाव लिये और घायल बालबच्चों को लिये हुए स्टेशन पर उतर रहा था, उस समय उनको एक गिलास पानी देना भी बड़ी भारी सहायता की बात थी। शरणार्थियों को विभिन्न शरणार्थी शिविरों में पहुँचाना, औषधि देना,

उपचार करना इत्यादि सभी तरह के कार्य अपना महत्त्व रखते थे। आर्यसमाज के सैकड़ों स्वयंसेवक इस दिशा में सक्रिय हो गये थे। ये सारे स्वयंसेवक और सहायतादाता आर्यसमाजी ही नहीं थे, हिन्दू समाज का बड़ा भारी संगठन आर्यसमाज के पीछे खड़ा होकर धन-जन से सहायता कार्य कर रहा था। आर्यसमाज मन्दिर तो शरणार्थी शिविर बना ही रहा, हावड़ा स्टेशन पर आर्यसमाज ने अपना एक और कैम्प खोल दिया। स्टेशन के उत्तर-पूरब कोने पर आर्य-समाज के स्वयंसेवक २४ घण्टे सेवारत रहने लगे। प्रधान कार्य था शरणार्थिओं को कुछ खिलाने की व्यवस्था करना। बड़े-बड़े हण्डों में खिचड़ी वहीं बनती और वहीं शरणार्थिओं को खिलायी जाती। यह रातोदिन का कार्य था। एक-एक बैच में २५-३० स्वयंसेवकों की आवश्यकता रहती थी। इस शिविर में श्रीमती कौशल्या देवी हाण्डा की छवि पुनः एक बार अपने बलिदानी रूप में दिखाई पड़ती है। यह सारा कार्य एक लम्बे समय तक चलता रहा।

विलोनिया केन्द्र

मुस्लिम लीग की सीधी कार्यवाही और विभाजन के फलस्वरूप नोआखाली में जो उत्पात मचा उसकी चर्चा हम कर आये हैं। इधर देश-विभाजन के पश्चात् भारत सरकार तो यह चेष्टा कर रही थी कि भारतवर्ष के मुसलमान भारतवर्ष को अपना देश समझें और यहाँ सुरक्षित रहें, किन्तु पाकिस्तान की सरकार और वहाँ के मुसलमान इस बात पर दृढ़तापूर्वक योजनाबद्ध रीति से लगे हुए थे कि हिन्दुओं को चुन-चुन कर पाकिस्तान से निकाल दिया जाय। इससे पाकिस्तान के मुसलमान धन, भूमि और मकान पाते थे। वे लड़कियों को छीन लेते थे। हिन्दुओं को बलात् धर्मभ्रष्ट कर देने में उनके धर्म का पालन और बहिश्त का लाभ होता था। इतने सारे आकर्षणों की भूमिका में हिन्दू पाकिस्तान में किस प्रकार रह सकते थे। अपनी इज्जत लेकर,

परिवार लेकर मरते-जीते जैसे-तैसे कुछ लोग पाकिस्तान की सीमा के बाहर पहुँच ही जाते थे। कुछ लोग कलकत्ता की ओर आये तो कुछ लोग पूर्वी पाकिस्तान की सीमा पार करके विलोनिया नामक स्थान में पहुँच गये। इनमें से काफी लोग नोआखली से उजड़े छिन्न-मूल होकर एक नई धरती बसा रहे थे। आर्यसमाज ने अपना रिलीफ का कार्य वहाँ भी आरम्भ किया। वैसे तो रिलीफ के हर कार्य में आर्यसमाज कलकत्ता अपना पूरा अंश उदारता से पूर्ण करता था, बाहर के केन्द्रों पर भी आर्यसमाज कलकत्ता यथाशक्ति कार्य करता ही रहता था, किन्तु विलोनिया का केन्द्र आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल के संरक्षण में कार्य कर रहा था। पं० सदाशिवजी शर्मा ने यहाँ का कार्य बड़ी योग्यता और परिश्रम से किया था। पं० सदाशिवजी शर्मा ने यहाँ एक आश्रम बनाया। त्रिपुरा राज्य की ओर से यहाँ आर्यसमाज को भूमि मिल गयी थी। यह सब जंगल प्रदेश था और पं० सदाशिवजी ने यहाँ आर्यसमाज का आश्रम बनाया। यहाँ से शरणार्थियों की सहायता होती रही। दातव्य औषधालय और वाचनालय (हिन्दी) यहाँ आरम्भ किया गया। अनरस की खेती भी आरम्भ की गयी। यहाँ की देखभाल के लिए पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण और सार्वदेशिक सभा के कार्यकर्त्ता श्री ओमप्रकाशजी त्यागी गये थे। श्री वटुकृष्णजी वर्मन और श्री जंगीलालजी आदि कार्यकर्त्ता भी समय-समय पर इस आश्रम की देखभाल करते रहे। इस सहायता-केन्द्र की सहायता के लिए भारत एयरवेज़ कम्पनी की ओर से रिलीफ कार्य के सहयोग में सिंगल टिकट डबल जरनी (Single Ticket Double Journey) की सहायता दी गयी। इससे रिलीफ के कार्य में बड़ी सुविधा मिली।

बानपुर केन्द्र

पूर्वी पाकिस्तान से उजड़े-घायल हिन्दू पाकिस्तान की सीमा पार कर बड़ी तेजी से बानपुर भी आने लगे। आर्यसमाज रिलीफ

सोसाइटी ने बानपुर में होगला का आश्रम सहायता-शिविर के रूप में बनाया। यहाँ भी हज़ारों की संख्या में लोगों को अन्न, वस्त्र, बर्तन आदि दिये गये। भाई वनमालीरावजी पारिख के अथक परिश्रम का सुफल था कि आर्यसमाज रिलीफ सोसाइटी को थाली, लोटा, गिलास, चद्दर, कम्बल आदि बहुत बड़ी मात्रा में मिलते रहे।

सुन्दरवन का केन्द्र

आर्यसमाज रिलीफ सोसाइटी का एक केन्द्र सुन्दरवन में भी खोला गया था। इस केन्द्र पर सहायता का कार्य सबसे अधिक कठिन था। सुन्दरवन का दलदली केन्द्र, वर्षा का समय, बाढ़ का प्रकोप, सब कुछ विपरीत पड़ रहा था। वहाँ के कार्य की कठिनता को देखकर तपस्वी सेवक भाई बनमालीरावजी पारिख सहायतार्थ गये, किन्तु स्वास्थ्य और शरीर ने भावनाओं और उत्साह का साथ न दिया। वे वहाँ जाकर भयानक रूप से मलेरिया ज्वर से पीड़ित हो गये। फिर भी श्री वनमालीरावजी ने हिम्मत नहीं हारी थी। सुन्दरवन की कार्य की गुरुता के ख़याल से सार्वदेशिक सभा की ओर से राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्रीजी ने सुन्दरवन शरणार्थीशिविर का दौरा किया। उनके साथ आर्यसमाज कलकत्ता से पं० श्री प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण गये हुए थे। सुन्दरवन में आर्यसमाज की सहायता का कार्य मोटर लंच की सहायता से भी किया जाता था। भाड़े पर स्टीमर लेकर हसनाबाद से संदेशखाली तक की परिस्थिति का प्रत्यक्ष जायज़ा लेकर रिलीफ का कार्य सफलतापूर्वक किया गया।

आसाम का भूकम्प

आसाम के भूकम्प के समय आर्यसमाज का सहायता-केन्द्र डिब्रूगढ़ में खोला गया। इस कार्य में श्री मिहिरचन्दजी धीमान ने विशेषरूप से सहायता की। भूकम्प के समय सहायता-कार्य में

श्री विनय सेन, पं० श्री प्रियदर्शन सिद्धान्तभूषण, श्री सुरेन्द्रनाथजी आदि ने सहायता-कार्य किया। ब्रह्मपुत्र नदी के उस पार भी रीभिस्मी पहाड़ी इलाकों में सहायता कार्य किया गया। यहाँ हाथी की पीठ पर सहायता सामग्री लादकर शरणार्थियों के पास पहुँचायी जाती थी। इस कार्य में श्री सार्वदेशिक सभा ने श्री ओमप्रकाशजी त्यागी को भेजा था। श्री त्यागीजी ने डिब्रूगढ़ केन्द्र पर सहायता का अच्छा कार्य किया था।

सेवाकार्य के परवर्ती चरण

बंगाल नदियों का प्रदेश है। यहाँ प्रायः बाढ़ आती ही रहती है। इन कार्यों में बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में विशेषरूप से मिदनापुर के क्षेत्र में कार्य होता रहता था। पं० दीनबन्धु वेदशास्त्री, महाशय रघुनन्दन, श्री सौदागरमल चोपड़ा, श्री ए० आर० भारद्वाज, श्री रुलियाराम गुप्त इत्यादि इन कार्यों में आगे होकर कार्य करते रहे।

पूर्वी पाकिस्तान के समीप होने के कारण शरणार्थियों का कलकत्ता आना जाना लगा ही रहता था और समयानुकूल आर्यसमाज की ओर से यथाशक्ति सहायता दी जाती रही।

पूर्वी बंगाल से विस्थापितों की सहायता

सन् १९७०-७१ में एक बार फिर कुछ अधिक ज़ोर से पूर्वी बंगाल से विस्थापित होकर लोग कलकत्ता के पास आ गये। सरकार ने चटाई आदि की झोपड़ियाँ बनवा दीं और शरणार्थी इन शिविरों में दुःख के दिन काटने लगे। जून सन् १९७१ ई० में श्री ओम् प्रकाशजी त्यागी शरणार्थियों की परिस्थिति का जायज़ा लेने के लिए कलकत्ता पधारे। उन्होंने विस्थापितों के शिविरों का निरीक्षण किया। उनकी दशा बड़ी शोचनीय थी। सैकड़ों बच्चे अनाथ स्थिति में थे। इन अनाथ बच्चों पर अन्य धर्मावलम्बी विशेषरूप से ईसाई मिशनरी

सोसाइटियों की निगाह भी थी। सारी परिस्थिति को देखकर श्री त्यागीजी के परामर्श से सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के अन्तर्गत आर्यसमाज कलकत्ता में आर्यसमाज रिलीफ सोसाइटी का गठन किया गया। इस रिलीफ सोसाइटी का गठन निम्न प्रकार था :—

प्रधान : श्री वनारसी दासजी अरोड़ा (प्रधान, आर्यसमाज कलकत्ता)

मन्त्री : श्री मोहनलालजी अग्रवाल (उपमन्त्री, आर्यप्रतिनिधि सभा बंगाल)

संयुक्त मन्त्री : श्री सत्यानन्दजी आर्य (कोषाध्यक्ष, आर्यसमाज कलकत्ता)

कोषाध्यक्ष : श्री सत्यनारायणजी अग्रवाल (आर्यसमाज हावड़ा)

इन अधिकारियों के अतिरिक्त प्रायः सभी समाजों के कार्यकर्त्ता इस समिति के सदस्य रहे। श्री गजानन्दजी आर्य, श्री श्रीरामजी जायसवाल, श्री रुलियारामजी गुप्त, श्री छबीलदासजी सैनी, श्री वटुकृष्णजी वर्मन, श्री पूनमचन्दजी आर्य इत्यादि अनेक लोगों की एक अच्छी टीम बन गयी। सार्वदेशिक सभा ने लगभग तीन हजार अदद वस्त्र सहायता कार्य के लिए भेजा। इस कार्य में आर्यसमाज भारत सेवक आश्रम के सहयोग से कार्य करता रहा।

इस समय पूर्वी बंगाल में पश्चिमी पाकिस्तान के मुसलमानों का अत्याचार कुछ अधिक ही बढ़ गया था। उस समय पूर्वी बंगाल पूर्वी पाकिस्तान का रूप बदल कर बंगलादेश बनना चाहता था। पश्चिमी पाकिस्तान और बिहारी मुसलमानों को पाकिस्तानी शासन से भी सुविधा मिल रही थी। यह संघर्ष तो बंगलादेश के मुसलमानों के साथ पश्चिमी पाकिस्तान की सेना और मुसलमानों ने आरम्भ किया था, किन्तु बंगलादेश का हिन्दू इस संघर्ष में भी अधिक प्रताड़ित हुआ। यह

समस्या राष्ट्रीय स्तर पर उभरी थी और यह रिलीफ का कार्य भी राष्ट्रीय स्तर पर सार्वदेशिक सभा की पहल पर आरम्भ हुआ था। सार्वदेशिक सभा ने ३,००० रुपये और ३,००० अदद वस्त्र की सहायता सर्वप्रथम भेजी। श्री ओम्प्रकाशजी त्यागी की देखरेख में रिलीफ का कार्य चल पड़ा। सरकारी स्तर पर भी कार्य होता रहा, अतः व्यक्तिगत रूप में आर्यसमाज या भारत सेवासंघ रिलीफ का कार्य करता रहा।

सर्दी के दिनों में शरणार्थियों की समस्या कुछ अधिक बढ़ गयी। कैम्पों में शीत का प्रकोप अधिक होता ही है, फिर गर्म कपड़े, कम्बल, रजाई आदि महँगी चीज़ें हैं, इनकी व्यवस्था जल्दी नहीं हो पाती। आर्यसमाज रिलीफ सोसाइटी ने इस दिशा में ध्यान दिया। भोरुका चैरिटेबुल ट्रस्ट ने रजाइयों के निमित्त १,३०० रुपये दिये और श्री प्रभुदयाल जी अग्रवाल (ट्रान्सपोर्ट कारपोरेशन ऑफ इण्डिया) ने व्यक्तिगत रुचि दिखा कर इस कार्य को प्रगति दी। रोड ट्रान्सपोर्ट कारपोरेशन के श्री ब्रह्मानन्दजी गोयल ने १६० कम्बल खरीद कर रिलीफ कार्य के लिए दिये। इस तरह इस आवश्यक दिशा में कुछ बल आ गया और कार्य आगे बढ़ निकला।

शेमुलतल्ला आमबगान में सहायता कार्य

कार्य को सुचारु रूप से करने की दृष्टि से परिस्थिति का जायज़ा लेने के लिये रिलीफ सोसाइटी ने आर्यसमाज के महोपदेशक पं० वाचस्पतिजी शास्त्री (आगरा वाले) को भेजा। श्री वाचस्पतिजी शास्त्री ने ब्रह्मचारी चेतनानन्दजी के सहयोग से कैम्पों का निरीक्षण किया और एक-एक परिवार की आवश्यकताओं का आकलन किया। कृष्णनगर के निकट शेमुलतल्ला आमबगान में ५८ कैम्पों में ३२५ परिवार शरणार्थी बनकर आश्रय ले रहे थे। पं० वाचस्पतिजी शास्त्री ने सारी परिस्थिति का अध्ययन कर इन कैम्पों में सहायता-कार्य आरम्भ किया। रिलीफ सोसाइटी के मन्त्री श्री मोहनलालजी अग्रवाल की

सूचना के अनुसार इस सहायता-कार्य का उद्घाटन भी पं० वाचस्पतिजी शास्त्री के द्वारा ही कराया गया। इन कैम्पों में ३५० रजाइयाँ और १५० गर्म कोट बच्चों को बाँटे गये। राजस्थान से १,००० अदद वस्त्रों का बण्डल आया था। वे वस्त्र भी इन कैम्पों में वितरित किये गये। स्थानीय लोगों में श्री पुनमचन्दजी आर्य, श्री सत्यनारायणजी अग्रवाल, श्री राजकुमारजी धनानिया आदि लोगों ने सहयोग किया था।

साल्टलेक क्षेत्र में सहायता-कार्य

शेसुलतल्ला आमबगान शाखामें सहायता-कार्य के अनुभव के आधार पर साल्टलेक क्षेत्र में सहायता-कार्य की योजना बनायी गयी। उस समय रजाई, कम्बल, गर्म कपड़ों का बाँटना सर्वाधिक महत्वपूर्ण सहायता-कार्य था। इस क्षेत्र में भी पं० वाचस्पतिजी शास्त्री और ब्रह्मचारी श्री चेतनानन्दजी ने कैम्पों का निरीक्षण किया और परिवारों की आवश्यकता का जायज़ा लिया तथा रजाइयाँ बाँटने का काम यहाँ भी किया गया। इस क्षेत्र में ५०० रजाइयाँ और १६० कम्बल वितरित किये गये। ट्रान्सपोर्ट कारपोरेशन ऑफ इण्डिया के मालिक श्री प्रभुदयालजी अग्रवाल के हाथों से यह कार्य कराया गया। हावड़ा के श्री सत्यनारायणजी अग्रवाल ने बहुत कम लागत में रजाइयाँ बनवाने का काम पूरा कर दिया था। कलकत्ता के स्थानीय लोगों में रिलीफ सोसाइटी के प्रधान श्री बनारसी दासजी अरोड़ा, मन्त्री श्री मोहनलालजी अग्रवाल, श्री श्रीनाथदासजी गुप्त, श्री रुलियारामजी गुप्त, श्री श्रीरामजी जायसवाल इत्यादि ने इस सहायताकार्य में सहयोग किया था।

ये शरणार्थी अधिकांशतः बारीसाल और खुलना जिलों से आये थे। इनमें आर्यसमाज का कुछ साहित्य भी वितरित किया गया था। यह बंगला साहित्य आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल और आर्यसमाज कलकत्ता के सहयोग से वितरित किया गया। कुछ शरणार्थियों ने

यज्ञोपवीत संस्कार कराना चाहा था। आर्यसमाज रिलीफ सोसाइटी ने पं० वाचस्पतिजी शास्त्री महोपदेशक से यह कार्य कराने का अनुरोध किया। आदरणीय शास्त्रीजी ने कई युवकों का यज्ञोपवीत संस्कार कराया। रजाई, कम्बल, गर्म कपड़े इत्यादि के अतिरिक्त कई हजार रुपयों का सहायता कार्य चलता रहा। बंगलादेश के स्वतन्त्र होने के पश्चात् ये शरणार्थी अपने मूलनिवास—बंगलादेश को लौटने लगे थे और इस प्रकार यह सहायता कार्य सम्पन्न हुआ था।

स्फुट कार्य

बंगाल में यों तो बाढ़-तूफान आया ही करता है। शायद ही कोई वर्ष ऐसा होगा जब सहायता-कार्य की आवश्यकता न पड़ती हो। अब तो बहुत कुछ सहायता-कार्य सरकार के ऊपर न्यस्त है, अन्यथा प्रतिवर्ष अपने साधन-सुविधाओं के अनुरूप आर्यसमाज कलकत्ता स्थानीय आर्यसमाजों और आर्यसमाजियों तथा अन्य उदार दानी महानुभावों की सहायता से सेवाकार्य निरन्तर करता रहा है।
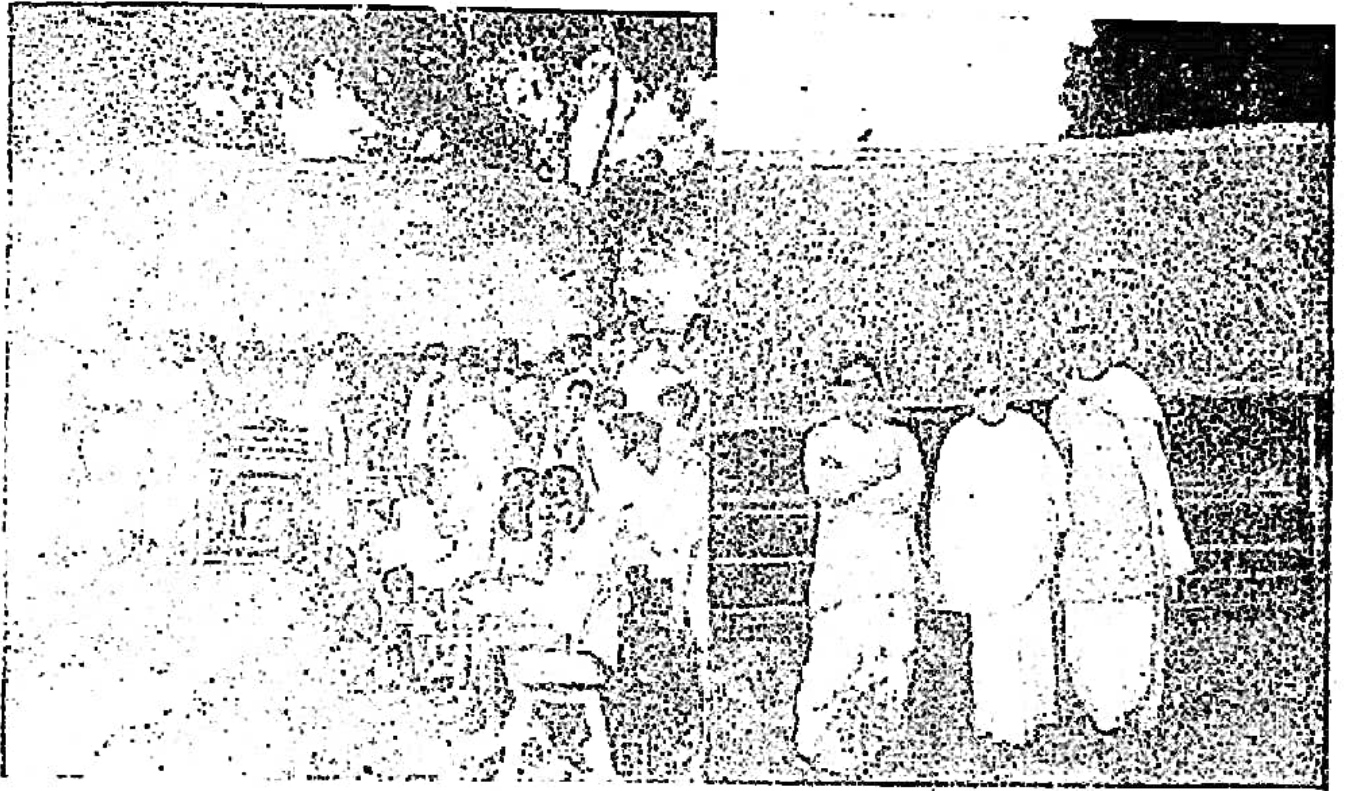
विलोनिया में सहायतार्थ निर्मित आर्यसमाज का आश्रम

सुन्दरवन में अकाल पीड़ितों में सहायताकार्य
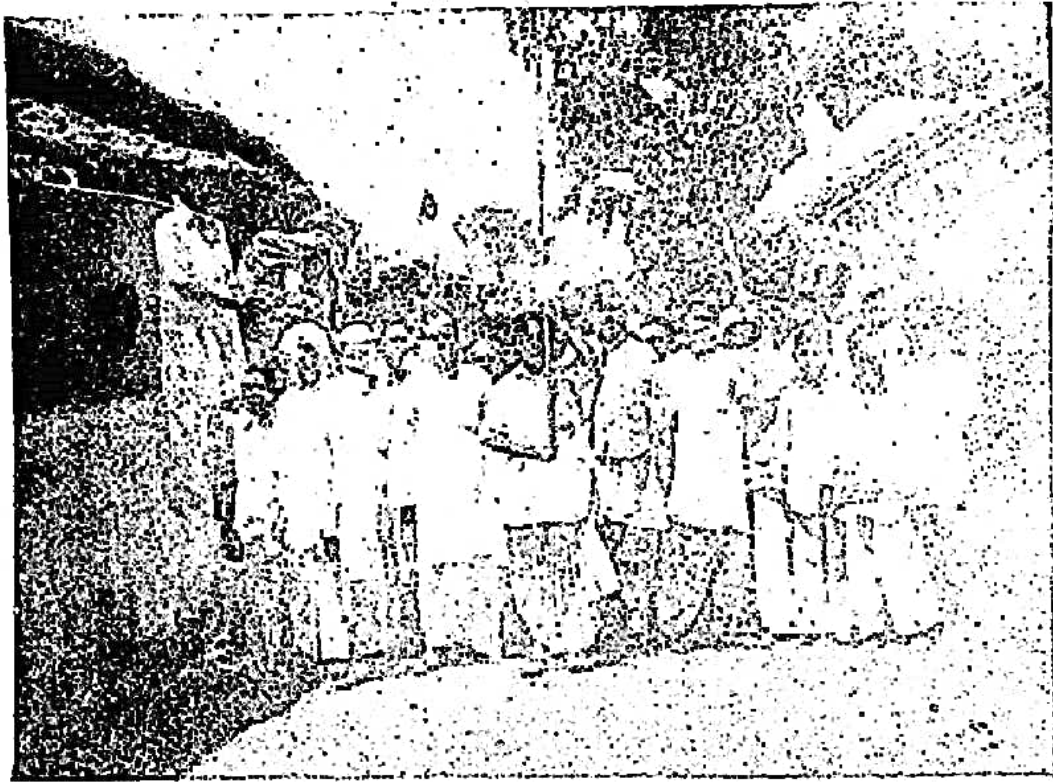
नोआखाली में श्रीमती सुचेता कृपलानी को बचाने के लिए
आर्यसमाज के स्वयंसेवक

असम भूकम्प के समय अगरतल्ला के जंगलों से होकर जीप से
आर्यसमाज कलकत्ता के कार्यकर्त्ताओं द्वारा सहायता-सामग्री पहुँचाना

सप्तम अध्याय

गोवंश के रक्षार्थ प्रयास

कलकत्ता की नेकनामी और वदनामी दोनों अपनी-अपनी जगह पर कुछ अद्भुत-सी रही है। यदि यह देशभक्तों, क्रान्तिकारियों, समाजसुधारकों और विद्वानों की भूमि होने के लिए सन्नाम है तो कलकत्ता का बूचड़खाना इसकी वदनामी में अग्रगण्य है। देश के बहुत से प्रान्तों में स्वतन्त्रता के पश्चात् गोबध पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए आन्दोलन हुए और वे सफल भी हुए। एक-दो जगहों को छोड़ कर अन्य सभी प्रान्तों में गोबध पर प्रतिबन्ध लग भी गया। आन्दोलन तो कलकत्ता में भी कई बार हुए, गोभक्तों ने सत्याग्रह किया, जेल भी गये, गोलियाँ भी चलीं और दो-एक जवानों के प्राण भी गये, किन्तु यह सब कुछ होने के बाद भी कलकत्ता का बूचड़खाना अपनी जगह पर पूरे जोर-शोर से दनदना रहा है। एक प्रकार से अन्य प्रान्तों में गोबध पर लगा हुआ प्रतिबन्ध व्यर्थ-सा हो गया। क्योंकि उन प्रान्तों में गायें खरीद ली जाती हैं और वे कलकत्ता भेज दी जाती हैं। यहाँ न उनकी आयात पर प्रतिबन्ध है और न उनके कटने पर ही प्रतिबन्ध है। बंगाल में एक कानून तो है जिसके अनुसार एक खास उम्र से कम के पशु, स्वस्थ और दुधारु पशु बूचड़खाने में काटे नहीं जा सकते, किन्तु यह शब्दों में ही अधिक है। इसका क्रियात्मक रूप लगभग नगण्य-सा है। अतः बेरोकटोक कसाई अपना व्यापार करते

हैं और गोवंश का खुलेआम कसाईखाने में आना-जाना और कटना चालू है। किसी प्रातःकाल कई निश्चित सड़कों पर बहुत बड़ी संख्या में ले जायी जाती निरपराध-निरीह गायों को देखकर गोभक्तों का हृदय फटता है। पर क्या कांग्रेसी सरकार, क्या संयुक्त मोर्चा सरकार, क्या वामपन्थी मोर्चा की सरकार, किसी सरकार को इन पशुओं पर दया नहीं आयी और इनका वध यथापूर्व चलता चल रहा है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् जब सरकार ने कई प्रकार के जनसेवा के कार्य अपने हाथ में लिये तो एक बड़ा उपयोगी कार्य सरकार ने बृहत्तर कलकत्ता के लिए दुग्धआपूर्ति अपने हाथों में लिया। इसके लिए हरिनघाटा में एक डेयरी खोली गयी, जिसमें दुधारु गायें पाली गयीं। सरकार का काम तो सरकार का ही है। जब गायें सूख जायँ तो उनका खिलाना-पिलाना निरर्थक-सा व्यय समझा जाता रहा। यों तो ग्वाले भी कई बार, बहुधा जब गायें दूध देना बन्द कर देती हैं, तो उन्हें कसाइयों के हाथ बेंच देते हैं। अगला बच्चा देने तक कलकत्ता जैसी जगह में गायों के ऊपर जो खर्चा हो जायेगा वह ग्वालों को कई बार इतना भारी लगता है कि वे अच्छी सुन्दर जवान गायों से छुटकारा पाने के लिए उन्हें कसाइयों के हाथ बेंच देते हैं। दूध देना बन्द कर देने के बाद गायों को खिलाना मँहगा कार्य है और आर्थिक दृष्टि से बुद्धिसंगत नहीं जान पड़ता, ऐसा सरकारी अधिकारियों का संकुचित दृष्टिकोण सदा रहा है। इसलिए वे इन गायों की नीलामी कर देते हैं। सरकार का पशुओं की आयु और स्वास्थ्य के सम्बन्ध में बनाया हुआ कानून, कानून के पन्नों में पड़ा रह जाता है और अच्छी नस्ल की सुन्दर जवान गायें नीलाम होकर कसाईखाने पहुँच जाती हैं। कसाई लोग नीलामी करने वाले आफिसरों को चांदी के कोड़े से पटरिया भी रखते हैं। ये अधिकारी होते तो चाहे हिन्दू ही हैं, पर रुपये के लोभ के सामने इनकी गोभक्ति उड़ जाती है और रुपये पाने

पर नीलाम न होने योग्य गायें नीलाम हो जायँ तो क्या आश्चर्य ? इस प्रकार की सूचनायें सरकार प्रकाशित तो कर देती है, पर इनकी खोजखबर प्रायः कसाई लोग ही रखते रहे, जिनका यह धन्धा है। किसी तरह यह खबर कलकत्ता समाज के अधिकारियों को भी लगी। यह सन् १६६६ ई० की बात है। आर्यसमाज के अधिकारी सजग और सक्रिय हो उठे और नीलामी के समय उन्होंने भी बोली बोली। उस समय नीलाम करने वाले अधिकारी का चकराना और चौकन्ना होना स्वाभाविक था। इन कसाइयों के लाभकारी धन्धे में और अधिकारियों की उस कमाई में आर्यसमाज कहाँ से आकर अटक गया ? एक बार तो ऐसा भी लगा कि आर्यसमाज कसाइयों के सामने बोली बोल कर हरिनघाटा की नीलाम होने वाली गायों को नहीं प्राप्त कर सकेगा।

समस्या केवल नीलामी बोलने की नहीं थी। यों तो सारे गोभक्त आर्यसमाज के पीछे सहायता के लिए खड़े हो गये। काम बड़े उत्साह से आरम्भ होने की योजना भी बनी। गोरक्षा समिति भी बन गयी और उसमें धन एकत्र करना और गायों को छुड़ाना आरम्भ हो गया। समस्या केवल धन की ही नहीं थी। कसाई तो गायों को कटवाकर उनसे लाभ उठा लेते थे। आर्यसमाज गायों को लेकर रखे कहाँ, भेजे कहाँ, दे किसको, इन नीलामी की गायों को पाले कैसे ? पिंजरा-पोल सोसाइटी तो कलकत्ता में ही है, आसपास और भी गोशालायें हैं, पर वे सब कितनी गायें अपने यहाँ रख सकेंगी—ये सब समस्यायें अपनी जगह पर थीं और बोली बोलने में कसाई तो चाहे पीछे रह जाते पर उन्हें, उनके सहयोगी धन के लोभी अधिकारियों का समर्थन प्राप्त था। ऐसा लगा कि चेष्टा करने पर भी आर्यसमाज गायों को न ले आ पायेगा।

उस समय बंगाल के गवर्नर प्रसिद्ध प्रशासक श्री धर्मवीरजी थे। उनका आर्यसमाज से सहानुभूतिपूर्ण सम्बन्ध था। आर्यसमाजियों ने

इस सूत्र को टटोला। वे राज्यपाल भवन में धर्मवीरजी से मिले। प्रशासनिक कार्यों में परम निपुण श्री धर्मवीरजी ने राज्यपाल की हैसियत से तुरन्त यह आदेश दे दिया कि जबतक आर्यसमाज इन गायों को लेता रहे तबतक इनकी सार्वजनिक नीलामी न हो। यह धर्मवीरजी की गोभक्ति और आर्यसमाज के प्रति सहयोग का उत्कृष्ट उदाहरण था। जब यह आदेश हरिनघाटा के नीलामी अधिकारियों को मिला तो उन्होंने निजी तौर पर इसे चुनौती माना और आर्य-समाज के कार्यकर्ताओं को मुँह पर ही सुना दिया कि हरिनघाटा की सरकारी डेयरी से इतनी गायें बेंची जायेंगी कि आर्यसमाज उन्हें खरीदने और व्यवस्थित करने में असमर्थ हो जायेगा। हुआ भी ऐसा ही। कलकत्ता के आर्यसमाजियों के साथ दूसरे गोभक्त भी जुट गये और एक रिपोर्ट के अनुसार ता० १५-५-१६६६ से ता० १२-८-१६६६ ई० तक के ३ महीने की स्वल्प अवधि में ५४,६८० रुपया इस कार्य में लग गया। अन्ततः समाज की शक्ति सम्पूर्ण रूप से इस कार्य में लगा देने पर भी जहाँ एक ओर धन की व्यवस्था का प्रश्न था वहाँ दूसरी ओर इन मृत्यु के मुँह से बचायी गयी गायों को जीवनदान देकर व्यवस्थित करने का प्रश्न कम जटिल और कम व्ययसाध्य न था। होते-होते धीरे-धीरे यह उपयोगी कार्य असामर्थ्यवश अपने आप समाप्त न हो जाय, यह भय होने लगा। ऐसी परिस्थिति में कलकत्ता के गोभक्त व्यक्ति और संगठन एक साथ मिलकर इस कार्य में तत्पर हो गये।

गो-रक्षा जीवदया संघ की स्थापना

इतने बड़े विशाल कार्य को करने के लिये आर्यसमाज कलकत्ता के तत्त्वावधान में 'गो-रक्षा जीवदया संघ' नाम की संस्था बनायी गयी। इसमें आर्यसमाज के कार्यकर्ता तो थे ही, कलकत्ता पिंजरापोल सोसाइटी के कार्यकर्ता, सनातन धर्म के कार्यकर्ता, जैनी, कलकत्ता जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी संघ के कार्यकर्ता, गुजराती संघ के कार्य-

कर्ता आदि सभी का सहयोग मिलने लगा। उस समय आर्यसमाज कलकत्ता के मन्त्री श्री छबीलदासजी सैनी और पिंजरापोल सोसाइटी के मन्त्री श्री गुरुदयालजी बरेलिया ने सभी संस्थाओं से विचार-विमर्श करके सबके सहयोग से बहुत अच्छा कार्य किया। आर्यसमाज कलकत्ता के कार्यकर्ताओं में महाशय श्री रघुनन्दनलालजी, श्री रुलियारामजी गुप्त, श्री पूनमचन्दजी आर्य और श्री श्रीरामजी जायसवाल पर्याप्त रुचि ले रहे थे। श्री गुरुदयालजी बरेलिया, श्री छोटेलाल हरिदासजी गांधी, श्री नगीनदास केशवजी, श्री घासीरामजी राठी, श्री मानसिंहजी, श्री भीमराजजी तुलस्यान आदि ने बड़े उत्साह के कार्य किया था। दानदाताओं में श्री वांगड़जी, टी० सी० आई० के श्री पी० डी० जी अग्रवाल, रोड ट्रान्सपोर्ट कारपोरेशन के श्री घनश्यामजी गोयल और स्व० ब्रह्मानन्दजी गोयल, सूरजमल बैजनाथ के श्री सूरजमलजी और रामकुमारजी आदि लोगों ने अच्छी आर्थिक सहायता की थी। श्री छोटेलाल गांधी की प्रेरणा से धनवाद के श्री यशवन्त राय वोहरा ने इस पुण्यकार्य में २५००० रुपये की सहायता की थी।

इन गायों को ख़रीदना ही समस्या का अन्त न था। ये गायें ख़रीद कर क्या की जायँ, इनका पालन-पोषण, इनकी आगे की व्यवस्था आदि ख़रीदने से भी बड़ा कठिन और झंझट का कार्य था। जो गायें ख़रीदी गयी थीं उनमें लगभग १०० गायें गाभिन थीं तथा १२५ गायें बाद में गाभिन हो गयीं और कोई २०० गायों ने बछड़े भी पैदा कर दिये। सब मिलाकर समस्या कठिन और जटिलतर होती गयी, किन्तु अधिकारियों ने साहस न छोड़ा। उन्होंने पिंजरापोल सोसाइटी के मन्त्री श्री गुरुदयालजी बरेलिया से सलाह करके इन उद्धार की गयी गायों का पालन-पोषण का भार पिंजरापोल सोसाइटी के हवाले कर दिया। सोसाइटी और उसके मन्त्री श्री बरेलियाजी

ने यह गुरुतर भार हर्षपूर्वक उठाया। यह कार्य कठिन तो था ही, साथ ही व्ययसाध्य और श्रमसाध्य भी था। धन की इतनी बड़ी व्यवस्था का प्रवाह अधिक दिनों तक चल भी नहीं सकता था। जितने दिन भी चला और जो कुछ भी इस सम्बन्ध में हो सका वह सब अपने में इतिहास का एक प्रेरणाप्रद सुनहला अध्याय है।

आर्यसमाज कलकत्ता के तात्कालिक मन्त्री श्री छबीलदासजी सैनी की रिपोर्ट के आधार पर यह तथ्य सामने आया है—

इस सम्पूर्ण गो-रक्षा के पुण्यमय अभियान में ४२०० गायों को हरिनघाटा दुग्धआपूर्ति केन्द्र से खरीद कर पिंजरापोल सोसाइटी एवं अन्य गोशालाओं में पहुँचा कर उनके जीवन की रक्षा की गयी थी। इस कार्य में ३,०७,०००) तीन लाख सात हजार रुपयों का व्यय हुआ था। कार्य की विशालता को देखने पर सचमुच यह एक आदर्श सत्प्रयास प्रतीत होता है। जन-सेवा और धर्म-सेवा की दृष्टि से इस कार्य का इसलिये और भी अधिक महत्त्व है कि साम्प्रदायिक भेद-भावों का विना कुछ विचार किये, सभी गो-भक्त एकत्र हो गये और यथाशक्ति एक विशाल उपयोगी धर्मकार्य करने में सफल हो सके।

अष्टम अध्याय

आर्यसमाज और सनातनधर्म का सम्बन्ध

कलकत्ता महानगरी में स्वामी दयानन्द को आमन्त्रित करने और उन्हें यहाँ ले आने का श्रेय बंगाली विद्वानों और सुधारकों को अधिक है। यहाँ आकर स्वामीजी अतिथि भी बंगाली सज्जनों के ही अधिक बने। ४ महीने के दीर्घ प्रवासकाल में जिन व्यक्तियों से उनका अधिक सम्पर्क रहा वे सब भी अधिकतर बंगाली सज्जन ही थे। इसका यह अर्थ तो नहीं लगाया जा सकता कि हिन्दी भाषा-भाषी लोग स्वामीजी के सम्पर्क में आये ही नहीं, पर इतना तो सुस्पष्ट ही है कि उस समय तक कलकत्ता में हिन्दी भाषा-भाषी विद्वान, समाजसेवी और समाज सुधारक उस स्तर पर नहीं पहुँचे थे कि वे सम्पूर्ण देश के अग्रगण्य सुधारक, विद्वान् और समाज-संस्कर्ता स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे व्यक्तित्व के सीधे सम्पर्क में आकर इतिहास के विषय बन जाते। स्वामी दयानन्द का केशवचन्द्र सेन, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, रामकृष्ण परमहंस, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर एवं ब्राह्मसमाज के अन्य विद्वानों से सम्पर्क हुआ था। यहाँ हिन्दी भाषा-भाषी किसी गणमान्य व्यक्ति की चर्चा नहीं है। स्वामी दयानन्द के आगमन पर बंगाल में अच्छा खासा आन्दोलन हुआ था। लोग उनके व्याख्यानों, सिद्धान्तों और सुधारों की चर्चा से आश्चर्यचकित भी थे। स्वामीजी ने केशवचन्द्र

सेन के घरपर व्याख्यान भी दिया था। ब्राह्मसमाज की सभा में भी पधारे थे। इसी प्रकार अन्य कई गण्यमान लोगों का वर्णन मिलता है। उस समय के प्रसिद्ध सम्पादक श्री ज्ञानेन्द्र लाल राय, एम० ए०, बी० एल० अपनी बंगला पत्रिका 'पताका' में लिखते हैं—

"स्वामी दयानन्दजी जब धर्म-प्रचार के निमित्त कलकत्ता आये थे तब चारों ओर उसका बहुत ही आन्दोलन होने लगा। क्या बच्चे, क्या बूढ़े, क्या स्त्रियाँ सभी उनके दर्शन और उनके मुख की बातें सुनने के निमित्त आतुर थे। उनके व्याख्यान देने की शक्ति और तर्कशक्ति तथा शास्त्रों के पूर्ण ज्ञान देखकर सब कोई आश्चर्यचकित होने लगे। लोग दल बांधे उनके समीप जिज्ञासु होकर आते और अपने प्रश्नों का अच्छा उत्तर पाकर तथा अतितृप्त होकर वापस जाते।"[१]

स्वामीजी के व्याख्यानों में प्रायः बंगाली लोग ही जाया करते थे। केशवचन्द्र सेन चित्तरंजन एवेन्यू पर मोहम्मदअली पार्क के पास रहते थे। वहाँ उनके घर पर स्वामीजी ने वैदिक धर्म पर व्याख्यान दिया था। श्री हेमचन्द्रजी चक्रवर्ती ने लिखा है—

"केशवचन्द्र सेन की बाड़ी में 'वैदिक धर्म' विषय पर व्याख्यान हुआ था जिसमें केशवचन्द्र सेन तथा अन्य बहुत-से सम्मानित व्यक्ति उपस्थित थे। सब लोग सन्तुष्ट हुए थे। बड़ाबाजार के कई हिन्दुस्तानी गुण्डे झगड़ा करने लगे, परन्तु कुछ कर न सके।"[२]

इस वृत्तान्त से इतना पता लगता है कि उस समय अबंगालियों में स्वामीजी के सम्पर्क में आने वाले कोई उल्लेखनीय व्यक्ति न थे।

---

१. पं० लेखराम कृत महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र : पृष्ठ २२८

२. पं० लेखराम कृत महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र : पृष्ठ २२६

सम्भवतः उल्लेखनीय अबंगाली व्यक्ति उस समय तक कलकत्ता में कम ही थे। अबंगालियों में जहाँ रूढ़िवादिता अधिक थी वहाँ स्वाभाविक ही स्वामी दयानन्द के प्रति विरोध भाव भी बहुत था।

"स्वामीजी सन् १८७३ ई० में कलकत्ता से लौट गये थे और सन् १८८१ ई० में स्वामीजी के विरोध में एक सभा हुई थी। सन् १८८५ ई० में आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना हुई थी। सन् १८८१ ई० में २२ जनवरी रविवार को कलकत्ता में विश्वविद्यालय के सिनेट हाल में एक सभा संस्कृत कालेज के प्रिन्सिपल पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न के प्रबन्ध से हुई थी। इसमें बंगाली विद्वान् भी थे, एक-दो उत्तर प्रदेश और दाक्षिणात्य विद्वान् भी थे। उस समय के समाचार-पत्र 'सारसुधा निधि' के अनुसार इस सभा में ३०० पंडित सम्मिलित हुए थे। कई रईस, कई सेठ भी इसमें उपस्थित थे। इन रईसों, सेठों में बंगाली तो थे ही, मारवाड़ी और हिन्दी भाषा-भाषी कई सेठलोग भी उपस्थित थे।"[१]

इन सारे सन्दर्भों पर विचार करने पर यह तो विदित हो ही जाता है कि सुधारप्रिय उदार बंगालियों ने स्वामी दयानन्द का स्वागत किया था और रूढ़िवादी कट्टर सनातनधर्मियों ने स्वामी दयानन्द का विरोध किया था। इस समर्थन और विरोध का कुछ विस्तृत विवरण तो नहीं मिलता, किन्तु सन् १८८१ ई० की सभा से, जिसमें स्वामी दयानन्द का ३०० पंडितों और अच्छी संख्या में सेठ-साहूकारों और रईसों ने विरोध किया था, यह प्रकट होता है कि स्वामी दयानन्द के आगमन और व्याख्यान से जनमानस में जो आन्दोलन तरंगायित हो चुका था वह अपने-अपने ढंग से दोनों दिशाओं में अग्रसर हो रहा था। सन् १८८१ ई० की विरोधी सभा यदि विरोध

१. पं० लेखराम कृत महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र : पृष्ठ ६७१-६७२

की क्षुब्धता का प्रमाण है तो सन् १८८५ ई० में आर्यसमाज की विधिपूर्वक स्थापना स्वामी दयानन्द के समर्थन के सुपुष्ट आन्दोलन का अकाट्य प्रमाण है ही। स्वामी दयानन्द के सन् १८७३ ई० में कलकत्ता से लौट जाने के पश्चात् और सन् १८८५ ई० में आर्यसमाज की स्थापना से पूर्व किस-किस रूप में समर्थन-विरोध की लहरें ज्वार-भाटा का रूप लेती रहीं, इसका विस्तृत विवरण नहीं मिलता, फिर भी आर्यसमाज और सनातनधर्म दोनों ही मूल रूप से एक ही विशाल जनमानस के दो रूप आपस में टकराते, सहयोग भी करते और आगे चलते भी रहते। कलकत्ता में आर्यसमाज का इतिहास इस दृष्टि से भी उल्लेखनीय और विचारणीय है।

टकराव के क्षुब्ध चरण

आर्यसमाज और सनातन धर्म के सम्बन्धों को लेकर ऋषि जैमिनी कौशिक बरुआ ने 'दीप-चरण, दीप-किरण' में एक चित्र खींचा है—

"घर की चौखट के बाहर एक हंगामा था, एक विवाद था, एक तूफान था विचारों का और कुहराम था आदर्शों की स्थापना का। आर्यसमाज से बहुमत (सनातनी वर्ग) को चिढ़ थी। सनातनधर्म की प्राणपण से रक्षा होनी चाहिए और आर्यसमाज की छूत उसे न लगनी चाहिए। इसका बहुत शोर था। दीपचन्दजी जिस समय आये (सन् १९०१ ई० के आस-पास) उस समय यह शोर अपने चरम छोर पर था।

"कलकत्ता के आर्यसमाज के पोषकों में थे श्री जयनारायणजी पोद्दार, श्री देवीबक्शजी सराफ, श्री नित्यानन्दजी (महाशय श्री शिवप्रसादजी सराफ), बाबू छाजूरामजी चौधरी, श्री रायबहादुर रलारामजी, पं० शंकरनाथजी, श्री जगन्नाथजी गुप्त, बाबू टेकचन्दजी आय, बाबू लक्ष्मीनारायाणजी भालोटिया, श्री शिवप्रसादजी अग्रवाल, सेठ जगन्नाथ

प्रसादजी, लाला रामकृष्णजी गुप्त और पंडिता शिवा देवीजी। श्री रघुमलजी खण्डेलवाल का नाम भी इस सूची में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है।

"दूसरी ओर सनातनी थे। सनातनी दल बहुत बड़ा था। इन बड़ों में कुछ बहुत बड़े थे,............

"आर्यसमाज और सनातनधर्म का भीतर ही भीतर विरोध चलता था। सनातनियों का जोश पुरजोर करने के लिये व्याख्यानवाचस्पति श्री दीनदयालुजी अक्सर कलकत्ता आते रहते। मालवीयजी भी समादृत बने रहते। आर्यसमाज का अपना मौन आन्दोलन चलता। वे निष्ठा के साथ अपने धर्म की प्राण-प्रतिष्ठा करने में विश्वास करते। विग्रह से आँख तो न बचाते, लेकिन लाठी से दूर रहते। लेकिन सनातनी थे कि ओम् तक से भड़क उठते। कहते हैं कि एक बार दीपचन्दजी पोद्दार ने काली कमली वाले की रिपोर्ट छपवायी। उसमें प्रथम पृष्ठ पर ओम् छपवा दिया। सेठ ताराचन्द घनश्यामदास के सेठ श्रीनिवासजी बिगड़ गये कि यह तो आर्यसमाज का ओम् छप गया इस किताब में।"

"श्री राधा मोहनजी गोकुल 'सत्य सनातनधर्म' पत्र निकालते थे। यह आर्यसमाज का पत्र था। आर्यसमाज यद्यपि एक निष्ठा का आन्दोलन था लेकिन सुधारक भी आर्यसमाज की पंक्तियों में ही गिने जाते। फौरन उनपर लेबल चस्पा दिया जाता कि ये भी आर्यसमाजी हुए।"

"अन्य पार्टी 'सनातन धर्म' पत्र निकालती। इन दोनों पत्रों में खण्डन-मण्डन, ताड़न-पीड़न और विरोधी मुण्डन का काम हुआ करता। अपने-अपने दल के पाठक जोश दिखाते इनको पढ़कर, विरोधी दल का बायकाट करने में उत्साहित

करते रहते। विवाह-शादी में भी प्रश्न किया जाता कि यह सनातनी है या आर्यसमाजी।"[1]

यह पारस्परिक विरोध का रूप इतना बढ़ता गया कि मारवाड़ी समाज ने एक अन्त्येष्टि संस्कार के प्रसंग को लेकर श्री जयनारायणजी पोद्दार जैसे शीर्षस्थानीय प्रतिष्ठित व्यक्ति को जाति से बहिष्कृत करने का निर्णय ले लिया था। (इस प्रसंग का विस्तृत ऐतिहासिक विवरण हम 'पोद्दार परिवार' नामक अध्याय में करेंगे।)

टकराव क्यों ?

इसमें कोई सन्देह नहीं कि सैद्धान्तिक ईमानदारी के कारण आर्यसमाज और सनातनधर्म आपस में टकराते हुए चल रहे थे। आर्यसमाज धार्मिक दृष्टि से जो कुछ वैध मानता है उससे सनातनधर्मी को इन्कार नहीं। अतः आर्यसमाज का धार्मिक पक्ष साध्यपक्ष न होकर सिद्ध पक्ष है और सिद्धपक्ष का न कोई विरोध करता है न समझदारी के साथ कर ही सकता है। आर्यसमाज पंचयज्ञों को मानता है—सन्ध्या, अग्निहोत्र इत्यादि का प्रचार करता है और वेद को धर्म-ग्रन्थ मानता है। ईश्वर, पुनर्जन्म, परलोक, मोक्ष, पितृयज्ञ (जीवित माता-पिता की सेवा-शुश्रूषा) इत्यादि आर्यसमाज के धार्मिक पक्ष हैं। इनका खण्डन कोई सनातनधर्मी सत्य निष्ठा के साथ कैसे कर सकता था? हाँ, आर्यसमाज एक समाज-संस्कर्ता आन्दोलन रहा है और एक ओर धर्म की दृष्टि से अवैदिक अपसिद्धान्तों का निराकरण करता रहता है तो दूसरी ओर सामाजिक बुराइयों का विरोध भी करता रहता है। कट्टर रूढ़िवादी सनातनधर्मी धार्मिक सिद्धान्तों के विरोध के कारण आर्यसमाज से अप्रसन्न रहते, यह एक बात थी, किन्तु साथ ही सामाजिक सुधारों को लेकर कट्टरपंथी सनातनियों के क्रोध और क्षोभ का पारावार न रहता। ईश्वर निराकार है या साकार, ईश्वर का अवतार होता है या

१. दीप-चरण, दीप-किरण : पृष्ठ २६४-२६५

नहीं, पुराण स्वतःप्रमाण हैं कि नहीं, मूर्तिपूजा और मृतक श्राद्ध वैध हैं या नहीं, इन प्रसंगों पर सनातनधर्मी आर्यसमाज का विरोध करते और अप्रसन्न रहते। किन्तु जब आर्यसमाजी विधवा विवाह का समर्थन करते, बाल-विवाह और बहु-विवाह का विरोध करते, दहेज-प्रथा और परदा-प्रथा का विरोध करते तो रूढ़िवादी कट्टर सनातनी तिलमिला उठते। यह क्षोभ और तिलमिलाहट सन्ध्या, अग्निहोत्र, यज्ञ, वेद, होम सबके विरोध में प्रकट हो जाते। ऊपर की पंक्तियों में इसी प्रसंग में हमने दिखाया है कि सनातनधर्मियों की ओर से 'ओम्' का विरोध किया गया था। ओम्, वेद, नमस्ते यह सब परम प्राचीन होकर भी सनातनधर्मियों द्वारा इसलिये परित्यक्त हो जाते कि इन्हें आर्यसमाज ने अपनाया था। ओम्, वेद, नमस्ते, महाशय ये सब जैसे आर्यसामज के अपने पृथक् के थे। यह स्थिति केवल कलकत्ता की ही नहीं थी, बल्कि सम्पूर्ण देश में न्यूनाधिक यही रूप था। इससे कलकत्ता भी अछूता न था। यहाँ धार्मिक कट्टरता के लिये प्रसिद्ध मारवाड़ी यदि सनातनधर्म में थे तो आर्यसमाज में भी पर्याप्त मारवाड़ी-हरयाणवी थे। यह टकराव धार्मिक तो था ही सामाजिक और बिरादराना भी था।

इन विरोधी टकरावों के कारण बात केवल व्यवसायियों के मनमुटाव तक ही सीमित न थी। कलकत्ता में समय-समय पर कुछ शास्त्रार्थ, कुछ पंडित-सभाएँ, कुछ विचार-गोष्ठियाँ इत्यादि भी विरोध के फलस्वरूप प्रतिफलित होती रहीं। स्वामी मुनीश्वरानन्दजी का शास्त्रार्थ पं० अखिलानन्दजी से डलहौजी स्क्वायर में हुआ था। पं०अयोध्याप्रसादजीका शास्त्रीय विचार अद्वैतवाद के ऊपर श्री लक्ष्मण शास्त्री के साथ गंगाघाट पर हुआ था। पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति का मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ पं० माधवाचार्यजी के साथ बड़े जोश के साथ हुआ था। और भी कितनी गोष्ठियाँ होती रहती थीं, पर यह

निष्कर्ष निकालना कि आर्यसमाजी और सनातनधर्मी सदा टकराते ही रहे हैं, एक जातीय अन्याय होगा। ये टकराते तो समय-समय पर अवश्य थे, किन्तु अनेक अवसरों पर एक दूसरे के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर देश-जाति के कार्य को अग्रसर करते रहे हैं।

सहयोग के स्नेहिल पग

सन् १९२६ ई० की बात बतायी जाती है। आर्यसमाज का जुलूस निकला था। स्वाभाविक था कि जुलूस के साथ बैण्ड बाजा रहता। कहते हैं जुलूस हरिसन रोड से होकर जा रहा था। हरिसन रोड पर दीना मियाँ की मस्जिद है। जुलूस में बाजा तो बज ही रहा था, नारे भी लग रहे थे, गीत भी गाये जा रहे थे। मस्जिद के सामने से बाजा बजता हुआ निकले—शायद दोनों पक्षों में कुछ आगे से ही जाना-जानी, कसाकसी रही होगी, मस्जिद पर से मुसलमानों ने ईंट-पत्थर जुलूस पर बरसाये और जुलूस के झण्डों के डण्डे लाठियों के काम आये। देखते-देखते हिन्दू-मुसलमानों का दंगा शुरू हो गया। इस मारपीट में भागीरथराम चाँदीवाले ने भारी चोट खायी थी, फिर भी जुलूस परिस्थिति पर हावी रहा। अगले दिन मुसलमानों ने पिछले दिन का बदला लेने के लिए जकरिया स्ट्रीट स्थित शिव मन्दिर को तोड़ने के लिए धावा बोल दिया और उस मन्दिर की रक्षा के लिए आर्यसमाज के युवकों और कार्यकर्ताओं ने सनातनधर्मियों से आगे बढ़कर मुसलमानों के विरुद्ध मोर्चा लगा दिया। उस समय सनातनी या आर्यसमाजी का
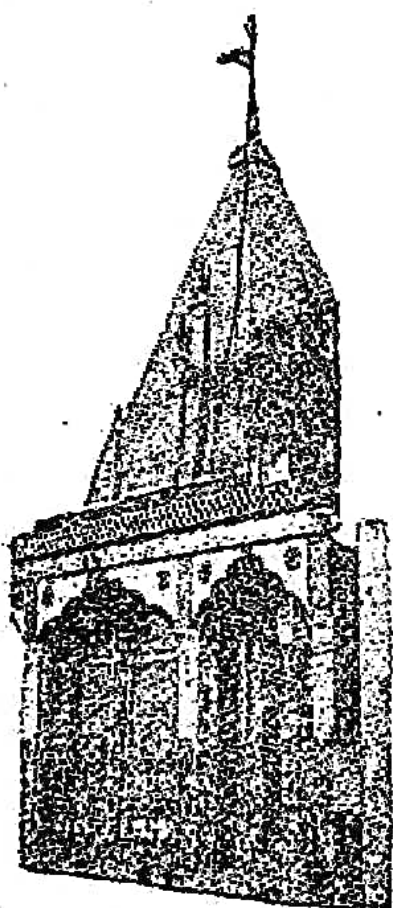
जकरिया स्ट्रीट का शिव मन्दिर

प्रश्न न था। एक हिन्दू-मन्दिर—पूजास्थान का प्रश्न था और आर्य-समाजियों ने मन्दिर और मूर्ति की रक्षा में भी सनातनधर्मियों से आगे बढ़कर मुसलमानों से मोर्चा लिया था।

सनातनधर्म और आर्यसमाज के सम्बन्धों की कड़ी को एक क्षण के लिए रोक कर आर्यसमाजी नेतृत्व के प्यार और आत्मीयता की एक प्रासंगिक घटना का उल्लेख आवश्यक जान पड़ता है। यह प्रसंग 'दीप-चरण, दीप-किरण' में इस प्रकार वर्णित है—

"सन् १९२६ ई० में आर्यसमाज का जुलूस निकला। हरिसन रोड पर दीना मियाँ की मस्जिद है। वहाँ पर जुलूस में

श्री दीपचन्दजी पोद्दार

बाजा बजा तो मस्जिद की ओर से पत्थर आदि आये, झगड़ा बढ़ा। बाद में पुलिस ने यह जानने की कोशिश की कि इस बाजे को बजाने की आज्ञा किसने दी थी। इसी प्रश्न के साथ यह सम्भावना सामने आ गयी कि जिसने आज्ञा दी थी उसे गिरफ्तार किया जायगा। दीपचन्दजी पोद्दार उस समय

आर्यसमाज के प्रधान थे और हरगोविन्दजी गुप्त मन्त्री थे। हरगोविन्दजी ने इच्छा प्रकट की कि बाजा बजवाने की जिम्मेवारी अपने ऊपर ले लें, लेकिन दीपचन्दजी ने ऐसा न करने दिया। प्रधान के नाते उन्होंने निर्भय भाव से वह जिम्मेवारी अपने ऊपर ओढ़ ली। जेल जाने का भय भी उन्हें इस दायित्व के सामने तुच्छ लगा।"[1]
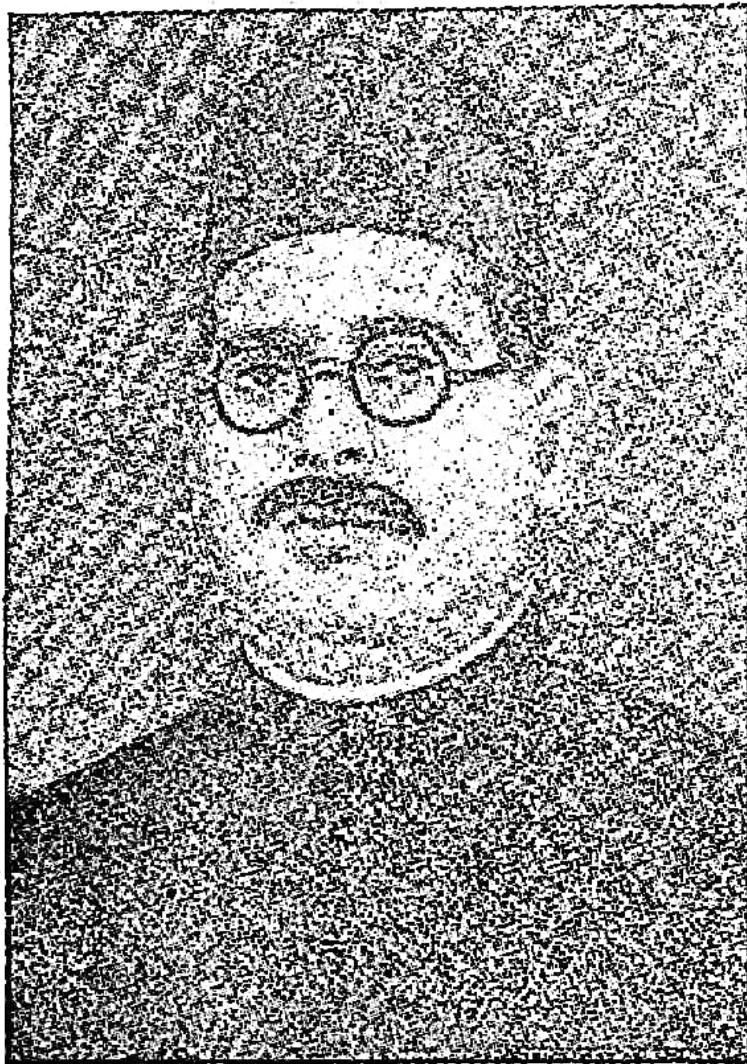
श्री हरगोविन्दजी गुप्त

यह एक प्रसंगागत बात थी। आर्यसमाज के जुलूस पर दंगा और मन्दिर की रक्षा में आर्यसमाजी नेताओं का आगे बढ़ कर नेतृत्व करना, आर्यसमाज और सनातन धर्म की एक मधुर कड़ी है। यह

१ दीप-चरण, दीप-किरण : पृष्ठ ६८
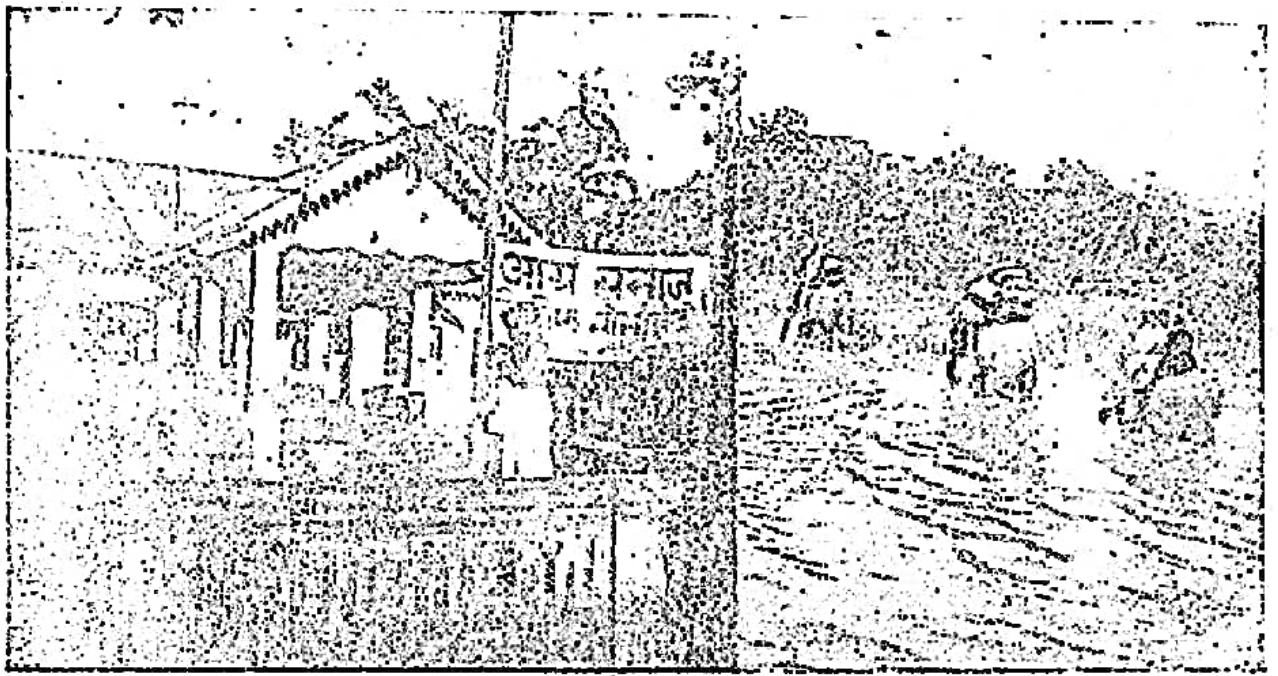
असम भूकम्प के समय डिब्रूगढ़ में आर्यसमाज कलकत्ता का सहायता-शिविरः
दुर्गम अञ्चलों में हाथियों की सहायता द्वारा सेवाकार्य

चीनी बर्बर आक्रमण के समय आर्यसमाज कलकत्ता द्वारा आयोजित
रक्तदान केन्द्र में इसके कार्यकर्त्ताओं द्वारा रक्तदान

मुख्यमंत्री श्री पी० सी० सेन को सहायतार्थ चेक देते हुए आर्यसमाज कलकत्ता के प्रधान श्री हरिश्चन्द्र वर्मा
साथ में परिलक्षित हैं श्री प्रेमचन्द आर्य और प्रो० श्यामकुमार राय

केवल कलकत्ता की ही वात नहीं है। आर्यसमाज मूर्ति-पूजा का सिद्धान्तरूप में विरोध करता है, किन्तु कोई हिन्दुओं के मन्दिर तोड़े और मूर्तियों का अपमान करे, यह वात आर्यसमाज को स्वीकार नहीं है। निजाम सरकार के विरुद्ध हैदरावाद का प्रसिद्ध सत्याग्रह तो इतिहास की एक प्रसिद्ध घटना है। कहते हैं लखनऊ में एक हनुमान-मन्दिर को तोड़ने के लिए जव मुसलमान आगे वढ़े तो वहाँ के आर्यसमाज के मन्त्री तिवारीजी ने आरती की थाली सजायी और वड़े आत्मविश्वास से यह घोषणा की कि आज हनुमानजी की आरती कोई सनातनधर्मी नहीं, वल्कि आर्यसमाज का मन्त्री करेगा। इसी प्रकार दिल्ली में आचार्य व्यासदेवजी ने श्री करपात्रीजी से शास्त्रार्थ किया था और जव मुसलमानों से मोर्चा लेना पड़ा तो वे मन्दिर में आरती उतारने के लिए आगे वढ़े। सनातनधर्म और आर्यसमाज का यह सम्बन्ध सारे देश में इसी रूप में रहा है। कलकत्ता में भी अनेकों अवसरों पर सनातनधर्म और आर्यसमाज प्रेम से मिल कर आगे वढ़े हैं।

सन् १९४६ ई० का साम्प्रदायिक दंगा

भारतवर्ष में हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों को लेकर जितने खुले रूप में देश-विभाजन से पूर्व हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुये वह भारतीय इतिहास का एक कलंकमय अध्याय है। फिर भी दंगे तो हुए ही और कलकत्ता अपनी जगह पर इन दंगों के लिये भी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। हिन्दू असंगठित तो थे ही, सरकार लीगी और लीगी मुख्यमन्त्री, अतः हिन्दू इस हिन्दू-मुस्लिम दंगे के शिकार भी खूव वने। आर्यसमाज मन्दिर इन दंगापीड़ित भाइयों के लिये आश्रय-केन्द्र वन गया। हिन्दू और आर्यसमाजी का कोई प्रश्न नहीं था। दोनों दल एकजुट होकर समान भाव से इस कार्य में लग गये। इस समय की एक घटना और भी ध्यान देने योग्य है। आर्यसमाज के प्रसिद्ध सहयोगी पोद्दार परिवार

के चित्तरंजन एवेन्यू वाले मकानों के पीछे हिन्दू मोची रहते थे। उनमें से काफी हिन्दू मोची मुसलमान व्यवसायियों के यहाँ काम भी करते थे। जब हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ तो इन गरीब मोचियों का काम बन्द हो गया, यह एक बात थी, पर साथ ही मुसलमानों ने उन्हें तंग करना आरम्भ कर दिया। उस समय उन लोगों ने घबड़ा कर, डरकर पोद्दारों के दोनों मकानों में घुस कर शरण ली, जीवन बचाया। उस समय श्री आनन्दीलालजी पोद्दार राजनीतिक और सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में अच्छे प्रभावशाली थे। उनका वर्चस्व पर्याप्त उत्कर्ष पर था। वे एक ओर राजनीति में चमक रहे थे तो दूसरी ओर मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी के भी कर्णधार थे और पोद्दार

स्व० श्रीमती सुवादेवी पोद्दार

परिवार तो है ही आर्यसमाज का। हजारों की संख्या में लोग पोद्दारों के मकान, आँगन और उनके मकान से पश्चिम उन्हींकी ज़मीन में

आश्रय पाने के लिये एकत्र हो गये। उस समय सभी हिन्दुओं ने, क्या आर्यसमाजी, क्या सनातनी, निर्विशेष भाव से कन्धे से कन्धा मिलाकर एक दूसरे का सहयोग किया। श्री किशनलालजी पोद्दार ने बताया कि उस समय ताईजी (श्री आनन्दीलाल की माताजी) दूध मँगवा कर छोटे-छोटे बच्चों को बँटवाने की व्यवस्था किया करती थीं। दो-एक दिन के बाद इनमें से बड़ी संख्या में लोग आर्यसमाज मन्दिर, १९ कार्नवालिस स्ट्रीट में लाये गये और वहाँ वे कई दिनों तक रहे। इन सारे कार्यों में सनातनी और आर्यसमाजी सब मिलजुल कर, एक होकर कार्य करते रहे।

विभाजन के पश्चात् हिन्दू समुदाय को विभाजन के कड़वे फल का पर्याप्त रस मिल चुका था, अतः आपस में सहयोग के प्रसंग ज्यादा प्रभावपूर्ण रहे।

गोरक्षार्थ सहयोग

सन् १९६९ ई० में एक और प्रसंग सामने आया जब आर्यसमाजी, सनातनी, जैनी सभी ने एकजुट होकर आर्यसमाज के नेतृत्व में एक अच्छा उत्साहवर्धक कार्य सम्पन्न किया। बात यह थी कि उस समय पश्चिम बंगाल सरकार के दुग्धआपूर्ति केन्द्र हरिनघाटा से प्रतिवर्ष प्रायः चार हजार गायें और बछड़े कसाइयों को नीलाम कर दिये जाते थे। जब यह सूचना आर्यसमाज मन्दिर को मिली तो आर्यसमाज के कार्यकर्त्ता इन गायों को खरीद कर इनकी व्यवस्था में लग गये। उस समय आर्यसमाज कलकत्ता के प्रधान मन्त्री श्री छबीलदासजी सैनी थे और पिंजरापोल सोसाइटी के प्रधानमन्त्री श्री गुरुदयालजी बरेलिया थे। सब लोगों ने सलाह-मशविरा करके आर्यसमाज कलकत्ता के अन्तर्गत आर्यसमाज कलकत्ता के ही नेतृत्व में 'गोरक्षा जीवदया संघ' नामक संगठन बनाया। इसमें जैनी भी सम्मिलित हुए। कलकत्ता जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी गुजराती संघ

तथा अन्य संगठन भी साथ लग गये। इस संगठन ने ४,२०० से अधिक गायों को पश्चिम बंगाल सरकार से ३,०७,००० रुपए देकर विभिन्न समयों पर खरीदा और कलकत्ता पिंजरापोल सोसाइटी के संरक्षण में दे दिया और पिंजरापोल सोसाइटी ने इन गायों के पालन-पोषण की समुचित व्यवस्था की।[१]

इस प्रकार आरम्भ के दिनों में जो कट्टरता, पार्थक्य, मनमुटाव की भावना उग्र थी वह धीरे-धीरे समाप्त-सी होकर सहयोग में परिवर्तित होती जा रही है। आज आर्यसमाज और सनातनधर्म के बीच का अन्तराल अनावश्यक कट्टरता से पर्याप्त मुक्त हो गया है। पारस्परिक सहयोग और मेलजोल के भाव कुछ अधिक उभर आये हैं। शास्त्रार्थ बन्द हो गये और सामाजिक सुधार प्रायः सभी ने स्वीकार कर लिये। अतः उग्र विरोध का युग भी न रहा और विभिन्न अवसरों पर पारस्परिक सहयोग की भावना ही मुखरित होती दिखायी पड़ती है।

१: इस प्रसङ्ग का विस्तृत वर्णन इसी इतिहास के सप्तम अध्याय में द्रष्टव्य है।

नवम अध्याय

आर्यसमाज कलकत्ता और ब्राह्मसमाज का सम्बन्ध

ब्राह्मसमाज की स्थापना राजा राममोहन राय ने सन् १६२८ ई० में की थी। इस प्रकार कलकत्ता ब्राह्मसमाज का स्थापना-केन्द्र है। यह राजा राममोहन राय की कर्मभूमि भी रहा है। राजा राममोहन राय मूर्ति-पूजा के विरोधी, एकेश्वरवाद के समर्थक थे। उन्होंने सुधार के लिए भी बहुत चेष्टा की थी और उनके उग्र आन्दोलन के फलस्वरूप सन् १६२६ ई० में सतीप्रथा जैसी अमानुषीय प्रथा सरकार के आदेश से बन्द कर दी गयी। राजा राममोहन राय पर वेदों और उपनिषदों का पर्याप्त प्रभाव था। ब्राह्मसमाज के आरम्भिक सत्संग शनिवार को होते थे। इनमें वेद-पाठ, उपनिषदों का बंगला अनुवाद और बंगला में उपदेश होते थे। वेद-पाठ के लिए दो तेलगू पण्डित बुलाये गये थे। वेदों का पाठ इस भ्रम से पर्दे के पीछे होता था कि कहीं वेद भ्रष्ट न हो जायँ।[1]

राजा राममोहन राय के पश्चात् ब्राह्मसमाज का नेतृत्व श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने किया। उनके मन में कहीं से यह प्रश्न पैदा

---

१ द्रष्टव्य डा० सत्यकेतु—आर्यसमाज का इतिहास—प्रथम भाग पृष्ठ १६२

हो गया कि वेदों को धर्म का आधारभूत ग्रन्थ बनाया जाय या नहीं। देवेन्द्रनाथजी ने यह निर्णय करने के लिए चार विद्यार्थियों को इसलिए बनारस भेजा कि वे यह बता सकें कि वेदों में क्या है। इन सारे प्रयासों का फल यह निकला कि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने वेदों को निर्भ्रान्त मानने से इन्कार कर दिया और ब्राह्मसमाज में वेदों का वही और उतना अंश प्रामाणिक माना जाने लगा जिसमें एकेश्वरवाद का वर्णन है। स्वाभाविक था कि कई लोग यह मानने लगे कि ब्राह्मसमाज ने वेदों को छोड़ दिया है। कहा जाता है कि केशवचन्द्र सेन ने भी यह कहा था कि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने वेदों को छोड़ दिया है।

फिर भी बंगाल में लोगों का ऐसा विचार है कि ब्राह्मसमाज में भी ऐसे पर्याप्त संख्यक लोग थे जो वेदों को अपौरुषेय मानते थे और उनपर श्रद्धा करते थे।

पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री ने अपने एक लेख में लिखा है—

"उस समय ब्राह्मसमाज में दोनों तरह के सदस्य थे :

(१) वेदपन्थी और (२) वेदविरोधी

वेद को अपौरुषेय मानने वाले वेदपन्थी थे और नहीं मानने वाले वेदविरोधी थे। लाहौर के वेदपन्थी सदस्यों के द्वारा ही वहाँ के आर्यसमाज की स्थापना हुई थी। कलकत्ता के वेदपन्थी ब्राह्मसमाजियों के नेता श्री राजनारायण बसु की अध्यक्षता में महावीर प्रसादजी के आमन्त्रण पर उन्हींके दफ्तर में सन् १८८५ ई० में एक परामर्शसभा की बैठक हुई थी। उसी सभा में ही आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना हुई।"[१]

यहाँ यह बात ध्यान रखने योग्य है कि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने ब्राह्मसमाज के मंच से चाहे वेदों को अपौरुषेय और निर्भ्रान्त कहना छोड़ दिया हो किन्तु वेदों पर श्रद्धा करने वाले भी अनेक ब्राह्मसमाजी

---

१ आर्यसमाज कलकत्ता का हीरक-जयन्ती विशेषांक—पृष्ठ ४३-४४

थे। भारतीय परम्परा ऋषि-मुनियों की संस्कृति, वेद, उपनिषद् इत्यादि का किसी-न-किसी रूप में अपना स्थान ब्राह्मसमाजियों के एक वर्ग में सदा बना ही रहा। श्री हेमचन्द्र चक्रवर्ती ब्राह्मसमाज के उपदेशक थे जिन्होंने स्वामी दयानन्द के कहने पर अपना यज्ञोपवीत नहीं उतारा, उपनिषदों को पढ़ा। वे गायत्री का नियमित जप करते रहे और उन्होंने ही ऋषि दयानन्द के कलकत्ता प्रवासकाल की चार महीने की डायरी लिखी।

बृटिश सरकार भक्त एवं ईसाभक्त ब्राह्मसमाजी

एक ओर ब्राह्मसमाजियों का एक दल यदि वेद-उपनिषद् भारतीय परम्पराओं का आदर करता था तो ब्राह्मसमाजियों का ही एक दूसरा दल श्री केशवचन्द्र सेन के नेतृत्व में ईसाईयत और पश्चिमी सभ्यता की ओर झुक गया था। सन् १८६० ई० में इसी उदारता के नाम पर यज्ञोपवीत जैसे पवित्र चिह्न को तिलाञ्जलि दे दी गयी और लोगों को यह अनुमान होना स्वाभाविक ही था कि केशवचन्द्र सेन ईसाई बन जायेंगे।

"केशवचन्द्र सेन न तो हिन्दू रहे न उस धर्म के सुधारक। ब्राह्मसमाज का हिन्दूसमाज से जो थोड़ा बहुत सम्बन्ध था वह सन् १८७२ ई० के स्पेशल मैरेज ऐक्ट से टूट गया। इस कानून द्वारा ब्राह्म लोगों का समाज हिन्दूसमाज से सर्वथा पृथक् स्वीकार किया गया। केशवचन्द्र सेन की अध्यक्षता में स्थापित ब्राह्मसमाज की एक विशेषता बृटिश सरकार का प्रबल समर्थन था। वे अंग्रेजी राज्य के परमभक्त थे। उसे भगवान का वरदान मानते थे। उनके धर्म का प्रमुख सिद्धान्त बृटिश सरकार के प्रति खुल्लमखुल्ला पूर्ण राजभक्ति और निष्ठा की घोषणा करना था।"[१]

---

१ डा० सत्यकेतु विद्यालंकार-आर्यसमाज का इतिहास—प्रथम भाग, पृष्ठ १६२

इस प्रकार केशवचन्द्र सेन स्वयं ईसाई न बन सके किन्तु ईसामसीह को ही अपने वर्ग के ब्राह्मसमाज में प्रविष्ट करा लाये। श्री रोमा रोला ने केशवचन्द्र सेन के ऊपर निम्न प्रकार से लिखा है—

> "ईसा ने उनके अन्तस्तल को स्पर्श किया था। अब उनके जीवन का यह लक्ष्य बन गया कि वे ईसा को ब्राह्मसमाज में प्रविष्ट करायें······केशवचन्द्र सेन उस समय बड़े जोर से उद्बुद्ध हो रही राष्ट्रीय चेतना के प्रतिकूल चल रहे थे।[१]

स्वामी दयानन्द की प्रतिक्रिया

इस सन्दर्भ में यह महत्त्वपूर्ण है कि इसी समय स्वामी दयानन्द कलकत्ता आये थे और यहाँ के सुधारकों, नेताओं और विद्वानों से उनका सम्पर्क हुआ। "कलकत्ता में पहली बार स्वामीजी को अंग्रेजी शिक्षासम्पन्न, पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित, शहरी क्षेत्रों के प्रबुद्ध बुद्धिजीवी, मध्यम वर्गीय व्यक्तियों के सम्पर्क में आने का अवसर मिला। उन्हें कलकत्ता बुलाने आदि का निमन्त्रण ब्राह्मसमाज के नेता श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने दिया था और वे कलकत्ता में इन्हींके घर पर रहे भी।[२] ब्राह्मसमाज के वार्षिकोत्सव के वे प्रमुख अतिथि बने। बंगाल में पश्चिमी शिक्षा तथा ईसाईयत के प्रभाव को रोकने के लिये चलाये जाने वाले आन्दोलन के प्रधान नेता राजनारायण बोस से वे मिले, और हिन्दू की श्रेष्ठता पर उन्होंने लिखा, अपना व्याख्यान स्वामीजी को सुनाया। ब्राह्मसमाज में विद्रोह का झण्डा खड़ा करने वाले उसे ईसाईयत की ओर ले जाने वाले वाग्मी वक्ता केशवचन्द्र

१ डा० सत्यकेतु विद्यालंकार-आर्यसमाज का इतिहास—प्रथम भाग, पृष्ठ १६३-१६४

२ वस्तुतः स्वामी दयानन्द देवेन्द्रनाथ ठाकुर के घर पर नहीं अपितु सौरीन्द्र मोहन ठाकुर के बगान—प्रमोद कानन, बारानगर में रहे थे—लेखक

सेन तथा प्रसिद्ध समाजसुधारक ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के प्रमुख समर्थक राजेन्द्रलाल मित्र और भूदेव मुखोपाध्याय से तथा धर्मनीति नामक पुस्तक के लेखक अक्षयकुमार दत्त से स्वामीजी की भेंट हुई और विचार विनिमय हुआ।"[1]

स्वामीजी ने यहाँ इस प्रकार के लोगों के सम्पर्क में जहाँ बहुत कुछ नये रूप में देखा-समझा, वहाँ उन्हें ब्राह्मसमाजियों के धार्मिक स्वरूप, उनकी राष्ट्रभक्ति इत्यादि की प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त हुई। स्वामीजी ने सत्यार्थ प्रकाश में ब्राह्मसमाजियों की आलोचना इस प्रकार की है—

> "इन लोगों में स्वदेशभक्ति बहुत न्यून है। ईसाइयों के आचरण बहुत-से लिए हैं। अपने देश की प्रशंसा व पूर्वजों की बड़ाई करनी तो दूर रही, उसके स्थान में पेट भर निन्दा करते हैं। व्याख्यानों में ईसाई आदि अंग्रेजों की प्रशंसा भर पेट करते हैं। ब्रह्मादि महर्षियों का नाम भी नहीं लेते, प्रत्युत् ऐसा कहते हैं कि विना अंग्रेजों के सृष्टि में आज पर्यन्त कोई भी विद्वान् नहीं हुआ। आर्यावर्तीय लोग सदा से मूर्ख चले आये हैं। इनकी उन्नति कभी नहीं हुई। वेदादिकों की प्रतिष्ठा तो दूर रही, परन्तु निन्दा करने से भी पृथक् नहीं रहते। ब्राह्मसमाज के उद्देश्य के पुस्तकों में साधुओं की संख्या में ईसा-मूसा, मुहम्मद, नानक और चैतन्य लिखे हैं। किसी ऋषि-महर्षि का नाम भी नहीं लिखा। इससे जाना जाता है कि इन लोगों ने जिनका नाम लिखा है उन्हीं के मतानुसारी मत वाले हैं। भला जब आर्यावर्त में उत्पन्न हुए हैं, इसी देश का अन्न-जल खाया-पीया है, अब भी खाते-पीते हैं, तब अपने माता-पिता, पितामहादि के धर्म

१ डा० सत्यकेतु—आर्यसमाज का इतिहास पृष्ठ १७३

को छोड़ दूसरे विदेशी मतों पर झुक जाना, ब्राह्मसमाजी और प्रार्थना-समाजियों का एतद्देशस्थ संस्कृत विद्या से रहित अपने को विद्वान् प्रकाशित करना, इंग्लिश भाषा पढ़ के पण्डिताभिमानी होकर झटिति एक मत चलाने में प्रवृत्त होना मनुष्य का स्थिर और वृद्धिकारक काम क्यों कर हो सकता है।"[1]

स्वामी दयानन्द की यह आलोचना सुस्पष्ट रूप से केशवचन्द्र सेन के वर्ग से और उनकी मान्यताओं से अधिक सम्बन्धित है। वैसे स्वामी दयानन्द जब कलकत्ता में थे तो उनकी सभाओं में ब्राह्मसमाजियों का आना-जाना बहुत अधिक था। स्वामीजी भी ब्राह्मसमाजियों से अच्छा सम्पर्क रखते थे। स्वामी दयानन्दजी ने ब्राह्मसमाज के उत्सव में प्रवचन किया था। वे देवेन्द्रनाथ ठाकुर के घर पर भी गये थे। वहाँ व्याख्यान भी दिया था। देवेन्द्रनाथ ठाकुर उन्हें अपने घर पर ठहराना भी चाहते थे। किन्तु स्वामीजी ने यह कह कर स्वीकार नहीं किया कि वे किसी गृहस्थ के घर पर निवास नहीं करते। स्वामीजी का केशवचन्द्र सेन से भी अच्छा सम्बन्ध था। वे केशवचन्द्र सेन के घर पर भी गये और वहाँ भी व्याख्यान दिया था।

आर्यसमाज एवं ब्राह्मसमाज में सहयोग

कलकत्ता में आर्यसमाज और ब्राह्मसमाज में प्रायः सहयोग का ही भाव था। विरोध या मोर्चेबन्दी की भावना यहाँ के इतिहास में कभी दिखायी नहीं पड़ती। आरम्भिक काल के पश्चात् आर्यसमाज प्रायः अबंगालियों को क्षेत्र बनाकर फैलता रहा और ब्राह्मसमाज तो यहाँ सदा ही बंगालियों में ही सीमित रहा। इस प्रकार न सामाजिक संगठन की दृष्टि से और न नेतृत्व की स्पर्धा की दृष्टि से ही आर्य-समाज और ब्राह्मसमाज यहाँ कभी टकराये। पंजाब में कुछ समय के

१ सत्यार्थ प्रकाश, एकादश समुल्लास

लिए विरोध के स्वर उभरे अवश्य थे, किन्तु कलकत्ता की सामाजिक धारा में आर्यसमाज और ब्राह्मसमाज दो तटों की तरह अलग-अलग बढ़ते रहे। आरम्भिक दिनों में परस्पर एक-दूसरे का थोड़ा-बहुत सहयोग अवश्य करते थे। आर्यसमाज ने ब्राह्मसमाज के लिए कुछ किया हो, यह तो इतना ही मात्र समझ में आता है कि पंडित शंकरनाथजी कभी-कभी ब्राह्मसमाज के उत्सवों में आमन्त्रित होते थे। पं० दीनबन्धुजी भी कभी-कभी ब्राह्मसमाज के उत्सवों में आमन्त्रित होते थे। इस प्रकार आर्यसमाज और ब्राह्मसमाज में आरम्भ से ही प्रायः सहयोग का भाव अधिक दिखायी पड़ता है।

कलकत्ता में ब्राह्मसमाज के विद्वन्मण्डल और सुधारकों की प्रसिद्ध विभूतियाँ रही हैं। वे सब आर्यसमाज से सहानुभूति रखते थे। पं० दीनबन्धुजी ने अपने एक लेख में लिखा है—

'सन् १८८३ ई० में स्वामीजी का देहान्त हुआ। इसके ठीक एक वर्ष बाद कलकत्ता के भक्त लोगों ने सन् १८८४ ई० में दीवाली पर स्मृति-सभा मनायी। अपर चितपुर रोड पर स्थित आदिब्राह्मसमाज के मन्दिर में और एलबर्ट स्कूल ठनठनियाँ में पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की अध्यक्षता में उस सभा का अधिवेशन हुआ। तत्कालीन कलकत्ता के देशविख्यात प्रसिद्ध नायक बड़ी संख्या में उपस्थित थे। इन्होंने अपने भाषणों में स्वामीजी के प्रति श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित कीं। उनके अन्दर ब्राह्मसमाज के सुप्रसिद्ध नेता राजनारायण बसु (श्री अरविन्द घोष के मातामह), श्री दुर्गामोहन दास (कांग्रेस नेता चित्तरंजन दास के चाचा), ऐतिहासिक विद्वान्, ऋग्वेद के बंगानुवादक रमेशचन्द्र दत्त, आई० सी० एस०, ऐतिहासिक और प्रत्नवित् राजा राजेन्द्रलाल मित्र, साहित्यिक बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। शम्भूनाथ पण्डित

के पुत्र शंकरनाथ पण्डित भी उस सभा में उपस्थित थे। इस सभा के प्रधान संयोजक थे भागलपुर के जमींदार राजा तेजनारायण सिंह।"[1]

इस उद्धरण से जहाँ यह समझ में आता है कि राजा तेजनारायण सिंह आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना से पूर्व ही यहाँ आर्यसमाज और स्वामी दयानन्द के प्रति श्रद्धावान् थे ; वहीं यह बात भी सुस्पष्ट है कि बंगाली विद्वानों और समाज-सुधारकों का उच्चतम वर्ग स्वामी दयानन्दजी के प्रति श्रद्धावान् था और स्वाभाविक ही आर्यसमाज के प्रति सहानुभूति रखता था।

यह आर्यसमाज की स्थापना में एक अच्छा सहयोगी सूत्र प्रमाणित हुआ। ब्राह्मसमाज में जो लोग वेदभक्त थे वे, स्वाभाविक था कि समाज-सुधार, उदार चिन्तन, नये दृष्टिकोण के कारण आर्यसमाज की ओर आकर्षण का भाव रखते थे। कलकत्ता में ऐसे वेदभक्त ब्राह्मसमाजियों में श्री राजनारायण वसु का अपना प्रमुख स्थान था। सन् १८८५ ई० में जब आर्यसमाज की स्थापना के लिए राजा तेजनारायण सिंह के आफिस में उन्हींके प्रमुख कार्यकर्त्ता और कलकत्ता आर्यसमाज के प्रथम प्रधान-मन्त्री बाबू महावीर प्रसादजी ने परामर्श सभा बुलायी थी तो उसकी अध्यक्षता श्री राजनारायण वसु ने ही की थी। उसी परामर्श-सभा में राजा तेजनारायण सिंह प्रधान, पं० शंकरनाथजी पण्डित उप-प्रधान और बाबू महावीर प्रसादजी आर्यसमाज कलकत्ता के मन्त्री निर्वाचित हुए थे। यह भी महत्त्वपूर्ण कड़ी है कि आर्यसमाज कलकत्ता के उस आदिम काल में संभालने, सँवारने वाले दर्जनों सैद्धान्तिक ग्रन्थों के लेखक पं० शंकरनाथ पण्डित जस्टिस शम्भूनाथजी पण्डित के पुत्र थे और जस्टिस शम्भूनाथजी ब्राह्मसमाजी थे। ब्राह्मसमाजी पिता के पुत्र पं० शंकरनाथजी तो

१ आर्यसमाज कलकत्ता का हीरक-जयन्ती अंक।

आर्यसमाज से सदस्य भी बने और उप-प्रधान भी बने, किन्तु श्री राज नारायण बसु आर्यसमाज के सदस्य भी नहीं बन सके। सम्भवतः उनका कोई सैद्धान्तिक संकोच रहा हो या ब्राह्मसमाज में उनका सामाजिक नेतृत्व आर्यसमाज का सदस्य बनने में रुकावट कर रहा हो। जो भी हो, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि ब्राह्मसमाज के इन उच्च नेता लोगों का आर्यसमाज के प्रति सहानुभूति और सहयोग का भाव था।

आर्यसमाज और ब्राह्मसमाज के सुन्दर सहयोगी सम्बन्धों पर एक और घटना से प्रकाश पड़ता है। स्वामी दयानन्दजी जब कलकत्ता आये थे, उस समय श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर, श्री राजनारायण बसु, श्री हेमचन्द्र चक्रवर्ती आदि कई ब्राह्मसमाज के शीर्षस्थ व्यक्तियों ने हवन के सम्बन्ध में स्वामीजी से शंका-समाधान कराया था। स्वामी दयानन्दजी का वैज्ञानिक उदार दृष्टिकोण सबके लिये हृदयग्राही था। श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर पर तो बड़ा ही अनुकूल प्रभाव पड़ा था और उन्होंने आर्यसमाज कलकत्ता के प्रसिद्ध विद्वान् कार्यकर्त्ता पं० शंकर-नाथजी से एक याज्ञिक पण्डित की मांग इसलिये की थी कि वह उनके शान्ति निकेतन में स्थायी रूप से वेदपाठ और हवन का कार्यक्रम करा सकें। पं० शंकरनाथजी ने पं० अच्युत मिश्र नामक एक पण्डित को वहाँ भेज दिया था। पं० अच्युत मिश्रजी वहाँ बहुत वर्षों तक रहे थे। उनके चले जाने के पश्चात् भी शान्ति निकेतन में हवन नियमित रूप से होता था। देवेन्द्रनाथ ठाकुर पर तो इतना प्रभाव था कि सम्भवतः स्वामी दयानन्दजी के वेद-विद्यालय के प्रस्ताव की बात उनके मन-मस्तिष्क में कहीं रही हो। शान्ति निकेतन आरम्भ में ब्रह्मचर्य आश्रम ही कहलाता था। जब तक देवेन्द्रनाथ ठाकुर जीवित रहे शान्ति निकेतन में यज्ञ का क्रम चलता रहा।

आर्यसमाज और ब्राह्मसमाज का सम्बन्ध पर्याप्त सन्निकट का हो गया था। एक घटना से इस प्रसंग पर और भी बड़ा सुन्दर प्रकाश पड़ता है।

पं० दीनबन्धुजी ने एक और सभा का वर्णन 'योगी के आत्म चरित्र' की पृष्ठभूमि में दिया है। सन् १९२३ ई० में आर्यसमाज कलकत्ता के तत्त्वावधान में महर्षि दयानन्द-निर्वाण स्मारक-सभा में श्री श्री विपिनचन्द्र पाल सभापति थे। उसमें श्री रामानन्द चटर्जी एम० ए०, जो माडर्न रिव्यू और प्रवासी पत्र के सम्पादक एवं साधारण ब्राह्मसमाज के आचार्य थे, एक और वक्ता पं० श्री रसिकमोहन विद्याभूषण, पं० श्यामलालजी गोस्वामी इत्यादि उपस्थित थे। इस सभा में श्री श्यामलालजी गोस्वामी ने ऋषि की अज्ञात जीवन की चर्चा करते हुए कहा था कि कई जगहों पर आर्यसमाज की स्थापना के साथ आर्यसमाज और ब्राह्मसमाज में प्रतिद्वन्द्विता आरम्भ हो गयी थी। उसी प्रतिद्वन्द्विता के समय सन् १८८३ ई० में स्वामी दयानन्दजी का देहान्त हो गया। स्वामीजी का कलकत्ता में वर्णित 'आत्म चरित्र' के लेखक प्रायः ब्राह्मसमाजी ही थे। अतः उस प्रतिद्वन्द्विता के युग में ब्राह्मसमाजियों ने उस 'आत्म चरित्र' को प्रकाश में लाने में उदासीनता दिखायी।

इस प्रसङ्ग पर पं० शंकरनाथ पण्डित ने, जो उस समय १९२३ ई० में आर्यसमाज कलकत्ता के प्रधान थे, कहा था—

"आजकल ब्राह्मसमाज और आर्यसमाज के अन्दर कोई वैमनस्य नहीं है। बहुत पहले महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने आदिब्राह्मसमाज और आर्यसमाज को एकत्र करने के लिए कोशिश भी की थी। श्री बलयेन्द्रनाथ ठाकुर को इन्होंने इस उद्देश्य से लाहौर आर्यसमाज तक भेजा था। उनके प्रबल आग्रह से आर्यसमाज के पण्डित अच्युत मिश्र को बोलपुर, शान्ति निकेतन में दैनिक होम करने के लिए भेजा था। जबतक देवेन्द्रनाथ ठाकुर जीवित रहे जब तक वहाँ दैनिक होम चालू रहा। पंजाब के विशिष्ट आर्यसमाजी

श्री रामभजदत्त चौधरी के साथ महर्षि देवेन्द्रनाथ की दौहित्री श्रीमती सरला देवी का विवाह हुआ था और उस विवाह का अनुष्ठान मेरे (पं० शंकरनाथ पण्डित) घर पर ही हुआ था। आजकल आर्यसमाज और ब्राह्मसमाज के अन्दर सामाजिक और व्यावहारिक वैमनस्य कुछ भी नहीं है। दोनों समाज़ के विशिष्ट सदस्य लोग परस्पर दोनों के वार्षिक उत्सवों में शामिल होते हैं। महर्षि दयानन्द की अज्ञात जीवनी के उपादान जिनके हाथों में हों वे अवश्य देने की कृपा करें।"[1]

पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री ने उसी सभा में कहा था—

"दोनों समाजों में वेद की मान्यता के सम्बन्ध में वैषम्य अवश्य है। ब्राह्मसमाज के प्रवर्तक राजा राममोहन राय वेद को अभ्रान्त, अपौरुषेय नहीं मानते थे। आज भी आर्यसमाज के उत्सवकालीन यज्ञों में आदिब्राह्मसमाज के आचार्य पं० श्री सुरेशचन्द्र सांख्य, वेदान्ततीर्थ, नव-विधान ब्राह्म-समाज के आचार्य श्री द्विजदास दत्त और साधारण ब्राह्मसमाज के आचार्य श्री अनाथकृष्ण सील सम्मिलित होते हैं। मैं भी ब्राह्मसमाज के आमन्त्रणानुसार चितपुर रोड के आदिब्राह्मसमाज बेहलाकी और उल्टाडांगा साधारण ब्राह्मसमाज की वेदी से शास्त्र-पाठ करता हूँ। अगर ब्राह्मसमाज वेद को अपौरुषेय और अभ्रान्त मान लेता तो महर्षि दयानन्द कभी आर्यसमाज नाम से कोई धर्मसंस्था स्थापित नहीं करते। जो कुछ हो, अगर महर्षि की कथित आत्मजीवनी, वार्तालाप, शंकासमाधान और आलोचना

---

१ योगी का आत्मचरित्र—पृष्ठभूमि, पृष्ठ २-३

प्रसंगों की पाण्डुलिपि बिनष्ट न हो गयी हो तो उसका पुनरुद्धार हमलोग जरूर करेंगे।"[१]

यह तो सुस्पष्ट है कि विवरणों के ये अंश इस बात से सम्बन्ध रखते हैं कि महर्षि की अज्ञात जीवनी जो ब्राह्मसमाजियों के पास हो सकती थी, उसका उद्धार किया जाय। अतः इन विवरणों में सहयोग और सहानुभूति का स्वर अधिक मुखरित हुआ है। किन्तु इसमें भी कुछ सन्देह नहीं है कि यहाँ ब्राह्मसमाज और आर्यसमाज में कभी संघर्ष या टकराव का युग नहीं आया। अन्य प्रान्तों की सुदूरवर्ती छाया कभी पड़ी हो तो उसका भी कोई सुस्पष्ट संकेत दृष्टिगोचर नहीं होता। आरम्भ में ब्राह्मसमाजी नेताओं ने स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज के साथ सहानुभूति और समीपता का अनुभव किया था। श्री हेमचन्द्र चक्रवर्ती तो स्वामीजी के शिष्य ही बन गये थे। श्री नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय भी ब्राह्मसमाजी थे, जिन्होंने स्वामी दयानन्दजी की आरम्भ में जीवनी लिखी जो सन् १८८६ ई० में महर्षि 'दयानन्देर संक्षिप्त जीवनी' नाम प्रकाशित हुई। ये चट्टोपाध्याय महाशय भी ब्राह्मसमाज के आचार्य और उपदेशक थे। यह कथन तो बाहुल्य मात्र ही है कि जिस समय ब्राह्मसमाज के आचार्य नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय ने स्वामीजी की संक्षिप्त जीवनी लिखी थी, उस समय आर्यसमाज कलकत्ता अभी एक ही वर्ष का था।

इन सारे विवरणों से यह पता लगता है कि आर्यसमाज का ब्राह्मसमाज के साथ आरम्भ से सहयोगी सम्बन्ध रहा है। आर्यसमाज के आरम्भिक दिनों में अच्छी संख्या में बंगाली विद्वान् साहित्यिक आकृष्ट हुए। पं० दीनबन्धुजी की सूचना के अनुसार उन आरम्भिक दिनों में सन् १९०० ई० के पहले-पहले श्री तुलसीदास दत्त, श्री सुरेशचन्द्र हाजरा, श्री ललितमोहन बसु, श्री विभूति भूषण

---

१ योगी का आत्मचरित्र—पृष्ठभूमि पृष्ठ ३

चट्टोपाध्याय, श्री महेन्द्रनाथ बसाक आर्यसमाज के सदस्य बने थे, किन्तु सन् १९०० ई० के लगभग जब आर्यसमाज ने दृढ़ता से यह घोषणा कर दी कि मत्स्य-मांस-भोजी और वेदों को निर्भ्रान्त, अपौरुषेय न मानने वाले आर्यसमाज के सदस्य नहीं बन सकते हैं, उस समय बंगाल के कई प्रतिष्ठित पुरुष जो आर्यसमाज की ओर आकृष्ट हो रहे थे और आर्यसमाज का सदस्य बनना चाहते थे, वे सब आर्यसमाज की इस सैद्धान्तिक कट्टरता के कारण उदासीन हो गये। इन प्रतिष्ठित बंगालियों में, पं० दीनबन्धुजी की सूचना के अनुसार श्री चन्द्रनाथ बसु, श्री उमेशचन्द्र बनर्जी, श्री उमेशचन्द्र बटवाल मैजिस्ट्रेट, श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, श्री महिमारंजन रायचौधरी, (ककिना रंगपुर के राजा) आदि व्यक्ति प्रमुख हैं। इन सब लोगों पर पं० शंकर-नाथजी पण्डित के कारण प्रभाव पड़ा था। यह अनुमान सहज है कि जस्टिस शम्भूनाथ पण्डित के सुपुत्र पं० शंकरनाथ पण्डित के सामाजिक एवं बौद्धिक धरातल पर इन प्रमुख व्यक्तियों का आर्यसमाज की ओर आकर्षण हुआ था। सिद्धान्तों की कट्टरता के कारण ये लोग आर्यसमाज के सदस्य तो नहीं बने, किन्तु इन्होंने रूठकर कभी आर्यसमाज का विरोध भी नहीं किया।

इस महत्त्वपूर्ण सैद्धान्तिक निर्णय के पश्चात् बंगभाषियों में आर्यसमाज के विस्तार का आयाम प्रायः अवरुद्ध-सा हो गया और आर्यसमाज हिन्दी भाषाभाषियों में विस्तृत होता रहा। इस प्रकार आर्यसमाज और ब्राह्मसमाज के भाषागत दो अलग-अलग क्षेत्र बन गये। ब्राह्मसमाज हिन्दी भाषा-भाषियों में प्रवेश से अवरुद्ध प्रायः था और आर्यसमाज बंगला भाषा-भाषियों में प्रविष्ट होने से पराङ्मुख-सा हो गया। दोनों के क्षेत्रों की पृथक्ता के कारण टकराव की सम्भावना और भी कम हो गयी। फलतः सहयोग और सामञ्जस्य का वातावरण ही दृष्टिगोचर होता रहा।

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति ने अपनी व्यक्तिगत सूचना के आधार पर 'आर्यसमाज का इतिहास' नामक अपने ग्रन्थ में लिखा है—

"बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान् डा० कालीदास नाग ने लेखक को (इन्द्र विद्यावाचस्पति को) बताया कि प्रारम्भिक दशा में आर्यसमाज और ब्राह्मसमाज में इतनी समानता समझी जाती थी कि उनके अधिवेशन एक ही मकान में कर लिये जाते थे।"[१]

बंगाल में राजनीतिक चेतना अधिक बलवती रही। ब्राह्मसमाज का पथ क्षुण्ठित हो गया है। रामकृष्ण-विवेकानन्द मिशन समाजसेवा के धरातल पर फलता-फूलता चल रहा है। चैतन्य महाप्रभु को कृष्णा कान्शेसनेस ने एक नया जीवन दिया अवश्य है, लेकिन उसमें स्वदेशी पर विदेशी कलम कुछ अधिक स्पष्ट है। इन सबके साथ बंगाल देश के विभाजन के कारण जिन सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं में उलझा उनमें आर्यसमाज की वह भूमिका न बन सकी जो यहाँ के जनजीवन के हृदय के निकटस्थ हो पाती या उनकी समस्याओं के समाधान को दिशादान दे पाती। आर्यसमाज ने मानवता और जनकल्याण की दृष्टि से सेवा-सहायता का कार्य अपने साधन और सुविधाओं के अनुकूल अवश्य ही प्रशंसनीय रूप में किया है, किन्तु सामान्य बंगाली जननीवन को स्पर्श करने में या तो तटस्थ रहा या उदासीन। परिणाम दोनों का एक ही है। ब्राह्मसमाज इस राजनीतिक आपाधापी में अपने को स्वयं जनचेतना के साथ गतिशील नहीं पा रहा है। साथ ही आर्यसमाज की स्थिति भी, कम से कम, जहाँ तक बंगभाषियों का प्रश्न है, ब्राह्मसमाज से अधिक पृथक्-सी सन्तोषजनक नहीं है।

---

१. इन्द्र विद्यावाचस्पति—आर्यसमाज का इतिहास प्रथम भाग पृष्ठ २८३।

दशम अध्याय

विद्वान्-प्रचारक

सन् १८८५ ई० में जब आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना हुई थी उस समय कलकत्ता भारतवर्ष की राजधानी था। यह शिक्षा, व्यवसाय और सांस्कृतिक जागरण का भी केन्द्र था। कलकत्ता में सरकार के ऑफिस थे, बड़े-बड़े जज, बैरिस्टर और वकीलों की यह नगरी थी। अच्छे-अच्छे कालेज थे। उस समय आरम्भ से ही आर्यसमाज कलकत्ता को विद्वानों का सहयोग मिलना आरम्भ हो गया था। पं० शंकरनाथजी पण्डित, आर्यसमाज कलकत्ता के संस्थापक उप-प्रधान होने के साथ ही उच्च कोटि के अच्छे लेखक और विचारक थे। आर्य-समाज के आरम्भिक दिनों में सत्संग आदि का बहुत कुछ भार पं० शंकरनाथजी ही वहन करते थे। थोड़े दिनों में उन्हींके साथ सम्पादकाचार्य पं० रुद्रदत्तजी शर्मा भी आर्यसमाज के कार्य में सहयोग देने के लिये बुला लिये गये थे। पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री की सूचना के अनुसार सम्पादकाचार्य पं० रुद्रदत्तजी शर्मा ही आर्यसमाज कलकत्ता के प्रथम दक्षिणाभोगी उपदेशक एवं सम्पादक थे। पं० शंकर-नाथजी के पश्चात् पं० अयोध्या प्रसादजी और पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री का युग आरम्भ हो जाता है और पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्त-भूषण, आचार्य रमाकान्तजी शास्त्री, पं० सदाशिवजी शर्मा, पं० शिवनन्दन प्रसादजी वैदिक इत्यादि विद्वानों के साथ पं० राम

नरेशजी शास्त्री, आचार्य उमाकन्तजी उपाध्याय, पं० आत्मानन्दजी शास्त्री विद्याभास्कर तक वर्तमान की शृंखला में सदा ही पण्डितों, विद्वानों का सहयोग आर्यसमाज कलकत्ता को मिलता रहा है। प्रस्तुत अध्याय में भिन्न-भिन्न विद्वानों के सम्बन्ध में जो कुछ हमें उपलब्ध हो सका है, उसे हमने लिखने का प्रयास किया है। विद्वानों का जीवन, यश का जीवन है और उसे यश की धरोहर मानकर भावी पीढ़ियों के हाथों सौंप देने का प्रयास मात्र यहाँ अभिप्रेत है।

धन्यास्ते सुकृतिनः रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम्॥

पं० शंकरनाथजी पण्डित

पं० शंकरनाथजी पण्डित कलकत्ता हाई कोर्ट के प्रधान न्यायाधीश पं० शम्भूनाथ पण्डित के पुत्र थे। पं० शम्भूनाथ कलकत्ता के भवानीपुर अंचल में रहते थे जहाँ उनके नाम पर शम्भूनाथ पण्डित मार्ग है। उनका पैतृक निवास स्थान आज भी है, किन्तु स्वाभाविक ही, वह आज नई रूपरेखा और साजसज्जा में है। पं० शम्भूनाथजी प्रसिद्ध न्यायाधीश तो थे ही, परिवार की दृष्टि से अच्छे बड़े जमींदार थे और विचारों से ब्राह्मसमाजी निष्ठा के थे। पं० शंकरनाथजी ब्राह्मसमाजी पिता के पुत्र तो थे ही, आरम्भ से ही स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज के भक्त थे। प्रतीत होता है कि बहुत सारे ब्राह्म-समाजी वेद और भारतीयता के भक्त थे और पं० शंकरनाथजी उन्हीं में थे। कलकत्ता में जब से आर्यसमाज की चर्चा आरम्भ हुई है, पं० शंकरनाथजी तभी से आर्यसमाज से संयुक्त हैं। सन् १८८३ ई० में स्वामी दयानन्दजी का देहान्त हुआ था और सन् १८८४ ई० में महर्षि की प्रथम मृत्युवार्षिकी पर जो स्मृतिसभा की गई थी उसके अध्यक्ष पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर थे। पं० दीनबन्धुजी की सूचना के अनुसार उस सभा की अध्यक्षता पं० ईश्वरचन्द्रजी विद्यासागर ने

की थीं और उसमें कलकत्ता के कई अति विशिष्ट व्यक्ति सम्मिलित हुए थे। इस सभा का आयोजन आर्यसमाज कलकत्ता के संस्थापक प्रधान राजा तेजनारायणजी ने किया था और पं० शंकरनाथजी उस

पं० शंकरनाथजी पंडित

सभा में उपस्थित थे। इस प्रकार कलकत्ता में आर्यसमाज की स्थापना के पूर्व ही पं० शंकरनाथजी का झुकाव स्वामी दयानन्द की ओर दिखायी पड़ता है।

सन् १८८५ ई० में आर्यसमाज की स्थापना के लिये राजा तेजनारायण के कार्यकर्त्ता मुनीम बाबू महावीर प्रसादजी ने तेजनारायणजी के कार्यालय में ही परामर्शसभा बुलायी थी। इस परामर्शसभा की अध्यक्षता ब्राह्मसमाज के प्रसिद्ध नेता श्री राजनारायण बसु ने की थी और इसी परामर्शसभा में आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना हुई थी। जिस समय आर्यसमाज की स्थापना हुई उस समय आर्यसमाज कलकत्ता के प्रधान राजा तेजनारायणजी बनाये गये और पं० शंकरनाथजी आर्यसमाज कलकत्ता के उप-प्रधान बनाये गये। इस प्रकार पं० शंकरनाथजी का आर्यसमाज कलकत्ता से स्थापना-काल से ही सम्बन्ध है। सन् १९०९ ई० में जब आर्यसमाज मन्दिर के लिये भूमि खरीदी गयी तो उस समय भूमि क्रय करने के लिये आर्यसमाज कलकत्ता का जो ट्रस्ट बना था, पं० शंकरनाथजी उसमें एक ट्रस्टी हैं। सन् १९१९ ई० में जब आर्यसमाज कलकत्ता का पंजीकरण किया गया था, उस समय पं० शंकरनाथजी आर्यसमाज कलकत्ता के उप-प्रधान थे। वे १९२३ ई० में वे आर्यसमाज कलकत्ता के प्रधान भी थे। इस प्रकार पं० शंकरनाथजी कई दशाब्दियों तक आर्यसमाज कलकत्ता के सक्रिय अधिकारी रहे।

पं० शंकरनाथजी आर्यसमाज कलकत्ता के प्रधान और उप-प्रधान ही नहीं थे बल्कि एक अति समर्थ विद्वान् भी थे। पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री के लेख से पता चलता है कि[१] जब राजा तेजनारायण के बीस हजार रुपये के दान से 'आर्यावर्त यन्त्रालय' नामक छापाखाना खुला था तो उसके लिये स्थान पं० शंकरनाथजी ने अपने निवास-भवन में दो कमरे दे दिये थे। वहाँ से आर्यधर्मप्रवर्तक नामक एक मासिक पत्र प्रकाशित हुआ था। पं० शंकरनाथजी ने उस समय सत्यार्थ प्रकाश का बंगला भाषा में अनुवाद किया था और पं० दीनबन्धुजी की सूचना के

१—योगी का आत्म चरित्र—पृ० २८

अनुसार पं० शंकरनाथजी ने ही अपने व्यय से उसे प्रकाशित किया था। यह पं० शंकरनाथजी की उदारता और सम्पन्नता का परिचायक है।

पं० शंकरनाथजी उच्च कोटि के विद्वान् और साहित्यिक थे। उन्होंने अंग्रेजी और बंगला दोनों भाषाओं में अच्छा साहित्य लिखा था। उनकी आठ पुस्तकें अंग्रेजी में और पन्द्रह पुस्तकें बंगला में देखने में आयी हैं। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, आर्याभिविनय और पञ्च महायज्ञ विधि जैसी कई पुस्तकों का बंगला भाषा में अनुवाद किया था। वंग भाषा में ऋषीन्द्र-जीवन नामक का उन्होंने स्वामी दयानन्द एक जीवन चरित्र भी लिखा था। उनकी पुस्तकों की विस्तृत सूचना इसी इतिहास के द्वितीय अध्याय में प्रकाशित है।[1]

सम्पादकाचार्य पं० रुद्रदत्तजी शर्मा

यों तो आर्यसमाज कलकत्ता को पं० शंकरनाथजी जैसा विद्वान् आरम्भ से ही उपलब्ध था। पं० शंकरनाथजी बंगला और अंग्रेजी के विशिष्ट विद्वान् थे और आर्यसमाज कलकत्ता के उप-प्रधान भी थे। इस दृष्टि से पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री ने यह लिखा है कि सम्पादकाचार्य पं० रुद्रदत्तजी शर्मा ही बंगाल में आर्यसमाज के प्रथम उपदेशक थे। पं० रुद्रदत्तजी शर्मा उपदेशक, विद्वान्, पत्रकार और शास्त्रार्थ महारथी थे।

पं० रुद्रदत्तजी का जन्म धामपुर जिला बिजनौर में हुआ था। उनकी जन्मतिथि मार्गशीर्ष त्रयोदशी १९११ विक्रमी सन् १८५४ ई० है। उनके पिताजी पं० काशीनाथजी शास्त्री संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् थे। पं० रुद्रदत्तजी ने वृन्दावन, मथुरा और काशी में अध्ययन किया था। प्रारम्भिक अवस्था में वे उत्तरप्रदेश में आर्योपदेशक का कार्य करते रहे। कभी-कभी बिहार-बंगाल में भी प्रचारार्थ आया करते

१—द्रष्टव्य द्वितीय अध्याय पृ० २४-२५

थे। शर्माजी ने प्रसिद्ध पौराणिक विद्वान् पं० अम्बिकादत्त व्यास से कई शास्त्रार्थ भी किये थे।

एक पत्रकार के रूप में शर्माजी ने मुरादाबाद के आर्य विनय पत्र का सम्पादन सन् १८८५ ई० में आरम्भ किया था। सन् १८८७ ई० में आर्यावर्त का सम्पादन करने के लिए उन्हें कलकत्ता आमन्त्रित किया गया। सन् १८६७ ई० तक १० वर्ष उन्होंने कलकत्ता में आर्यावर्त का सम्पादन किया। डा० भवानीलालजी भारतीय की सूचना के अनुसार पं० रुद्रदत्तजी ने आर्य मित्र, इन्द्रप्रस्थ प्रकाश, भारत मित्र, हिन्दी बंगवासी, हितवार्ता, इत्यादि अनेकों पत्रों का सम्पादन किया था।[1]

कलकत्ता में रहते हुए पं० रुद्रदत्तजी ने कुछ ग्रन्थों का प्रणयन भी किया था। 'पातञ्जल योगदर्शन और व्यासभाष्य' का उन्होंने हिन्दी भाषानुवाद किया था। यह ग्रन्थ बाबू महावीर प्रसादजी, मन्त्री, आर्यसमाज कलकत्ता द्वारा प्रकाशित किया गया था और आर्यावर्त यन्त्रालय, ७५ नं० काटन स्ट्रीट, कलकत्ता में सन् १८८६ ई० में मुद्रित हुआ था। इनका एक और प्रकाशन धर्मविषयक व्याख्यान आर्यावर्त यन्त्रालय कलकत्ता से प्रकाशित हुआ था।

पं० रुद्रदत्तजी ने व्यंग्यात्मक रीति से २ पुस्तकें लिखी हैं— (१) स्वर्ग में सबजेक्ट कमेटी : यह व्यंग्य और विनोद की शैली में पौराणिक देवी-देवताओं के ऊपर लिखी गयी पुस्तक है। इसमें विनोद-पूर्ण खण्डन किया गया है। (२) स्वर्ग में महासभा : पुस्तक स्वर्ग में सबजेक्ट कमेटी की ही शैली पर लिखी गयी है। इसमें अष्टादश पुराणों का खण्डन किया गया है। (३) आर्यमार्तण्ड नाटक : पं० रुद्रदत्तजी ने इसका एक भाग लिखा था, और यह आर्यभास्कर प्रेस, आगरा से प्रकाशित हुआ था। (४) कण्ठी-जनेऊ का विवाह : यह व्यंग्यात्मक

१—डा० भवानीलाल भारतीय आर्यसमाज के पत्र और पत्रकार पृ०-४०-४२

शैली पर लिखी गयी पुस्तक है। इनकी कुछ और पुस्तकों का नाम इस प्रकार मिलता है :—ध्यान-योग विधि, शिक्षा विधान, वीरसिंह दारोगा (उपन्यास) और जर्मन जासूस (उपन्यास)।

सम्पादकाचार्य पं० रुद्रदत्तजी शर्मा २१ वर्ष की आयु में एक आर्योपदेशक के रूप में कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुए थे। सन् १९१८ ई० में ६४ वर्ष की आयु में उनका देहान्त हुआ। ऐसे दंगली पत्रकार, प्रौढ़ विद्वान्, वक्ता और लेखक का जीवन कष्टमय ही बीता था। कलकत्ता से तो वे सन् १८९७ ई० में ही चले गये थे, किन्तु जीवन के अन्तिम दिन आर्थिक विपन्नता में ही व्यतीत हुए थे।

इतिहास की दृष्टि से पं० रुद्रदत्तजी शर्मा सम्पादकाचार्य का कलकत्ता में एक और प्रकार से अपना स्थान है। आर्यसमाज के उन आरम्भिक दिनों में ही एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न आर्यसमाज कलकत्ता में यह उठ गया था कि बंगाल के मछली खाने वाले लोगों को आर्य-समाज में सम्मिलित किया जाय या नहीं। पंजाब में मांसाहारियों के प्रति जो शिथिलता या उदारता दिखायी गयी थी, बंगाल में मत्स्याहारियों के प्रति वह शिथिलता नहीं वर्ती गयी। मत्स्याहारियों के समर्थन में जो लोग थे वे आर्यसमाज से सहानुभूति रखने वाले किन्तु आर्यसमाज के बाहर के ही लोग थे। मत्स्याहारियों को आर्यसमाज में प्रश्रय न मिल सका, यह निर्णय लेने में पं० शंकरनाथजी जैसे बंगाली विद्वान् के साथ सम्पादकाचार्य पं० रुद्रदत्तजी शर्मा का अपना विशिष्ट स्थान था। पं० रुद्रदत्तजी जितने दिन कलकत्ता में रहे अपनी विद्वत्ता, व्याख्यान-पटुता और लेखन-क्षमता के कारण यहाँ के जनमानस में अपना विशिष्ट स्थान बनाने में समर्थ रहे।

यहाँ से जाने के पश्चात् कलकत्ता के साथ उनका सम्पर्क धीमे-धीमे क्षीण हो गया।

स्वामी मुनीश्वरानन्दजी

स्वामी मुनीश्वरानन्दजी का कार्यकाल पं० अयोध्या प्रसादजी से भी पूर्ववर्ती है। यों तो उनका कार्यक्षेत्र बिहार रहा है फिर भी कलकत्ता और आर्यसमाज कलकत्ता में यहाँ के अंचलों में वेदधर्म के प्रचारार्थ उनका आगमन होता ही रहता था और पर्याप्त समय तक वे यहाँ निवास करते हुए आर्यसमाज का प्रचार करते रहते थे। स्वामी मुनीश्वरानन्दजी दानापुर (पटना) के दियारा, उत्तरी भाग के रहने वाले थे। ये बालब्रह्मचारी पुरुष थे। आरम्भिक दिनों में स्वामी मुनीश्वरानन्दजी कबीरपंथी थे। इनका सम्बन्ध मास्टर जनकधारी सिंह से हुआ। मास्टरजी स्वामी दयानन्द के भक्त शिष्य और आर्यसमाजी विचारों के थे। इन्हींके सम्पर्क में आकर स्वामी मुनीश्वरानन्दजी न केवल स्वामी दयानन्द के भक्त ही बने बल्कि संन्यासी बनकर उन्होंने आर्यसमाज का यावज्जीवन प्रचार किया। वे प्रायः आर्यसमाज दानापुर में रहा करते थे। स्वामीजी कठोर खण्डन को भी मृदु एवं हृदयग्राही बना देते थे। उनके सम्बन्ध में कलकत्ता में हमने शास्त्रार्थ की चर्चा सुनी थी। हम सन् १९४४-४५ ई० में कलकत्ता आये थे। उस समय के कुछ आर्यों के मुख से शास्त्रार्थ की यह घटना सुनी थी। अविश्वसनीयता का कोई कारण नहीं है, अतः इसे इतिहास के इस अंक में यथाश्रुत लिख रहे हैं—

डलहौसी स्क्वायर में (बी० बी० डी० बाग) पौराणिकों और आर्यसमाजियों के बीच शुद्धि पर शास्त्रार्थ था। पौराणिकों की ओर से प्रसिद्ध विद्वान् पं० अखिलानन्दजी आए हुए थे। आर्यसमाजियों की ओर से प्रमुख शास्त्रार्थकर्त्ता स्वामी मुनीश्वरानन्दजी थे। जैसे ही शास्त्रार्थ आरम्भ होने की बात आयी, पं० अखिलानन्दजी ने एक चुटकीभरा व्यंग्यात्मक प्रश्न छेड़ दिया। उस समय डलहौसी स्क्वायर के बाहर-बाहर ट्राम लाइन थी और पार्क के बाहर चारो ओर खुली

नालियां थीं। पं० अखिलानन्दजी ने स्वामी मुनीश्वरानन्दजी से पूछा कि स्वामीजी! एक व्यक्ति आपके लिये रसगुल्ले ला रहा है। उसके हाथ से रसगुल्ले इन गन्दी नालियों में गिर पड़े और वे नष्ट हो गये। अब आप क्या उन रसगुल्लों को हवन-यज्ञ करके शुद्ध कर लेंगे और मलमूत्र में सने ये रसगुल्ले पवित्र होकर ग्रहण करने योग्य हो जायेंगे? और यदि नहीं, तो इन भ्रष्ट पतित विधर्मियों को हवन-यज्ञ द्वारा आप कैसे पवित्र बनाकर ग्रहण कर सकते हैं। अखिलानन्दजी की इस वाक्चातुरी पर पौराणिकों ने ताली पीट दी और बड़ा हर्ष मनाया। अखिलानन्दजी की सूझबूझ पर वाह-वाह होने लगा।

अब स्वामी मुनीश्वरानन्दजी की बारी थी। स्वामीजी ने डबल चुटकी ली। एक वाक्य में तो यह कहकर अखिलानन्दजी की बात हल्की कर दी कि मलमूत्र में गिरे रसगुल्ले तो हवन-यज्ञ से शुद्ध भी नहीं हो सकते, इसलिए उनके शुद्ध करने और ग्रहण करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु इसके बाद जो चुटकी ली उससे अखिलानन्दजी को भी और पौराणिकों को भी लेने के देने पड़ गये। स्वामी मुनीश्वरानन्दजी ने कुछ इस प्रकार कहा—पं० अखिलानन्दजी विद्वान् आदमी हैं, इन्होंने गंगा-स्नान किया, चन्दन-टीका लगाया, रामनामी-शिवनामी ओढ़ी और खड़ाऊं पर चढ़कर यही स्कायर की सभा के लिए चल पड़े। संयोग की बात यदि इन्हीं नालियों के पास पंडितजी का खड़ाऊं फिसल जाय और इन्हीं नालियों में पंडितजी गिर जाँय तो यह नाली का कूड़ा-कचरा न तो रामनामी-शिवनामी कपड़ों को छोड़ेगा और निश्चय ही कुछ न कुछ अंश पंडितजी के मुँह-नाक में जा सकता है। पंडितजी गिर पड़े, पतित हो गये, इतनी तो घटना है। अब हम यदि यह कहते हैं कि पंडितजी को स्नान इत्यादि कराओ, मुँह आदि धुलवाओ, शुद्धस्वच्छ कपड़े पहना लो, तो क्या

पं० अखिलानन्दजी भी छेने के रसगुल्ले हैं जो नालियों में गिर गये तो सदा के लिए पतित हो गये ?

यह जहां शुद्धि का मार्मिक उत्तर था वहाँ अखिलानन्दजी की बोलती बन्द हो गयी और आर्यसमाजी सिद्धान्तों का जयजयकार होने लगा।

स्वामी मुनीश्वरानन्दजी वैदिक धर्म प्रचारार्थ यों तो सारे देश में घूमते थे, पर विशेषरूप से विहार और उसीके साथ कलकत्ता भी प्रचारार्थ आते थे। स्वामीजी को वृद्धावस्था में कारवंकल (पच्छघाव फोड़ा) हो गया था। कहते हैं एक ओर मधुमेह और दूसरी ओर कारवंकल, स्वामीजी इससे स्वस्थ न हो पाये। स्वामी मुनीश्वरानन्दजी के सम्बन्ध में एक और महत्त्वपूर्ण सूचना है जिसके बिना उनके व्यक्तित्व को समझना अधूरा ही रह जायगा। स्वामी मुनीश्वरानन्दजी ने जब कारवंकल (पच्छघाव फोड़े) का आपरेशन कराया था तो क्लोरोफार्म सूंघ कर बेहोश होने से इन्कार कर दिया था। स्वामी मुनीश्वरानन्दजी का कहना था कि जब वे ध्यानावस्थित हो जाँय तो डाक्टर आराम से उनका आपरेशन कर लें। ऐसा ही हुआ। स्वामी मुनीश्वरानन्दजी ने ध्यानावस्थित होकर इतने भयानक फोड़े का आपरेशन करा लिया और ऐसे निश्चेष्ट पड़े रहे कि जैसे उनका शरीर चेतनाहीन हो गया था।

स्वामी मुनीश्वरानन्दजी की मृत्यु के समय उनके पास कुछ रुपये निकले थे। विहार प्रतिनिधि सभा ने उनकी स्मृति में और पर्याप्त धन लगाकर पटना में मुनीश्वरानन्द भवन (प्रतिनिधि सभा का भवन) बनवा दिया। मुनीश्वरानन्दजी साधु भी थे और योगी भी थे। ऋषिभक्त थे और प्रचारक भी थे। कलकत्ता में उनके प्रचार की मधुर स्मृतियाँ लोगों के हृदयों में संचित रही हैं।

पं० रामावतार शर्मा षट्तीर्थ

पं० रामावतार शर्मा का जन्म बिहार प्रान्त के सारन जिला मशरक थाना में करतारपुर नामक ग्राम के पास हुआ था। पैत्रिक परम्परा में सरयूपारीण तिवारी ब्राह्मणों का कुल है। स्वाभाविक रूप से इस पैतृक परम्परा का इनके वैदुष्यपूर्ण जीवन पर, इनकी

पं० रामावतार शर्मा

अति सरलता सात्विकता पर प्रभाव रहा है। आज से ८०-८५ वर्ष पूर्व ब्राह्मण पुत्र संस्कृत के अतिरिक्त और कुछ पढ़ने की कम ही सोच सकता था। इन्होंने भी अपने शैशव में हरपुरजान वेद विद्यालय में प्रारम्भिक शिक्षा आरम्भ की। यही विद्यालय पीछे चलकर गुरुकुल महाविद्यालय हरपुरजान के नाम से प्रसिद्ध हुआ। शर्माजी जब इस वेद विद्यालय में पढ़ते थे उसी समय इनका परिचय श्री बाबू कृष्णबहादुर सिंह से हुआ। बाबू साहब इसी हरपुरजान ग्राम

के क्षत्रिय ज़मीदार और गुरुकुल के छात्र एवं आर्यसमाजी थे। बाबू-साहब ने शर्माजी की योग्यता एवं इनके ब्राह्मण सुलभ संस्कारों को देखकर इन्हें पूर्ण विद्वान् बनाने में भरपूर सहयोग किया।

पं० रामावतार शर्मा ने कई स्थलों पर अध्ययन किया। चम्पारन में मोतिहारी, गुरुकुल वृन्दावन, गुरुकुल कांगड़ी, काशी आदि स्थानों में इन्होंने विद्याध्ययन किया। कलकत्ता में रहकर पंडितजी ने षट्तीर्थ-काव्य, मीमांसा, पुराण, ऋग्वेद शुक्ल यजुर्वेद एवं सामवेद में यह उपाधि परीक्षा उत्तीर्ण की। काशी में श्री चिन्नस्वामीजी एवं पं० काशीनाथजी मिश्र आदि के सम्पर्क में विद्याध्ययन किया।

कलकत्ता प्रवास के समय जब शर्माजी वेद परीक्षाओं की तैयारी कर रहे थे उस समय आर्यसमाज कलकत्ता में ही रहते थे। उस समय आर्यसमाज के उदारदानी सेठों एवं दूरदर्शी अधिकारियों ने इनकी विद्या की प्रवृत्ति के साथ चारित्रिक पवित्रता और योग्यता पर मुग्ध होकर इनकी पूरी सहायता की। पंडितजी अपनी विद्या, व्याख्यान, प्रवचन आदि से कलकत्ता आर्यसमाज और वेदधर्म की सेवा करते रहे।

जीवन के उत्तरार्ध में पं० रामावतारजी शर्मा एक बार फिर कलकत्ता पधारे और कुछ वर्षों तक दक्षिण कलकत्ता और खिदिरपुर अंचलों में अपना कार्यक्षेत्र बनाकर आर्यसमाज और वेदविद्या की सेवा करते रहे। इस अवधि में खिदिरपुर के श्री जनकलाल गुप्त ने शर्माजी को अच्छा सहारा दिया। श्री शर्माजी गुरुकुल महाविद्यालय हरपुरजान में आचार्य के रूप में सेवा करते रहे।

पं० रामावतार शर्मा ने यजुर्वेद का भाष्य तथा संस्कार विधि की विस्तारपूर्वक व्याख्या की। कुछ वर्ष पूर्व आपने सामवेद का भी भाष्य पूर्ण कर दिया था।

शर्माजी समाज सुधार में भी सक्रिय भाग लेते रहे। स्वयं सरयूपारीण होते हुए भी मैथिल ब्राह्मण कन्या से अपना स्वयं वैदिक

विधि से विवाह करके पंडितजी ने एक क्रान्तिकारी पग उठाया था। सन् १९७५ ई० में आर्यसमाज स्थापना शताब्दी के अवसर पर दिल्ली में आयोजित शताब्दी-समारोह के वेद-सम्मेलन में पं० रामावतार शर्मा को इनकी विद्वत्ता एवं वेदसेवा के लिए सम्मानित एवं पुरस्कृत किया गया था।

पंडितजी जीवन के अन्तिम दिनों में गुगरी, खगड़िया जिला मुंगेर में वार्द्धक्य काट रहे थे।

श्री राधामोहन गोकुल

श्री राधामोहन गोकुल का नाम कलकत्ता के आर्यसमाज जगत् में एक सम्पादक के रूप में उजागर हुआ था। श्री राधामोहनजी लाल गोपालगंज, इलाहाबाद (उ० प्र०) के थे। आपका जन्म यहीं लाल गोपालगंज में सन् १८६५ ई० में हुआ था। आपके पिताजी का नाम श्री गोकुलचन्द था। श्री राधा-मोहनजी ने फारसी और अंग्रेजी का अध्ययन किया था। स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज की ओर आपका झुकाव कैसे हुआ, यह तो ज्ञात नहीं है किन्तु आप कट्टर आर्यसमाजी निष्ठा के व्यक्ति थे, इसमें भी कोई सन्देह नहीं है।

श्री राधामोहन गोकुल

जीविका उपार्जन के सिलसिले में सन् १९०४ ई० में श्री राधामोहनजी कलकत्ता आये थे। यहाँ कुछ क्रान्तिकारी समाज सुधारक मारवाड़ी युवकों से आपका सम्पर्क हुआ। क्रान्ति के भाव यहाँ अधिक उजागर हो गये। श्री राधामोहनजी न केवल आर्यसमाजी निष्ठा के समाज सुधारक थे अपितु स्वाधीनता प्रेमी और स्वाधीनता संघर्ष को प्रेरित

करने वाले युवक थे। जब लाला लाजपत राय को देशनिकाला का दण्ड दिया गया तो राधामोहन गोकुलजी ने 'देशभक्त लाजपत' नाम की पुस्तक लिखी। श्री राधामोहनजी ने इटली के क्रान्तिकारी देशभक्तों मैजिनी और गैरवाल्डी के जीवन चरित्र भी लिखे। श्री राधामोहनजी की अभिरुचि लेखन-कला की ओर थी। आपने कई पुस्तकें लिखीं। गुरुगोविन्द सिंह, कलिदर्शन, देश का धन इत्यादि कुछ अन्य पुस्तकों की सूचना भी मिलती है।

श्री राधामोहन गोकुलजी कलकत्ता के आर्यसमाज जगत् में इसलिए भी बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं कि एक समय जब आर्य-समाज का और आर्यसमाजी निष्ठा का बड़ी उग्रता और कठोरता से विरोध हो रहा था, उस समय श्री राधामोहन गोकुलजी ने आर्यसमाज की ओर से उस सारे विरोधों का डटकर सामना किया था और यह कहने में कुछ हिचक नहीं है कि राधामोहनजी को ईंट का जवाब पत्थर से देने में कोई संकोच न था।

घटना का तुक यों बना। कलकत्ता के प्रसिद्ध आर्यसमाजी मारवाड़ी पोद्दार परिवार में जयनारायणजी पोद्दार के मंझले पुत्र श्री दीपचन्दजी पोद्दार की पत्नी का देहान्त हो गया था। श्री जय-नारायणजी और उनका समस्त परिवार कट्टर आर्यसमाजी निष्ठा के थे। अतः इस दिवंगत महिला का अन्त्येष्टि-संस्कार स्वामी दयानन्द की संस्कार विधि के अनुसार किया गया। शव का शिर उत्तर की ओर और चिता पर भी सामग्री की आहुतियाँ, यह सब कुछ किया गया। यद्यपि इस अन्त्येष्टि संस्कार के करवाने के लिए श्री जयनारायणजी ने बड़ाबजार के सुप्रसिद्ध वैद्य पं० रामदयालजी शर्मा सिहांनेवाले को बुलाया था। वैद्यजी विशुद्ध कट्टर सनातनधर्मी विद्वान् थे, किन्तु सत्य के प्रतिपालक थे और कोई सत्यनिष्ठ सनातनधर्मी विद्वान् अन्त्येष्टि संस्कार को धर्म विरुद्ध नहीं कह सकता। किन्तु बड़ाबाजार में

विशेषरूप से मारवाड़ी वर्ग में ऐसे लोगों की कमी न थी जो आर्य-समाजी होने के कारण जयनारायणजी से डाह ही नहीं करते थे, भयानक विरोध तक करने में संकोच नहीं करते थे। इस प्रसंग पर जयनारायणजी को लोगों ने वहिष्कृत कर दिया। यह संवत् १९६१ विक्रमी, सन् १९०७ ई० की घटना है। विरोधियों की उग्रता इतनी बढ़ गई कि उन्होंने मुरादाबाद से पं० ज्वाला प्रसादजी मिश्र और प्रसिद्ध आर्यसमाज विरोधी पं० भीमसेनजी शर्मा इत्यादि कई उच्च कोटि के विद्वानों को बुलाया और यह पण्डितों की मण्डली प्रसिद्ध सनातनधर्मी शिक्षा-संस्था विशुद्धानन्द विद्यालय में महीनों जमी रही। श्री जय-नारायणजी पोद्दार और पं० रामदयालजी वैद्य के विरुद्ध बड़ा बवण्डर खड़ा किया गया। उस समय आर्यसमाज का विरोध करने के लिए सनातन धर्म नामक दैनिक पत्र निकाला गया। इतिहास लेखक स्वीकार करते हैं कि यह सब उचित-अनुचित का विचार किये बिना केवल विरोध की दृष्टि से किया जा रहा था। इस विषम परिस्थिति में सनातन धर्म पत्र के मोर्चे पर आर्यसमाज की ओर से 'सत्य सनातन धर्म' नामक पत्र निकाला गया और इस पत्र का सम्पादन श्री राधामोहन गोकुलजी ने किया।

तात्कालिक विरोध-भावना तथा सनातन धर्म और सत्य सनातन धर्म के सम्बन्ध में हम इसी इतिहास के तत्सम्बन्धी प्रसंगों पर विचार व्यक्त करेंगे।[1] यहाँ हमारा इतना ही अभिप्राय है कि आवश्यकता पड़ने पर श्री राधामोहन गोकुलजी ने इस प्रकार के बवण्डर का बड़ा सशक्त और समर्थ विरोध किया था।

यह समय आर्यसमाज में पं० शंकरनाथजी, सम्पादकाचार्य पं० रुद्रदत्तजी जैसे विद्वानों का युग था। सम्भव है कि जैसे सनातन धर्म की ओर से सनातन धर्म पत्र तो निकला, किन्तु किसी सनातनधर्मी

१. द्रष्टव्य—द्वादश अध्याय

संस्था ने उसे नहीं निकाला था। उसी प्रकार आर्यसमाज की ओर से भी सम्भव है संस्था का सामने आना उचित न समझा गया हो। तथापि किसी-न-किसी को यह तूफानी आक्रमण श्री जयनारायणजी की ओर से और वैदिक सिद्धान्तों की ओर से डटकर झेलना आवश्यक हो गया था। यह कार्य श्री राधामोहन गोकुलजी ने बड़ी समर्थता से किया और तथाकथित आक्षेप करने वालों की बोलती बन्द हो गयी।[१]

बवण्डर का शान्त होना एक बात थी किन्तु पं० ज्वालाप्रसादजी और पं० भीमसेनजी जैसे दर्जनों विद्वानों का महीनों जमकर बैठ जाना और विरोध की उग्रता का स्वरूप दैनिक पत्रों के प्रकाशन के रूप में उभर आना, फिर वैदिक सिद्धान्तों की ओर से राधामोहन गोकुल का सम्मुखीन होना अपने में एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक अध्याय है। आज आर्यसमाज और सनातन धर्म एक ही विशाल वैदिक धर्म के रथ के दो सहयोगी पहियों के रूप में दिखायी पड़ रहे हैं, किन्तु विरोध के दिन तो थे ही विरोध के दिन, और इस दृष्टि से श्री राधामोहन गोकुलजी की सशक्तता, क्षमता, निष्ठा, धीरता इतिहास की दृष्टि से अपनेमें बेजोड़ है। साहित्यिक व्यक्ति तो वे थे ही, कई पुस्तकें उन्होंने लिखी ही हैं। अनुमान होता है कि उनकी सम्पादनकला भी गौरवमयी रही होगी।

इतिहास के विभिन्न सूत्रों से यह विदित होता है कि अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने श्री राधामोहनजी की स्मृति में समाज-सुधार सम्बन्धी उत्कृष्ट ग्रन्थ पर 'राधामोहन गोकुल पुरस्कार' देना आरम्भ किया। यह पुरस्कार श्री राधामोहनजी की हिन्दी-सेवा को भी उजागर करता है।

श्री राधामोहन गोकुलजी कलकत्ता से हमीरपुर चले गये। वहाँ स्वामी श्रद्धानन्दजी द्वारा स्थापित विद्यालय में रहने लगे। सन् १६३५

१. द्रष्टव्य—द्वादश अध्याय, पत्र और पत्रकार

ई० में कलकत्ता से हमीरपुर जाकर स्वतन्त्रता-संघर्ष और क्रान्तिकारी दल का संगठन करते रहे। वहीं जीवन के अन्तिम दिनों तक आप रहे और जैसा निःस्वार्थ क्रान्तिकारी सेवकों के साथ प्रायः होता ही है, जीवन के अन्तिम दिनों में औषधि-उपचार का भी ठीक योग न बन पाया। श्री राधामोहनजी पेचिश के शिकार हुए और वहीं आपका देहान्त हो गया। 'राधामोहन गोकुल पुरस्कार' उनकी साहित्यिक सेवाओं का अमर स्मारक है।

पं० अयोध्या प्रसादजी, वैदिक रिसर्च स्कॉलर

पं० अयोध्या प्रसादजी

आर्यसमाज कलकत्ता के इतिहास में पं० अयोध्या प्रसादजी बी०ए०, वैदिक रिसर्च स्कालर का स्थान अद्वितीय है। आप की कीर्ति

स्वयं अपने में अपना मापदण्ड है। आर्यसमाज कलकत्ता के इतिहास का प्रारम्भिक युग, विद्वानों की दृष्टि से, पं० शंकरनाथ-युग था तो २०-वीं सदी का द्वतीय चरण 'पं० अयोध्या प्रसाद युग' कहा जा सकता है। उस समय पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री, आचार्य पं० रमाकान्तजी शास्त्री जैसे विद्वान् भी आर्यसमाज कलकत्ता की सेवा में संलग्न थे। फिर भी पं० अयोध्या प्रसादजी का अपना अलग ही स्थान था। पण्डितजी ने जहाँ एक ओर अद्भुत वाग्मिता का परिचय दिया था, वहीं वे अपूर्व दार्शनिक थे। वाग्मिता ऐसी कि वैदिक दर्शन के अतिरिक्त भी जैन-दर्शन, इस्लाम-दर्शन इत्यादि पर समान अधिकार था। एक ओर वेदमन्त्रों की निराली व्याख्या तो दूसरी ओर चरित्र-चित्रण में सिद्धहस्त। आर्यजगत् के उपदेशकों में पं० अयोध्या प्रसादजी का अपना अलग ही स्थान था। पण्डितजी ने सन् १९३३ ई० में विश्व धर्मसम्मेलन में आर्यसमाज के प्रतिनिधिवक्ता मनोनीत थे। इस प्रकार पं० अयोध्या प्रसादजी आर्यजगत् के शिरोमणि विद्वान् और उपदेशक थे।

जन्म एवं शिक्षा :

पं अयोध्या प्रसादजी का जन्म १६ मार्च सन् १८८८ ई० को बिहार प्रान्त के गया जिले के अन्तर्गत नवादा तहसील के असावा ग्राम में हुआ था। पण्डितजी के पिताजी का नाम बाबू बंशीधर लाल और माताजी का नाम श्रीमती गणेश कुमारी था। पंण्डितजी के दो और भाई और चार बहनें थीं। बाबू बंशीधर लालजी रांची के डिप्टी कमिश्नर के दफ्तर में बेंच क्लर्क थे। ये एक विद्वान् और बुद्धिमान पुरुष थे। कहते हैं इनको व्यवस्टर की सम्पूर्ण डिक्शनरी कण्ठस्थ थी। इस प्रकार पं० अयोध्या प्रसादजी को अद्भुत स्मृति पिता से दायभाग में मिली थी। बाबू बंशीधर लालजी उर्दू, फारसी, अरबी और अंग्रेजी के विद्वान् थे। इनकी आर्थिक स्थिति भी बहुत अच्छी थी।

बाबू बंशीधर लालजी अपने सारे परिवार के साथ रांची में ही रहते थे। इस प्रकार पं० अयोध्या प्रसादजी का शैशव रांची में बीता था। पण्डितजी की प्रारम्भिक शिक्षा राँची में हुई थी। १६ वर्ष तक पण्डितजी केवल अरबी-फारसी पढ़ते रहे। सन् १६०८ ई० में आपने एन्ट्रेन्स पास किया और छात्रवृत्ति प्राप्त की। भागलपुर टी० एन० जे० कालेज से आपने इन्टर पास किया और कलकत्ता के सिटी कालेज से बी० ए० विशेष योग्यता के साथ किया। कलकत्ता में आपने एम० ए० और 'लॉ' की पढ़ाई भी आरम्भ की, पर, राजनीति के भंवर में आ गये और पढ़ाई छूट गयी। पण्डितजी का विवाह सन् १६०४ ई० में २२ वर्ष की आयु में हो गया था।

तान्त्रिकों के चक्कर में :

पं० दीनबन्धुजी की सूचना के अनुसार—

"पं० अयोध्या प्रसादजी लड़कपन में चञ्चल और चपल थे, साथ ही तान्त्रिकों के चक्कर में भी आ गये थे। नरकपाल, नरकंकाल, अस्थिसंग्रह, श्मशान में अधिक समय तक रहना उनकी आदत हो गई थी। धीरे-धीरे तान्त्रिक साधुओं के पीछे घूमने लगे थे। लाल कपड़ा पहनना, रुद्राक्ष की माला पहनना, सर्वाङ्ग में लाल चंदन लगाना, रात को श्मशान में रहना, तान्त्रिक मन्त्र जपना आदि तान्त्रिक कर्मों में लड़कपन बीतने लगा।[1]

इस्लाम को ओर झुकाव :

पं० अयोध्या प्रसादजीने अरबी, फारसी और उर्दू का अच्छा अध्ययन किया था। आप कविता भी लिखने लगे थे। आपने अपना उपनाम "गनीमत" रखा था। मौलवी गुरु के सम्पर्क में इस्लाम की

---

१. पं० अयोध्या प्रसादजी की मृत्यु पर पं० दीनबन्धुजी के प्रकाशित संस्मरण लेख से।

ओर झुकाव बढ़ गया। कबीर, मन्सूर पढ़कर अयोध्या प्रसादजी हिन्दू-धर्म की अपेक्षा इस्लाम को अधिक अच्छा समझने लगे थे। हिन्दूधर्म की त्रुटियाँ इनको कुछ अधिक ही खलने लगी थीं। कुल में अंग्रेजी नौकरी, कायस्थ परिवार, अरबी-फारसी-उर्दू की पढ़ाई, मौलवी गुरु सब कुछ हिन्दुत्व से अलग ही ले जा रहा था, किन्तु आर्यसमाज और सत्यार्थ प्रकाश का जादू कुछ और ही प्रमाणित हुआ।

सत्यार्थ प्रकाश के सम्पर्क में :

जिस समय पं० अयोध्या प्रसादजी की मानसिकता इस्लाम की ओर झुक रही थी, और हिन्दू मान्यताओं से मन ऊब रहा था, उसी समय पण्डितजी का सम्पर्क सत्यार्थ प्रकाश से हो गया। पण्डितजी के मामाजी आर्यसमाजी थे और स्वाभाविक ही वे सत्यार्थ प्रकाश के भक्त थे। अपने भाञ्जे की यह स्थिति देखकर उन्होंने उन्हें सत्यार्थ प्रकाश दिया और दृढ़ता से पढ़ने का आग्रह किया। पण्डितजी ने ११वाँ, १३वाँ, १४वाँ समुल्लास पढ़ा और उनका मन इस्लाम की ओर से फिर गया। पं० अयोध्या प्रसादजी ने आचार्य रमाकान्तजी शास्त्री को स्वयं बताया था कि—

> "पण्डितजी कहा करते थे कि जब मैं मौलवी साहब से कुछ प्रश्न करता तो वे आश्चर्य में पड़ जाते और कहने लगते कि अयोध्या, तुम ऐसी बातें क्यों करने लगे हो, ऐसे प्रश्न तुम्हें कौन सिखाता है।"[1]

पं० लेखरामजी के "हुज्जतुल इस्लाम" पढ़ने से उनके मन में जहाँ वैदिक विचारधारा की ओर आकर्षण हुआ था, वहीं मूल कुरान पढ़ने की भी प्रेरणा मिली थी। अस्तु, पण्डितजी का आकर्षण आर्यशास्त्रों की ओर बढ़ने लगा।

---

१. आचार्य रमाकान्तजी के संस्मरण-लेख से।

क्रान्तिकारी और राजनीतिक जीवन :

श्री पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री ने अपने संस्मरण में लिखा है कि श्री अयोध्या प्रसादजी हजारीबाग के क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित हो गये थे। श्री अयोध्या प्रसादजी ने सन् १९०८ ई० में कालेज की पढ़ाई आरम्भ की, उसी साल खुदीराम बोस को प्राणदण्ड, बंगभंग आन्दोलन, बाल गंगाधर तिलक को जेल इत्यादि ऐसे बहुत सारे कार्य हो रहे थे जिससे सारे देश में ही क्रान्ति का वातावरण था। इस समय अयोध्या प्रसादजी ने हजारीबाग में क्रान्तिकारी दल में सहयोग किया। पुत्र की गतिविधियों को देखकर इनके पिताजी ने इन्हें भागलपुर भेज दिया और वहाँ अयोध्या प्रसादजी टी० एन० जुबली कालेज में अध्ययन करने लगे। क्रान्तिकारी दल में अयोध्या प्रसादजी समाचार पहुँचाने का कार्य करते थे। इस सिलसिले में वे सारे उत्तरी भारत की यात्रा किया करते थे। अयोध्या प्रसादजी का कान्तिकारी दल में गुप्त नाम 'मिसिरजी' था।

क्रान्तिकारी दल के किसी नवयुवक विद्रोही के घर की तलाशी अलीगढ़ में हुई। उसके घर में 'सत्यार्थ प्रकाश' ग्रन्थ की एक प्रति पायी गयी। उस पुस्तक पर आयोध्या प्रसादजी का नाम और उनका राँची का पता लिखा हुआ था। इस सुराग से अयोध्या प्रसादजी अपने पिता के साथ इस केस में फँस गये। बड़ी कठिनाई से उस केस से निकलने में सफलता मिली। पिताजी ने पढ़ाई का खर्चा देना बन्द कर दिया। राँची के प्रसिद्ध आर्यसमाजी नेता श्री बालकृष्ण सहायजी ने समझा-बुझा कर पिता-पुत्र के मध्य समझौता करा दिया। अयोध्या प्रसादजी महामहोपाध्याय पं० रामावतार शर्मा से संस्कृत और हिन्दू-दर्शन पढ़ने के लिए पटना चले गये। पटना से अयोध्या प्रसादजी कलकत्ता आये और सिटी कालेज में बी० ए० की पढ़ाई आरम्भ कर दी। उस समय डा० राजेन्द्र प्रसाद भी हिन्दू होस्टल

में विद्यार्थी के रूप में रहते थे। उस समय यहाँ बिहार छात्रसंघ की स्थापना हुई, जिसके अध्यक्ष राजेन्द्र बाबू थे और मन्त्री अयोध्या प्रसादजी थे। राजेन्द्र बाबू के चले जाने के पश्चात् अयोध्या प्रसादजी इस संघ के अध्यक्ष बने। अयोध्या प्रसादजी इस संघ में गीता की कथा किया करते थे। इसी काल में उन्होंने इतिहास, दर्शन, धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन इत्यादि बड़ी गम्भीरता से किया था। स्वाभाविक था कि कालेज की पढ़ाई में शिथिलता आयी और अयोध्या प्रसादजी के पिताजी ने खर्चा देना फिर बन्द कर दिया। उस समय अयोध्या प्रसादजी ट्यूशन करके खर्च चलाते थे। बी० ए० पास करने के पश्चात् हावड़ा रेलवे स्टेशन में उन्होंने नौकरी की थी, किन्तु यह बन्धन उनके स्वभाव के विरुद्ध था और इधर धीरे-धीरे आर्यसमाज से उनका प्रेम बढ़ रहा था।

आर्यसमाज कलकत्ता से सम्पर्क :

पं० अयोध्या प्रसादजी आर्यसमाज कलकत्ता के सम्पर्क में तो थे ही, इधर श्री बालकृष्णजी सहाय और श्री श्यामकृष्णजी सहाय का पंडितजी के साथ अच्छा सम्बन्ध था तथा श्री बालकृष्णजी सहाय और श्री श्यामकृष्णजी सहाय का आर्यसमाज कलकत्ता के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। इन दोनों के सहयोग और इन्हींकी प्रेरणा से पं० अयोध्या प्रसादजी ने आर्यसमाज कलकत्ता में व्याख्यान देना आरम्भ किया। पं० अयोध्या प्रसादजी का बहुमुखी अध्ययन था। वेद, दर्शन, इतिहास, महर्षि दयानन्द का जीवन-दर्शन, आर्यसमाज के सिद्धान्त, अन्य मत-सम्प्रदायों के साथ तुलना आदि करने में पं० अयोध्या प्रसादजी बड़े ही सिद्धहस्त थे। कुरान, बायबिल, पुराण, जैन और बौद्ध ग्रन्थ सभी मत-सम्प्रदायों के वे अधिकारी विद्वान् थे। पण्डितजी की योग्यता से आकृष्ट होकर आर्यसमाज कलकत्ता ने उनको अपना पुरोहित-उपदेशक बना लिया। पंडितजी चरित्र-चित्रण और शास्त्रार्थ-कला में भी

पारंगत थे। ईसाई, मुसलमान, जैन और बौद्ध सभी उन्हें अपने यहाँ बुलाते थे। वे सभी के मंचों पर उनके धर्म-ग्रन्थों और दर्शनों की चर्चा करते थे, किन्तु सर्वविदित था कि वे आर्यसमाज के दृढ़ निष्ठावान् विद्वान् थे। एक बार एक जैन-सम्मेलन में जैनदर्शन पर अति भव्य, ललित, वैदुष्यपूर्ण व्याख्यान देकर पंडितजी बाहर निकल रहे थे, हम लोग भी उनके साथ थे, जनता मन्त्रमुग्ध-सी वाह-वाह कर रही थी, इतने में एक सिद्धान्ती जैनी, अच्छी आयु, कोई ७०-७५ वर्ष का, आया। आते ही उसने कहा—पण्डितजी, आप जैनदर्शन पर इतना अच्छा बोलते हैं, फिर भी आर्यसमाजी हैं? पण्डितजी बोले—आर्यसमाजी हूँ तभी तो जैन-दर्शन इतना अच्छा समझता हूँ। वह फिर बोला—आप मोक्ष को अनित्य क्यों मानते हैं? पण्डितजी ने उत्तर न देकर एक शास्त्रार्थी खिलाड़ी की तरह मुस्कराते हुए पूछा—आप बन्धन को क्या मानते हैं, नित्य या अनित्य? जैनी विद्वान् एकदम चुप, और हम सोचने लगे कि पण्डितजी ने बातों-बातों में उसको कैसे चुप कर दिया।

पं० अयोध्या प्रसादजी की ख्याति सारे भारतवर्ष में सभी प्रान्तों में होने लगी। कलकत्ता उनका निवास था और बिहार उनकी जन्म-भूमि, पर वे देश के कोने-कोने में प्रचारार्थ जाया करते थे।

जेलयात्रा :

पं० अयोध्या प्रसादजी आर्यसमाज के निष्ठावान् प्रचारक तो थे ही इधर सन् १६२० ई० में महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन ने भारतवर्ष की राजनीति को एक नयी दिशा दे दी। स्वामी दयानन्द और आर्यसमाजी लोग आरम्भ से ही स्वतन्त्रता, स्वदेशभक्ति, स्वराज्य-आन्दोलन इत्यादि के सक्रिय कार्यकर्त्ता थे। आर्यसमाज और आर्यसमाज के जलसे स्वतन्त्रता के इन तरानों के प्रमुख स्थल थे। संस्थागत रूप में आर्यसमाज से अधिक सम्भवतः अन्य किसी संगठन

ने गांधीजी के असहयोग आन्दोलन का साथ न दिया था। सारे देश में आर्यसमाज मन्दिर स्वतन्त्रता के कार्यों के केन्द्र बन गये और बहुत बड़ी संख्या में आर्यसमाजी उपदेशक अपने व्याख्यानों में स्वतन्त्रता-स्वराज्य पर ही व्याख्यान दिया करते थे। पं० अयोध्या प्रसादजी राजनीति के प्रति काफी सजग थे। उनका राजनीतिक विश्वास सत्यार्थ प्रकाश में वर्णित षष्ठ समुल्लास के आधार पर था। वे कलकत्ता के राजनीतिक वातावरण में सक्रिय हो उठे थे। पं० दीनबन्धुजी की सूचना के अनुसार सन् १९२० ई० में पं० अयोध्या प्रसादजी कलकत्ता के विभिन्न अंचलों में असहयोग आन्दोलन के समर्थन में व्याख्यान देने लगे थे। कलकत्ता के प्रसिद्ध कालेज स्कायर पार्क में वे राजधर्म पर भाषण दे रहे थे। यह पार्क कलकत्ता विश्व-विद्यालय के सामने है। आसपास कई कालेज और होस्टल हैं। यह पढ़ेलिखे लोगों का केन्द्रस्थल है। यहाँ के राजनीतिक व्याख्यानों का अपना अलग ही महत्त्व रहा है। यहाँ पंडितजी राजधर्म पर सत्यार्थ प्रकाश की मान्यताओं के अनुसार व्याख्यान दे रहे थे और उस व्याख्यान को राजद्रोही घोषित कर पुलिस ने उन्हें वहीं गिरफ्तार कर लिया। राजद्रोह के अभियोग में उन्हें डेढ़ वर्ष का कारावास का दण्ड मिला। कहते हैं, पुलिस पण्डितजी को बन्दी बनाने का बहाना काफी दिनों से खोज रही थी। पं० अयोध्या प्रसादजी असहयोग आन्दोलन के बन्दियों में पहले धावे के बन्दी थे। इसके पश्चात् पुलिस ने हजारों लोगों की गिरफ्तारी की थी। पण्डितजी राजबन्दी के रूप में कलकत्ता के प्रसिद्ध अलीपुर सेन्ट्रल जेल में रहे थे। जेल में भी पण्डितजी राजनीतिक बन्दियों को वैदिक धर्म और आर्यसमाज के सिद्धान्तों की शिक्षा दिया करते थे। उस समय पं० दीनबन्धुजी राजनीतिक बन्दी के रूप में स्वयं सेन्ट्रल जेल बरहमपुर में थे। पं० दीनबन्धुजी ने लिखा है कि अलीपुर जेल से बदले गये राजबन्दियों

के मुख से पं० अयोध्या प्रसादजी के वैदिक धर्म-प्रचार की कहानी वे सुना करते थे। पं० अयोध्या प्रसादजी जेल में भी वैदिक मिशनरी के रूप में रहे।

पं० अयोध्या प्रसादजी सन् १९२० ई० में लॉ (कानून) की प्राथमिक परीक्षा पास करके शेष परीक्षा दे रहे थे। अभी एक पेपर बाकी था कि वे कालेज स्क्वायर में गिरफ्तार हो गये। उसी साल वे एम०ए० परीक्षा की भी तैयारी कर रहे थे, किन्तु गिरफ्तार होने के कारण वे परीक्षा न दे सके।

अध्यापकी की नौकरी :

पं० अयोध्या प्रसादजी ने जेल से आकर आजीविका के लिए कलकत्ता स्थित सनातनधर्म विद्यालय में प्रधानाध्यापक का कार्य किया था। वे अधिक दिनों तक यह कार्य न कर सके थे। पीछे एक बार पण्डितजी आर्य विद्यालय कलकत्ता के भी प्रधानाध्यापक बने थे, किन्तु नौकरी पेशा उनके स्वभाव के अनुकूल न था, अतः वे स्वतन्त्र रूप में आर्यसमाज के उपदेशक ही रह सके।

उपदेशक के रूप में :

पं० अयोध्या प्रसादजी बड़े प्रकाण्ड विद्वान् एवं शास्त्रार्थी थे। उनके व्याख्यानों के संस्मरण सुनने-देखने को मिले हैं :—

"महाबोधि सोसाइटी में भी उनका व्याख्यान होता था। कई बार लोग आश्चर्यचकित होकर सोचते थे कि पण्डितजी आर्यसमाजी हैं या बौद्ध। एक बार महापण्डित राहुल सांकृत्यायन बौद्ध दर्शन पर बोलने आये। इस सभा के सभापति पं० अयोध्या प्रसादजी थे। राहुलजी का बड़ा नाम था और महाबोधि सोसाइटी का हाल खचाखच भरा था। राहुलजीने बड़ा विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान दिया। अन्त में

सारांश यह है कि हम सब उनके नेतृत्व, ज्ञान और उत्साहवर्धन के लिये, जो उन्होंने भ्रातृत्व की सुन्दर भावना से सर्वधर्म सम्मेलन में योगदान दिया है, अत्यन्त कृतज्ञ हैं और इन बातों के कारण उन्होंने अपनेको सर्वप्रिय बना लिया है।

अब चूंकि वे लम्बी यात्रा करके शिकागो तक आये हैं, यह आवश्यक प्रतीत होता है कि वे कुछ अधिक समय तक यहाँ ठहरें, विभिन्न सभाओं में व्याख्यान दें, हमारी अमरीकन संस्थाओं से परिचित हों और उन्हें आर्यसमाज के महान् आन्दोलन के आदर्श चरित्र और सफलताओं से परिचित करायें।

आपका भाई,
चार्ल्स फेडरिक वेलर

इसी प्रकार दूसरा निम्न पत्र विश्वधर्म सम्मेलन के शिकागो संघ के प्रधान श्रीयुत रेबीनोफ ने भेजा था :—

World Fellowship of Faiths,
Chicago, December 19, 1933.

To.
The Secretary of the
International Aryan League,
Delhi (India).

My dear Mr. Secretary,

Namastey !

Please permit me to take this opportunity to thank your organisation and to express our appreciation on the splendid work on behalf of the World Fellowship of Faiths movement performed by Pandit Ayodhya Prasad.

Information has reached me that Mr. Prasad is leaving the United States to go to British Guiana so that he may change his temporary Visa for a permanent one. We hope he

will be able to do this as we are quite anxious and eager to have him here in our midst. This may appear selfish, but we do feel the importance and value of his co-operations, and if he returns and remains here, we shall also be glad to co-operate with him in his work in whatever manner is within our power.

विश्व धर्म-सम्मेलन,
शिकागो
१६ दिसम्बर, १६३३

सेवा में,

श्री मन्त्रीजी,

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली।

प्रिय मन्त्री महोदय,

नमस्ते।

कृपया मुझे आपकी सभा को धन्यवाद देने तथा विश्वधर्म सम्मेलन में पं० श्री अयोध्या प्रसादजी द्वारा किये गये सुन्दर कार्य की सराहना करने का अवसर प्रदान करें।

मुझे समाचार प्राप्त हुआ है कि पं० श्री अयोध्या प्रसादजी ब्रिटिश गायना जाने के लिये संयुक्त राज्य को छोड़ रहे हैं ताकि वह संयुक्त राज्य में रहने की अस्थायी आज्ञा को स्थायी आज्ञा में परिवर्तित करा सकें। हमें आशा है कि वह ऐसा करने में सफल होंगे। हमारी प्रबल इच्छा है कि वह हमारे मध्य में रहें। यद्यपि हमारी यह इच्छा कुछ स्वार्थ लिये हुए प्रतीत होती है, परन्तु हम उनके सहयोग का महत्त्व तथा मूल्य अनुभव करते हैं और यदि वे यहाँ लौटें और रहें तो हम यथाशक्ति उनके कार्य में हर प्रकार से सहयोग देकर आनन्दित होंगे।

आपका शुभचिन्तक
एस० आर० रेबीन्यफ

सार्वदेशिक ने आदरणीय पण्डितजी को कम से कम एक वर्ष तक अमेरिका में रखने का निश्चय किया। पण्डितजी के व्याख्यानों और उनके मंत्रार्थों से उत्तरी-पश्चिमी विश्वविद्यालय के तुलनात्मक धर्म के प्रोफेसर चार्ल्स बरेडिन इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने घण्टों पण्डितजी से एकान्त में सत्संग किया और अपने विश्वविद्यालय में सभी धर्मों के तुलनात्मक विषय पर एक तुलनात्मक व्याख्यानमाला प्रस्तुत करने का आग्रह किया। पण्डितजी ने इस विश्वविद्यालय में कई व्याख्यान दिये। अमेरिका के सुधी, उदार, चिन्तनशील लोग आर्यसमाज से प्रभावित होने लगे। कुछ ने मांस खाना छोड़ दिया। कई विद्वानों ने वैदिक संस्कृति का अध्ययन किया।

पण्डितजी की इस विदेशयात्रा के व्यय के सम्बन्ध में सार्वदेशिक सभा की सूचना है कि यह समस्त व्यय आर्यसमाज कलकत्ता और बम्बई ने अपने अधिकार क्षेत्रों से धन-संग्रह करके दिया था।

पं० अयोध्या प्रसादजी प्रायः अपने व्याख्यानों में "देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर" में वेद-धर्म-प्रचार की बात कहा करते थे। पण्डित जी अपनी इस विदेशयात्रा में सचमुच देश-देशान्तरों और द्वीप-द्वीपान्तरों में वेदधर्म की विजय-वैजयन्ती फहरा कर लौटे थे।

पण्डितजी ट्रिनीडाड में :

पंण्डितजी के प्रचार के कारण ट्रिनीडाड के कई स्थानों में आर्यसमाज की स्थापना हो गयी। इनमें डायमण्ड, छगुआनास, परसीवियेरेन्स स्टेट, प्रिंसेज डाउन, सेंट जोजफ और डेबे मुख्य हैं। इन द्वीपों में पण्डितजी ने १५०० से भी अधिक व्यक्तियों को आर्यसमाज में दीक्षित किया। इनमें से अधिकांश ईसाई थे। पण्डितजी के प्रयास से छगुआनास में मुख्य कार्यालय बना जिसका सम्बन्ध सार्वदेशिक सभा से किया गया। आर्यसमाज के बढ़ते हुए प्रचार से क्षुब्ध होकर पौराणिक हिन्दुओं और मुसलमानों ने मिलकर

पण्डितजी सभापति पद से बौद्ध दर्शन के Dynamic Aspect पर काफी देर तक बोलते रहे। सभा के बाद लोगों ने पण्डितजी को घेर कर यह पूछना शुरू कर दिया कि इतना अच्छा बौद्ध दर्शन का ज्ञान होने पर भी पण्डितजी आर्य-समाजी कैसे हैं ?"[१]

जैनियों के बीच में पण्डितजी ने एक बार जैन मन्दिर में जैनी व्यापारियों के बीच बड़े सीधे ढंग से यह कह दिया कि जैनी लोग अपने जीवन में जैन सिद्धान्तों के अनुकूल कहाँ चल पाते हैं। पण्डित अयोध्या प्रसादजी ने काशी के पण्डितों में चारों वेदों पर समीक्षात्मक भाषण दिया था। वे बहाई सम्प्रदाय के लोगों के बीच भी व्याख्यान देने जाते थे। पण्डितजी बड़े विस्तृत एवं व्यापक अध्ययन के धनी थे, साथ ही वे बड़े उदार विचारों के थे। इसी कारण से सभी सम्प्रदाय वालों के यहाँ सम्मान का स्थान पाते थे, किन्तु सर्वत्र उनका आर्य-समाजी स्वरूप सर्वविदित था। वे कहीं भी किसी भी सिद्धान्त पर बोलते थे, यह एक बौद्धिक पक्ष था, किन्तु वे सर्वत्र वैदिक धर्मावलम्बी एवं आर्यसमाजी प्रचारक के रूप में रहते थे।

पं० अयोध्या प्रसादजी और विश्व धर्म-सम्मेलन :

सन् १९३३ ई० में शिकागो में विश्व धर्म-सम्मेलन होने वाला था। स्वाभाविक था कि आर्यसमाज की ओर से भी कोई सुयोग्य विद्वान् वहाँ प्रतिनिधि के रूप में भेजा जाय। पं० दीनबन्धुजी की सूचना के अनुसार पं० श्री सत्यचरणजी सार्वदेशिक सभा की ओर से इस सम्मेलन में भेजे गये थे। आर्यसमाज कलकत्ता और बम्बई के प्रबन्ध से पं० श्री अयोध्या प्रसादजी इस अमेरिका की यात्रा में सफल हो सके। आर्यसमाज के तात्कालिक प्रधान श्री विष्णुदासजी बांसल और मन्त्री महाशय श्री रघुनन्दनलालजी ने बड़ी हिम्मत दिखायी। सेठ

१. आर्यसंसार का पं० अयोध्या प्रसाद स्मृति-विशेषाङ्क

श्रीमान जुगलकिशोरजी बिड़ला, सेठ श्रीमान गंगाप्रसादजी गुप्त और सेठ श्रीमान दीपचन्दजी पोद्दार के आर्थिक सहयोग से पंडितजी शिकागो विश्व धर्म-सम्मेलन में भाग ले सके थे। कहा जाता है कि सम्मेलन के आरम्भ में ही एक प्रश्न उपस्थित हुआ कि सामूहिक अभिवादन किस रूप में किया जाय, जिसमें कोई साम्प्रदायिकता न हो ताकि किसी सम्प्रदाय वाले को कोई आपत्ति न हो सके और इस अवसर के लिये भावगर्भित भी हो। बड़ी प्रसिद्ध चर्चा है कि पंडितजी ने उस प्रथम दिन ही 'नमस्ते' की व्याख्या द्वारा विश्वभर के धर्म-प्रतिनिधियों पर जादू-सा कर दिया और सब लोगों ने, सभी पन्थ-सम्प्रदाय के प्रतिनिधियों ने 'नमस्ते' को अपना अभिवादन स्वीकार कर लिया। शिकागो सर्वधर्म सम्मेलन में 'नमस्ते' का प्रयोग हुआ और आज संसार में नमस्ते का जितना अधिक प्रचार है, कुछ आश्चर्य नहीं कि शिकागो सम्मेलन में स्वीकृत यह सर्वमान्य अभिवादन का प्रयोग भी कारण रहा हो। पंडितजी के 'नमस्ते' से सम्बन्धित व्याख्यान का सारांश कुछ इस प्रकार था—

> नमस्ते करते समय हम हाथ जोड़ कर हृदय के पास ले जाते हैं, फिर सिर झुका कर अभिवादनीय व्यक्ति के लिए कल्याण की मंगल कामना करते हैं। हमारे हाथ हमारी शारीरिक एवं भौतिक शक्ति के प्रतीक हैं और हमारा मस्तिष्क हमारी बौद्धिकता एवं चिन्तन का प्रतीक है। इस प्रकार शरीर की भौतिक शक्ति, बौद्धिक शक्ति और हृदय की भावनाओं को एकत्र पिरोकर हम अभिवादन करते हैं—अभिवादनीय के लिए मंगलकामना करते हैं।

'नमस्ते' की यह व्याख्या पंडितजी ने इतने सारगर्भित और हृदयग्राही ढंग से की कि सब लोगों ने अभिवादन के लिए 'नमस्ते' को ही स्वीकार कर लिया। इससे एक ओर पंडितजी ने जहाँ वेदधर्म

की धाक जमायी वहाँ अपनी व्याख्यान-कला की भी धाक जमा दी। सर्वधर्म सम्मेलन में पंडितजी ने 'वैदिकधर्म का गौरव और विश्वशान्ति' विषय पर भाषण दिया था। यह बड़ा सफल एवं प्रभावशाली व्याख्यान था। सम्मेलन के बाद अमेरिका एवं विदेश के अन्य देशों से पंडितजी को निमन्त्रण आने लगे। पंडितजी ६ महीने शिकागो में रहकर वेदधर्म प्रचार करते रहे। अमेरिका वालों ने पंडितजी के प्रचार के सम्बन्ध में प्रशस्ति-पत्र सार्वदेशिक सभा को भेजा था। सर्वधर्म सम्मेलन के प्रशस्ति-पत्र हिन्दी रूपान्चर सहित निम्न प्रकार हैं—

World Fellowship of Faiths,
Chicago (United States, America)
October 6, 1933.

To.
The Secretary of the
International Aryan League,
Delhi (India).

My Dear Mr. Secretary,

Namaste !

Hearty thanks are due to you and your colleagues in the International Aryan League of Delhi, India, for enabling the Rev. Pandit Ayodhya Prasad, B. A. to participate in the Chicago meeting of the world Fellowship of Faiths.

He has several times addressed the meetings, and bis addresses have been informing and inspiring. At a number of meetings, he has opened the Services with the very beautiful and stirring chanting of Vedic hymns and prayers. He has also given good Counsel and leadership in individual and group Conferences.

Altogether, we are deeply grateful for the leadership, information and inspiration which he has contributed to the World Fellowship of Faiths in a splendid spirit of fraternal fellowship, which has endeared him to all of us.

Now that he has made the long journey to Chicago, it seems important that he should remain some what longer to address various meetings, to familiarise himself with our American Institutions, and to make known the whole character and achievements of your great movement.

Grateful and fraternally yours,
Charles Frederick Weller
General Executive.

विश्वधर्म सम्मेलन,
शिकागो (संयुक्त राज्य अमेरिका)
६ अक्टूबर, १९३३

सेवा में,
श्री मन्त्री जी,
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली।

प्रियवर मन्त्री महोदय,

नमस्ते।

पं० श्री अयोध्या प्रसादजी बी० ए० को विश्वधर्म सम्मेलन, शिकागो के अधिवेशन में भेजने के लिये आपको तथा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा में आपके सहयोगियों को हार्दिक धन्यवाद।

पं० श्री अयोध्या प्रसादजी ने सभाओं में कई भाषण दिये हैं। उनके व्याख्यान खोजपूर्ण तथा प्रभावशाली होते हैं। बहुत-से अधिवेशनों का कार्यारम्भ उन्होंने सुन्दर और ओजस्विनी वेद की ऋचाओं और ईश्वर की प्रार्थनाओं से कराया है। उन्होंने वैयक्तिक बातचीत तथा सभा-सोसाइटियों द्वारा उत्तम परामर्श दिये हैं।

आर्यसमाज का और पण्डितजी का विरोध किया, किन्तु आर्यसमाज का प्रचारक्षेत्र बढ़ता ही गया। पण्डितजी ने कई प्रतिष्ठित विद्वान् मुसलमानों को भी शुद्ध किया।

डच गायना में :

ट्रिनीडाड से पण्डितजी डच गायना गये। वहाँ डच गायना की राजधानी पारामारिवो में पण्डितजी ने अच्छा प्रचार किया। यह विवरण सार्वदेशिक सभा के सत्ताईस वर्षीय कार्यविवरण के पृष्ठ ११४-११५ पर प्रकाशित है। पण्डितजी के प्रचार से सुरीनाम में प्रतिनिधि सभा की स्थापना हुई।

ब्रिटिश गायना में :

ब्रिटिश गायना में पण्डितजी ८-९ मास रहे। वहाँ भी पौराणिक हिन्दुओं और मुसलमानों ने पण्डितजी का विरोध किया। विरोध के साथ ही पण्डितजी का प्रभाव भी बढ़ता गया।

पण्डित अयोध्या प्रसादजी के इस विदेश-प्रचार के विवरण का एक अंश सार्वदेशिक सभा के कार्यविवरण से अविकल रूप में नीचे दिया जा रहा है :—

> "इन उपनिवेशों में पण्डित श्री अयोध्या प्रसादजी को इतनी सफलता मिली और भविष्य के लिये उन्होंने जो आशा और विश्वास का उज्ज्वल वातावरण उत्पन्न किया है, वह उनकी सच्ची मिशनरी स्पिरिट, प्रकाण्ड विद्वत्ता, गम्भीर व्याख्यान शैली, अटूट लगन, पुरुषार्थ तथा ईश्वर-विश्वास का फल है। श्री पण्डितजी ने इन उपनिवेशों में सैकड़ों व्याख्यान दिये, बीसियों शास्त्रार्थ किये और व्यक्तिगत रूप से भी सैकड़ों मनुष्यों की शंकाओं का निवारण किया जिसका परिणाम यह हुआ कि सैकड़ों की तादाद में लोग वैदिकधर्म के अनुयायी बन गये। आपने कई समाजें स्थापित कीं, आर्य-

समाज मन्दिर, अनाथालय, आर्य पाठशाला की इमारतें बनवायीं, प्रतिनिधि सभा तथा सेन्ट्रल समाज स्थापित कर उनका सम्बन्ध इस सभा से (सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा) से करा दिया। यह वह कार्य है कि इन उपनिवेशों की जनता की सामाजिक तथा धार्मिक अवस्था तथा उस थोड़े से समय को जिसमें पण्डितजी ने प्रचार किया, ध्यान में रखते हुए, यह सभा, अपने इस आदर्श प्रचारक पर, जिसने निरन्तर तीन वर्षों तक अपने परिवार से पृथक् रहकर आचार्य दयानन्द के मिशन का प्रचार किया, उचित रीति से गर्व कर सकती है। हम प्रभु से प्रार्थना करते है कि वह आपको चिरायु करें, जिससे आप समस्त भूमण्डल पर वेद तथा दयानन्द का सन्देश पहुँचा सकें।"[१]

पंडितजी सन् १६३३ ई० से सन् १६३६ ई० के आरम्भ तक विदेश में रहे। अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका एवं योरप होते हुए पंडितजी सितम्बर सन् १६३६ ई० में कलकत्ता पहुँचे थे। इस बीच अक्टूबर सन् १६३४ ई० में उनकी माताजी का देहान्त हो गया था, फिर भी वे अपने धर्मप्रचार के कार्य में लगे रहे।

पं० दीनबन्धुजी की सूचना के अनुसार ट्रिनीडाड वेस्ट इण्डीज में उनके प्रचार से कुछ लोग क्षुब्ध हुए और उन्हें दूध में ज़हर दिया गया था।[२] पण्डितजी को खाते समय पता लग गया था और उन्होंने खाना छोड़ दिया था, लेकिन उस विष का प्रभाव बहुत प्रबल था। पण्डितजी की चिकित्सा लंदन के अस्पताल में भी हुई थी। उनका हृत्पिण्ड

१. सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का सत्ताईस वर्षीय कार्य-विवरण पृष्ठ ११७-१८

२—आर्यसंसार—पं० अयोध्या प्रसाद स्मृति-विशेषांक में पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री का लेख।

कमज़ोर हो गया था। लंदन में भी डाक्टरों ने इसे ज़हर का ही प्रभाव बताया था। मृत्यु तक हृत्पिण्ड की यह शिकायत उन्हें बनी रही। पण्डितजी साधना में बहुत सचेष्ट रहते थे। आचार्य रमाकान्तजी शास्त्री की सूचना के अनुसार रामगढ़ कांग्रेस में बिहार प्रतिनिधि सभा की व्यवस्था में आर्यसमाज का प्रचार हो रहा था। आचार्य पं० रमाकान्तजी ने बताया कि पंडितजी रात को थोड़ा सो लेने के बाद ध्यान करने बैठ जाते थे। पं० दीनबन्धुजी ने लिखा है कि मृत्यु से १० वर्ष पूर्व सन् १९५४ ई० से ही पंडितजी प्रभु पर समर्पित हो गये थे। जीवन के सामान्य कृत्यों को छोड़ कर रातों-दिन हाथ में माला और गायत्री का जप किया करते थे। लोग बताते हैं कि नींद में भी उनके हाथ में मन्त्र-जप का संकेत देखा जाता था।

शास्त्रार्थ में सिद्धहस्त :

पंडितजी जहाँ जीवन में बहुत शिष्ट एवं सरल थे, शास्त्रार्थ में उतने ही कठोर, चतुर और शार्दूलविक्रीडित थे। आचार्य रमाकान्तजी शास्त्री ने पंडितजी के संस्मरणों में मेदिनीपुर के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ का वर्णन किया है। इस शास्त्रार्थ में विषय था—'मृतक श्राद्ध की अवैदिकता'। आर्यसमाज की ओर से (१) पं० अयोध्या प्रसादजी, (२) आचार्य पं० रमाकान्तजी शास्त्री, (३) पं० श्री मनोरंजनजी काव्यतीर्थ इत्यादि विद्वान् शास्त्रार्थ करने के लिए एकत्र हुये थे। पौराणिक मण्डल की ओर से (१) महामहोपाध्याय श्री योगेन्द्रनाथजी भट्टाचार्य वेदान्तवागीश, (२) महामहोपाध्याय श्री कालीपदजी तर्काचार्य, (३) तर्कशिरोमणि श्री चण्डीचरणजी न्यायरत्न, (४) प्रसिद्ध वक्ता श्री जीवजी न्यायतीर्थ एम० ए०, (५) पं० श्री श्रीनाथजी पंचतीर्थ—इत्यादि कई विद्वान् थे।

मृतक श्राद्ध पर संस्कृत में शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। इसकी अवैदिकता सिद्ध करने के लिए आचार्य पं० रमाकान्तजी ने मृतक

श्राद्ध वेद-शास्त्र विरुद्ध है, इस विषय को लेकर कृतहानि और अकृताभ्यागम जैसे दार्शनिक तर्कों के सहारे और शास्त्रीय प्रमाणों से मृतक श्राद्ध की अवैदिकता पर व्याख्यान दिया। पौराणिक मण्डल की ओर से पं० श्री श्रीनाथजी पंचतीर्थ प्रथम वक्ता के रूप में उठे। श्री पंचतीर्थजी ने खड़े होते ही जैसे ही "सर्वायाः जनतायाः" प्रयोग किया आचार्य रमाकान्तजीने पं० अयोध्या प्रसादजी के कान में चुपके से कहा कि ये तो व्याकरण की अशुद्धि कर रहे हैं। पं० अयोध्या प्रसादजी ने पं० रमाकान्तजी को ललकारा और कहा—यहीं से दोष का निर्देश कर दो। पं० रमाकान्तजी इस तरह बोलना शिष्ट मर्यादा के विरुद्ध समझते थे किन्तु पं० अयोध्या प्रसादजी को अपना गुरु मानते थे। पण्डितजी ने उन्हें झिड़क कर कहा—तुम वेवकूफ हो, पूरे जोर से व्याकरण की अशुद्धि बोल दो, यह शास्त्रार्थ है। अशुद्धि इतनी सरल और सीधी थी कि सब पंडितों के चेहरे उतर गये और कई हज़ार की जनता को यह विदित हो गया कि पौराणिक पंडितों की कोई भूल आर्यसमाजी पंडितों ने पकड़ ली जिसका किसी ने उत्तर न दिया और सबके मस्तक नीचे हो गये। इस परिस्थिति में श्री जीवजी न्यायतीर्थ एम० ए० बड़े आटोप और आवेश में खड़े हुए। खड़े होते ही स्वामी विरजानन्द के अन्धेपन की दुहाई देकर आर्यसमाजियों को अन्धे का चेला जैसा हलका एवं अशिष्ट किन्तु बड़े आवेश में बड़ा ओछा व्याख्यान दिया। इनका व्याख्यान समाप्त होते-होते पं० अयोध्या प्रसादजी माइक पर आ गये थे। श्री न्यायतीर्थजी बंगला में बोले रहे थे। पं० अयोध्या प्रसादजी ने भी बंगला में व्याख्यान दिया। स्वामी दयानन्द और स्वामी विरजानन्द की महिमा पर बोलते-बोलते संयोग से श्री जीवजी न्यायतीर्थ पर निगाह पड़ गयी। यहाँ पण्डितजी का आवेश और क्रोध देखते ही बनता था। पण्डितजी ने महीधर इत्यादि के भाष्यों की वह छीछालेदर की कि पौराणिक पंडित

भी आश्चर्यचकित हो हाय-हाय करने लगे। पंडित अयोध्या प्रसादजी ने ललकारा कि हमारे एक शिष्य ने कुछ प्रश्न किये थे, आप लोग न तर्कों का उत्तर दे सके और न मृतक श्राद्ध के पक्ष में एक भी वेदमन्त्र दे सके। पंडितजी ने पौराणिक मण्डल को ललकारा कि वेद में 'मृतक श्राद्ध' शब्द ही दिखा दीजिए। पंडितजी के इस अद्भुत् ओजस्वी व्याख्यान के साथ सभा अगले दिन के लिए विसर्जित हो गयी। किसी पौराणिक पंडित को उत्तर-प्रत्युत्तर का साहस न हुआ। अगले दिन प्रातःकाल इधर आर्यसमाजी विद्वान् शास्त्रार्थ के लिए तैयार हो रहे थे, उधर आर्यसमाज के अधिकारियों ने आकर सूचना दी कि सभी पौराणिक पंडित रात की गाड़ी से चले गये थे। पता लगा कि पौराणिक अधिकारियों के साथ उनकी कुछ अनबन हो गयी थी। पंडितजी और अन्य आर्यसमाजी विद्वान् यहाँ कई दिनोंतक आर्यसमाज का प्रचार करते रहे।

पं० अयोध्या प्रसादजी का महामहोपाध्याय श्री लक्ष्मण शास्त्री से कलकत्ता में अद्वैतवाद पर वार्त्तालाप हुआ था। महामहोपाध्यायजी अद्वैतवाद के मूर्धन्य विद्वान् माने जाते थे। पं० अयोध्या प्रसादजी ने महामहोपाध्यायजी को अध्यास, अध्यारोप, प्रपंच, माया की अनिर्वचनीयता आदि शब्दों के लक्षण तथा समन्वय में इस प्रकार वाधित कर दिया कि जनता स्तब्ध रह गयी। यह शास्त्रार्थ न था, केवल वार्त्तालाप था, फिर भी महामहोपाध्याय लक्ष्मण शास्त्री ने पं० अयोध्या प्रसादजी के वेदान्त ज्ञान की बड़ी सराहना की।

पं० अयोध्या प्रसादजी के शास्त्रार्थ, शास्त्रालोचन इत्यादि वहुत विस्तृत और व्यापक हैं।[1]

गणित के अद्भुत पंडित :

पं० अयोध्या प्रसादजी वैदिक रिसर्च स्कालर कहलाते थे। उनका

१. द्रष्टव्य—त्रयोदश अध्याय।

वैदिक अनुसन्धान कई प्रकार का था। मन्त्रों की वड़ी सरल भाव-भीनी व्याख्या करते थे, किन्तु सबसे अद्भुत् विलक्षण था उनका गणित-ज्ञान। दस-दस, बारह-बारह पंक्तियों का गुणनफल बायीं ओर से लिखते जाते थे और समय उतना ही लगता था जितना समय लिखने में लगता है। उन्होंने धरन्त, उतरन्त, चढ़न्त, गिरन्त जैसे शब्दों का प्रयोग करके गणित के अपने स्वयं के नियम वनाये थे, किन्तु गणित पर न उन्होंने कोई पुस्तक लिखी और न यह पता है कि उन सव नियमों का क्या हुआ। मैं स्वयं, इण्टरमीडियट साइन्स का विद्यार्थी था। गणित मुझे प्रिय था। मै साल-डेढ़-साल पंडितजी के पीछे पड़ा रहा। वे चमत्कार तो दिखा देते थे, पर कभी इस वैदिक गणित को पढ़ाने में रुचि नहीं लेते थे। हम सबको यह दुःख है कि यह विद्या उन्हीं के साथ चली गयी।

एक लेखक के रूप में :

पं० अयोध्या प्रसादजी ने लिखने-लिखाने का कार्य वहुत कम किया था। जो किया भी था उसका कुछ विवरण न आर्यसमाज से मिलता है और न उनके घर से मिलता है। फिर भी जो कुछ उन्होंने लिखा वह अपने गुणों के कारण वरेण्य है। पं० दीनवन्धुजी की सूचना के अनुसार 'भारत में इस्लाम कैसे फैला' को श्रीमान् गोविन्दराम हासानन्दजी ने प्रकाशित किया था। सरकार ने इसको जब्त कर लिया था। पंडितजी ने 'कुरानी अल्लाह का स्वरूप' नामक पुस्तिका लिखी थी। इसे भी सरकार ने जब्त कर ली थी। "The Jems of the Vedas" नामक उनका ग्रन्थ अंग्रेजी में प्रकाशित हुआ था। इसे श्री कनकलालजी शाह ने प्रकाशित किया था।

पं० विहारीलालजी शास्त्री ने उनके संस्मरण में लिखा है—

"वे लिख नहीं सकते थे और न लिखा सकते थे। बोलने में थकते न थे, घण्टों बोल सकते थे। बोलने में नये-नये विचार

देते रहते थे। स्वाध्याय उनका प्रौढ़ था। कई विषयों के वे पंडित थे। यदि वक्ता के साथ वे लेखक भी होते तो बहुत बढ़िया साहित्य जनता को दे जाते। कोई लिखना भी चाहता तो उसे भी बातों में लगा लेते थे, क्योंकि वे अपने विचारों के प्रवाह को बाँध नहीं पाते थे।[1]

पं० अयोध्या प्रसादजी सारा जीवन आर्यसमाज के उपदेशक रहे। उपदेशकों के एकमात्र महासम्मेलन ने उन्हें अपना अध्यक्ष बनाकर अपनी कृतज्ञता प्रकट की थी। पण्डितजी आर्यसमाज कलकत्ता, आर्यसमाज बड़ाबाजार, आर्यसमाज भवानीपुर के साप्ताहिक सत्संगों में नियमित रूप से बोला करते थे। विशेष रूप से कलकत्ता के सभी आर्यसमाजिक समारोहों में पंडितजी का रहना अनिवार्य-सा था। पण्डितजी आर्यसमाज की शान और शोभा थे। कलकत्ता को उन पर गर्व है।

पंडितजी ने गया में शान्ति आश्रम नामक एक आश्रम बनाया था। इसमें १३ बीघा भूमि थी। उसे सरकार ने ले लिया और वहाँ मिलीटरी अस्पताल बना दिया। पण्डितजी ने लोहरदगा में भी एक आश्रम बनाया था, उसे बिहार प्रतिनिधि सभा को दे दिया। पण्डितजी ने अपना विशाल पुस्तकालय, लगभग दो लाख रुपए के मूल्य का और लगभग पच्चीस हजार ग्रन्थों का विशाल पुस्तकालय टंकारा ट्रस्ट को दे दिया। टंकारा ट्रस्ट ने सेवा के रूप में थोड़ा-थोड़ा करके कुछ रुपया पंडितजी को भेजा था।

अन्तिम दिनों में पंडितजी के मस्तिष्क का संतुलन बिगड़ गया था। उन्हें कुछ याद न रहता था कि वे क्या बोल गये। कभी-कभी तो ५ मिनट पहले भी क्या बोल गये, यह भी ध्यान न रहता था। पुस्तकें खरीदना उनका व्यसन था। मस्तिष्क की इस असंतुलित स्थिति

---

१. आर्यसंसार का पं० अयोध्या प्रसाद-स्मृति-विशेषाङ्क

में बेमतलब की फटी-पुरानी पुस्तकों के परिचित विक्रेता उनसे सौ-पचास रुपये ठग लेते थे। अतः माताजी उनकी जेब में पैसे न रहने देती थीं। इसलिए पंडितजी सभी मिलने वालों से अन्तिम दिनों में रुपयों की कमी की शिकायत किया करते थे। यों तो उनके बुढ़ापे में श्री मिहिरचन्दजी धीमान ने चढ़ने के लिए उन्हें अपनी एक मोटर दे दी थीं। आर्यसमाज कलकत्ता और श्री किशनलालजी पोद्दार एवं पोद्दार परिवार पंडितजी की सदा आर्थिक सहायता किया करते थे। फिर भी इस गौरवमय जीवन का अवसान दि० ११-३-१९६५ ई० को बहूबाजार (कलकत्ता) स्थित उनके निवास में हो गया। ऐसे गौरव-मय जीवन की अक्षयकीर्ति विद्वानों के लिए सदा सम्बल बनी रहेगी।

पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति

जब पं० अयोध्या प्रसादजी वैदिक रिसर्च स्कालर विश्वधर्म सम्मेलन में भाग लेने के लिए विदेश यात्रा पर गये, तो उस समय आर्यसमाज कलकत्ता का आचार्य-पद रिक्त हो गया। ऐसे समर्थ और सक्रिय समाज में किसी उच्च कोटि के विद्वान् का स्थायी रूप से न रहना खटकने की बात थी और तात्कालिक अधिकारियों ने इस न्यूनता का गम्भीरता से अनुभव किया। उनकी दृष्टि आर्यसमाज के मूर्धन्य विद्वान् पं० श्री सुखदेवजी विद्यावाचस्पति पर गयी और आदरणीय पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति आर्यसमाज कलकत्ता के गौरवपूर्ण आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होने के लिए सानुरोध आमन्त्रित किये गये। उस समय आदरणीय पण्डितजी गुरुकुल महाविद्यालय वैद्यनाथधाम में आचार्य थे और वहींसे अपनी पत्नी आदरणीया पण्डिता प्रभावती देवीजी के साथ कलकत्ता पधारे। आदरणीय पण्डितजी का कलकत्ता प्रवासकाल कलकत्ता के लिए वरदान सिद्ध हुआ। आदरणीय पण्डितजी सम्पूर्ण कलकत्ता में अपनी पूर्ण प्रतिभा

से आर्यसमाज का प्रचार करते रहे। पण्डित सुखदेवजी का कार्य स्वयं अपनेमें एक गौरवपूर्ण काल के रूप में देखा जा सकता है।

पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति का जन्म ६ फरवरी, सन् १६०८ ई० को वर्तमान पाकिस्तान के जामपुर नगर में हुआ था। पण्डितजी
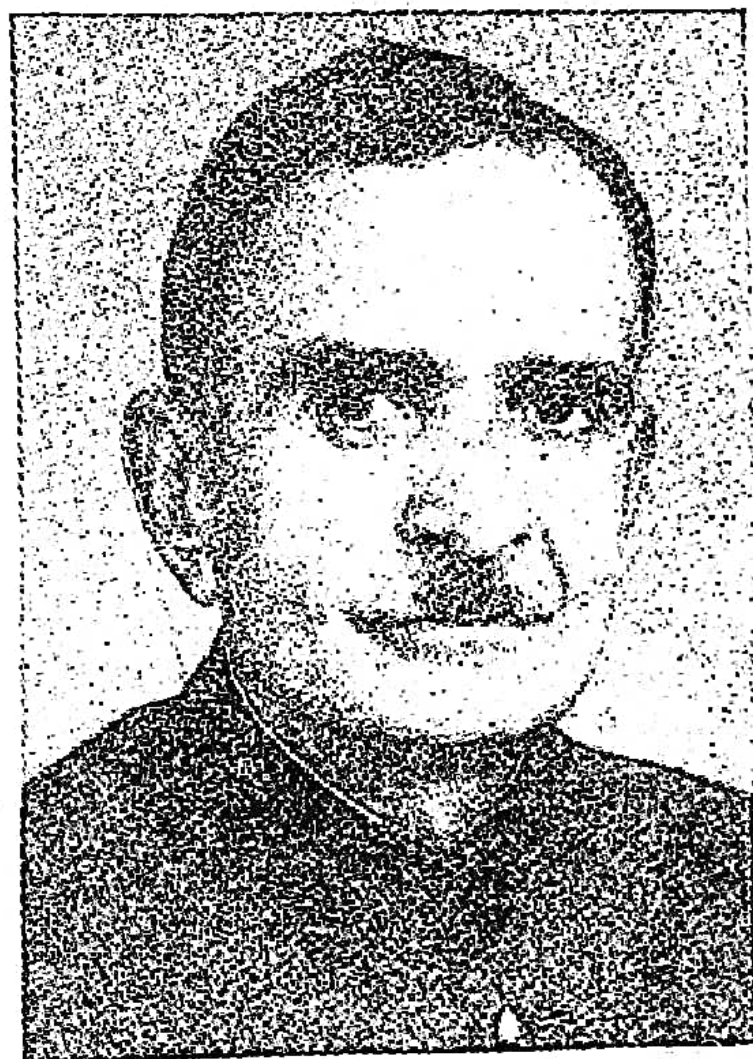
पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के प्रतिष्ठित स्नातक बने, तत्पश्चात् भारतीय दर्शनों और वैदिक वाङ्मय के गहन अध्ययन के लिए काशी आ गये। सन् १६३० ई० में आर्यसमाज रंगून (बर्मा) ने उन्हें अपने आचार्य के रूप में वरण किया। रंगून से पं० सुखदेवजी गुरुकुल वैद्यनाथधाम के आचार्य बनकर आ गये और यहीं से आर्यसमाज कलकत्ता के आचार्यपद को सुशोभित करने के लिए कलकत्ता पधारे।

पुनः सन् १९३७ ई० में वे गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के दर्शनोपाध्याय बनकर चले गये। इस प्रकार लगभग ४ वर्षों तक वे आर्यसमाज कलकत्ता के आचार्य रूप में कलकत्ता में रहे। इन दिनों में उन्होंने व्याख्यान तो दिये ही, साहित्य-निर्माण का भी प्रशंसनीय कार्य किया। कलकत्ता रहते-रहते पण्डितजी ने जो साहित्यिक कार्य किये हैं उनमें कुछ विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं—

वेदतत्त्व प्रकाश :

वेदतत्त्व प्रकाश महर्षि दयानन्द सरस्वतीकृत ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका का संस्कृत एवं भाषा-भाष्य सहित टीका-टिप्पणियों का प्रशंसनीय ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में पण्डित सुखदेवजी की गम्भीर विद्या, दार्शनिक ऊहापोह और वैदिक सिद्धान्तों का चूड़ान्त परिचय मिलता है। यह ग्रन्थ प्रसिद्ध प्रकाशक गोविन्दराम हासानन्द के वैदिक प्रेस, ८०, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता से संवत् १९९२ विक्रमी में २२०० प्रतियों का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ। श्री गोविन्दराम जी ने अपने प्रकाशकीय में कुछ थोड़ा-सा पण्डितजी का परिचय दिया है, वह अविकल रूप में यहाँ उद्धृत है—

> "ऋषि दयानन्द जन्म-शताब्दी महोत्सव के समय शताब्दी संस्करण सत्यार्थ प्रकाश के प्रकाशन के बाद से मेरी तीव्र इच्छा थी कि ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका का स्वाध्यायोपयोगी संस्करण प्रकाशित कर जनता के समक्ष रखूँ। इस सम्बन्ध में इसके पहले भी प्रयत्न कर चुका था। कुछ धन व्यय भी किया था, किन्तु उपयोगी विद्वान् का सुगमता के साथ सहयोग न मिलने से इसके पूर्व इच्छा पूरी न हो सकी। ईश्वर की कृपा से पं० श्री अयोध्या प्रसादजी के अमेरिका जाने के पश्चात् उनके स्थान पर गुरुकुल कांगड़ी के विद्वान् स्नातक तथा गुरुकुल वैद्यनाथ धाम के

भूतपूर्व आचार्य पं० श्री सुखदेवजी वेदालंकार विद्यावाचस्पति, दर्शनभूषण, कलकत्ता आर्यसमाज के आचार्य नियुक्त होने पर उनके भाषण, शंका-समाधन, शास्त्रार्थ आदि से ज्ञात हुआ कि इनका आर्य सिद्धान्तों में अच्छा ज्ञान और प्रवेश है। अतः मैंने पण्डितजी से विशेषरूप से आग्रह कर इस कार्य का सम्पादन करने का अनुरोध किया। पण्डितजी ने अपना कर्त्तव्य समझ निःस्वार्थ भाव से इसे स्वीकार कर कार्य आरम्भ कर दिया······सबने पंडितजी के कार्य की सराहना की। वैदिक यन्त्रालय, अजमेर के भूतपूर्व मैनेजर तथा वर्तमान गुरुकुल झज्झर के आचार्य श्री स्वामी ब्रह्मानन्दजी सरस्वती ने तो यहाँ तक कहा कि पं० सुखदेवजी से इसी प्रकार ऋषिकृत वेदभाष्य का भी सम्पादन भाषानुवाद टिप्पणियों सहित कराकर निकालना चाहिए।"[1]

हम इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में इसी इतिहास के एकादश अध्याय में भी प्रकाश डालेंगे।[2] यहाँ मात्र इतना ही उद्देश्य है कि यह अपने ढंग का वैदुष्यपूर्ण अद्भुत ग्रन्थ है।

पशुबलि निषेध : यह छोटी-सी पुस्तिका है, किन्तु विद्या प्रमाण, दार्शनिकता इत्यादि की दृष्टि से बड़ा अद्भुत संकलन है।

नमस्ते की व्याख्या : यह पुस्तक भी आर्यसमाज कलकत्ता से प्रकाशित हुई थी।

वेदभाष्य की समस्याएँ : इस पुस्तक की सूचना पण्डितजी के सुपुत्र श्री दिवाकरजी विद्यालङ्कार ने दी है। इस सम्बन्ध में हमें अधिक जानकारी नहीं है। श्री विद्यालङ्कार ने सूचना दी है कि पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति के शास्त्रार्थों, प्रवचनों तथा लेखों के संकलन का सम्पादित ग्रन्थ प्रकाशनाधीन है।

१—वेद प्रकाश गोविन्दरामजी का स्मृति-अंक।

२—द्रष्टव्य—'साहित्यिक कार्य' एकादश अध्याय।

पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति के शास्त्रार्थ :

पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति दर्शन के उद्भट विद्वान् ही नहीं थे, अपितु शास्त्रार्थ में प्रतिवादि भयंकर, कालजिह्व बन उठते थे। कलकत्ता प्रवासकाल में उन्होंने शास्त्रालोचन, शास्त्रविचार किये, इसका तो ठीक-ठीक आकलन नहीं होता, किन्तु इस काल में उन्होंने दो अत्यन्त प्रसिद्ध शास्त्रार्थ किये थे। जिन्होंने इन शास्त्रार्थों को देखा-सुना था, वे पं० सुखदेवजी की शास्त्रार्थ-कला को यावज्जीवन भूल नहीं सके थे।

माधवाचार्य के साथ कलकत्ता में शास्त्रार्थ :

बड़ाबाजार सनातन धर्म के उत्सव पर प्रसिद्ध पौराणिक शास्त्रार्थी माधवाचार्यजी कलकत्ता आये हुए थे। अपने स्वभाव के अनुसार आर्य-समाज के लिए गाली-गलौज और चैलेन्ज माधवाचार्यजी के स्वभाव का अंग रहा है। उन्होंने बड़ी अशालीनता से आर्यसमाज को चैलेन्ज दे डाला। विषय भी मूर्तिपूजा का ही निर्धारित हुआ। माधवाचार्यजी समझते थे कि कलकत्ता में शास्त्रार्थ करने वाला कोई पण्डित है नहीं, अतः इस परिस्थिति का वे पूरा लाभ उठा लें, किन्तु उन्हें लेने के देने पड़ गये। यहाँ दर्शनोपाध्याय प्रतिवादिभयंकर संस्कृत विद्या के पारंगत विद्वान् पं० सुखदेवजी बैठे थे। शास्त्रार्थ तय हो गया और कई हजार की भीड़ में माधवाचार्य और सुखदेवजी का शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। यह शास्त्रार्थ अधिक विस्तृत रूप से इसी इतिहास में हम अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं।[1] यहाँ तो इतना ही पर्याप्त है कि उस शास्त्रार्थ में पौराणिकों को भी यह विदित हो गया कि मूर्तिपूजा वेदसम्मत नहीं है।

संन्यासीतल्ला का शास्त्रार्थ :

यह शास्त्रार्थ प्रसिद्ध पौराणिक विद्वान् पं० श्री अखिलानन्दजी

---

१. द्र०—त्रयोदश अध्याय।

के साथ हुआ था। पं० श्री प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण की सूचना के अनुसार संन्यासीतल्ला बर्दवान जिले के कुल्टी थाना में है। जी० टी० रोड के किनारे सिमल ग्राम में संन्यासीतल्ला नामक स्थान पर यह शास्त्रार्थ हुआ था। शास्त्रार्थ का विषय था 'मूर्तिपूजा वेदविरुद्ध है'। इस शास्त्रार्थ में कुल्टी स्कूल के प्रधानाध्यापक श्री सौरीपदो चटर्जी अध्यक्ष थे। पं० सुखदेवजी ने अखिलानन्द को सर्वथा निरुत्तर कर दिया था। लोगों को यह पूर्णरूप से विदित हो गया कि मूर्तिपूजा वेदविरुद्ध है। पं० प्रियदर्शनजी ने लिखा है कि इस शास्त्रार्थ से बंगाल में आर्यसमाज का सम्मान बहुत बढ़ गया।

शंका-समाधान :

पं० सुखदेवजी जितने कठोर कालजिह्व शास्त्रार्थी थे उतने ही कुशल मृदुभाषी अन्तर तक को छू लेने वाले शंका-समाधनकर्त्ता भी थे। जिन दिनों कलकत्ता में रह रहे थे, यह केवल आर्यसमाज कलकत्ता के ही आचार्य नहीं थे, बल्कि आर्यसमाज बड़ाबाजर में भी व्याख्यान देने जाते थे और विवाद-सभाओं और शंका-समाधानों का आयोजन कराया करते थे। इनके शंका-समाधान का एक अति सुन्दर सुफल आचार्य रमाकान्तजी शास्त्री का आर्यसमाज में दीक्षित होना था। आचार्य रमाकान्तजी संस्कृत के सुधी विद्यार्थी, व्याकरण-साहित्य में व्युत्पन्न, पौराणिक परम्परा के विद्वान् थे और धीमे-धीमे आर्यसमाज की ओर आकृष्ट हो रहे थे। पं० सुखदेवजी ने बड़े स्नेह और आत्मीयता से उन्हें आर्यसमाज का निष्ठावान् विद्वान् बना दिया, जो परवर्ती काल में आर्यसमाज कलकत्ता और बड़ाबाजार के अंचल में आचार्य रमाकान्त शास्त्री के युग में प्रकट हुआ। पं० सुखदेवजी कितने समर्थ विद्वान्, शास्त्रार्थी और शंका-समाधान-कर्ता थे इसका एक प्रमाण आचार्य रमाकान्तजी की श्रद्धांजलि के रूप में पं० सुखदेवजी के प्रति लिखा हुआ उनका श्लोक है—

यस्यास्ति दर्शनज्ञानं, विद्वन्मण्डल मण्डितम् ।
सोऽयं महामना अद्य, स्मर्यते ज्ञान वारिधिः ॥
विद्यावाचस्पतिर्योऽयं सुखदेवो द्वितीयकः ।
तच्चरणानुरागे मे, शङ्काग्निर्भस्मसाद् गतः ॥

यह एक आचार्य विद्वान् की श्रद्धा है जो अपने में स्वयं प्रमाण रूप है।

जिन दिनों पं० सुखदेवजी कलकत्ता में थे, उन दिनों २४ सितम्बर १६३५ ई० को आर्यमहिला शिक्षामण्डल ट्रस्ट की रजिस्ट्री हुई थी। पं० सुखदेवजी विद्यवाचस्पति इसके ट्रस्टी थे। उनकी पत्नी श्रीमती प्रभावती देवीजी आर्य कन्या महाविद्यालय की धार्मिक शिक्षिका और महिला मण्डल ट्रस्ट की एक सदस्या भी थीं। इससे प्रतीत होता है कि पण्डितजी केवल आचार्य ही नहीं बल्कि संगठन के सहयोगी कर्णधारों में भी थे।

लगभग ४ वर्ष कलकत्ता में रहने के पश्चात् सन् १६३७ ई० में वे गुरुकुल कंगड़ी विश्वविद्यालय में दर्शन के उपाध्याय बनकर चले गये। वर्षों तक वे गुरुकुल विश्वविद्यालय के आचार्य रहे। सन् १६६८ ई० में गुरुकुल विश्वविद्यालय से अवकाश ग्रहण कर वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर में रहने लगे। यावज्जीवन वेद, दर्शन और वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करते रहे।

२३ जनवरी, १६७७ ई० को दिल्ली में इन महाविद्वान्, शास्त्रार्थ-केशरी दर्शनोपाध्याय का देहान्त हो गया और आर्यजगत् से एक उद्भट विद्वान् सदा के लिए उठ गया।

श्रीमती प्रभावती देवी काव्यतीर्थ

श्रीमती प्रभावती देवीजी काव्यतीर्थ दर्शनोंके प्रसिद्ध विद्वान् आर्य-समाज कलकत्ता के भूतपूर्व आचार्य पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति की धर्मपत्नी थीं। जब पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति आर्यसमाज में

आचार्य रूप में आये तो उन्हींके साथ श्रीमती प्रभावती देवीजी भी कलकत्ता पधारीं। आदरणीय पण्डितजी के सम्पर्क में इनका स्वाध्याय, पाण्डित्य, प्रचारकला सब कुछ निखर उठी। कलकत्ता प्रवास-काल में माता प्रभावती देवीजी आर्य कन्या महाविद्यालय, २० विधान सरणी, कलकत्ता, में धार्मिक शिक्षिका नियुक्त हुई थीं। सन् १९३५ ई० में जब

माता प्रभावती देवीजी

आर्यमहिला शिक्षा-मण्डल ट्रस्ट बना तो श्रीमती प्रभावती देवीजी उस ट्रस्ट की एक ट्रस्टी बनायी गयीं। यह केवल एक पण्डिता के पाण्डित्य या प्रचारक के प्रचार-कार्य की स्वीकृति नहीं थी बल्कि उनकी संगठन-क्षमता का एक सुस्पष्ट प्रमाण था।

माता प्रभावतीजी ने कलकत्ता में महिलाओं के संगठन में

प्रशंसनीय योगदान किया था। वे बड़ी ही मृदुभाषिणी और वैदिक सिद्धान्तों पर सीधे सरल ढंग से उपदेश करने वाली महिला उपदेशिका थीं। कलकत्ता से चले जाने के पश्चात् भी पं० सुखदेवजी तो एक-दो बार कलकत्ता पधारे थे, किन्तु माता प्रभावतीजी तो अनेक बार आयीं। समाज के वार्षिकोत्सव पर आ जाती थीं और अपने स्नेह-वर्षण से स्थानीय लोगों में अमृतधारा प्रवाहित कर जाती थी।

पं० श्री अवधबिहारी लाल

पं० श्री अवधबिहारी लालजी का जन्म २४ फरवरी सन् १९०३ ई० को हुआ था। इनके पिताजी श्री मुरलीधरजी पुरानागंज, नगर

पं० अवधबिहारी लालजी

मुंगेर, बिहार प्रान्त के रहने वाले थे। पिताजी अंग्रेजी, संस्कृत, फारसी, अरबी तथा हिन्दी के अच्छे विद्वान् थे और उन्होंने कई पुस्तकें भी लिखी थीं। इस विद्या और लेखनकला की धरोहर से युक्त होकर पं०अवधबिहारीलालजी ने एम०ए० तथा बी०एल० की उपाधियाँ लेकर

वकालत का पेशा आरम्भ किया। पं० अवधविहारी लालजी की शिक्षा भागलपुर में हुई थी। सन् १९२४ ई० में बी० ए० इंग्लिश ऑनर्स और साथ ही लॉ कालेज से बी० एल० पास करके अभी वकालत का कार्य आरम्भ ही किया था कि सन् १९२७ ई० में श्री मुरलीधरजी का देहान्त हो गया। पं० अवधविहारी लालजी सत्यनिष्ठ और सदाचारी व्यक्ति थे। पिताजी के देहान्त के बाद घर का व्ययभार आप पर ही आ पड़ा। इधर पण्डितजी स्वभाव से ही वकालत का कार्य पसन्द न करते थे। धीरे-धीरे आपने वकालत का पेशा छोड़ दिया। उन दिनों कांग्रेस का कचहरी-बहिष्कार आन्दोलन भी चल रहा था। उससे प्रभावित होकर आपने मजिस्ट्रेट-पद की नियुक्ति भी स्वीकार नहीं की।

पं० अवधविहारी लालजी के पिता भी आर्यसमाज मुंगेर के पुराने कार्यकर्त्ता थे। स्वामी श्री मुनीश्वरानन्दजी महाराज से परिवार का घनिष्ठ सम्बन्ध था और उन्हींके प्रभाव से मुरलीधरजी का परिवार आर्यसमाज की सेवा में लगा था। पं० श्री अवधविहारी लालजी ने आर्यसमाज के आदर्श और सिद्धान्तों को अपने अनुकूल पाया, फलतः आपका आर्यसमाज के साथ प्रेम बढ़ता ही गया। पं० अवधविहारी लालजी किसी देशी रियासत में मैनेजर भी बने थे, किन्तु राजा पाखण्डी था, राज्य में पशुबलि आदि होती थी और पं० अवधविहारी लालजी अपने आदर्शों के सम्मुख मैनेजरी की सर्विस को भी ठुकरा कर अलग हो गये।

तब से पं० अवधविहारी लालजी शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने लगे और आर्यसमाज के साथ अधिकाधिक सम्पर्क बढ़ने लगा। पण्डितजी ने संस्कृत के अध्ययन को भी बढ़ाया। साहित्याचार्य, वेदतीर्थ तथा पुराणतीर्थ की परीक्षाएँ भी पास कीं। कुछ समय आप मुंगेर आर्यसमाज के प्रधान रहे और तत्पश्चात् आर्य प्रतिनिधि सभा बिहार के उपप्रधान भी निर्वाचित हुए थे।

सन् १९३७ ई० में पं० अवधबिहारी लालजी कलकत्ता आ गये और आर्यसमाज के प्रचार-क्षेत्र में तल्लीन हो गये। सन् १९३९ ई० में आर्यसमाज की ओर से हैदराबाद का प्रसिद्ध सत्याग्रह चलाया जा रहा था। बंगाल में सत्याग्रह के प्रचार का कार्य पं० अवधबिहारी लालजी को सौंपा गया और आपने अपने भाषणों और लेखों से बड़ी योग्यता-पूर्वक इस कार्य को निभाया। श्री जवाहरलालजी नेहरू ने किसी व्याख्यान में इस सत्याग्रह को असामयिक कह दिया था। श्री अवधबिहारी लालजी ने अपने भाषणों और लेखों में हैदराबाद सत्याग्रह को उचित, सामयिक और युक्तिपूर्ण सिद्ध किया। श्री जवाहरलालजी को आपने एक युक्तियुक्त पत्र भी लिखा और श्री नेहरूजी ने अपने भाषणों में अपना विचार यहाँ तक बदल दिया कि वे कहने लगे कि हैदराबाद का सत्याग्रह निरंकुश राजाओं की आँखें खोलने वाला है। श्री नेहरूजी ने पं० अवधबिहारी लालजी को व्यक्तिगत पत्र भी लिखा था और उस पत्र में उन्होंने अवधबिहारी लालजी को धन्यवाद भी दिया था तथा सत्याग्रह का औचित्य भी स्वीकार किया था। हैदराबाद सत्याग्रह के प्रचार-कार्य को आपने इस योग्यता से संचालित किया था कि सत्याग्रह में विजय प्राप्त होने के पश्चात् आपको आर्यसमाज के प्रचार के लिए हैदराबाद में बुला लिया गया था। कुछ दिनों तक आप वहाँ आर्यसमाज का प्रचार और शिक्षा-प्रचार का कार्य करते रहे।

हैदराबाद से आप पुनः कलकत्ता लौटे और आर्य प्रतिनिधि सभा बंग-आसाम के साथ मिलकर प्रचार के कार्य करते रहे। पं० श्री अवधबिहारी लालजी आर्य प्रतिनिधि सभा बंग-आसाम के उप-प्रधान भी बने। आपने दक्षिण कलकत्ता में 'दक्षिण कलकत्ता आर्य विद्यालय' नाम से एक विद्यालय खोला और यावज्जीवन उस विद्यालय के प्रधानाध्यापक बने रहे। आप विद्यालय का संचालन बड़ी योग्यता

से करते रहे और विशेष रूप से धर्मशिक्षा की व्यवस्था विद्यालय में चलाते रहे।

पं० अवधविहारी लालजी बड़े सुयोग्य वक्ता, शान्त और मृदुभाषी थे। आपने कई पुस्तकें लिखीं और दक्षिण कलकत्ता आर्य विद्यालय की ओर से 'आर्य भारती' नामक एक मासिक पत्रिका का सम्पादन आरम्भ किया।

आर्य प्रतिनिधि सभा बंग-आसाम ने 'आर्यसमाज' नामक एक मासिक पत्र हिन्दी भाषा में आरम्भ किया था। पं० अवधविहारी लालजी उसके प्रथम सम्पादक नियुक्त हुए थे। आप शुद्ध लेखक थे। लेखों में आपकी वाणी और विचार बड़े सशक्त हुआ करते थे। आप आर्यमित्र, सार्वदेशिक आदि अन्य पत्रों में भी अपने लेख दिया करते थे। आप सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली के तथा सार्वदेशिक धर्मार्य सभा के भी सदस्य थे। पं० अवधविहारी लालजी यावज्जीवन आर्यसमाज के सजग सिपाही के रूप में रहे। आपका देहान्त ५ दिसम्बर १९६० ई० को हो गया।

आचार्य पंडित ऋषिरामजी

आचार्य पं० ऋषिरामजी का आर्यसमाज कलकत्ता और कलकत्ता शहर से बड़ा स्नेहिल मधुर सम्बन्ध रहा है। आर्यसमाज कलकत्ता और आर्यसमाज भवानीपुर में आपके सत्संग निरन्तर हुआ करते थे। काफी दिनों तक कलकत्ता के साथ आपका निरन्तर सम्बन्ध बना रहा है। आचार्य पं० ऋषिरामजी का जन्म सन् १८९३ ई० में अम्बाला जिले के रायपुररानी कस्बे के एक वैश्य परिवार में हुआ था। अपने अध्ययन के क्रम में आपने डी० ए० वी० कॉलेज लाहौर में प्रवेश लिया। वहीं प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य पं० विश्वबन्धुजी आपके सहाध्यायी बने। दोनों साथी महात्मा हंसराजजी के सम्पर्क में आये और दोनों ने वैदिक सेवा-साधना का मार्ग पकड़ लिया। आचार्य

ऋषिरामजी ने सन् १९१७ ई० में बी० ए० पास किया और तभी से डी० ए० वी० कालेज सोसाइटी के आजीवन सदस्य बन गये।

आचार्य ऋषिरामजी में जहाँ विद्या थी, सफल उपदेशक भाव था, वहीं समाजसेवा की भावना भी प्रबल थी। २०वीं शताब्दी के प्रथम चरण में दक्षिण भारत, केरल में कुछ उपद्रव हुए, जिसमें मोपला काण्ड बड़ा हृदय विदारक था। आचार्य ऋषिरामजी छूआछूत के निराकरण और समाजसुधार के कार्य को लेकर जनसेवा की भावना से केरल चले गये। वहीं से आपने पूर्वी अफ्रीका की भी यात्रा की। पं० ऋषिरामजी जितनी सफलता से भारतवर्ष में प्रचार कर रहे थे, वैसी ही सफलता से पूर्वी अफ्रीका में भी वेदधर्म का प्रचार किया।

सन् १९३० ई० से सन् १९३४ ई० तक आपने कलकत्ता को अपना प्रधान कार्यकेन्द्र बनाया। यहाँ से आप बंगाल, आसाम आदि में प्रचार कार्य करते रहे। आर्यसमाज कलकत्ता और आर्य-समाज भवानीपुर तो इनके उपदेशों के केन्द्र थे ही, साथ ही अन्य समाजों, वृहत्तर कलकत्ता और सुदूर आसाम इत्यादि स्थानों पर धर्म प्रचारार्थ आपका आना-जाना बना रहता था। ऋषिरामजी मृदुभाषी, प्रभावशाली वक्ता थे। जीवन-आचार, यज्ञ, सन्ध्या इत्यादि के साथ ही उपनिषदों की बड़ी हृदयग्राही व्याख्या करते थे। कलकत्ता के पुराने लोग आचार्य ऋषिरामजी की मधुर स्मृति को आज भी याद करते हैं।

कलकत्ता छोड़ने के पश्चात् भी बीच-बीच में आप कलकत्ता आते रहते और अपने आध्यात्मिक प्रवचन से यहाँ की जनता को तृप्त करते रहते। सन् १९३६ ई० में आप फिर विदेश गये। विदेशों में बसे भारतीयों को भारतीय संस्कृति के सम्पर्क में बनाये रखना आपका मुख्य कार्य था। आचार्य ऋषिरामजी के जीवन में एक जीवनीय आकर्षण था। बड़ा सरल-सा जीवन, किन्तु आध्यात्मिक भावना से

ओतप्रोत था। इनके भीतर की आध्यात्मिक साधना सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती थी। पंडितजी जीवनोपयोगी सत्य को वेदमन्त्रों के सहारे बड़े आकर्षक ढंग से जनता के बीच उपस्थित करते थे। ७७ वर्ष की आयु में सन् १६७० ई० में पण्डित ऋषिरामजी का देहावसान हो गया।

श्री सत्यचरण राय शास्त्री

पण्डित सत्यचरण राय हुगली जिलान्तर्गत श्रीरामपुर के निवासी थे। पण्डितजी संस्कृत साहित्य के और बंगला साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उस समय बंगाल के समसामयिक मूर्धन्य विद्वान्, मुक्तबोध सारस्वत आदि व्याकरण ग्रन्थ पढ़ते थे तथा नव्य न्याय, साहित्य एवं पौराणिक ग्रन्थों में पारंगत होते थे। पण्डित सत्यचरण रायजी पाणिनीय व्याकरण निरुक्त आदि वैदिक ग्रन्थों के अच्छे विद्वान् थे। पण्डितजी सामवेदी ब्राह्मण थे और बंगाल में सामवेद का प्रचार भी कुछ अधिक था। पण्डितजी ने सामवेद का एक सुन्दर भाष्य किया है। यह भाष्य स्वामी दयानन्द निर्दिष्ट पद्धति पर है। इस भाष्य का आधार एक ओर जहाँ निरुक्त और ब्राह्मण ग्रन्थ हैं वहाँ इस ग्रन्थ पर वैयाकरण टिप्पणियाँ भाष्यकार के पाण्डित्य को बड़ी सबलता से उजागर करती हैं। इस सामवेद के अपूर्व भाष्य ने पण्डित सत्यचरण राय शास्त्री का नाम विद्वन्मण्डल में सदा के लिए अमर कर दिया है।

श्री ब्रजेश्वर रायजी

श्री ब्रजेश्वर रायजी पण्डित श्री सत्यचरण राय के सुपुत्र थे। आर्यसमाज के प्रति श्रद्धा-भक्ति की भावना ब्रजेश्वरजी के जीवन में उनके पिताजी से ही आयी हुई थी। श्री ब्रजेश्वर रायजी आर्यसमाज के अनन्य भक्त थे और यह उनके पिता श्री सत्यचरण राय शास्त्री का

ही प्रभाव था कि ब्रजेश्वरजी आर्यसमाज कलकत्ता के प्रत्येक कार्य में पूर्णरूप से सहयोगी बने रहते थे। श्री ब्रजेश्वर रायजी कलकत्ता निवासी बंगाली सज्जनों में वैदिक धर्म के प्रचार के लिए बहुत सचेष्ट रहते थे। श्री ब्रजेश्वर रायजी बंगवासियों को एकत्र करके सत्संग कराया करते थे। समय-समय पर बंगाली पंडितों को बुलाकर वेद का सन्देश सुनाने का कार्यक्रम किया करते थे।

श्री ब्रजेश्वर रायजी रेलवे में नौकरी करते थे, किन्तु धर्मप्रचार और समाज सेवा का कार्य बड़ी तन्मयता से किया करते थे। ब्रजेश्वर रायजी ने समाजसेवा का एक और भी प्रकार निकाला था। उन्होंने विवाह-सम्पर्क जुटाने के लिए एक संस्था खोली थी, जिसके माध्यम से विधवा विवाह, असवर्ण अन्तर्जातीय विवाह का प्रयास तो किया ही जाता था, साथ ही पंजाबी, बिहारी, उत्तरप्रदेश निवासी, अन्य प्रान्तों के पश्चिमी हिन्दुस्तानियों के साथ बंगाली लड़कियों के विवाह संस्कार कराते थे। इससे एक ओर जहाँ विधवा विवाह, असवर्ण विवाह, अन्तर्प्रान्तीय और अन्तर्जातीय विवाहों का सहारा मिलता था वहीं दहेज का पाप भी बहुत कुछ कम हो जाता था।

श्रीकृष्णजी शर्मा

शर्माजी बिहार सभा से पृथक् होकर कलकत्ता आये और यहाँ के कार्यक्षेत्र में स्वतन्त्ररूप से जुट गये। श्रीकृष्णजी शर्मा बिहार प्रान्त के निवासी थे। सादा आडम्बरहीन जीवन आर्य मिशनरी का एक समर्पित स्वरूप उपस्थित कर देता था। जिन दिनों श्री शर्माजी आर्यसमाज कलकत्तामें रहते थे, उन दिनों आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल का कोई अलग से कार्यालय या भवन न था। यहीं १९, विधान सरणी का मन्दिर प्रतिनिधि सभा के कार्यालय और स्थान के रूप में व्यवहार किया जाता था। पं० श्री शर्मा यहीं आर्यसमाज मन्दिर की गैलरी में रहते थे। उस समय और भी एक दो-पंडित प्रचारकार्य के लिए

प्रतिनिधि सभा में सेवारत थे। इन सबके सहारा थे श्री हरिगोविन्द जी गुप्त, जो प्रान्तीय सभा और स्थानीय आर्यसमाज के प्राण थे। श्रीकृष्णजी शर्मा वृहत्तर कलकत्ता के मिल अंचलों, काकीनाड़ा, बैरकपुर आदि क्षेत्रों में प्रचार किया करते थे। उन दिनों यातायात की सुविधा

श्री श्रीकृष्ण शर्माजी

न थी, खाने-पीने का भी कष्ट था, कहीं चना-मूढ़ी तो कहीं दही-चूड़ा, नहीं तो जो कुछ भी जीवन चलाने लायक मिल जाता था, वही थोड़ा-बहुत खा-पीकर ये विद्वान् लोग प्रचारकार्य में समर्पित थे। वे तपस्या के दिन थे, आज के सुविधा सम्पन्न विलासी जीवन की भूमिका में उन्हें सोचना भी कठिन जान पड़ता है।

श्री धनुर्धरजी शर्मा

श्री धनुर्धरजी शर्मा जिला मुंगेर, विहार में सूर्यगढ़ के निवासी थे। अपने उपदेशक जीवन का आरम्भ बिहार प्रतिनिधि सभा के उपदेशक

के रूप में किया था। वे संस्कृत के प्रौढ़ विद्वान् और शास्त्रार्थ कला में निपुण थे। पं० धनुर्धर शर्मा भी श्री कृष्णजी शर्मा की तरह आर्यसमाज मन्दिर १९, विधान सरणी (कार्नवाल स्ट्रीट), कलकत्ता-६ की गैलरी में रहा करते थे। वहीं आर्यसमाज मन्दिर प्रतिनिधि सभा का भी कार्यलय था। पं० श्री धनुर्धरजी शर्मा अच्छे वैयाकरण थे। जीवन में सादगी और उपदेशक की तपस्या उनके आदर्श थे। उस समय आज की तरह न यज्ञों का अधिक प्रचार था, न ही लोग वैदिक रीति से संस्कार इत्यादि कराते थे। अतः पंडितों को दान-दक्षिणा मिलने का कोई अधिक प्रश्न ही नहीं था। इन उपदेशकों के लिए इनके हृदय में एक ओर वैदिक धर्म के प्रचार की धुन थी तो दूसरी ओर प्रतिनिधि सभाओं का यत्किंचित् सहारा था। धनुर्धर शर्माजी पूरे वृहत्तर कलकत्ता, काकीनाड़ा, कचरापाड़ा, जगदल, बैरकपुर, गौरीपुर इत्यादि सभी क्षेत्रों को अपना कार्यक्षेत्र बनाकर प्रचार कर रहे थे। उन दिनों आर्यसमाजी उपदेशकों का अतिथि-सत्कार करने वाला इन मिल अंचलों में शायद ही कोई था। जो कुछ भी रूखासूखा, चूड़ा, मूढ़ी आदि मिल जाता था, उसीके सहारे जीवन बिता लेना और धर्मप्रचार में जुटे रहना ही इन उपदेशकों का जीवन था।

आचार्य पंडित दीनबन्धुजी वेदशास्त्री

बंगाल में आर्यसमाज का प्रचार करने वाले विद्वानों में आचार्य पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री का स्थान अप्रतिम है। लगभग ५० वर्षों तक निरन्तर आर्यसमाज और वैदिकधर्म के प्रचार में सर्वात्मना जुटे रहने का श्रेय इन तपस्वी ब्राह्मण विद्वान् को हैं। इनका जीवन स्वयं अपने में एक क्रान्ति है। पं० दीनबन्धुजी बंगाल में आर्यसमाज के अग्रणी पुरोधा थे।

जन्म और वंश-परिचय :

बंगला देश में (पुराने पूर्वी बंगाल में) पावना एक ज़िला है।

पद्मा नदी के उत्तर तथा ब्रह्मपुत्र नदी के पश्चिम में सागरकान्दी नाम का एक ग्राम इसी ज़िले में है। इसी गाँव में पं० विपिनविहारी आचार्य नाम के एक सामान्य किन्तु प्रतिष्ठित ब्राह्मण रहा करते थे। इनकी धर्मपत्नी का नाम विनोदिनी देवी था। घर में आर्थिक सुविधा अधिक न थी, फिर भी ब्राह्मण परिवार का सम्मान था। विपिन-

पं० दीनवन्धुजी वेदशास्त्री

बिहारी आचार्य और विनोदिनी देवी, ब्राह्मण दम्पती के यहाँ ७ मार्च सन् १६०६ ई० को एक होनहार बालक का जन्म हुआ, जिसका नामकरण किया गया दीनवन्धु आचार्य। यही बालक दीनवन्धु प्रसिद्ध प्रचारक, लेखक, क्रान्तिकारी एवं समाजसेवक आचार्य पंडित दीनवन्धुजी वेदशास्त्री बने। १० वर्ष की अल्पायु में दीनवन्धुजी को पिता के स्वर्गवास का दुःख सहना पड़ा। पालन-पोषण का भार

निर्धन विधवा ब्राह्मणी विनोदिनी देवी तथा दीनबन्धुजी की मौसी ने बड़े दायित्व के साथ सिभाया। माता विनोदिनी देवी तेजस्विनी एवं निर्भीक महिला थीं। बालक दीनबन्धु के लालन-पालन एवं शिक्षा-दीक्षा में उन्होंने भरपूर प्रयास किया। पाठशाला गाँव से ४ मील दूर थी। दीनबन्धुजी की मौसी प्रायः इन्हें स्कूल ले जाने और ले आने का कार्य करती थीं। पं० दीनबन्धुजी के घर वाले बताते हैं कि पं० दीन-बन्धुजीको इस अल्प आयु में बहुत सारे श्लोक कंठस्थ थे। स्कूल के अध्यापक इन्हें छोटे पंडित के नाम से पुकारते थे।

प्राइमरी के बाद सेकेण्डरी की शिक्षा इन्होंने अपनी बहन की ससुराल में रहकर की। इसी विद्यालय में इनका परिचय नरेन्द्रनाथ चक्रवर्ती नामक एक क्रान्तिकारी युवक से हुआ।

प्रथम जेलयात्रा :

पं० दीनबन्धुजी स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़े थे। सन् १९२१ ई० में अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध भाषण देने तथा १४४ धारा उल्लंघन करने के अपराध में दीनबन्धुजी को पावना में गिरफ्तार किया गया। पावना से इन्हें बरहमपुर स्पेशल जेल में भेज दिया गया था। इसी जेल में दीनबन्धुजी की भेंट श्री दिगिन्द्र नारायण भट्टाचार्य विद्याभूषण से हुई। दिगिन्द्र नारायणजी सरल स्वभाव के महान् वक्ता और विद्वान् थे। इनकी प्रेरणा से दीनबन्धुजी ने लिखने का अभ्यास किया। कहा जाता है 'ब्राह्मण-शूद्र-संघर्ष' जो सम्भवतः दीनबन्धुजी की प्रथम रचना है, इन्हीं विद्याभूषणजी की प्रेरणा से लिखी गयी थी।

स्वामी दयानन्दजी और सत्यार्थ प्रकाश से परिचय :

जिस समय पं० दीनबन्धुजी बरहमपुर जेल में कारागार के दिन काट रहे थे, तभी उसी जेल में इनका सम्पर्क किन्हीं बाजपेयी सज्जन से हुआ। बांजपेयीजी ने दीनबन्धुजी को स्वामी दयानन्दजी और सत्यार्थ प्रकाश के सम्बन्ध में परिचय कराया। इन्हींसे दीनबन्धुजी

को आर्यसमाज की धार्मिक, सामाजिक और देश-सुधार की क्रान्ति का परिचय मिला। जेल से छूटकर दीनबन्धुजी जब कलकत्ता आये तो वे आर्यसमाज से इतने प्रभावित थे कि नियमित रूप से आर्य-समाज में जाया करते थे।

बण्डेल से गया तक की पैदल यात्रा :

पं० दीनबन्धुजी के परिवार वाले बताते हैं कि सन् १९२२ ई० में गया में कांग्रेस का अधिवेशन होने वाला था। इस अधिवेशन के सभापति देशबन्धु चित्तरंजन दास थे। क्रान्तिकारी दीनबन्धु के मन में इस अधिवेशन में सम्मिलित होने की उत्कट इच्छा बलवती हो चली थी। अर्थ का अभाव था, फिर भी दीनबन्धुजी ने बण्डेल से गया तक की यात्रा पैदल कर डाली और उस अधिवेशन से वे बहुत अधिक प्रभावित भी हुए।

पं० शंकरनाथजी के सम्पर्क में :

कलकत्ता आने पर पं० दीनबन्धुजी श्री दामोदर दासजी के यहाँ हरिसन रोड में रहते थे। पं० दीनबन्धुजी अपना लेखनकार्य चालू रखते थे। 'ब्राह्मण-शूद्र-संघर्ष' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। ओजस्वी प्रौढ़ भाषा, चुभती हुई लेखन-शैली और मार्मिक भावों से भरपूर होने के कारण पुस्तक का बड़ा आदर हुआ। आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान्, लेखक एवं कार्यकर्त्ता पं० शंकरनाथजी के हाथ भी 'ब्राह्मण-शूद्र-संघर्ष' पुस्तक लग गयी। यह पुस्तक पढ़कर और उसकी विशेष-ताओं से प्रभावित होकर पं० शंकरनाथजी ने पं० दीनबन्धुजी को खोजना आरम्भ किया। पुस्तक का लेखक एक युवक है, यह देखकर पं० शंकरनाथजी बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें अपने घर भवानीपुर ले गये। पं० शंकरनाथजी ने पं० दीनबन्धुजी के लिए आर्य और वैदिक साहित्य के अनेकों ग्रन्थ उपलब्ध करा दिये। एकाध सप्ताह के बाद

पं० शंकरनाथजी ने पं० दीनबन्धुजी से परीक्षा के रूप में उनके अध्ययन की जाँच की। दीनबन्धुजी की योग्यता और परिश्रम से पं० शंकरनाथजी बड़े प्रसन्न हुए और पं० दीनबन्धुजी को आर्यसमाज में ले गये। उस समय बंगाल, आसाम तथा उड़ीसा की एक ही प्रतिनिधि सभा थी और उसके तत्कालीन मन्त्री श्री हरिगोविन्दजी गुप्त थे। पं० शंकरनाथजी ने श्री हरिगोविन्दजी से पं० दीनबन्धुजी का परिचय कराया और प्रशंसा तथा संस्तुति की और पं० दीनबन्धुजी आर्यसमाज के प्रचारक कार्यकर्त्ता के रूप में नियुक्त हो गये। कुछ समय पश्चात् पावना ज़िला में हिन्दू महासभा का सम्मेलन हुआ। पंडित शंकरनाथजी के साथ पंडित दीनबन्धुजी उस सम्मेलन में गये और वहाँ अपनी माताजी से भी मिले। उस समय माताजी स्वाभाविक ही आर्थिक कठिनाई में थीं और पंडित शंकरनाथजी के परामर्श से पंडितजी माताजी को कलकत्ता ले आये और इस प्रकार कलकत्ता में स्थायी रूप से पंडित दीनबन्धुजी का परिवार रहने लगा।

पंडित दीनबन्धुजी बड़े प्रचण्ड शास्त्रार्थी और प्रभावशाली वक्ता थे। उनके व्याख्यानों में जोश होता था, पर्याप्त रोष और कठोरता भी होती थी। पण्डितजी जहाँ ललित भक्तिभावनापूर्ण व्याख्यान देते थे, वहाँ प्रचण्ड रूप से खण्डन भी करते थे। उनके खण्डन में उनके प्रचण्ड तर्क और सिंहगर्जन के समान ओजस्वी वाणी अति प्रभावपूर्ण रहती थी। पण्डित दीनबन्धुजी के शास्त्रार्थों में 'भाटपाड़ा शास्त्रार्थ' एक प्रसिद्ध शास्त्रार्थ है। पण्डित श्री प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण ने भाटपाड़ा शास्त्रार्थ के सम्बन्ध में कुछ इस प्रकार का संस्मरण लिखा है।

भाटपाड़ा शास्त्रार्थ :

भाटपाड़ा नैहाटी, २४ परगना में है। यह स्मार्त न्यायिक पंडितों का केन्द्र था। नवद्वीप की तरह ही भाटपाड़ा भी धुरन्धर

पंडितों का स्थान रहा है। शास्त्रार्थ प्रसंग कुछ इस प्रकार बना कि उन दिनों पंडित मदनमोहन मालवीय अछूतोद्धार आन्दोलन कर रहे थे। लोगों को यज्ञोपवीत देकर अछूतपन से मुक्त किया जा रहा था। अछूतोद्धार के इस आन्दोलन से भाटपाड़ा के पंडित क्षुब्ध हो उठे। स्वाभाविक था कि आर्यसमाज मालवीयजी के आन्दोलन का समर्थक था और बात होते-होते यहाँ तक पहुँची कि भाटपाड़ा के पंडितों के साथ आर्यसमाज के पंडितों का शास्त्रार्थ निश्चित हो गया। शास्त्रार्थ का विषय था 'शूद्रों का यज्ञोपवीत एवं वेदाधिकार'। इस शास्त्रार्थ में आर्यसमाज की ओर से प्रमुख वक्ता थे पंडित दीनबन्धुजी वेदशास्त्री। पंडित दीनबन्धुजी के साथ पंडित दिगिन्द्रनारायण भट्टाचार्य, पंडित नरेन्द्रनाथ चक्रवर्ती आदि विद्वान् थे। पौराणिकों की ओर से पंडित श्री जीव भट्टाचार्य न्यायतीर्थ, पंडित पंचानन तर्करत्न, पं० ताराकान्त, पं० ईशा शास्त्री आदि थे। शास्त्रार्थ में दोनों ओर से उल्लास ही नहीं जोश भी था। पंडित दीनबन्धुजी की शास्त्रपटुता के सामने जब पौराणिक पंडित निरुत्तर होने लगते तो गालीगलौज पर उतर जाते। इस अशोभनीय वातावरण में शास्त्रार्थ तो जैसे-तैसे समाप्त हो गया, पर जनता पर यह विदित हो गया कि पौराणिक पक्ष सर्वथा निर्बल है।[१]

भाटपाड़ा वधकाव्य :

इस शास्त्रार्थ के बाद पंडित दीनबन्धुजी ने 'भाटपाड़ा वधकाव्य' नामक पुस्तक लिखकर प्रकाशित कर दी। एक व्यंगात्मक रचना है। इसमें ४ पर्व हैं—(१) उद्योग पर्व, (२) युद्ध पर्व, (३) पलायन पर्व और (४) विलाप पर्व। आजकल यह काव्य अप्राप्त है।

भाटपाड़ा वधकाव्य के प्रकाशन से क्षुब्ध होकर भाटपाड़ा के पंडितों ने पंडित दीनबन्धुजी पर मानहानि का अभियोग करने की

---

१. द्र०—त्रयोदश अध्याय शास्त्रार्थ और शास्त्रविचार

धमकी दी। पंडित दीनबन्धुजी ने उन पंडितों को साफ कह दिया कि अभियोग करने पर तुम्हारे व्यक्तिगत जीवन की पोल और खुल जायेगी और इससे तुम्हारा ही अपमान होगा, आर्यसमाज का कुछ न बिगड़ेगा।

लेखक और सम्पादक के रूप में :

पंडित दीनबन्धुजी ने 'आर्यगौरव' नामक मासिक पत्र का सम्पादन किया। यह आर्यसमाज कलकत्ता का मासिक मुख पत्र था। यह बंगला भाषा में प्रकाशित होता था। आर्यगौरव का वार्षिक मूल्य एक रुपया था। ग्राहक संख्या भी एक हजार से ऊपर थी। इस पत्र के व्यवस्थापक श्री फणीन्द्रनाथ सेठ थे। पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण लिखते हैं कि आर्यगौरव का प्रूफ देखना, ग्राहकों का नाम लिखना आदि सामान्य सहयोग वे भी किया करते थे। पं० प्रियदर्शनजी ने लिखा है कि उन्होंने पत्र के प्रकाशन की रीति-नीति, व्यवस्था आदि को यहीं पं० दीनबन्धुजी के सम्पर्क में रहकर सीखा था।

आर्यगौरव का प्रकाशन बन्द होने पर पं० दीनबन्धुजी ने 'शास्त्रसिन्धु' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन एवं सम्पादन आरम्भ कर दिया था। इसका प्रकाशन शास्त्रसिन्धु प्रकाशन विभाग की ओर से होता रहा।[१]

वेदभाष्य :

पं० दीनबन्धुजी ने सामवेद का भाष्य स्वामी दयानन्दजी की पद्धति से किया था। पं० प्रियदर्शनजी के संस्मरणों के अनुसार वेद-भाष्य करते समय पं० दीनबन्धुजी को कोई भी ऐसा सहायक नहीं मिला था जो प्रतिलिपि आदि का कार्य कर सके। उनको अकेले ही लिखना पड़ता था, प्रूफ देखना पड़ता था और बंधाई कराकर

---

१. द्रष्टव्य—द्वादश अध्याय पत्र और पत्रकार

ग्राहकों के पास भेजना पड़ता था। पं० दीनबन्धुजी ने एक विशाल साहित्य का निर्माण किया है। उनकी पुस्तकों की संख्या ६५-७० बतायी जाती है। इन पुस्तकों की उपलब्ध सूची इसी इतिहास में साहित्यिक कार्यों में प्रकाशित की गई है।[१]

श्री जुगलकिशोरजी बिड़ला के सम्पर्क में :

श्री बिड़लाजी का आर्य हिन्दूधर्म के प्रति स्नेह सर्वविदित है। एक बार मैमनसिंह (बंगला देश) जिले में हाजंग समाज के सैकड़ों परिवार ईसाई होने जा रहे थे। आर्यसमाज की ओर से पंडितजी से आवेदन किया गया कि वे उन परिवारों को ईसाई मिशनरियों के हाथों से बचाने के लिए मैमनसिंह चले जायें। पं० दीनबन्धुजी ने पं० भुवनमोहनजी को साथ लिया और मैमनसिंह के लिए प्रस्थान कर दिया। पं० दीनबन्धुजी की ओजस्विता, वाग्मिता, प्रचारशैली का फल यह हुआ कि सैकड़ों हाजंग परिवार ईसाई होने से बच गये। इस प्रकार के निर्लिप्त प्रचार से बिड़लाजी पं० दीनबन्धुजी से बहुत प्रसन्न रहते थे। श्री बिड़लाजी पं० दीनबन्धुजी को आजीवन आर्थिक सहायता देते रहे। श्री बिड़लाजी ने पं० दीनबन्धुजी को वेदप्रचार के लिए व्यवस्था करने को भी कहा था। उन्होंने पं० प्रियदर्शनजी को एक पत्र में लिखा था—

> "आर्यसमाज का वेद प्रचार प्रतिनिधि सभा के उपदेशकों द्वारा ही हो। बिड़लाजी का विचार है कि वह प्रचार मेरी (पं० दीनबन्धुजी की) देखरेख में ही हो। मैंने भी यह प्रस्ताव बंगाल-आसाम में वेदप्रचार जारी रखने के लिए स्वीकार कर लिया है अन्यथा बंगाल में वेदप्रचार कार्य में विघ्न आयेगा। अतः आप भी इस प्रस्ताव को स्वीकार करें तो अच्छा हो।[२]"

---

१. द्रष्टव्य—एकादश अध्याय—साहित्यिक कार्य

२. आर्यसंसारका पं० दीनबन्धु स्मृति विशेषांक—पं० प्रियदर्शनजी का लेख

पं० दीनबन्धुजी स्वयं में एक मिशन थे। वे कष्टों की बिना चिन्ता किए आर्यसमाज का प्रचार और रिलीफ का कार्य करते रहते थे। कई बार रात को स्टेशनों की वेन्चों पर बैठे-बैठे केवल मूढ़ी खाकर, जल पीकर रात काट देते थे और अगले दिन फिर आर्यसमाज के कार्य में जुट जाते थे। समाज के कार्य से वे कभी थकते न थे। पं० दीनबन्धुजी का जीवन क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में भी रहता था। भगतसिंह जब कलकत्ता आये थे तो पंडितजी की कोठरी में रहे थे। आर्यसमाज शिलांग में मिदिनापुर के श्री ज्योतिप्रसाद जाना पुलिस से बचने के लिए पंडितजी के पास शिक्षक के रूप में रह चुके थे। इन्हीं ज्योति प्रसाद जाना ने स्वतन्त्रता के पश्चात् आवास के लिए पं० दीनबन्धुजी को भूमि दिलवायी थी।

एक बार पं० दीनबन्धुजी बंगाल के देहात में प्रचार करके लौट रहे थे। मार्ग में चोरों से भेंट हो गयी। उन्होंने पंडितजी को रस्सी से बाँध लिया और जंगल में ले जाकर उनसे एक सौ रुपये और घड़ी छीन ली। पंडितजी अपने कार्य में लगे रहे। दूसरे दिन जब चोरों को पता लगा कि रात में उन्होंने ऐसे परोपकारी को लूटा था तो उन्होंने उन्हें घड़ी और रुपये भी लौटाये और क्षमा याचना भी की।

समय के प्रवाह में सिंहपुरुष भी शिथिल हो जाते हैं। ढलती उमर में वह भागदौड़ रातोदिन का आना-जाना कठिन हो गया। पं० दीनबन्धुजी ने आर्य कन्या महाविद्यालय कलकत्ता और वीमन्स कालेज कलकत्ता में धर्मशिक्षक के रूप में काम करना आरम्भ किया था। सायंकाल को गीताभवन में गीता पर कथा करते थे और प्रसिद्ध कॉलेज स्क्वायर में आर्यसमाज कलकत्ता की ओर से वैदिक ग्रन्थों पर प्रवचन किया करते थे। कार्यनिवृत्त होने पर आर्यसमाज कलकत्ता और आर्य कन्या महाविद्यालय उनकी आर्थिक सहायता जीवन भर करते रहे। बिड़लाजी की ओर से भी उन्हें आर्थिक सहायता मिलती

रही। भारत सरकार भी उन्हें स्वाधीनता संग्रामी के रूप में पेन्शन देती रही।

ऋषि की अज्ञात जीवनी

पं० दीनबन्धुजी एक समर्पित ऋषिभक्त और मिशनरी कार्यकर्त्ता थे। सिद्धान्तों के इतने निष्ठावान् कि स्वयं एक आचार्य वंगीय ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर अपनी पुत्री का विवाह श्री ज्ञानेन्द्रदेवजी सूफी के पुत्र के साथ किया। सारा जीवन आर्यसमाज का प्रचार करना, आर्यसमाज के सिद्धान्तों पर पुस्तकें लिखना, वेदभाष्य करना और एक सीधेसादे निस्पृह अति सामान्य आर्थिक स्थिति में जीवन काटना उनके जीवन की कहानी है। इसी बीच पं० दीनबन्धुजी को कुछ ऐसे सन्दर्भ मिले जिनसे यह पता चला कि स्वामी दयानन्दजी ने कलकत्ता में अपनी जीवनगाथा सुनायी थी। पं० दीनबन्धुजी सन् १९२३ ई० से इस स्वकथित जीवनी के अनुसन्धान में लगे रहे। समय-समय पर, सन् १९२५ ई० के मथुरा महोत्सव में, सन् १९२६ ई० में टंकारा में, सन् १९३३ ई० में अजमेर में सम्मेलनों के अवसर पर इस अनुसन्धान की चर्चा होती रही और उन्हें आर्य जगत् की ओर से प्रेरणा मिलती रही। पं० दीनबन्धुजी ने इस आत्मकथित जीवनी का अनुसन्धान किया। यह जीवनी 'अज्ञात जीवनी' के नाम से छप गयी है। स्वामीश्रीसच्चिदानन्दजी ने इसे छापा है। इसके सम्बन्ध में आर्यजगत् के कुछ मान्य विद्वानों ने आपत्ति की है। ऋषि-जीवन के सम्बन्ध में कई सारी घटनाएँ और रजनश्रुतियाँ ऐसी आती हैं जिनके सम्बन्ध में विवाद-विसंगति कुछ कहने-सुनने की गुंजाइश न होना असम्भव नहीं है। फिर भी पं० दीनबन्धुजी एक निष्ठावान् ऋषिभक्त और सत्यनिष्ठ प्रचारक थे। वे मनगढ़न्त गपोड़ा हाँकने वाले न थे। वे अपने व्याख्यानों में ऐतिहासिक तथ्य तो बोला करते थे, किन्तु गप्पें और कहानियाँ भी नहीं सुनाते थे। मेरा उनका ३०-३५ वर्षों का परिचय

और सम्पर्क था। हमें एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिला जो पं० दीनबन्धुजी की निष्ठा पर सन्देह करता हो। यह आत्मचरित पं० दीनबन्धुजी द्वारा संग्रहीत है, अपनेमें इतना ही पर्याप्त प्रमाण है। आर्यसमाज के इतिहास में बंगाल में पं० शंकरनाथजी के पश्चात् पं० दीनबन्धुजी अद्वितीय अप्रतिम उपदेशक प्रचारक हुए। बंगाल के प्रसिद्ध आर्य-समाजी कार्यकर्त्ता श्री वटुकृष्णजी वर्मन के अनुसार पं० दीनबन्धुजी का ही प्रयास है कि आसाम, उड़ीसा एवं बंगाल में ३०० आर्यसमाजों की स्थापना हुई। करीब एक दर्जन विद्वान् (बंगला भाषा) आर्यसमाज को प्राप्त हुए। पं० दीनबन्धुजी का देहान्त २१-४-१९७९ को हो गया।

आचार्य रमाकान्तजी शास्त्री

उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर जिले में सुल्तानपुर शहर से १०-१२ कि० मी० दूर, पूर्व की ओर झौआरा एक ब्राह्मणों का गाँव है। इस गाँव के सबसे पुराने निवासी उपाध्याय ब्राह्मण हैं। आचार्यजी इसी उपाध्याय परिवार में आश्विन मास की मातृनवमी संवत् १९७२ विक्रम को पैदा हुए थे। पिताजी का नाम श्री नागेश्वरजी उपाध्याय और माताजी का नाम श्रीमती दिलराजी देवी था। यह उपाध्याय वंश परम्परानुसारी, शुक्ल यजुर्वेदाध्यायी, माध्यन्दिनिशाखा, दक्षिण शिखा, दक्षिण सूत्र, दक्षिणपाद, त्रिप्रवर इत्यादि परिचयात्मक ऐतिहासिक दृष्टि से विभूषित रहा है। आचार्यजी का कुल कई पीढ़ियों से विद्या के लिए प्रसिद्ध रहा है। आचार्यजी के पिताजी श्री नागेश्वरजी उपाध्याय बड़े प्रसिद्ध ज्योतिषी, कर्मकांडी, नवरात्र का व्रत करने वाले थे। लोग कहते हैं कि उन्हें देवी इष्ट थीं। ज्येष्ठ पितृव्य श्री सीतारामजी उपाध्याय आशुकवि, मर्मज्ञ साहित्यिक, उच्चकोटि के साहित्यिक ग्रन्थों को विना पुस्तक देखे ही पढ़ाया करते थे। कनिष्ठ पितृव्य श्री अच्युतानन्दजी उपाध्याय स्वयं व्याकरणाचार्य और आचार्य तक के ग्रन्थों का बड़ी

मार्मिकता से अध्यापन करते थे। ऐसे विद्वानों के परिवार में आचार्य-जी का जन्म हुआ था। स्वाभाविक था कि संस्कृत अध्ययन की भूमिका बड़ी सुन्दर बनी थी। आचार्यजी प्राइमरी की स्कूली पढ़ाई समाप्त कर सफल पौरोहित्य की दृष्टि से सत्यनारायण की कथा, दुर्गा सप्तशती, मुहूर्त चिन्तामणि आदि ग्रन्थ घर पर ही पढ़ने लगे। फिर कमलाकर (लोहरा मऊ) संस्कृत पाठशाला में कौमुदी आदि
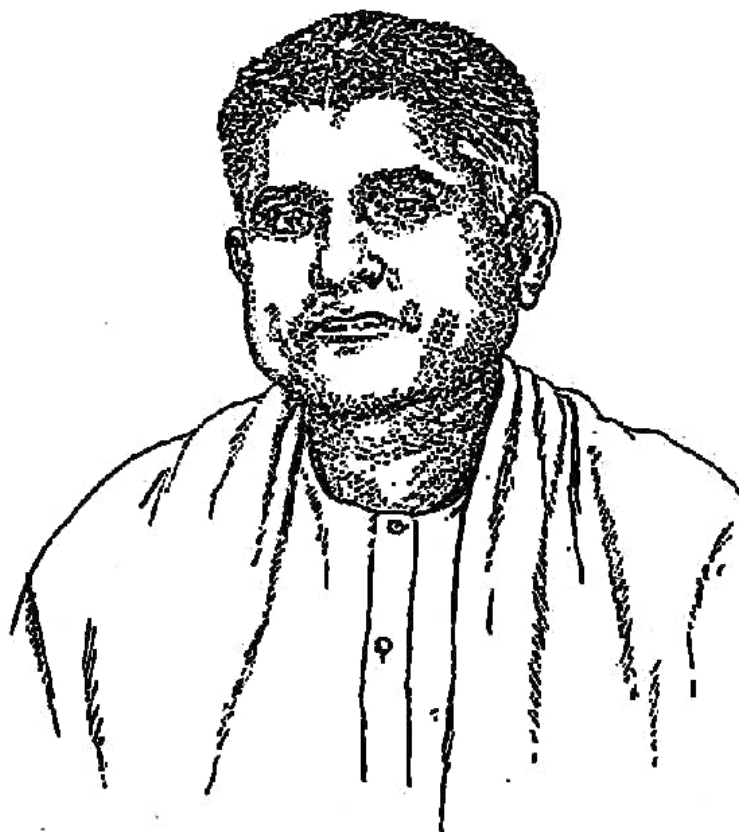
आचार्य रमाकान्तजी शास्त्री

व्याकरण ग्रन्थों का अध्ययन करने लगे। कमलाकर, दियरा, मदन-चन्द, सुलतानपुर आदि संस्कृत पाठशालाओं में पढ़ते हुए व्याकरण-शास्त्री की परीक्षा पास की। सन् १९३३ में कलकत्ता आये और १९४० ई० में श्री विशुद्धानन्द संस्कृत पाठशाला से व्याकरणातीर्थ परीक्षा पास की।

आचार्यजी कुशाग्र बुद्धि एवं मेधावी थे। धाराप्रवाह संस्कृत बोलते थे। २० वर्ष की अल्पायु में श्रीमद्भागवत की कथा बड़े गौरव के साथ की थी। उन दिनों आचार्यजी बड़ी निष्ठा से पौराणिक कर्मकांड

किया करते थे। मलमास में गाँव से २-३ मील दूर निर्जन जंगली घाट पर गोमती में स्नान करना, वहाँ से फिर २ मील पैदल चलकर सूर्योदय से पूर्व ही झारखण्ड महादेव पर जल चढ़ाना और फिर घर आकर सूर्योदय के आसपास पूजा पर बैठ जाना, शिवताण्डव स्तोत्रादि कई सारे स्तोत्रों का पाठ, करते थे। सन् १९३३ ई० में कलकत्ता आने पर उनका परिचय कुछ रामायण गाने वाले, आर्यसमाज से प्रभावित और स्वदेशी आन्दोलन में सहानुभूति रखने वाले, डलहौजी स्क्वायर के आसपास बैंकों में काम करने वाले लोगों से हुआ। इसी समय १९३५ ई० में कलकत्ता आर्यसमाज का स्वर्ण-जयन्ती महोत्सव बड़ी सजधज से कलकत्ता के गिरीश पार्क में मनाया गया। इस महोत्सव में कुँवर सुखलालजी भजनोपदेशक आये थे और उपदेशकों में बनारस के प्रसिद्ध विद्वान् शास्त्रार्थ महारथी पं० विद्यानन्दजी भी एक थे। आचार्य रमाकान्तजी को संगीत से बड़ा प्रेम था और स्वयं भी बहुत अच्छा गाते थे। आर्यसमाजी साथियों ने कुँवर सुखलालजी के गीत सुनने के लिए इन्हें राजी कर लिया था। गीत-आकर्षण इतना था कि प्रथम पंक्ति में ही जाकर बैठे थे। सुखलालजी के गीत से ये मुग्ध हो गये और इसके पश्चात् पं० विद्यानन्दजी का मूर्तिपूजा पर व्याख्यान हुआ। आचार्यजी मूर्तिपूजा का खण्डन सुनना पाप समझते थे, किन्तु भीड़ इतनी अधिक थी कि वहाँ से निकल ही नहीं सकते थे। उधर पं० विद्यानन्दजी का 'विद्यया वपुषा वाण्या वस्त्रेण वैभव' आकृष्ट करने लगा। अस्तु, मूर्तिपूजा पर व्याख्यान सुना तो मूर्तिपूजा की निःसारता जमती गयी। रात को लौटकर उसी समय सत्यार्थ प्रकाश की पुस्तक साथियों से ली और १-२ बजे रात तक उसे पढ़ते रहे। बस, आर्यसमाज के भक्त बन गये, जैसे बोध हो गया। उस समय प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति कलकत्ता आये हुए थे। आचार्यजी का अध्ययन,

सिद्धान्तों पर शंका-समाधान पं० सुखदेवजी और पं० अयोध्या प्रसादजी जैसे प्रसिद्ध विद्वानों से होता रहा और वैदिक सिद्धान्तों की जड़ दृढ़ता पकड़ती गयी। इन्हीं दिनों पं० अयोध्या प्रसादजी का वार्तालाप काशी के प्रसिद्ध विद्वान् महामहोपाध्याय लक्ष्मण शास्त्री से अद्वैतवाद पर हुआ। पं० अयोध्या प्रसादजी ने महामहोपाध्यायजी को सर्वथा असमर्थ कर दिया था। इसी समय एक और शास्त्रार्थ पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति ने प्रसिद्ध पौराणिक विद्वान् श्री माधवाचार्यजी से किया था। आचार्यजी ने बड़ी सुस्पष्टता से अनुभव कर लिया था कि लाख लीपापोती करने पर भी पौराणिक विद्वान् बुरी तरह पराजित हो गये थे। इन सब प्रसंगों ने उन्हें परम भक्त निष्ठावान् आर्यसमाजी पुरोहित बना दिया। अब वे आर्य-समाज के प्रचार में सर्वात्मना जुट गये। प्रति सप्ताह तीन-चार व्याख्यान, एक-दो विवाद-सभाओं का आयोजन करते रहे। उनके शिष्यों की संख्या एक ओर जहाँ अध्यापक-विद्यार्थी-बुद्धिजीवियों में बढ़ती रही, वहाँ दूसरी ओर व्यवसायीवर्ग के लोग भी आपके गुणमुग्ध शिष्य बनते गये।

आचार्यजी संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे ही, बड़े दंगली शास्त्रार्थी भी थे। शास्त्रार्थ के समय उनकी सूझबूझ बड़ी विचित्र होती थी। उनके शास्त्रार्थों के छिटपुट प्रसंग उनके संस्मरणों में मिलते हैं। कुछ उनकी शास्त्रार्थ चातुरी की बानगी उदाहरणरूप प्रस्तुत है—

(१) एक शास्त्रार्थ होने वाला था। शास्त्रार्थ की भाषा संस्कृत निश्चित की गयी थी। आचार्यजी की ओर से बोलने वाले विद्वान् ने बोलना आरम्भ किया : तत्र भवन्तः श्रीमन्तः श्रूयन्ताम्। विरोधी पंडितों ने इसमें कर्तृवाच्य का कर्त्ता और कर्मवाच्य की क्रिया सुनकर व्याकरण दोष का आरोप लगाया। आचार्यजी बोल उठे : नाऽत्र त्रुटिः, तत्र भवन्तः श्रीमन्तः इति सम्बुद्ध पदम्,

श्रूयन्ताम् भविष्यन्तः प्रश्नाः श्रीमद्भिः—समाधान सुन्दर था, शुद्ध था, विरोधियों ने लोहा मान लिया।

(२) कलकत्ता में आर्यसमाज के षष्ठ महासम्मेलन पर श्री चपलाकान्तजी भट्टाचार्य ने अपने निवासस्थान पर एक पंडित-सभा की। इस पंडितसभा में पौराणिक और आर्यसमाजी दोनों प्रकार के मूर्धन्य विद्वान् एकत्र हुए। पौराणिकों में महा-महोपाध्याय कालीपद तर्काचार्य इत्यादि उच्चकोटि के १०-१२ विद्वान् थे। आर्यसमाज की ओर से पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु, पं० बुद्धदेवजी विद्यालंकार, पं० ईश्वरचन्द्रजी दर्शनाचार्य, आचार्य रमाकान्तजी शास्त्री और पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री उपस्थित थे। कई तरह के प्रसंग उठे। परमात्मा की साकारता पर एक पौरा-णिक विद्वान् ने 'सहस्रशीर्षा पुरुषः' मन्त्र उपस्थित किया। आचार्य रमाकान्तजी ने उन पौराणिक पंडितजी को वहीं धर पकड़ा। आचार्य रमाकान्तजी ने कहा कि आपका अर्थ तो आपके आचार्यों के भी विरुद्ध है। महीधराचार्य यहाँ सहस्र को संख्या-वाची नहीं, बहुत्ववाची मानते हैं। इस पर आचार्यजी ने मही-धराचार्यजी के भाष्य की पंक्तियाँ कंठस्थ ही उद्धृत कर दीं। महीधर का यजुर्वेद भाष्य निकाला गया और हू-ब-हू वैसा का वैसा ही पाठ वहाँ निकला। पौराणिक पंडित आर्यसमाजी पंडितों की इस शास्त्रार्थ-प्रस्तुति पर दंग रह गये।

(३) बंगाल में रामपुरहाट एक प्रसिद्ध जगह है। वहाँ वर्णव्यवस्था पर शास्त्रार्थ होना था। आर्यसमाज की ओर से प्रसिद्ध बंगाली विद्वान् पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री और आचार्य रमाकान्तजी शास्त्री गये हुए थे। शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। पौराणिक पण्डित ने जन्मना वर्णव्यवस्था की स्थापना की और कुछ धींगा-धींगी जैसी बात आरम्भ होने को हुई। इस परिस्थिति में आचार्य

रमाकान्तजी मंच पर खड़े हो गये। सिंहगर्जन करते हुए सीधा संस्कृत में ही बोले—'को ब्राह्मणः ? इत्याशंकायाम्, ब्राह्मणोत्पन्नः ब्राह्मणः इति साध्यसमः।' उनका तेजस्वी शरीर, गम्भीर घनगर्जन और शुद्ध-परिष्कृत संस्कृत भाषा सुनकर धींगा-धींगी तो यों ही बन्द हो गयी, पौराणिक पण्डित सटपटा गया। आया था स्मृतियों-पुराणों के प्रमाण देने, फँस गया न्याय के साध्यसिद्ध में। पण्डित दीनबन्धुजी इस शास्त्रार्थ को सुनाते और पौराणिकों के चक्कर खाने पर खूब हँसते थे।

(४) नोआखाली का बर्बर अमानुषिक काण्ड हो चुका था। कितने पूर्वी बंगाल के उच्चवंशस्थ ब्राह्मण विद्वान् बलात् मुसलमान बना लिये गये थे। किसीके मुँह में मुसलमान ने थूक दिया, किसीके मुँह में गोमांस ठूँस दिया, इसी प्रकार अनेकानेक उपायों से लोगों को भ्रष्ट किया गया था। इन सब लोगों को पुनः हिन्दू बना लिया जाय, यह व्यवस्था देने के लिए कलकत्ता के संस्कृत कॉलेज में एक पंडित-सभा हुई। महामहोपाध्याय कालीपद तर्काचार्य उस सभा के अध्यक्ष थे। सभी पण्डितों ने एक स्वर से स्वीकार किया कि इन सब को फिर से हिन्दू बना लिया जाय। इस प्रसंग पर आचार्य रमाकान्तजी ने एक वैधानिक प्रश्न पूछा कि हिन्दू बनाकर इन विद्वान् व्यक्तियों को किस वर्ण में सम्मिलित किया जायगा ? एक अच्छे पौराणिक ने कहा कि आपद्धर्म है, उन्हें हम हिन्दू तो बना लें किन्तु रहेंगे शूद्र ही, ब्राह्मण नहीं हो सकते। इस पर आचार्यजी ने बोलना चाहा और कालीपद तर्काचार्य ने बड़े आदर से आचार्यजी का आर्यसमाजी परिचय देते हुए बोलने की स्वीकृति दी। आचार्य रमाकान्तजी ने खड़े होते ही 'विजयताम् महर्षिर्दयानन्दः' यहीं से शुरू किया और इन तथाकथित भ्रष्ट विद्वानों को ब्राह्मण वर्ण में ही लेने का अनुरोध

किया। सबके सामने महामहोपाध्याय कालीपद तर्काचार्य ने व्यवस्था देते हुए कहा—बहुप्रीतिकरम् भाषणम् भवताम्।[१]

शास्त्रार्थ की एक और बानगी देखने लायक है। एक पौराणिक पंडित ने पूछा—एकमेवाद्वितीयम् ब्रह्म, मानते हैं या नहीं ? आचार्यजी बोले—अवश्य मानते हैं। पंडित ने कहा—फिर अद्वैतवाद को क्यों नहीं मानते ? आचार्यजी का उत्तर था—इस वाक्य से अद्वैतवाद सिद्ध नहीं होता। पंडित चकरा गया, कैसे, उसको कुछ समझ में न आया। जब उसने और भी जिज्ञासा की तो आचार्यजी ने पूछा कि एकमेवाद्वितीयो अध्यापकः देवदत्तः का क्या अर्थ होता है ? पण्डित ने सरल भाव से कह दिया—देवदत्त अद्वितीय अध्यापक है। आचार्यजी ने पूछा—इस वाक्य में विद्यार्थी और पाठशाला का भी निषेध है क्या ? जब उसने स्वीकार कर लिया कि इसमें विद्यार्थी और पाठशाला का निषेध नहीं है तो आचार्यजी ने कहा कि इस उपर्युक्त वाक्य में जीव और प्रकृति का निषेध कैसे हो गया ?

आचार्य रमाकान्तजी आर्यसमाज कलकत्ता और आर्यसमाज बड़ाबाजार के आचार्य थे। इन दोनों आर्यसमाजों की सभी प्रचारात्मक गतिविधियाँ आचार्यजी के निर्देश से हुआ करती थीं। दोनों आर्यसमाजों के सत्संगों में आचार्यजी का उपदेश हुआ करता था। आचार्यजी बड़े सफल मिशनरी थे। जो भी उनके सम्पर्क में आता था, उस पर आर्यसमाज का प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता था। आचार्यजी प्रति सप्ताह नियमित रूप से विवाद सभाओं का आयोजन कराया करते थे। इसके माध्यम से एक ओर तो नवयुवकों और अधिकारियों को बोलने, व्याख्यान देने का अभ्यास होता था और दूसरी ओर सिद्धान्त प्रतिपादन का अवसर मिल जाता था। अपने अध्यक्षीय भाषणों में आचार्यजी सैद्धान्तिक विषयों की अच्छी समालोचना किया करते थे।

१. द्रष्टव्य—शास्त्रार्थों के विवरण के लिए देखिए—त्रयोदश अध्याय

आर्यसमाज बड़ाबाजार ने अपने वार्षिकोत्सव पर १९६९ ई० आचार्य रमाकान्तजी का सार्वजनिक अभिनन्दन किया था और अभिनन्दन-पत्र भेंट किया था।

आचार्यजी उपदेशक थे, आचार्य थे, शास्त्रार्थी थे और कवि भी थे। उन्होंने 'दयानन्द चरितम्' नाम का २० सर्गों का एक महाकाव्य लिखा है, जिसके कुछ सर्ग कभी आर्य-संसार में छप चुके हैं, शेष ग्रन्थ अप्रकाशित पड़ा है। इस महाकाव्य में जहाँ स्वामी दयानन्द जी का जीवन है वहीं वैदिक सिद्धान्तों का बड़ा सरल वर्णन है। आचार्यजी का यशस्वी जीवन बड़ी जल्दी शेष हो गया। वे ८ जुलाई सन् १९७० ई० को अपने गौरवमय चरित्र का अवसान करके दिवंगत हो गये। उनके भक्तों और शिष्यों की मण्डली आज भी उनके अभाव को याद करती है।

पं० सदाशिवजी शर्मा

पं० सदाशिवजी शर्मा मूल रूप से आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महोपदेशक थे। पण्डितजी ने वेदधर्म-प्रचार और समाज की सेवा को ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया था। वे आजीवन अविवाहित रहे और आर्यसमाज को ही अपना घरबार समझ कर इसकी सेवा में तत्पर रहे।

पं० सदाशिवजी का जन्म महाराष्ट्र में सन् १८९० ई० में शिवरात्रि के दिन हुआ था। कहते हैं माता-पिता ने शिवरात्रि के प्यार में ही उनका नाम सदाशिव रख दिया था। सचमुच पं० सदाशिवजी सदा ही लोक-कल्याण के कार्य में लगे रहे। आजीविका के रूप में वे आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महोपदेशक बने, किन्तु कार्यक्षेत्र में वे सारे भारतवर्ष में सेवा करते रहे। स्वतन्त्रता से पूर्व एक बार जब सिन्ध प्रदेश में भयंकर प्रलयंकारी जलप्लावन आया था तो पंजाब प्रतिनिधि सभा ने पं० सदाशिवजी को सेवाकार्य करने के लिए कुछ स्वयंसेवकों

के साथ सिन्ध भेज दिया था। वे निरलस भाव से वहाँ सेवा करते रहे।

सन् १९३५ ई० में क्वेटा के भूचाल की विपत्ति आने पर आर्य प्रतिनिधि सभा ने जो सहायता-कार्य क्वेटा में किया था, पं० सदाशिवजी शर्मा सर्वात्मना उसमें जुट गये थे। हैदराबाद के सत्याग्रह

पं० सदाशिवजी शर्मा

के समय स्वामी स्वतन्त्रतानन्दजी महाराज के आदेश पर वे स्वामी स्वतन्त्रतानन्दजी के पास उनके व्यक्तिगत सहायक के रूप में स्वामीजी का सत्याग्रह सम्बन्धी हिसाब-किताब सम्हालने लगे थे। पं० सदाशिवजी तो सत्याग्रह में जाना चाहते थे, किन्तु स्वामी स्वतन्त्रतानन्दजी उनकी ईमानदारी और योग्यता से इतने प्रभावित थे कि उन्हें इसी कार्य के लिए रख लिया था।

सन् १९४० ई० में बंगाल में दुर्भिक्ष पड़ा और अगणित लोग मृत्यु के शिकार बनने लगे। सारा भारतवर्ष बंगाल की पीड़ा से कराह उठा था। पंजाब प्रतिनिधि सभा ने सहायता-सामग्री भेजी और उसीके साथ सहायता-कार्यों के परम अनुभवी पं० सदाशिवजी को भी बंगाल में सहायता-कार्य की व्यवस्था के लिए भेज दिया। पं० सदाशिवजी सन् १९४० ई० के अकाल के समय जो बंगाल में आये तो फिर यहीं रह गये और आर्य प्रतिनिधिसभा पंजाब से मुक्त होकर स्थायी रूप से बंगाल में ही रहने लगे। जबतक कलकत्ता को केन्द्र बनाकर सेवाकार्य होता रहा, तबतक पं० सदाशिवजी कलकत्ता में रहे। जब यहाँ सेवाकार्य समाप्त हो गया तो पं० सदाशिवजी पूर्वी बंगाल में चले गये और वहाँ कई जिलों में आर्यसमाज का प्रचार और बाढ़-दुर्भिक्ष पीड़ितों की सेवा में तत्पर रहने लगे। इसी मध्य नोआखाली का हिन्दू-मुस्लिम दंगा आरम्भ हो गया। वैसे तो महात्मा गाँधीजी नोआखाली गये थे, किन्तु उनसे भी पूर्व उस भीषण नरसंहार के काल में पं० सदाशिवजी नोआखाली में आर्यसमाज रिलीफ सोसाइटी खोल कर कार्य कर रहे थे। देश का विभाजन हो जाने पर पं० सदाशिवजी को त्रिपुरा में बिलोनिया केन्द्र का अध्यक्ष बनाकर भेज दिया गया। पं० सदाशिवजी बिलोनिया को केन्द्र बनाकर सहायता कार्य करने लगे। वे आर्यसमाज के प्रचारक के रूपमें त्रिपुरा के आदिवासियों और वन्य प्रदेश निवासियों को वेदधर्म की शिक्षा देते रहे। बहुत दिनों तक पं० सदाशिवजी बिलोनिया केन्द्र के अध्यक्ष बनकर रहे।

बिलोनिया रहते-रहते पण्डितजी का स्वास्थ्य निर्बल हो गया और वे कलकत्ता आकर आर्यसमाज मन्दिर, १९, कार्नवालिस स्ट्रीट में स्थायी रूप से रहने लगे। जीवन के अन्तिम दिनों में कई वर्षों तक पं० सदाशिवजी आर्यसमाज कलकत्ता को ही केन्द्र बनाकर कार्य करते रहे।

पं० सदाशिवजी गौर वर्ण, श्वेत खादी वस्त्रधारी थे। बड़ी प्राञ्जल संस्कृत बोलते थे। उनका उच्चारण अति शुद्ध था। संस्कृत बोलने में उनको जैसे आनन्द आता था। ऋषिग्रन्थों का पाठ, उनकी कथा, वेद-यज्ञ इत्यादि कार्यों में उनकी बहुत रुचि थी। वे जितने दिन कलकत्ता समाज में रहे, पण्डित की हैसियत से तो थे ही, साथ ही वे समाज में स्वतःनियुक्त व्यवस्थापक भी थे। आर्यसमाज कलकत्ता के मन्दिर की गैलरी में चित्रों के शीर्षक, ऋषि के उपदेश वचन इत्यादि जो कुछ यहाँ पत्थरों पर उत्कीर्ण हैं उन सबकी तैयारी पं० सदाशिवजी की एकान्त निष्ठा, ऋषिभक्ति और वेदप्रचार का प्रमाण है। पण्डित सदाशिवजी समाजमन्दिर में तो रहते ही थे, प्रस्तर खण्डों पर उत्कीर्ण मन्त्रों, वाक्यों आदि का प्रूफ भी वही देखते थे। इन सब कामों में वे सुदक्ष भी थे।

पण्डित सदाशिवजी स्वाध्यायी तो थे ही, उन्हें ग्रन्थ भी अच्छी तरह उपस्थित थे। कोई प्रसंग चल जाने पर प्रमाण देना, पुस्तक से प्रमाण निकाल कर दिखा देना, यह सदाशिवजी के स्वभाव में था।

कलकत्ता रहते हुए भी पण्डित सदाशिवजी स्वामी ब्रह्मानन्दजी के प्रचारकार्य में सहायता देने के लिए कभी-कभी उड़ीसा भी चले जाते थे। पण्डित सदाशिवजी हृदय रोग के रोगी थे। ८१ वर्ष की आयु हो गयी थी, शरीर दुर्बल हो गया था, फिर भी वे उड़ीसा में भुवनेश्वर में वेदकथा करने के लिये जाने को तैयार हो गये। १० दिन की वेदकथा तो पूरी कर ली और ग्यारहवें दिन २७ अगस्त १९७१ ई० को प्रातःकाल भुवनेश्वर में ही हृदय का दौरा पड़ा और इस वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध विद्वान् ने 'ओ३म्-ओ३म्' करते अपना जीवन समाप्त कर दिया। उस समय उड़ीसा के तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री विश्वनाथ दास, भूतपूर्व उप-मुख्यमन्त्री श्री पवित्रमोहन प्रधान और मन्त्री श्री अईंदुसाहु आदि पण्डितजी के जीवन और विद्या से बहुत अधिक

प्रभावित थे। पण्डित सदाशिवजी जगन्नाथपुरी भी गये थे और वहाँ उन्होंने पुरी के पण्डितों को भी अपनी विद्वत्ता से प्रभावित किया था।

पं० सदाशिवजी की इच्छा थी कि वे वेदपाठ करते हुए मरें। जब उनका स्वास्थ्य ठीक था तो आर्यसमाज कलकत्ता के वेदपारायण यज्ञों में समाज के अधिकारी उन्हें यज्ञ का ब्रह्मा बनाया करते थे। जब स्वास्थ्य गिर गया, वृद्धावस्था ने शरीर को शिथिल कर दिया तब हमलोग उनसे प्रार्थना करते कि आप इतना श्रमसाध्य कार्य न करें, किन्तु उनका आग्रह था कि मैं तो वेदपाठ अवश्य करूँगा। एक दिन कहने लगे—मेरी तो इच्छा ही यही है कि वेदपाठ करते-करते मरूँ, प्रभु ने उनकी इच्छा पूर्ण की। पण्डितजी दस दिन की वेदकथा करके ग्यारहवें दिन प्रातःकाल वहीं दिवंगत हो गये।

पं० रामरीझनजी शर्मा

आर्यसमाज कलकत्ता विद्वानों का केन्द्र रहा है, किन्तु इस समाज में स्थायी रूप से भजनोपदेशक कम ही रहे हैं। पं० रामरीझनजी शर्मा आर्यसमाज कलकत्ता के यावज्जीवन भजनोपदेशक रहे।

पण्डित रामरीझन शर्मा की जन्मभूमि बिहार प्रान्त में थी। काफी दिनों तक वे बिहार में भजनोपदेशक की हैसियत से प्रचार करते रहे। राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री (स्वामी ध्रुवानन्द), स्वामी अभेदानन्दजी इत्यादि पुराने कर्मठ विद्वान् उपदेशकों के साथ अपनी प्रचार की यात्राएँ बड़े प्रेम से सुनाया करते थे। शर्माजी कलकत्ता आकर रहते तो थे आर्य प्रतिनिधि सभा में, किन्तु आर्यसमाज कलकत्ता के साप्ताहिक सत्संगों में उनके भजन अनिवार्य रूप से होते रहते थे। आसपास के सभी समाजों में, कलकत्ता के मिल अंचलों में, शर्माजी प्रचारकार्य में निरलस भाव से जाया करते थे।

शर्माजी स्वभाव से सरल और व्यवहार में बड़े मधुर थे। खान-पान, वेष-भूषा में सदा आर्योचित सादगी और सरलता रहती थी।

शर्माजी पक्के संगीत के सुयोग्य जानकार थे। उन्हें गायन और वादन दोनों की अच्छी शास्त्रीय जानकारी थी। कई बार हम लोगों के साथ बैठते थे तो वे ताल-मात्राओं का प्रदर्शन हाथ के ताल से ही करते थे। हारमोनियम, ढोलक और तबला तीनों को बड़ी सफलता से बजाते थे। शर्माजी को हमलोग पार्कों की सभाओं में चार-छः मिनट केवल

पं० रामरिझन शर्मा

धुन बजाने के लिए ही बैठा देते थे और बड़ी तन्मयता से वे इस कार्य को करते थे। महावामदेव्य गान को शर्माजी ने झपताल में स्वरबद्ध किया था और कई बार गोष्ठियों में वाद्य के सहारे उन्होंने हमलोगों को सुनाया भी था। शर्माजी कई मन्त्रों को तबले-हारमोनियम की संगति से गाया करते थे।

शर्माजी निष्ठावान् प्रचारक थे किन्तु सिद्धान्तों के बड़े कट्टर थे।

कभी किसी समाज के अधिकारी ने अपने घर पर यज्ञ कराने के लिए बुलाया था। शर्माजी ने उनके यहाँ पौराणिक कर्मकाण्ड होते देखा। उस दिन तो यज्ञ करा दिया, किन्तु बड़ी कठोरता से उन सज्जन को यह कहकर आये कि पहले आप आर्यसामाजिक निष्ठा में दृढ़ हो जाइये फिर मुझे बुलाइयेगा। वह हजार हीलाहवाला करता रहा, किन्तु शर्माजी की कठोरता में अन्तर न आया।

आर्यसमाज कलकत्ता ने शर्माजी की सेवाओं के प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करते हुए उनका सार्वजनिक अभिनन्दन किया था। इस अभिनन्दन समारोह में अपने वयोवृद्ध भजनोपदेशक का अभिनन्दन करने के लिए कलकत्ता के सभी आर्यसमाज सम्मिलित हो गये थे। श्री शर्माजी कलकत्ता के सर्वप्रिय भजनोपदेशक एवं प्रचारक थे।

अवस्था अधिक हो जाने के कारण जब कलकत्ता जैसे स्थान में बिना परिवार के रहने में कठिनाई होने लगी, खाना-पीना, नहाना-धोना परदेशी का परदेशियों की तरह ही होता है, उस समय शर्माजी को कलकत्ता का परदेशी-प्रवास असुविधाजनक हो गया। उन्होंने अपनी जन्मभूमि अपने परिवार में जाने की इच्छा प्रकट की। आर्य-समाज कलकत्ता, कलकत्ता के अन्य आर्यसमाज और आर्यसमाजियों ने शर्माजी की आर्थिक सहायता उनके जीवन भर बड़ी श्रद्धाभक्ति से की। शर्माजी ने एक आदर्श प्रचारक की तरह अपना जीवन बिताया था।

ठाकुर अमर सिंहजी आर्यपथिक

ठाकुर अमर सिंहजी आर्यपथिक सन् १९५८ ई० से सन् १९६१ ई० तक कलकत्ता में रहे। आर्यसमाज कलकत्ता अपने प्रचार-प्रसार एवं आंचलिक सभाओं में प्रचार की दृष्टि से प्रायः बाहर से ख्यातिप्राप्त विद्वानों को बुलाया करता है। यह काम बहुत दिनों से चला आ रहा है। इसी क्रम में लोकनाथ तर्कवाचस्पति, श्री मुनीश्वर देवजी, शास्त्रार्थ

महारथी ओमप्रकाश शास्त्री, पं० वाचस्पति शास्त्री, पं० हरिदत्त शास्त्री, पं० मदनमोहन विद्यासागर इत्यादि विद्वानों को बुलाया गया था। ये विद्वान् अपनी सुविधा और समाज की योजना के अनुसार २-३ मास और कभी ३-४ मास भी प्रचार के कार्य को अग्रसर करने के लिए

श्री अमर स्वामीजी

आर्यसमाज कलकत्ता में रह जाते थे। इसी प्रकार के पुरोगम में कुछ अधिक स्थायित्व के साथ ठाकुर अमर सिंहजी आर्यपथिक को सन् सन् १९५८ ई० में कलकत्ता बुलाया गया। ये सन् १९६१ ई० तक यहाँ रहे। काल की दृष्टि से चाहे यह अवधि बहुत लम्बी अवधि न हो, किन्तु कार्य की दृष्टि से इतना महत्त्वपूर्ण अवश्य है कि आर्यसमाज कलकत्ता के इतिहास में इसका अपना स्थान है।

ठाकुर अमर सिंहजी का जन्म अरनिया, बुलन्दशहर (उ० प्र०) में चैत्र शुक्ला १ संवत् १९५१ विक्रमी को हुआ था। इनके पिताजी का नाम ठाकुर टीकम सिंहजी चौहान था। कुछ दिन संस्कृत पाठशाला खुर्जा, बुलन्दशहर में संस्कृत की शिक्षा प्राप्त करके आर्य मुसाफिर विद्यालय आगरा में अध्ययनार्थ आ गये। सन् १९१४ ई० से सन् १९१८ ई० तक संस्कृत, फारसी, अरबी आदि की शिक्षा प्राप्त कर सन् १९१८ ई० में आर्य मुसाफिर विद्यालय, आगरा के स्नातक बने। यहीं से आपने 'आर्यपथिक' उपनाम धारण किया। उपदेशक बनने के साथ ही ठाकुरजी ने धौलपुर, राजस्थान में आर्यसमाज के लिए सत्याग्रह किया। धौलपुर के वज़ीर आला अज़ीज़ुद्दीन ने धौलपुर का आर्यसमाज-मन्दिर गिरवा दिया था। जिस जत्थे में ठाकुरजी गये थे, उसमें पण्डित विहारीलालजी शास्त्री, श्री महेशप्रसादजी अरबीफाज़िल, श्री केदारनाथजी पाण्डेय (जो पीछे राहुल सांकृत्यायन के नाम से विख्यात हुए), पण्डित रामचन्द्रजी देहलवी आदि विद्वान् सम्मिलित थे।

सन् १९१८ ई० में ही महात्मा हंसराजजी ने इन्हें लाहौर बुलाकर उपदेशक नियुक्त किया। ठाकुर अमर सिंहजी तबसे आर्यसमाज के प्रचार में लगे हुए हैं। पंजाब से बंगाल तक सारा भारतवर्ष इनका प्रचार-क्षेत्र रहा है। ठाकुर अमर सिंहजी सफल उपदेशक, समझदार संगठनकर्त्ता और अति व्युत्पन्न शास्त्रार्थी हैं। शास्त्रार्थ-पटुता के कारण ही आप शास्त्रार्थ महारथी कहलाते हैं। ठाकुर अमर सिंहजी ने पं० कालूराम, कविरत्न अखिलानन्दजी, पं० माधवाचार्यजी, जगन्नाथपुरी के शंकराचार्य स्वामी निरंजनदेवजी तीर्थ आदि पौराणिक विद्वानों से शास्त्रार्थ किया और विजय प्राप्त की। जैनियों से भी आपके शास्त्रार्थ हुए। ईसाइयों से, मुसलमानों से, अहमदियों से आपने सैकड़ों शास्त्रार्थ किये हैं। पादरी अब्दुलहक़ मन्तकी, पादरी एच० एस० पाल, मौलाना सनाउल्ला, मौलाना फ़ज़ल मुहम्मद शर्मा, मौलाना हाफ़िज़ रौशनअली, अब्दुल हक़ विद्यार्थी आदि विरोधियों से

शास्त्रार्थ किया और वैदिक धर्म की विजय-वैजयन्ती लहराते रहे। शास्त्रार्थकर्त्ता होने के साथ ही श्री अमर सिंहजी इतिहास और प्रमाणों के भी बड़े अन्वेषणकर्त्ता हैं। आर्य सिद्धान्तसागर नामक ग्रन्थ में आपने वैदिक सिद्धान्तों के समर्थन में ३,००० प्रमाण संकलित किये हैं। इनकी लिखी पुस्तकें कुछ इस प्रकार हैं :—

(१) आर्य सिद्धान्त सागर,
(२) जीवित पितर,
(३) हनुमान आदि वानर, बन्दर थे या मनुष्य,
(४) कौन कहता है कि द्रौपदी के पाँच पति थे,
(५) रामायण दर्पण,
(६) क्या रावण-वध विजयदशमी को हुआ था,
(७) गीता में ईश्वर का स्वरूप,
(८) गीता और महर्षि दयानन्द,
(९) गीता और वेद,
(१०) गीता और अवतारवाद,
(११) शिवाजी का पत्र महाराजा जयसिंह के नाम,
(१२) क़त्ल इन्सान पर वेद और क़ुरान,
(१३) मूर्तिपूजा और शंकराचार्य,
(१४) भारतीयकरण (शुद्धि),
(१५) यज्ञ में पशुवध अधर्म है,
(१६) निर्णय के तट पर (अनेको शास्त्रार्थों का संग्रह)

श्री ठाकुरजी ने और भी बहुत-सा साहित्य निर्माण किया, जो अप्रकाशित है।

कलकत्ता प्रवास-काल में ठाकुर अमर सिंहजी की मिशनरी बुद्धि ने एक ऐसे परमार्थी कार्य का आरम्भ कर दिया, जिसके नाम के साथ ठाकुरजी का नाम सदा जुड़ा रहेगा। सन् १९५६ ई० में ठाकुर अमर

सिंहजी ने कलकत्ता आर्यसमाज में महर्षि दयानन्द धर्मार्थ औषधालय स्थापित किया। स्वयं ही दवाइयाँ बनाते, रोगियों को देखते और औषधालय के रूप में जनसेवा का कार्य करते रहते। उस समय आर्य-समाज कलकत्ता के कार्यालयाध्यक्ष श्री दिनेशचन्द्रजी वैद्य स्वयं बड़े कुशल वैद्य थे और इस प्रकार दोनों वैद्यों की सहायता एवं सहयोग से महर्षि दयानन्द धर्मार्थ औषधालय का कार्य सुचारु रूप से चल निकला। यह औषधालय आज भी कलकत्ता के जनसेवा विभाग का एक महत्त्वपूर्ण अंग है और इस औषधालय से अच्छी बड़ी संख्या में रोगियों को लाभ मिल रहा है। ठाकुर अमर सिंहजी ने चैत्र शुक्ला प्रतिपदा संवत् २०२४ विक्रमी को संन्यास की दीक्षा ले ली और अब श्री अमर स्वामी सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हैं। ६० वर्ष से अधिक की आयु हो गयी है और शरीर अति जीर्ण हो गया है, किन्तु मस्तिष्क आज भी बड़ा बलवान है। उपदेश, लेख आज भी देते रहते हैं। इस वृद्धावस्था में भी 'अमर वेद ज्योति' नामक मासिक पत्र के सम्पादक हैं। आजकल वेद-मन्दिर, विवेकानन्द नगर, गाज़ियाबाद में रहते हैं।

पं० शिवनन्दन प्रसादजी वैदिक

पण्डित शिवनन्दन प्रसादजी वैदिक, व्याकरण-तीर्थ, आयुर्वेदरत्न का आर्यसमाज कलकत्ता के साथ पिछले ५४-५५ वर्षों का निरन्तर अटूट सम्बन्ध रहा है। पण्डित शिवनन्दनजी १ जून सन् १९३५ ई० को आर्यसमाज कलकत्ता में पधारे और आजतक वह सम्बन्ध उसी रूप में अक्षुण्ण बना रहा है।

पण्डित शिवनन्दनजी के पूर्वज राजस्थान में रहते थे और वहाँ आढ्य सुसम्पन्न सरदार सामन्त थे। किसी कारणवश राजस्थान से चलकर इनके पूर्वज आरा में बस गये। पण्डित शिवनन्दन प्रसादजी सन् १९२४ ई० में दयानन्द उपदेशक विद्यालय लाहौर में अध्ययन करने के लिए गये। यहाँ व्याकरण, निघण्टु और अन्य आर्ष ग्रन्थों के साथ

कुरान की भी शिक्षा प्राप्त की। वेदपाठ करने का अभ्यास भी वहीं आरम्भ हुआ। उन दिनों स्वामी स्वतन्त्रतानन्द, स्वामी वेदानन्द, स्वामी अच्युतानन्द और स्वामी सत्यानन्द आदि उच्चकोटि के संन्यासियों का सहयोग इस उपदेशक विद्यालय को प्राप्त था। दो वर्षों तक इन विद्वानों की छत्रछाया में रहकर पण्डितजी ने सिद्धान्तभूषण की उपाधि प्राप्त

पं० शिवनन्दन प्रसादजी वैदिक

की। उसके पश्चात् अपनी जन्मभूमि में आ गये। आरा नगर में आर्यसमाज का प्रचार करने लगे। सन् १९३३ ई० में गुरुकुल वैद्यनाथ धाम आये और फिर वहाँ से कलकत्ता आ गये। कलकत्ता में आपका प्रधान कार्य आर्यसमाज का प्रचार करना और आर्य विद्यालय कलकत्ता में अध्यापन करना था।

सन् १९३६ ई० में जब आर्य विद्यालय कलकत्ता की स्थापना हुई तो स्थापना के दिन १६ जनवरी सन् १९३६ ई० से पं० शिवनन्दन प्रसादजी आर्य विद्यालय के संस्कृत अध्यापक और धर्मशिक्षक के रूप में कार्य करने लगे। आर्य विद्यालय में सन् १९५७ ई० तक, एक लम्बी अवधि तक आपने बड़ी सफलता और यश के साथ अध्यापन कार्य किया।

पण्डित शिवनन्दन प्रसादजी के जीवन का मूल्यांकन संस्कृत के अध्यापक के रूप में करना अति अल्प है। वास्तव में इनके जीवन का सही मूल्यांकन तो इनका मिशनरी स्वरूप है। पण्डित शिवनन्दन प्रसादजी सुदीर्घ काल तक आर्यसमाज कलकत्ता के साप्ताहिक सत्संग में सत्यार्थ प्रकाश की कथा करते रहे हैं। सत्यार्थ प्रकाश की कथा में रोचकता, शास्त्रीय प्रमाण और सबसे अधिक बढ़कर स्वामी दयानन्दजी के एक-एक अक्षर को समझाना और प्रमाणित करना इनका मुख्य कार्य था।

कलकत्ता में आज वेदपरायण यज्ञ अपने ढंग से बहुत सुन्दर हो रहे हैं। इस गौरवमय परम्परा के पीछे पण्डित शिवनन्दन प्रसादजी की अतुलनीय तपस्या बहुत बड़ा कारण है। यहाँ प्रत्येक आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर वेदपारायण यज्ञों की परम्परा को स्थापित करना, उसको सम्पुष्ट करना, उसका प्रचार करना, यह पण्डितजी के जीवन का प्रधान कार्यक्षेत्र है। पण्डितजी परम तपस्वी और कर्मकाण्डी हैं। बंगाल के कई स्थानों में पण्डितजी यज्ञ कराने जाया करते रहे हैं। बंगाल, बिहार और उड़ीसा में आपका वैदिक-याज्ञिक—निष्ठावान् पण्डितों में बड़ा यश है। इस समय आप गुरुकुल काउर चण्डी के आचार्य हैं। लोकैषणा, वित्तैपणा से पृथक् आजीवन अविवाहित अतः पुत्रैषणा से भी रहित पंडितजी का स्वरूप एक संन्यासी जैसा है।

आचार्य पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण

आर्यसमाज में वर्त्तमान समय में बंगाल में पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण का अपना विशिष्ट स्थान है। लम्बे कान्तिमान वपुधर मुण्डित केश, गले में श्वेत चादर, भगवा कुर्ता, धोती, साफसुथरा सुरुचि सम्पन्न परिवेष, देखने वाला पं० प्रियदर्शनजी को गृहस्थ में ही एक

आचार्य पण्डित प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण

संन्यासी का अनुमान करने लगता है। आर्यसमाज, आर्यसमाज के कार्य, स्वामी दयानन्द और उनका मिशन, वेद और वैदिक साहित्य का प्रचार, इन सबके अतिरिक्त पं० प्रियदर्शनजी को न कोई दूसरा कार्य है, न कोई दूसरा रूप। बंगाल प्रान्त में मौन, निस्पृह एवं निरलस भाव से आर्य-समाज के कार्य में निरत पं० प्रियदर्शनजी का अपना एक पृथक् स्थान है। ऐसे विद्वान् कार्यकर्त्ताओं से संगठन के अधिकारी असहयोगी रहें

तो कुछ दूर तक यह स्वाभाविक भी है और युगधर्म के अनुकूल भी है। पं० प्रियदर्शनजी को आर्यसमाज कलकत्ता और आर्यसमाजी जनता का सहयोग, स्नेह और श्रद्धा प्राप्त है। आज ७५ वर्ष की आयु में वे स्वयं अपने में एक संस्था, एक संगठन के समान क्रियाशील हैं।

पं० प्रियदर्शनजी का जन्म सन् १९१० ई० में बंगाल प्रान्त की पश्चिमी सीमा पर वर्द्धवान जिले में कुलटी नामक स्थान में हुआ था। शैशव प्रथम विश्वयुद्ध का काल था। पंडितजी उस काल को धूमकेतु का आविर्भाव काल कहते हैं। लड़कपन में अखाड़ा लड़ने का बड़ा शौक था। पिताजी शैशव काल में ही इन्हें ममतामयी माँ की गोद में छोड़ कर चल बसे, किन्तु माताजी ९९ वर्ष की दीर्घायु पाकर इनको अपनी शीतल छाया देती रहीं।

परिवार पौराणिक किन्तु उदार था। पंडितजी बताते हैं—घर में वेद तो कहीं रहते न थे, पर पुराण थे। परिवार वैष्णव था—विष्णु का भक्त, किन्तु परिवार में माला-कण्ठी का प्रचलन न था। माताजी पूजापाठ, व्रत, एकादशी, पूर्णिमा, अष्टमी, रविवार, मंगलवार सब व्रत करती थीं। ऐसे धार्मिक जीवनयापन की प्रेरणा माताजी से ही मिली है।

क्रान्ति की ओर उन्मुख शैशव :

अपने अन्य भाइयों के साथ कुलटी अंग्रेजी उच्च विद्यालय में पं० प्रियदर्शनजी ने अपने बाल्यकाल का अध्ययन आरम्भ किया। देशोद्धार और क्रान्ति की भावना शैशव से ही प्रबल थी। पंडितजी उस समय स्वामी विवेकानन्द के साहित्य से अधिक प्रभावित थे। जितना-जितना विवेकानन्दजी का साहित्य पढ़ते उतना-उतना ही स्वदेश और स्वजाति के प्रति श्रद्धा के भाव बढ़ते जाते। होनहार विद्यार्थी तो थे ही, उन दिनों स्काउट का बड़ा ज़ोर था। पं० प्रियदर्शनजी अपने दल के नेता थे। उन दिनों राष्ट्रीय गीत के नाम पर 'गॉड सेव

दि किंग' (God save the king) का प्रसिद्ध गीत गवाया जाता था। पं० प्रियदर्शनजी अपने जीवन के संस्मरणों में लिखते हैं कि—

> "एक दिन प्रधानाध्यापक ने यही राष्ट्रगीत गाने का आदेश दिया और मेरा मन विद्रोही हो उठा। मैंने प्रधानाध्यापकजी से सीधा कह दिया कि यह गाना मैं अपने दल के किसी स्काउट को नहीं गाने दूँगा। यह गीत हमारे सम्मान के विपरीत है। प्रधान शिक्षकजी ने कुछ रोषभरी बातें सुनायीं, मेरा मन और भी विद्रोही हो उठा। उसी दिन घर आकर हाफ पैण्ट, हैट, स्कार्फ और जो कुछ बिल्ला आदि मुझे मिले थे, सब फेंकफांक कर सदा के लिए स्काउट को छोड़ दिया। तभी से खद्दर पहनने का व्रत लिया। तबसे आजतक खद्दर पहनता आ रहा हूँ।"

विद्यार्थी जीवन का यह क्रान्तिकारी झुकाव पीछे जेल जाने का भी कारण बना, किन्तु देश और जाति के प्रति यह सेवा का ही भाव था जो पं० प्रियदर्शनजी को आर्यसमाज के सम्पर्क में ला सका और पं० प्रियदर्शनजी आर्यसमाज के लिये समर्पित जीवन बन गये।

आर्यसमाज के सम्पर्क में :

पं० प्रियदर्शनजी का राजनीति के क्षेत्र में परिचय और आकर्षण बढ़ रहा था। सन् १९२१ ई० में स्वामी विश्वानन्दजी कुलटी में मज़दूरों का संगठन करने आये थे। देशबन्धु चित्तरंजनदास, महात्मा गांधी आदि उस अंचल में आये और उन लोगों के व्याख्यानों का प्रभाव भी होना ही था। उधर परिवार वालों की इच्छा थी कि किशोर प्रियदर्शन राजनीति में जाने न पाये किन्तु इस प्रतिबन्ध से पं० प्रियदर्शनजी के मन में देश-जाति के प्रति श्रद्धा की भावना कम होने की जगह बढ़ती ही चली गयी।

पं० प्रियदर्शनजी ने अपने जीवन के संस्मरण में स्वयं लिखा है कि उनके इस वैचारिक संक्रमण काल में आसनसोल में आर्यसमाज की स्थापना हुई। वे दिन हिन्दू-मुसलमानों के जातीय संघर्ष के दिन थे। आसनसोल में हिन्दू-मुसलमानों का दंगा भी हुआ। हिन्दुओं में जागृति भी आयी। आर्यसमाज आसनसोल ने उस समय खूब काम किया। आर्यसमाज के उन पुराने सेवकों में आज वयोवृद्ध वानप्रस्थी श्री चन्द्रशेखरजी आर्य ने कार्य भी खूब किया और आर्यसमाज आसनसोल को खूब सुदृढ़ बनाया। प्रयाग के प्रसिद्ध यशस्वी साहित्यकार पं० गंगा प्रसादजी उपाध्याय ने उस समय बहुत सारी पुस्तिकायें ट्रैक्टों के रूप में लिखी थीं। ये पुस्तकें २ पैसे, ४ पैसे में बिककर प्रचार का बड़ा सुन्दर माध्यम बनी हुई थीं। सरल भाषा, चुभते विचार, तर्कसंगत लेखन-शैली। जो इन पुस्तकों को पढ़ता था वह आर्यसमाज की ओर अवश्य ही आकृष्ट हो जाता था। पं० प्रियदर्शनजी के बड़े भाई श्री सुदर्शनजी ये पुस्तकें ख़रीद कर लाते थे और उन्हें पढ़ते थे। उन पुस्तकों ने पं० प्रियदर्शनजी को अपनी ओर खींचा। उस समय तक ये स्वदेशी और राजनीतिक क्रान्ति के अधिक निकट आ गये थे। इसी समय भारत सेवा आश्रम के संन्यासियों और हिन्दू मिशन से प्रियदर्शनजी का सम्पर्क हुआ। इसी समय आगरा से अनाथालय के लिए धन संग्रह के निमित्त लोग आये और कुलटी में आर्यसमाज का प्रचार आरम्भ हो गया। एक दिन बाजार के टीना वाले छत के नीचे आर्यसमाज की सभा हो रही थी, पास ही मुसलमानों की मस्जिद थी। मस्जिद से टीन वाली छत पर मुसलमानों ने खूब ईंटें बरसायीं। हिन्दुओं में उत्तेजना आना स्वाभाविक था। उन्हीं दिनों एक पुराने भजनीक श्री शिवपूजनजी रंगून जाते हुए कुलटी में २-३ दिन प्रचार के लिए रुक गये। इधर कुलटी में आर्यसमाज का प्रचार बढ़ रहा था। प्रियदर्शनजी का आर्यसमाजके प्रति आकर्षण बढ़ रहा था, किन्तु घर

वाले आर्यसमाज से चिढ़ते थे और इन्हें आर्यसमाज की सभाओं में जाने न देते थे। पं० प्रियदर्शनजी चुपके-चुपके घर वालों की निगाह बचाकर आर्यसमाज के प्रचार-कार्य में सम्मिलित होने लगे।

इसी बीच कुलटी में प्रचारार्थ पं० देशवन्धुजी तथा पं० शान्ति-स्वरूपजी मारीशस वाले आये। पं० दीनबन्धुजी तेजस्वी-ओजस्वी वक्ता, विद्वान् तथा राजनीति इत्यादि के प्रति पूर्ण सजग युवक थे। पं० शान्तिस्वरूपजी उन दिनों टीटागढ़, बैरकपुर आदि में रहकर प्रचार करते थे। प्रचारार्थ दोनों जन कुलटी आये तो प्रियदर्शनजी भी उनके सम्पर्क में आये और उन्हें सहयोग देने लगे। इसी समय प्रियदर्शनजी पं० शंकरनाथजी के साथ प्रथम परिचय में आये। पं० शंकरनाथजी बंगाल में आर्यसमाज के आधारभूत स्तम्भ थे। वे सुयोग्य विद्वान्, अच्छे लेखक, लगनशील कार्यकर्त्ता, समर्पित जीवन थे। पं० शंकरनाथजी बेतिया और चम्पारन आदि में भी प्रचारार्थ गये। पं० प्रियदर्शनजी ने स्वयं लिखा है कि पंडित शंकरनाथजी जब बेतिया और चम्पारन में प्रचार-कार्य में व्यस्त थे, उस समय वहाँ की अवस्था लिखकर वे पं० प्रियदर्शनजी को आर्यसमाज की ओर और अधिक आकृष्ट करने लगे।

इसी समय बर्दवान शहर में आर्यसमाज की स्थापना हुई। वहाँ रानीगंज नामक स्थान पर आर्यसमाज का कार्य चलता था। पं० दीनबन्धुजी वहाँ कुछ समय रहे थे। पण्डित प्रियदर्शनजी कभी-कभी वहाँ जाया करते थे। वहीं आर्यसमाज और पण्डित दीनबन्धुजी से उनका घनिष्ठ सम्पर्क सूत्र बना।

आर्यसमाज कलकत्ता में प्रथम निवास :

इसी बीच कांग्रेस का ३६ वाँ अधिवेशन कलकत्ता के प्रसिद्ध पार्क सर्कस मैदान में हुआ। पं० प्रियदर्शनजी ने लिखा है कि श्री मोतीलाल नेहरू को ३६ घोड़ों की गाड़ी पर बैठा कर एक हजार स्वयंसेवकों के

साथ श्री सुभाषचन्द्र बोस शोभायात्रा में ले जा रहे थे। यह सब दृश्य पं० प्रियदर्शनजी ने स्वयं देखा था और उसी समय पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री के साथ आर्यसमाज मन्दिर में निवास किया था। यह जहाँ पं० दीनबन्धुजी के साथ घनिष्ट सम्बन्ध था वहाँ आर्यसमाज के साथ भी सम्पर्क बढ़ रहा था। कांग्रेस के इस अधिवेशन में पार्क सर्कस मैदान में आर्यसमाज की ओर से भी प्रचारार्थ एक पण्डाल बनाया गया था। उस समय प्रायः सभी आर्यसमाजी स्वदेशी और राजनीति के भंवर में पड़े रहते थे। जहाँ कहीं भी विपुल जनसम्पर्क का प्रसंग आता आर्यसमाज प्रचारार्थ वहाँ अपना पण्डाल लगा देता था। कुम्भ के मेले में या गंगासागर के मेले में अथवा अन्य पौराणिक मेलों में भी प्रचारार्थ आर्यसमाज का पण्डाल लगता था। उसी कड़ी में पार्क सर्कस में कांग्रेस अधिवेशन के समय आर्यसमाज के प्रचार के लिये पण्डाल लगा हुआ था। पं० प्रियदर्शनजी इस पण्डाल में जाते थे। यहाँ आर्यसमाज मन्दिर और पण्डाल तथा आर्य विद्वानों से सम्पर्क बढ़ रहा था।

कारागार की ओर :

पं० प्रियदर्शनजी ने सन् १९२८ ई० में सुभाषचन्द्र बोस द्वारा संचालित बन्दविला सत्याग्रह में भी भाग लिया था। यह इस बात का प्रमाण है कि क्रान्ति, स्वतन्त्रता, स्वदेशभक्ति के बीच पं० प्रियदर्शनजी बहुत पहले से लग चुके थे। आप सत्याग्रह में भाग लेने के लिये चुपके से कलकत्ता आ गये। आपका पत्र-व्यवहार श्री बिपिन विहारी गांगुली से होता रहा था। श्री गांगुली बी० पी० सी० सी० (बंगाल-प्रदेश कांग्रेस कमेटी) के मन्त्री थे। एक दिन कार्यालय में रहकर पंडितजी सत्याग्रह के लिए चल पड़े। खुफिया पुलिस पीछे लगी हुई थी और वहाँ बन्दीविलां गाँव में पहुँच कर पगड़ी बाँधी और अपना नाम बदल कर नवीन सिंह रखा। कर अदा न करने के आन्दोलन में भाग लेना

आरम्भ कर दिया। कुछ दिनों बाद पकड़े गये और इन्हें ६ महीने का सश्रम कारावास हुआ। ६ महीने बाद एक बार फिर धारा १०९ के तहत मुर्शिदाबाद जेल में दुबारा कारावास भुगतना पड़ा। उस समय १३ दिन की भूख हड़ताल की और पीछे मलेरिया के शिकार होने के कारण अस्पताल में भर्ती कर दिये गये। उस समय आन्दोलन और कांग्रेस के स्वरूप से खिन्न होकर पंडितजी का विद्रोही हृदय कांग्रेस से हटकर आर्यसमाज में आ जुटा।

पं० प्रियदर्शनजी आर्यसमाज कलकत्ता में पं० दीनबन्धुजी के सम्पर्क में कार्य करने लगे। धीमेधीमे आर्यसमाज के प्रति निष्ठा और भक्ति बढ़ती गयी। धीमे-धीमे एक उपदेशक ब्राह्मण का जीवन बिताने का निश्चय किया। उस समय लाहौर का उपदेशक विद्यालय बड़ा प्रसिद्ध था और वह स्वामी स्वतन्त्रतानन्दजी के निरीक्षण-निर्देशन में चल रहा था।

लाहौर उपदेशक विद्यालय में :

सन् १९३५ ई० के जून मास में पं० प्रियदर्शनजी ने लाहौर उपदेशक विद्यालय में अध्ययन करने के लिये प्रस्थान किया। वहाँ स्वामी स्वतन्त्रतानन्दजी, स्वामी वेदानन्दजी और पं० ईश्वरचन्द्रजी दर्शनाचार्य जैसे विद्वानों का सम्पर्क हुआ। उस समय पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा की अर्द्ध शताब्दी मनायी गयी थी। उसमें इन्हें चारों वेदों का पाठ ही नहीं, बल्कि अन्य कई प्रकार के अवसर मिले।

जब हैदराबाद का सत्याग्रह आरम्भ हो गया उस समय तक पं० प्रियदर्शनजी 'सिद्धान्त भूषण' की परीक्षा दे चुके थे। पण्डितजी का मन तो हैदराबाद सत्याग्रह में सत्याग्रही के रूप में जाने का था, किन्तु स्वामी स्वतन्त्रतानन्दजी ने यह अनुभव किया कि सत्याग्रही बनकर हैदराबाद जाने की अपेक्षा प्रचारक बन कर बंगाल में काम करना अधिक उपयोगी होगा। यह भी हैदराबाद सत्याग्रह की ही

सहायता होगी। पं० प्रियदर्शनजी 'सिद्धान्तभूषण' की परीक्षा देकर बंगाल आ गये।

कलकत्ता में पुनरागमन :

उस समय कलकत्ता में श्री जुगलकिशोरजी विड़ला की सहायता से 'हैदराबाद हिन्दू धर्मसेवा संघ' नाम से एक संगठन कार्य कर रहा था। हैदराबाद सत्याग्रह समाप्त होने पर यह संगठन हिन्दूधर्म सेवा-संघ के नाम से कार्य करने लगा। पं० प्रियदर्शनजी बंगाल आकर इसी संस्था में कार्य करने लगे। जन-जागरण करना, धन एकत्र करना और सत्याग्रह के लिए भेजना ही विशेषरूप से कार्य था।

जब सत्याग्रह समाप्त हो गया तो पं० प्रियदर्शनजी ने राजशाही में केन्द्र बनाकर उत्तर बंगाल में आर्यसमाज का प्रचार कार्य आरम्भ किया। सिलहट आर्यसमाज के मन्त्री श्री कामिनी मोहनजी ने अपनी कन्या श्रीमती अमला देवी के साथ पंडितजी का विवाह कर दिया। पंडितजी इन देवीजी की सहायता से दाम्पत्य जीवन में आर्यसमाज के कार्य को आगे बढ़ाते रहे। जहाँ कहीं भी आर्यसमाज को आवश्यकता पड़ती थी, पं० प्रियदर्शनजी सदा सोत्साह वहाँ जाकर जुट जाते थे। मिदनापुर में प्रबल बाढ़ आयी, कलकत्ता आर्यसमाज ने रिलीफ का कार्य आरम्भ किया और पण्डितजी ने वहाँ के केन्द्र का भार ग्रहण करके रिलीफ का कार्य किया। यहीं से रिलीफ का कार्य वन्द होने पर पुनः राजशाही चले गये। रिलीफ के कार्य से कुछ धन बच गया था उसीसे पं० शारदा प्रसन्न वेदशास्त्री को सत्यार्थ प्रकाश के बंगला अनुवाद करने के लिए नियुक्त किया गया। पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री को यह भाषा ठीक न लगी तो पं० प्रियदर्शनजी और पं० मनोरंजनजी काव्यतीर्थ ने संशोधन का कार्य किया। त्रिपुरा में जब पं० जी रिलीफ कार्य के लिए गये उस समय बारीशाल, नोआखाली, त्रिपुरा, फरीदपुर आदि जिलों में सहायताकार्य किया गया।

बंगाल में आर्यसमाज के कार्य को प्रगति देने के लिए स्वामी स्वतन्त्रतानन्दजी और स्वामी वेदानन्दजी को बुलाया गया था। उस समय पं० प्रियदर्शनजी ने राजशाही में आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव भी कराया था। आसाम में भूकम्प के समय पं० प्रियदर्शनजी ने डिब्रूगढ़ में रिलीफ का कार्य किया।

स्वतन्त्र पुरोहित-उपदेशक के रूप में :

देश-विभाजन के पश्चात् पं० प्रियदर्शनजी कलकत्ता में स्थायीरूप से जम गये। यहाँ आर्यसमाज कलकत्ता के साथ आरम्भ से ही सम्पर्क है, किन्तु किसी संस्था या सभा के अधीन न होकर पंडितजी स्वतन्त्र रूप से एक पुरोहित-विद्वान् की हैसियत से आर्यसमाज की सेवा में लगे हुए हैं। आर्यसमाज कलकत्ता का बालक-सत्संग और महिला-सत्संग इन्हीं की देखरेख में ही होता है।

साहित्य-सेवा :

पं० प्रियदर्शनजी की साहित्यिक अभिरुचि है। आप कई पत्रों के संपादक रहे। सर्वप्रथम 'आर्यरत्न' और पश्चात् कई आर्यपत्रों का संचालन किया। विगत १५ वर्षों से 'वेदमाता' नामक बंगला मासिक पत्र का संपादन-प्रकाशन सब कुछ पं० प्रियदर्शनजी स्वयं कर रहे हैं। पंडितजी ने कई पुस्तकें लिखीं और प्रकाशित कीं। यथार्थता, कृष्णेर आह्वान, मानव धर्मेर स्वरूप, पुरीर जगन्नाथ (कविता), देवयज्ञ, साकारवाद, कालीरंजन, आमरा आर्य आदि मौलिक ग्रन्थों की रचना की। आर्याभिविनय, वैदिकधर्म धारा, मेरी यात्रा (स्वामी स्वतन्त्रतानन्दजी लिखित अफ्रीका की यात्रा) का बंगला अनुवाद किया। सत्यार्थ प्रकाश के बंगला अनुवाद का षष्ठ संस्करण की भाषा आदि का संशोधन-कार्य पं० प्रियदर्शनजी ने बड़े उत्तरदायित्व के साथ पूर्ण किया। इस समय यजुर्वेद के महर्षि दयानन्द के भाष्य का बंगला अनुवाद कर रहे हैं।

पं० प्रियदर्शनजी कुशल अध्यापक भी हैं। पाँच वर्षों तक आकाशवाणी के कलकत्ता केन्द्र से हिन्दी शिक्षक का कार्य करते रहे। कलकत्ता आर्यसमाज ने जब उपदेशक विद्यालय चलाया था, पं० प्रियदर्शनजी उसमें भी अध्यापन करते थे। पं० प्रियदर्शनजी कुशल व्यवस्थापक भी हैं। बेलडांगा हुगली जिला में यज्ञशाला, औषधालय और आर्यसमाज की स्थापना इन्होंने की थी। अभी २४ परगना में चण्डीपुर नामक स्थान पर यज्ञशाला, अतिथिशाला और वेद विद्यालय का संकल्प लेकर कार्यरत हैं।

पं० प्रियदर्शनजी ने अन्तर्राष्ट्रिय आर्य महासम्मेलन के अवसर पर नैरोबी (केन्या) की यात्रा १९७८ ई० में की थी। १९८० ई० में अन्तर्राष्ट्रिय आर्य महासम्मेलन लन्दन में हुआ था। श्री पं० प्रियदर्शनजी उसमें भी सम्मिलित हुए थे। ऋषि-निर्वाण-शताब्दी महोत्सव के अवसर पर १९८३ ई० में अजमेर में समारोह समिति की ओर से पं० प्रियदर्शनजी को उनके साहित्यिक कार्यों के लिए प्रशस्ति-पत्र भेंट किया गया था।

७५ वर्ष की आयु में पं० प्रियदर्शनजी युवकों की तरह क्रियाशील, हँसमुख, प्रसन्नचित्त आर्यसमाज के कार्य में अहर्निश लगे ही रहते हैं। साहित्य-निर्माण, वेदप्रचार, आर्यसमाज के मिशन का प्रचार, संक्षेप में यही पंडितजी के जीवन के लक्ष्य हैं।

पं० रामनरेशजी मिश्र शास्त्री

पं० रामनरेशजी उत्तर प्रदेश में सुलतानपुर जिले में काछा भिटौरा नामक स्थान के काछा ग्राम के हैं। आपका जन्म बैशाख कृष्ण पंचमी सम्वत् १९७९ विक्रमी को यहीं ग्राम काछा में सरयूपारीण ब्राह्मणों के मिश्र परिवार में हुआ था। आर्यसमाज के क्षेत्र में इनको पं० रामनरेशजी शास्त्री के नाम से जाना जाता है। पं० रामनरेशजी की

संस्कृत शिक्षा व्याकरण-शास्त्री तक वहीं उत्तरप्रदेश में हुई थी। शास्त्रीजी बड़े बुद्धिमान, शीलवान, सरल एवं मेधावी विद्यार्थी थे। आर्यसमाज कलकत्ता के प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य पं० रमाकान्तजी शास्त्री भी इसी अंचल के थे। इस प्रकार आचार्यजी के मन में यह बात बैठ गई कि यदि पं० रामनरेशजी को आर्यसमाज के सिद्धान्तों में दीक्षित किया जा सके तो आर्यसमाज को एक सुन्दर विद्या-विनय-सम्पन्न ब्राह्मण उपदेशक मिल जायेगा, अतः उन्होंने पं० रामनरेशजी से सम्पर्क किया और इन्हें सन् १९४४-४५ ई० में कलकत्ता बुला लिया। कलकत्ता आकर दो ही चार दिनों में पं० रामनरेशजी वैदिक सिद्धान्तों से सहमत हो गये और स्वामी दयानन्द के ग्रन्थों के स्वाध्याय में लग गये। पं० रामनरेशजी व्याकरण शास्त्री तो बनारस से ही उत्तीर्ण थे, कलकत्ता आकर इन्होंने काव्यतीर्थ एवं साहित्यरत्न आदि परीक्षाएँ भी उत्तीर्ण कीं।

आर्यसमाज बड़ाबाजार के भूतपूर्व प्रधान श्री रामदेवजी सिंहानियां पं० रामनरेशजी शास्त्री से ऋषि-ग्रन्थों का नियमित अध्ययन करने लगे। इस प्रकार शास्त्रीजी को स्वामी दयानन्दजी के ग्रन्थों के अध्ययन-अध्यापन का सुयोग मिलने लगा। पं० रामनरेशजी आर्य-समाज बड़ाबाजार और आर्यसमाज कलकत्ता दोनों के सम्पर्क में वेद पारायण यज्ञ और वैदिक धर्म-प्रचार के कार्यों में तत्पर रहने लगे।

आजीविका की दृष्टि से शास्त्रीजी कलकत्ता के सुप्रसिद्ध श्री जैन-श्वेताम्बर तेरापन्थी विद्यालय में संस्कृत के वरिष्ठ अध्यापक हैं। श्री शास्त्रीजी अपनी जन्मभूमि के मान्य ब्राह्मण विद्वान् हैं और अपनी वैदिक निष्ठा और आर्यसमाजी कट्टरता के लिए प्रसिद्ध हैं। इनके अञ्चल के किसी रियासत के राजा ने इन्हें पर्याप्त भूमि और धन का लोभ देकर इनसे मृतक श्राद्ध कराने के लिये आग्रह किया। शास्त्रीजी अपने विचारों के दृढ़ हैं और उस समय लोगों को बड़ा आश्चर्य

हुआ जब राजा को भूमि का दान इन्हें इनके सिद्धान्तों से विचलित न कर सका। इन्होंने यह मृतक श्राद्ध कराने का प्रस्ताव ठुकरा दिया।
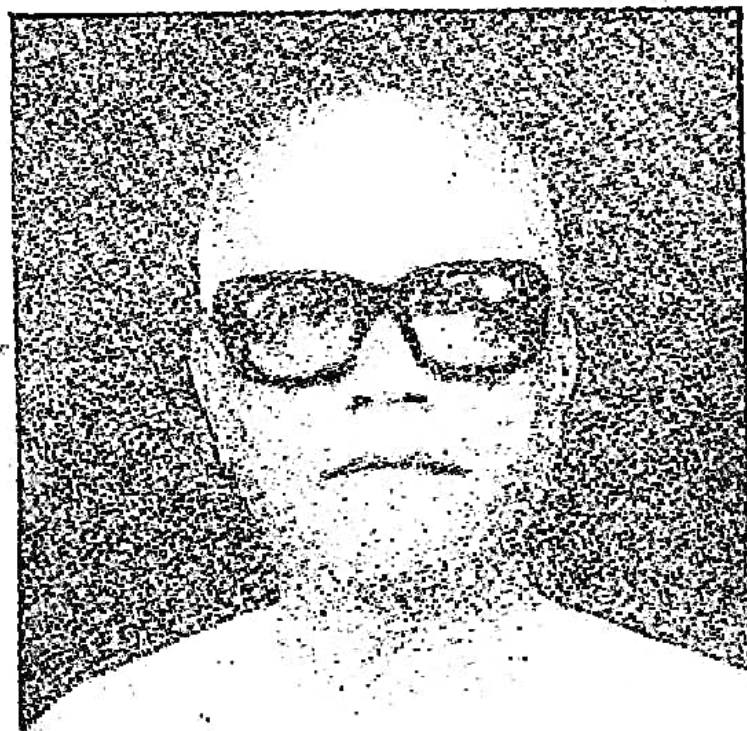
पं० श्री रामनरेश मिश्र शास्त्री

शास्त्रीजी संस्कृत के गम्भीर विद्वान् हैं। रहन-सहन से अति सरल और वृत्ति से परम सात्विक ब्राह्मण हैं। शास्त्रीजी की निष्ठा स्वामी दयानन्दजी के ग्रन्थों पर और वैदिक सिद्धान्तों में अटूट है। इनके व्याख्यानों में एक अध्यापक का कौशल, अपने विषय को सुस्पष्ट, किन्तु सीधे सरल ढंग से उपस्थित कर देना इनकी विशेषता है। आजकल आर्यसमाज कलकत्ता के साप्ताहिक सत्संग में आप नियमित रूप से सफलतापूर्वक 'सत्यार्थ प्रकाश' की कथा सुन्दर ढंग से कर रहे हैं।

आचार्य पं० उमाकान्तजी उपाध्याय

उत्तर प्रदेश के सुलतानपुर जिले में झौआरा नामक ग्राम में कार्तिक शुक्ला १४, संवत् १९८४ वि० को श्री उमाकान्तजी उपाध्याय का जन्म सरयूपारीण ब्राह्मण कुल में हुआ था। पिताजी पं० नागेश्वर उपाध्याय और पूज्या माता दिलराजी देवी थीं। पिताजी दुर्गादेवी के निष्ठावान् भक्त पौराणिक पुरोहित थे। प्रतिवर्ष दोनों नवरात्रों में दुर्गादेवी का व्रत करते थे। लोगों में प्रसिद्ध था कि उन्हें दुर्गाजी इष्ट थीं। इस प्रकार परिवार में परम पौराणिक निष्ठा होने के पश्चात् भी उमाकान्तजी शैशव से ही आर्यसमाज की दीक्षा में बड़े हुए। इनके अग्रज आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान्, वाग्मी प्रचारक आचार्य पं० रमाकान्तजी शास्त्री थे। उन्होंने सत्यार्थ-प्रकाश की पुस्तक उमाकान्तजी को पढ़ने के लिए उसी समय दे दी थी जब ये प्राइमरी कक्षा के विद्यार्थी थे। परिणाम यह हुआ कि मिडिल पास करते-करते उमाकान्तजी में आर्यसमाज की कट्टरता पूर्ण रूप से आ गयी। उस समय सरकारी छात्रवृत्ति को ठुकराकर आचार्य रमाकान्तजी ने अपने आदर्शों के अनुकूल अपने छोटे भाई को अष्टाध्यायी पढ़ने के लिए सुलतानपुर की प्रसिद्ध संस्कृत पाठशाला 'कमलाकर' में प्रविष्ट करा दिया। उस पाठशाला में अध्यापन तो आचार्य श्रेणी तक होता था किन्तु अष्टाध्यायी के माध्यम से व्याकरण पढ़ाने वाला कोई विद्वान् वहाँ न था। फलतः अष्टाध्यायी कण्ठ कर लेने के पश्चात् विवश होकर इन्होंने कौमुदी के माध्यम से व्याकरण की पढ़ाई प्रारम्भ की। इस परिस्थिति में आचार्य रमाकान्तजी अपने अनुज को कलकत्ता ले आये और यहाँ चार-पाँच वर्षों तक संस्कृत के सुबुद्ध विद्वान् पं० रामनरेशजी शास्त्री के पास सिद्धान्त कौमुदी, काशिका, वेदांग प्रकाश आदि ग्रन्थों का अध्ययन कराते रहे। साथ में ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, न्याय और वैशेषिक दर्शनों की शिक्षा आचार्य रमाकान्तजी स्वयं देते रहे। इसके पश्चात् अंग्रेजी की शिक्षा

आरम्भ हुई। बी० ए० (अर्थशास्त्र) में ऑनर्स और अर्थशास्त्र में ही एम० ए० की परीक्षाएँ कलकत्ता विश्वविद्यालय से पास करके उमाकान्तजी ने सन् १९५९ ई० में कलकत्ता के प्रसिद्ध महाविद्यालय जयपुरिया कालेज में अर्थशास्त्र का अध्यापन प्रारम्भ किया। जयपुरिया कालेज में ऑनर्स कक्षा तक की पढ़ाई होती है और उमाकान्तजी

पं० उमाकान्तजी उपाध्याय

जी इस कालेज में अर्थशास्त्र में ऑनर्स तक की कक्षाओं को प्रतिष्ठापूर्वक पढ़ाते हुए, कामर्स विभाग के वरिष्ठ प्राध्यापक हैं।

उमाकान्तजी को आचार्य रमाकान्तजी की कृपा से आर्यसमाज की दीक्षा तो शैशव में ही मिल गयी थी। कलकत्ता आने पर वयस्क होने के साथ आप आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्य बन गये। सन् १९५८-५९ ई० में महाशय रघुनन्दनलालजी ने बड़े आग्रह से उमाकान्तजी

को दो वार आर्यसमाज कलकत्ता का उपमन्त्री भी वनाया था। बड़ी कोशिशों के बाद भी उमाकान्तजी फिर कभी किसी अधिकारी-पद पर नहीं गये और सर्वविदित कर दिया कि उन्हें आर्यसमाज में एक ब्राह्मण के रूप में सेवा करनी है! आर्य सभासद् तो ये आरम्भ से ही हैं और कई वार प्रतिष्ठित विद्या-सदस्य के रूप में नियुक्त होते रहे किन्तु, अव तो इन्होंने अन्तरंग की सदस्यता से भी अवकाश ग्रहण कर लिया है।

आर्यसमाज कलकत्ता ने जब अपना मासिक मुखपत्र निकालने का निश्चय किया तो उस समय अधिकारियों की दृष्टि उमाकान्तजी पर आ पड़ी और तवसे आज लगभग अट्ठाईस वर्ष बीत गये, उमाकान्तजी 'आर्य-संसार' का सम्पादन भार निभाये जा रहे हैं। इस लम्बी अवधि में आर्य-संसार ने उच्चकोटि का सुपठनीय साहित्य दिया है। विशेषरूप से वार्षिक विशेषांक आर्यसमाज कलकत्ता के वार्षिकोत्सव पर प्रकाशित होता है। आर्य-संसार का विस्तृत वर्णन इसी इतिहास के 'पत्र-पत्रिकाएँ' नामक अध्याय में द्रष्टव्य है।[1]

उमाकान्तजी पिछले बीसों वर्ष से आर्यसमाज कलकत्ता के प्रमुख वक्ता-आचार्य के स्थान पर अपनी सेवाएँ दे रहे हैं। पण्डित अयोध्या प्रसादजी जव अधिक रुग्ण हो गये, तव से आर्यसमाज कलकत्ता के अधिकारियों ने कलकत्ता आर्यसमाज के सत्संग का प्रमुख व्याख्यान उमाकान्तजी से ही देने का अनुरोध किया। वीच-वीच में विशेष प्रचारार्थ आमन्त्रित बाहर के विद्वानों का व्याख्यान भी होता रहता है, किन्तु आर्यसमाज कलकत्ता के आचार्य-पद का भार उमाकान्तजी पर ही रहता है।

आर्यसमाज कलकत्ता के सत्संगों की अपनी विशिष्ट स्थिति है। एक तो यहाँ उपस्थिति अच्छी होती है, दो सौ, ढाई-तीन सौ तक की

१—द्र० द्वादश अध्याय।

उपस्थिति भी हो जाती है। कलकत्ता बड़े शहरों में है और कलकत्ता आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संग में उपस्थित लोग एक ओर उच्चकोटि के व्यवसायी होते हैं तो दूसरी ओर अच्छे पढ़े-लिखे स्वाध्यायशील भी होते हैं। कलकत्ता समाज में सदा ही साधना प्रवृत्ति के भी कुछ लोग सत्संगों में उपस्थित होते हैं। पं० शंकरनाथजी, पं० अयोध्या प्रसादजी, पण्डित सुखदेवजी विद्यावाचस्पति, आचार्य रमाकान्तजी शास्त्री जैसे उद्भट, वाग्मी, व्याख्यान-कुशल, शास्त्र-पारंगत विद्वानों की यह व्याख्यान-वेदी है। इसकी अपनी परम्परा है। उमाकान्तजी इसी परम्परा की एक कड़ी बनकर अपने सत्संगी श्रोताओं को पिछले बीसों वर्ष से संतुष्ट एवं तृप्त करते चल रहे हैं। इनके आचार्यत्व काल में संध्या, अग्निहोत्र, वेदकथा, उपनिषद्कथा आदि का हृदयग्राही सुन्दर पुरोगम सफलता पूर्वक चल रहा है।

उमाकान्तजी पेशे से अध्यापक हैं और अपने विषय को अपने श्रोताओं तक पहुँचाने में सक्षम हैं। साथ ही उमाकान्तजी एक कुशल पुरोहित और विद्वान् भी हैं। आर्यसमाज कलकत्ता के वेदपारायण यज्ञों पर श्रद्धा से उद्वेलित हजारों भक्तों की श्रद्धाभावना को तृप्त करते हुए आज बहुत वर्षों से वेदपारायण यज्ञों के ब्रह्मा आप ही बनाये जाते हैं।

उमाकान्तजी कुशल वक्ता के साथ सक्षम लेखक भी हैं। आर्यसंसार में आपका सम्पादकीय निस्पृह-निष्पक्ष-तटस्थ भूमि से समाज और संगठन को दिशादान की प्रेरणा करता रहता है। उमाकान्तजी ने अर्थशास्त्र पर एक पाठ्य पुस्तक के अतिरिक्त कई छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ लिखी हैं जिन्हें आर्यसमाज कलकत्ता और आर्यसमाज बड़ाबाजार, कलकत्ता ने प्रकाशित किया है। आपकी कई पुस्तकों की अनेकों आवृत्तियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। ये पुस्तकें छोटी होते हुए भी बड़ी लोकप्रिय हैं। इनका वर्णन आर्यसमाज कलकत्ता के इतिहास में साहित्यिक

कार्य में पठनीय है।[१] उमाकान्तजी को आर्यसमाज के विद्वान् वक्ता की हैसियत से अखिल भारतीय एवं सार्वदेशिक ख्याति प्राप्त है। आपने अनेक बार आर्यसमाज के मिशन को लेकर विदेश यात्राएँ की हैं। सन् १९७६ ई० में आर्यसमाज का एक दल कलकत्ता से विदेश यात्रा पर गया था। यह दल योरोप और अमेरिका के कई देशों की यात्रा पर था। इस दल ने आचार्य उमाकान्तजी को प्रचारार्थ अपने साथ ले लिया था। यह दल स्विट्जरलैण्ड, फ्रांस, इङ्गलैण्ड, रोम, इटली, संयुक्तराष्ट्र अमेरिका, कनाडा आदि देशों में कई स्थानों पर गया। जहाँ भी सम्भव होता था, आर्यसमाजियों को संगठित करना और वैदिक धर्म के प्रचार का प्रयास करना इस दल का प्रमुख उद्देश्य था। इस यात्रा की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह थी कि श्री लालमनजी आर्य, श्री सीतारामजी आर्य के साथ आचार्य उमाकान्तजी की प्रेरणा पर भारतीय मिशन के कुछ श्रद्धालु सज्जनों ने जेनेवा, स्विट्जरलैण्ड में आर्यसमाज जेनेवा की स्थापना की। जेनेवा में आर्यसमाज की स्थापना इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है और आचार्य उमाकान्तजी इसे अपने जीवन की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि समझते हैं।

सन् १९७८ ई० में केनिया की राजधानी नैरोवी में अन्ताराष्ट्रिय आर्य महासम्मेलन का आयोजन हो रहा था। आर्यसमाज केनिया के प्रसिद्ध विद्वान् आर्यसमाजी परम आढ्य व्यवसायी श्री सत्यदेव भारद्वाज के आग्रह एवं आर्यसमाज कलकत्ता तथा आर्यसमाज बड़ाबाजार के सहयोग से आचार्यजी ने नैरोबी की यात्रा की। वहाँ आचार्यजी ने हिन्दी और अंग्रेजी—दोनों भाषाओं में अनेक विषयों पर व्याख्यान दिये और अन्ताराष्ट्रीय आर्यजगत् के क्षेत्र में एक सफल वक्ता एवं मौलिक चिन्तक के रूप में आपकी प्रतिष्ठा हुई। उसी समय अन्ताराष्ट्रिय आर्य महासम्मेलन लण्डन में करने का निश्चय हुआ। आर्यसमाज लण्डन के सुयोग्य विद्वान् प्रधान प्रो० सुरेन्द्रनाथ

१. द्र०—एकादश अध्याय

भारद्वाज ने उमाकान्तजी को लण्डन सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिये आग्रह किया।

सन् १६८० ई० में लण्डन में अन्ताराष्ट्रिय आर्य महासम्मेलन बड़ी सजधज के साथ हो रहा था। उधर लण्डन से आचार्य उमाकान्तजी के लिए एकाधिक निमन्त्रण पत्र आ चुके थे, किन्तु एक अध्यापक, पुरोहितवृत्ति ब्राह्मण के लिए अन्ताराष्ट्रिय यात्रा का व्ययभार कठिन होता है। इस अवसर पर आर्यसमाज बड़ाबाजार के उत्साही कार्य-कर्त्ता श्री मोहनलालजी ने यातायात की व्यवस्था के भार से सदा की भाँति आचार्यजी को मुक्त कर दिया और आचार्यजी लण्डन महासम्मेलन में सम्मिलित हुए। इस सम्मेलन में एक सर्वधर्म सम्मेलन का आयोजन हुआ जिसमें लण्डन सम्मेलन के संयोजकों ने आचार्य उमाकान्तजी को हिन्दू वैदिक धर्म का प्रतिनिधि वक्ता मनोनीत किया। आचार्यजी ने बड़ी कुशलता, शिष्टता एवं नम्रता से वेदधर्म के सार्वभौमिक स्वरूप को प्रस्तुत किया जिसका सारांश यह था कि सारे संसार का ईश्वर एक है, अतः धर्म भी एक ही है और वह वैदिक धर्म है। वैदिक धर्म सम्पूर्ण संसार को एक मानता है। मनुष्य ही नहीं बल्कि प्राणिमात्र परमेश्वर की सन्तान हैं। वैदिकधर्म न किसी अवतार, पैगम्बर, मसीहा या अन्य बिचौलिये की आकांक्षा रखता है, न वेद के अतिरिक्त किसी अन्य ग्रन्थ को ईश्वरीय मानता है। विषय की संश्लिष्टता, वर्णन एवं वक्तृत्व-कला इतनी प्रभावपूर्ण रही कि सारी सभा में व्याख्यान की चर्चा होती रही। एक तुक की बात थी कि एक विश्वधर्म महासभा में स्वामी विवेकानन्द का व्याख्यान हुआ था। एक और अन्ताराष्ट्रिय धर्म महासभा में पण्डित अयोध्या प्रसादजी का व्याख्यान हुआ था और अब लण्डन की धर्म महासभा में उमाकान्तजी उपाध्याय का व्याख्यान हुआ। वे दोनों कलकत्ता के ही निवासी थे और अब उमाकान्तजी भी कलकत्ता के ही निवासी

निकले। व्याख्यान की उपादेयता से प्रभावित होकर धर्म महासभा के अध्यक्ष ने इसके प्रकाशन का आग्रह किया और यह धर्म-महासभा का व्याख्यान प्रथम अंग्रेजी में आर्यसमाज कलकत्ता ने प्रकाशित किया। उस व्याख्यान की अंग्रेजी की प्रतियाँ जब रूस से आये पर्यटकों को आर्यसमाज कलकत्ता में भेंट की गयीं तो रूसी यात्रियों ने उस व्याख्यान की हिन्दी प्रतियाँ लेने की अधिक इच्छा व्यक्त की। व्याख्यान हिन्दी में तो छपा न था, अतः थोड़ी-सी लज्जा का अनुभव स्वाभाविक था। फिर तो आर्यसमाज कलकत्ता ने हिन्दी, अंग्रेजी दोनों भाषाओं में उस व्याख्यान को प्रकाशित किया और भारत के रामकृष्ण विवेकानन्द मिशन, कृष्णा कान्शेसनेस जैसे भारतीय मूल के मिशनों ने विदेशों में प्रचार के लिए इस व्याख्यान को बड़ी प्रियता के साथ अपनाया।

उमाकान्तजी कई वर्षों तक आर्यसमाज कलकत्ता के संगठन को निरापद रूप में चलाते रहने की योजना बनाते रहते थे। इधर कुछ वर्षों से संगठनात्मक अभिरुचि से संन्यस्त होकर शुद्ध विद्या, पौरोहित्य, आचार्यत्व, आध्यात्मिक साधना को लक्ष्य बनाकर आप आर्यसमाज की सेवा में निरत हैं। आर्य प्रतिनिधि सभा, बंगाल ने आचार्यजी को अपना उप-प्रधान बना रखा है। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने आपको धर्मार्थ सभा का सदस्य मनोनीत कर रखा है। अजमेर के ऐतिहासिक निर्वाण-शताब्दी-समारोह १९८३ ई० पर समारोह-समिति ने पण्डित उमाकान्त उपाध्याय को साहित्य के क्षेत्र में उनकी विशिष्ट सेवाओं के लिए बहुमान पुरस्सर प्रशस्ति-पत्र देकर सम्मानित किया है।

डा० श्रीकान्तजी उपाध्याय

डा० श्रीकान्तजी उपाध्याय का जन्म ग्राम झौआरा जिला सुल्तानपुर (उ० प्र०) के प्रसिद्ध उपाध्याय परिवार में दीपावली के दिन सन्

१९३० ई० में हुआ था। आपके पिता श्री पं० सीतारामजी उपाध्याय एवं माता श्रीमती राम दुलारी देवी थीं। पिताजी संस्कृत के परम उच्चकोटि के साहित्यिक विद्वान् एवं आशुकवि थे। ये साहित्य के उच्च ग्रन्थों को कण्ठस्थ ही पढ़ाते थे। डा० उपाध्याय के दो पितृव्य पं० नागेश्वरजी उपाध्याय और पं० अच्युतानन्दजी उपाध्याय व्याकरणाचार्य अपने-अपने क्षेत्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे। डा० उपाध्याय
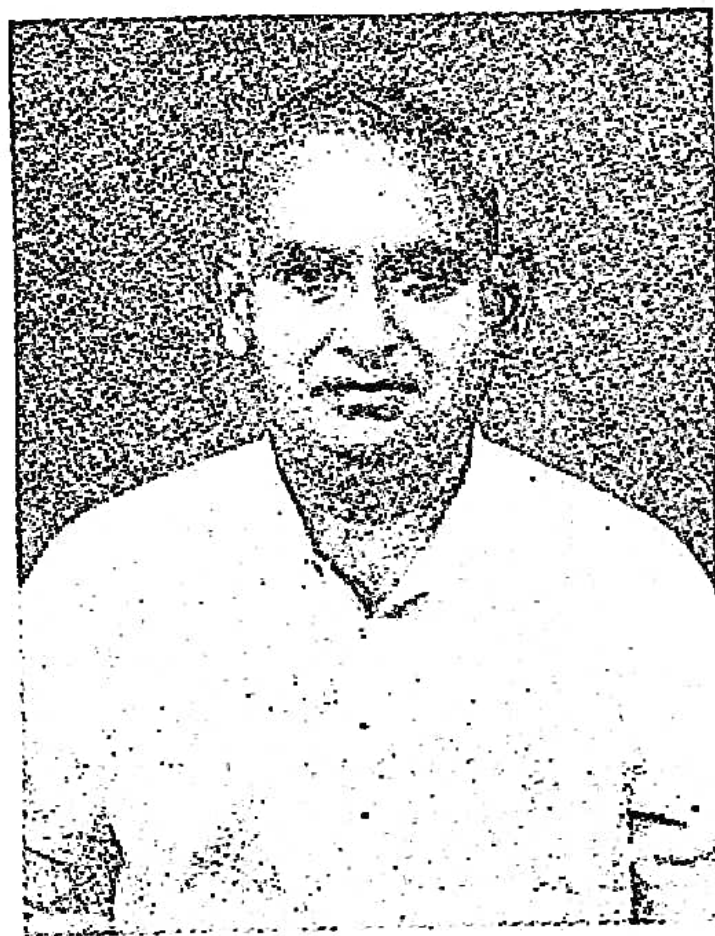
डा० श्रीकान्तजी उपाध्याय

थोड़ी उम्र में ही पिताजी की छत्रछाया से वंचित हो गये और इनकी शिक्षा-दीक्षा कनिष्ठ पितृव्य पं० अच्युतानन्दजी ने सम्भाली। डा० उपाध्याय आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य पं० रमाकान्तजी शास्त्री के ज्येष्ठ पितृव्य के सुपुत्र हैं। फलतः डा० उपाध्याय का अध्ययन-काल आचार्य रमाकान्तजी की छत्रछाया में बीता। सुल्तान-पुर से हाई स्कूल की परीक्षा पास करके डा० उपाध्याय कलकत्ता आये

और कालेज की सम्पूर्ण पढ़ाई आचार्य रमाकान्तजी के अभिभावकत्व में यहीं कलकत्ता में की। कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण कर कलकत्ता विश्वविद्यालय से ही पीएच० डी० की उपाधि ग्रहण की। इनके शोधप्रबन्ध का विषय था—मञ्झन कृत मधुमालती का भाषाविषयक अध्ययन।

डा० उपाध्याय सन् १९५९ ई० से कलकत्ता के प्रसिद्ध कालेज सेठ आनन्दराम जयपुरिया कालेज में हिन्दी के वरिष्ठतम प्राध्यापक हैं। आप आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्य हैं और कुछ दिन आर्यसमाज कलकत्ता के उपमन्त्री भी थे। डा० उपाध्याय समर्थ अध्यापक और ओजस्वी वक्ता हैं। कई वर्षों तक आप आर्यसमाज जोड़ासांकू और आर्यसमाज मल्लिक बाजार के सत्संगों में प्रधान व्याख्याता की भूमिका निभाते रहे। जिन दिनों डा० उपाध्याय आर्यसमाज कलकत्ता के कार्यकर्त्ता रूप में सक्रिय थे उन दिनों आप आर्यसमाज कलकत्ता की पत्रिका 'आर्य-संसार' के सम्पादन में अपेक्षित सहयोग किया करते थे। डा० उपाध्याय ने सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में आर्यसमाज और स्वामी दयानन्द पर कुछ लेख भी लिखे हैं।

पं० शिवाकान्तजी उपाध्याय

श्री पण्डित शिवाकान्तजी उपाध्याय का जन्म प्रसिद्ध उपाध्याय परिवार में ५ जुलाई सन् १९३५ ई० को हुआ था। आपकी जन्मभूमि ग्राम झौवारा, जिला सुल्तानपुर (उ० प्र०) है। श्री शिवाकान्तजी के अग्रज आचार्य पं० रमाकान्तजी एवं पण्डित उमाकान्तजी आर्यसमाज के निष्ठावान् प्रचारक रहे हैं। इस प्रकार पण्डित शिवाकान्तजी अपने शैशव से ही आर्यसामाजिक विचारधारा की छत्रछाया में पालेपोसे गये। आप कलकत्ता विश्वविद्याल से एम० एससी०, एल-एल० बी० का अध्ययन कर अपने जीवन में पारिवारिक परम्परा के अनुसार आर्य-समाज के पण्डित प्रचारक के रूप में तन्मय रहे। श्री शिवाकान्तजी

वयस्क होने के साथ ही आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्य एवं सभासद् बने। एक प्रकार से आर्यसमाज कलकत्ता इनकी निर्माण-भूमि है। शिवाकान्तजी जबतक कलकत्ता में रहे, कलकत्ता के कई आर्यसमाजों का प्रचारभार सम्भालते रहे। आर्यसमाज बड़ाबाजार, आर्यसमाज हावड़ा, आर्यसमाज भवानीपुर, आर्यसमाज मल्लिक बाजार, आर्य

पं० शिवाकान्तजी उपाध्याय

स्त्रीसमाज मल्लिक बाजार इत्यादि स्त्रीसमाजों के साप्ताहिक सत्संग इनकी देखरेख में चलते रहे। श्री शिवाकान्तजी कुछ वर्षों तक बंगाल प्रतिनिधि सभा के भी सदस्य रहे। उन दिनों शिवाकान्तजी की प्रेरणा से प्रतिनिधि सभा बंगाल का 'आर्यसमाज' नामक मासिक मुखपत्र पुनः प्रकाशित होना आरम्भ हुआ, किन्तु कुछेक अंक निकल कर बन्द हो गया। श्री शिवाकान्तजी कुछ दिनों तक गुरुकुल वैद्यनाथ धाम के सदस्य

रहे। आप सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की विद्यार्य-सभा और धमार्थ सभा के सदस्य रहे हैं।

श्री शिवाकान्तजी कुशल वक्ता, सफल व्याख्याकार और यशस्वी पुरोहित हैं। आपने पंण्डित अयोध्या प्रसादजी के सम्पर्क में वैदिक गणित का कुछ अभ्यास किया था। वेदव्याख्या, यज्ञ, कर्मकाण्ड में आपकी विशेष अभिरुचि है। सन् १९८२ ई० में आप दिल्ली चले गये, और आजकल आर्यसमाज राजेन्द्रनगर, दिल्ली में रहते हुए दिल्ली के आर्यसामाजिक जगत् में वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार में लगे हुए हैं। श्री शिवाकान्तजी साइन्स के विद्यार्थी रहे हैं और यज्ञ के वैज्ञानिक पक्ष आपके कुछ महत्त्वपूर्ण लेख सामयिक पत्रों में प्रकाशित हो चुके हैं।

विद्याभास्कर पंडित आत्मानन्दजी शास्त्री

आर्यसमाज कलकत्ता के विशाल-विस्तृत कार्यक्षेत्र में पं० आत्मानन्दजी शास्त्री हर समय समर्थ सहयोगी के रूप में समाज-मन्दिर में विद्यमान रहते हैं। पं० आत्मानन्दजी का जन्म उत्कल प्रान्त के वालेश्वर जिले में देहड़दा ग्राम में सन् १९४२ ई० में हुआ था। आपके पिता श्री हरचरणनाथजी रुद्रज ब्राह्मण वंशीय अलेख सम्प्रदाय के कट्टर समर्थक थे। उन्होंने अपने १४ वर्षीय पुत्र को अपने सम्प्रदाय के ख्यातनामा संन्यासी स्वामी रंगाचार्य को सौंप दिया। स्वामी रंगाचार्यजी आत्मानन्दजी को लेकर मेदिनीपुर आये। वहाँ आत्मानन्दजी विधावनी ग्राम के हाईस्कूल में अध्ययन करने लगे। उसी समय स्वामी रंगाचार्य ने 'ईश्वर साकार है या निराकार' विषय पर शास्त्रार्थ का आयोजन कराया। पौराणिक पंडित मण्डली के विरुद्ध स्वामी रंगाचार्य के साथ आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री शास्त्रार्थ करने के लिये पहुँचे। पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री के शास्त्रार्थ और व्याख्यानों से प्रभावित होकर आत्मानन्दजी आर्यसमाज की ओर

आकृष्ट हो गये और आर्यसमाज कलकत्ता में आये। उन दिनों आर्यसमाज कलकत्ता के आचार्य पण्डित रमाकान्तजी शास्त्री थे। आचार्यजी ने किशोर आत्मानन्द के गैरिक वस्त्रों को देखकर उनसे परिचय प्राप्त किया और आचार्यजी स्वयं इन्हें पढ़ाने-लिखाने लगे। उस समय आर्यसमाज कलकत्ता के प्रधान महाशय रघुनन्दनलालजी ने

विद्याभाष्कर पं० आत्मानन्दजी शास्त्री

आत्मानन्दजी के भोजन-आवास की व्यवस्था कर दी। आ० रमाकान्तजी आत्मानन्दजी को नित्य संस्कृत और स्वामी दयानन्दजी के ग्रन्थों को पढ़ाते थे और इन्हें वैदिक मिशनरी बनाना चाहते थे। आचार्य रमाकान्तजी की सिफारिश पर महाशय रघुनन्दनलालजी और आर्यसमाज कलकत्ता ने आत्मानन्दजी को गुरुकुल, ज्वालापुर में

पढ़ने को भेज दिया। गुरुकुल ज्वालापुर में पण्डित लक्ष्मीनारायणजी चतुर्वेदी की विद्वत्तापूर्ण स्नेहमयी छाया में इन्होंने विद्याभास्कर, शास्त्री और साहित्यरत्न की उपाधियाँ प्राप्त कीं।

विद्यार्थी जीवन समाप्त कर आत्मानन्दजी कलकत्ता को अपना कार्यक्षेत्र बनाकर आर्य समाज में पौरोहित्य कार्य करने लगे। इधर सार्वदेशिक सभा आर्यसमाज के प्रचार के लिए उड़ीसा में कुछ योजना बना रही थी। उसी योजना में आत्मानन्दजी भी सन् १९७३ ई० में सार्वदेशिक सभा की ओर से आर्यसमाज का प्रचार करने के लिये उड़ीसा चले गये और उड़ीसा के सुदूर अंचलों में आर्यसमाज का प्रचार करते रहे। आत्मानन्दजी सन् १९७४ ई० फिर कलकत्ता लौट आये। तबसे कलकत्ता के कई आर्यसमाजों में प्रचार करना, सत्संग कराना, पौरोहित्य करना इनके जीवन का नित्य कार्य है। आत्मानन्दजी युवक, सौम्यमूर्ति, निष्ठावान् मिशनरी के रूप में अकुंठित भाव से इस विशाल नगरी में क्रियाशील हैं।

स्वामी ब्रह्मानन्दजी सरस्वती

स्वामी श्री ब्रह्मानन्दजी सरस्वती का संन्यास लेने से पूर्व का नाम श्री युधिष्ठिर आर्य था। स्वामीजी का जन्म उड़ीसा प्रान्त के बालेश्वर जिला में बैतरणी नदी के किनारे सुदामपुर गाँव में वैशाख महीने की अक्षय तृतीया सन् १९२० ई० में हुआ था। आपके पिताजी का नाम श्री कालीचरण और माताजी का नाम श्रीमती शोभा देवी था। परिवार में पर्याप्त धार्मिक भावना थी। अभी बालक युधिष्ठिर चार वर्ष के ही थे कि माता शोभा देवी का देहान्त हो गया और बालक का पालन-पोषण पितामही श्रीमती हार देवी ने किया।

स्वास्थ्य की निर्बलता के कारण बालक युधिष्ठिर का अध्ययन सुचारु रूप से नहीं चल रहा था, किन्तु स्वतन्त्रता की भावना हृदय में काम कर रही थी। जिस समय आप नवमी कक्षा में पढ़ रहे थे, आपने स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेना आरम्भ कर दिया था।

१९४७ ई० में जब देश स्वाधीन हो गया, उस समय हिन्दू-मुस्लिम दंगे से पीड़ित उड़ीसा वासियों की सेवा करने के लिये युधिष्ठिरजी मटियाबुर्ज, कलकत्ता आये। कलकत्ता में आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव हो रहा था। वार्षिकोत्सव के व्याख्यानों का युधिष्ठिरजी पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा और वे प्रसिद्ध मिशनरी उपदेशक पंडित अयोध्या

स्वामी ब्रह्मानन्दजी सरस्वती

प्रसादजी के सम्पर्क में आये। पण्डित अयोध्या प्रसादजी की प्रेरणा से आपने वैदिक साहित्य का स्वाध्याय किया और कट्टर आर्यसमाजी बन गये।

वैदिक साहित्य के स्वाध्याय से आपके मन में देशसेवा के साथ संन्यास की प्रवृत्ति भी पैदा हो गयी। श्री युधिष्ठिरजी ने १९५० ई० में

बसन्त पंचमी के दिन आर्य प्रतिनिधि सभा, पटना (बाँकीपुर) में प्रसिद्ध संन्यासी स्वामी अभेदानन्दजी सरस्वती से संन्यास की दीक्षा ली और तबसे आपका नाम स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती पड़ गया।

स्वामी ब्रह्मानन्दजी राजामण्डी, आगरा की शुद्धिसभा में सन् १९५४ ई० तक संस्कृत भाषा और वैदिक सिद्धान्त पढ़ते रहे। उड़ीसा के माननीय नेता श्री हरेकृष्ण मेहताब ने स्वामी ब्रह्मानन्दजी को उड़ीसा में धर्मप्रचार और जनसेवा करने की प्रेरणा दी। स्वामीजी आगरा से राउरकेला वेदव्यास में आये और धर्मप्रचार, शुद्धि, जनसेवा आदि करने लगे।

इस समय से स्वामी ब्रह्मानन्दजी आर्यसमाज कलकत्ता के अंगसंग बन गये। आर्यसमाज कलकत्ता ने तभीसे स्वामीजी के हर कार्य में खुलकर सहयोग किया है। स्वामीजी ने पानपोस वेदव्यास गुरुकुल की स्थापना की और इस गुरुकुल के लिए कलकत्ता के आर्यसमाजी सदा उदारतापूर्वक सहायता करते रहते हैं।

स्वामीजी ने उड़ीसा में पाँच गुरुकुलों की स्थापना की है। पाँच दयानन्द उच्चविद्यालय, चार आश्रम तथा चार धर्मार्थ औषधालय स्वामीजी की व्यवस्था में चल रहे हैं। स्वामीजी शिक्षा-प्रचार के साथ ही शुद्धि का कार्य भी बड़ी सफलता से करते हैं। स्वामीजी ने २०-२२ हजार वनवासी ईसाइयों को शुद्ध करके पुनः हिन्दूधर्म में सम्मिलित किया और लाखों लोगों को ईसाई होने से बचाया।

स्वामी ब्रह्मानन्दजी में धर्मप्रचार और जनसेवा की तीव्र उत्कंठा कार्य कर रही है। आजकल आपका स्वास्थ्य निर्बल है फिर भी आप धर्म-प्रचार में निरलस भाव से तत्पर हैं।

डा० वाचस्पतिजी उपाध्याय

श्री वाचस्पति उपाध्यायजी का जन्म १ जुलाई १९४३ ई० को जिला सुल्तानपुर (उ० प्र०) में झौआरा नामक ग्राम के प्रसिद्ध उपाध्याय

परिवार में हुआ था। आपके पिता आचार्य पण्डित रमाकान्तजी शास्त्री आर्यसमाज के प्रतिष्ठित-सुविख्यात पण्डित एवं उपदेशक थे। आपकी माता श्रीमती तपेश्वरी देवी परम सरला, तपस्विनी, कुशल महिला थीं। श्री उपाध्यायजी का परिवार संस्कृत विद्या की दृष्टि से अति विख्यात रहा है। आपके पिताजी आचार्य रमाकान्तजी शास्त्री

डा० वाचस्पतिजी उपाध्याय

आर्यसमाज कलकत्ता के प्रतिष्ठित विद्वान् एवं आचार्य थे। इस प्रकार डा० वाचस्पति को आर्यसमाज के संस्कार जन्म से ही उपलब्ध हो गये थे। डा० उपाध्याय की सम्पूर्ण शिक्षा कलकत्ता में ही हुई। आचार्य रमाकान्तजी ने अपने एकमात्र पुत्र वाचस्पतिजी को स्वामी दयानन्दजी के आदर्शों के अनुकूल एक बुद्धिजीवी आदर्श पण्डित बनाने का प्रयास

किया। डा० उपाध्याय की निर्माणस्थली आर्यसमाज कलकत्ता है और इतने सुयोग्य और निष्ठावान् विद्वान् के ऊपर किसी भी संस्था को गर्व होना स्वाभाविक है।

श्री वाचस्पतिजी की शिक्षा आरम्भ से ही कलकत्ता में हुई। आप आरम्भ से ही मेधावी एवं सुयोग्य विद्यार्थी थे। आपने सन् १९६२ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। पारिवारिक परम्परा और परिवेश की भूमिका में आपको संस्कृत विद्या में विशेष अभिरुचि रही। १९६६ ई० में आपने कलकत्ता विश्वविद्यालय से ही प्रामाण्यवाद पर शोधग्रन्थ प्रस्तुत करके डी० फिल्० की उपाधि प्राप्त की। १९७० ई० में बनारस से 'प्राचीन भारत में अन्ताराष्ट्रिय सम्बन्ध' विषय पर शोधग्रन्थ लिखकर आपने डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त की। इस प्रकार डा० वाचस्पति उपाध्याय एम० ए०, डी० फिल्०, डी० लिट्० की उपाधि से अलंकृत होकर संस्कृत विद्वन्मण्डली में विशेष रूप से प्रतिष्ठित हो गये।

डा० वाचस्पति १९६७ ई० में संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी में परीक्षा-अधिकारी एवं कुलसचिव नियुक्त हुए। १९७० से ७५ ई० तक दिल्ली विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग के प्राध्यापक रहे। आपने १९७५-७६ ई० में गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी में समकुलपति के पद पर कार्य किया। आप १९७६ ई० में पुनः दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में प्राध्यापक पद पर आ गये। सम्प्रति डा० उपाध्याय दिल्ली विश्वविद्यालय के दक्षिण परिसर में प्रोफेसर-इन-चार्ज के पद पर प्रतिष्ठित हैं।

डा० उपाध्याय ने एक अध्यापक के रूप में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की है। आपने बीसों छात्रों के डी० फिल्० आदि शोधप्रबन्धों का निर्देशन किया है। डा० उपाध्याय के कई वैदुष्यपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें प्रमुख निम्न प्रकार हैं—

१. मीमांसा दर्शन विमर्श
२. मीमांसार्थ संग्रह
३. धर्मशास्त्र संग्रह (दो भागों में)
४. सेश्वर मीमांसा

इन प्रतिष्ठित प्रकाशनों पर डा० उपाध्याय को विभिन्न संस्थानों ने पुरस्कृत किया है। आपके मीमांसा दर्शन विमर्श पर हनुमान टेम्पल ट्रस्ट, कलकत्ता ने १९७६ ई० में 'हनुमान विद्यावृत्ति' पुरस्कार देकर डा० उपाध्याय को सम्मानित किया। उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी ने १९७८ ई० में आपके मीमांसा दर्शन विमर्श पर आप को पुरस्कृत किया।

डा० उपाध्याय अपनी अध्यापनकला और विद्वत्ता के कारण कई विश्वविद्यालयों में अतिथि आचार्य आदि के रूप में व्याख्यान देने और अनुसंधान-पदवी-समिति में आमन्त्रित होते रहते हैं।

डा० वाचस्पति उपाध्याय ने १९८२ ई० में संस्कृत विद्या के विद्वान् प्राध्यापक के रूप में विदेश यात्रा की। आपने जर्मनी और स्विट्जरलैण्ड में वेद और भारतीय दर्शन पर कई गवेषणात्मक व्याख्यान दिये। उत्तर प्रदेश के गवर्नर महोदय ने डा० उपाध्याय को मेरठ विश्वविद्यालय में संस्कृत का विशेषज्ञ नियुक्त किया। भारतवर्ष के अनेक विश्व-विद्यालयों में—मद्रास और तिरूपति से लेकर उज्जैन, कुरुक्षेत्र, चण्डीगढ़, सागर, गोरखपुर आदि में भारतीय दर्शन पर व्याख्यान देने के लिए आमन्त्रित हुए।

डा० उपाध्याय का सम्पूर्ण परिवार विद्वान् पुरोहितों की हैसियत से आर्यसमाज की सेवा में लगा हुआ है। डा० उपाध्याय के पिताजी आचार्य रमाकान्त शास्त्री आर्यसमाज कलकत्ता के आचार्य ही नहीं थे, बल्कि यों कहना चाहिए कि आर्यसमाज कलकत्ता में होनेवाली

सम्पूर्ण गतिविधियों के प्राणस्वरूप थे। आपके पितृव्य प्रो० उमाकान्त उपाध्याय एवं प्रो० श्रीकान्त उपाध्याय, श्री शिवाकान्त उपाध्याय कलकत्ता और दिल्ली में आर्यसमाज की सेवा में समर्पित हैं। डा० वाचस्पति स्वयं विश्वविद्यालय की सम्पूर्ण व्यवस्थाओं के साथ आर्यसमाज की सेवा में बड़ी श्रद्धा एवं लगन से रुचि लेते हैं। डा० उपाध्याय ने अपने बीसों नवयुवक विद्यार्थियों को दिल्ली विश्वविद्यालय से एम० ए० की परीक्षा पास करा दिल्ली में आर्यसमाज के प्रचार एवं पौरोहित्य कार्य में संलग्न करने का यश प्राप्त किया है। डा० उपाध्याय स्वयं आर्यसमाज के निष्ठावान् मनीषी एवं विचारशील विद्वान् हैं।

आर्यसमाज कलकत्ता डा० उपाध्याय की निर्माणस्थली है। आर्यसमाज कलकत्ता के साथ उनके विद्यार्थी जीवन की बहुत सारी मधुर स्मृतियाँ संलग्न हैं। डा० उपाध्याय ने यहीं वेद का पाठ-स्वाध्याय का आरम्भ किया था। आर्यसमाज कलकत्ता की छत्रछाया में और अपने आदर्श प्रचारक पिताजी के निर्देश में यहीं डा० उपाध्याय ने व्याख्यान मंचों को सुशोभित करना सीखा था। आर्यसमाज कलकत्ता अपने इस प्रकार के ख्यातिप्राप्त विद्वान् पर हर्ष एवं गर्व का अनुभव करता है।

एकादश अध्याय

साहित्यिक कार्य

जिस समय आर्यसमाज की स्थापना हुई उस समय कलकत्ता भारत-वर्ष के अंग्रेजी राज्य की राजधानी था। अतः कलकत्ता का प्रशासकीय गौरव कुछ और प्रकार का होना स्वाभाविक था। विद्या के विस्तार और सांस्कृतिक चेतना की दृष्टि से भी कलकत्ता का अपना स्थान था। राजा राममोहन राय द्वारा संस्थापित ब्राह्मसमाज समाज-संस्कार के कार्यों में लगा था और इसकी बागडोर देवेन्द्रनाथ ठाकुर जैसे सुधी विद्वानों के हाथों में थी। ब्राह्मसमाज के साहित्यिक कार्य अपने ढंग से महत्त्वपूर्ण थे। ब्राह्मसमाज की ही एक दूसरी धारा का नेतृत्व केशवचन्द्र सेन के हाथों में था और नव ब्राह्मसमाज का नव विधान ब्राह्मसमाज में पृथक् धारा होते हुए भी वैचारिक एवं सामाजिक दृष्टि से अपने में महत्त्वपूर्ण था। दोनों ही ब्राह्मसमाज भारतीयता के कट्टर परिपोषक न थे। यह अलग बात है कि नवीन विधान के स्रष्टा केशवचन्द्र सेन की रुझान पश्चिमी सभ्यता और ईसाईयत की ओर अधिक थी। एक और भी धारा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के रूप में कलकत्ता में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती थी। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर संस्कृत के विद्वान्, लेखक, समाजसुधारक एवं स्वयं ही प्रकाशक भी थे। ईश्वरचन्द्रजी ने अपना प्रेस भी खोल रखा था। उनके ग्रन्थों का प्रकाशन उनके अपने ही प्रेस में होना आरम्भ हो गया था। इस सब क्रियाशीलता का प्रभाव स्वामी दयानन्दजी पर उनके आगमन के

समय अवश्य पड़ा होगा। ऐसा सोचना बहुत अनुपयुक्त न होगा कि वैदिक यन्त्रालय की योजना के पीछे कलकत्ता का यह प्रभाव भी कारण रहा हो।

कलकत्ता से पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन भी अच्छी तरह हो रहा था। बंगला और अंग्रेजी का तो अपना स्थान था ही, उस प्राचीन समय में हिन्दी पत्रकारिकता की दृष्टि से भी कलकत्ता का अपना गौरवपूर्ण स्थान रहा है। स्कूली पुस्तकें, ईसाइयों के प्रकाशन, इतिहास और संस्कृति के तुलनात्मक अध्ययन सबकी जड़ें कलकत्ता में जम चुकी थीं। कालेज, यूनिवर्सिटी, संस्कृत विद्यालय सभी कुछ अपने-अपने ढंग से विकसित हो रहे थे। इस बहुमुखी सांस्कृतिक एवं साहित्यिक चेतना के दौरान सन् १८८५ ई० में आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना हुई। सौभाग्य की बात थी कि उस समय श्री शंकरनाथ पंडित के रूप में आर्यसमाज कलकत्ता को एक साहित्यिक विद्वान् की सौभाग्य-पूर्ण उपलब्धि हो गयी थी। पं० शंकरनाथजी आरम्भ से ही आर्य-समाज कलकत्ता के अंगसंग के रूप में रहे थे। उनकी साहित्यिक सेवाओं का ऐतिहासिक विवरण उनकी जीवनी के साथ इतिहास के पन्नों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस साहित्यिक कार्य का महत्त्व नींव के पत्थरों के समान है। उस समय आर्यसमाज की कलकत्ता में नींव पड़ रही थी और पं० शङ्करनाथजी के साहित्य ने इस भूमिका को बहुत अच्छी तरह निभाया। उनके साहित्यिक कार्यों की इसी गरिमा के कारण हमने उनके कार्यों की सूची द्वितीय अध्याय में दे दी है। पण्डित शङ्करनाथजी के कार्यों की झलक द्वितीय अध्याय में ही देखना चाहिये।[१]

पं० शंकरनाथजी के साहित्यिक कार्यों के पीछे राजा तेजनारायण (तात्कालिक प्रधान, आर्यसमाज कलकत्ता) की सम्पन्नता और

१—द्रष्टव्य द्वितीय अध्याय पृ० २३-२६।

उठी, जिसका साहित्य की दृष्टि से आर्यसमाज कलकत्ता के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। आज आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध प्रकाशक और पुस्तक-विक्रेता 'गोविन्दराम हासानन्द' संस्था का आरम्भ आर्यसमाज कलकत्ता के इतिहास में महत्त्वपूर्ण है। गोविन्दरामजी आर्यसमाज कलकत्ता के पुस्तकाध्यक्ष और मन्त्री के पदों पर बहुत दिनों तक सुशोभित रहे हैं। इसी काल में इन्होंने साहित्यसेवा का कार्य आरम्भ किया था। यह कलकत्ता का लघु बीज विशाल वटवृक्ष के रूप में इस समय दिल्ली में अपनी छाया के लिए आर्यजगत् में सुप्रसिद्ध है।

श्री गोविन्दरामजी का जन्म संवत् १६४३ विक्रमी में सिन्ध प्रान्त में शिकारपुर में हुआ था। पैतृक परम्परा से ये वल्लभाचार्य सम्प्रदाय के वैष्णव थे। परिवार में धार्मिक गोभक्त वातावरण था। इनके पिता श्री हासानन्दजी बड़े गोभक्त थे। इनके पिताजी सन् १८६६ ई० में कलकत्ता आ गये। इस प्रकार गोविन्दरामजी कलकत्ता में अपने व्यापार के सिलसिले में आये। सन् १६०३ ई० में श्री हासानन्दजी अपने व्यापार से लगभग तटस्थ-से होकर गोरक्षा के कार्य में लग गये। इस समय गोविन्दरामजी की आयु १७ वर्ष की थी।

आर्यसमाज से सम्पर्क :

गोविन्दरामजी अपना व्यवसाय करते हुए कुछ आर्यसमाजी मित्रों के सम्पर्क में आये। इन मित्रों के सम्पर्क से गोविन्दरामजी का झुकाव आर्यसमाज की ओर हो गया। कट्टर वल्लभाचार्य परिवार में नवयुवक पुत्र का आर्यसमाजी संस्कार पर्याप्त क्षोभ का कारण बना। इनकी माताजी का तो आगे ही देहान्त हो गया था। इनके पिताजी श्री हासानन्दजी और इनकी विमाताजी गोविन्दरामजी से बहुत असन्तुष्ट रहने लगे। पर गोविन्दरामजी की आर्यसामाजिक निष्ठा

अपनी जगह पर बहुत दृढ़ थी। गोविन्दरामजी ने उस समय की अपनी प्रतिक्रिया को स्वयं लिखा है :—

"ज्यों-ज्यों माता-पिता विरोध करते गये, मेरा आर्यसमाज के प्रति प्रेम बढ़ता ही गया। मेरे माता-पिता कट्टर वैष्णव व मूर्ति-पूजक थे। जब भी किसी आर्यसमाजी मित्र के साथ वे मुझे देखते थे तब तुरन्त ही डाँट-फटकार करने लगते थे। कई बार मारपीट भी मुझे सहन करनी पड़ जाती थी। परन्तु धर्म का सम्बन्ध तो आत्मा से है, शरीर से नहीं। माता-पिता की डाँट-फटकार और मारपीट से मेरा आर्य-समाज से प्रेम घटने के स्थान पर बढ़ता ही गया। अन्त में मुझे घर से निकाल दिया था।"[१]

गोविन्दरामजी की आर्यसमाजी निष्ठा बढ़ती ही गयी। इन्होंने लाभ भी कमाया और घाटा भी उठाया। जीवन के इस उतार-चढ़ाव के समय सिन्ध प्रदेश के ही एक आर्यसमाजी श्री गोकुलचन्द्रजी से इनकी मित्रता हो गयी और दोनों ने मिल कर "गोकुलचन्द्र गोविन्दराम" नाम से स्वदेशी कपड़े की दूकान बहूबाजार में कर ली। यह दूकान अच्छी चली और इसी दूकान पर आर्यसमाज का साहित्य भी रखने और बेंचने लगे। उस समय सत्यार्थ प्रकाश और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका आदि ग्रन्थों का बंगला अनुवाद तो नहीं सुलभ था, किन्तु 'गोकुलचन्द्र गोविन्दराम' के कैशमेमो के पीछे इन पुस्तकों का विज्ञापन ये दोनों मित्र बंगला भाषा में छपवा दिया करते थे। इस प्रकार आर्यसाहित्य की चर्चा और प्रचार का सुन्दर-सा उपक्रम बन गया। गोविन्दरामजी लगनशील आर्यसमाजी तो थे ही, बाहर से आने वाले विद्वानों का आतिथ्य भी अपने यहाँ करते थे। पंजाब प्रतिनिधि सभा के पं० पूर्णानन्दजी उस समय कलकत्ता आये थे और

---

१. वेदप्रकाश जीवनी विशेषांक—अप्रैल-मई, १९६०, पृष्ठ ३५५

३-४ मास तक इन्हींके यहाँ भोजन करते रहे थे। पंडितजी के इस पारिवारिक सम्पर्क से गोविन्दरामजी की पत्नी की भी आर्यसमाजी निष्ठा दृढ़ हो गयी।

श्री गोविन्दरामजी आरम्भ से ही आर्यसमाज कलकत्ता के सभासद् थे। ऐसी लगन और सेवाभाव के व्यक्ति आर्यसमाज के संगठन में शीघ्र ही अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका बनाकर लोकप्रिय हो गये। इनकी साहित्यिक अभिरुचि तो थी ही, ये आर्यसमाज कलकत्ता के कई वर्षों तक पुस्तकाध्यक्ष रहे। ये आर्यसमाज कलकत्ता के मन्त्री भी कई वर्षोंतक रहे थे। आर्यसमाज में कार्य करते इन्हें दृढ़ विश्वास हो गया कि मौखिक प्रचार के साथ ही साहित्य-प्रचार की ओर भी ध्यान देना अति आवश्यक है। फलतः इन्होंने आर्यसमाज कलकत्ता के बिक्री विभाग को चालू किया।

आर्यसमाज कलकत्ता का पुस्तकालय और बिक्री विभाग :

इतिहास की दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण घटना है जिसे हम वेदप्रकाश के उपर्युक्त अंक के आधार पर दे रहे हैं। श्री गोविन्दरामजी ने अपने अन्य ३ मित्रों के सहयोग से ५०-५० रु० के चार हिस्से मिला कर २०० रु० एकत्र कर लिये। इसी २०० रु० की पूंजी से आर्यसमाज कलकत्ता के आधीन एक पुस्तकालय बिक्री विभाग स्थापित किया गया। इस प्रकार कलकत्ता में आर्यसाहित्य की बिक्री की एक प्रभावशाली योजना बन गयी। कलकत्ता हिन्दी अंचल से बहुत दूर है। यहाँ हिन्दी पाठकों की संख्या भी अधिक न थी और आर्यसाहित्य को व्यावसायिक रूप से चलाना कठिन था। इन सब प्रसंगों पर विचार करने से गोविन्दरामजी का यह कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण प्रमाणित हुआ। इन्होंने प्रचार की दृष्टि से ओ३म्, वेदमन्त्र, नमस्ते, स्वागतम् आदि

के मोटो भी छपवाये। स्वामी दयानन्द एवं अन्य आर्यनेताओं के चित्र भी छपवाये। इन सबका बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा।

सत्यार्थ प्रकाश का सुन्दर-सस्ता संस्करण :

सन् १६२५ ई० में मथुरा में श्रीमद्दयानन्द जन्म-शताब्दी महोत्सव मनाया जाने वाला था। आर्यजगत् के इतिहास में वह त्याग, बलिदान और उल्लास का युग था। उमंग और उत्साह से आर्यजनता झूम उठी थी। श्री गोविन्दरामजी उस समय आर्यसमाज कलकत्ता के पुस्तकाध्यक्ष थे और बिक्री विभाग के भी यही अध्यक्ष थे। इनके मस्तिष्क में महर्षि के प्रति एक दीवानापन समा गया था। ऋषि के अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' का एक सस्ता-सुन्दर संस्करण प्रकाशित करने के लिए ये ललक उठे। उस समय वैदिक यन्त्रालय ने सत्यार्थ प्रकाश का मूल्य एक रुपया से बढ़ा कर ढाई रुपये करने की घोषणा कर दी थी। उससे गोविन्दरामजी को और भी ठेस लगी। इन्होंने कलकत्ता में प्रकाशन की व्यवस्था पर विचार किया और इनके अनुमान से सत्यार्थ प्रकाश का प्रकाशनव्यय बारह आने प्रति पुस्तक पड़ता था। अतः एक रुपया प्रति बेंचने में हानि की सम्भावना न थी। स्वामी श्रद्धानन्दजी की प्रेरणा से और उनके परामर्श से गोविन्दरामजी ने ६ हजार प्रतियाँ सत्यार्थ प्रकाश की छपवा दीं और लागत मूल्य एक रुपया में बेंच दिया। तीन महीने के स्वल्प काल में ६ हजार प्रतियों का बिकना एक परम उत्साह की बात थी। गोविन्दरामजी और उनकी कार्यस्थली आर्यसमाज कलकत्ता सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार के इतिहास में इस दृष्टि से उस समय एक प्रचारात्मक भूमिका निभाते दिखाई पड़ रहे हैं। वैदिक यन्त्रालय ने भी सत्यार्थ प्रकाश का मूल्य एक रुपया कर दिया और फिर तो सस्ते संस्करणों की ऐसी बाढ़ आयी कि सम्भवतः चार आने प्रति के मूल्य में भी सत्यार्थ प्रकाश का एक संस्करण निकला था। इन कार्यों के पीछे श्री गोविन्दरामजी और कलकत्ता आर्यसमाज की अपनी भूमिका अवश्य ही महत्त्वपूर्ण है।

वेदतत्त्व प्रकाश का प्रकाशन :

श्री गोविन्दरामजी ने आर्यसमाज कलकत्ता के साथ कार्य करते हुए साहित्य के कई महत्त्वपूर्ण प्रकाशन कर दिये थे। उनमें एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रकाशन है 'वेद तत्त्व प्रकाश'—ॠग्वेदादि भाष्य भूमिका का टीका-टिप्पणी सहित प्रकाशन। जिस समय पं० अयोध्या प्रसादजी शिकागो सम्मेलन में भाग लेने अमेरिका चले गये उस समय पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति कलकत्ता आर्यसमाज के आचार्य नियुक्त किये गये। पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति दर्शनभूषण एवं आदर्श विद्वान् थे। श्री गोविन्दरामजी ने उनसे ॠग्वेदादि भाष्य भूमिका का संस्करण सम्पादित करने का अनुरोध किया। यह संस्करण श्री गोविन्द रामजी ने सन् १९९२ विक्रमी में २२०० प्रतियों का प्रकाशित किया। इसके प्रकाशक तथा मुद्रक के रूप में गोविन्दराम हासानन्द वैदिक प्रेस, ८०, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता का उल्लेख है। पं० सुखदेवजी ने ॠग्वेदादि भाष्य भूमिका के इस संस्करण में कई तरह के उपयोगी कार्य किये, जिनसे परवर्ती प्रकाशकों को लाभ हुआ। इस संस्करण में पं० सुखदेवजी ने उपयोगी टीका-टिप्पणियाँ दी हैं और ग्रन्थ के अन्त में अकारादि क्रम से प्रमाण-सूची भी जोड़ दी है।

कहीं सुस्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है, किन्तु श्री गोविन्दरामजी आर्यसमाज की सेवा करते हुए आर्यसाहित्य के प्रकाशन और बिक्रय को अपनी आजीविका के रूप में अपना चुके थे। कलकत्ता रहते हुए इन्होंने अन्य जिन ग्रन्थों का प्रकाशन किया उनकी संक्षिप्त-सी सूची निम्न प्रकार है :—

(१) संस्कार प्रकाश—संस्कारविधि का यह संस्करण पं० रामगोपाल विद्यालंकार ने तैयार किया था। समस्त मन्त्रों का भावार्थ हिन्दी में छापा गया है।

(२) आर्य पथिक लेखराम—स्वामी श्रद्धानन्दजी द्वारा लिखित आर्य पथिक श्री लेखरामजी का जीवन चरित्र

(३) वीर संन्यासी श्रद्धानन्दजी—लेखक पं० रामगोपालजी विद्यालंकार

(४) श्री मद्दयानन्द प्रकाश—श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती द्वारा लिखित ऋषि दयानन्द की जीवनी

(५) दर्शनानन्द ग्रन्थमाला—प्रथम भाग व द्वितीय भाग

(६) विधवा विवाह—पं० ईश्वरचन्द्रजी विद्यासागर की बंगला पुस्तक का हिन्दी अनुवाद

(७) वैदिक सिद्धान्त व्याख्यानमाला—स्वामी नित्यानन्दजी के व्याख्यानों का संग्रह

(८) पतितों की शुद्धि शास्त्रसम्मत है—लेखक पं० शिवकुमारजी शास्त्री

(९) ईश और केन उपनिषदों का भाष्य—पं० पूर्णानन्दजी महोपदेशक

(१०) उपासना योग व भक्तिमार्ग—गुटका

(११) वैदिक धर्म शिक्षा

(१२) गृहस्थ कर्तव्यशिक्षा

(१३) वेद और संसार के मतमतान्तर—पं० सुरेन्द्रजी शर्मा काव्यतीर्थ

(१४) पंच महायज्ञ विधि

(१५) गो-करुणानिधि

(१६) आर्यसमाज का परिचय—स्वामी अनुभवानन्दजी द्वारा लिखित

(१७) पौराणिक ढोल की पोल

(१८) वीर बच्चों की कहानियाँ

(१९) वैष्णव मत का संक्षिप्त इतिहास और गोसाइयों की लीला

(२०) इस्लाम कैसे फैला—लेखक पं० अयोध्या प्रसादजी बी० ए०, आर्य मिशनरी, आचार्य, आर्यसमाज कलकत्ता

दानशीलता भी प्रमुख कारण है। राजा तेजनारायण सिंह ने २०,००० रुपये देकर आर्यावर्त्त प्रेस चालू कराया था और पं० शंकरनाथजी ने अपने निवास-स्थान पर ही अपने पैतृक मकान में इस प्रेस के लिए दो कमरे दे दिये थे। वहाँ से योगदर्शन का व्यासभाष्य, सत्यार्थ प्रकाश का बंगला अनुवाद पंच महायज्ञ विधि इत्यादि कई पुस्तकों का प्रकाशन हुआ था। यह सब हम अन्यत्र लिख आये हैं।[१]

श्री गोविन्दराम हासानन्दजी
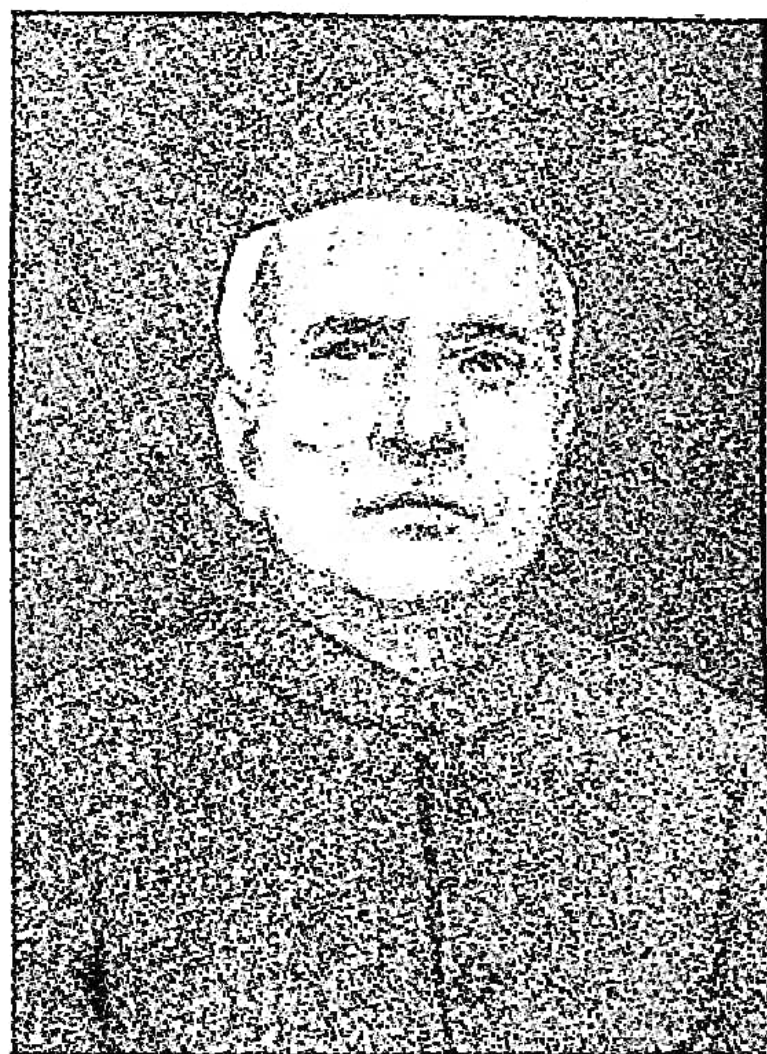
श्री गोविन्दराम हासानन्दजी

आर्यसमाज कलकत्ता से कुछ-न-कुछ साहित्यिक कार्य होता ही रहा है। यहाँ एक विशेष साहित्यिक संस्था प्रकाशक के रूप में पनप

१—द्वितीय अध्याय पृ० २१-२४।

(२१) इस्लाम का परिचय
(२२) इस्लाम के विश्वासों पर विचार-दृष्टि
(२३) पादरी साहब और भोंदू जाट का शास्त्रार्थ—स्वामी दर्शनानन्दजी
(२४) बाल-शिक्षा—प्रथम भाग व द्वितीय भाग—स्वामी दर्शनानन्दजी
(२५) प्राणायाम विधि—महात्मा नारायण स्वामी
(२६) सत्यनारायण की प्राचीन कथा

इन सब आर्य-प्रकाशनों का श्रेय श्री गोविन्दरामजी को है। ये सन् १९३९ ई० में कलकत्ता से दिल्ली चले गये।

श्री गोविन्दरामजी का वैदिक प्रेस जो पीछे ८०, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट में चला गया, कभी कन्या विद्यालय और आर्यसमाज मन्दिर के साथ २० कार्नवालिस स्ट्रीट में था। इस दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण लगता है कि आर्यसमाज कलकत्ता ने श्री गोविन्दरामजी के वैदिक प्रेस को पर्याप्त अपनाया था। यों तो गोविन्दरामजी सन् १९३१-३२ ई० आदि के वर्षों में आर्यसमाज कलकत्ता के मन्त्री थे और उस समय पं० सुरेन्द्रजी शर्मा 'गौड़' आर्यसमाज कलकत्ता के प्रचार मन्त्री थे। इस प्रकार पं०सुरेन्द्रजी शर्मा के संस्मरण विश्वसनीय हैं। पं० सुरेन्द्रजी शर्मा 'गौड़' ने अपने संस्मरण में लिखा है—

"सर्वप्रथम श्री महाशय गोविन्दराम हासानन्द का परिचय मुझे सन् १९३० ई० में कलकत्ता में हुआ। ब्रह्मा से लौटने पर आर्यसमाज, कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता के सदस्यों ने वहीं रोक लिया। आर्यसमाज के आर्यकन्या विद्यालय के भवन २०, कार्नवालिस स्ट्रीट के द्वार के ऊपर के कमरे में (जहाँ कभी सरदार भगत सिंहजी आकर ठहरे थे) मैं तथा मेरे साथ के कमरे में महाशय गोविन्दरामजी रहते थे। नीचे उनका वैदिक प्रेस भी था। यह सन् १९३० ई० की घटना है।"[१]

१. द्रष्टव्य : आर्य-संसार का हीरक-जयन्ती विशेषाङ्क

श्री गोपालजी गिरधर के संस्मरणों के आधार पर सन् १९२६ ई० में श्री गोविन्दरामजी का वैदिक प्रेस २४, मन्दिर स्ट्रीट में था। यह जकरिया स्ट्रीट मुसलमानी पाढ़ा और मस्जिद के समीप ही जगह है। सन् १९२६ ई० में अप्रैल मास में आर्यसमाज कलकत्ता के वार्षिकोत्सव के अवसर पर आर्यसमाज के नगर-कीर्तन पर दीनू मियाँ की मस्जिद, हरिसन रोड से तैयारी के साथ हमला किया गया। श्री गोपालजी गिरधर स्वयं इस नगर-कीर्तन में सम्मिलित थे। वे लिखते हैं कि सन् १९२६ ई० में उस समय श्री गोविन्दरामजी जकरिया स्ट्रीट के पास २१, मन्दिर स्ट्रीट में रहते थे और वहीं उनका छापाखाना भी था। मुसलमानों ने इनके घर पर भी हमला किया था और छापाखाना को काफी क्षति पहुँचायी थी। श्री गोविन्दरामजी इस घटना के बाद २०, कार्नवालिस स्ट्रीट में अपना परिवार और प्रेस लेकर आ गये थे। इसीके पश्चात् वैदिक प्रेस मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट में गया। इस वर्णन का यहाँ इतना-सा अभिप्राय है कि आर्यसमाज कलकत्ता और आर्यकन्या विद्यालय सन् १९२६ ई० के झगड़े के बाद शरणार्थी शिविर बन गये थे जिनमें जकरिया स्ट्रीट, मन्दिर स्ट्रीट और आसपास के हिन्दुओं ने आकर शरण ली थी। २४, मन्दिर स्ट्रीट का भवन दानवीर बिड़ला परिवार का था। प्रायः सभी आवासहीन व्यक्ति बिड़लाजी की दानशीलता और सहायता के पात्र बने थे और वे सब आर्यसमाज और आर्यकन्या विद्यालय में आकर टिके थे। कन्या विद्यालय का भवन तो बिड़ला परिवार की उदारतापूर्ण दानशीलता का प्रतीक है ही, उस समय आर्यसमाज कलकत्ता ने इन शरणार्थियों की प्रशंसनीय सेवा की थी। यह हम अन्यत्र लिख चुके हैं।[1] यहाँ तो साहित्यिक कार्यों का प्रसंग है और इस स्थल पर उसका सम्बन्ध श्री गोविन्दरामजी और उनके वैदिक प्रेस से ही है।

---

१. द्रष्टव्य—षष्ठ अध्याय—सहायताकार्य एवं अष्टम अध्याय—सनातन धर्म और आर्यसमाज का सम्बन्ध

वेदभाष्य की योजना :

स्वामी दयानन्दजी सम्पूर्ण यजुर्वेद का भाष्य पूर्ण कर चुके थे। ऋग्वेद के सप्तम मण्डल ६१ वाँ सूक्त का भाष्य कर रहे थे कि उनका सन् १८८३ ई० में कार्तिक अमावस्या पर देहावसान हो गया। आर्य-जनों में यह बड़े शोक का प्रसंग था। स्वामीजी का देहान्त हो गया,

श्री आर्य मुनिजी

यह शोक की एक बात थी और वेदभाष्य अधूरा रह गया, यह भी बड़े शोक का प्रसंग था। कलकत्ता में रायबहादुर रलारामजी, श्री जय-नारायणजी पोद्दार, चौधरी छाजूरामजी और बाबू जगन्नाथ प्रसादजी सभी महर्षि के भक्त और वेदविद्या के भक्त थे। इन्होंने आगे के वेदभाष्य के लिए आर्थिक सहयोग जुटाने की व्यवस्था की। उधर

प्रसिद्ध विद्वान् श्री आर्यमुनिजी ऋषि के अधूरे वेदभाष्य को पूर्ण करने के लिये कृतसंकल्प थे। कलकत्ता के सेठों के सहयोग से यह वेदभाष्य का कार्य कुछ दूर तक आगे बढ़ सका। जहांतक ऋषि ने भाष्य किया था उसके आगे श्री आर्य मुनिजी ने ऋग्वेद का भाष्य आरम्भ किया। आर्य मुनिजी कृतसंकल्प थे। अपने वेदभाष्य की प्रस्तावना के अन्त में उन्होंने इस प्रकार लिखा है[1]—

"महर्षि श्री १०८ स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी के अनुयायी गहरी सुषुप्ति में सुषुप्त थे, आज महर्षि को मोक्षधाम प्राप्त हुए भी पूरे ३६ वर्ष हुए, किसीने भी उक्त वेदमयी कल्याणी वाणी का उद्धार नहीं किया अर्थात् ऋग्वेद मण्डल ६/६१/२ तक महर्षि का भाष्य हुआ था, आगे उसकी पूर्ति किसी ने भी न की, करता कौन? जबकि इस पूर्णाहुति के दिलाने वाले यजमान ही न थे—"

"ईश्वर की अपार दया से रायबहादुर रलारामजी, मुख्य अभियन्ता, बंगाल स्टेट रेलवे (Chief Engineer, Bengal State Railway), सेठ जयनारायण रामचन्द्र पोद्दार, श्रीयुत् बाबू छाजूराम और श्रीयुत् बाबू जगन्नाथ प्रसाद ने इस कार्य को पूर्ण कराने का उद्योग किया। आज्ञा पालन के लिए उपस्थित हुआ, जिसे आज ४० वर्ष महर्षि दयानन्द सरस्वती के दर्शन किये व्यतीत हो चुके हैं, केवल इतना ही नहीं किन्तु उक्त महर्षि के वचनों को सुनकर मैंने उनके गुरुभाव को उसी समय हृदय में धारण कर लिया था·····"

"उस समय उनके वेदरूपी वाक्यों के सुनने से मेरे हृदय में उनकी गुरुता का भाव बैठ गया और उसी दिन से मैंने उनके शिष्य भाव को स्वीकार किया। इस भाव से मैंने स्वामीजी

---

१. श्री आर्यमुनिजी कृत वेदभाष्य की प्रस्तावना

के शेष भाष्य को पूर्ण करना अपना मुख्य कर्तव्य समझा। जिन महानुभावों की सहायता से यह कार्य आरम्भ किया गया है उनके नाम निम्नलिखित श्लोकों में वर्णित है।"

यहाँ उन श्लोकों के उद्धरण की अधिक प्रयोजनीयता नहीं है। किन्तु इतना तो सुस्पष्ट ही है कि ये सब सज्जन वेदभाष्य के लिए आर्थिक सहायता देने वाले कलकत्ता निवासी तो थे ही साथ ही आर्यसमाज कलकत्ता के कार्यकर्त्ता एवं कर्णधार थे। यहाँ ५वें और छठे श्लोक के अन्त में यह सुस्पष्ट है कि कलकत्ता निवासी सेठों ने आर्थिक सहायता की थी और संवत् १९७४ (सन् १९१७ ई०) में आर्यमुनिजी ने ७वें मण्डल का भाष्य काशी में प्रकाशित किया।

इसी प्रकार ९वें मण्डल की प्रस्तावना के अन्त में संवत् १९७६ चैत्र शुक्ला दशमी काशी (सन् १९१९ ई०) लिखा हुआ है। जो पुस्तक हमने देखी है उसमें ९वें मण्डल के भाष्य की समाप्ति की सूचना है। इसके आगे आर्यमुनिजी का भाष्य हमारे संग्रह में नहीं है। आर्य मुनिजी ने ७वें मण्डल का भाष्य समाप्त करके भाष्य के उपसंहार के अन्त में लिखा है—

"विशेष रीति से हम दशम मण्डल की भूमिका में सब कलंकों को मार्जन करके वेद भगवान के निष्कलंक मुख को दर्शायेंगे।"

पुनः नवम मण्डल के भाष्य की समाप्ति पर छपा है—

"इति श्री आर्यमुनिनोपनिबद्धे—
ऋक् संहिता भाष्ये सप्तमेऽष्टके
नवमं मण्डलं समाप्तम्"

इससे आगे उपसंहार के अन्त में उसी पुस्तक में छपा है—

"इन आक्षेपों का सामूलोच्छेद और ब्राह्मणादि वर्णों का विभेद तथा आर्यजाति के सिद्धान्तों का विस्तृत विवरण दशम

मण्डल की अवतरणिका में करेंगे, इसलिए यहाँ संक्षेप से ही समाप्त करते हैं ॥

॥ इति शुभम् ॥

आर्य्यमुनिः"

इससे इतना तो पता चलता है कि आर्य मुनिजी ने दशम मण्डल का भी भाष्य लिखने का निश्चय किया था, किन्तु वह सम्भवतः लिखा न गया या लिखा भी गया तो प्रकाशित न हुआ। कम से कम हमारे संग्रह में दशम मण्डल के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं है। पर जो प्रकाशित हुआ है उसमें आर्यसमाज कलकत्ता का योगदान सुस्पष्ट है।

एक और प्रयास :

ऋग्वेद के अष्टम मण्डल का कुछ भाष्य प्रसिद्ध विद्वान् पण्डित

पं० श्री शिवशंकरजी शर्मा

श्री शिवशंकरजी शर्मा ने किया था। शर्माजी मधुबनी मण्डलान्तर्गत चहुटा ग्राम निवासी कट्टर पौराणिक मैथिल ब्राह्मण वंश के थे और अति प्रौढ़ विद्वान् थे। उनका भाष्य भी ऋषि शैली पर है। भाष्य के अन्त में लिखा हुआ है कि अष्टम मण्डल षष्ठ अध्याय द्वितीय अष्ट वर्ग ३६ दशम् मन्त्र तक भाष्य समाप्त हुआ है। पं० शिवशंकरजी ने अपने भाष्य की अवतरणिका के अंन्त में लिखा है—

> "अन्यान्य प्रश्नों का भी समाधान मत्कृत भूमिका में ही देखिए। इति संक्षेपतः।[1]"

यह भूमिका कहाँ है कुछ पता नहीं चलता। हमने जो पुस्तकें देखी हैं उनमें इस भूमिका का कुछ पता नहीं है।

सुनते हैं पण्डित शिवशंकरजी शर्मा आर्यसमाज कलकत्ता की छत के ऊपर बैठ कर भाष्य लिखा करते थे और यहीं उसकी प्रेस कापी तैयार होती थी, किन्तु पुस्तकों के आवरण पृष्ठों के न होने के कारण हम कोई लिखित प्रमाण देने की स्थिति में नहीं हैं कि यह महान् वेदभाष्य का कार्य कहाँ से प्रकाशित हुआ था। जनश्रुति है कि यह सब कार्य आर्यसमाज कलकत्ता से ही कराया गया था। इतने का तो मैं प्रत्यक्ष साक्षी हूँ कि इन वेदभाष्यों की सैकड़ों प्रतियों के सेट बनाकर सन् १६५५-६० ई० के आसपास नाममात्र के मूल्य पर कलकत्ता समज ने अपने वार्षिकोत्सव पर लोगों को इसलिए दे दिया था कि ये अलभ्य प्रतियाँ नष्ट न हो जायँ और आर्यसमाज मन्दिर के पुस्तकालय की जगह भी खाली हो जाय। यह सारा भाष्य हजार पृष्ठों से अधिक है और कई खण्डों में प्रकाशित हुआ है। यह एक स्तुत्य साहित्यिक प्रयास रहा है।

इस सम्बन्ध में आदरणीय विद्वान् डा० भवानीलालजी भारतीय, अध्यक्ष दयानन्द चेयर, (पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़) ने अपने दिनांक ४-६-८४ के पत्र द्वारा हमें सूचित किया है—

---

१. द्रष्टव्य—पं० शिवशंकर शर्मा कृत भाष्य की अवतरणिका पृष्ठ १८

"पं० शिवशंकर शर्मा का ऋग्वेद भाष्य दो खण्डों में (ऋ० म० ७ सू० ६३ मन्त्र ३ से लेकर म० ८ सूक्त २६ पर्यन्त) छपा था। इसके प्रकाशन के लिए कलकत्ता के सेठ छाजूराम ने आर्थिक सहायता दी थी, तथा यह वैदिक मन्त्रालय से (प्रथम खण्ड १६२३ ई० में तथा द्वितीय खण्ड १६३० ई० में) छपा था।"

आदरणीय भारतीयजी की सूचना से कई ऐतिहासिक तथ्य प्रकाश में आ गये, अतः हम सधन्यवाद उनकी सूचना का उल्लेख कर रहे हैं।

यहाँ भी सेठ छाजूरामजी के आर्थिक सहयोग के रूप में आर्य-समाज कलकत्ता का योगदान सुस्पष्ट ही है। हमने ३०-४० वर्ष पूर्व विश्वासी वृद्धों के मुख से यह सुना था कि शर्माजी को गलित कुष्ठ था और उनके लिखित भाष्य को आर्यसमाज कलकत्ता की छत पर सूखने (सम्भवतः कुष्ठ की पीप आदि) के लिए पत्थरों के टुकड़ों से दबा कर रखा जाता था और कोई व्यक्ति उन कागजों को स्पर्श किये बिना उसकी प्रेस कॉपी तैयार कर लेता था। उस समय तो मेरे मन में इस कष्टसाध्य कार्य के प्रति और विशेष रूप से पं० शिवशंकर शर्माजी की तपस्या के प्रति श्रद्धा के भाव थे। आज उन्हें, जनश्रुति के रूप में ही सही, उन्हीं के यश की धरोहर के रूप में, इतिहास की इन पंक्तियों में अंकित करके, कृतज्ञता का अनुभव कर रहा हूँ।

पं० अयोध्या प्रसादजी

पं० अयोध्या प्रसादजी वैदिक मिशनरी के महत्त्वपूर्ण जीवन की चर्चा करते हुए हमने दबे स्वर में एक सत्य की ओर संकेत किया था कि पण्डितजी लेखन-कार्य से उदासीन-से रहते थे। विश्व-विश्रुत यश के पात्र, व्याख्यान-कला, शास्त्रार्थ की कला, मन्त्रों की व्याख्या की कला में, भारतीय गणित के प्रदर्शन में मूर्धन्य स्थान ग्रहण करने के

बाद भी पण्डितजी नें कुछ अधिक साहित्यिक कार्य नहीं किया। व्याख्यान देकर ही सन्तुष्ट रह जाते थे। फिर भी उनके साहित्यिक कार्य निम्न प्रकार हैं—

(१) Jems of Vedic Wisdom :

यह वेदमन्त्रों का अच्छा संग्रह है। प्रत्येक मन्त्र के साथ अंग्रेजी अनुवाद छपा हुआ है। पण्डितजी की अनुवादशैली भी निराली ही थी। इस प्रकार इस ग्रन्थ ने अपने युग में पर्याप्त ख्याति पाई थी।

(२) इस्लाम कैसे फैला :

पं० अयोध्या प्रसादजी अरबी, फारसी के बड़े उच्चकोटि के विद्वान् थे। उद्भट शास्त्रार्थी थे। वह युग प्रायः मुसलमानों के साथ टकराव का युग था। यह उसी भूमिका में लिखी हुई पुस्तक है। जब श्री गोविन्दरामजी (गोविन्दराम हासानन्द) कलकत्ता से पुस्तक प्रकाशन का कार्य करते थे, उस समय उन्होंने पण्डितजी की यह पुस्तक प्रकाशित की थी।

(३) कुरानी अल्लाह का स्वरूप :

यह पुस्तक आज हमें किसी के भी संग्रह में नहीं मिलती और न ही इसके बारे में कहीं कुछ लिखा मिलता है, किन्तु हमें यह अच्छी तरह स्मरण है कि ३०-३५ वर्ष पूर्व यह छोटी-सी पुस्तिका हमें किसी आर्यसमाज के कार्यकर्त्ता ने दिखायी थी और यह भी बताया था कि यह पुस्तक सरकार ने जब्त कर ली थी।

(४) ओंकार माहात्म्य :

यह पुस्तक पण्डितजी के जीवन की यथासम्भव अन्तिम पुस्तक है। पुस्तक को लिखने और प्रकाशित होने की भी

अपनी एक कथा है। कलकत्ता में कोई शंकराचार्यजी आये थे और उन्होंने अपने व्याख्यानों में कुछ इस प्रकार कह दिया कि जैसे ओंकार का जप और उपासना सभी लोग नहीं कर सकते। होते-होते बात आर्यसमाज तक पहुँची और फलतः पं० अयोध्या प्रसादजी ने ओंकार माहात्म्य नाम की पुस्तक लिखी। इस पुस्तक का बंगला अनुवाद वैदिक साहित्य पीठ से आचार्य पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण ने प्रकाशित कर दिया है।

पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति

पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति बड़े उद्भट विद्वान् थे। जहाँ दर्शन का उनका गम्भीर अध्ययन था वहाँ वे वैदिक सिद्धान्तों के भी मर्म को बड़ी गहराई से समझते थे। उनकी इन योग्यताओं को देखकर गोविन्दराम हासानन्द के मालिक श्री गोविन्दरामजी ने उनसे महर्षि दयानन्द के प्रसिद्ध ग्रन्थ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के सम्पादन की प्रार्थना की। पंडितजी ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का बड़ा सुन्दर संस्करण सम्पादित किया। इस संस्करण के सम्बन्ध में प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् श्री पं० युधिष्ठिरजी मीमांसक ने लिखा है—

"इसमें कई विशेषताएँ हैं, यथा—(१) नये-नये सन्दर्भ बनाना, (२) प्रश्नोत्तर पृथक्-पृथक् छापना, (३) नीचे टिप्पणियों में अस्पष्ट स्थलों का स्पष्टीकरण करना, (४) भाषार्थ को परिमार्जित करना। इतना सब होते हुए भी संस्कृत पाठ की अशुद्धियाँ प्रायः पूर्ववत् ही रहीं, भाषा का भी संशोधन पूरी तरह नहीं किया गया। हाँ, स्पष्टीकरण करने वाली टिप्पणियाँ बहुत उपयोगी हैं। हमने उनकी दो टिप्पणियों को संक्षिप्त

रूप से नाम निर्देश पूर्वक इस संस्करण में भी सम्मिलित किया है।[1]

यह ग्रन्थ पं० सुखदेवजी के वैदुष्य का प्रबल प्रमाण है। इस ग्रन्थ के सम्पादन में कई दिशाओं में उन्होंने प्रथम प्रयास किया था। उन दिनों पं० सुखदेवजी आर्यसमाज कलकत्ता के आचार्य थे और उस ग्रन्थ में भी उन्होंने सम्पादकीय वक्तव्य में स्थान आर्यसमाज कलकत्ता की अट्टालिका ही लिखा है। ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका का टीका-टिप्पणियों सहित यह संस्करण "वेद-तत्त्व-प्रकाश" के नाम से, प्रकाशित हुआ था। यह सन् १९३५ ई० का प्रकाशन है।

(२) 'नमस्ते' की व्याख्या :

कलकत्ता में रहते हुए पं० सुखदेवजी ने 'नमस्ते' की व्याख्या पर एक छोटी-सी पुस्तक लिखी थी। शास्त्रार्थी ढंग से वेद और इतिहास के प्रमाणों के आधार पर छोटे-बड़े सबको नमस्ते करना चाहिए, इस तथ्य को बड़े सुन्दर ढंग से समझाया गया था।

(३) पशुबलि निषेध :

कलकत्ता काली की नगरी है और यहाँ पशुबलि की प्रथा बहुत अधिक प्रचलित है। पं० सुखदेवजी ने पशुबलि एवं पशुहत्या, मांसाहार आदि पर बड़े ऊहापोह एवं प्रामाणिक रीति से पुस्तक में इन अवैदिक सिद्धान्तों का निराकरण किया था।

पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री

बंगाल में बंगला भाषा के माध्यम से सर्वाधिक साहित्य निर्माण का कार्य पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री ने किया। उनके कार्यों का कुछ वर्णन तो उनके जीवन के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करने के प्रसङ्ग में

---

१. ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका का रा० क० ट्रस्ट संस्करण—सम्पादकीय वक्तव्य-पृष्ठ ४

आ गया है।[1] यहाँ तो उनके साहित्य की सूची दी जा रही है। पण्डित दीनबन्धुजी के साहित्य में धर्मप्रचार समाज-सुधार, एवं पाखण्ड-खण्डन के साथ ऋषिग्रन्थों के बंगला अनुवाद और वेदभाष्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

१. वेदसार, २. सामवेद का बंगानुवाद, ३. ऋग्वेद के प्रथम मंडल के मूल और पदार्थ के साथ बंगानुवाद, ४. यजुर्वेद के प्रथम अध्याय का मूल और पदार्थ के साथ बंगानुवाद, ५. सामवेद (पूर्वार्चिक और महानाम्नयार्चिक के मूल और शब्दार्थ के साथ बंगानुवाद, ६. अथर्ववेद के प्रथम काण्ड का मूल और पदार्थ के साथ बंगानुवाद, ७. सत्यार्थ प्रकाश का बंगानुवाद (श्री तुलसीदासजी दत्त द्वारा प्रकाशित), ८. सत्यार्थ प्रकाश का बंगानुवाद (बंग-आसाम आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा प्रकाशित), ९. संस्कार विधि (बंगानुवाद), १०. समाप्त विप्लव ११. ब्राह्मण शूद्रे र संघर्ष, १२. भाटपाड़ा वध काव्य, १३. वैदिक संध्या विधि १४. वैदिक सन्ध्या ओ उपासना १५. वैदिक सन्ध्या ओ गायत्री व्याख्या १६. वैदिक शतनाम ओ उपासना, १७. वैदिक हवन विधि, १८. वैदिक सन्ध्या ओ हवन विधि, १९. वैदिक हवनेर व्याख्या, २०. वैदिक सन्ध्या ओ हवन विधि, २१. वैदिक उपासना पद्धति २२. शुद्धि, २३. आर्यसमाज परिचय, २४. हिन्दू सभ्यता ओवैदिक सभ्यता २५. अवतारवाद, २६. भारते खृष्टान समस्या ओ ताहार प्रतिकार, २७. देव-देवी ओ मूर्ति-पूजा, २८. दिग्विजयी दयानन्द २९. हिन्दू जाति तत्त्व ३०. जाति ना वज्जाति, ३१. असवर्ण विवाह ३२. अस्पृश्यता समस्या, ३३. विधवा विवाह, ३४ विधवा विवाहेर शास्त्रीय प्रमाण, ३५. विधवा विवाह आपत्ति खण्डन, ३६. अशौच ओ प्रेतलोक, ३७. श्राद्ध ओ परलोक, ३८. प्राचीन गीता, ३९. वेदामृत, ४०. व्यवहार भानु (अनुवाद), ४१. भूसोच्छेदन, ४२. गोकरण विधि,

[1] द्रष्टव्य—दशम अध्याय—विद्वान्-प्रचारक

४३. भ्रान्ति निवारण, ४४. वेदान्त ध्वान्त निवारण, ४५. धर्मशिक्षा, ४६. धर्म परिचय, ४७. धर्म प्रवेश, ४८. आर्य समाजेर कथा, ४९. आस्तिकवाद, ५०. हिन्दी शिक्षक, ५१. धर्म वा अधर्म, ५२. मोह-मुद्गर, ५३. वेदामृत ५४. बंगे दयानन्द, ५५. भारते आर्यसमाज, ५६. गुरुगरि, ५७. जातिर वड़ाई, ५८. आर्यसमाज वो दयानन्द (अनुवाद), ५९. महर्षि दयानन्द सरस्वती की अज्ञात जीवनी (अनुवाद बंगला से हिन्दी)।

आचार्य रमाकान्तजी शास्त्री

आचार्य पं० रमाकान्तजी शास्त्री ने अल्पायु ही पायी थी। ५५-५६ वर्ष की आयु में ही वे चल बसे। उनकी साहित्यिक कृतियों में मुख्य रूप से निम्न हैं—

(१) दयानन्द चरितम् महाकाव्य है :

यह २० सर्गों का महाकाव्य महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवनचरित्र एवं सिद्धान्तों से समन्वित है। इसके ३-४ सर्ग आर्यसंसार में अलग-अलग समयों पर प्रकाशित हुए हैं। ग्रन्थ की बीसों सर्गों की आचार्यजी के हाथों से लिखी कापी सुरक्षित प्राप्त हो गयी है और उसे हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन की योजना भी है। इस ग्रन्थ में लगभग २,००० श्लोक हैं।

(२) आर्यसमाज के दस नियमों का संस्कृतानुवाद :

आर्यसमाज के दस नियमों को संस्कृत श्लोकों में निबद्ध किया गया है।

(३) जवाहर प्रशस्ति :

आचार्यजी श्री जवाहरलाल नेहरू के स्वतन्त्रता-संग्रामी स्वरूप के प्रशंसक थे। श्री जवाहरलाल नेहरू की प्रशस्ति में शतकम् की प्रणाली पर लगभग १०० श्लोक संस्कृत में लिखे थे।

ये सारे श्लोक अभी तक मिल तो नहीं पाये हैं, फिर भी जो मिले हैं, बड़े ही ललित और हृदयग्राही हैं।

(४) संस्कृतानुवाद शिक्षा :

आचार्यजी संस्कृत के भक्त थे। उन्होंने संस्कृत सीखने की दृष्टि से संस्कृतानुवाद शिक्षा लिखी थी।

(५) संस्कृत व्याकरण शिक्षा :

संस्कृत आरम्भ करने वालों के लिए व्याकरण की यह आरम्भिक पुस्तक है।

(६) कर्मकाण्ड :

पाँचों महायज्ञों की विधि व्याख्या से समन्वित यह कर्मकाण्ड एक छोटी पुस्तक है।

ठाकुर अमर सिंहजी आर्यपथिक

ठा० अमर सिंहजी आर्यपथिक सम्पूर्ण जीवन आर्यसमाज का प्रचार करते रहे हैं। ये शास्त्रार्थ केशरी शास्त्रार्थ महारथी हैं। इन्होंने कई प्रचारात्मक एवं शास्त्रार्थ की दृष्टि से उपयोगी ग्रन्थ लिखे हैं। इन ग्रन्थों का विवरण उनके जीवन के वर्णन के साथ दशम अध्याय में द्रष्टव्य है।

पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण

पं० प्रियदर्शनजी ने अच्छी संख्या में कई पुस्तकों का बंगला अनुवाद किया है। इनकी बंगभाषा की यह साहित्यसेवा महत्त्वपूर्ण है।

(१) सत्यार्थ प्रकाश, षष्ठ संस्करण—बंगला अनुवाद एवं सम्पादन
(२) आर्याभिविनय, द्वितीय संस्करण—बंगला अनुवाद एवं सम्पादन
(३) वैदिक धर्मधारा, प्रथम संस्करण—दो बहनों की बातों का बंगला अनुवाद

(४) आमार यात्रा, प्रथम संस्करण — स्वामी स्वतन्त्रतानन्द महाराज की विदेश-यात्रा का बंगला अनुवाद

(५) यथार्थता, द्वितीय संस्करण—लेखक पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्त-भूषण

(६) आमरा आर्य, द्वितीय संस्करण

(७) मानवधर्मेर स्वरूप

(८) काशी-हुगली शास्त्रार्थ—(बंगला भाषा में)

(९) देवयज्ञ

(१०) कृष्णेर आह्वान

(११) व्यवहार भानु—बंगला अनुवाद

(१२) कामात्मा संघर्ष

(१३) सन्ध्योपासनम्

(१४) ओम्कार महात्म्य, प्रथम संस्करण—(बंगला अनुवाद) पं० अयोध्या प्रसादजी की पुस्तक का बंगला अनुवाद

(१५) प्राणायाम विधि—महात्मा नारायण स्वामीजी की पुस्तक का बंगला अनुवाद

पं० उमाकान्तजी उपाध्याय

पं० उमाकान्तजी उपाध्याय का साहित्यिक कार्य आर्यसंसार के सम्पादन से आरम्भ होता है। सुदीर्घ २७ वर्षों का सम्पादन कार्य कई प्रकार की साहित्यिक विधाओं को लेकर सामने आया है। इनके द्वारा लिखित निम्न पुस्तकें आर्यसमाज कलकत्ता से प्रकाशित हुई हैं—

(१) भगवान् श्रीकृष्ण

(२) श्रावणी उपाकर्म

(३) मूर्तिपूजा समीक्षा

(४) अर्थशौच

(५) आर्यसमाज का परिचय
(६) वेदों में गोरक्षा या गोवध
(७) हंसामत की मिथ्यावाणी
(८) कम्युनिष्टों के मोर्चे पर स्वामी दयानन्द
(९) श्राद्धतर्पण
(१०) वेद में नारी
(११) काशी शास्त्रार्थ—एक समीक्षा
(१२) कर्मकाण्ड

श्री उमाकान्तजी की साहित्य सेवा में 'आर्यसंसार' का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

आर्यसमाज कलकत्ता की साहित्यिक गतिविधि की कुछ और भी दिशाएँ हैं। आर्यसंसार मासिक पत्र का प्रकाशन उसमें प्रमुख है।

आर्यसंसार का स्वरूप है तो एक मासिक पत्रिका का ही, किन्तु इसकी एक विशेषता यह है कि यह व्यावसायिक पत्रिका नहीं है। इसका मूल्य नाममात्र का ही है और इसके प्रकाशन के पीछे अपने सहयोगियों से सम्पर्क स्थापित रखने के साथ ही सैद्धान्तिक रूप में कुछ साहित्य सेवा करना है। वर्ष भर जहाँ विभिन्न प्रकार के लेख, कहानियाँ कभी-कभी साहित्य की अन्य विधाएँ भी प्रकाश में आती रहती हैं, वहीं साल के अन्त में आर्यसंसार का एक वार्षिक विशेषांक आर्यसमाज कलकत्ता के वार्षिकोत्सव के अवसर पर प्रकाशित होता है। साहित्य-सेवा की दृष्टि से इस अंक का विशेष महत्त्व है। यह अंक आगे तो सन् १९६८ ई० तक विभिन्न प्रकार के लेखों से समन्वित रहता था किन्तु सन् १९६९ ई० से किसी न किसी अलभ्य सुन्दर साहित्य का प्रकाशन विशेषांक के रूप में होता रहता है। इसका विस्तृत विवरण आर्यसमाज के पत्र-पत्रिकाओं के प्रसंग में द्वादश अध्याय में द्रष्टव्य है। यहाँ इतना ही उद्देश्य है कि यह साहित्यिक

कार्य आर्यसमाज कलकत्ता की विशिष्ट गतिविधियों में एक है। इस साहित्यिक योजना का यह पक्ष इसलिए और भी महत्त्वपूर्ण है कि इस अंक का मूल्य वार्षिक मूल्य में ही सम्मिलित रहता है। यों तो वार्षिक मूल्य से अधिक मूल्य का यह विशेषांक ही हो जाता है। अभी तक १४-१५ अलभ्य ग्रन्थों का प्रकाशन इस विशेषांक के रूप में हुआ है। मुनिवर श्री पं० गुरुदत्तजी विद्यार्थी की गुरुदत्त लेखावली, स्वामी दर्शनानन्दजी के कई उपनिषद्-भाष्य, महात्मा नारायण स्वामीजी की कई पुस्तकें इत्यादि इस योजना में प्रकाशित हुईं और ये पाठकों को पुनः सुलभ हो गयीं। इस प्रसंग में एक ग्रन्थ का अलग से वर्णन कर देना उपयुक्त ही होगा।

त्रैतवाद का उद्भव और विकास :

काश्मीर के डा० योगेन्द्रकुमारजी शास्त्री कट्टर आर्यसमाजी निष्ठा के विद्वान् व्यक्ति हैं। उन्होंने अपना शोध प्रबन्ध पी-एच० डी० की थीसिस कट्टर आर्यसमाजी सिद्धान्त पर लिखी। यह शोध प्रबन्ध पी-एच० डी० के लिए स्वीकृत हो गया। जैसा सहज बोधगम्य है, इतने नीरस दार्शनिक विषय का व्यावसायिक प्रकाशन सम्भव न था। आजकल अध्ययन की प्रवृत्ति को देखते हुए कोई आर्यसमाजी प्रकाशक या आर्यसमाज के बाहर का प्रकाशक इस सुन्दर धार्मिक ग्रन्थ के प्रकाशन में रुचि न ले रहा था। डा० योगेन्द्रजी अपने लिए कोई परिश्रमिक नहीं चाहते थे केवल पुस्तक का प्रकाशन उन्हें अभीष्ट था। जनता में स्वाध्याय के ह्रास के साथ आर्यसमाजिक सभाओं में ऐसे दुरूह दार्शनिक ग्रन्थ के प्रकाशन के प्रति उदासीनता या उपेक्षा सहज अनुमानगम्य है। डा० योगेन्द्रजी ने आर्यसमाज कलकत्ता की वार्षिक साहित्य-प्रकाशन की योजना को देखकर आर्य-संसार के सम्पादक एवं आर्यसमाज कलकत्ता के अधिकारी वर्ग के सम्मुख यह प्रस्ताव प्रस्तुत किया कि उनका ग्रन्थ 'त्रैतवाद का

उद्भव और विकास' आर्यसंसार के वार्षिक विशेषांक के रूप में प्रकाशित कर दिया जाय। सही परिस्थिति को समझकर आर्यसमाज कलकत्ता ने इस सुन्दर दार्शनिक ग्रन्थ का प्रकाशन सन् १९८१ ई० में आर्यसंसार के वार्षिक विशेषांक के रूप में कर दिया।

इसी सिलसिले में एक-दो और ग्रन्थों की चर्चा उपयोगी है।

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में आर्यसमाज की देन :

आर्यसमाज कलकत्ता ने एकाधिक बार अखिल भारतीय स्तर पर निबन्ध प्रतियोगिता कराकर एक सुन्दर आदर्श की स्थापना एवं साहित्य-सेवा की है। इसी कड़ी में 'भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में आर्यसमाज की देन' विषय पर अखिल भारतीय स्तर पर निबन्ध प्रतियोगिता हुई थी। प्रतियोगिता में बहुत सुन्दर निबन्ध आये थे। पुरस्कृत निबन्धों के साथ कुछ और भी ऐसे उच्चकोटि के निबन्ध थे, जिनका प्रकाशन आवश्यक था। इस प्रकार १६ निबन्धों का एक बहुत सुन्दर संग्रह इस विषय पर प्रकाशित हुआ। इसीके साथ इस अंक का सम्पादकीय भी इस विषय पर नूतन सामग्री के साथ प्रस्तुत किया गया था। इतना कहने में अधिक संकोच नहीं होना चाहिए कि इस विषय पर इतनी अधिक सामग्री एक पुस्तक में सम्भवतः अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं है। यह निबन्ध-संग्रह सन् १९८० ई० में आर्य-संसार के विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुआ था।

स्वामी दयानन्दजी की देन :

यह भी एक निबन्ध प्रतियोगिता का विषय था। यह निबन्ध प्रतियोगिता हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में हुई थी। पुरस्कृत निबन्धों में विश्वविद्यालय के ख्यातिप्राप्त प्राध्यापकों और आर्यजगत् के श्रेष्ठ विद्वानों की कृतियाँ सम्मिलित हैं। साहित्य प्रकाशन की दृष्टि से यह भी आर्यसमाज कलकत्ता का प्रशंसनीय कार्य है। स्वामी

दयानन्दजी के अवदानों पर बहुत कुछ साहित्य सुलभ है, किन्तु इस अल्पकाय निबन्ध-संग्रह का अपना महत्त्व अपनी जगह पर निश्चित रूप से श्लाध्य है।

Maxmuller Exposed :

जिस समय प्रो० श्यामरावजी (स्वामी अग्निवेशजी) आर्यसमाज कलकत्ता के प्रचार-मन्त्री थे, उस समय कुछ नौजवानों को साथ लेकर उन्होंने 'विदेशी मिशनरियो, भारत छोड़ो' का कार्यक्रम चला रखा था। उस समय ईसाई गतिविधियों का पर्दाफाश करने के लिए यहाँ के गिरजाघरों में बहुत कुछ ईसाइयों के सम्बन्ध में समालोचनात्मक साहित्य वितरित करवाने का कार्य आर्यसमाज कलकत्ता के माध्यम से हुआ था। उसी सिलसिले में प्रो० श्यामराव ने हमारे साथ मिलकर एक पुस्तिका तैयार करवायी थी जिसका शीर्षक था—"Maxmuller Exposed." यह पुस्तक प्रसिद्ध विद्वान् पं० भगवद्दत्तजी की पुस्तिका—"Western Indologist : A Study in motives एवं पं० धर्मदेवजी विद्यामार्त्तण्ड के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वेदों का यथार्थ स्वरूप' के आधार पर तैयार की गयी थी। यह प्रकाशन अपने में अद्भुत था और इसका कलकत्ता के बौद्धिक समाज और जर्मन दूतावास के ऊपर पर्याप्त प्रभाव पड़ा था। इस प्रभाव का एक मनोरंजक पक्ष उद्धृत करना अप्रासंगिक नहीं होगा।

वितरित होते-होते Maxmuller Exposed की एक प्रति जर्मन् कांसुलेट के हाथों में भी पहुँच गयी। पुस्तक थी तो अंग्रेजों के विरुद्ध, किन्तु पुस्तक में मैक्समूलर के नाम से जर्मन कांसुलेट को बड़ी चिढ़ हुई। संयोग की बात, दूसरे दिन या तीसरे दिन किसी पार्टी में श्यामरावजी की भेंट जर्मन कांसुलेट से हो गयी। परिचय होने पर उसने श्यामरावजी से इस पुस्तक के सम्बन्ध में विचार-विनिमय करने के लिए हमको मैक्समूलर भवन, कलकत्ता में बुलाया। समय पर

उसने गाड़ी भेज दी और प्रो० श्यामरावजी, मैं एवं कोई और एक सज्जन मैक्समूलर भवन गये। मैक्समूलर भवन के डाइरेक्टर, लाइब्रेरियन, कांसुलेट सभी उपस्थित थे। उन्होंने इस विचार-विनिमय को पर्याप्त महत्त्व दिया था। आरम्भ में तो राजनयिक शिष्टता और नम्रता का आलम था। उनका कहना था कि यह भारत-जर्मनी के सम्बन्धों को बिगाड़ता है। हमारा पक्ष था कि मैक्समूलर तो आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के हो गये थे और हमने जो भी उद्धरण दिये हैं सब उनकी जीवनी से ही हैं। इसका उनके पास कोई उत्तर तो न था और न ही वे मैक्समूलर भवन के पुस्तकालय से "Life and Letters of F. Maxmuller" की प्रति निकालना चाहते थे। हम सब पुस्तक-वितरण बन्द न करने पर तैयार न हुए तो वे लोग भयानक रूप से रुष्ट हो गये। हमलोग शरीर में भी निर्बल न थे, अतः बात बातों में ही रह गयी। उस समय मूसलाधार वर्षा हो रही थी किन्तु उन्होंने हमें लौटने के लिए गाड़ी न दी। हम अपने मिशन की सफलता और स्वाभिमान में थे। यौवन की उमंग थी ही, हम भींगते हुए निकल पड़े। अस्तु, आर्यसमाज कलकत्ता के साहित्य-प्रकाशन और वितरण की दिशा में अपने ढंग की यह एक मनोरंजक घटना है।

श्री हेमचन्द्र चक्रवर्ती की डायरी : दयानन्द प्रसंग

स्वामी दयानन्दजी ४ मास के लगभग कलकत्ता में रहे थे। उनके निवासकाल के समय हेमचन्द्र चक्रवर्ती स्वामीजी के निकट सम्पर्क में आये थे। श्री चक्रवर्तीजी ने उन दिनों की अपनी एक डायरी लिखी थी। पं० दीनबन्धुजी ने उस डायरी का पता लगाया और वह आर्यसमाज कलकत्ता के द्वारा सन् १९५४ ई० में प्रकाशित की गयी। श्री हेमचन्द्रजी ब्राह्मसमाज के विद्वान्-प्रचारक थे और यज्ञोपवीत से आरम्भ कर मूर्तिपूजा एवं शास्त्रविचार जैसे विषयों पर स्वामीजी के साथ उनका विचार-विमर्श होता रहा। यह सब उन्होंने अपनी डायरी

में लिख लिया था। इतिहास की दृष्टि से हेमचन्द्रजी की डायरी महत्त्वपूर्ण है। यह महाशय रघुनन्दन लालजी का कार्यकाल था। इस डायरी के प्रकाशन में महाशय रघुनन्दन लालजी का सक्रिय सहयोग स्मरणीय है।

सत्यार्थ प्रकाश का बंगला अनुवाद :

आर्यसमाज कलकत्ता ने बंगला साहित्य के प्रकाशन में जो महत्त्वपूर्ण कार्य किया है उसमें सत्यार्थ प्रकाश का बंगला अनुवाद प्रकाशित करना एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। सर्वप्रथम सत्यार्थ प्रकाश का बंगला अनुवाद पं० शंकरनाथजी ने किया और उसका प्रकाशन आर्यसमाज कलकत्ता के सहयोग से हुआ। पं० शंकरनाथजी आर्यसमाज कलकत्ता के उप-प्रधान एवं प्रसिद्ध विद्वान् कार्यकर्ता थे। सत्यार्थ प्रकाशन का द्वितीय और तृतीय संस्करण भी आर्यसमाज कलकत्ता की ओर से प्रकाशित हुआ। चतुर्थ संस्करण पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री ने अनुवाद को सुधार-सँवार कर तुलसीदास दत्त महाशय के सहयोग से आर्यसमाज कलकत्ता द्वारा पुनः प्रकाशित किया। सत्यार्थ प्रकाश का पंचम संस्करण आर्यसमाज कलकत्ता, आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल और आर्यसमाज रिलीफ सोसाईटी के संयुक्त उद्यम और प्रयास से प्रकाशित हुआ था। पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री के के साथ सहयोगी थे पं० मनोरंजनजी काव्यतीर्थ, पं० शारदाप्रसन्नजी वेदशास्त्री इत्यादि। इस संस्करण के प्रकाशन में भी महाशय रघुनन्दन लालजी का बहुत बड़ा सहयोग था। यह पंचम संस्करण सन् १९४७ ई० में प्रकाशित हुआ था। षष्ठ संस्करण के प्रकाशन की आवश्यकता का अनुभव बहुत दिनों से हो रहा था। सत्यार्थ प्रकाश के पंचम संस्करण की प्रतियाँ कई वर्षों पहले समाप्त हो गयी थीं। इधर महँगाई बढ़ने के कारण सत्यार्थ प्रकाश जैसे वृहद् ग्रन्थ का प्रकाशन पर्याप्त व्ययसाध्य था। आर्यसमाज कलकत्ता षष्ठ संस्करण के प्रकाशन के सम्बन्ध में

सोच ही रहा था कि कलकत्ता में वैदिक अनुसन्धान ट्रस्ट का निर्माण हो गया। इस अनुसन्धान ट्रस्ट के माध्यम से सत्यार्थ प्रकाश के षष्ठ संस्करण का प्रकाशन आसान हो गया। इस संस्करण के वंगला अनुवाद को सजाने-सँवारने का कार्य आर्यसमाज कलकत्ता के प्रसिद्ध बंगाली विद्वान् श्री पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण ने पंडित शिवाकान्तजी उपाध्याय की सहायता से किया। इस संस्करण के प्रकाशन में निम्न सज्जनों का आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ था—

श्री प्रभुदयाल अग्रवाल, श्री घनश्यामदास गोयल, श्री गजानन्द आर्य, श्री फूलचन्द आर्य, श्री राजेन्द्र कुमार पोद्दार, श्री भगवानदास आर्य (तिनसुकिया), श्री सीताराम आर्य, श्री चिरंजीलाल बाहरी, श्री रुलियाराम गुप्त, श्री सूरजमल गुप्त, श्री ईश्वरचन्द्र जायसवाल, श्री राजेन्द्र कुमार जायसवाल और आर्य कन्या महाविद्यालय।

यों तो सत्यार्थ प्रकाश के इस षष्ठ संस्करण का प्रकाशन वैदिक अनुसन्धान ट्रस्ट की ओर से हुआ है, किन्तु यह आर्यसमाज कलकत्ता के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत ही है। वैदिक अनुसन्धान ट्रस्ट का कार्यालय आर्यसमाज कलकत्ता है, यह एक वात है, साथ ही इस संस्करण के प्रकाशन में आर्यसमाज कलकत्ता का बहुत प्रकार से सहयोग रहा है।

आर्यसमाज कलकत्ता के प्रोग्राम में साहित्य प्रकाशन और प्रचार का अच्छा स्थान रहा है। किसी एक समाज की इकाई से इतनी साहित्य-सेवा कम गौरव की वात नहीं है। हमारे सदस्यों ने समय-समय पर साहित्य-सेवा की दिशा में प्रशंसनीय कार्य किया है। श्री सीतारामजी आर्य ने महात्मा नारायण स्वामीजी की पुस्तक 'मृत्यु और परलोक' प्रकाशित करवायी। देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय लिखित स्वामी दयानन्दजी का छोटा जीवन-चरित्र, जिसे उन्होंने मूल रूप से बंगला में लिखा था उसेभी श्री सीतारामजी ने ही छपवाया था। प्राणायाम पर महात्मा नारायण स्वामीजी की प्रसिद्ध पुस्तक का बंगला

अनुवाद श्री कृष्णलालजी खट्टर ने छपवाया। इसका बंगला अनुवाद पं० प्रियदर्शनजी ने किया है।

श्री विन्ध्यवासिनी प्रसाद 'अनुगामी'

श्री विन्ध्यवासिनी प्रसादजी का जन्म सन् १८६२ ई० में मिर्जापुर (उ० प्र०) में हुआ था। आपने हिन्दू विश्वविद्यालय से बी० ए० पास किया था। आपके पिता श्री सरजू प्रसादजी अग्रवाल थे। विन्ध्यवासिनी प्रसादजी बचपन से ही गम्भीर अध्ययनशील प्रकृति के व्यक्ति थे। आर्यसमाज के सिद्धान्तों में उनकी अटूट निष्ठा थी। वे वैदिक साहित्य के गम्भीर विचारक थे। जिन दिनों विन्ध्यवासिनी प्रसादजी मिर्जापुर में रहते थे, उस समय आपका सम्पर्क प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पं० श्री ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु और पं० युधिष्ठिरजी मीमांसक के साथ हुआ। इन दोनों महान् विद्वानों के सम्पर्क में आकर विन्ध्यवासिनी प्रसादजी की अध्ययनशीलता और भी गम्भीर हो गयी। श्री विन्ध्यवासिनी प्रसादजी जीवन के उत्तरार्द्ध में जब कलकत्ता आये तो आपका सम्पर्क आर्यसमाज कलकत्ता से हुआ। गम्भीर अध्येता और चिन्तक, स्वभाव से परम शान्त एवं निस्पृह, आकृति से परम सरल और सात्विक श्री विन्ध्यवासिनी प्रसादजी अंग्रेजी और हिन्दी के अच्छे जानकार थे। आपने अपने स्वाध्याय और परिश्रम से संस्कृत का भी गम्भीर अध्ययन कर लिया था। कोषों और व्याकरण के सन्दर्भों में आपकी विशेष रुचि और गति थी।

श्री विन्ध्यवासिनी प्रसादजी ने बहुत सारे लेख लिखे थे जो तात्कालिक पत्र-पत्रिकाओं में छपते रहे। श्री विन्ध्यवासिनी प्रसादजी के लेख आर्यसमाज कलकत्ता के मुखपत्र 'आर्य-संसार' में और प्रसिद्ध वैदिक पत्रिका 'वेदवाणी' में समय-समय पर छपा करते थे। श्री विन्ध्यवासिनी प्रसादजी के दो ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। प्रथम है—'अग्निहोत्र की प्रतीकात्मक व्याख्या'। यह प्रसिद्ध वैदिक प्रकाशन, रामलाल कपूर

ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत से प्रकाशित हुआ है, और दूसरा ग्रन्थ है—'आर्याभिविनय की व्याख्या'। आर्याभिविनय की यह व्याख्या श्रीमती सावित्रीदेवी बागड़िया ट्रस्ट, कलकत्ता ने प्रकाशित की है, और इसका सम्पादन परमहंस स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती ने किया है। वे माण्डूक्य उपनिषद् का भी भाष्य लिख रहे थे और उस भाष्य के पूरा होने के पूर्व ही २५ फरवरी सन् १९७६ ई० को श्री विन्ध्यवासिनी
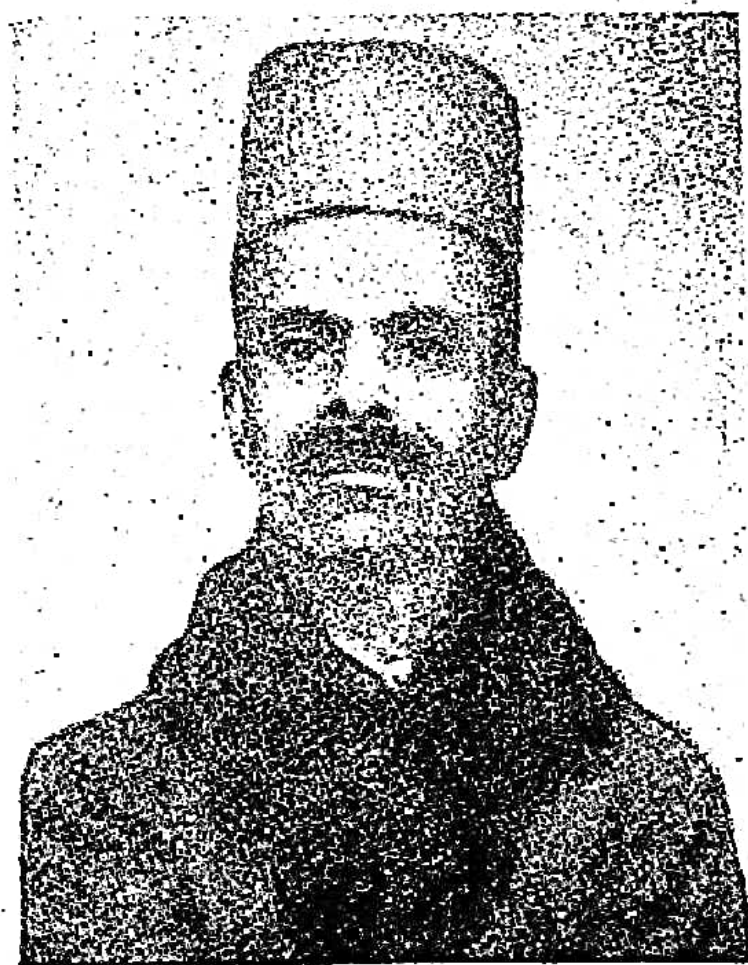
श्री विन्ध्यवासिनी प्रसादजी

प्रसादजी का देहान्त कलकत्ता में हो गया। माण्डूक्य उपनिषद् का वह भाष्य अधूरा ही रह गया।

श्री विन्ध्यवासिनी प्रसादजी यावज्जीवन आर्यसमाज कलकत्ता के सम्पर्क में बने रहे। बड़ी निष्ठा, श्रद्धा और निरभिमान भाव से यावज्जीवन आर्यसमाज कलकत्ता के सत्संगों एवं अन्य कार्यक्रमों में योगदान करते रहे।

द्वादश अध्याय

पत्र-पत्रिकाएँ

सन् १८८५ ई० में जब कलकत्ता में आर्यसमाज की स्थापना हुई उस समय यह एक स्वर्ण सुयोग ही था कि भागलपुर के जमींदार राजा तेजनारायण सिंहजी और उनके सहयोगी बाबू महाबीर प्रसादजी के साथ पं० शंकरनाथजी जैसे विद्वान् आर्यसमाज कलकत्ता को आरम्भ से ही मिल गये थे। राजा तेजनारायणजी आर्थिक पक्ष को सँभालते थे तो पं० शंकरनाथजी आर्यसमाज कलकत्ता के विद्या और बौद्धिक क्षेत्र के प्रमुख स्तम्भ थे। यह लक्ष्मी और सरस्वती की धारा आर्य-समाज कलकत्ता की विभिन्न गतिविधियों में अपने ढंग से प्रवाहित होती रही है।

उस समय कलकत्ता भारतवर्ष की राजधानी था। यह अंग्रेजों के शासन का ही केन्द्र न था, अपितु भारत की सांस्कृतिक गतिविधियों का भी केन्द्र था। साहित्यिक क्षेत्र में कलकत्ता में बंगला भाषा का तो अपना स्थान था ही, यह हिन्दी भाषा की दृष्टि से भी हिन्दी की गतिविधियों का भी केन्द्र-स्थान था। हिन्दी के पत्र और पत्रकार कलकत्ता में पहले से ही थे। स्वाभाविक था कि बहुमुखी सांस्कृतिक और धार्मिक गतिविधियों के साथ कलकत्ता में आर्यसमाज अपनी साहित्यिक गतिविधि को भी अग्रसर करता। इस दृष्टि से जो कार्य किया गया वह अधिक न होकर भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। आर्यसमाज

कलकत्ता के इतिहास में कई पत्रिकाएँ समय-समय पर प्रकाशित होती रही हैं।

आर्यावर्त

आर्यावर्त कलकत्ता का आर्यसामाजिक क्षेत्र में प्रथम पत्र था। इसका प्रकाशन १ अप्रैल, सन् १८८७ ई० से आरम्भ हुआ था। यह साप्ताहिक पत्र था। इसके संस्थापक एवं संचालक श्री महावीर प्रसादजी थे। श्री महावीर प्रसादजी राजा तेजनारायण जी के सम्बन्धी थे और उनकी ओर से उनके व्यवसाय का कार्य कलकत्ता में ही देखते थे। आर्यसमाज का भी कार्य महावीर प्रसादजी के ऊपर रहता था। ऐसा जान पड़ता है कि आर्यावर्त के प्रकाशन के लिए आर्यावर्त प्रेस ६२, शम्भूनाथ पण्डित स्ट्रीट, भवानीपुर, कलकत्ता में खोला गया। यह ६२, शम्भूनाथ पंडित स्ट्रीट पं० शंकरनाथजी का पैतृक निवास-स्थान है। श्री शम्भूनाथ पण्डित शंकरनाथजी पण्डित के पिता थे। पं० दीनबन्धुजी के लेखों से यह जानकारी मिली है कि प्रेस के लिए २०,००० रुपया राजा तेजनारायणजी ने दिया था और पण्डित शंकारनाथजी ने अपने निवास-स्थान में प्रेस के लिए दो कमरे भी दे दिये थे।

आर्यावर्त के प्रकाशन इत्यादि के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण लेख श्री दयारामजी पोद्दार (लेक रोड, रांची) ने आर्यसंसार मई, १९८४ ई० में लिखा है।

इस लेख में आर्यावर्त से सम्बन्धित कई प्रकार की सूचनाओं और कई प्रकार के मतभेदों का वर्णन किया गया है तथा उनके निवारण का प्रयास भी किया गया है। आर्यावर्त कलकत्ता, रांची, दानापुर आदि जगहों से प्रकाशित होता रहा। इस प्रसंग में हम आर्यसमाज कलकत्ता के इतिहास से सम्बन्धित अंशों पर ही विचार करेंगे। यद्यपि इस पत्र के संस्थापक एवं संचालक श्री बाबू महावीर प्रसादजी थे,

किन्तु पत्र मूलरूप से आर्यसमाज कलकत्ता से सम्बन्धित था। आर्य-समाज कलकत्ता के उस समय के प्रमुख विद्वान्, कार्यकर्त्ता उप-प्रधान श्री शंकरनाथ पंडित ने अपने घर से इसका प्रकाशन आरम्भ किया था। हम ऊपर चर्चा कर आये हैं कि आर्यावर्त साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन भी आर्यावर्त नामक प्रेस से ही होता था और यह प्रेस पं० शंकर-नाथजी के निवास-स्थान पर ही खुला था। इस कार्य के लिए पण्डित शंकरनाथजी ने शुद्ध धर्मबुद्धि से ही सहयोग किया था। यद्यपि संस्थापक एवं संचालक भागलपुर के ज़मींदार श्री महावीर प्रसादजी थे, किन्तु पत्र आर्यसमाज से ही सम्बन्धित था।

साप्ताहिक आर्यावर्त का ८ दिसम्बर, सन् १६०० ई० का अंक उपलब्ध है। यह रांची आर्यसमाज के श्री दयारामजी पोद्दार के संग्रह में सुरक्षित है। उसमें संस्थापक एवं संचालक की सूचना में श्री बाबू महावीर प्रसादजी के नाम की सूचना प्रकाशित है।

आर्यावर्त का प्रकाशन सन् १८८७ ई० से सन् १८६७ ई० तक कलकत्ता से होता रहा। यह सूचना ज्ञानमण्डल, काशी से प्रकाशित समाचार-पत्रों के इतिहास में वर्तमान है। श्री दयारामजी पोद्दार के लेख के अनुसार स्वामी श्रद्धानन्दजी १४ फरवरी, सन् १८६१ ई० को आर्यावर्त कार्यालय, कलकत्ता में रुके थे। श्री पोद्दारजी ने पं० रुद्रदत्तजी शर्मा की जीवनी के आधार पर यह लिखा है कि पं० रुद्रदत्तजी शर्मा १० वर्षों तक कलकत्ता में आर्यावर्त के सम्पादक रहे। कलकत्ता समाज के उतने पुराने रजिस्टर उपलब्ध नहीं हैं, किन्तु इन अवान्तर प्रमाणों से प्रतीत होता है कि आर्यावर्त साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन सन् १८८७ ई० से सन् १८६७ ई० तक कलकत्ता से होता रहा।

उन दिनों कलकत्ता सामाजिक गतिविधियों का बड़ा प्रतिष्ठित केन्द्र था और बिहार-बंगाल की संयुक्त प्रतिनिधि सभा का प्रमुख कार्यालय था। पीछे यह कार्यालय राँची चला गया। इसका प्रमुख

कारण यह समझ में आता है कि श्री बालकृष्णजी सहाय (राँची वाले) प्रतिनिधि सभा के मन्त्री बने और प्रतिनिधि सभा का कार्यालय भी राँची ले गये। परवर्ती रेकार्डों को देखने से यह भी समझ में आता है कि उस समय आर्यसमाज कलकत्ता और प्रतिनिधि सभा इत्यादि सब का कार्य बहुत मिला-जुला और सहयोगपूर्ण था। आर्यावर्त साप्ताहिक के साथ बंगाल-बिहार प्रतिनिधि सभा भी जुड़ गयी थी। बंगाल-बिहार प्रतिनिधि सभा के राँची कार्यालय में ६ जनवरी सन् १८६८ ई० को एक प्रस्ताव पारित किया गया था जिसकी प्रतिलिपि राँची कार्यालय में सुरक्षित है। इस सन्दर्भ में प्रस्ताव का उपयोगी अंश निम्न प्रकार है:

"..........इसलिए प्रतिनिधि सभा से प्रार्थना की जाय कि वह बाबू महावीर प्रसाद को प्रार्थना करे कि आर्यावर्त पत्र तथा प्रेस जिसका मूल्य प्रतिनिधि सभा किश्त करके बाबू साहब को दे देगी, वह प्रतिनिधि सभा को दे देवें।"

इस सभा में आर्यावर्त के सम्पादकाचार्य पं० रुद्रदत्तजी शर्मा भी उपस्थित थे और उनके हस्ताक्षर कार्यवाही में सुरक्षित हैं। श्री पोद्दारजी ने अपने लेख में यह भी उल्लेख किया है कि प्रतिनिधि सभा के मन्त्री के १६ जनवरी, १८६८ ई० के पत्र से यह ज्ञात होता है कि श्री महावीर प्रसाद ने आर्यावर्त पत्र प्रतिनिधि सभा को दान कर दिया था और प्रतिनिधि सभा ने वह दान स्वीकार कर लिया था। श्री पोद्दारजी की सूचना के अनुसार १० मार्च सन् १८६८ ई० को प्रतिनिधि सभा को आर्यावर्त पत्र का अधिकार प्राप्त हुआ था और १ अप्रैल, सन् १८६८ ई० से आर्यावर्त राँची से निकलने लगा था। इस प्रकार यह लिखने में कोई संकोच या असुविधा नहीं प्रतीत होती कि आर्यावर्त का प्रकाशन सन् १८८७ ई० से सन् १८६७ ई० तक कलकत्ता से होता रहा। डा० भवानीलाल भारती ने 'आर्यसमाज के पत्र और पत्रकार' नामक ऐतिहासिक विवेचनामूलक ग्रन्थ की पाद-टिप्पणी में लिखा है—

"वाजपेयीजी के अनुसार आर्यावर्त साप्ताहिक पत्र आर्य-समाजियों ने कलकत्ता से निकाला था। जबतक कलकत्ता में रहा, अच्छा चला। १८९१ ई० में क्षेत्रपाल शर्मा इसके सम्पादक थे।"[१]

आर्यावर्त का सम्पादक सम्पादकाचार्य पं० रुद्रदत्तजी शर्मा को नियुक्त किया गया था। डा० भवानीलालजी भारती ने लिखा है कि आर्यावर्त के प्रथम सम्पादक रुद्रदत्त शर्मा थे। उन्हें मुरादाबाद से कलकत्ता आमन्त्रित कर पत्र का सम्पादकीय दायित्व सौंपा गया। शर्माजी ने लगभग १० वर्षों तक आर्यावर्त का सम्पादन किया। ऊपर के उद्धरण में १८९१ में पं० क्षेत्रपाल शर्मा के सम्पादक होने का उल्लेख है। इस सम्बन्ध में और कहीं से कोई जानकारी नहीं मिली है। सामान्यतः यही समझ में आता है कि आर्यावर्त के सम्पादक पं० रुद्रदत्त शर्मा ही थे।

पंडित दीनबन्धुजी शास्त्री के अपने संस्मरणात्मक लेखों में यह है कि सम्पादकाचार्य पंडित रुद्रदत्तजी शर्मा आर्यावर्त के प्रथम सम्पादक तो थे ही, ये ही आर्यसमाज कलकत्ता के या यों कहें कि बंगाल में आर्यसमाज के प्रथम उपदेशक थे। श्री रुद्रदत्तजी शर्मा बड़े कुशल सम्पादक थे और यह तो उनकी सर्वसम्मान्य उपाधि 'सम्पादकाचार्य' से ही ज्ञात होता है। पण्डित रुद्रदत्तजी शर्मा का एक विद्वान् के रूप का परिचय आर्यसमाज कलकत्ता के विद्वानों के प्रसंग में द्रष्टव्य है।[२]

सत्य सनातनधर्म

'सत्य सनातन धर्म' नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन सन् १९१० ई० में आरम्भ हुआ। पत्र के सम्पादक श्री राधामोहनजी गोकुल थे

१. डा० भवानीलाल भारतीय—आर्यसमाज के पत्र और पत्रकार—पृष्ठ ३६।
२. दशम अध्याय—विद्वान् प्रचारक

और प्रकाशन १३ नं० पगैयापट्टी, बड़ाबाजार से हो रहा था। वास्तव में सत्य सनातन धर्म का प्रकाशन एक कटुतापूर्ण प्रयास के उत्तर में आरम्भ हुआ था। यह पत्र आर्यसमाज कलकत्ता का अपना पत्र तो नहीं था पर व्यावहारिक दृष्टि से आर्यसमाज का ही पत्र था। कानूनी घोषणा, लिखापढ़ी, चाहे आर्यसमाज के नाम से नहीं थी। यह वह युग था जब पोद्दार परिवार के प्रसिद्ध सेठ श्री जयनारायणजी पोद्दार दीवानों की तरह आर्यसमाज के कार्य को अपना कार्य समझकर तन-मन-धन से सर्वात्मना आर्यसमाज के कार्य में लगे हुए थे। जयनारायणजी पोद्दार का बड़ाबाजार के सेठों में बड़ा भारी सम्मान था। वे ताराचन्द घनश्यामदास नामक प्रसिद्ध फर्म के कर्त्ताधर्ता थे और इसीलिए मारवाड़ी सेठों में उनका स्थान बहुत प्रतिष्ठापूर्ण था। श्री जयनारायणजी बड़े कट्टर आर्यसमाजी विचार के थे और सुधार के कार्यों में सब जगह आगे रहते थे। श्री जयनारायणजी की सुधार-वादिता अपने समय के हिसाब से बहुत आगे थी। श्री किशनलालजी पोद्दार ने बताया कि श्री जयनारायणजी इतने कट्टर थे कि अपने छोटे भाई श्री गुरुप्रतापजी की लड़की कमली बाई के विवाह में चिलम-तम्बाकू आदि का प्रयोग नहीं होने दिया था। मारवाड़ी सेठों में, वैसे तो वैश्य मात्र में बिरादरी से बहिष्कार का अर्थ ही होता है चिलम बन्द होना, किन्तु लोगों के बहुत आग्रह करने पर जयनारायणजी ने चिलम-तम्बाकू आदि नहीं दिया। इस सुधारवादी विचारधारा का विरोध कट्टरपंथी मारवाड़ियों की ओर से प्रतिक्रिया के रूप में होना स्वाभाविक था। इसीके साथ एक घटना और जुड़ गयी जिसकी चर्चा हमने अन्यत्र भी की है।[1] १९६६ विक्रमी में जयनारायणजी के मँझले पुत्र श्री दीपचन्दजी पोद्दार की स्त्री का देहान्त अत्यन्त असमय में हो गया। जयनारायणजी ने अपनी आर्यसमाजी कट्टरता के अनुसार

---

१. द्रष्टव्य—षोडष अध्याय—पोद्दार परिवार

अपनी इस पुत्रवधू का अंत्येष्टि-संस्कार स्वामी दयानन्दजी के लिखे अनुसार कराया। चिता के ऊपर घी, सामग्री आदि की आहुतियाँ पुष्कल मात्रा में पड़ती रही। बहकाने वाले कट्टरपंथियों को एक सुविधाजनक अवसर हाथ लगा। जलती चिता पर होम करने के विरोध में कट्टरपंथियों ने भोलीभाली जनता को खूब भड़काया। पौराणिकों की ओर से 'सनातन धर्म' नामका एक पत्र निकाला गया। वह उचित-अनुचित का विचार छोड़कर आक्रामक रूप में सुधारवादियों, विशेषकर श्री जयनारायणजी पोद्दार और दूसरे आर्यसमाजियों पर आक्रमण करता रहता था। इसी पत्र के उत्तर में आर्यसमाजी विचार-धारा के लोगों में 'सत्य सनातन धर्म' पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ था। डा० भवानीलाल भारती के अनुसार :

> "इस पत्र ने शठे शाठ्यम् समाचरेत् की नीति अपनायी और पौराणिक मत की कटु आलोचना की।"[१]

सुस्पष्ट है कि इस विरोध और कटुता के वातावरण में प्रकाशित होने वाले पत्र के सम्पादक को इस कटुता का दायित्व लेना ही पड़ता है। आर्यसमाज की ओर से इस विरोध और कटुता के मोर्चे पर श्री राधा मोहन गोकुल जैसा साहित्य सेवी सम्पादक के रूप में सन्नद्ध होकर डट गया। श्री राधामोहन गोकुल कोई ऐसे वैसे साधारण व्यक्ति न थे। आपकी स्मृति में हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग ने 'राधामोहन गोकुल पुरस्कार' चालू किया। ऐसा

श्री राधामोहन गोकुलजी

१. डा० भवानीलाल भारतीय—आर्यसमाज के पत्र और पत्रकार पृ० ७२

यशस्वी साहित्य सेवी विरोध के इस मोर्चे पर आर्यसमाज की ओर से सम्पादक बना, इसका अपना अलग महत्त्व है।[1]

स्वाभाविक है कि ऐसे प्रतिक्रियावादी कार्य चिरस्थायी नहीं होते। सनातन धर्म और सत्य सनातन धर्म दोनों ही एक दूसरे के विरोध में आरम्भ हुए थे। मारवाड़ी समाज के विचारशील लोग यह समझते थे कि कट्टरपंथी लोग श्री जयनारायणजी पोद्दार के साथ अन्यायपूर्ण कठोरता बरत रहे हैं। समझदार लोगों ने बीच में पड़कर यथातथा उस विरोध की भावना का उपशमन किया और जब विरोधी भावना की उग्रता शान्त होने लगी तो स्वतः ही प्रतिक्रिया का शान्त होना स्वाभाविक हो गया। इस प्रकार सन् १९१३ ई० में सत्य सनातन धर्म का प्रकाशन बन्द हो गया।

सुधारक

डा० भवानीलाल भारतीयजी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'आर्यसमाज के पत्र और पत्रकार' में पृ०.७४ पर लिखा है—

"श्री राधामोहन गोकुलजी ने कलकत्ता से मारवाड़ियों में आर्यसमाज के प्रचारार्थ १९१३ ई० में सुधारक नामक पत्र प्रकाशित किया।"

इस पत्र के सम्बन्ध में इससे अधिक सूचना हमें और कहीं नहीं मिली। सनातनधर्म और सत्यसनातनधर्म के रूप में विरोध की कथा सं० १९६६ वि० सन् १९०९ की है। सत्यसनातन धर्म का प्रकाशन विरोध की भावना शान्त होने पर बन्द हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि सत्य सनातनधर्म का प्रकाशन बन्द होने पर श्री राधामोहन गोकुलजी ने 'सुधारक' नामक पत्र प्रकाशित किया था।

श्री राधाकृष्ण नेवटिया द्वारा सम्पादित ग्रन्थ 'बड़ाबाजार के कार्यकर्त्ता' से विदित होता है कि श्री राधामोहन गोकुलजी १९३५ ई० में

---

१. द्रष्टव्य—दशम अध्याय—विद्वान्-प्रचारक

कलकत्ता से गये[१], किन्तु सुधारक कबतक प्रकाशित होता रहा, इसका कुछ पता नहीं चलता।

आर्यधर्म प्रवर्तक

श्री पण्डित दीनबन्धुजी वेदशास्त्री ने आर्यसमाज कलकत्ता की हीरक-जयन्ती के अवसर पर आर्य-संसार के हीरक-जयन्ती-विशेषांक (दिसम्बर १९६१ ई०) में एक लेख अति ऐतिहासिक महत्त्व का लिखा है। उसमें पृष्ठ ४५ पर उन्होंने इस प्रकार लिखा है—

"राजा तेजनारायण सिंह ने आर्यसमाज के प्रचारार्थ बीस हजार रुपये दान दिये थे। उस रुपये से आर्यावर्त यन्त्रालय नामक छापाखाना खुल गया। पण्डित शंकरनाथजी ने अपने गृह के (६२, शंभूनाथ पण्डित स्ट्रीट) दो कमरे छापाखाना के लिए दिये थे। वहाँ से 'आर्यधर्म प्रवर्तक' नाम का मासिक पत्र हिन्दी भाषा में प्रकाशित होने लगा। प्रसिद्ध पण्डित रुद्रदत्तजी शास्त्री उस मासिक पत्र के सम्पादक और आर्यसमाज कलकत्ते के प्रचारक नियुक्त हुये।"

इस सूचना से 'आर्यधर्म प्रवर्तक' नामक एक अन्य मासिक पत्र का बोध होता है। यह घटना यदि 'आर्यावर्त' नामक पत्र से सम्बन्धित होती तो कोई ऐतिहासिक उलझन न पैदा होती, किन्तु, 'आर्यधर्म प्रवर्तक' नामकी सूचना से उलझन पैदा हो रही है। एक तो आर्यावर्त साप्ताहिक पत्र था और श्री दीनबन्धुजी 'आर्यधर्म प्रवर्तक' को मासिक पत्र लिख रहे हैं, अतः 'आर्यावर्त' और 'आर्यधर्म प्रवर्तक' ये दोनों एक ही नहीं प्रतीत होते। 'आर्यधर्म प्रवर्तक' के सम्बन्ध में हमें दूसरी ओर कोई सूचना नहीं प्राप्त हो सकी है। अतः इस सम्बन्ध में हम केवल एक ऐतिहासिक उलझन का बोध करते हैं। निश्चयात्मक रूप से हम कुछ कहने की स्थिति में अपने को नहीं पा रहे हैं।

---

१. श्री राधाकृष्ण नेवटिया—बड़ाबाजार के कार्यकर्ता—साहित्यकार एवं कलाकार पृ० ४१

आर्यगौरव

पत्रकारिता के क्षेत्र में कलकत्ता के आर्यसामाजिक जगत् में पण्डित दीनबन्धुजी वेदशास्त्री का अपना एक विशिष्ट स्थान है। आर्यावर्त साप्ताहिक प्रकाशन के वन्द होने के पश्चात् और कई प्रकार की साहित्यिक गतिविधियाँ कलकत्ता में चलती रहीं, किन्तु किसी पत्र का सम्पादन ऐतिहासिक दृष्टि से हमें दृष्टिगोचर नहीं हुआ। जो कुछ सूत्र पत्रकारिता के सम्बन्ध में प्रकाश में आये हैं उनमें पण्डित दीनबन्धुजी वेदशास्त्री अपने समय में एक पत्रकार के रूप में प्रतिष्ठित दिखाई पड़ते हैं। पं० दीनवन्धुजी निष्ठावान् आर्यसमाजी, क्रांतिकारी देशभक्त, दंगली शास्त्रार्थी और सिंहगर्जन करने वाले ओजस्वी वक्ता थे। यह स्वाभाविक था कि ऐसे विद्वान् लेखक की पत्रकारिता से आर्यसमाज कलकत्ता लाभान्वित होता।

आर्यसमाज कलकत्ता भी प्रायः किसी न किसी पत्र का प्रकाशन करता रहा है। सन् १९३१ ई० के अप्रैल मास से 'आर्यगौरव' का प्रकाशन आर्यसमाज कलकत्ता के मासिक मुखपत्र के रूप में आरम्भ हुआ। इसके सम्पादक पं० दीनवन्धुजी वेदशास्त्री और प्रकाशक फणीन्द्रनाथजी सेठ थे। वैसाख १३३८ वंगाव्द से १३४१ वंगाव्द तक आर्यगौरव आर्यसमाज कलकत्ता के मुखपत्र के रूप में प्रकाशित होता रहा।

श्री पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण की संस्मरणात्मक टिप्पणियों से यह ज्ञात होता है कि आर्यगौरव के एक हज़ार से अधिक ग्राहक थे। पत्र का वार्षिक मूल्य एक रुपया था। इन दोनों सूचनाओं से यह विदित होता है कि आर्यगौरव अपने में सफलतापूर्वक चल रहा था। हज़ार ग्राहक या कुछ कम-वेश भी एक मासिक पत्र को, सो भी वंगला में, खरीद कर पढ़ते थे, अपने में एक महत्त्वपूर्ण वात है। एक रुपया वार्षिक मूल्य भी समय को दृष्टि से कम नहीं था। पं० दीनवन्धुजी

जैसे ओजस्वी, क्रान्तिकारी, सुधारवादी विद्वान् के सम्पादन में पत्र की यह सफलता पर्याप्त महत्त्वपूर्ण लगती है।

कार्य की अधिकता को ध्यान में रखते हुए आर्यसमाज कलकत्ता ने आर्यगौरव के बहुविध कार्यों में सहयोग करने के लिए पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण को नियुक्त कर लिया था। पं० प्रियदर्शनजी अभी लाहौर नहीं गये थे। पं० प्रियदर्शनजी ने सम्पादकीय कला का बहुत कुछ अंश पं० दीनबन्धुजी के साथ रहकर ही सीखा था। पं० प्रियदर्शनजी ने स्वयं लिखा है—

> "मैं प्रतिदिन आर्यगौरव के कार्य में सहयोग दिया करता था। आर्यगौरव का प्रूफ देखना, ग्राहकों के नाम लिखना, आदि सामान्य कार्यों का सहयोग रहता था। समाचार मासिक पत्र के प्रकाशन की रीति-नीति व्यवस्था आदि मैंने पण्डितजी के सम्पर्क में रहकर सीखा। मेरे इस कार्य को देखकर आर्यसमाज कलकत्ता के अधिकारियों ने मुझे १० रुपये मासिक सहायता देने का निश्चय किया। लाहौर जाने के पहले तक यह सहायता मुझे बराबर मिलती थी।"[१]

पत्र क्यों बन्द हो गया, यह भी एक पहेली है। पत्र की भाषा बंगला थी। सम्पादक और प्रकाशक भी बंगलाभाषी विद्वान् और कार्यकर्त्ता थे। ऐसे अवसरों पर पारस्परिक असहयोग कभी-कभी सीमा का अतिक्रमण कर लाभकारी कार्यों पर भी प्रहार कर बैठता है। आर्यगौरव में धार्मिक, सामाजिक, सुधारवादी विषयवस्तु का होना स्वाभाविक ही था। इसमें आर्यसमाज कलकत्ता और अन्य आर्यसामाजिक गतिविधियों का वर्णन भी रहता था। एक प्रकार से यह पत्र पारस्परिक सम्पर्क-सूत्र का कार्य कर रहा था। श्री फणीन्द्रनाथ सेठ कलकत्ता से बाहर चले गये और पं० दीनबन्धुजी एक प्रकार से

१. पं० प्रियदर्शनजी की व्यक्तिगत सूचना।

इस पत्र के संचालन के लिए अकेले पड़ गये। धीरे-धीरे परिस्थिति यह बनी कि आर्यगौरव का प्रकाशन १३४१ वंगाब्द में बन्द हो गया। इसी के पश्चात् १३४२ वंगाब्द में पं० दीनबन्धुजी द्वारा ही 'शास्त्रसिन्धु' नामक पत्र का सम्पादन आरम्भ हुआ। यह समझना असंगत नहीं लगता कि पारस्परिक असहयोग के कारण पं० दीनबन्धुजी ने पृथक् पत्र निकालना आरम्भ कर दिया।

शास्त्रसिन्धु

यह आर्यसमाज कलकत्ता का अपना पत्र नहीं था। इसे पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री ने १३४२ वंगाब्द में प्रकाशित करना आरम्भ किया था। पं० दीनबन्धुजी आर्यसमाज कलकत्ता के एक अभिन्न अंग थे और उनके व्यक्तिगत कार्य व्यक्तिगत होकर भी आर्यसमाज कलकत्ता के इतिहास में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। जिस समय पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री 'शास्त्रसिन्धु' नामक पत्रिका के प्रकाशन में तत्पर हुए, उस समय उनके सहयोगी यदाकदा पं० प्रियदर्शनजी हो जाया करते थे। एक व्यक्ति पत्रिका की सारी व्यवस्था करे—सामग्री की तैयारी, प्रूफ, प्रकाशन, डाक में भेजना, सब कुछ बड़ा कठिन-सा कार्य था। पं० प्रियदर्शनजी की सूचना के अनुसार 'शास्त्रसिन्धु' मासिक कार्यालय से ही पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री अपने वेद भाष्य का भी प्रकाशन करते रहे। थोड़े दिनों में कुछ ही अंक निकलने के बाद शास्त्रसिन्धु का प्रकाशन बन्द हो गया।

आर्य

शास्त्रसिन्धु तो बहुत शीघ्र ही बन्द हो गया। शास्त्रसिन्धु बन्द होने के पश्चात् १३४४ वंगाब्द में एक और पत्र का प्रकाशन 'आर्य' नाम से पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री ने आरम्भ किया। पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री इसके सम्पादक थे और श्री रामकृष्ण राय इसके संचालक थे। कन्या विद्यालय के पीछे, २० सी०, कार्नवालिस स्ट्रीट में एक

छोटी-सी कोठरी में श्री रामकृष्णजी का अपना प्रेस चलता था। वहीं से आर्य का प्रकाशन होता था। साधनों की इतनी कमी थी कि वह छोटी-सी कोठरी ही प्रेस के लिए भी थी, आर्य का कार्यालय भी, वही भोजन बनाने और भोजन करने की भी जगह थी, किन्तु पत्र का प्रकाशन जैसा महत्त्वपूर्ण कार्य होता ही रहा।

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण सम्पादकीय कड़ी पं० दीनबन्धुजी के सम्बन्ध में और कलकत्ता में आर्यसमाज के पत्रों के सम्बन्ध में ध्यान में आती है। आर्यगौरव बंगाब्द १३३८ से बंगाब्द १३४१ तक निकलता रहा। १३४१ बंगाब्द में आर्यगौरव के बन्द होने पर १३४२ बंगाब्द में शास्त्र-सिन्धु निकलने लगा। कुछ ही दिन चलकर यह बन्द हो गया तो १३४४ बंगाब्द में आर्य नामक पत्र प्रकाशित हुआ। इन सब पत्रों के सम्पादक पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री ही थे, व्यवस्थापक और प्रकाशक आर्यसमाज कलकत्ता, पं० दीनबन्धुजी स्वयं और श्रीरामकृष्ण राय के रूप में भिन्न-भिन्न रहे, किन्तु पण्डित दीनबन्धुजी ऐसी उत्कट अभिलाषा और तपस्वी साधना के व्यक्ति थे कि बहुत सारी अड़चनों के बाद भी सम्पादन-प्रकाशन का कार्य करते रहते थे।

'आर्य' का प्रकाशन भी अधिक दिन नहीं चला। कोई चार वर्षों में यह भी बन्द हो गया। तब तक पण्डित दीनबन्धुजी वेदशास्त्री भी इसके सम्पादक न रह सके और कुछ समय के लिए इसका प्रकाशन पण्डित प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण ने किया।

आर्यरत्न

आर्यरत्न का प्रकाशन १३५६ बंगाब्द में हुआ था। यह वैदिक साहित्य परिषद २४/२, कॉर्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता से प्रकाशित हुआ था। यह वैदिक साहित्य परिषद का मासिक मुखपत्र था। पत्र के व्यवस्थापक श्री वटुकृष्णजी ;वर्मन थे और सम्पादक पण्डित अतुलकृष्ण चौधरी और पण्डित प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण थे। यह पत्र दो वर्ष तक

प्रकाशित होता रहा। यह आर्यसमाज कलकत्ता से सम्बन्धित न था। २४/२, कॉर्नवालिस स्ट्रीट उन दिनों प्रतिनिधि सभा का कार्यालय था और यह पत्र वहीं से निकल रहा था। हमने इस पत्र के ऐतिहासिक तथ्य आदरणीय विद्वान् डा० भवानीलालजी भारतीय के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'आर्यसमाज के पत्र और पत्रकार' से संकलित कर दिये हैं। श्री वटुकृष्णजी वर्मन और पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण अभी भी आर्यसमाज कलकत्ता से सम्बन्धित हैं। अतः यह पत्र सुस्पष्टतः आर्यसमाज कलकत्ता का पत्र न होने पर भी उसके इतिहास में अपना महत्त्व रखता है।

वेदमाता

आर्यसमाज कलकत्ता समय-समय पर अपने मुखपत्र प्रकाशित करता रहा है, किन्तु व्यवस्था की निर्बलता उससे भी अधिक किसी सुदक्ष सम्पादक का अभाव और कभी-कभी पारस्परिक खींचतान इन पत्रों को दीर्घजीवी नहीं होने देती थी। फिर भी आर्यसमाज कलकत्ता की छत्रछाया में कई पत्र-पत्रिकाएँ निकलती रहीं। आर्यसमाज कलकत्ता के अधिकारी व्यक्तिगत रूप से और सामूहिक रूप से भी इन पत्रों को प्रश्रय देते रहे। कई बार सम्पादकों का स्वतन्त्र चिन्तन, उनकी स्वच्छन्द वृत्ति भी अप्रत्यक्षरूप से पत्रों को बन्द होने में कारण बन जाती है। आर्यावर्त कलकत्ता से राँची चला गया। आर्यगौरव निकला और पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री सम्पादक नियुक्त हुए। इसके १,००० के लगभग ग्राहक भी बने, किन्तु आर्यगौरव के व्यवस्थापक श्री फणीन्द्रनाथ सेठ के कलकत्ता छोड़ने के पीछे यह पत्र बन्द हो गया। किन्तु थोड़े ही दिनों में दीनबन्धुजी ने शास्त्रसिन्धु नाम की एक संस्था बनायी और शास्त्रसिन्धु नामक मासिक पत्रिका निकली। एक अकथित कथा यह प्रतीत होती है कि आर्यगौरव के बन्द होने से दीनबन्धुजी निश्चित ही असन्तुष्ट थे और शास्त्रसिन्धु उनका

व्यक्तिगत प्रयास था। आर्य, आर्यरत्न की कहानी अपनी जगह है। इसी कड़ी में वेदमाता का प्रकाशन भी आता है।....

यों तो आरम्भ से जैसे शास्त्रसिन्धु पण्डित दीनबन्धुजी का व्यक्तिगत प्रयास था उसी प्रकार वेदमाता पण्डित प्रियदर्शनजी का नितान्त व्यक्तिगत, परम साहस और प्रेरणा का फल है। वेदमाता के सम्पादक, प्रकाशक सब कुछ पण्डित प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण ही हैं। यह वैदिक साहित्यपीठ का मुखपत्र है। ८३/१ विवेकानन्द रोड, कलकत्ता, वैदिक साहित्यपीठ का स्थान है और यही पं० प्रियदर्शनजी का निवास-स्थान है। अतः आदरणीय पंडितजी ने अपने घर को ही वैदिक साहित्यपीठ का रूप दे दिया और व्यक्तिगत रूप से वेदप्रचार के क्षेत्र में अकेले ही जुट पड़े। पं० प्रियदर्शनजी ने स्वयं लिखा है—

"बंगाल प्रतिनिधि सभा में उपदेशक और प्रचारक न होने के कारण बंगाल में वेद प्रचार नहीं हो रहा था। मेरा विचार पहले से ही था कि वेदप्रचार के लिए 'वेदमाता' के प्रकाशनार्थ कुछ करना चाहिए जिससे उसके द्वारा बंगाल में कुछ वेद प्रचार हो सके। धन मेरे पास था ही नहीं, किन्तु अपनी दक्षिणा के पैसे से ही एक दिन वेदमाता का प्रकाशन कर ही दिया।"[१]

यह तो हुई वेदमाता के प्रकाशन के आरम्भ की कहानी—एक प्रचारक ब्राह्मण की व्यथा की कहानी। पंडित जी लिखते हैं कि—

"मैंने प्रथम वैदिक साहित्यपीठ की स्थापना की। मैं ही इसका सर्वेसर्वा था, क्योंकि मुझे ही सब काम करना था।"[१]

बंगाब्द १३७५ के वैसाख महीने में तात्कालिक राज्यपाल धर्मवीरजी की मंगलकामना के साथ वेदमाता का प्रथम अंक प्रकाशित हुआ। प्रथम अंक में राज्यपाल का आशीर्वाद प्रथम पृष्ठ पर ही ब्लाक बनाकर

१—पं० प्रियदर्शनजी की व्यक्तिगत सूचना

प्रकाशित हुआ। निःसन्देह व्यक्तिगत प्रयास में व्यवस्था की कठिनाइयाँ और आर्थिक कठिनाइयाँ भी आती हैं। सामग्री जुटाना, मुद्रण-प्रकाशन की व्यवस्था करना, पता आदि लिखना, सब काम एक व्यक्ति कैसे निभा सकता है ? पंडितजी का यह प्रयास सर्वथा स्तुत्य है।

यह तो सुस्पष्ट है कि यह पंडितजी का व्यक्तिगत प्रयास है, किन्तु आर्यसमाज कलकत्ता के इतिहास से इसे पृथक् नहीं किया जा सकता। पं० प्रियदर्शनजी वैदिक साहित्यपीठ और वेदमाता सब कलकत्ता आर्यसमाज के अंग-संग हैं। आर्यसमाज कलकत्ता के अधिकारी, सदस्य सभी वेदमाता के प्रकाशन और पं० प्रियदर्शनजी के अन्य साहित्यिक कार्यों में सहानुभूति और उदारतापूर्वक सहयोग देते रहे हैं। जहाँ आर्यसमाज कलकत्ता का उन्मुक्त समर्थन वैदिक साहित्यपीठ और वेदमाता को सुलभ है वहाँ प्रान्तीय संगठन का विमाता भाव भी पं० प्रियदर्शनजी को व्यथित करता रहता है। प्रान्तीय सहयोग की स्थिति में सम्भवतः वेदमाता का स्वरूप और भी निखर कर प्रस्तुत होता। पं० प्रियदर्शनजी भी प्रान्तीय अकर्मण्यता पर व्यथित रूप से किन्तु निष्ठुर भाव से वेदमाता के माध्यम से बरस पड़ते हैं। इस निष्ठुरता के आलम में, अधिकारियों की हाँ-हुजूरी के युग में पंडित विद्वान् अधिकारियों के स्नेहभाजन न रहकर कोपभाजन या उपेक्षा-पात्र बन जायँ तो क्या आश्चर्य है। यह है वेदमाता की मन्थर-प्रगति का कारण। फिर भी १७-१८ वर्षों का दीर्घ काल समाप्त हो रहा है और बंगाल में कोई भी बंगला पत्र आर्यसमाज के क्षेत्र में इतना दीर्घजीवी नहीं हो सका था। पं० प्रियदर्शनजी कहते हैं कि "आज तक भगवान ने इसे जीवित रखा, आगे भी भगवान ही जाने मैं प्रचार करता जाऊँगा।"

डा० भवानीलाल भारतीय ने 'आर्यसमाज के पत्र और पत्रकार' नामक ग्रन्थ में वेदमाता का प्रकाशन बंगाब्द १३७३ लिखा है। पं०

प्रियदर्शनजी बंगाब्द १३७५ बताते हैं। लगता है आदरणीय डा० भवानीलालजी के ग्रन्थ में यह मुद्रण की भूल हो गई है।

वेदमाता के प्रत्येक अंक में वेदमन्त्रों की व्याख्या, धार्मिक सामाजिक लेख, कविताएँ रहती हैं। आजकल संस्कृत भाषा में श्लोकबद्ध श्री कृष्ण की जीवनी, श्री कृष्ण महाभारतम् नाम से प्रकाशित होती है। यह श्री अतुल कृष्णजी की रचनाएँ है। वेदमाता का वार्षिक शुल्क २० रुपये हैं और इसके ग्राहक आर्यसमाज के सदस्यों की अपेक्षा गैर आर्यसमाजी कहीं अधिक हैं। वेदमाता ने समय-समय पर अपने विशेषांक भी निकाले हैं—

१—आर्यसमाज शताब्दी—जब दिल्ली में आर्य समाज-स्थापना शताब्दी मनायी गयी थी।

२—दीनबन्धु-स्मृति—आदरणीय पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री के देहान्त के अवसर पर यह विशेषांक प्रकाशित हुआ था।

(३) अजमेर शताब्दी—ऋषि दयानन्द की निर्वाण शताब्दी अजमेर में मनायी गयी थी, उस समय वेदमाता का यह विशेषांक प्रकाशित हुआ था।

आज भी पं० प्रियदर्शनजी बड़ी लगन और उत्साह के साथ वेदमाता का प्रकाशन सम्पादन किये जा रहे हैं।

आर्य-संसार

आर्यसमाज कलकत्ता का कार्यक्षेत्र एक स्थानीय इकाई की अपेक्षा से कहीं अधिक है। कई बार यह बंगाल के आर्यसमाजों की सेवा-सहायता और प्रचार की व्यवस्था में योगदान करता रहा है। इस दृष्टि से आर्यसमाज कलकत्ता बंगाल के अन्य आंचलिक समाजों से जुड़ा सा रहता है। संगठन की इन संश्लेषणात्मक गतिविधियों के लिए कलकत्ता आर्यसमाज का अपना विशिष्ट स्थान है। आर्यसमाज की सूचना सदस्यों और सहयोगियों को पहुँचती रहे तो एक कड़ी-

सी बनी रहती है। आर्यसमाज कलकत्ता अपना वार्षिकोत्सव ८-६ दिनों का आयोजित करता है। यह दिसम्बर के अन्त में बड़ेदिन की छुट्टियों में मनाया जाता है। एक प्रकार से देखा जाय तो यह सम्पूर्ण कलकत्ता का वार्षिकोत्सव है। अन्य स्थानीय इकाइयों के रहते हुए भी कलकत्ता के सुदूर अंचलों से आर्यसमाजी इसमें सम्मिलित होते हैं। उस समय सहयोग की दृष्टि से, प्रचार और सम्पर्क-स्थापन की दृष्टि से आर्यसमाज कलकत्ता के अधिकारी कलकत्ता के बहुत सारे आर्यसमाजियों से सम्पर्क की चेष्टा करते हैं। वर्ष में केवल एक बार चन्दा लेने जाना अधिकारिओं को बड़ा अटपटा लगता था। प्रायः यह चर्चा होती रहती थी कि वर्षभर निरन्तर सम्पर्क-सूत्र को बनाए रखना अधिक अच्छा है। वार्षिकोत्सव के अतिरिक्त आर्यसमाज कलकत्ता का वेद-सप्ताह भी अपने में महत्त्वपूर्ण आयोजन होता है। वर्ष में १-२ बार और भी आयोजन, यथा कभी प्रीतिभोज आदि हो जाते हैं। फिर भी अधिकारियों की वर्षों से एक कामना थी कि अपने सदस्यों और दानदाताओं से वर्षभर निरन्तर सम्पर्क-सूत्र बनाए रखने की चेष्टा होनी चाहिए। यह कार्य एक मासिक पत्र की सहायता से निकल सकता था और अधिकारी इस बात के लिए तैयार भी थे। सन् १६५८-५६ ई० में श्री कृष्णलाल खट्टर, एम० ए० आर्यसमाज कलकत्ता के मन्त्री निर्वाचित हुए। उन्होंने अधिकारियों की इस मौन आकांक्षा को मूर्त रूप देना चाहा। उन्होंने महाशय रघुनन्दनलालजी से परामर्श किया। महाशय रघुनन्दनलालजी आर्यसमाज कलकत्ता के संगठन में वर्षों प्राण-स्वरूप महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। दोनों ने परामर्श किया और एक मासिक पत्र निकालने का निश्चय कर डाला। सम्पादक के रूप में उनका ध्यान मेरे (उमाकान्त उपाध्याय) ऊपर गया। मैं स्नातक महाविद्यालय में पढ़ाता तो था ही, आर्यसमाज की वेदी से बोलने-चालने भी लगा था। स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में

कभी-कभार लेख भी लिखता था। आर्यसंसार की सम्पादकता स्वीकार करने से पूर्व मैं सुप्रभात नामक कलकत्ता की एक मासिक पत्रिका का ४-५ महीने सम्पादन कर चुका था। यह पत्रिका साहित्यिक एवं सामाजिक थी और अपनी महात्त्वाकांक्षा लेकर सरिता आदि, उस समय की पत्रिकाओं की प्रतियोगिता में निकली थी। मेरी साहित्यिक क्षमता से आश्वस्त होकर पत्रिका के संचालकों ने मुझे सम्पादक नियुक्त किया था। मैं था निर्द्वद्व, कट्टर आर्यसमाजी, सो एक सैद्धान्तिक जिच पर एक ही दिन में मैंने सुप्रभात की सम्पादकता से त्याग-पत्र दे दिया था। इस प्रकार आर्यसमाज कलकत्ता को अपने मासिक पत्र के लिए घर का एक उपयुक्त उपयोगी सम्पादक मिल गया। एक दिन मेरे साथ भी परामर्श हुआ फिर अन्तरंग ने एक मासिक पत्र निकालने का निर्णय ले लिया।

आर्य-संसार के अपने मासिक पत्र के रूप में निकलने से पूर्व सन् १९५८ ई० के अन्तिम ४ महीनों तक रजिस्ट्रेशन जैसी औपचारिकताओं के पूर्ण न हो सकने के कारण यह 'आर्यसमाज कलकत्ता की प्रगति' के रूप में निकलता रहा। फिर जनवरी सन् १९५९ ई० से आर्य-संसार आर्यसमाज कलकत्ता के मासिक मुखपत्र के रूप में प्रकाशित होता आ रहा है। आरम्भ में महाशय रघुन्दनलालजी इसके प्रकाशक और मैं (उमाकान्त उपाध्याय) इसका सम्पादक रहा। कुछ वर्षों पश्चात् किसी औपचारिक सुविधा की बात चला कर महाशय रघुनन्दनलालजी ने मुझे ही इसका प्रकाशक भी अन्तरंग से स्वीकृत करवा दिया। तब से आर्य-संसार का स्वामित्व तो आर्यसमाज कलकत्ता का है ही, किन्तु प्रकाशक और सम्पादक मैं ही चला आ रहा हूँ।

आर्य-संसार का उद्देश्य अपने सदस्यों से सम्पर्क-स्थापन और उन्हें कुछ पठनीय सामग्री निरन्तर पहुँचाते रहना रहा है। इस दृष्टि से आर्यसंसार में लेखों का चयन होता रहा है। आरम्भिक वर्षों में

सम्पादकीय रूप में मैं सदा आर्यसमाज के सिद्धान्तों पर ही लिखता रहा हूँ। यदा-कदा सामाजिक चर्चाएँ हो जाती हैं। भारतवर्ष के उच्च कोटि के ख्यातिप्राप्त आर्यजगत् के प्रतिष्ठित लेखकों से आरम्भ करके स्थानीय आर्यसमाज के नवलेखकों तक, सबकी ही कृतियाँ छपती रहती हैं। कभी शास्त्रार्थी प्रसंग भी उभरे हैं। पं० गंगाप्रसादजी उपाध्याय और ठाकुर अमरसिंहजी आर्यपथिक के बीच यज्ञ में ३ समिधाएँ और ४ मन्त्रवाले प्रसंग को लेकर कई अंकों में तर्क-वितर्क चलता रहा है। अन्य सामयिक प्रसंग तो आते ही रहते हैं।

आर्यसंसार के विशेषांक

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, आर्य-संसार का उद्देश्य अपने सदस्यों और दानदाताओं को सुपठनीय सामग्री पहुँचाना रहा है। इस दृष्टि से यह आरम्भ से ही उचित समझा गया कि आर्यसमाज कलकत्ता के वार्षिकोत्सव के अवसर पर आर्य-संसार का एक विशेषांक स्मारिका के रूप में प्रकाशित किया जाय। इस स्मारिका विशेषांक में आर्यसमाज कलकत्ता की वर्षावधि की गतिविधियों का संक्षिप्त-सा आकलन रहता है। भावी योजनाओं का एक प्रारूप-सा भी प्रस्तुत किया जाता है। यह सब उस वर्ष के मन्त्रीजी के प्रतिवेदन के रूप में प्रकाशित होता है। सन् १९६८ ई० तक वार्षिकोत्सव विशेषांक में विद्वानों के लेख छपा करते थे। सन् १९६९ ई० से इस योजना में एक परिवर्तन हुआ। उस समय अन्तरंग में एक विचार यह प्रस्तुत हुआ कि आर्यसमाज के प्राचीन साहित्य में ऐसा बहुत कुछ है जो उपयोगी और पठनीय तो है किन्तु व्यावसायिक दृष्टि से वह व्यवसायी प्रकाशकों के लिए अनुकूल नहीं पड़ रहा है। अतः ऐसे साहित्य को आर्य-संसार के विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया जाय। इन विशेषांकों की तालिका निम्न प्रकार है :—

१९६९ उपनिषद् विशेषांक—स्वामी दर्शनानन्द का उपनिषद् भाष्य

१९७० उपनिषद् विशेषांक—स्वामी दर्शनानन्द का उपनिषद् भाष्य
१९७१ वैदिक लोरियाँ—श्री चिरंजीलालजी वानप्रस्थी द्वारा रचित
१९७२ अंक उपलब्ध नहीं है
१९७३ गुरुदत्त लेखावली—मुनिवर पं० श्री गुरुदत्त विद्यार्थी के बहुमूल्य लेखों का दुर्लभ संग्रह
१९७४ आर्यसमाज स्थापना शताब्दी—आर्यसमाज से सम्बन्धित लेख-संग्रह
१९७५ त्याग की भावना—श्री धर्मदेव सिद्धान्तालंकार द्वारा लिखित
१९७६ श्रद्धानन्द बलिदान अर्ध-शताब्दी विशेषांक—इसमें स्वामी श्रद्धानन्दजी के साहित्य से प्रेरक-प्रसंग, स्वामी श्रद्धानन्दजी की जीवनी और उनके सम्बन्ध में लेखों का संग्रह है।
१९७७ मृत्यु और परलोक—महात्मा नारायण स्वामीजी लिखित प्रसिद्ध पुस्तक
१९७८ वेद-रहस्य—महात्मा नारायण स्वामीजी द्वारा लिखित
१९७९ योग रहस्य—महात्मा नारायण स्वामीजी द्वारा लिखित
१९८० भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में आर्यसमाज की देन—आर्यसमाज कलकत्ता ने, अखिल भारतीय स्तर पर 'भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में आर्यसमाज की देन' विषय पर एक निबन्ध-प्रतियोगिता आयोजित की थी। इस विशेषांक में पुरस्कृत निबन्धों के साथ कुछ अन्य आवश्यक निबन्ध भी प्रकाशित किये गये थे। इसके सम्पादकीय में लाहौर आर्यसमाज का विदेशी वस्त्रों का त्याग और स्वदेशी वस्त्रों को अपनाने का अविकल उद्धरण The Ststesman पत्र के '100 yesrs ago' Column से लिया गया था। इस विषय पर इतनी बहुविध-सामग्री अन्यत्र एक पुस्तक में सम्भवतः अलभ्य है।

१९८१ त्रैतवाद का उद्भव और विकास—डा० योगेन्द्र कुमार शास्त्री एम० ए०, पी-एच० डी० का शोधप्रबन्ध।

१९८२ आनन्द-संग्रह—स्वामी सत्यानन्दजी के लेखों-प्रवचनों का संग्रह।

१९८३ महर्षि दयानन्द-निर्वाण-शताब्दी-विशेषांक।

१९८४ व्याख्यानमाला—स्वामी नित्यानन्दजी के व्याख्यानों का संग्रह

१९८५ आर्यसमाज कलकत्ता की शताब्दी पर विशेषांक।

इन विशेषांकों के अतिरिक्त आर्यसमाज कलकत्ता ने अपने उपदेशक विद्वानों के देहावसान पर आर्य-संसार के स्मृति-विशेषांकों की एक परम्परा डाल रखी है। इस कड़ी में कई विशेषांक छप चुके हैं—

(१) पं० अयोध्या प्रसादजी का स्मृति-विशेषांक

(२) पं० रमाकान्तजी शास्त्री का स्मृति-विशेषांक

(३) पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री का स्मृति-विशेषांक

(४) पं० सदाशिवजी शर्मा का स्मृति-विशेषांक

(५) महाशय रघुनन्दनलालजी का स्मृति-विशेषांक

इनके अतिरिक्त सन् १९६९ ई० में आर्यसमाज ने गोरक्षा का एक कार्यविशेष बड़े उत्साह से अपने हाथों में लिया था और कई महीनों तक आर्यसमाज कलकत्ता और इसके सहयोगियों की शक्ति हरिनघाटा दुग्ध-आपूर्ति-केन्द्र में नीलाम होने वाली गायों को कसाइयों के हाथों से बचाकर उनको नीलामी में खरीद कर उनकी रक्षा करना था। इस अवसर पर गोरक्षा विशेषांक नवम्बर, १९६९ ई० में प्रकाशित हुआ था।

किसी पत्र का प्रकाशन सम्पादकीयता और साहित्यिक क्षमता के साथ, कार्यालय की व्यवस्था और मुद्रण की सुविधा, प्रेस की सहयोगिता पर भी निर्भर करता है। इस सामञ्जस्य की कड़ी में कभी-कभी कुछ किरकन, कुछ अव्यवस्था, कुछ असामञ्जस्य अस्वाभाविक

नहीं है। इसीलिए कभी-कभी एकाध महीने के लिए पत्र की गति लंगड़ाने-सी लगती है, किन्तु अधिकारियों का दृढ़ निश्चय और सम्पादकीय सहयोग पत्र को इसके अपने मार्ग पर ले ही जा रहे हैं।

व्यक्तिगत धन्यवाद :

मैं (उमाकान्त उपाध्याय) व्यक्तिगत रूप से अधिकारियों का धन्यवादी हूँ। मैं केवल पिछले २७-२८ वर्षों से आर्यसमाज कलकत्ता के मुखपत्र—आर्य-संसार का सम्पादक ही नहीं वल्कि पिछले १७-१८ वर्षों से पुरोहित-आचार्य के पद पर भी कार्य करने का सौभाग्य वरण कर रहा हूँ। अधिकारी निर्वाचित होते हैं, वदल जाते हैं, एक जाते हैं, दूसरे आते हैं, किन्तु मेरी धारणा यह है कि समाज का आचार्य एवं पत्र का सम्पादक-साहित्यकार इन आने-जाने वाली कड़ियों से बहुत पृथक् अपना विशिष्ट स्थान रखता है। आर्यसमाज कलकत्ता के सभी अधिकारी हमारी इस विचित्र विशिष्ट स्थिति का सम्मान करते हैं और हमें सदा अधिकारियों से उनकी नम्रता तो मिली है किन्तु उनके अधिकार का मद २७-२८ वर्षों में कभी मेरे सम्मुख उभरा हो, ऐसा मुझे स्मरण नहीं आता, यह मेरे भी सौभाग्य की बात है।

पत्रकार अपने युग के क्रिया-कलापों का जागरूक द्रष्टा ही नहीं, वर्तमान के युग की धरोहर का भावी पहरेदार भी है। इस दृष्टि से एक जागरूक पत्रकार का दायित्व बहुत बढ़ जाता है। अपने इस कर्तव्य को स्मरण कर पत्रकार दलबन्दी की दलदल से ऊपर उठकर ही सफल हो पाता है। दूसरी ओर वर्तमान का जागरूक द्रष्टा होने के कारण उसे सावधान वाणी भी बोलनी पड़ती है और तीखी, कड़वी, अप्रिय बातें भी कह देनी पड़ती हैं। लगभग ३ दशकों के इस सम्पादकीय जीवन में चिकनी-चुपड़ी बातों से ऊपर रहकर आवश्यकतानुसार सार्वदेशिक से लेकर स्थानीय इकाई के प्रति सजग वाणी उच्चारण में हमें यदि सम्पादकीय दृष्टि से निष्ठुर होना पड़ा है तो आर्यसमाज

कलकत्ता के अधिकारियों ने सर्वदा आदर भाव के साथ हमारी निष्ठुर समालोचनाओं का भी सम्मान किया है और आजतक एक बार भी किसी ने असन्तोष का संकेत भी नहीं दिया। वस्तुतः यह व्यक्तिगत रूप से मेरे लिए सौभाग्य और सन्तोष की वात है, साथ ही आर्यसमाज कलकत्ता के अधिकारी अन्तरंग के कार्यकर्त्ताओं की समझदारी और आर्यसमाज के प्रति उनकी निष्ठापूर्ण भक्ति भी इसमें सन्निहित है।

त्रयोदश अध्याय

शास्त्रार्थ और शास्त्रविचार

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने प्रचार-कार्यक्रमों में शास्त्रार्थ-विचार-विनिमय, वार्तालाप, शंका-समाधान की प्रक्रिया को बहुत अधिक अपनाया था। ग्रन्थ लिखने और अपने विचारों को स्थायी रूप से छोड़ जाने की भावना का इतिहास तो कलकत्ता से लौटने के पश्चात् आरम्भ होता है। स्वाभाविक भी था कि जब स्वामी दयानन्द खण्डन के कठोर धरातल पर खड़े होकर प्रचार करते थे तो जिनको चोट लगती थी वे कभी शास्त्रार्थ, कभी वार्त्तालापऔर कभी हुल्लड़बाजी का सहारा लेते थे। स्वामी दयानन्द की शास्त्रार्थ-पद्धति प्राचीन ढर्रे की शास्त्रार्थ-प्रणाली ही थी जो समय की गति के साथ विवाद-सभाओं के रूप में भी परिवर्तित हो गयी थी। स्वामीजी के शास्त्रार्थ कोई अपनी विद्या या सम्मान की प्रतिष्ठा के लिए न होते थे, बल्कि शीघ्रता से सत्य का प्रकाश हो जाय और जनसाधारण सत्य सिद्धान्तों की ओर सरलता से आकृष्ट हो जाय, यह उनका अभीष्ट था। चुभता हुआ खण्डन तो इसलिए करते हुए प्रतीत होते हैं कि नरम-नरम, प्यारी-प्यारी बातें सुनकर साधारण जनता में अनसुना कर देने की प्रवृत्ति होती है। स्वामी दयानन्दजी के कठोर-निर्मम खण्डनों के पीछे परम हितैषी समाज-सुधारक का हृदय सर्वत्र झांकता रहता है, भले ही प्रतिद्वन्द्वी विद्वानों को ऋषि दयानन्द की शास्त्रार्थ-सरणि में गर्व-

अभिमान, दर्प, प्रतिष्ठा, विजय की महत्त्वाकांक्षा इत्यादि दिखायी पड़ती हैं, किन्तु स्वामी दयानन्द यावज्जीवन सत्य और धर्म के प्रचार के लिए ही सब कुछ करते रहे।

आर्यसमाज को अपनी प्रचार-प्रणाली स्वामी दयानन्द से ही दाय-भाग के रूप में प्राप्त हुई। आर्यसमाजी पण्डितों ने व्याख्यान दिये, ग्रन्थ लिखे, पत्रों का प्रकाशन किया इत्यादि। भारतवर्ष में मञ्चों वाली सभाएँ और व्याख्यान-कला का जितना विकास आर्यसमाज ने वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार के लिए किया, सम्भवतः अन्य किसी संस्था ने सभा-संयोजन-कला का इतना सफल प्रयोग नहीं किया है। सभाओं में सिद्धान्त-प्रतिपादन 'आध्यात्मिक प्रवचन' के साथ खण्डनात्मक व्याख्यान प्रायः होते ही रहते थे, उनका अनिवार्य परिणाम शास्त्रार्थ, शास्त्र-विचार, शंका-समाधान आदि हुआ करते थे। बंगाल में भी भी कई बार अच्छे शास्त्रार्थों का संयोजन हुआ था। कलकत्ता उस समय केवल भारत की राजधानी ही नहीं थी, अपितु यह नगर विद्या और व्यवसाय का भी केन्द्र था। यहां अंग्रेजी और संस्कृत दोनों विद्याओं के पठन-पाठन के सुन्दर सुव्यवस्थित केन्द्र थे। संस्कृत के पण्डितों की गद्दियाँ तो थीं ही, अपने ढंग का अनूठा संस्कृत कालेज भी यहाँ था। उधर नदिया, शान्तीपुर और भाटपाड़ा भी संस्कृत पण्डितों के केन्द्र थे। यहां साम्प्रदायिक रूप में काली के उपासक लोग तो रहे ही हैं, वैष्णव भी पर्याप्त सबल रहे हैं। आर्यसमाज के साथ वैदिक सिद्धान्तों की टक्कर होने पर ये सारे सम्प्रदाय एक पौराणिक गढ़ के समन्वित स्वरूप में एकत्र होकर आर्यसमाज के विरुद्ध सम्मुखीन हो जाते थे।

शास्त्रार्थ या शास्त्र-विचार की कला पौराणिक पण्डितों में पर्याप्त विकसित थी और नव्य न्याय को आधार बनाकर शास्त्रार्थ करने की एक विचित्र शैली प्रयुक्त हो रही थी। स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी

को, और उनके पश्चात् आर्यसमाज के प्रचारक विद्वान्-पण्डितों को इन सब परिस्थितियों का सामना करना पड़ा था।

स्वामी दयानन्दजी बंगाल में सन् १८७२ ई० के दिसम्बर मास में आये थे और लगभग चार महीने रहकर सन् १८७३ ई० में गये थे। आर्यसमाज के शास्त्रार्थ और शास्त्र-विचार का युग यहाँ के इतिहास की दृष्टि से तभी से आरम्भ हो जाता है। कलकत्ता में स्वामीजी के साथ शास्त्र-विचार तो नित्य ही हुआ करता था, कुछ महत्त्वपूर्ण चर्चाएँ इतिहास के रूप में स्मरणीय हैं। इतिहास की दृष्टि से न भूलने योग्य शास्त्र-विचार श्री पं० हेमचन्द्र चक्रवर्ती के साथ हुआ था। पीछे तो पं० हेमचन्द्रजी चक्रवर्ती उनके भक्त बन गये और इन्होंने स्वामीजी से उपनिषद् इत्यादि पढ़ी भी। हम हेमचन्द्रजी के साथ स्वामीजी के शास्त्र-विचारों को एक सहृदय ब्राह्मविद्वान् का शंका-समाधान कहना अधिक उपयुक्त समझते हैं। वैसे पण्डित हेमचन्द्रजी चक्रवर्ती ब्राह्म-समाज के उपदेशक थे और उस समय ब्राह्मसमाज में वर्णव्यवस्था, यज्ञोपवीत, ईश्वर-उपासना का स्वरूप इत्यादि पर बड़ा निर्णायक विवाद चल रहा था और स्वामी दयानन्दजी ने हेमचन्द्रजी को वैदिक मन्तव्यों से अवगत कराया और कई प्रकार के वैदिक सिद्धान्तों की आस्था उनके हृदय में दृढ़ कर दी।

बाबू केशवचन्द्र सेन के साथ पुनर्जन्म पर शास्त्रार्थ हुआ था और 'होम करना मूर्तिपूजा नहीं है' इस विषय पर श्री राजनारायण बसु से भी शास्त्रार्थ हुआ था। ये शास्त्रार्थ कम, शास्त्र-विचार अधिक थे, क्योंकि बाबू केशवचन्द्र सेन या श्री राजनारायण बसु या अन्य और लोग भी कोई लाग-डाँट प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर इन शास्त्रार्थों में नहीं आते थे, बल्कि सुलझे हुए महाविद्वान् संन्यासी से वार्त्तालाप करने और समझने की दृष्टि से आते थे। यद्यपि किसी पत्रकार ने स्वामी दयानन्द की इस यात्रा को शंकराचार्य की तरह दिग्विजय का रूप

दिया था, किन्तु सामान्य धारणा यही थी कि स्वामी दयानन्द वैदिक धर्म के प्रचारक और सत्य के आग्रही हैं। इण्डियन मिरर १२, जनवरी सन् १८८३ ई० में एक सूचना छपी।[1]

"पण्डित दयानन्द सरस्वती—यह बड़ा विद्वान् पण्डित पिछले वृहस्पतिवार को एशियाटिक म्यूजियम में विशेषतया इस अभिप्राय से गया कि वेद और उपनिषदों की कुछ प्रतियाँ खरीदें और उसके पश्चात् बाबू केशवचन्द्र सेन के घर पर वहुत-से ब्राह्मसमाजियों से मिला और उनके प्रश्नों के उत्तर में अपने वैदिक सिद्धान्त वर्णन किये। हम आशा करते हैं कि इन पण्डितजी के मँजे-सुलझे हुए विचारों को छोटे-छोटे ट्रैक्टों द्वारा प्रकाशित करने के लिए एक सभा स्थापित की जायेगी।"

यह सूचना स्वामी दयानन्द के शास्त्रार्थ-विचार का उद्देश्य सुस्पष्ट घोषित करती है। स्वामीजी शास्त्र-विचार तो करते ही रहे, किन्तु इस यात्रा में पण्डित ताराचन्दजी के साथ हुगली में बड़ा प्रसिद्ध शास्त्रार्थ हुआ था। हुगली में पादरी लालबिहारी दे के साथ भी शास्त्रार्थ हुआ था। यहाँ वर्णव्यवस्था, वर्णभेद पर विचार हुआ था। पादरीजी के ध्यान में वर्णव्यवस्था का पौराणिक स्वरूप था, और स्वामीजी द्वारा प्रतिपादित वर्ण व्यवस्था के वैदिक स्वरूप को समझकर उन्होंने अपनी भूल स्वीकार कर ली थी।

हुगली शास्त्रार्थ

पं० ताराचरणजी काशीनरेश के राजपण्डित थे और यहीं बंगाल के रहने वाले थे। ८ अप्रैल मंगलवार, सन् १८७३ ई० के दिन हुगली में उनका स्वामीजी के साथ शास्त्रार्थ हुआ। यह शास्त्रार्थ प्रतिमापूजन पर हुआ था। इसका विस्तृत वर्णन कई जगह प्रकाशित हुआ है।

---

१. लेखरामकृत जीवन-चरित्र पृ०. २२६

हमारे लिए इतना ही पर्याप्त है कि पं० ताराचरणजी ने उसे अपने सम्मान का प्रश्न बना लिया था और शास्त्रार्थ पाण्डित्य की कई दिशाओं में घूमता हुआ जब ताराचरणजी को दबोच बैठा तो उन्होंने सबके सम्मुख ही कह डाला 'उपासना मात्र मेव भ्रम मूलम्'। सारे बंगाली विद्वान् जो अच्छी संख्या में एकत्र थे, सब हँसने लगे और कइयों ने यह भी कह डाला कि ताराचरणजी प्रतिमा-पूजन का समर्थन करने आये थे और उपासना मात्र को भ्रममूलक घोषित कर रहे हैं। स्वामी दयानन्दजी ने भी हँसकर ताराचरणजी से कहा कि मैं तो मूर्तिपूजा का ही खण्डन करता हूँ और आप भी उपासनामात्र का खण्डन करके मूर्तिपूजा का भी खण्डन करने लगे।

एक सर्वविदित सत्य है कि ताराचरणजी ने सबके सामने स्वीकार कर लिया था और सबको सुनाकर ही कहा था कि मैं भी पाषाणादि मूर्तिपूजन को मिथ्या ही मानता हूँ, किन्तु मेरी आजीविका का प्रश्न है, जो सत्य-सत्य कहूँ तो मेरी आजीविका चली जावे। पं० ताराचरणजी ने सबके सामने यह स्वीकार किया था कि काशीराज महाराज सुनें तो मुझको निकाल कर बाहर कर दें, इस कारण मैं आपके समान सत्य-सत्य नहीं कह सकता हूँ।....

इस प्रकार स्वामी दयानन्दजी की यात्रा शास्त्रार्थ और शास्त्र-विचारों की दृष्टि से कलकत्ता में भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। यह जो शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ, वह शास्त्रार्थ युग तक अपनी पूरी खींचतान, लाग-डाँट और पूरी नोकझोंक के साथ कलकत्ता को केन्द्र करके सम्पूर्ण बंगाल में होता रहा।

आर्य सन्मार्ग सन्दर्शिनी सभा

२२ जनवरी, सन् १८८१ ई० को कलकत्ता विश्वविद्यालय के सिनेट हाल में पण्डितों और रईसों की एक बहुत बड़ी सभा हुई थी। इस सभा का उद्देश्य था स्वामी दयानन्द के मन्तव्यों के विरुद्ध निर्णय

करना। यूँ तो आपाततः इस सभा का आर्यसमाज कलकत्ता के इतिहास के साथ कोई सीधा सम्पर्क नहीं है, किन्तु इस सभा का महत्त्व इस दृष्टि से ध्यान देने योग्य है कि एक तो सन् १८७३ ई० के आरम्भ में ही स्वामी दयानन्द कलकत्ता से चले गये थे तो भी उनके कलकत्ता निवास के समय के कार्य और सारे देश में उन्होंने जो सुधार और शास्त्रार्थ का तूफानी वातावरण उत्पन्न कर रखा था उसकी प्रतिध्वनि उनके कलकत्ता से जाने के ८ वर्ष पश्चात् भी अति उग्रता से दिखायी पड़ रही है। इस सन्मार्ग संदर्शिनी सभा का एक और दृष्टि से महत्त्व है कि सन् १८८५ ई० में आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना हुई और सन् १८८१ ई० में यह सभा हुई। पण्डितों और रईसों के मध्य स्वामी दयानन्द के विरोध की यह मानसिकता विरोध के उस परिवेश को प्रकट करती है जिसके मध्य उस समय के स्वामी दयानन्द के भक्तों ने आर्यसमाज की स्थापना की थी। सन् १८८५ ई० में जो स्थापना हुई तो यह निश्चित रूप से सन् १८८५ ई० का ही न चिन्तन था और न ही स्थापना की तैयारी थी। निश्चित ही दो वर्ष पूर्व से श्रद्धालु भक्तों के हृदय में आर्यसमाज की स्थापना की बात रही होगी।

पं० दीनबन्धुजी की सूचना के अनुसार सन् १८८३ ई० में स्वामी दयानन्द के निर्वाण पर जो शोकसभा कलकत्ता में हुई उसमें बड़े-बड़े विद्वान् समाज-सुधारक लोग एकत्र हुए थे। सन् १८८४ ई० में दीपावली के दिन स्वामीजी की स्मृति में जो सभा की गयी थी, उसकी अध्यक्षता सुप्रसिद्ध विद्वान् एवं समाज-सुधारक पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने की थी। सन् १८८५ ई० में जो निर्वाण-दिवस पर सभा हुई उसके अध्यक्ष श्री राजनरायण बसुजी थे जो प्रसिद्ध योगी महर्षि अरविन्द घोष के नाना जी थे। इसी सभा में आर्यसमाज की स्थापना की बात पक्की हो गई थी।

सन् १८८१ ई० की यह सन्मार्ग संदर्शिनी सभा जहाँ विरोधियों

की मानसिकता पर प्रकाश डालती है वहाँ यह भी स्वाभाविक है कि श्रद्धालु आर्यभक्तों पर इसकी प्रतिक्रिया स्वामी दयानन्द की ओर आकृष्ट होने में अधिक तीव्र हो उठी होगी। इस सभा का प्रबन्ध पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न किया था। इनके स्वामी दयानन्द के आगमन के समय पर्याप्त मानसिक चोट लग चुकी थी, क्योंकि इन्होंने स्वामी दयानन्द के व्याख्यान के बंगला अनुवाद में जानबूझकर भ्रम पैदा किया था, जिस पर संस्कृत कालेज के विद्यार्थियों ने ही टोकाटोकी की थी और बाबू केशवचन्द्र सेन ने स्वामीजी को हिन्दी में भाषण देने का अनुरोध किया था। अतः प्रिन्सिपल महेशचन्द्रजी को यह चोट आठ वर्ष बाद भी यदि पीड़ा दे रही थी तो यह कुछ अस्वाभाविक न था। ऐसे ही उत्तर-दक्षिण के सब मिलाकर ३०० पण्डित और सैकड़ों रईस इकट्ठे हुए थे। यह सभा सिद्धान्त निर्णय लेने के लिए हुई थी।

सभा की कार्यवाही देखने से सुस्पष्ट होता है कि यह सभा क्या थी—प्रतिक्रियावादिता का चरम उत्कर्ष था। पं० लेखरामजी ने महर्षि स्वामी दयानन्दजी के जीवन चरित्र के पृष्ठ ६७२ पर निम्न आशय से वर्णन किया है।[१]

> "जिस समय समस्त सज्जन सिनेट हाल में एकत्र हो गए तब पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न ने इस सभा के स्थापित करने का विशेष उद्देश्य वर्णन करके निम्न लिखित प्रश्न उपस्थित किये थे। वे प्रश्न तथा उनके निर्णीत समाधान इस प्रकार हैं :—
>
> "१. ब्राह्मण भाग भी वेद के मन्त्र भाग और संहिता भाग के समान मानने योग्य हैं या नहीं और मनुस्मृति के समान दूसरी स्मृतियाँ भी मानने योग्य हैं अथवा नहीं। इसके उत्तर में निश्चय हुआ कि दोनों माननीय हैं।

---

१. सार सुधानिधि नामक कलकत्ता के पत्र से उद्धृत—पं० लेखरामकृत जीवन-चरित्र पृष्ठ ६६७।

२. विष्णु, शिव, दुर्गा का पूजन, शुद्ध विधि और तीर्थ-यात्रा शास्त्रोक्त हैं, अथवा नहीं। निश्चय हुआ कि सब शास्त्रोक्त हैं।

३. ऋग्वेद संहिता में अग्निमीडे पुरोहितम् आदि मन्त्र हैं। इसमें आये अग्नि शब्द से अग्नि अथवा ईश्वर किसको समझना चाहिए। निश्चय हुआ कि अग्नि।

४. यज्ञ वायु और जल की शुद्धि के लिए किया जाता है या मुक्ति के लिए। निश्चय हुआ कि मुक्ति के लिए।"

पं० लेखरामजी ने आगे के प्रसंग में इन प्रश्नों के उत्तर को बड़े विस्तार से लिया है। हमारा तो यहाँ इतना ही आशय है कि आर्य-समाज की स्थापना से पूर्व पौराणिक जगत् कितना विरोधी था और सभा की कार्यवाही देखकर यह विदित होता है कि सभा शास्त्र-विचार के लिए नहीं हुई थी, बल्कि एकमात्र स्वामी दयानन्द के विरोध के प्रोपेगैण्डा के लिए हुई थी।

इस सभा में प्रस्तुत प्रश्नों के शास्त्रीय उत्तर की समीक्षा में न जाकर हम थोड़ा-सा यह दिखाना चाहेंगे कि जनसाधारण पर इस सभा की क्या प्रतिक्रिया रही है। सभा में स्वामी दयानन्द के सुस्पष्ट विरोधी तो थे किन्तु कुछ ऐसे लोग भी थे जो स्वामी दयानन्दजी के कार्यों का मूल्यांकन पृथक् धरातल पर कर रहे थे।

सार सुधानिधि पत्र के सम्पादक अपने पत्र के खण्ड २, सं० ४, पृष्ठ ४८२, १२ माघ सम्वत् १९३७ विक्रम में स्वामी दयानन्द के कार्यों को हानिकारक बताते हैं और यहाँ तक कहने को तैयार हैं कि लाख दो लाख लोग मुसलमान, ईसाई बन जाते हैं तो भी मूलधर्म को कोई हानि नहीं होती। उन्हें लोगों के मुसलमान, ईसाई बनने की कोई चिन्ता नहीं है, किन्तु स्वामी दयानन्दजी द्वारा धर्मसुधार को वे बड़ी हानि मानते

हैं और उनको यह कहते भी संकोच नहीं होता कि स्वामी दयानन्द का उद्देश्य 'येन केन प्रकारेण प्रसिद्धो मानवो भवेत्' था। यह प्रतिक्रिया पौराणिक पन्थ के अन्ध विश्वासियों की है। इसके विपरीत भारत-मित्र नामक पत्र के १० फरवरी सन् १८८१ ई० के खण्ड ४, सं० ६, पृष्ठ ४ पर भानुदत्तजी शास्त्री की सम्मति इस सन्मार्ग संदर्शिनी सभा के सम्बन्ध में प्रकाशित हुई है। उन्होंने बड़े विस्तार से इन प्रश्नों को लिया और अपने स्वतन्त्र ढंग से किन्तु स्वामी दयानन्द के साथ कुछ अधिक न्याय करते ज्ञात पड़ते हैं। पौराणिक पण्डितों के सम्बन्ध में वह लिखते हैं कि—

> "इधर ये (पौराणिक पण्डित) अपने वाग्जाल में फँसा ही रहे थे कि आर्यसमाज अथवा स्वकीय वैदिकधर्म के प्रवर्तक श्री दयानन्द स्वामीजी प्रकट हुए। ये वेद के मन्त्रमात्र को ही सनातन ईश्वर की वाणी और मनुस्मृति को ही आर्य धर्म का ज्ञापक धर्मशास्त्र मानकर समस्त शास्त्रों और पुराणों को कल्पित कह रहे हैं इत्यादि।"...
>
> शास्त्रीजी आगे लिखते हैं—"प्रियभ्राता, यदि कोई मन में दुख न माने तो ऐसी सभा के समर्थकों से यह बात कहना उचित प्रतीत होता है कि सरस्वतीजी के सन्मुख आकर शास्त्रार्थ कोई नहीं करता, अपने-अपने घरों में जो जी चाहे—ध्रुपदें गाते हैं।"

हमारा यहाँ इतना ही आशय है कि यह विचारसभा एकपक्षीय थी। इस सभा में जो भी निर्णय हुआ, हमें उसके सैद्धान्तिक पक्ष के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना है। यह पौराणिक पण्डितों और सेठों की सभा थी। उन्होंने अपनी मान्यता पर इस सभा की स्वीकृति घोषित कर दी। प्रतिक्रिया के रूप में हमने उस समय के पत्रों में प्रकाशित दो विचार दे दिये—यह सभा बंगाल से बाहर भी अपना

प्रभाव डाल रही थी। भारती विलास नामक आगरा की पत्रिका के खण्ड १, संख्या ५, मिती ५ फरवरी सन् १८८१ ई० के अंक में 'अपूर्व सभा' शीर्षक से एक व्यंग्यात्मक टिप्पणी छपी है। विस्तार के लिए पं० लेखरामकृत स्वामीजी के जीवन-चरित्र के पृष्ठ ६७१ से ७०१ तक द्रष्टव्य है। भारती विलास के व्यंग्यात्मक विचार की कुछ टिप्पणी ध्यान देने योग्य है—

"अपूर्व सभा—महाशय भारती विलासजी! सुन लीजिए कि हमारी लालसा भी अपूर्व है। न्याय विचार को कब्र में दाब हम मनमानी ही करते हैं। फिर तो ब्रह्मा भी क्यों न उतर आओ, हम भला किसकी सुनते हैं? और हममें भी यह गुण है पुलिंग हो वा न हो पर हम सिद्ध कर ही देते हैं। इसी कारण हम अपने अमूल्य समय को वृथा नहीं खोते। यदि विचार करोगे तो समझ लोगे कि संसार में हमारे विना उत्कृष्ट कार्य का साधन और कोई न होगा। वहुत दिनों से हमारे मन में थी कि कुछ अपना नाम भी कर दिखायें और इन्द्रप्रस्थ के पाँच अश्वारोहियों में नाम लिखावें।"

इस प्रकार की व्यंग्यात्मक टिप्पणी करते-करते सेठों और विद्वानों को उलाहना देते हुए अन्त में लेखक इसी शैली में प्रश्न-उत्तरों को भी लेते हैं—

"प्रश्न—वेदसंहिता सब ब्राह्मणग्रन्थों समेत समान रूप से माननीय है या नहीं? कोई कहा ही चाहते थे कि नहीं। क्योंकि वेदोत्पत्ति के पश्चात् उनकी उत्पत्ति हुई है परन्तु दो चन्द्रातप और फिर माया का प्रताप, झटपट औघट घाट चल निकले। उत्तर हुआ—हमारे मनशा ने कहा सब समान माननीय हैं। प्रश्न—क्यों? उत्तर—ब्राह्मण न होते तो वेद कहाँ से आता?

क्यों जी, क्या तुमने कात्यायनजी को मान लिया, और ऋषियों को झूठा बतला दिया और इतिहास, पुराण, नाराशंसी कल्पगाथा के भेदों को न समझा फिर वचन के इन तीन में दो अर्थात्—विधिवाक्य, अर्थवाक्य और प्रकरण को विचार कर न देखा, परन्तु इनको कौन समझता है, यहाँ तो अपने प्रयोजन से ही प्रयोजन है।

प्रश्न— क्या मनु के समान और स्मृतियां भी मानने योग्य हैं।

उत्तर— एक कहा ही चाहता था कि यह श्रेष्ठ कनिष्ठ का भेद है, दूसरे ने यह पूछा कि मनु में जो यह—'न मांस-भक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने, इत्यादि लिखा है, क्या यह सब सत्य है, परन्तु तीसरा बोल उठा कि दाता का मन बिगाड़ना अनुचित है, कोई मरो, कोई जिवो, मद्य पियो, मांस खाओ, व्यभिचार करो, पाण्डेजी को तो लसी मांड़े से प्रयोजन है।

प्रश्न— देव-देवी की पूजा ?

उत्तर— कैसी पूजा—एक बोला, चुप, बात बिगड़ जायेगी, कोरे ही जाओगे। उत्तर-हाँ महाराज, शास्त्रसम्मत है—परन्तु यहाँ वेद को बचा गये (मन में) दक्षिणा चाहिए—कोई भूत-पिशाच, ईंट-पत्थर, कहार-पहाड़, घास-लकड़ी, चूल्हा-चक्की भले ही पुजा लो।"

भारत-मित्र में २७ जनवरी सन् १८८१ ई० को छपा था कि मथुरा के सेठ नारायणदास के यत्न से यह सभा हुई थी और पण्डित लोगों को विदाईगी भी मिली थी। इसीलिए व्यंग्य टिप्पणीकार बात-बात में पण्डितों को दक्षिणा का ताना मार रहे हैं।

इसी प्रकार अन्य प्रश्नों के व्यंग्यात्मक उत्तर देते हुए अन्त में लोट-पोट शुभचिन्तकजी लिखते हैं—"भारती विलास महाशय, हम आशा करते हैं कि इस शून्य निर्मित छाया रूप सभा का वृत्तान्त सर्वसाधारण को विदित कराके हर्षित करोगे, यदि फिर कभी समय मिला तो फिर और सभा रचेंगे।[1]

इस विचार-सभा के सम्बन्ध में एक बात तो यह है कि यह सभा स्वामी दयानन्द के सुधार और सिद्धान्त-प्रचार की प्रतिक्रिया रूप थी, इसमें जो कुछ भी निर्णय लिया गया था वह पूर्वाग्रहयुक्त साम्प्रदायिक विचारों के आधार पर था। दूसरी बात यह भी ध्यान में आती है कि इस सभा में पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसा विद्वान्, देवेन्द्रनाथजी ठाकुर या इसी तरह के और चोटी के कुछ लोग नहीं पधारे थे। इससे भी यह विदित होता है कि यह पूर्वाग्रहग्रस्त एकपक्षीय विचार था। वैसे यह कहा जाता है कि पं० ईश्वरचन्द्रजी ने इस सभा की कार्यवाही को स्वीकार कर लिया था, किन्तु अधिक विश्वसनीय नहीं लगता। वे गये क्यों नहीं ? इस प्रकार की कार्यवाही जो भी स्वीकार करेगा, वह अपने को छोटा ही बनायेगा।

एक और प्रश्न इस सभा के सम्बन्ध में स्वतः ही जाग उठता है। उस समय कलकत्ता में सत्यव्रत सामश्रमी जैसे उच्चकोटि के विद्वान् रहते थे। सामश्रमीजी एक प्रसिद्ध पत्रिका के सम्पादक थे और यह काशी के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ में शास्त्रार्थ के विवरण को संस्कृत में लिखते जा रहे थे। सत्यव्रत सामश्रमीजी का 'ऐतरेय आलोचन' बड़ा पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ है। ऐसे उच्चकोटि के उद्भट विद्वान् का इस सभा में न होना भी यह इंगित करता है कि यह सभा प्रतिक्रियात्मक आधार पर थी और इसका उद्देश्य स्वामी दयानन्द की आलोचना का ढोल पीटना निज में आत्मतुष्टि मात्र था।

---

१. द्रष्टव्य पं० लेखरामजीकृत स्वामी दयानन्दजी का जीवन-चरित्र, पृष्ठ ६८१-७०१।

उस समय कलकत्ता में आर्यसमाज तो था ही नहीं, आर्यसमाज का भक्त कोई संगठन या विद्वान् भी यहाँ हो, ऐसी सूचना नहीं मिलती। फिर भी यह विचारसभा इतिहास की दृष्टि से अपने कई प्रकार के महत्त्व रखती है। कम से कम जिस सामाजिक और बौद्धिक परिवेश में आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना की तैयारी होनी थी उस सामाजिक परिवेश के विद्वानों और सेठों की मानसिकता का एक दिग्दर्शन तो यहाँ हो ही जाता है।

कलकत्ता शास्त्रार्थ :

मूर्तिपूजा अवैदिक है

सन् १९३७ ई० में कलकत्ता में सनातन धर्मावलम्बीय अग्रवाल सभा की ओर से सनातनधर्म सप्ताह मनाया जा रहा था। उसमें प्रसिद्ध विद्वान् श्री देवनायकाचार्यजी, श्रीमाधवाचार्यजी इत्यादि विद्वान् आये हुए थे। उन्होंने मूर्तिपूजा वैदिक है, इस विषय पर शास्त्रार्थ करने के लिए आर्यसमाज को चैलेञ्ज कर दिया। यह वह युग था जब आर्यसमाज कलकत्ता के आचार्य प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् श्री पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति थे। पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति के सभापतित्व में नियमित विवाद-सभाओं का आयोजन हुआ करता था। सम्भव है उस खीझको निकालने के लिए भी चैलेञ्ज दिया गया था। वैसे कुछ लोगोंका यह भी विचार था कि सनातनधर्म सप्ताह की सभा में आशा के अनुरूप जनता की उपस्थिति न होती थी। कुछ लोगों ने सोचा कि शास्त्रार्थ की चहल-पहल से उत्सव की रौनक बढ़ जायेगी। जो भी हो, हमारा अभिप्राय तो इतना ही है कि सनातनधर्म अग्रवाल सभा की ओर से आर्यसमाज को 'मूर्तिपूजा वैदिक है' इस विषय पर शास्त्रार्थ का चैलेञ्ज दे दिया गया। शास्त्रार्थ के नियम बहुत सीधे थे—उभय पक्ष को अपना-अपना मान्य ग्रन्थ प्रामाणिक मानना होगा

और सभापति उभय पक्ष के अथवा कोई निष्पक्ष विद्वान् होंगे। पौराणिक विद्वानों को ये शर्त्तें स्वीकार न थीं। वे पुराणों के प्रमाण स्वयं ही स्वीकार करने को तैयार न हो रहे थे और चूँकि सभा उनकी थी, इसलिए वे अपना ही सभापति चाह रहे थे। जनता को यह समझ में तो आ रहा था कि पौराणिकों को अपने मान्य ग्रन्थ-पुराणों पर ही विश्वास करने में, शास्त्रार्थ में प्रामाणिक ग्रन्थ मानने में कठिनाई हो रही है। आर्यसमाज की ओर से आर्यसमाज बड़ाबाजार के अधिकारी सामने आये और पौराणिकों की सब शर्तों को मानकर शास्त्रार्थ करने के लिए उद्यत हो गये। इतनी सारी चखचख के बाद शास्त्रार्थ होना भी अनिवार्य-सा ही हो गया। परिणाम स्वरूप २६ अप्रैल सन् १९३७ ई० को वृहस्पतिवार के दिन सायंकाल के समय आर्यसमाज के लोग अपने पण्डितों के साथ सनातनधर्म के पण्डाल में जा पहुँचे। नियमानुसार प्रमाण केवल वेदों से ही दिये जा सकते थे। है तो यह बड़ा विचित्र कि पौराणिक पण्डित भी आर्यसमाज की नकल पर केवल वेदों को ही प्रमाण कोटि में ले रहे थे। किन्तु पौराणिक दल के महारथी श्री माधवाचार्यजी थे, उन्हें शास्त्रार्थों का अच्छा अनुभव था। उन्हें यह पता था कि पुराणों को प्रमाण मानते ही मूर्तिपूजा प्रसंग पर सनातनधर्म की बड़ी भारी छीछालेदर हो जायेगी। अतः उन्होंने पुराणों की प्रामाणिकता अस्वीकार कर केवल वेद को ही प्रमाण माना। अस्तु, आर्यसमाजी तो शास्त्रार्थ करने गये ही थे। उन्होंने उनकी सब शर्त्तें स्वीकार कर लीं। लोगों का अनुमान है कि कोई १० हजार की भारी भीड़ में यह शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ।

आर्यसमाज की ओर से पं० श्री सुखदेवजी विद्यावाचस्पति, आर्यसमाज कलकत्ता के आचार्य, पं० श्री विद्यानन्दजी वेदालंकार, पं० श्री धनुर्धरजी शर्मा, पं० श्री प्रभुदयालजी शास्त्री अग्निहोत्री, पं० श्री मिहिरचन्दजी धीमान, श्री जगदीशचन्द्रजी विद्यावाचस्पति,

तथा पं० रामप्रतापजी इत्यादि विद्वान् उपस्थित थे। पौराणिक पंडितों की ओर से सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० श्री देवनायकाचार्य और उनकी पंडित मण्डली तथा पं० श्री माधवाचार्यजी शास्त्री सदलबल उपस्थित थे।

दोनों ओर से मंच सज गये। पौराणिकों की ओर से प्रसिद्ध शास्त्रार्थी पं० श्री माधवाचार्यजी शास्त्री वक्ता थे और आर्यसमाज की ओर से पं० श्री सुखदेवजी विद्यावाचस्पति वक्ता थे। चूँकि विषय यह था कि मूर्तिपूजा वैदिक है, इसलिए मूर्तिपूजा की वैदिकता को प्रमाणित करने के लिए शास्त्रार्थ आरम्भ होनेपर पं० श्री माधवाचार्यजी को १५ मिनट का समय दिया गया। श्री माधवाचार्यजी ने प्रतिज्ञा तो केवल वैदिक प्रमाण देने की थी, किन्तु पहला ही प्रमाण तै० आ० ४/५ का 'मा असि प्रमा असि प्रतिमा असि' दे दिया। नियमानुसार तैत्तरीय आरण्यक को वेद न होने के कारण प्रमाण रूप में नहीं लेना चाहिए था, किन्तु सभा उनकी थी, व्यवस्था उनकी थी और आर्यसमाजी पण्डित भी क्या विचित्र शास्त्रार्थी थे कि शेर का पंजा तोड़ने के लिए उसकी माँद में ही घुस गये थे। माधवाचार्यजी ने 'चन्द्रमा मनसो जातः' का प्रमाण देकर यह सिद्ध किया कि जब परमात्मा के मन है तो परमात्मा अंगोंवाला है। श्री माधवाचार्यजी ने त्र्यम्बकं यजामहे प्रसिद्ध मन्त्र के हवाले से परमात्मा को तीन आँखोंवाला बताया। अथर्ववेद के मुखायते पशुपते इत्यादि मन्त्र से परमात्मा के मुख होने का वर्णन किया। श्री माधवाचार्यजी ने सूर्यादि को परमात्मा की स्वयंभू प्रतिमाएँ बताया और कहा कि जिस प्रकार मनुष्य के शरीर की पूजा के द्वारा शरीर के अधिष्ठाता जीवात्मा को प्रसन्न करते हैं उसी प्रकार संसार रूपी परमेश्वर के शरीर की इन प्रतिमाओं का पूजन करके हम परमेश्वर को प्रसन्न करते हैं।

अब आर्यसमाज की ओर से पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति को 'मूर्तिपूजा वैदिक नहीं है' यह सिद्ध करने का अवसर दिया गया।

पं० सुखदेवजी ने कहा कि जहाँ परमात्मा के शरीर का वर्णन है, वह केवल आलंकारिक है। परमात्मा सारे संसार में व्यापक है, इससे सांसारिक पदार्थों की पूजा से परमात्मा की पूजा नहीं होती। जीवात्मा का अपने शरीर से प्रेम, राग, मोह आदि है, इसीलिए शरीर की पूजा से
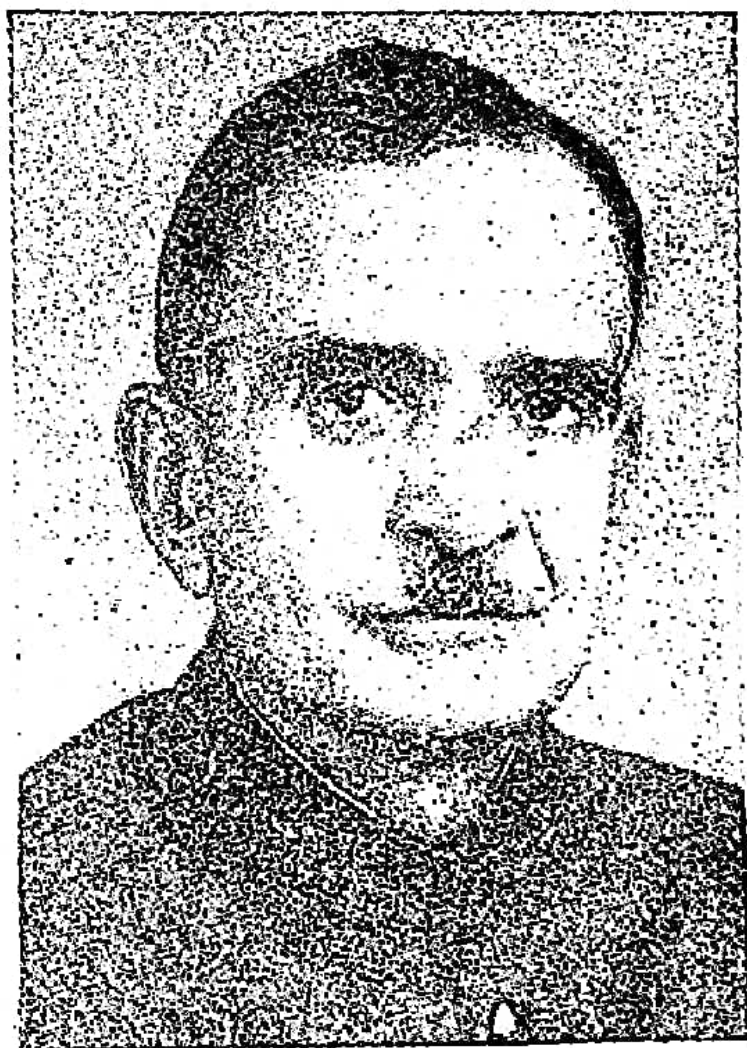
पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति

जीवात्मा प्रसन्न होता है। किन्तु परमेश्वर में प्रेम, मोह, राग आदि नहीं है। अतः न संसार उसका जीवात्मा के शरीर के समान ही है और न सांसारिक वस्तुओं के पूजन से परमात्मा प्रसन्न ही होता है। श्री पं० सुखदेवजी ने विषय को आगे बढ़ाया कि अलंकार और दार्शनिक वास्तविकता में अन्तर है। दार्शनिक दृष्टि से भोगायतनम् शरीरम् अर्थात् शरीर के द्वारा जीवात्मा सुख-दुख का भोग करता है। इसी

शरीर से जीवात्मा के बन्धन का कारण बनता है, तो क्या यह संसार परमात्मा का भोगायतन शरीर होकर उसके भी वन्धन का कारण वन जायेगा ? परमात्मा तो राग-द्वेष मोहादि से पृथक् है।

पं० सुखदेवजी ने बड़ी मीठी चुटकी ली कि यदि संसार के सब पदार्थ परमेश्वर के ही शरीर है और उनकी पूजा होती है तब तो घड़ी-घंट इत्यादि भी परमेश्वर के शरीर ही हुए और पूजन के समय घड़ी-घंट बजाने में हथौड़े की चोट से परमेश्वर को चोट भी लगती होगी। वस्तुतः यह आलंकारिक वर्णन न समझने के कारण ही माधवाचार्यजी यह अर्थ का अनर्थ कर रहे हैं। पं० सुखदेवजी ने मनुस्मृति का श्लोक पढ़ा—

यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत् साधु पश्यति॥

यहाँ दण्ड का आलंकारिक वर्णन रूपक की दृष्टि से किया है। क्या राजा का शासन मूर्तिमान हो जायेगा ?

पंडितजी ने एक और उदाहरण दिया—

नास्त्यन्या तृष्णा तुल्या कापि स्त्री सुभगा क्वचित्।
या प्राणानपि मुष्णन्ति भवत्येवाधिका प्रिया॥

यहाँ तृष्णा का रूपक है। पं० सुखदेवजी ने कहा—जब आप अपने सहायक को यह कहते हैं कि यह दाहिना हाथ है, तो क्या यह मनुष्य हाथ के समान शरीरवाला हो जाता है ? इन सारे उद्धरणों में परमेश्वर के उस तरह शरीर नहीं है जिस प्रकार जीवात्मा का भोगायतन शरीर होता है।

जनता पर इस व्याख्या का जादू जैसा असर हुआ और भावाचार्यजी के हाथ से तो जैसे तोते ही उड़ गए।

'चन्द्रमा मनसो जातः' इत्यादि मन्त्रों में निमित्तार्थ में पञ्चमी है अर्थात् मन की आल्हादकता के लिए चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई। पं०

सुखदेवजी ने कहा वहीं पुरुषसूक्त में परमेश्वर के लिए सहस्रशीर्षा, सहस्राक्षः इत्यादि वर्णन आया है। यदि 'चन्द्रमा मनसो जातः' में परमेश्वर का शरीर मानेंगे तो हजार सिरवाले परमेश्वर को दो हजार आँखें होनी चाहिएँ तो क्या आपका परमेश्वर काना है ? अतः यह सब आलंकारिक वर्णन है।

'मा असि प्रभा असि प्रतिमा असि' किसी वेद का प्रमाण नहीं है और आपके पौराणिक आचार्यों ने इसका परमेश्वरपरक अर्थ भी नहीं किया है। पं० सुखदेवजी ने आचार्य सायण के भाष्य का हवाला देते हुए कहा—आचार्य सायण इसमें परिधि का वर्णन मानते हैं और महावीरादि पात्रों को नापने का साधन बताते हैं और आप इसमें परमात्मा का वर्णन बता रहे हैं, तो आप तो सायणाचार्य का भी विरोध कर रहे हैं।

इस पर श्री माधवाचार्यजी ने थोड़ा हठ किया कि यहाँ परमात्मा का ही वर्णन है। तब पं० सुखदेवजी ने उन्हें ललकारा कि क्या आप लिख कर देंगे कि इसमें परमात्मा का वर्णन है। इस पर माधवाचार्य के पैरों के नीचे की जमीन खिसक गयी।

सायणाचार्यजी के विरुद्ध लिखकर कैसे देते ? जनता को पता लग गया कि श्री माधवाचार्यजी बात ही कर रहे हैं, सत्य से घबड़ा रहे हैं, नहीं तो लिखकर देने में क्या आपत्ति हो सकती थी।

त्र्यम्बकं यजामहे—मन्त्र की चर्चा करते हुए श्री सुखदेवजी विद्यावाचस्पतिजी ने कहा कि इसमें तीन आँखों वाले परमात्मा का वर्णन है ही नहीं। वाचस्पतिजी ने कहा—त्र्यम्बकं का अर्थ तीन आँखों वाला है ही नहीं। माधवाचार्यजी ने कोष का हवाला देना चाहा और वाचस्पतिजी ने उसे कसकर पकड़ा और त्र्यम्बकं शब्द की व्युत्पत्ति पूछी। माधवाचार्यजी ने बड़ा हीलाहवाला किया पर त्र्यम्बकं शब्द की न व्युत्पत्ति की और न उसका अर्थ तीन आँखोंवाला सिद्ध कर सके।

पं० सुखदेवजी ने स्वयंभू मूर्तियों पर भी माधवाचार्यजी को खूब रगड़ा। पं० सुखदेवजी ने कहा कि आपने स्वयंभू का अर्थ अशुद्ध भी किया है और अपने आचार्य महीधराचार्य के अर्थ के विपरीत किया है। स्वयंभू का आप अर्थ करते हैं जो स्वयं पैदा हो। स्वयंभू में तो पैदा होनें का भाव ही नहीं है। महीधराचार्य स्वयं इसका अर्थ करते हैं अकृतक अर्थात् स्वयंसिद्ध। जब आपके आचार्य इसका ऐसा अर्थ करते हैं तो आप अपना अर्थ किस आधार पर कर रहे हैं। शास्त्रार्थ के लिए अपने आचार्य का विरोध कर रहे हैं, सत्य का हनन कर रहे हैं। पण्डित-मण्डली स्तब्ध और माधवाचार्य तो जैसे अपराधी की भाँति हतप्रभ हो गये। जब सुखदेवजी ने उनके अर्थों को उन्हीं के आचार्यों के विरुद्ध बताया।

'मुखायते पशुपते' इत्यादि मन्त्रों में पशुपति राजा का वर्णन है। उसीके स्वास्थ्य की प्रार्थना है किन्तु यदि तुष्यति दुर्जनः न्याय से परमात्मा के अंगों का दिग्दर्शन मान भी लें तो षोडशोपचार-पूजा से परमात्मा को प्रसन्न करना इत्यादि तो नहीं बना फिर भी शरीर शरीरीभाव कैसे हो सकता है।

इन सारे स्थलों पर श्री सुखदेवजी ने माधवाचार्य के प्रमाणों की लीपापोती का खुलासा किया, किन्तु उन्हें केवल इतना ही तो इष्ट न हो सकता था कि श्री माधवाचार्यजी के प्रमाण गलत हैं या वे मूर्तिपूजा को वैदिक सिद्ध नहीं कर पाये। एक चतुर मल्ल की तरह अपनी अद्भुत दार्शनिकता का परिचय देते हुए सुखदेवजी ने वैदिक प्रमाणों की झड़ी लगा दी कि परमात्मा की न मूर्ति है न उसकी मूर्ति-पूजा हो सकती है। सुखदेवजी 'न तस्य प्रतिमा अस्ति, सपर्यगाच्छु-क्रमकायमव्रणं' इत्यादि शतशः प्रमाण एक सांस में बोलते चले गये, फिर भी माधवाचार्यजी अपनी बात की रट लगाते ही रहे। यद्यपि उनकी बात-बात में विरोध प्रकट हो रहा था।

वाचस्पतिजी ने कई बार बड़े बलपूर्वक यह पूछा कि किसी भी वेदमन्त्र से प्रमाणित कीजिए कि मूर्तिपूजा करते हुए बेलपत्र चढ़ाओ, पानी चढ़ाओ, अक्षत चढ़ाओ इत्यादि वेद में है। पं० सुखदेवजी ने कहा यदि आप षोडशोपचार पूजनविधि किसी वेदमन्त्र में दिखा दें तो हम भी आपके साथ मूर्तिपूजा करने लगेंगे। बार-बार ललकारने पर भी माधवाचार्यजी षोडशोपचार पूजाविधि का कोई मन्त्र प्रमाण में न दे सके।

इस प्रकार लज्जा पर लज्जा आती देख माधवाचार्यजी ने भी प्रत्याक्रमण का सहारा लिया और पूछा कि कोई वेदमन्त्र बतायें जिसमें मूर्तिपूजा को पाप लिखा हो। इसपर श्री सुखदेवजी ने बड़ी मीठी चुटकी ली कि वन्ध्या के बेटे के विवाह का विधान कौन दिखावे ? जब वन्ध्या के बेटा ही नहीं होता तो उसका विवाह कैसा ! जब परमेश्वर की मूर्ति ही नहीं होती तो उसकी पूजा और पूजा से पुण्यादि के विधान का प्रश्न ही नहीं उठता। श्री माधवाचार्यजी हार पर हार खाते अजीब संकट में पड़ गये थे। श्री माधवाचार्यजी स्वयं तो त्र्यम्बकं का तीन आँखोंवाला के अतिरिक्त कोई अन्य अर्थ कर नहीं सके थे और जो अर्थ किया था उसका कोई प्रमाण न दे सके थे। उलटे श्री वाचस्पतिजी से पूछने लगे। वाचस्पतिजी ने हँसते हुए कहा, 'प्रमाण आप देते हैं, अर्थ मैं बताऊँ।' फिर भी जब आप इस संकट में फंस ही गये हैं तो सुनिए—परमात्मा को त्र्यम्बकं इसलिए कहते हैं कि वह पृथ्वी, अन्तरिक्ष, और द्युलोक-तीनों लोकों में व्याप्त है। इस पर माधवाचार्यजी थोड़ा बौखलाये, गर्मी से बोले, ये मनगढ़न्त अर्थ क्यों करते हैं ? इसमें क्या प्रमाण है, क्योंकि माधवाचार्यजी के सिद्धान्त की नींव ही हिल रही थी। इस परिस्थिति में श्री सुखदेवजी ने अपार स्वाध्यायशीलता का परिचय दिया और बोले —महाभारत में त्र्यम्बक का वर्णन आता है—

तिस्रो देव्यो यदाचैनं भुवनेश्वरम् ।
द्यौरापः पृथिवी चैव त्र्यम्बकस्तुततः स्मृतः ॥

यह इतनी बड़ी चपत थी कि माधवाचार्य और सारी पण्डित-मण्डली पं० सुखदेवजी के इस अद्भुत शास्त्र-अवगाहन पर स्तब्ध रह गयी।

श्री सुखदेवजी ने और भी कस कर दबा दिया और माधवाचार्यजी से पूछा कि ये आपके परमेश्वर की मूर्तियाँ कहीं गोलमटोल, कहीं जीभ वाली, कहीं सूंड़ वाली, कहीं और भी वीभत्स बनायी जाती हैं। इनका वर्णन भी किसी वेदमन्त्र से दिखाइये। श्री सुखदेवजी ने कहा कि केवल 'पृथ्वी शरीरम्' इतना कह देने से तो मूर्तिपूजा का समर्थन नहीं हो जायेगा।

श्री माधवाजार्यजी की बड़ी दयनीय दशा थी, पर शास्त्रार्थ के चतुर खिलाड़ी थे। संस्कार प्रकाश नामक एक पुस्तक हाथ में लेकर कहने लगे, आपके यहाँ तो जूते की पूजा लिखी है, क्योंकि उसे पैर का रक्षक कहा गया है। सभापतिजी ने माधवाचार्यजी को यह उल्टी बात करने दी क्योंकि वे स्वयं मन-ही-मन बहुत लज्जित हो रहे थे। माधवाचार्यजी के विषयान्तर होने पर भी जब सभापतिजी ने कुछ नहीं कहा और उन्हें बोलने दिया तब श्री सुखदेवजी ने बड़ी मीठी चुटकी फिर ली—

"पण्डितजी, आप पुराणों के प्रमाण देने से डरते थे और संस्कार प्रकाश को संस्कारविधि कहकर धोखा दे रहे हैं और उस पर भी क्या मूर्तिपूजा वैदिक हो गयी। पं० सुखदेवजी ने कहा कि जूता पैरों के लिए होता है और वह पैरों की रक्षा करता ही है। पं० सुखदेवजी ने शास्त्रार्थी दाँव मारी और कहा कि पण्डित माधवाचार्यजी, क्या जूता पैरों के लिए न लिखा जाकर, सिर के लिए लिखा जाता ? सुखदेवजी ने कहा, यहाँ जूते पर अक्षत, धूप, बेलपत्र चढ़ाने को तो नहीं लिखा

है। आपने भी मूर्तिपूजा और जूतापूजा का अच्छा मिलान किया है।[१]

यह शास्त्रार्थ विना अधिक हो-हल्ला के अढाई घण्टे तक चलता रहा और सभापति महोदय ने शास्त्रार्थ समाप्ति की सूचना दे दी। आर्यसमाज का जनता पर आशातीत प्रभाव पड़ा। पं० सुखदेवजी की विद्या-तार्किकता, स्वाध्याय की गम्भीरता और प्रत्युत्पन्न मतित्व का बड़ा ही प्रभावोत्पादक दृश्य इस शास्त्रार्थ में उपस्थित हुआ था। यह शास्त्रार्थ आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल-आसाम के तात्कालिक प्रधानमन्त्री श्री हरगोविन्दजी गुप्त ने भी प्रकाशित किया था।

यह वह समय था जब आचार्य पण्डित रमाकान्तजी शास्त्री अभी पौराणिक सिद्धांतों की देहरी पर खड़े थे। वे पौराणिक संस्कारों और सिद्धांतों के थे, किन्तु पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति के सम्पर्क में भी आ गये थे। वे कई बार प्रत्यक्षदर्शी की हैसियत से इसका वर्णन करते और चूंकि अभी वे निष्ठावान् आर्यसमाजी नहीं बने थे अतः मुक्तकण्ठ से इस बात को स्वीकार करते थे कि मूर्तिपूजा की अवैदिकता को प्रमाणित करने में वह शास्त्रार्थ बड़ा भारी सहायक हुआ था। पं० रमाकान्तजी पीछे कलकत्ता में आर्यसमाज के कर्ण-धार विद्वान् के रूप में रहे। आर्यसमाज कलकत्ता एवं बड़ाबाजार के आचार्य-पदों पर प्रतिष्ठित रहे। पं० रमाकान्तजी की वैदिक निष्ठा को जागरित करने में यह शास्त्रार्थ ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। इसे भी शास्त्रार्थ की एक उल्लेखनीय उपलब्धि माना जा सकता है।

मेदिनीपुर का शास्त्रार्थ :

मृतक श्राद्ध अवैदिक है।

बंगाल में आर्यसमाज के प्रचार की दृष्टि से मेदिनीपुर अंचल का विशेष महत्त्व है। वैसे तो विभाजन से पूर्व राजशाही, नोआखाली,

१. श्री हरिगोविन्दजी गुप्त की पुस्तिका—अपूर्व शास्त्रार्थ

त्रिपुरा आदि अंचलों में भी आर्यसमाज का अच्छा काम हुआ था और थोड़े-बहुत आर्यसमाजी जहाँ भी थे श्रद्धावान्, साधनसम्पन्न और कट्टर थे। आर्यसमाज के प्रचार के आयाम इतनी सम्भावनाएँ रखते थे कि एक बार जब स्वामी स्वतन्त्रतानन्दजी और स्वामी वेदानन्दजी बंगाल में प्रचारार्थ आये थे, तब स्वामी स्वतन्त्रता नन्दजी पर यह प्रभाव पड़ा था कि आर्यसमाज का विस्तार तो बंगाल में आसानी से हो सकता है, किन्तु उसको सम्भालना कठिन हो जायेगा। उस समय यह प्रचारयात्रा पूर्वी बंगाल में राजशाही, नोआखाली, इत्यादि जिलों में हुई थी। उस समय पूर्वाञ्चल में आर्यसमाज ने सहायतार्थ कार्य भी पर्याप्त किया था।

मेदिनीपुर का अंचल आर्यसमाज के प्रचार की दृष्टि से और भी महत्त्वपूर्ण रहा है। इधर के अंचलों में आर्यसमाज का संगठन भी अधिक है और आर्यसमाजी भी अधिक हैं। जहाँ कहीं थोड़े-बहुत आर्यसमाजी हैं वे कट्टर हैं, शाकाहारी हैं और निष्ठापूर्वक आर्यसमाज के सिद्धांतों पर चलने की चेष्टा करते हैं। कई अच्छे साधनसम्पन्न भूमिपति लोग भी आर्यसमाज के प्रभाव से प्रभावित हैं। वे न मूर्तिपूजा करते हैं, न मृतक श्राद्ध। उनके घरों में संस्कार स्वामी दयानन्दजी द्वारा निर्दिष्ट विधि के अनुसार ही होता है। इन लोगों में सामवेद और यजुर्वेद पारायण यज्ञों का अधिक प्रचलन है। कभी-कभी यजुर्वेद-पारायण-यज्ञ भी हो जाते हैं।

मेदिनीपुर के पास एक गाँव में एक साधनसंम्पन्न परिवार के किन्हीं वृद्ध पुरुष का देहान्त हो गया। उनका दाह संस्कार स्वामी दयानन्दजी महाराज की निर्दिष्ट पद्धति से किया गया। परिवार वालों ने न पिण्डदान किया, न घण्ट बांधे, न गले में कपड़े की चीट लोहे के साथ बांधी। पौराणिकों में विक्षोभ होना स्वाभाविक था। चूंकि यह परिवार सम्पन्न था, अतः विरोध में भी सम्पन्न वर्ग ही

खड़ा हुआ। आर्यसमाजियों का सीधा-सा कहना था कि मृतकश्राद्ध अवैदिक है, वेद-शास्त्र-विरुद्ध है—फिर हम वेद-शास्त्र-विरुद्ध आचरण क्यों करें ?

पौराणिकों की ओर से सीधा-सा पक्ष था कि सदा से पिण्ड-दानादि हो आया है, श्राद्धकर्म होता ही रहा है और बड़े-बड़े विद्वान् पण्डित मृतक श्राद्ध कराते ही हैं, तो यह वेद-शास्त्र-विरुद्ध कैसे हो सकता है ? होते-होते बात यहाँ आकर पहुँच गयी कि आर्यसमाजी इस बात पर डट गये कि मृतक श्राद्ध वेदसम्मत नहीं है, और पौराणिक दल इस बात पर दृढ़ हो गया कि मृतक श्राद्ध वेद-सम्मत है। होते-होते शास्त्रार्थ की बात निश्चित हो गयी और आर्यसमाजी एवं सनातनधर्मी सभी लोगों ने ही शास्त्रार्थ का विषय यह घोषित कर दिया कि मृतक श्राद्ध अवैदिक है।

तिथि भी उन्हीं लोगों ने तय कर ली। अब दोनों पक्षों के लोग अपने-अपने पक्ष के पण्डितों से सम्पर्क करने लगे। दोनों पक्षों के पण्डितों का गढ़ कलकत्ता ही है, अतः दोनों दल कलकत्ता आ गये और अपने-अपने दल के पण्डितों को निश्चित तिथि पर शास्त्रार्थ करने के लिये तैयार करने लगे। कलकत्ता का माहौल यह बना कि यह बंगाल में सनातनधर्म और आर्यसमाज के बीच शास्त्रार्थ का रूप लेने लगा। आर्यसमाज की ओर से विश्वविश्रुत वाग्मी श्री पं० अयोध्या प्रसादजी तथा संस्कृत के उद्भट विद्वान् धाराप्रवाह संस्कृत-भाषण करनेवाले आचार्य रमाकान्तजी शास्त्री और इन दोनों के साथ श्री पं० यतीन्द्र चौधरी, श्री पं० मनोरंजनजी काव्यतीर्थ आदि विद्वान् इस शास्त्रार्थ में जाने के लिये तैयार हो गये। स्वाभाविक ही आर्य-समाज के पण्डितों के नेता श्री पं० अयोध्या प्रसादजी थे।

सनातनधर्मियों की ओर से भी कई अत्यन्त उच्चकोटि के विद्वान् इस शास्त्रार्थ में सम्मिलित होने के लिये पहुँचे। (१) महामहो-

पाध्याय श्री योगेन्द्रनाथजी भट्टाचार्य वेदान्त वागीश, (२) महामहोपाध्याय श्री कालीपदजी तर्काचार्य, (३) तर्कशिरोमणि श्री पं० चण्डीचरणजी न्यायरत्न, (४) प्रसिद्ध वाग्मी विद्वान् श्री जीवजी न्यायतीर्थ एम० ए० और (५) प्रसिद्ध वक्ता पं० श्रीनाथजी पञ्चतीर्थ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

आचार्य रमाकान्तजी शास्त्री

इस शास्त्रार्थ में एक ही मञ्च था और दोनों दल के विद्वान् अपने-अपने प्रामाणिक ग्रन्थों के साथ मञ्च पर उपस्थित हो गये। यह तय हुआ कि शास्त्रार्थ संस्कृत में होगा। हजारों की संख्या में लोग उपस्थित थे और इतना उत्साह था कि चाहे संस्कृत समझें या नहीं किन्तु शास्त्रार्थ में बड़ी रुचि और तन्मयता से शान्तिपूर्वक बैठे थे।

एक स्वाभाविक प्रश्न खड़ा हुआ था कि दोनों ओर के प्रस्तोता के रूप में प्रथम वक्ता कौन हो। आर्यसमाज की ओर से पं० अयोध्या प्रसादजी ने बड़े गर्व से अपने शिष्य, संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित आचार्य श्री रमाकान्तजी शास्त्री को प्रस्तुत कर दिया। आचार्य रमाकान्तजी विद्यया वपुषात्वाण्या सब प्रकार से बड़े प्रभावोत्पादक थे। कलकत्ता के पौराणिक पण्डितों ने धाराप्रवाह संस्कृत में उनका सिंह-गर्जन आगे भी सुन रखा था। आचार्यजी वाराणसी की परम्परा में अति ललित, परम परिमार्जित संस्कृत बोलते थे। अतः आर्यसमाज की ओर से इनको प्रथम वक्ता के रूप में प्रस्तुत करना सरल-सा काम बना।

सनातनधर्मियों की ओर से एकाधिक महामहोपाध्याय न्याय-साहित्य के विद्वान् उपस्थित थे। सभी संस्कृत के दिग्गज पण्डित थे, किन्तु काशी-अयोध्या-प्रयाग की त्रिवेणी की संस्कृत और बंगला की संस्कृत में कम से कम उच्चारण की दृष्टि से बहुत अन्तर है और काशी की संस्कृत अधिक प्राञ्जल, सुस्पष्ट एवं प्रभावोत्पादक मानी जाती है। सम्भवतः इसीलिए आचार्य रमाकान्तजी के सम्मुख शास्त्रार्थ में सम्मुखीन होने के लिए बंगाली पण्डितों ने भी वही काशी-अयोध्या-प्रयाग के अञ्चल के श्री पण्डित श्रीनाथजी पञ्चतीर्थ को अपना प्रथम वक्ता नियुक्त किया।

अब प्रश्न यह था कि शास्त्रार्थ के पक्ष का स्थापन कौन करे। पं० अयोध्या प्रसादजी बड़ी सूझबूझ के चतुर शास्त्रार्थी खिलाड़ी थे। उन्होंने कहा कि शास्त्रार्थ का विषय आगे से ही घोषित हो चुका है कि मृतक श्राद्ध अवैदिक है। चूँकि शास्त्रार्थ का विषय आर्यसमाज का पक्ष है अतः मृतक श्राद्ध की अवैदिकता सिद्ध करने के लिए प्रथम अवसर आर्यसमाज को ही मिलना चाहिए। दाँव बड़ी बारीकी से चलायी गयी थी और विषय पण्डितों ने नहीं बल्कि जनता ने निर्धा-

रित करके फिर शास्त्रार्थ का आयोजन किया था। स्वाभाविक है यदि शास्त्रार्थ का विषय होता कि मृतक श्राद्ध वैदिक है तो यह पौराणिक पक्ष होता और पहला व्याख्यान सनातनधर्म की ओर से होता, किन्तु जैसा हम ऊपर कह आये हैं, पं० अयोध्या प्रसादजी ने यह अवसर छोड़ना न चाहा और सनातनधर्म के पण्डितों को प्रश्नों से पर्याप्त बोझिल कर देना ही नीतिसंगत समझा। पं० अयोध्या प्रसादजी का तर्क सीधा-सा सरलता से प्रस्तुत किया गया था। सम्भव है सनातनधर्मी विद्वान् शास्त्रार्थ की इस आक्रामक बारीकी को पूर्ण रूप से हृदयंगम भी न कर पाये हों, अतः विद्वानों ने सर्वसम्मति से आर्यसमाज की ओर से प्रथम वक्ता आचार्य रमाकान्तजी शास्त्री को और सनातनधर्म की ओर से प्रथम वक्ता श्री पं० श्रीनाथजी पञ्चतीर्थ को घोषित कर दिया।

आर्यसमाज की ओर से आचार्य पं० रमाकान्तजी ने पक्ष को स्थापित किया और बड़े सीधे सरल ढंग से पर्याप्त जोर देकर यह जनता में समा दिया कि यदि सनातनधर्मी विद्वान् एक भी वेदमन्त्र चारों वेदों में से निकाल कर यह दिखा दें कि यहाँ मृतक श्राद्ध का विधान है तो हम मृतक श्राद्ध मान लेंगे। आचार्यजी ने सिंहगर्जन के स्वर में संहिता ग्रन्थों की ओर, जो वहाँ आर्यसमाज की ओर से प्रमाण हेतु उपस्थित थे, संकेत किया। वेद की संहिताओं को हाथ में लेकर पौराणिक पण्डितों को ललकारते हुए यह कहा कि चारों वेदों में से एक बार भी कहीं से भी यह महा-महा विद्वान् 'मृतक श्राद्ध' यह शब्द ही दिखा दें, हमारा चैलेञ्ज है कि चारों वेदों में मृतक श्राद्ध शब्द ही नहीं आया है। और विधि-विधान की बात तो सर्वथा गण्य है ही। आचार्यजी ने संहिता ग्रन्थों को पौराणिक विद्वानों की ओर सरकाते हुए ऐसा खुलासा चैलेञ्ज दे दिया कि बहुत सारे लोग संस्कृत में कही हुई बात को समझ गये कि आर्यसमाजी पण्डित ने वेद

की पुस्तकें सामने करके 'मृतक श्राद्ध' शब्द ही दिखा देने के लिये सनातनधर्मी पण्डितों को ललकारा है। जब आचार्यजी ने बड़े उच्च स्वर से यह घोषणा की कि हमारा दावा है कि चारों वेदों में में मृतक श्राद्ध शब्द का प्रयोग ही नहीं हुआ है तो आर्यसमाजियों ने बहुत जोर से तालियाँ पीटीं और सनातनधर्मी पण्डितों के सिर पर दायित्व का एक भारी बोझ जनता की निगाहों में भी सुस्पष्ट खड़ा हो गया। आचार्यजी ने अपने तर्क को आगे बढ़ाते हुए कहा कि यहाँ बड़े-बड़े तार्किक विद्वान् बैठे हैं। वैदिक दर्शन परम्परा में कृतहानि और अकृताभ्यागम दोष माना जाता है और मृतक श्राद्ध इस दार्शनिक दोष से भी दूषित है। आचार्यजी ने श्रीमद्भागवत का प्रमाण देते हुए कहा कि श्रीमद्भागवत के माहात्म्य में ये सारे पण्डित कथा सुनाते हैं, वहाँ धुन्धकारी ने गोकरण से कहा—

धुन्धकारी दुःखितात्मा प्रोवाच पुरतस्थितः।
गया श्राद्ध श्तेनापि-मुक्तिर्मे न भविष्यति॥

और जब गया में श्राद्ध करने से भी धुन्धकारी का उद्धार न हुआ तब गोकरण ने श्रीमद्भागवत की कथा सुनी। आचार्यजी ने उपसंहार करते हुए कहा कि वेदों में मृतक श्राद्ध शब्द है ही नहीं। मृतक श्राद्ध दर्शन और तर्क के सर्वथा विरुद्ध है और यहाँ तक कि पुराणों की भी गवाही है कि मृतक श्राद्ध करने से धुन्धकारी प्रेतात्मा को छुटकारा न मिला। अतः हम मृतक श्राद्ध का विरोध करते हैं।

इसपर जनता ने करतलध्वनि से आचार्यजी का अभिनन्दन किया और वे अपना व्याख्यान समाप्त कर बैठ गये।

अब सनातनधर्म की ओर से श्री पं० श्रीनाथजी पञ्चतीर्थ आचार्यजी के प्रश्नों का उत्तर देने के लिये खड़े हुए। आचार्यजी ने संहिता ग्रन्थ सामने बढ़ाकर मृतक श्राद्ध शब्द दिखाने के लिये सुस्पष्ट ललकारा था, किन्तु सनातनधर्मी पण्डितों ने संहिता ग्रन्थ को हाथ

से भी न छुआ। अस्तु, पं० श्रीनाथजी खड़े हुए जैसे ही बोलना आरम्भ किया कि पहले ही वाक्य में जनता को सम्बोधन करते हुये उन्होंने कहा—सर्वायाः जनतायाः समक्षम्—बेचारे पञ्चतीर्थजी के मुँह से सर्वायाः का रूप अशुद्ध निकल गया। बोलना चाहिये था—सर्वस्याः जनतायाः समक्षं और बोल गये सर्वायाः जनतायाः। आचार्य पं० रमाकान्तजी ने पं० अयोध्या प्रसादजी का ध्यान इस अशुद्धि की ओर खींचा तो पं० अयोध्या प्रसादजी ने शास्त्रार्थीमल्ल की तरह आचार्यजी को कहा—यहीं से डांटकर बोलो—अशुद्ध बोल रहे हैं। आचार्य रमाकान्तजी अपनी जगह पर खड़े होकर बड़े जोर से बोले कि सर्वस्याः जनतायाः न तु सर्वायाः जनतायाः अशुद्धं भाषते भवान्। पं० श्रीनाथजी माइक पर थे और अशुद्धि इतनी सीधी सरल थी कि ठगठगा गये—सिर मुड़ाते ही ओले पड़ गये। जनता ने क्या समझा, इतना तो सब समझ गये कि सनातनधर्मी पण्डित से कोई भारी भूल हो गयी थी और फिर ऐसा ललकार दिया कि पौराणिक पण्डित हतप्रभ हो गये और कुछ बोल नहीं पा रहे थे। पण्डित श्रीनाथजी पञ्चतीर्थ पण्डित तो थे ही अशुद्धि हो ही गयी थी, सेकण्ड दो सेकण्ड के लिये ठगठगा-से गये और यह परिस्थिति जनता से भी छिपी न रह गयी।

सनातनधर्म के पक्ष के वक्ता के भाषण के आरम्भ में ही सनातन धर्म का पक्ष इतनी निर्ममता से पिट जायेगा, इसकी किसी को आशा न थी। आर्यसमाजी पण्डितों में विजय का उल्लास प्रकट हो रहा था तो सनातनधर्मी पण्डितों में यह अप्रत्याशित विपत्ति की विडम्बना सभी के चेहरों पर छा गई थी। इस विपत्ति से सनातनधर्मी पण्डितों को बचाने के लिये प्रसिद्ध वाग्मी विद्वान् श्री जीवजी न्यायतीर्थ एम० ए० उठकर माइक पर आ गये और बंगला में बोलना आरम्भ किया। पं० श्रीनाथजी हतप्रभ-से पिट तो चुके ही थे, चुपचाप बैठ

गये, सिर तो नीचा हो ही गया। अब श्री जीवजी माइक पर थे। आवेश-आक्रोश-प्रतिशोध सब कुछ उनके चेहरे पर झलक रहा था।

श्री जीव न्यायतीर्थजी वाग्मी विद्वान् तो थे ही, और अपने पक्ष के अपमानित होने के कारण क्षुब्ध भी हो उठे थे। अस्तु, क्षुब्ध तो सारे ही पौराणिक पण्डित हो रहे थे, किन्तु श्री जीव न्यायतीर्थजी माइक पर आ गये और बोलना शुरू कर दिया। उनकी क्षुब्धता इस कोटि पर पहुँच चुकी थी कि वे बिल्कुल ही यह ध्यान में न रख सके कि वे विषयान्तर होकर बोल रहे हैं। न्यायतीर्थजी ने आरम्भ किया कि आर्यसमाजी इतनी लम्बी-लम्बी बातें कर रहे हैं और इनके गुरु अन्धे के चेले थे। स्वामी विरजानन्द अन्धे थे और उनके शिष्य दयानन्द और दयानन्द के शिष्य ये सारे आर्यसमाजी, सभी अन्धे हैं। अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः।

पौराणिकों को यह बातूनीपन शायद कुछ अच्छा लगा हो, अन्यथा सब लोगों की राय यह हो रही थी कि सभा तो तू-तू, मैं-मैं, गाली-गलौज की ओर बढ़ रही है। लोगों ने यह संकेत भी किया कि विषयान्तर न किया जाय, कटुता न फैलायी जाय, किन्तु श्री जीवजी न्यायतीर्थ थे कि उसी धारा में आर्यसमाजियों को कटु वचन बोलने से विरत न हुए।

पं० रमाकान्तजी के प्रश्न लोगों के ऊपर छाये थे। उन्होंने वेद की पुस्तकें सरका कर पौराणिक पण्डितों की ओर कर दी थीं और मृतकश्राद्ध का प्रमाण वेदों में से निकाल कर दिखाने का आग्रह किया था। इधर श्री जीव न्यायतीर्थजी तो वेद की पुस्तकों की ओर आँखें भी नहीं ले जा रहे थे और केवल कटुता और गालियों की वर्षा ही किये जा रहे थे। एक ही दो मिनट में बात कुछ असह्य-सी हो गयी और पं० अयोध्या प्रसादजी शास्त्रार्थ के पटु खिलाड़ी की भाँति अपनी जगह से उठे, बड़ी शांति, किन्तु दृढ़ता से श्री जीव न्यायतीर्थजी की बगल

में जाकर खड़े हो गये और उनके सामने से माइक उठाकर अपने सामने कर लिये, और बंगला में ही बोलना आरम्भ कर दिया। श्री जीवजी सम्भवतः यह सोच न सके थे कि ऐसा भी हो सकता है। पं० अयोध्या प्रसादजीने जनता के न्यायालय में अपील कर दी। बोलने के कलाकार तो थे ही, उन्होंने कहा कि हमारा मुकदमा तो जनता की अदालत में है। जनता निर्णय कर ले, हमारे नवयुवक विद्वान्ने कितनी शालीनता और सभ्यता से तीन-चार प्रश्न किये थे और बार-बार यह पूछा था कि मृतकश्राद्ध का प्रमाण वेदों में कहाँ है। हमारे विद्वान् ने वेद संहिता पुस्तकों को मेज पर रखकर प्रमाण पूछा था कि इसमें से निकाल कर मृतकश्राद्ध का प्रमाण दिखायें। ये पौराणिक विद्वान् हैं जो वेदों की पुस्तकों को तो हाथ नहीं लगा रहे हैं, और हाथ लगावें भी तो कैसे, उनमें प्रमाण तो है ही नहीं। अपनी लज्जा छिपाने के लिए हम लोगों को गालियाँ दे रहे हैं, कोस रहे हैं। ठीक ही स्वामी विरजानन्दजी प्रज्ञाचक्षु थे और स्वामी दयानन्द उनके शिष्य थे और हम सबलोग स्वामी दयानन्द के शिष्य हैं। हमको प्रज्ञाचक्षु विरजानन्दजी पर और वेद-शास्त्रों के परम विद्वान् स्वामी दयानन्द पर गर्व है, किन्तु यह क्या तर्क हुआ कि स्वामी विरजानन्द अन्धे थे, अतः आर्यसमाज के पण्डित जो कुछ कह रहे हैं, वह वेद-शास्त्र-विरुद्ध है। वेदों में से प्रमाण देने का साहस इन सनातनधर्मी पण्डितों में है नहीं और यदि साहस है तो न्यायतीर्थजी गाली देना बन्द करके इन वेद-पुस्तकों में से प्रमाण खोजें। पुस्तकें भी तो हमने इनके सामने रख दी हैं। ये मृतकश्राद्ध का प्रमाण न देकर जनता को इतना मूर्ख समझते हैं कि इनकी गालियाँ सुनकर जनता सन्तुष्ट हो जायगी। हम इनसे प्रमाण माँगते हैं, और ये प्रमाण न देकर हमको गाली देते हैं। अब यदि मैं यह कहूँ—।

इसके बाद पं० अयोध्या प्रसादजी ने सिंह-गर्जना का स्वरूप अपना लिया, कभी पुराणों की आलोचना और कभी बाल-विवाह और

विधवाओं की दुर्दशा, कभी महीधर आदि के वेदभाष्य का वीभत्स वर्णन लगभग आधे-पौने घण्टे वक्तृता की वह छटा वाँध दी कि जनता तो मन्त्रमुग्ध-सी सुनती रही और पौराणिक पण्डितों ने यह देखा कि आज की सभा सर्वथा आर्यसमाजियों के हाथ में है। उधर से किसी व्यक्ति ने यह प्रस्ताव किया कि आज यह विचारसभा समाप्त कर दी जाय और कल दोनों पक्ष अपनी-अपनी तैयारी से फिर शास्त्रार्थ के लिए उपस्थित हों। इस निर्णय पर दोनों पक्षों के विद्वान् सहमत हो गये और शास्त्रार्थ अगले दिन के लिए स्थगित हो गया।

आर्यसमाजियों में विजयश्री का उल्लास था, पौराणिकों के खेमे में काफी उदासी था। रात को दोनों ओर के विद्वान् अपने-अपने आमन्त्रित करने वालों की व्यवस्था में भोजन-विश्राम के लिये चले गये। आर्यसमाजी पण्डित अगले दिन प्रातःकाल नित्यकर्म से निवृत्त होकर शास्त्रार्थ की तैयारी करने लगे। इतने में आर्यसमाज के कार्यकर्ता आये और यह सूचना दे गये कि सनातनधर्मी पण्डित तो सब के सब रात की ट्रेन से ही कलकत्ता चले गये। सुना गया कि पण्डितों ने शास्त्रार्थ की दक्षिणा का प्रश्न उठाकर अपने प्रबन्धकों से झगड़ा कर लिया था।

जनता को तो बुलाया ही गया था। अगले दिन और भी अधिक लोग उपस्थित हुए, किन्तु जब पौराणिकों की ओर से कोई पण्डित न आया तो शास्त्रार्थ-सभा आर्यसमाज के लिये प्रचार-सभा के रूप में परिणित हो गयी और आर्यसमाजी विद्वानों ने अपने व्याख्यान दिये और विजय का उल्लास लिये वहाँ से विदा हुए।

डलहौसी स्क्वायर का शास्त्रार्थ :

वर्णव्यवस्था और अछूतोद्धार

यह शास्त्रार्थ आर्यसमाज की ओर से स्वामी मुनीश्वरानन्दजी और सनातनधर्म की ओर से पं० अखिलानन्द के बीच हुआ था।

पं० अखिलानन्दजी स्वामी दयानन्द के शिष्य थे और इनकी मातृभाषा संस्कृत थी। इन्होंने स्वामी दयानन्द के ऊपर दयानन्द दिग्विजय नामक महाकाव्य भी लिखा था, किन्तु इन्होंने कोई पौराणिक कर्मकाण्ड कराया और इनके इस छलिया आचरण से असन्तुष्ट होकर आर्यसमाज ने इन्हें अपने संगठन से निष्कासित कर दिया। पण्डित अखिलानन्दजी को बड़ा क्षोभ हुआ और वे सर्वत्र आर्यसमाज के विरोध में निन्दा की बातें बोलने लगे। सनातनधर्मियों ने अखिलानन्दजीको खूब उछाला। विद्वान् तो थे ही, जगह-जगह पर सनातनधर्म के उत्सवों में वे जाते और प्रायः सब जगह शास्त्रार्थ के लिये चैलेञ्ज करते। शास्त्रार्थ होते भी और सब जगह पराजित-सा भाव, कभी गाली-गलौज, कभी झगड़ा, यह सब इन शास्त्रार्थों में होता ही रहता था। पं० अखिलानन्दजी किसी उत्सव पर कलकत्ता आये हुए थे। उन्होंने सनातन-धर्म की उस सभा में वर्णव्यवस्था के ऊपर व्याख्यान दिया और आर्यसमाज की और स्वामी दयानन्द की आलोचना की। शास्त्रार्थ का चैलेञ्ज दे देना तो इनके हर व्याख्यान में रहता ही था, सो इन्होंने इसमें भी आर्यसमाज को चैलेञ्ज दे दिया और आर्यसमाज के कोई अधिकारी वहाँ उपस्थित थे, उन्होंने आर्यसमाज की ओर से वह चैलेञ्ज स्वीकार कर लिया। स्थान, समय इत्यादि का निर्णय पीछे कर लिया जायेगा, इस आश्वासन पर वह सभा चलती रही।

उन दिनों कलकत्ता में प्रसिद्ध आर्यसंन्यासी स्वामी मुनीश्वरानन्दजी पधारे हुए थे। आर्यसमाज के अधिकारियों ने उनसे ही शास्त्रार्थ करने के लिये प्रार्थना की और वे बड़ी प्रसन्नता से तैयार हो गये।

यह शास्त्रार्थ डलहौसी स्क्वायर के मैदान में हुआ था। उन दिनों विनय-बादल-दिनेश (वि० बा० दि०) बाग का नाम डलहौसी स्क्वायर था और ट्राम की लाइनें पार्क के बाहर-बाहर थीं।

पार्क के उत्तर-पूर्व और पश्चिम में सभा करने लायक पर्याप्त जगह थी। इसी पार्क में शास्त्रार्थ का आयोजन हुआ। शास्त्रार्थ का विषय था वर्णव्यवस्था गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार है, जन्मना नहीं। इस विषय का सीधा-सा अर्थ यह हुआ कि जो जन्म से शूद्र पैदा हुये हैं वे सदा ही शूद्र रहेंगे और आर्यसमाजियों का अछूतोद्धार धर्म-विरुद्ध है।

पं० अखिलानन्दजी और स्वामी मुनीश्वरानन्दजी आमने-सामने सभा के दोनों ओर बैठे थे। सामने सभा थी। यूं विषय की दृष्टि से स्वामी मुनीश्वरानन्दजी को प्रथम बोलना उचित था। वे अछूतोद्धार को धर्मसम्मत सिद्ध करते। किन्तु पं० अखिलानन्दजी बड़े चतुर पण्डित थे। प्रायः शास्त्रार्थ किया ही करते थे। वे इस बात में विश्वास करते थे कि अपनी बात को कहकर छुट्टी लो, पीछे जो होगा सो होगा।

अपने इसी सिद्धान्त के अनुसार पं० अखिलानन्दजी ही प्रथम बोलने को उद्यत हुए। बड़े आदर भाव से उन्होंने काव्यमयी भाषा में बड़े सुन्दर ढंग से स्वामी मुनीश्वरानन्दजी का परिहास किया और उसीके बहाने अछूतोद्धार का खण्डन भी कर दिया। पं० अखिला-नन्दजी ने न कोई तर्क दिया, न कोई प्रमाण। अपनी बात को उन्होंने इस रूप में प्रस्तुत किया—

कल्पना कीजिए स्वामीजी महाराज यहाँ बैठे हैं, हमारे मान्य पूज्य संन्यासी हैं। संन्यासी की पूजा होनी ही चाहिए, और आप कोई एक सज्जन स्वामीजी के लिए बढ़िया रसगुल्ले लेकर चले। आप इस पार्क में आ ही रहे थे कि आपको ठोकर लगी और रसगुल्ले डलहौसी स्क्वायर की नाली में गिर पड़े। उन दिनों डलहौसी स्कायर के चारों ओर खुली नालियाँ थीं और उनमें सड़क का कूड़ा-करकट, मलगन्ध सब कुछ बहता था। (इन्हीं नालियों की ओर संकेत करके अखिलानन्दजी बोल रहे थे) अखिलानन्दजी बोले कि आप रसगुल्लों

को उठाकर ले आइए, स्वामीजी महाराज की सेवा में उपस्थित कीजिए और स्वामीजी तो आर्यसमाजी संन्यासी हैं, हवन करेंगे, भजन बोलेंगे और रसगुल्लों का पतितोद्धार कर देंगे और वे रसगुल्ले पतित नहीं रह गये, और आर्यसामाजियों ने खूब मीठा प्रसाद पाया। इस पर पौराणिकों ने ख़ूब तालियाँ पीटी थीं।

स्वामी मुनीश्वरानन्दजी ने उसी शैली में अखिलानन्दजी की बड़ी मीठी चुटकी ली और उनके तर्काभास को ऐसा सुस्पष्ट कर दिया कि अखिलानन्दजी निरुत्तर हो गये। स्वामी मुनीश्वरानन्दजी ने अपने उत्तर में उसी शैली को अपनाया और सभा को सम्बोधित करके कहने लगे।

भाइयो, हम तो आर्यसमाजी संन्यासी हैं ही और जब यज्ञ होता है तो क्या आर्यसमाजी और क्या सनातनधर्मी, प्रसाद तो सभी लेते हैं। पं० अखिलानन्दजी बड़े विद्वान् हैं, महाकवि हैं, किन्तु इनमें या हममें, आपमें किसी में भी यज्ञ का प्रसाद अस्वीकार करने का साहस थोड़े ही है। यह अलग बात है कि रसगुल्ले जब पेशाब की नालियों में पड़ गये तो वे यज्ञ में न डाले जायेंगे, पर मैं एक बात पूछता हूँ कि पं० अखिलानन्दजी इतने बड़े विद्वान् पण्डित, महाकवि चलकर ही तो डलहौसी पार्क में आये हैं। अब आप कल्पना कीजिए कि पण्डितजी को शास्त्रार्थ में आना था। इन्होंने बड़ी पवित्रता से गंगा-जल मंगवाया, खूब अच्छी तरह स्नान किया, धोती कपड़े पहिने, शिवनामी, रामनामी ओढ़ी, चन्दन-टीका किया और खड़ाऊँ पहन कर डलहौसी पार्क के लिये चल पड़े। पण्डितजी बेचारे अभी डलहौसी पार्क की उन नालियों तक आये ही थे कि खड़ाऊँ टकरा गया और पण्डितजी फिसल गये, बेचारे नहाये-धोये, चन्दन की टीका लगाये, शिवनामी-रामनामी ओढ़े उसी नाली में गिर पड़े जिसमें रसगुल्ले गिरे थे। क्या आश्चर्य, अगर कुछ नाक-मुँह में चला जाय। अब आप बताइये, रसगुल्लों की तरह आप इनको फेंक देंगे? हम कहते हैं कि

इन्हें नहलाइये, धुलाइए, चन्दन आदि लगाइये, कपड़े बदलवा दीजिये और बड़े आदर भाव से इन्हें सभा में लाइये। पं० अखिलानन्दजी रसगुल्ले नहीं हैं जो पतित हो गये तो अब गिरे ही रहेंगे।

अबकी आर्य समाजियों की बारी थी, खूब तालियाँ बजीं और स्वामीजी ने हिन्दू जाति के छुआछूत और दलित व्यवस्था पर बड़ा तीखा मार्मिक प्रवचन किया। इस प्रकार डलहौसी स्क्वायर का शास्त्रार्थ बिना किसी शास्त्रीय धर-पकड़ के इसी परिहास की नोकझोंक में समाप्त हो गया।

संन्यासीतल्ला का शास्त्रार्थ :

मूर्तिपूजा वेदविरुद्ध है

बर्दवान जिले में कुल्टी थाना है। वहाँ जी० टी० रोड के किनारे सिमलग्राम बसा है। इसी सिमलग्राम में संन्यासीतल्ला नामक स्थान पर यह शास्त्रार्थ हुआ था। शास्त्रार्थ का विषय था—मूर्तिपूजा वेदविरुद्ध है। आर्यसमाज की ओर से प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति और सनातनधर्म की ओर से प्रसिद्ध पौराणिक विद्वान् पं० अखिलानन्दजी शर्मा थे।

कुलटी आर्यसमाज के विद्वान् श्री पं० प्रियदर्शनजी का जन्मभूमि है। उस अंचल में भी इन्होंने काफी कुछ कार्य किया है। कुलटी के ऊपर आर्यसमाज आसनसोल के प्रचार का भी पर्याप्त प्रभाव रहा है। आसनसोल का आर्यसमाज बड़ा पुराना है और बंगाल के सक्रिय समाजों में है। इनके वार्षिकोत्सव, प्रचार आदि का प्रभाव आसपास के अंचलों पर पड़ता है, और उसी सिलसिले में कुलटी के अंचल पर भी आर्यसमाज का पर्याप्त प्रभाव है। यहाँ, जैसे सब जगह होता है, आर्यसमाज और सनातनधर्म के लोगों में सैद्धांतिक टकराव होता रहता था। वह युग तो था ही शास्त्रार्थों का। बात-बात में

शास्त्रार्थ की चुनौतियाँ और शास्त्रार्थ की व्यवस्था बन जाती थी। संन्यासीतल्ला में मूर्तिपूजा पर जो शास्त्रार्थ हुआ उसके अध्यक्ष कुलटी हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक श्री सौरीपदो चटर्जी थे।

शास्त्रार्थ का विषय कुछ इस तरह का था कि आर्यसमाजी पण्डित श्री पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति को मूर्तिपूजा के खण्डन का अच्छा अवसर हाथ लगा था। मूर्तिपूजा वेदविरुद्ध है, यह विषय ही आर्यसमाज के पक्ष का हुआ। श्री पं० सुखदेवजी ने वैदिक प्रमाणों के आधार पर ईश्वर की निराकारता प्रमाणित की। ईश्वर की मूर्ति बन ही नहीं सकती। षोडशोपचार, मूर्ति में प्राणप्रतिष्ठा आदि के कोई वैदिक प्रमाण नहीं हैं। यह सब प्रतिपादित किया। जो मन्त्र पौराणिकों की ओर से उपस्थित किये जाते हैं उनका पौराणिक अनुचित विनियोग, अर्थ-विरुद्ध आशय निकालते हैं। पं० सुखदेवजी का मूर्तिपूजा पर आक्रमण इतना बलवान था कि अखिलानन्दजी का हीलाहवाला अधिक न चल सका। सभी पौराणिक पण्डितों की तरह अखिलानन्दजी भी कभी परमेश्वर का आलंकारिक शरीर, कभी सहस्र शीर्षापुरुषः कभी इसी तरह के कोई और प्रमाण देते, किन्तु पण्डित सुखदेवजी की पकड़ इतनी कठोर थी कि पण्डित अखिलानन्दजी की वाग्मिता कृतकार्य नहीं हो सकी। फिर एक हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक शास्त्रार्थ के अध्यक्ष थे, उन्होंने शास्त्रार्थ को विषयान्तर नहीं होने दिया। शास्त्रार्थ पर नियन्त्रण रखा और यह सुस्पष्ट हो गया कि पं० अखिलानन्दजी को पं० सुखदेवजी ने सर्वथा निरुत्तर कर दिया है। पं० सुखदेवजी के बार-बार आग्रह करने पर भी षोडशोपचार इत्यादि का कोई वैदिक मन्त्र अखिलानन्दजी ने प्रस्तुत न किया, फिर एक और सीधा-सा ही प्रश्न था कि अलग-अलग देवताओं की अलग-अलग तरह की मूर्तियाँ किन वेदमन्त्रों से प्रमाणित होती हैं? इसका भी पं० अखिलानन्दजी कोई वैदिक प्रमाण नहीं दे सके। वस्तुतः जब वेदमन्त्रों में मूर्तिपूजा, प्राण-प्रतिष्ठा, षोडशोपचार,

भिन्न-भिन्न देवताओं की भिन्न-भिन्न प्रकार की मूर्तियाँ हैं नहीं, इनके प्रमाण में वेदमन्त्र हैं ही नहीं, तो पं० अखिलानन्दजी यह प्रमाण देते भी कहाँ से। एक ही वात हो सकती थी कि पं० अखिलानन्दजी वेदमन्त्रों के शब्दों, अर्थों में जोड़-तोड़ का प्रयास करते, किन्तु आर्य-समाजकी ओर से पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति जैसा तार्किक, धुरीण विद्वान् सम्मुख वैठा हो तो भाषा-व्याकरण, शब्द-जाल का छल भी काम नहीं आता। पं० सुखदेवजी से अखिलानन्दजी सर्वथा निरस्त और निरुत्तर ही रहे।

शास्त्रार्थों में हार जाने के वाद वितण्डा भी एक सहारा वन जाता है। किन्तु इस शास्त्रार्थ में कुलटी स्कूल के प्रधानाध्यापक श्री सौरीपदो चटर्जी ने अच्छे अनुशासन का परिचय दिया और शास्त्रार्थ बड़ी शांति से समाप्त हो गया। सारी जनता को यह विदित हो गया था कि पण्डित अखिलानन्दजी इस शास्त्रार्थ में बुरी तरह हार गये। पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण ने अपने संस्मरणों यह लिखा है कि इस शास्त्रार्थ का वंगाल में वहुत अच्छा प्रभाव रहा। इस अंचल के सुदूरवर्ती ग्रामीण बंगाली जनता पर भी यह प्रभाव पड़ा कि मूर्तिपूजा वेदविरुद्ध है। इससे एक ओर जहाँ यह चर्चा हुई कि मूर्तिपूजा का समर्थन वेदों से नहीं हो सकता, वहाँ लोगों पर यह भी प्रभाव पड़ा कि सनातनधर्मी विद्वान् तो व्याकरण, साहित्य, न्याय आदि पढ़ने में ही रह जाते हैं और वेद पढ़ते ही नहीं हैं। लोगों पर यह विदित हो गया कि आर्यसमाजी विद्वान् वेदों के अधिक पारंगत पण्डित हैं। पं० प्रियदर्शनजी के संस्मरणों के अनुसार इस शास्त्रार्थ से वंगाल में आर्यसमाज का सम्मान वहुत वढ़ गया।

तमलुक में शास्त्रार्थ :

मूर्तिपूजा और मृतकश्राद्ध

मेदिनीपुर जिले में तमलुक सबडिवीज़न के अन्तर्गत कुतकुतिया

नामक ग्राम है। यह डिमारी हाट के पास है। सन् १९३८ ई० में श्री श्रीधर चन्द्र दिण्डा ने इस शास्त्रार्थ का आयोजन कराया था। आर्यसमाज की ओर से पं० अयोध्या प्रसादजी, पं० रमाकान्तजी शास्त्री गये थे। पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री उन दिनों आसाम में थे। सनातनधर्म की ओर से कई पण्डित एकत्र हुए थे, जिनका नेतृत्व किया था पं० श्री चूड़ामणि घोड़ई सप्ततीर्थ ने। शास्त्रार्थ तो कुछ लम्बा नहीं चला था, लेकिन जनता को यह विदित हो गया था कि पौराणिक पण्डित वेदों से कोई प्रमाण नहीं दे रहे हैं। जो भी प्रमाण देते थे, वे सब प्रायः पुराणों के या फिर पौराणिक कर्मकाण्ड के देते थे। इस शास्त्रार्थ का वहाँ की जनता पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा था। इससे आर्यसमाज की धाक अच्छी जम गयी थी और पौराणिक मण्डल को लज्जा का सामना करना पड़ा था।

मालिग्राम का शास्त्रार्थ :

मूर्तिपूजा और मृतकश्राद्ध

बंगला में आर्यसमाज मालिग्राम सक्रिय रहा। सन् १९४१ ई० में डा० उपेन्द्रनाथ राय ने इस शास्त्रर्थ का आयोजन कराया था। डा० उपेन्द्रनाथराय उस समय मालिग्राम आर्यसमाज के मन्त्री थे। आर्य समाज की ओर से श्री पं०मनोरंजन काव्य-व्याकरणतीर्थ शास्त्रार्थ करने गये थे। पौराणिक मण्डल की ओर से श्री पं० जीव-न्यायतीर्थ गये थे। इस शास्त्रार्थ में शास्त्रार्थ से अधिक न्यायतीर्थजी का अभिमान और प्रदर्शन ही सनातनधर्मियों के लिये बदनामी और पराजय का कारण बना था। श्री न्यायतीर्थजी हावड़ा रेलवे स्टेशन से आठ मील पालकी से आये थे। विद्वान् व्यक्ति थे। उन दिनों पालकी की सवारी चलती भी थी। यहाँ तक तो चल जाता, किन्तु गाँव पहुँचकर उन्होंने प्रणाम करने वालों से १०० रुपये की दक्षिणा नियत कर दी। यह

लोगों की दृष्टि में भारी अभिमान और पाखण्ड का स्वरूप बन गया। शास्त्रार्थ में तो पहले ही दिन वे न कोई प्रमाण दे सके और न अधिक बुद्धिसंगत बात कर सके और परिस्थिति यह बनी कि आये थे पालकी से और रात में पैदल ही लौट गये।

जनता यह समझती की कि अगले दिन भी शास्त्रार्थ होगा, किन्तु अगले दिन तो केवल आर्यसमाजी विद्वान् रह गये। उन्होंने वैदिक धर्म का प्रचार किया और स्वाभाविक था, जनता ने आर्यसमाज के पक्ष को सराहा और आर्यसमाज को अच्छा यश मिला।

भाटपाड़ा शात्रार्थ :

जन्मना शूद्रों को यज्ञोपवीत और वेदाधिकार

भागीरथी के तट पर भाटपाड़ा (भट्टपल्ली) कलकत्ता के समीप ही एक प्रसिद्ध जगह है। वहाँ ब्राह्मणों की बस्ती है और यहां कुछ पण्डित भी रहे हैं। यहाँ के ब्राह्मणों में परम्परागत ब्राह्मणत्व का अभियान कुछ अधिक ही रहा है। यह लगभग उस काल की घटना है जब पं० मदनमोहनजी मालवीय बनारस में अछूतोद्धार के कार्य में लगे हुये थे। उस समय बनारस के पण्डित मालवीयजी पर व्यंग करते थे—

'दशाश्वमेधस्य दशा नवीना, चाण्डाल दीक्षासु कृतप्रवीणः।

श्री मालवीयजी वाराणसी से कलकत्ता आये थे और भागीरथी के तट पर उन्होंने शत-शत जन्मना अछूतों को यज्ञोपवीत धारण कराया था। उस समय परम्परावादी ब्राह्मणों में बड़ा क्षोभ व्याप्त हो गया था। उसी समय स्व० पं० दिगीन्द्र नारायण भट्टाचार्य ने 'जाति भेद' नामक पुस्तक प्रकाशित की थी। फलस्वरूप पोदतिलि माली, नमःशूद्र आदि वर्ग के लोगों में विप्लव-सा आरम्भ हो गया था। उसी समय पोद समाज के नेताओं ने खुलेआम यह घोषणा कर दी कि वे पौण्ड्र

जाति के क्षत्रिय हैं और इसी आधार पर उन्होंने यज्ञोपवीत धारण करने का अपना सामाजिक अधिकार भी घोषित कर दिया। भाटपाड़ा में इस यज्ञोपवीत धारण करने के आन्दोलन ने कुछ अधिक ही रंग दिखाया। वहाँ के पोद समाज के नेताओं ने यज्ञोपवीत धारण की तिथि निश्चित कर दी और बड़े उत्साह से सामूहिक यज्ञोपवीत का आयोजन किया गया। इस आयोजन से भाटपाड़ा और आसपास के परम्परावादी ब्राह्मणों में बड़ा क्षोभ व्याप्त हुआ। उन्होंने अति घनघोर आपत्ति उठायी। पोद समाज के नेता पढ़े-लिखे और सुथरे विचारों के थे। उन्होंने भाटपाड़ा के गण्यमान विद्वानों, पण्डितों को शास्त्रार्थ की चुनौती दी। भाटपाड़ा के पण्डितों ने इस चुनौती को स्वीकार कर लिया। यह सन् १९३० ई० की घटना है। यह शास्त्रार्थ भाटपाड़ा के पास सीताकुण्ड नामक स्थान पर हुआ था। इसमें पौराणिक मण्डली की ओर से पण्डित श्री पंचानन तर्करत्न, पं० श्री जीव न्यायतीर्थ, पं० नरेन्द्र शास्त्री आदि कई विद्वान् उपस्थित थे। आर्यसमाज के पण्डितों में शास्त्रार्थ के अग्रगण्य नेता पं० दीनबन्धु वेदशास्त्री, पं० नरेन्द्र नारायण चक्रवर्ती आदि थे।

शास्त्रार्थ बड़ी लाग-डाट, नोक-झोंक से मान-सम्मान का प्रश्न बन कर आरम्भ हुआ, किन्तु पौराणिक पण्डितों का तो यह सर्वसाधारण अस्त्र है—विषय से भटक जाना, स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज को गाली देना और झगड़े पर उतारू हो जाना। आर्यसमाजी पण्डित सिद्धान्त-प्रतिपादन में जितने पटु होते हैं, पुराण-खण्डन में उतनी ही पटुता दिखाते हैं और यहाँ तो पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री जैसे विख्यात वाग्मी शास्त्रार्थ का नेतृत्व कर रहे थे। पं० दीनबन्धुजी की स्वाभाविक रुचि इतिहास की ओर थी। वे जब पुराणों के खण्डन पर जुटते थे तो उनका सिंहगर्जन, प्रमाणपटुता, खण्डन की तीव्रता, सब कुछ अद्भुत ही हो उठती थी। पं० दीनबन्धुजी ने पौराणिक पण्डितों को उन्हींकी नीति से सर्वथा निरुत्तर कर दिया और थोड़ा होहल्ला होते-होते पोद

लोगों ने पौराणिक पण्डितों को सर्वथा असमर्थ ही बना दिया। शास्त्रार्थ तो जैसे-तैसे समाप्त हो गया। यतः आर्यसमाज का पक्ष सामाजिक जागरण के अनुकूल था और उसका बड़ा सुन्दर प्रभाव पड़ा। बात चाहे थोड़ी ही हुई थी किन्तु पं० दीनबन्धुजी ने जिस प्रभावशाली नीति से आर्यसमाज की बात कही और पुराणों की धज्जियाँ उड़ायीं उसका भी जनता पर बड़ा अनुकूल प्रभाव पड़ा।

शास्त्रार्थ के पश्चात् पं० दीनबन्धुजी को क्या ध्यान में आया कि उन्होंने 'भाटपाड़ा वधकाव्य' नाम से एक व्यंग्य-ग्रन्थ प्रकाशित कर दिया। भाटपाड़ा के पण्डित इस व्यंग्य प्रकाशन से बहुत क्षुब्ध हुए और उन्होंने पं० दीनबन्धुजी पर मानहानि के अभियोग करने की धमकी दी। पं० दीनबन्धुजी ने उनलोगों को कहला भेजा कि मानहानि के अभियोग में यदि कुछ दण्ड मिला तो उसे सहर्ष भोग लूँगा किन्तु एक-एक पण्डित की कलई इस रूप में खोली जायेगी कि पौराणिकों को ब्राह्मणसुलभ सम्मान की रक्षा करना दूभर हो जायेगा। कहा जाता है कि पौराणिकों की धमकी के प्रत्युत्तर में दीनबन्धुजी की धमकी पूरा काम कर गयी और पण्डितों ने मानहानि का अभियोग चलाने का निश्चय स्थगित कर दिया।

रामपुरहाट का शास्त्रार्थ :

वर्णव्यवस्था गुण-कर्म-स्वभाव से है

कलकत्ता से शान्तिनिकेतन, बोलपुर की लाइन पर रामपुरहाट एक अच्छा कस्बा है। वहाँ वर्णव्यवस्था पर आर्यसमाज के पण्डितों ने एक संस्कृत प्रोफेसर से शास्त्रार्थ किया था। इस शास्त्रार्थ में आर्यसमाज की ओर से आचार्य पण्डित रमाकान्तजी शास्त्री और पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री गये थे। शास्त्रार्थ का विषय था—'वर्ण-व्यवस्था गुण-कर्म-स्वाभाव से है, जन्म से नहीं।' इस शास्त्रार्थ में

पं० दीनबन्धुजी ने बंगला में व्याख्यान दिया और अपने पक्ष की स्थापना की कि वर्णव्यवस्था गुण-कर्म-स्वभाव से होती है, जन्म से नहीं। शास्त्रार्थ के लिए आर्यसमाज की ओर से पं० रमाकान्तजी ने अपने पक्ष को स्थापित किया था। इस शास्त्रार्थ का संस्मरण पण्डित दीनबन्धुजी ने स्वयं सुनाया था। पं० दीनबन्धुजी ने बताया था कि जब उन्होंने आचार्य रमाकान्तजी से यह कहा—पण्डितजी, शास्त्रार्थ की तैयारी में कुछ प्रमाण खोज लेने चाहिए, तो आचार्य रमाकान्तजी ने कहा था कि इस शास्त्रार्थ में प्रमाणों की अधिक आवश्यकता नहीं पड़ेगी, केवल सत्यार्थ प्रकाश से लीजिए और बाकी बस यूँ ही शास्त्रार्थ होगा। क्योंकि प्रतिपक्ष के विद्वान् न प्रसिद्ध शास्त्रार्थी ही थे और न प्रमाणों के माहिर ही।

आचार्य रमाकान्तजी ने अपने पक्ष को स्थापित करते हुए एक प्रमाण दिया था और एक ही तर्क। उन्होंने दीनबन्धुजी से कहा था कि अधिक प्रमाण देने से बात लम्बी खिंचती है। चटचट प्रश्नोत्तर करने से विरोधी को दबा देने में बड़ी सहूलियत रहती है। उन्होंने तर्क तो यह दिया था—को ब्राह्मणः ? इत्याशंकायां ब्राह्मणोत्पन्नः ब्राह्मणः, इति साध्यसमः। इसका अर्थ यह हुआ कि कौन ब्राह्मण है, इसका उत्तर यदि यह दिया जाय कि ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण है तो यह साध्यसम हेत्वाभास की कोटि में आ जाता है। जिस सूत्ररूप में इस संस्कृत वाक्य को आचार्यजी ने सजाकर प्रस्तुत किया था, पौराणिक पक्ष के लिये तो यह समझना भी दुष्कर कार्य था। जब पौराणिकों ने इधर-उधर की बात करनी चाही तब आचार्य रमाकान्तजी ने केवल इतना जोर से कह दिया कि—अनूद्य वक्तव्यम्। जिसका आशय हुआ कि मेरे तर्क का अनुवाद करके, मेरे प्रश्न को दुहराकर, फिर उत्तर दीजिये। शास्त्रार्थ की इस कला से एक तो विरोधी पण्डित के पाण्डित्य की परीक्षा हो जाती है और उसे इधर-उधर अधिक भागने या बहाना करने का अवसर नहीं मिलता। आचार्यजी के यह कहने

पर कि मेरे प्रश्न को दुहराकर उत्तर दीजिये, प्रतिपक्ष का विद्वान् सर्वथा असमर्थ हो गया था। आचार्यजी ने प्रमाण भी एक ही दिया था। सत्यार्थ प्रकाश का मनुस्मृति से उद्धृत श्लोक प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया था—

> शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चेति शूद्रताम्।
> क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद् वैश्यात्तथैव च॥

जिसका अर्थ हुआ कि शूद्र कुल में उत्पन्न व्यक्ति ब्राह्मण हो सकता है और ब्राह्मण कुल का व्यक्ति अपने गुण-कर्म-स्वभाव से अन्य वर्णों में चले जाते हैं। आचार्यजी ने गीता का प्रसिद्ध श्लोकांश उद्धृत कर दिया था—

> चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।

इस शास्त्रार्थ में आचार्यजी ने आरम्भ से यह नीति बनायी थी कि लम्बे व्याख्यान न दिये जांय और छोटे-छोटे प्रश्नोत्तरों के रूप में प्रतिपक्षी का मुँह बन्द कर दिया जाय।

पं० दीनबन्धुजी इस शास्त्रार्थ का संस्मरण सुनाते हुए ठहाका मारकर हँसते, और कहा करते थे कि आचार्यजी ने तर्क और प्रमाण क्या दिया, प्रतिपक्षी तो इनकी डांट के सामने ही चुप हो गये थे, शेष सभा व्याख्यानों में परिणत हो गयी। दोनों पक्षों ने अछूतोद्धार, देशसुधार इत्यादि विषयों पर व्याख्यान दिया। यहां पं० दीनन्धुजी ने आर्यसमाज के बहुविध सैद्धान्तिक पक्षों पर परिचयात्मक बड़ा सुन्दर प्रकाश डाला था। इस शास्त्रार्थ की चर्चा स्थानीय लोगों में काफी दिनों से थी। इसीलिये उपस्थिति भी अच्छी थी और प्रभाव भी अच्छा पड़ा था। शास्त्रार्थ तो थोड़े में ही सलट गया था, किन्तु तर्क और प्रमाण इतने प्रौढ़ और सुस्पष्ट थे कि उन पर शास्त्रार्थ की दूसरी और कोटि विरोधी पण्डितों के बनाये बनी ही न थी।

संस्कृत कालेज कलकत्ता की पण्डित-सभा :
शुद्धि पर विचार

बंगाल में कलकत्ता, नदिया, शान्तिपुर और भट्टपल्ली पण्डितों के गढ़ रहे हैं। यहाँ विद्या रही है तो कट्टरता और अन्ध-विश्वास भी कम नहीं रहा है। यहाँ के पण्डितों में सुधारवादी कम, कठोर कट्टरता वाले अधिक रह रहे हैं। संस्कृत के क्षेत्र में तो ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के पश्चात् स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज से सहानुभूति रखनेवाला कोई दूसरा व्यक्ति सुनायी ही नहीं पड़ता, किन्तु निष्ठुर इतिहास का निर्मम प्रहार कई बार आँखें खोल देता है और जो बात अनेक शास्त्रार्थों, व्याख्यानों से समझ में नहीं आती उसे समझने और मानने के लिये कट्टर से कट्टर व्यक्ति भी सरलता से तैयार हो जाता है। बंगाल के पण्डितों के साथ भी ऐसा ही हुआ।

वह मुस्लिम लीगी शासन का समय था। जिन्ना के आह्वान पर सुहारावर्दी सरकार की छत्रछाया के नीचे बंगाल में सीधी कार्यवाही मुस्लिम लीग के कार्यकर्ताओं ने कर डाली थी। राजशाही, नोआखाली, ढाका, चटगाँव की कराह से बंगाल क्यों सारा देश व्यथित हो उठा था। कितने कुलीन ब्राह्मण बलात् मुसलमान बना डाले गये, कितने जनेऊ जबरदस्ती तोड़ डाले गये, कितनी सती-साध्वी देवियों का सतीत्व नष्ट हुआ, कितनी हिन्दू कन्यायें मुसलमानों की पाशविक वृत्ति का शिकार बन गयी थीं। यह सब समाचार कलकत्ता पचहुँने लगा। पत्थरहृदय जैसी कठोरता रखने वाले लोग भी पिघल गये। हजारों-हजार लोग रोते-बिलखते कलकत्ता पहुँचते। ऐसे हजारों-हजार लोग आने लगे जिनका घर गया, ज़मीन गयी, रुपये-पैसे-कारबार गया, किसीकी पत्नी छीन ली गयी, किसीकी जवान लड़की छीन ली गयी, किसीके मुँह में गोमांस ठूंस दिया गया, किसीके मुँह में बलात् पेशाब कर दिया गया। इन सब

वेदनाओं को लेकर लोग कलकत्ता पहुँचने लगे। विचारशील हिन्दू शुद्धि के पक्ष में आगे भी थे और अब तो जो परम कट्टर थे वे भी इसे आपद्धर्म बताकर शुद्धि का समर्थन करने लगे।

होते-होते कलकत्ता के संवेदनशील जगत् पर इस विपत्ति का प्रभाव पड़ने लगा। पहले धावेमें तो शरणार्थी शिविर बनाये गये। शरणार्थियों की सेवा का कार्य शुरू हुआ, फिर उनके दुःखदर्द की कहानियाँ भी सुनी जाने लगीं। धन-सम्पत्ति, घर-जमीन जाने का दुःख तो था ही, परिवार के प्राणियों के मारे जाने, छीने जाने का दुःख उससे कहीं अधिक था। जो लोग बच-बचाकर कलकत्ता पहुँच भी रहे थे, उनके हृदयों में धर्मभ्रष्ट हो जाने की भारी वेदना थी। इस परिस्थिति में बंगाल के विद्वान् भी जागे और एक पण्डितसभा कलकत्ता के सुप्रसिद्ध संस्कृत कालेज में आयोजित की गयी। इस सभा का मुख्य उद्देश्य ही यह था कि ऐसे बलात् मुसलमान बनाये गये लोग धर्मभ्रष्ट नहीं हुये हैं, और उन्हें हिन्दू ही स्वीकारना धर्म की दृष्टि से उचित है।

इस पण्डितसभा के अध्यक्ष प्रसिद्ध विद्वान् महामहोपाध्याय कालीपद तर्काचार्य थे। समय की मांग थी कि अधिक से अधिक विद्वान्-पण्डित यह धार्मिक व्यवस्था देने के लिये एकत्र हों। संस्कृत कालेज के सारे अध्यापक तो थे ही, कलकत्ता विश्वविद्यालय के अध्यापक, संस्कृत की टोल, पाठशालाओं के संस्कृत के विद्वान्-पण्डित प्रायः सभी इकट्ठे थे। उस युग तक सनातनधर्म और आर्यसमाज की नोकझोंक कम तो न हुई थी, किन्तु सनातनधर्मी विद्वान् भी यह तो मानते ही थे कि यह मोर्चा आर्यसमाजियों का है और आर्यसमाज के विद्वान् कार्यकर्त्ता बहुत वर्षों से इस कार्य में लगे रहे हैं। होते-होते आर्यसमाज के दो विद्वान् आचार्य पं० रमाकान्तजी शास्त्री और पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री भी इस पण्डितसभा में आमन्त्रित हुए और आर्यसमाज के ये दोनों विद्वान् बड़ी आत्मीयता से इस विचारसभा में सम्मिलित हुए।

सभा इतने आवश्यक और मर्मस्पर्शी कार्य के लिए हो रही थी कि किसी का कुछ विरोध हो ही नहीं सकता था। जो सनातनधर्मी विद्वान् इन परिस्थितियों में भी शुद्धि-कार्य को स्वीकार करने में हृदय से हिचकते थे, उन्होंने भी इसे आपद्धर्म मान कर स्वीकार कर लिया था। चाहे उनका धर्मभीरु हृदय मुसलमानों को हिन्दू बनाने और उनके साथ खानपान, रोटी-बेटी जैसे सम्बन्धों के लिए तैयार न था, फिर भी समय की मांग ऐसी थी कि उस समय सभी या तो शुद्धि का समर्थन कर रहे थे या मौनं स्वीकार लक्षणम् की कोटि में आ रहे थे।

इस पण्डितसभा में तीन-चार विद्वानों के मार्मिक भाषण हुए। लोगों ने इस बात पर ज़ोर दिया कि इस प्रकार बलात् भ्रष्ट किये गये लोग धर्मच्युत हुए ही नहीं हैं, और उन्हें हिन्दुओं में सम्मिलित स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। यह विपत्ति के क्षणों में समय की आकांक्षा थी और एक प्रकार से नीतिमत्ता मात्र थी, यह कार्य सामयिक था और इससे सभी सहमत थे।

आचार्य पं० रमाकान्तजी शास्त्री आर्यसमाजी विद्वान् के रूप में पं० कालीपद तर्काचार्य इत्यादि सबसे परिचित थे। शास्त्रार्थ और पण्डित-सभाओं में मिलन तो हो ही जाता था। कालीपद तर्काचार्यजी अध्यक्ष तो थे ही, उन्होंने आचार्य पं० रमाकान्तजी से भी बोलने का आग्रह किया और यह परिचय सभा को दे दिया कि शुद्धिकार्य में पचासों वर्षों से लगे आर्यसमाज के प्रतिनिधि विद्वान् पं० रमाकान्तजी भाषण देंगे। आचार्यजी ने शुद्धि के पक्ष का बड़ी योग्यता से प्राञ्जल संस्कृत भाषा में समर्थन किया और आर्यसमाज का यह पक्ष सुस्पष्ट रूप से रखा कि सभी विधर्मियों को वैदिकधर्म में दीक्षित करने का प्रयास होना चाहिए। यह समय की ही माँग नहीं है, अपितु धर्म का भी यही स्वरूप है। स्थिति कुछ ऐसी बनी थी कि लोगों ने इसे हिन्दूधर्म का वीर सैनिक स्वरूप समझा, प्रत्याक्रमण का उपाय समझा और कम से

कम उतनी देर के लिए किसी भी दिग्गज पौराणिक पण्डित ने पं० रमाकान्तजी की इस बात का विरोध न किया।

अब प्रस्ताव औपचारिक रूप से प्रस्तुत हुआ। सबने स्वीकार किया कि पूर्वी बंगाल के दंगे में भ्रष्ट हुए, बलात् मुसलमान बनाये गये सभी लोगों को हिन्दू ही माना जाय। इसी व्यवस्था को देने के लिए तो इस सभा का आयोजन हुआ था और यह व्यवस्था प्रस्ताव की औपचारिकता के साथ दे दी गयी थी।

एक हिमालय जैसा प्रश्न :

यह प्रस्ताव पारित होने की जब घोषणा हो चुकी तो आचार्य रमाकान्तजी पुनः उठकर खड़े हो गये और उन्होंने जहाँ प्रस्ताव पारित करने के लिये अध्यक्ष और विद्वत्सभा को धन्यवादार्ह कहा, वहाँ यह भी कहा कि केवल इतने प्रस्तावमात्र से ही काम नहीं चलता, हिमालय जैसा प्रश्न और सामने खड़ा है। आचार्य रमाकान्तजी ने दूसरा और प्रस्ताव दिया कि ये लोग पूर्वी बंगाल में रहते थे तो कोई विद्यालयों में, कोई विश्वविद्यालयों में, कोई कार्यालयों-ऑफिसों में पढ़े-लिखे सम्मान्य, कुलीन व्यक्तियों की तरह अपना जीवन बिताते थे और समाज में वही सम्मान और मर्यादा उन्हें प्राप्त थी। अन्यायी-अत्याचारी गुण्डों ने इन्हें बलात् धर्मभ्रष्ट कर दिया तो शुद्धि के पश्चात् इन्हें उनके उसी सामाजिक सम्मान और वर्ण में सम्मानपूर्वक मानना चाहिए। इनके साथ खान-पान, विवाहादि संस्कारों को उसी प्रकार सम्मानपूर्वक चालू रखना चाहिए।

आचार्यजी की यह माँग धर्म के अनुकूल थी। समय की आकांक्षा थी, फिर भी कुछ कट्टर लोगों ने, ऊँचे बड़े विद्वानों ने यह कहा कि हम इन्हें हिन्दू तो बना सकते हैं, पर ये रहेंगे शूद्र ही, इन्हें ब्राह्मण कैसे बनाया जाय? इस पर आचार्य रमाकान्तजी ने शार्दूल विक्रीडित स्वरूप प्रकट करते हुए उच्च स्वर में गरजते हुए कहा था—विजयतां

महर्षिर्दयानन्दः— यदि यह आपके सामर्थ्य में नहीं है तो हम दयानन्द के शिष्य इन्हें तद् तद् वर्णों में दीक्षित करेंगे और वैदिक सिद्धान्त तो है ही, गुण-कर्म-स्वभावानुसार वर्णव्यवस्था का।

उनकी इस गर्जना को कुछ थोड़े-से कठोर कट्टर पण्डितों के छोड़ कर सबने सहर्ष स्वीकार किया और महामहोपाध्याय कालीपद तर्काचार्य ने अध्यक्ष-पद से आचार्य रमाकान्तजी शास्त्री को यह व्यवस्था देने के सुझाव के लिए धन्यवाद देते हुए कहा था—"बहु प्रीतिकरं भाषणं भवताम्।"

ये बंगाल से आये हुए शरणार्थी अपने-अपने वर्णों में समय की गति से विलीन हो गये। ब्राह्मण ब्राह्मणों में, कायस्थ कायस्थों में सभी अपनी-अपनी बिरादरी के भाइयों में उसी भाईचारे से सम्मिलित हो गये। यह पण्डितसभा अपने में एक ऐतिहासिक भूमिका इस रूप में निभाती है कि कभी किसीने खुलासा सामूहिक रूप से बलात् धर्मभ्रष्ट लोगों के विरुद्ध न कोई काम किया, न कोई व्यवस्था उठायी। आज तो ऐसा लगता है कि इतिहास की आकांक्षा ने सबको अपनी उदार उदरदरी में समेट लिया है। आर्यसमाज और वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार की दृष्टि से संस्कृत कालेज की इस पण्डित सभा का यह निर्णय अपने में सामाजिक यात्रा के पड़ाव के पत्थर की तरह अपना महत्त्व रखता है।

श्री बिड़लाजी के घर पर पण्डित-सभा :

वर्णव्यवस्था पर विचार

सन् १९५४-५५ के आसपास या कुछ और भी पहले प्रसिद्ध उद्योग-पति श्री घनश्यामदास बिड़लाजी के निवास-स्थान—बिड़ला पार्क में एक पण्डितसभा हुई थी। किसी प्रसंग पर श्री बिड़लाजी ने कलकत्ता के प्रायः सभी प्रसिद्ध विद्वानों को सम्मानार्थ एकत्र किया था। एक

स्वर्ण मुद्रा, एक शाल, कुछ फल, मिठाइयाँ इत्यादि प्रत्येक विद्वान् को दक्षिणा में दी गई थीं। जहाँ तक हमें स्मरण है, इस पण्डितसभा में शताधिक विद्वान् एकत्र हुए थे। इसमें प्रायः तो उच्चकोटि के विद्वान् ही थे, पर कुछ विद्वानों के कृपापात्र विद्वान् भी थे। फिर भी २५-३० या अधिक भी संस्कृत के अच्छे विद्वान् वहाँ एकत्र थे। आर्यसमाज की ओर से आचार्य पं० रमाकान्तजी शास्त्री को आमन्त्रित किया गया था। प्रसिद्ध दैनिक लोकमान्य के सम्पादक उदारचित्त श्री पं० रामशंकरजी त्रिपाठी भी इन्हीं पण्डितों में आमन्त्रित थे। यद्यपि उस समय तक उनकी गिनती सम्पन्न लोगों में होने लगी थी, फिर भी श्री बिड़लाजी के यहाँ सम्मानार्थ एकत्र हुए पण्डितों में वे भी उपस्थित थे। कार्य वहाँ केवलमात्र पण्डितों का सत्कार होना ही था, अतः कुछ समय यों ही व्यर्थ परस्पर बातचीत में कट रहा था। पं० रामशंकरजी त्रिपाठी ने यह देखा कि आर्यसमाज के कम से कम एक दिग्गज विद्वान् भी यहाँ उपस्थित हैं। उदार विचारों के तो वे थे ही, उन्होंने इस अवसर पर कुछ मनबहलाव, कुछ शास्त्रचर्चा करने की इच्छा प्रकट की।

ऐसे अवसरों पर पण्डितों की परम्परा तो यह है कि दो पण्डित आपस में किसी विषय पर शास्त्रार्थ करते हैं। ये विषय प्रायः व्याकरण या न्याय, कभी-कभी साहित्य या और भी कोई शास्त्र सम्बन्धित हो सकते हैं। यहाँ इस पण्डितसभा का उपयोग श्री पं० रामशंकरजी त्रिपाठी ने कुछ सुधारवादी विचारों पर शास्त्रचर्चा करने की इच्छा प्रकट की। जहाँ तक हमें स्मरण है पण्डित रामशंकरजी त्रिपाठी ने निम्न श्लोक पढ़ा था—

काव्य शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा॥

पण्डित लोग तो ऐसे अवसर पर पाण्डित्य-प्रदर्शन का एक बढ़िया स्थान पा जाते हैं। अतः पण्डित लोग हाथोंहाथ तैयार हो गये। अब

पं० रामशंकरजी ने आचार्य पं० रमाकान्तजी की ओर देखा और बोले— पण्डितजी, वर्ण-व्यवस्था जन्मना है या गुण-कर्म-स्वभाव से। आचार्यजी का सधासधाया, समझा-बूझा उत्तर था कि वेदशास्त्र और तर्क सबसे वर्ण-व्यवस्था तो गुण-कर्म-स्वभाव के ही अनुसार है। इतना कहना था कि कई सनातनधर्मी पण्डितों को जैसे जड़ैर-सी लग गयी, खाज-सी होने लगी, और कई लोग एक साथ बोलने को उद्यत हो गये। पं० रामशंकरजी जैसे यही चाहते थे, उन्होंने कहा एक-एक करके अपनी बात कहें और आचार्य रमाकान्तजी भी अपना पक्ष प्रस्तुत कर दें। इस परिस्थिति में पं० रामशंकरजी स्वतः ही जैसे पण्डितसभा के अध्यक्ष की भूमिका निभाने लगे। चूँकि सनातनधर्मी पण्डित कुछ अधिक बेचैन हो रहे थे, अतः पं० रामशंकरजी ने एक-एक करके उन्हींलोगों को बुलवाना आरम्भ किया। एक सनातनधर्मी पण्डित ने गोस्वामी तुलसीदासजी की चौपाई—

पूजिय विप्र सकल गुण हीना, शूद्र न पूजिय वेद प्रवीणा।

जैसी चौपाई भी पढ़ी थी। पं० रामशंकरजी तो प्रायः हिन्दी में बोलते थे, किन्तु अन्य विद्वान् संस्कृत में ही बोल रहे थे। भाषण संस्कृत में और प्रमाण हिन्दी में, कुछ अधिक ही परिहास का कारण बन गया था। किन्हीं पण्डितजी ने अकबर-बीरबल की प्रसिद्ध कहानी गधे को गंगा में धोने से वह बछड़ा नहीं बन जाता, इसे भी सुनाया था। किन्तु पाण्डित्य की दृष्टि से ये बातें बहुत हलकी पड़ रही थीं और बीच-बीच में पं० रामशंकरजी की तदनुरूप टिप्पणी भी उन्हें और हलका बना देती थी। एक पण्डितजी ने कुछ अधिक ही फटाटोप करके पुरुषसूक्त के प्रसिद्ध मन्त्र सुनाया—

ब्राह्मणोस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽअजायत ॥ —पुरुषसूक्त

पण्डितजी ने अपनी समझ से बड़ा विद्वत्तापूर्ण प्रमाण दे दिया था।

पं० रामशंकरजी ने आचार्य रमाकान्तजी की ओर देखकर कहा कि पण्डितजी, सनातनधर्मियों की ओर से तो कई विद्वानों के भाषण हो चुके, आर्यसमाज का पक्ष वर्णव्यवस्था के सम्बन्ध में प्रस्तुत कीजिए।

आचार्य रमाकान्तजी बड़ी प्राञ्जल संस्कृत बोलते थे और उनका उच्चारण भी बहुत सुन्दर था। उन्होंने एक तो यह तर्क दिया—

को ब्राह्मणः इत्याशंकायां, ब्राह्मणोत्पन्नः ब्राह्मणः अति साध्यसमः॥

यह था तो आचार्यजी का अपना वाक्य, पर जिस लहजे और ताव में कहा गया था उससे लगता था कि कहीं का सूत्र-वाक्य प्रमाण में बोल रहे हैं, किन्तु उस समय कौन किससे क्या पूँछे ? "शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।" यह प्रमाण देकर फिर अपनी पुष्टि में एक बड़ा प्रसिद्ध श्लोक पढ़ दिया—

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते॥

आचार्यजी ने कहा कि गीता में तो रोज़ ही पढ़ते हैं—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः॥

पुरुषसूक्त के मन्त्र की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि यह ब्रह्म पुरुष का वर्णन है, ब्राह्मण उसके मुख स्थानीय हैं, यह अलंकार से विराट् ब्रह्म के शरीर का वर्णन हो रहा है, इसमें वर्णव्यवस्था का विधान है ही नहीं।

वार्ता पर्याप्त आगे बढ़ रही थी। किसी सनातनधर्मी विद्वान् ने इस व्याख्यान पर कुछ टोकाटोकी करने का वितण्डा जैसा साहस किया तो पं० रामशंकरजी ने उसे दबा दिया। वे स्वयं भी पण्डित तो थे ही, सेठ भी थे।

पं० रामशंकरजी ने अपनी ओर से जैसे निर्णय-सा सुना दिया कि शास्त्रीय स्थिति तो यही है कि—

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते॥

उन्होंने आचार्य रमाकान्तजी के पक्ष को शास्त्रसम्मत बताया तो उच्चकोटि के सनातनधर्मी विद्वानों में इस निर्णायक घोषणा से बड़ी हलचल हुई, किन्तु इसी समय पण्डितों के सम्मान की तैयारी पूर्ण हो चुकी थी और पण्डित रामशंकरजी ने आगे बढ़कर कहा कि हमने तो समय काटने के लिए इस शास्त्रचर्चा का उपक्रम कर दिया था। यह तो एक मित्रतापूर्ण वार्तालाप ही हुआ है, कोई शास्त्रार्थ थोड़ा ही है। बात तो यहाँ रुक गई, किन्तु लोगों के हृदयों पर आर्यसमाज के शास्त्रीय पक्ष की बात विद्या की दृष्टि से भी काफी वजन रख रही थी।

श्री चपलाकान्तजी भट्टाचार्य के घर पर पण्डितसभा

कलकत्ता में षष्ठ आर्य महासम्मेलन १९५४ ई० के जनवरी महीने में मनाया जा रहा था। वह आर्यसमाज की उज्ज्वल विभूतियों का युग था। अन्य कार्यक्रमों के साथ आर्य वीरदल सम्मेलन हो रहा था। इस आर्य वीरदल सम्मेलन में कलकत्ता के प्रसिद्ध विद्वान् पत्रकार, किसी युग के संसद सदस्य श्री चपलाकान्तजी भट्टाचार्य भी उपस्थित थे। इस सम्मेलन में प्रसिद्ध वाग्मी व्याख्यानकुशल पं० बुद्धदेवजी विद्यालंकार का भी नवयुवकों के ऊपर भाषण हुआ था। उस भाषण से श्री चपलाकान्तजी इतने प्रभावित हुये कि उन्होंने अपने घर पर एक पण्डितसभा का आयोजन कर डाला। यह सभा थी तो केवल सम्मेलन सभा ही, इसके आयोजन में शास्त्रार्थ की चर्चा तक न थी और न शास्त्रविचार की ही चर्चा थी, किन्तु दोनों पक्ष यह समझते थे कि सनातनधर्म और आर्यसमाज के पण्डितों के मिलन का क्या अर्थ है। सनातनधर्म की ओर से अपने विषय के दिग्गज विद्वान् महामहोपाध्याय श्री कालीपद तर्काचार्य, श्री जीव न्यायतीर्थ के साथ दस-बारह विद्वान् उपस्थित थे। आर्यसमाज की ओर से पं० श्री ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु, पं० बुद्धदेवजी विद्यालंकार, पं० ईश्वरचन्द्रजी दर्शनाचार्य,

आचार्य रमाकान्तजी शास्त्री, पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री ये पाँच विद्वान् गये थे। दो-तीन हमलोग भी गये थे जो विद्यार्थी या शिष्यों के रूप में थे।

सामान्य कुशल-क्षेम शिष्टाचार के अनन्तर श्री कालीपद तर्काचार्यजी ने यह पूछा कि आर्यसमाज वाले संस्कृत को राष्ट्रभाषा न बनाकर हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का प्रस्ताव क्यों करते हैं? इस तरह का एक प्रस्ताव आर्य महासम्मेलन में आ भी चुका था और इस सम्मेलन का उद्घाटन बंगाल के तात्कालिक गवर्नर श्री कैलाशनाथजी काटजू ने किया था। दैनिक पत्रों में पर्याप्त चर्चा थी। अतः कालीपद तर्काचार्यजी ने यह सामयिक प्रश्न छेड़ दिया था। हमारी ओर से किसी विद्वान् ने राष्ट्रीय एकता की बात कही थी। महामहोपाध्याय कालीपदजी ने संस्कृत को राष्ट्रीय एकता के पक्ष में अधिक समर्थ बताया। इस पर पं० बुद्धदेवजी ने वार्त्तालाप का विचित्र-सा कौशल दिखाया था। पं० बुद्धदेवजी बोले (हमें वाक्य तब से ही कण्ठस्थ है)—

मन्दमतीनामनुग्रहाय सोपान परम्परावितन्यते ॥

महामहोपाध्याय तर्काचार्यजी इस उत्तर पर इतने मुग्ध हुए, और बुद्धदेवजी की संस्कृत भाषाशैली से ऐसे प्रभावित हुए कि कोई अन्य प्रसंग छिड़ने पर बुद्धदेवजी की ललित संस्कृत सुनकर श्री कालीपदजी ने कहा था—श्री हर्षरीतिरियम्।

पं० ईश्वरचन्द्रजी दर्शनाचार्य ने यह अनुमान लगा लिया कि सम्भवतः यह पंडितों की सभा परस्पर शिष्टाचार में ही बीत जायगी। अतः उन्होंने—मल्लौमल्लमाह्वयते—जैसा रूप बनाया और किसी शास्त्रीय चर्चा का निमन्त्रण दे दिया। परिचय में ईश्वरचन्द्रजी दर्शनाचार्य हैं, यह तो लोगों को विदित ही हो गया था। सनातनधर्मियों की ओर भी कई उच्चकोटि के विद्वान् थे। दर्शनाचार्यजी के इतना कहने पर किसी पंडित ने नव्यन्याय का प्रसंग छेड़ा और किसी पुस्तक का

हवाला दिया कि उसमें ऐसा लिखा है (दुर्भाग्यवश वह प्रसंग हमें विस्मृत हो गया है)। हमें अच्छी तरह स्मरण है कि दर्शनाचार्यजी ने सुस्पष्ट यह कह दिया था कि सनातनधर्मी पंडित जो हवाला दे रहे हैं, यह उस पुस्तक में नहीं है, और इसके विपरीत है। पौराणिक पंडित सर्वथा चकित थे। दर्शनाचार्यजी दर्शन के उद्‌भट विद्वान् हैं, यह तो सबको ज्ञात था, किन्तु नव्यन्याय के ग्रन्थों पर इस प्रकार साधिकार शास्त्रार्थ की क्षमता रखते हैं, यह कम लोगों को ही विदित था—कम से कम सनातनधर्मी पंडित आर्यसमाजियों को नव्यन्याय का भी विद्वान् मानने में संकोच करते थे। बात-बात में श्री चपलाकान्तजी के पुस्तकालय से ही वहीं बैठे-बैठे पुस्तक मंगा ली गयी और देखते-देखते दर्शनाचार्यजी ने पुस्तक खोल कर अपने पक्ष का प्रमाण प्रस्तुत कर दिया। श्री तर्काचार्यजी ने दर्शनाचार्यजी के पक्ष को उचित बताया और यह पहली झपट आर्य विद्वानों के हाथ रही।

अब किसी पण्डित ने, शायद श्री जीव न्यायतीर्थ ने, कहा कि आपलोग परमेश्वर को निराकार क्यों मानते हैं। पुरुषसूक्त में परमेश्वर के सहस्र सिर, आँख-पैर, सारे अंगों का वर्णन है। उन्होंने निम्न मन्त्र प्रस्तुत किया था—

सहस्रशीर्षापुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।

इस पर पण्डित बुद्धदेवजी ने कहा था कि यह परमात्मा के आलंकारिक वर्णन का प्रसंग है। इसमें परमात्मा के इस प्रकार के शरीर का वर्णन नहीं है, जैसा हमारा आपका शरीर है। इसपर श्री जीव न्यायतीर्थ ने कहा था कि यहाँ परमात्मा के सहस्र सिर, सहस्र आँख और सहस्र पैर इत्यादि का वर्णन है। फिर आप परमात्मा के शरीर का स्वरूप इसे क्यों नहीं मानते ? इस पर आचार्य रमाकान्तजी ने कहा कि सहस्र शब्द यहाँ बहुत्ववाची है, संख्यावाची नहीं है और इसका अर्थ सहस्र सिरवाला भी नहीं है। इसका अर्थ तो आपके भी

आचार्य इस रूप में मानते हैं कि—सहस्राणि असंख्यातानि शिरांसि यस्मिन् आधारभूते परमात्मनि स सहस्रशीर्षा—इसपर श्री जीवजी ने कहा था कि यह आपका अर्थ है, हमारा कोई आचार्य ऐसा नहीं मानता, और सहस्र शब्द तो यहाँ संख्यावाची है। आचार्य रमाकान्तजी ने परिहासपूर्वक कहा—तो सहस्र सिर में सहस्र आँखें, क्या परमेश्वर एकाक्ष हैं, और फिर सहस्र सिरवाले के सहस्र ही पैर। क्या परमेश्वर लँगड़ा हो गया। आचार्य रमाकान्तजी ने कहा कि अपने आचार्य महीधर का प्रमाण देखिये। महीधराचार्य अपने भाष्य में इसे संख्यावाची नहीं मानते।

संयोग की बात, श्री चपलाकान्तजी के पुस्तकालय में उव्वट-महीधर का यजुर्वेद भाष्य भी था। पुस्तक एक मिनट में आ गयी और आचार्य रमाकान्तजी ने एकही मिनट में निकाल कर महीधर का भाष्य पढ़कर सुना दिया, जिसका आशय कुछ इस प्रकार था—सहस्र शब्दोऽत्र बहुत्ववाची न तु संख्यावाची संख्या वाचकत्वे सति नेत्र सहस्रद्वयेन च भाव्यम्। सनातनधर्मी विद्वानों पर इतना अद्भुत प्रभाव पड़ा कि चपलाकान्तजी ने ऋषिदयानन्द के भाष्यों को पढ़ना आरम्भ कर दिया। सनातनधर्मी आर्यसमाजियों को कभी नास्तिक तो चाहे कहते रहें, किन्तु आर्यसमाजी विद्वान् होते हैं,यह भी तो मानते ही थे। किन्तु इस सभा में सनातनधर्मी विद्वानों पर यह छाप पड़ी कि आर्यसमाजी केवल अपने पक्ष या अपने ग्रन्थों के ही अधिकारी विद्वान् नहीं होते हैं अपितु सनातनधर्म के पक्ष के ग्रन्थों के भी उद्भट विद्वान् होते हैं। तर्काचार्यजी ने और चपलाकान्तजी ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की थी। हम बड़े आनन्द और उल्लास से लौटे थे। वह प्रसंग आज भी आह्लादकारी है।

हाउर का शास्त्रार्थ :

वेद केवल ब्राह्मण के लिए

हाउर स्टेशन के पास एक धान मिल है। इस मिल के मैदान में इस शास्त्रार्थ का आयोजन सन् १९६४ ई० में अप्रैल के महीने में हुआ था। आर्यसमाज जाड़दोई के तत्कालीन मन्त्री श्री धरणीधर माइती ने इस शास्त्रार्थ की व्यवस्था करायी थी। आर्यसमाज की ओर से पं० श्री शिवनन्दन प्रसादजी वैदिक, पं० श्री प्रभासचन्द्र पाल विद्याभूषण, पं० श्री सुरेन्द्रनाथजी सिद्धान्तविशारद थे। सनातनधर्मी पण्डितों की ओर से श्री पं० श्रीजीव न्यायतीर्थ प्रधान रूप से थे और भी कई उनके सहयोगी थे। इस शास्त्रार्थ में आर्यसमाज के नेता श्रीवटुकृष्णजी वर्मन अध्यक्ष बनाये गये थे।

शास्त्रार्थ के तर्क और प्रमाण दोनों ही आधार वने थे। आर्यसमाज की ओर से विषय था कि वेद केवल ब्राह्मणों के लिए ही नहीं अपितु मनुष्यमात्र के लिए हैं। आर्यसमाजी पण्डितों ने सीधे सरल ढंग से अपने तर्क दे दिये कि ईश्वर की वनायी सभी चीज़ें मनुष्यमात्र के लिए हैं और वेद भी परमेश्वर ने मनुष्यमात्र के लिए वनाया है। यजुर्वेद में—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानिजनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय॥

मन्त्र आया है जिसमें परमेश्वर का उपदेश है कि वेद ब्राह्मणों के लिए ही क्यों ? वे तो शूद्र और सेवकों के लिए भी हैं। मनुष्यमात्र के लिए हैं। पौराणिक पण्डितों की ओर से न कोई वैदिक प्रमाण दिया गया, न कोई उचित तर्क। अध्यक्ष महोदय ने घोषणा कर दी कि वेद मनुष्यमात्र के लिए हैं। यही पक्ष प्रमाणित हुआ। सनातन धार्मियों को पराजय का सामना करना पड़ा था।

चतुर्दश अध्याय

सत्याग्रहों में सहयोग

आर्यसमाज का आरम्भ संघर्षों में ही हुआ है। आर्यसमाज की स्थापना से पूर्व स्वामी दयानन्दजी ने जब पाखण्ड-खण्डनी पताका लहरायी थी, संघर्ष तो उसी समय से स्वामी दयानन्दजी के साथ लग गया था। स्वामी दयानन्द विधि और निषेध दोनों भावनाओं का समन्वय करके चलते थे। निषेध के समय, खण्डन के समय लोगों को पीड़ा होती थी और प्रायः स्वरूप संघर्षों का ही हो जाता था। ऋषि दयानन्द इन संघर्षों में यावज्जीवन जूझते रहे। आर्यसमाज को भी इसके स्थापना-काल से ही संघर्षरत रहना पड़ा है। आर्यसमाज एक समाज-सुधारक, धर्मप्रचारक संस्था है। अतः समाज-सुधारों और धर्मप्रचारों के क्षेत्र में आर्यसमाज को संघर्षों में उतरना पड़ा है।

इन दिनों अंग्रेजों का राज्य तो था ही, साथही सारे भारतवर्ष में अनेकानेक देशी रियासतें और रजवाड़े भी थे। इन रियासतों-रजवाड़ों का जो शासक होता था, उसका धर्म ही इनका धर्म था और उस धर्म, मत या पन्थ को राजा या शासक का संरक्षण मिलता था। ये शासक अंग्रेजों की प्रभुसत्ता के आधीन होते हुए भी इन कार्यों के लिए अपने में स्वतन्त्र थे और राजकीय, कोष का व्यय मनमाने ढंग से करते थे। इन रियासतों, रजवाड़ों में न्याय भी मनमाना ही था। जो बात, सिद्धान्त या कार्य शासक को पसन्द न

हो उसके लिए दण्ड देने में शासकों को कोई झिझक न थी। इनके कारण नेपाल में पं० सुखराजजी को फाँसी मिली थी। प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पं० चमूपतिजी को उनकी जन्मभूमि से निष्कासित किया गया था। इसी प्रकार सैकड़ों-सहस्रों लोगों को अपने शासकों, रजवाड़ों, रियासतों और अमीरों का कोपभाजन बनना पड़ा था।

एकाधिक बार आर्यसमाज को संगठित रूप में कई रियासतों के विरुद्ध संघर्ष में उतरना पड़ा था। सन् १९०९ ई० में एक विचित्र संघर्ष प्रसिद्ध रियासत पटियाला में हुआ था। इसी प्रकार सन् १९१८ ई० में धौलपुर में भी वहाँ के शासक के साथ आर्यसमाज को संघर्ष में उतरना पड़ा था, किन्तु यह सब संघर्ष छोटे थे और इनका ऐतिहासिक महत्त्व कम न होते हुए भी संघर्ष की दृष्टि से उतने महत्त्वपूर्ण न थे जितना कि हैदराबाद का सत्याग्रह था।

हैदराबाद का सत्याग्रह

निजाम हैदराबाद की रियासत भारतवर्ष की सर्वाधिक सम्पन्न रियासतों में थी। कहा जाता है कि यह विश्व की सबसे बड़ी मुस्लिम रियासत थी। आर्यसमाज के इतिहास द्वितीय भाग पृष्ठ ५७४ पर निम्न पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं—

यह संघर्ष उस समय की सबसे बड़ी मुस्लिम रियासत के साथ किया गया था और जब यह शुरू किया गया था तो इसकी सफलता की बहुत ही कम सम्भावना समझी जाती थी। सार्वदेशिक सभा के प्रधान श्री घनश्यामसिंह गुप्त जब शिमला में इस सत्याग्रह के बारे में दिनांक २०-७-१९३९ ई० को बृटिश सरकार के प्रतिनिधि सर बर्ट्रेण्ड ग्लेन्स से मिले थे तो उसने श्री गुप्त को कहा था—

> "आप विश्व के सबसे बड़े मुस्लिम राज्य के साथ लड़ रहे हैं। आप इसमें किस प्रकार सफलता की आशा कर सकते हैं?[1]"

१—डा० सत्यकेतु विद्यालंकार—आर्यसमाज का इतिहास भाग २ पृ० ५७४

आर्यसमाज ने धार्मिक अधिकारों के लिए निजाम जैसी कट्टर मुस्लिम शासनसत्ता से लोहा लिया। दस हजार से अधिक व्यक्तियों को सत्याग्रह में जेल में भेजकर एक नवीन कीर्तिमान स्थापित किया। इससे पहले वर्तमान भारत में इतने बड़े पैमाने पर धार्मिक अधिकारों के लिए कोई संघर्ष नहीं किया गया था।

इस सत्याग्रह की भूमिका कई वर्ष पहले से आरम्भ हो गयी थी। हैदराबाद की रियासत हिन्दू जनता से प्राप्त राजस्व को अपने शासन-तन्त्र में इस्लाम के प्रचार में लगा रही थी तो यह कोई संघर्ष का मुद्दा नहीं था। सन् १९३२ ई० में कई ऐसी चिन्तनीय बातें सामने आने लगीं, जिनके लिए आर्यसमाज को सत्याग्रह रूपी संघर्ष में कूदना ही पड़ा। हिन्दू धार्मिक व्याख्यानदाताओं को, विशेषकर आर्यसमाज के उपदेशकों को हैदराबाद में वैदिक धर्म के प्रचार की सुविधा नहीं मिलती थी। मन्दिर और यज्ञशालाओं के निर्माण पर प्रतिबन्ध लग गया। मन्दिर के शिखर की ऊँचाई मस्जिद की मीनार से अधिक नहीं हो सकती थी। हैदराबाद के मुस्लिम शासक के अत्याचारों की हद हो गयी जब हैदराबाद के नवाब ने मुहर्रम के महीने में हिन्दुओं के विवाहों पर पाबन्दी लगा दी। विवाह प्रसन्नता का अवसर है और मुहर्रम दुख का। इसलिए मुहर्रम के महीने में विवाह करने वालों के विरुद्ध शासकीय कार्यवाही के आदेश हो गये। हिन्दुओं के अखाड़ों पर प्रतिबन्ध लग गया। दशहरा और मुहर्रम एक साथ पड़ने पर दशहरे पर प्रतिबन्ध लग गया। आर्यसमाज के सत्संगों पर तथा घर में भी धार्मिक भाषणों पर प्रतिबन्ध लग गया। ध्वज और झण्डे लगाने पर प्रतिबन्ध लग गया। निजी स्कूल, जुलूस और सभाओं पर भी प्रतिबन्ध लग गया। अछूतों को खुलेआम मुसलमान बनाया जाने लगा। इस सम्बन्ध में आर्यसमाज का इतिहास, द्वितीय भाग पृष्ठ ५८२ पर प्रकाशित एक रिपोर्ट बड़ी महत्त्वपूर्ण है—

"करीमनगर शिक्षाविभाग के सुपरिण्टेण्डेण्ट मुस्ताक

अहमद ने अध्यापकों के निरीक्षक को दिनांक ६-६-१६४० फसली के पत्र-संख्या ३/१ में लिखा था—'अछूत पाठशाला के आधे से अधिक विद्यार्थी मुसलमान बन गये हैं, इसलिए आवश्यक है कि इन्हें मज़हबी तालीम की जाय। उन्हें किसी मुसलमान अध्यापक का नाम बता दिया जाय तो इस कार्य के लिए चन्द्रका (जो इस कार्य के लिए एक हिन्दू अध्यापक था) के स्थान पर रखा जाय।' शिक्षा विभाग के सुपरिण्टेण्डेण्ट ने आदेश दिया कि मुसलमान होने पर छात्रों से फीस न ली जाय। इससे यह स्पष्ट था कि निजाम सरकार की नीति स्कूल के छात्रों को आर्थिक प्रलोभन देकर मुसलमान बनाने की थी[१]।"

यह सारी स्थिति आर्यसमाज जैसे जीवन्त धर्म प्रचारक संगठन के लिए असह्य थी। इधर हैदराबाद में हिन्दुओं को मार देना, उनकी हत्या करना देना सर्वसाधारण-सी बात हो गयी थी।

आर्यसमाज ने आर्य-रक्षा-समिति बनाकर जब हैदराबाद के नवाब से सम्पर्क किया तो नवाब का उत्तर मौखिक सहानुभूति मात्र था। होते-होते संघर्ष छिड़ ही गया और इन सारे अत्याचारों के विरुद्ध सत्याग्रह की तैयारी होने लगी। २५-२६-२७ दिसम्बर, १६३८ ई० को शोलापुर का आर्य महासम्मेलन हुआ और सत्याग्रह करने का निश्चय कर लिया गया।

हिन्दू महासभा और हिन्दू जाति के लोग, जैन, सिख इत्यादि शुरू से आर्यसमाज के समर्थक थे, किन्तु आरम्भ में महात्मा गाँधी और जवाहरलाल नेहरू जैसे नेता, मुस्लिम तुष्टीकरण ही जिसकी निर्बलता थी, इस आन्दोलन से चिन्तित हुए। उस समय कुँवर सुखलाल आर्य मुसाफिर ने गाँधीजी से अपील के तौर पर एक बड़ा प्यारा गीत गाया था, जिसमें पद था—

१. डा० सत्यकेतु विद्यालंकार—आर्यसमाज का इतिहास भाग २ पृ० ५८२

मेरी हिमायत न कर प्यारे गाँधी,
मगर यह तो कह दो बुरा हो रहा है।

पीछे गांधीजी और नेहरूजी का रुख बदल गया। नेहरूजी ने इस तरह के सत्याग्रह को निरंकुश राजाओं की आँखें खोलने वाला बताया। बहुत बड़ी संख्या में कांग्रेसी हिन्दुओं ने इसमें भाग लिया। सिख और जैन भी इसमें सामने आये।

यह सत्याग्रह जनवरी सन् १६३६ ई० को शुरू हुआ और जुलाई सन् १६३६ ई० को समाप्त हुआ। इस सत्याग्रह में आर्यसमाज पूर्णरूप से सफल हुआ। इसमें सभी प्रान्तों के सत्याग्रही सम्मिलित हुए थे। सत्याग्रह में बारह हजार पाँच सौ उनहत्तर (१२,५६६) व्यक्ति जाने को तैयार थे। दस हजार पाँच सौ उनहत्तर (१०,५६६) व्यक्तियों के जेल पहुँचते-पहुँचते हैदराबाद की रियासत झुक गयी। पाँच-छः महीनों में इतना बड़ा सत्याग्रह सचमुच अपने में अपना कीर्तिमान स्वयं बनाता है।

बंगाल का योगदान

बंगाल देश के पूर्वाञ्चल में है। यहाँ आर्यसमाज की विशेष शक्ति कलकत्ता जैसे व्यावसायिक नगर में केन्द्रित है। फिर भी पं० शंकरनाथजी पण्डित, पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री, पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण, श्री वटुकृष्णजी वर्मन, श्री प्रभासचन्द्र पाल इत्यादि अनेकों सबल धर्मप्रचारकों के कारण आर्यसमाज मेदनीपुर, चौबीस परगना, राजशाही, त्रिपुरा इत्यादि अंचलों में फलता-फूलता रहा। सुदूरवर्ती प्रदेश होने के कारण और आर्यसमाज का अधिक व्यापक प्रचार न होने के कारण हैदराबाद के सत्याग्रह में बंगाल का योगदान बहुत कम न था। यहाँ से भी सत्याग्रहियों के कई जत्थे गये थे। आर्यसमाज के इतिहास में बंगाल के सत्याग्रहियों की संख्या २०२ दी हुई है। बंगाल प्रतिनिधि सभा के नेतृत्व में हैदराबाद सत्याग्रह में

सात जत्थे भेजे गये थे। बात पुरानी पड़ गयी और दुर्भाग्यवश इतिहास की सामग्री विस्तार से उपलब्ध नहीं है, फिर भी जितना कुछ उपलब्ध है वह श्रद्धापूर्वक स्मरणीय है।

सत्याग्रहियों का प्रथम जत्था फरवरी सन् १९३९ ई० में श्री सभापति रायजी ने नेतृत्व में गया था। इस जत्थे में २१ सत्याग्रही थे। श्री

श्री सभापति रायजी

सभापति रायजी खिदिरपुर आर्यसमाज के कार्यकर्ता ही नहीं, बल्कि यह कहना उचित होगा कि ये खिदिरपुर आर्यसमाज के प्राण थे। श्री सभापतिराय स्वेत खादी के परिधान में गांधी टोपी पहनने वाले स्वदेशभक्त, समाजसुधारक और आर्यसमाज के दीवाने तो थे ही, इनकी जन्मभूमि बिहार थी और कार्यक्षेत्र कलकत्ता में खिदिरपुर था। ये ईंट-भट्ठे का व्यवसाय करते थे। आर्यसमाज के श्रद्धालु कट्टर भक्त थे।

२ मई सन् १९३९ ई० को आर्यसमाज का एक और जत्था श्री वटुकृष्णजी वर्मन के नेतृत्व में गया था। इस जत्थे में सत्तर सत्याग्रही थे। यह चौथा जत्था था। श्री वटुकृष्णजी वर्मन बंगाल के आर्यसमाजी कार्यकर्त्ताओं में प्रभावशाली नेता हैं। ये कार्यकुशल हैं, संगठन को इन्होंने एक सूत्र में बांध रखा है। आप एक सक्रिय कार्यकर्त्ता ही नहीं है,
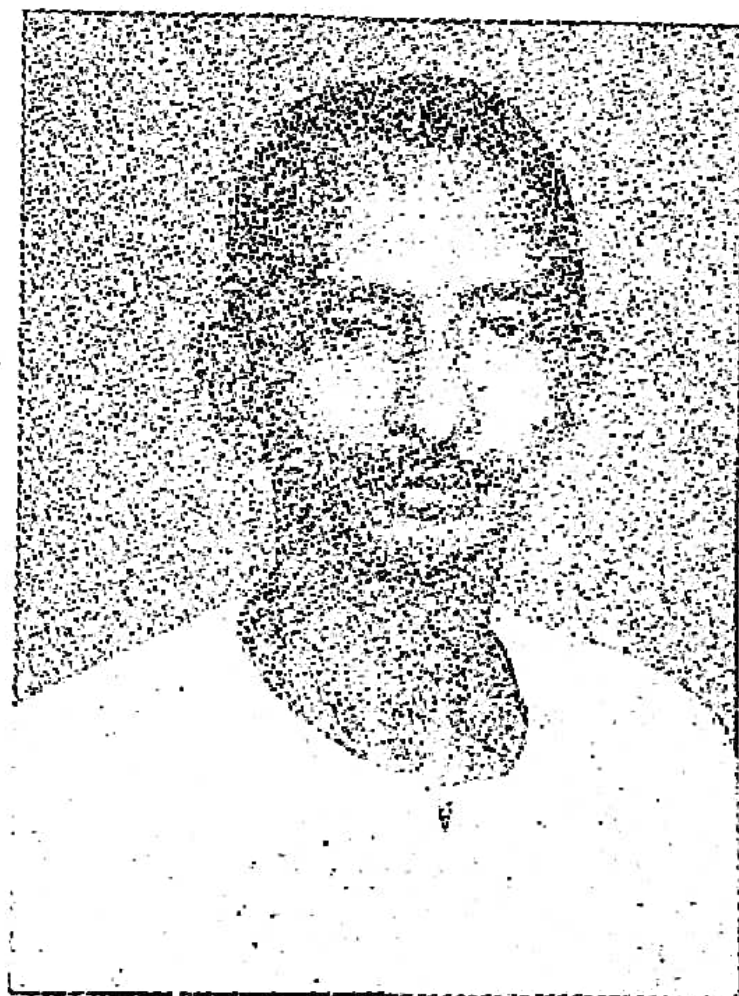
श्री वटुकृष्ण वर्मनजी

अपितु अच्छे वक्ता भी हैं। पेशे से आप वकालत करते हैं। इसलिए भी वक्तृत्व कला आपकी प्रसंशनीय है। श्री वर्मनजी बहुत दिनों तक आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल के मन्त्री रहे हैं। कई वर्षों तक कार्यकारी प्रधान रहे हैं और आजकल आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल के प्रधान हैं। अब से ४५-४६ वर्ष पूर्व श्री वर्मनजी का युवा शरीर, यौवन की उमंग और सत्याग्रह का नेतृत्व सब कुछ अपने में स्मरणीय हो गया है।

श्री वटुकृष्णजी वर्मन और उनके साथी जत्थे के ७० सत्याग्रहियों का विदाई-समारोह २ मई को कलकत्ता आर्यसमाज मन्दिर में किया गया। लोगों में इतना उत्साह था कि आर्यसमाज के कार्यकर्ता खिदिरपुर और खड़गपुर से कई लोग कलकत्ता के अन्य अंचलों से भी इस जत्थे के साथ खुर्दा रोड तक गये। यह बंगाल का सबसे बड़ा जत्था था। बंगाल से कुल सात जत्थे गये थे। श्री वर्मनजी ने इनका वर्णन निम्न प्रकार से बताया है—

(१) प्रथम जत्था आर्यसमाज खिदिरपुर के प्रसिद्ध कार्यकर्ता सभापति रायजी के नेतृत्व में गया था। यह फरवरी, सन् १९३९ ई० को गया था। इसमें २१ सत्याग्रही थे।

(२) सत्याग्रहियों का दूसरा जत्था मार्च सन् १९३९ ई० में गया था। इसमें ६ सत्याग्रही थे। और इसका नेतृत्व एक संन्यासी ने किया था।

(३) तीसरा तत्था अप्रैल सन् १९३९ ई० में गया था। इसमें ११ सत्याग्रही थे। इसका भी नेतृत्व एक संन्यासी महोदय ने किया था।

(४) चौथा जत्था २ मई सन् १९३९ ई० को गया था। इसमें ७० सत्याग्रही गये थे और नेतृत्व श्री वटुकृष्णजी वर्मन ने किया था।

(५) पाँचवाँ जत्था मई सन् १९३९ ई० में गया था। इसमें ११ सत्याग्रही थे और इसका नेतृत्व एक संन्यासी ने किया था।

(६) छठा जत्था जून के आरम्भ में १९३९ ई० में गया था। इसमें ३५ सत्याग्रही थे और इसका नेतृत्व श्री सुनीलकुमार रायचौधरी ने किया था।

(७) सातवाँ जत्था जून सन् १९३९ ई० के अन्तिम दिनों में गया था। इसमें ११ सत्याग्रही थे और इसका नेतृत्व श्री सतीशचन्द्र चटर्जी ने किया था।

कुछ सत्याग्रहियों के नाम श्री वटुकृष्णजी वर्मनने निम्न प्रकार से बताये हैं—

श्री देशराजजी चोपड़ा, श्री सीतारामजी शिरवाजी, श्री कृष्णदत्त दीक्षित, श्री सृष्टिधर दास, श्री वैजनाथ साह, श्री सुदर्शन कुइती, श्री तीनकुड़ी कुइती, श्री वंकिमचन्द्र वेरा, श्री गोष्ठविहारी सरकार, श्री रामपद दोलाई, श्री पशुपति गुरवाईत, श्री सुनील कुमार, श्री रासविहारी बसु, श्री हरिपद समूकार और श्री रंगलाल दास।

ये सभी सत्याग्रही समझौता हो जाने के बाद २१ अगस्त सन् १९३९ ई० को मुक्त कर दिये गये।

आर्यसमाज का एक और आठवां जत्था आसनसोल के श्री पूर्णचन्द्रजी आर्य के नेतृत्व में हैदराबाद गया था। आर्यसमाज आसनसोल ने अच्छी धनराशि भी सत्याग्रह के लिए एकत्र की थी।

बंगाल में सत्याग्रह के संगठन का भार आर्यसमाज कलकत्ता के प्रसिद्ध नेता एवं कार्यकर्ता श्री हरगोविन्दजी गुप्त पर था। श्री हरगोविन्दजी गुप्त उन दिनों आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल के मन्त्री थे। आर्यसमाज कलकत्ता के ही वरिष्ठ सदस्य और विद्वान् श्री पं० अवधविहारी लालजी ने सत्याग्रह के संचालन में अच्छा योगदान दिया था। पं० अवधविहारी लालजी लिखने-बोलने में पर्याप्त निपुण थे। कहा जाता है कि जब श्री जवाहरलालजी नेहरू ने हैदराबाद सत्याग्रह को अपने एक भाषण में अनावश्यक और असामयिक बताया, तब श्री पं० अवधविहारी लालजी ने नेहरूजी के इस भाषण की आलोचना में एक युक्तिपूर्ण लेख लिखा। उन्होंने अपनी युक्तियों से समन्वित एक पत्र भी नेहरूजी को लिखा। नेहरूजी ने पण्डितजी के पत्र के प्रभाव को स्वीकार किया और फिर उन्होंने अपना विचार भी बदल दिया। पीछे फिर नेहरूजी ने हैदराबाद सत्याग्रह को स्वेच्छाचारी राजाओं की आँखें खोल देने वाला बताया। पं० अवधविहारी लालजी ने लिख-बोल कर सत्याग्रह के कार्य को काफी सहारा दिया था। उनके छोटे भाई

श्रीनलिन बिहारीजी थे, आयु छोटी थी, पर हैदराबाद सत्याग्रह में उन्होंने बड़ा प्रशंसनीय कार्य किया था। पं० अवधविहारी लालजी की संगठनात्मक योग्यता और विद्वत्ता से प्रभावित हो कर हैदराबाद के प्रसिद्ध नेता श्री विनायक राव, बार-एट-लॉ ने इन्हें सत्याग्रह की सफलता के बाद हैदराबाद बुलाया था और हैदराबाद को सम्भालने में पं० अवधविहारी लालजी का प्रशंसनीय योगदान था।

आर्यसमाज कलकत्ता के एक बड़े पुराने सदस्य श्री मेवालालजी आर्य भी हैदराबाद के सत्याग्रहियों में थे। श्री मेवालालजी की जन्मभूमि उत्तर प्रदेश में आजमगढ़ जिले में है और उन्होंने वहीं से सत्याग्रह किया था। पिछले तीस-चालीस वर्षों से श्री मेवालालजी आर्यसमाज कलकत्ता के प्रतिष्ठित सदस्य हैं। अपने व्यावसायिक कार्य के कारण स्थायी रूप से कलकत्ता में ही रहते हैं।
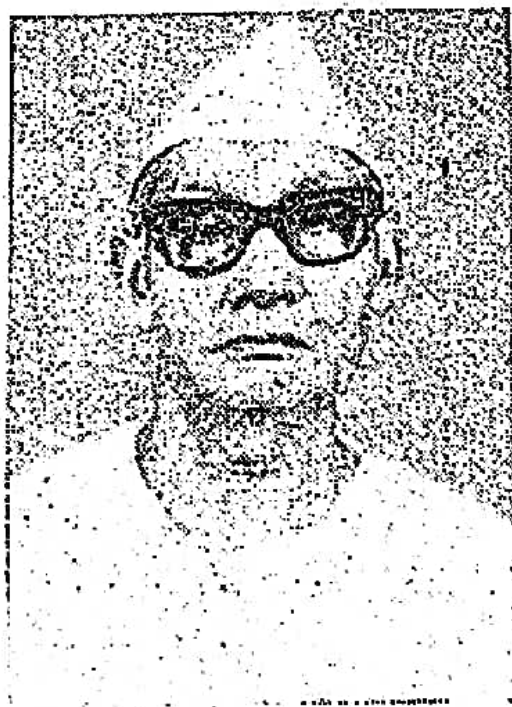
श्री मेवालालजी आर्य

आर्यसमाज कलकत्ता के एक और सम्माननीय सदस्य एवं अधिकारी श्रीरामजी खट्टर भी हैदराबाद सत्याग्रह में सम्मिलित हुए थे। श्री खट्टरजी उन दिनों पञ्जाब में थे और वहीं से वे सत्याग्रह करके जेल गये थे। देश का विभाजन हो जाने पर श्री श्रीरामजी खट्टर कलकत्ता आये। यहाँ अपना व्यवसाय भी आरम्भ किया। श्री श्रीरामजी खट्टर आर्यसमाज कलकत्ता के सम्मान्य अधिकारी थे। आजकल आप व्यवसाय के सिलसिले से मद्रास में हैं और वहीं आर्यसमाज के संगठन की सेवा कर रहे हैं।

आर्यसमाज कलकत्ता मूल रूप से व्यवसायी-वहुल समाज है। यह समाज सजग और सभी समस्याओं पर सावधान रहता है। हर प्रकार के आर्थिक, बौद्धिक और संगठनात्मक सहयोग में आर्यसमाज कलकत्ता आगे ही रहता है। हैदराबाद सत्याग्रह का संचालन, संगठन, इतनी दूर से सत्याग्रहियों को भेजना, आर्थिक व्यवस्था, स्थानीय स्तर
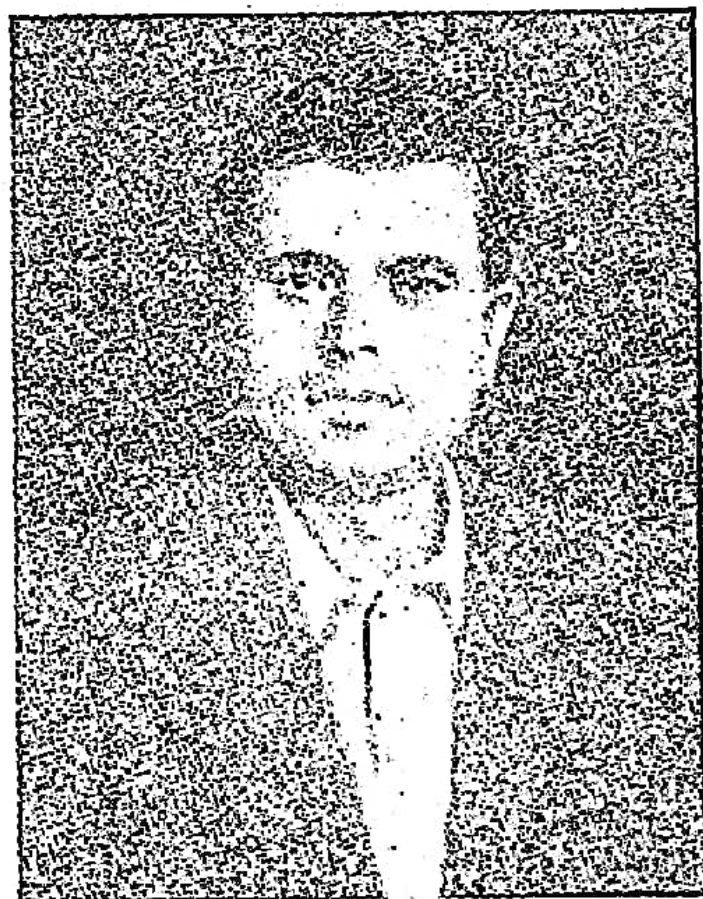
श्री श्रीरामजी खट्टर

पर संगठन को सफलता की ओर बढ़ाना, इन सभी कार्यों में आर्यसमाज कलकत्ता सम्पूर्ण रूप से हैदराबाद सत्याग्रह के योगदान में तत्पर था। आर्यसमाज कलकत्ता के अग्रगण्य नेता कार्यकर्ता श्री हरगोविन्दजी गुप्त, श्री वटुकृष्णजी वर्मन, श्री अवधबिहारी लालजी इत्यादि वंगाल में सत्याग्रह के केन्द्र बने हुए थे।

पंजाब का हिन्दी सत्याग्रह

सन् १९५७ ई० में सार्वदेशिक स्तर पर आर्यसमाज को एक अन्य कठोर एवं दुःखद निर्णय लेना पड़ा था। यह निर्णय था अपने ही

साथियों, नेताओं और सहयोगियों के विरुद्ध पंजाब में हिन्दी सत्याग्रह का आन्दोलन करना।

पंजाब आर्यसमाज का गढ़ कहा जाता था। आर्यसमाज, जैसा सम्पन्न, प्रभावशाली, समर्थ संगठन पंजाब में प्रमाणित हुआ, वैसा अन्य प्रान्तों में नहीं हो पाया। स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा हंसराज, पं० गुरुदत्त, महाशय कृष्ण, महात्मा आनन्द स्वामी जैसे लोगों का नेतृत्व पंजाब को मिला था तो पं० भगवद्दत्तजी बी० ए०, पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार, पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु, स्वामी स्वतन्त्रतानन्दजी, स्वामी वेदानन्दजी जैसे विद्वानों की कार्यस्थली भी पंजाब ही थी। पंजाब में आर्यसमाज के संगठन का जाल बिछ गया था। डी० ए० वी० सोसाइटी के नेतृत्व में कालेजों, स्कूलों और कन्या पाठशालाओं का भी जाल ही तन उठा था। सरकार से भी अधिक शिक्षण संस्थाएँ चलाने का श्रेय आर्यसमाज जैसी धार्मिक, समाजसेवी संगठन को ही रहा है। ये कालेज और स्कूल गवर्नमेन्ट स्कूलों से भी अधिक प्रतिष्ठित और सम्माननीय थे। इस प्रकार विभाजन से पूर्व पंजाब में आर्यसमाज की शक्ति सामाजिक संगठन में, धार्मिक क्षेत्र में, शिक्षा के क्षेत्र में अद्वितीय और अनुपम थी। देश का विभाजन क्या हुआ, आर्यसमाज का तो जैसे शिर ही कट गया। आर्यसमाज का जो संगठन और ऐश्वर्य विभाजन के कारण नष्ट हो गया वह तो लौटता नहीं लगता किन्तु फिर भी पश्चिमी पंजाब से निकले हिन्दू आर्य-समाजी पूर्वी पंजाब, दिल्ली और आसपास के क्षेत्रों में अधिकता से बस गये। स्वाभाविक था, विभाजन की मार खाये हुए लोगों में हिन्दू, हिन्दी और हिन्दुस्तान का नशा कुछ अधिक ही था। यह कांग्रेस की मुस्लिम तुष्टीकरण नीति से मेल भी कम खाता था। अतः पंजाब में कांग्रेस का राजनीतिक भविष्य अधिक आशाव्यञ्जक न था। जवाहर-लालजी इस बात को समझते थे और इस शक्ति को निर्बल करने में उन्हें कांग्रेस का सामयिक स्वार्थ दिखायी पड़ता था।

आर्यसमाज हिन्दुओं का सर्वाधिक प्रभावशाली संगठन था और परम हिन्दीभक्त था। आर्यसमाजियों ने पंजाब में उस समय प्रचलित उर्दू और फारसी का इस्लामी प्रभाव देखा था। इधर स्वामी दयानन्दजीकी शिक्षा का एक अंश यह भी था कि आर्य भाषा अर्थात् हिन्दी ही सारे राष्ट्र ही भाषा होनी चाहिए। पंजाब के आर्यसमाजियों ने हिन्दी का पढ़ना-पढ़ाना उसी धार्मिक कट्टरता के साथ स्वीकार कर लिया। डी० ए० वी० स्कूलों और गुरुकुलों का जाल तो फैला ही हुआ था, हिन्दी भाषा की शिक्षा बड़े व्यापक स्तर पर होने लगी। इस हिन्दी-प्रचार के पीछे उर्दू का त्याग, इस्लामी संस्कृति के प्रभाव से बचाव और हिन्दी-प्रचार के पीछे भारतीय सभ्यता, संस्कृति और इतिहास का प्रभाव सम्मिलित था। इस हिन्दी प्रचार में न सिखों से विरोध था, न गुरुमुखी या पंजाबी भाषा से विरोध था। वस्तुतः उस समय पंजाबी केवल एक बोली मात्र थी। साहित्यिक भाषा तो थी ही नहीं। सिखों ने साम्प्रदायिक कट्टरता के कारण न केवल आर्यसमाज का ही विरोध किया अपितु हिन्दी का भी विरोध किया। किन्तु बहुसंख्यक छात्र हिन्दी ही पढ़ते थे और हिन्दी माध्यम से पढ़ते थे। सिख प्रतिशतक की गणना में भी कम थे और पंजाबी माध्यम से पढ़ने वाले विद्यार्थी, स्वाभाविक था, बहुत कम थे। एक रिपोर्ट के अनुसार सन् १६४६ ई० में मैट्रिक की परीक्षा में बारह हजार से अधिक हिन्दू विद्यार्थी थे और हिन्दी माध्यम से परीक्षा दे रहे थे और सिख विद्यार्थी चार हजार से भी कम थे जो पंजाबी माध्यम से परीक्षा दे रहे थे। पंजाब में हिन्दी का बोलबाला था और यह होना स्वाभाविक भी था।

पंजाब में भूषण दूषण बन गया :

यूं तो सारे देश ने जहां-जहां भी हिन्दी को अपनाया, अपनी मातृभाषा को त्याग कर ही अपनाया। हिन्दी कहीं की मातृभाषा थी ही

नहीं। अवधी, ब्रजभाषा, मैथिली जैसी साहित्यिक भाषाएँ, जिनमें महा काव्य भी रचे गये थे, हमारे देश में वर्तमान थीं। किन्तु देश की एकता को ध्यान में रखकर मिथला वालों ने मैथिली छोड़ी, अवध वालों ने अवधी छोड़ी और सबने हिन्दी को अपना लिया। यही बात हरियाणा, राजस्थान, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश इत्यादि सब प्रान्तों ने की। सर्वत्र राष्ट्रीय एकता की बलिवेदी पर लोगों ने हिन्दी के समर्थन में अपनी मातृभाषाओं का बलिदान कर दिया, त्याग कर दिया। पंजाब के हिन्दुओं ने भी वही कुछ किया जो सारा देश कर रहा था। पंजाबी तो भाषा थी भी नहीं, मात्र एक बोली थी जिसमें कोई साहित्य था ही नहीं। यहाँ तक कि गुरुग्रन्थ साहब में भी खड़ी बोली, ब्रजभाषा, अवधी इत्यादि प्रान्तीय भाषाओं का मिश्रण है। पंजाबी में तो वह भी नहीं है, किन्तु सिखों, विशेषकर अकालियों की साम्प्रदायिक और राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा ने महा अनिष्टकारी साम्प्रदायिक स्वरूप पकड़ लिया। पंजाब में रिजनल फार्मूला चालू हुआ। हम यहाँ इस विवाद के ऐतिहासिक पक्ष को अधिक नहीं लिखना चाहते, हमारे लिए इतना ही पर्याप्त है कि पंजाब के बहुसंख्यक लोग हिन्दी को अपना बना कर चल रहे थे और अकालियों को सन्तुष्ट करने के लिए सरकार ने हिन्दी के पढ़ने-पढ़ाने पर अंकुश लगाकर पंजाबी भाषा और गुरुमुखी लिपि को सहारा दिया। सन् १९५६ ई० में यह रिजनल फार्मूला बना जिसके अनुसार पंजाबी रीजन की पंजाबी भाषा और गुरुमुखी लिपि होगी। यह आर्यसमाज जैसे हिन्दीभक्तों के लिए बड़ा भारी चैलेञ्ज था। कांग्रेस तो मुस्लिम तुष्टीकरण पर चल ही रही थी, उसने अकाली तुष्टीकरण और पकड़ लिया, किन्तु आर्यसमाज तथा हिन्दू और हिन्दी-भक्तों ने इसे बड़ा भारी चैलेञ्ज माना, और हिन्दी-रक्षा-सत्याग्रह अंगड़ाई लेने लगा।

पंजाब के पत्र उर्दू के या हिन्दी के प्रायः सभी आर्यसमाज के हाथ में थे। महाशय कृष्ण, महाशय खुशहाल चन्द, लाला जगतनारायण

इत्यादि वरिष्ठ पत्रकार आर्यसमाजी थे और सभी ने सरकार की नीति का ऐसा भण्डाफोड़ किया था कि सारी जनता हिन्दी के पक्ष में हो गयी।

सन् १९५७ ई० में हिन्दी-रक्षा-आन्दोलन रिजनल फार्मूले के विरुद्ध शुरू हो गया। हिन्दी-रक्षा-आन्दोलन का संचालन सुप्रसिद्ध विद्वान् आर्यसंन्यासी स्वामी आत्मानन्द सरस्वती कर रहे थे। स्वामी आत्मानन्दजी ने रिजनल फार्मूले पर सीधा अक्रमण किया और वक्तव्य दे दिया कि—रिजनल फार्मूले का अर्थ है पंजाब को सिखिस्तान बनाना और सिखिस्तान का अर्थ है खालिस्तान। अतः सीमाप्रान्त होने के कारण इस षड्यन्त्र को पंजाब में सफल नहीं होने दिया जायगा।

हिन्दी-रक्षा-आन्दोलन अपनी सरकार के विरुद्ध था और सारे आर्यसमाज ने, बल्कि सारे देश ने, संगठिन होकर यह लड़ाई लड़ी। सत्याग्रह में सरकार ने बड़ी निष्ठुरता और कठोरता दिखायी थी। किन्तु अन्त में उसे जनमत के सामने झुकना ही पड़ा और पंजाबी रीजन में हिन्दी पर लगा हुआ प्रतिबन्ध उठा लिया गया।

इस हिन्दी-रक्षा-सत्याग्रह में भी बंगाल के आर्यसमाजियों ने बड़ा अच्छा योगदान किया था। आर्यसमाज कलकत्ता अपनी संगठनात्मक स्थिति के कारण सभी कार्यों का केन्द्र बन ही जाता है। हिन्दी-रक्षा-आन्दोलन में बंगाल से लगभग १०० सत्याग्रहियों ने भाग लिया था। कलकत्ता में सभाएँ, लेख-व्याख्यान नित्यप्रति होने लगे। श्री मिहिरचन्दजी धीमान, श्री जगदीशचन्दजी हिमकर, प्रतिनिधि सभा के मन्त्री श्री शरच्चन्द सिद्धान्तविशारद, श्री मुरारी मोहन मन्ना, श्री वटुकृष्णजी वर्मन आदि यहाँ प्रचार को नेतृत्व देने लगे। आर्यसमाज कलकत्ता, आर्यसमाज बड़ाबाजार, अपने अञ्चलों में नित्य ही कोई न कोई सभा करने लगे। बड़ाबाजार, तूलापट्टी, बड़ाबाजार के कटरों में, ठनठनियाँ आदि स्थानों में नित्य ही कहीं न कहीं सभाएँ होने लगीं।

पत्रों में लेख निकलने लगे। इस संगठनात्मक कार्य में आर्यसमाज कलकत्ता के महाशय रघुनन्दनलालजी, श्री ए० आर० भरद्वाज, श्री कृष्णलालजी खट्टर, पं० उमाकान्तजी उपाध्याय, बड़ाबाजार आर्यसमाज के श्री सीतारामजी आर्य, श्री लालमनजी आर्य इत्यादि सभी समर्थ कार्यकर्ता रातों-दिन इस कार्य में लग गये थे। बंगाल से जो जत्थे गये थे उनका विवरण श्री वटुकृष्णजी बर्मन की सूचना के अनुसार निम्नप्रकार है—

(१) प्रथम जत्था आर्यसमाज कलकत्ता से श्री जगदीशचन्द्रजी हिमकर के नेतृत्व में गया। इसमें २१ सत्याग्रही थे।

(२) दूसरा जत्था आर्यसमाज बड़ाबाजार से गया था। इसका नेतृत्व श्री उमेशचन्द्र घोरई ने किया था। इस जत्थे की विदाई आर्यसमाज बड़ाबजार से की गयी थी। इसमें ३५ सत्याग्रही थे।

(३) तीसरा जत्था २१ सत्याग्रहियों का आर्यसमाज हावड़ा से विदा किया गया था।

(४) चौथा जत्था २० सत्याग्रहियों का था और इसका विदाई-समारोह आर्यसमाज मल्लिकबाजार से किया गया था।

(५) पाँचवाँ जत्था १० सत्याग्रहियों का था और इनकी विदाई आर्यसमाज भवानीपुर से हुई थी।

(६) छठा जत्था ७० सत्याग्रहियों का आर्यसमाज कलकत्ता में विदाई-समारोह करके २५ दिसम्बर सन् १९५७ ई० को जाने के लिए तैयार हो रहा था। इसका नेतृत्व मिदनापुर के श्री मुरारी मोहन करने वाले थे। इस समय आर्यसमाज कलकत्ता का वार्षिकोत्सव भी हो रहा था और यह बंगाल का सबसे बड़ा सत्याग्रही जत्था बन रहा था। बड़े उत्साह से इस जत्थे को विदा करने की तैयारी हो रही थी। इसी समय

> दिल्ली सार्वदेशिक सभा से श्री घनश्याम सिंहजी गुप्त और श्री प्रकाशवीर शास्त्री के कलकत्ता आने का टेलीग्राम आ गया। ये दोनों नेता कलकत्ता पहुँचे। लगभग एक लाख रुपये तो आगे ही एकत्र करके हिन्दी-रक्षा-सत्याग्रह में कलकत्ता से भेजे जा चुके थे। अब इनके आने पर इन्हें ११ हजार की थैली भेंट की गयी और उन्होंने नया जत्था न भेजने का परामर्श दिया। इन सत्याग्रहियों में श्री मुरारी मोहन मन्ना, श्री जगदीशचन्द्र हिमकर, श्री उमेशचन्द्र घोरई, श्री शरच्चन्द्र सिद्धान्तविशारद, श्री लक्ष्मणचन्द्र वेरा आदि ने अच्छा सहयोग किया था।

इस सारे संगठन में सत्याग्रहियों को एकत्र करना और सत्याग्रह को संचालित करते रहने का श्रेय तात्कालिक प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री मिहिरचन्दजी धीमान एवं प्रतिनिधि सभा के मन्त्री श्री वटुकृष्णजी वर्मन को है।

श्री मिहिरचन्द धीमान के प्रभाव से श्री घनश्यामसिंह गुप्त और प्रकाशवीर शास्त्री को कलकत्ता बुलाया गया। यहाँ प्रेस कान्फ्रेन्स की गयी थी और इस कान्फ्रेन्स ने कलकत्ता के बुद्धिजीवी अञ्चल और बंग भाषियों के मन-मस्तिष्क में हिन्दी-रक्षा-आन्दोलन के औचित्य को भली प्रकार बैठा दिया।

आर्यसमाज कलकत्ता ने इस हिन्दी-रक्षा-आन्दोलन में धन की भी अच्छी सहायता की थी। आर्यसमाज कलकत्ता ने ६००० रुपयों के शेयर की राशि एक मुश्त ही दे दी थी। उस समय कलकत्ता के आर्यसमाजियों ने लगभग एक लाख रुपये एकत्र करके दिये थे।

हिन्दी आन्दोलन सफलता से सम्पन्न हुआ। बंगाल और आर्यसमाज कलकत्ता ने अपने अंश को बड़े उत्साह के साथ पूर्ण किया।

उस समय का उत्साह मधुर स्मृति है। जैसे-जैसे सरकार की निष्ठुरता के समाचार मिल रहे थे, वैसे-वैसे लोगों के जोश उबल रहे थे। "आप चलें, हम आते हैं" एक आम नारा था। अपने ही देश की सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह था। किन्तु लोगों का हिन्दी प्रेम स्पृहणीय था। हिन्दी दैनिक पत्र—सन्मार्ग और विश्वमित्र ने, सन्मार्ग के के सम्पादक श्री सूर्यनाथ पाण्डेय ने, बंगला के पत्रों और पत्रकारों ने प्रशंसनीय योगदान किया था।

पञ्चदश अध्याय

बिड़ला परिवार की सहायता

धनी, सम्पन्न, सेठ, साहूकार, व्यवसायी, कारवारी तो संसार में वहुत हुए हैं, वहुत होंगे भी। भारतवर्ष में ही धनी-श्रीमानों की कौन-सी कमी है, किन्तु विड़ला परिवार की एक वड़ी विचित्र बात यह रही है कि वे श्रीमान् हैं, धनवान् हैं तो देश, जाति, धर्म के लिए उनका कोप खुला रहता है। यों तो समस्त विड़ला परिवार ही अपनी दानशीलता और धार्मिक उदारता के लिए प्रसिद्ध है, किन्तु धार्मिक जगत् में श्री जुगलकिशोरजी विड़ला और व्यवसाय एवं राजनीति के क्षेत्र में श्री घनश्यामदासजी विड़ला अपने-अपने ढंग से अद्वितीय ही हुए हैं। श्री बिड़लाजी ने सारे देश में और प्रत्येक अवसर पर अपनी अद्भुत सेवा-सहायता प्रस्तुत की है। यहाँ हम आर्यसमाज कलकत्ता के इतिहास से विशेषरूप से सम्बन्धित हैं। श्री जुगलकिशोरजी विड़ला जहाँ कहीं भी धर्म और हिन्दुत्व की पुकार होती थी वहीं अपनी श्रद्धा-भक्ति से उपस्थित हो जाते थे। आर्यसमाज कलकत्ता की गतिविधियों से श्री जुगलकिशोरजी को विशेषरूप से परिचित कराते रहने का उत्तरदायित्व सेठ किशनलालजी पोद्दार ने अपनी इच्छा से ही अपने ऊपर लिया हुआ था।

आर्यसमाज ने कन्या विद्यालय चलाकर एक क्रान्तिकारी कार्य आरम्भ किया था। उस युग में लड़कियों का पढ़ाना पाप समझा

जाता था। लोग खुल्लम-खुल्ला स्त्री-शिक्षा के विरुद्ध लिखते-बोलते थे और इन पुत्री पाठशालाओं, कन्याविद्यालयों के लिए आर्यसमाज की भर्त्सना ही करते थे। किन्तु बिड़लाजी का विचार धर्म, शिक्षा आदि के सम्बन्ध बड़ा उदार था। उन्होंने इन सारे कार्यों में खुलकर आर्यसमाज की सहायता की थी। कन्या विद्यालय की स्थापना

सेठ श्री जुगलकिशोरजी बिड़ला

सन् १९०२ ई० में नाईटोला में की गयी थी। सन् १९०९ ई० में कन्या विद्यालय के अपने भवन का प्रयास आरम्भ हुआ तो सेठ श्री जुगलकिशोरजी बिड़ला ने २५,००० रुपये कन्या विद्यालय के भवन के निमित्त दान किया। और कई सज्जनों ने भी दान दिया। इस धन से आर्यसमाज मन्दिर के बगल में जो आज २० नम्बर, विधान सरणी पर विशाल भवन खड़ा है, उस भूमि को खरीदा गया।[1]

१. कन्या विद्यालय सम्बन्धी विस्तृत विवरण देखें—अध्याय ४ पृ० ५५-६३

समय के साथ कन्या विद्यालय का वह भवन छोटा पड़ गया और उसके निमित्त एक विशाल कन्या विद्यालय भवन का संकल्प अधिकारियों के मन में उदय हुआ। सेठ किशनलालजी पोद्दार ने इस प्रसंग को सेठ श्री जुगलकिशोरजी बिड़ला के सन्मुख प्रस्तुत किया और आर्य कन्या विद्यालय के एक विशाल भवन की कल्पना साकार रूप लेने लगी। सेठ किशनलालजी ने बताया है कि सेठ श्री जुगलकिशोरजी बिड़ला अपने आफिस से आते-जाते समय इस भवन को देखने के लिए प्रायः आ जाते थे और बांस की सीढ़ियों पर चढ़कर स्वयं निर्माणकार्य का निरीक्षण करते थे। एक दिन बनते हुए मकान की छत पर से उतरने पर श्री जुगलकिशोरजी के मन में क्या भाव उदय हुए कि उन्होंने श्री किशनलालजी पोद्दार को यह सलाह दी कि वे इस भवन का हिसाब अलग से रख लें। पीछे ७५,००० रुपये और देकर इस भवन को रानी बिड़ला भवन के नाम से बनवा कर श्री जुगलकिशोरजी बिड़ला ने आर्य कन्या विद्यालय के लिए इतने बड़े स्थान की व्यवस्था कर दी। यह उनका कन्याओं की शिक्षा के प्रति उदार दृष्टिकोण था, उनकी दानशीलता थी और आर्यसमाज के प्रति सहयोग का भाव था।

श्री बिड़लाजी निष्ठावान् सनातनधर्मी वैश्य सेठ थे। आर्यसमाज सुधारवादी आन्दोलन था। फिर भी श्री जुगलकिशोरजी ने आर्यसमाज और उसके मिशन को बड़ी आत्मीयता से अपनाया था और सदा उसका सहयोग किया करते थे। जब हैदराबाद का प्रसिद्ध सत्याग्रह आर्यसमाज ने छेड़ा था, उस समय श्री बिड़लाजी ने आर्य हिन्दूधर्म सेवासंघ स्थापित किया था। पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्तिभूषण के संस्मरणों के अनुसार यह संगठन मूलरूप से हैदराबाद सत्याग्रह को बल देने के लिए आरम्भ हुआ था। पीछे जब हैदराबाद का सत्याग्रह समाप्त हो गया तो बिड़लाजी ने इस संगठन को सामान्यरूप से आर्य हिन्दु-धर्म-सेवा के कार्य में नियुक्त कर दिया।

श्री बिड़लाजी में परम धार्मिक उदारता थी, पर साथ ही वे भारत, भारतीयता और हिन्दुत्व के कट्टर भक्त थे। यथाशक्ति इन कार्यों में सहयोग दिया करते थे। श्री बिड़ला जी कलकत्ता में आर्यसमाज और आर्य प्रतिनिधि सभा को भी सहायता पहुँचाया करते थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के समाप्त होते-होते देश में एक ओर राजनीति का चक्र उग्र हो उठा था तो दूसरी ओर साम्प्रदायिकता का चक्र भी बड़ी तीव्रता से उग्रता धारण कर रहा था। यह साम्प्रदायिकता जहाँ भारत और भारतीयता के लिए अनिष्टकर थी, वहीं इससे हिन्दु और हिन्दुत्व को भी बड़ा भय उपस्थित हो गया था। श्री बिड़लाजी इस भारत-भारतीयता और हिन्दुत्व के अनिष्ट के भय से चिन्तित थे। श्री पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण के संस्मरणों से यह पता चलता है कि श्री बिड़लाजी ने उस समय के प्रसिद्ध आर्य विद्वान् और मिशनरी प्रचारक श्री पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री को बुलाकर इस सम्बन्ध में उनसे परामर्श किया और धर्म एवं जाति की रक्षा के लिए पं० दीनबन्धुजी के संरक्षण में बंगाल और आसाम में वेदधर्म एवं हिन्दू जातीयता के लिए व्यापक कार्य आरम्भ किया। यह कार्य पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री की देखरेख में हो रहा था और सारी आर्थिक व्यवस्था श्री बिड़लाजी की ओर से हो रही थी।[१] पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री आर्यसमाज कलकत्ता के अभिन्न अंग और मिशनरी उपदेशक थे। इस कार्य के लिए वे आसाम में जा डटे। उस समय पं० प्रियदर्शनजी आर्यसमाज राजशाही, पूर्वी बंगाल में थे। पं० दीनबन्धुजी ने व्यक्तिगत रूप से उन्हें इस सारी व्यवस्था के सम्बन्ध में पत्र लिखा और उससे यह समझ में आता है कि श्री बिड़लाजी के कार्यक्षेत्र का आयाम कितना बहुमुखी और कितना व्यापक था।

आर्यसमाज कलकत्ता के आचार्य पं० अयोध्याप्रसादजी जब विदेश

---

१. द्रष्टव्य—आर्यसमाज की मासिक पत्रिका—आर्यसंसार, वर्ष २१, अंक ७-६ पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री-स्मृति-विशेषांक।

यात्रा पर प्रचारार्थ गये थे, उस समय भी श्री बिड़लाजी ने उदारता पूर्वक सहायता की थी। पं० अयोध्याप्रसाद जी के विदेश गमन और सफलता पूर्ण प्रचार का वर्णन कर चुकने के पश्चात् सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधिसभा के सत्ताईस वर्षीय कार्य-विवरण के पृ० ११८ पर निम्न प्रकार से वर्णन है—

"दानवीर श्री सेठ जुगलकिशोरजी बिड़ला से सहायता—

दानवीर श्री सेठ जुगलकिशोरजी बिड़ला गत तीन वर्षों से ३०० रु० मासिक विदेश प्रचारकार्य के लिए सहायता रूप इस सभा को देते रहे हैं। श्री सेठजी इस सभा को देश तथा विदेश में प्रचारार्थ आर्थिक सहायता समय समय पर आवश्यकतानुसार देते रहते हैं। इस सबके लिए यह सभा उनकी आभारी है।"

श्री जुगलकिशोरजी बिड़ला पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री को भी नियमित रूप से आर्थिक सहायता दिया करते थे।

बिड़ला परिवार और आर्य अतिथिशाला

आर्यसमाज कलकत्ता का भव्य आर्यसमाज मन्दिर, १९, विधान सरणी, जब बना था उस समय इसका कुछ और ही रूप था। मन्दिर के सामने उतनी ही लम्बी थोड़ी-सी खाली ज़मीन पड़ी थी। वह भूमि श्री बिड़ला परिवार की थी। इतनी ज़मीन पर अन्य कोई कार्य तो न हो सकता था, हाँ, आर्यसमाज मन्दिर की छवि अपनी जगह पर कुछ अटपटी-सी हो जाती थी। श्री सेठ किशनलालजी पोद्दार ने बिड़लाजी से निवेदन करके वह ज़मीन आर्यसमाज कलकत्ता को दान में दिलवा दी। जिस दिन वह भूमि आर्यसमाज को दी गयी उस दिन वहाँ एक विशेष यज्ञ हुआ था और उस यज्ञ के यजमान भी श्री बसन्त कुमारजी बिड़ला थे। उस ज़मीन के साथ आर्यसमाज मन्दिर का कुछ

भाग मिलाकर एक नया नक्शा तैयार किया गया जिसमें नीचे भूमितल पर आर्यसमाज कलकत्ता के दातव्य औषधालय और पुस्तकालय की स्थापना हुई और ऊपर एक सुन्दर अतिथिशाला का निर्माण हुआ। श्री बिड़लाजी ने इस अतिथिशाला का सारा आर्थिक व्यय-भार अपने ऊपर ले लिया और वह आर्यसमाज की अतिथिशाला रानी-बिड़ला-आर्य-अतिथिशाला के रूप में तैयार हो गयी।

श्री लक्ष्मीनिवासजी बिड़ला

दूसरे तल्ले पर आर्यसमाज कलकत्ता की छत पर सुवादेवी पोद्दार हॉल और रानी बिड़ला अतिथिशाला की छत पर उसी प्रकार फिर जब अतिथिशाला की बात चली तो उस समय आर्यसमाज की छत पर का हाल स्वर्गीय सेठ बद्री प्रसादजी पोद्दार ने अपनी माताजी की स्मृति में बनवा दिया और सेठ श्री किशनलालजी पोद्दार के परामर्श से श्री लक्ष्मीनिवासजी बिड़ला ने रानी बिड़ला आर्य अतिथिशाला का दूसरा तल्ला आर्यसमाज के लिए बनवा दिया।

श्री राजेन्द्र प्रसादजी पोद्दार द्वारा रघुमल आर्य विद्यालय के छात्रों को पुरस्कार वितरण
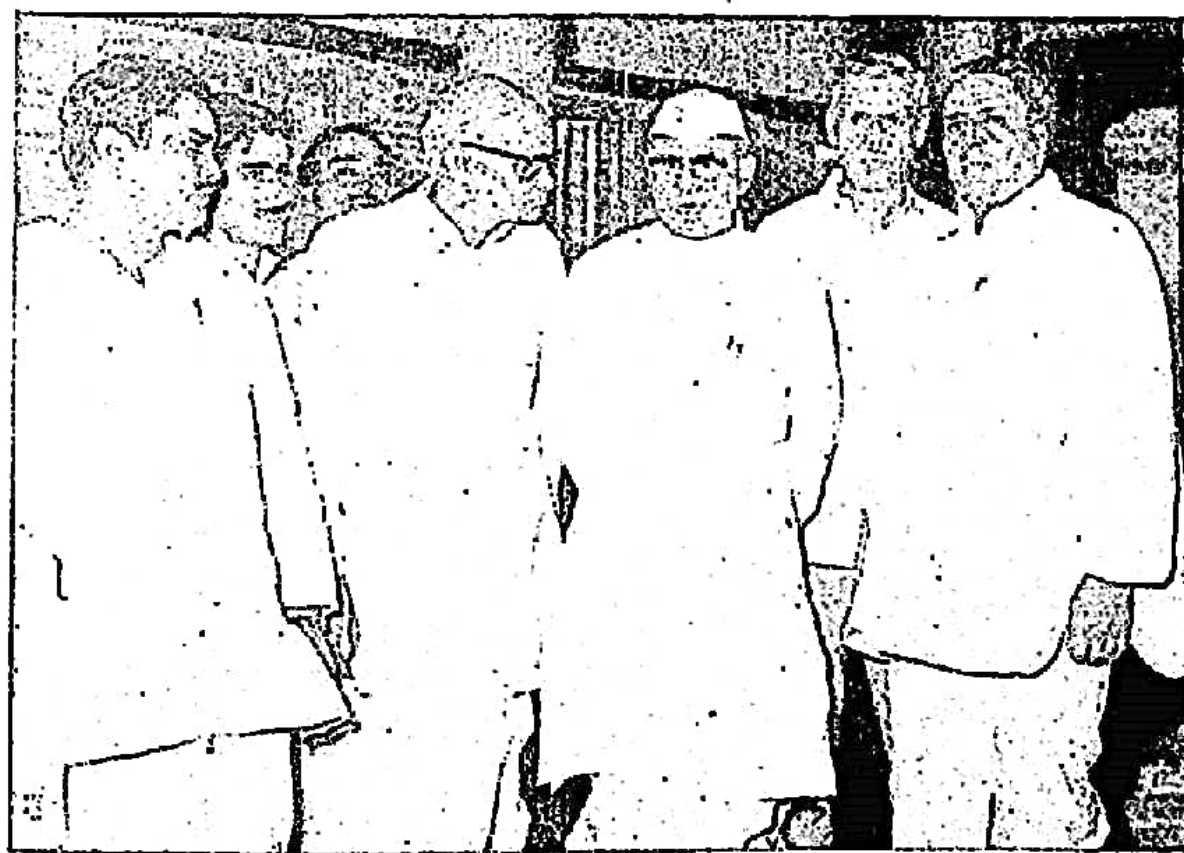
केन्द्रीय शिक्षामन्त्री प्रो० शेरसिंहजी के साथ आर्यसमाज कलकत्ता के कार्यकर्त्तागण
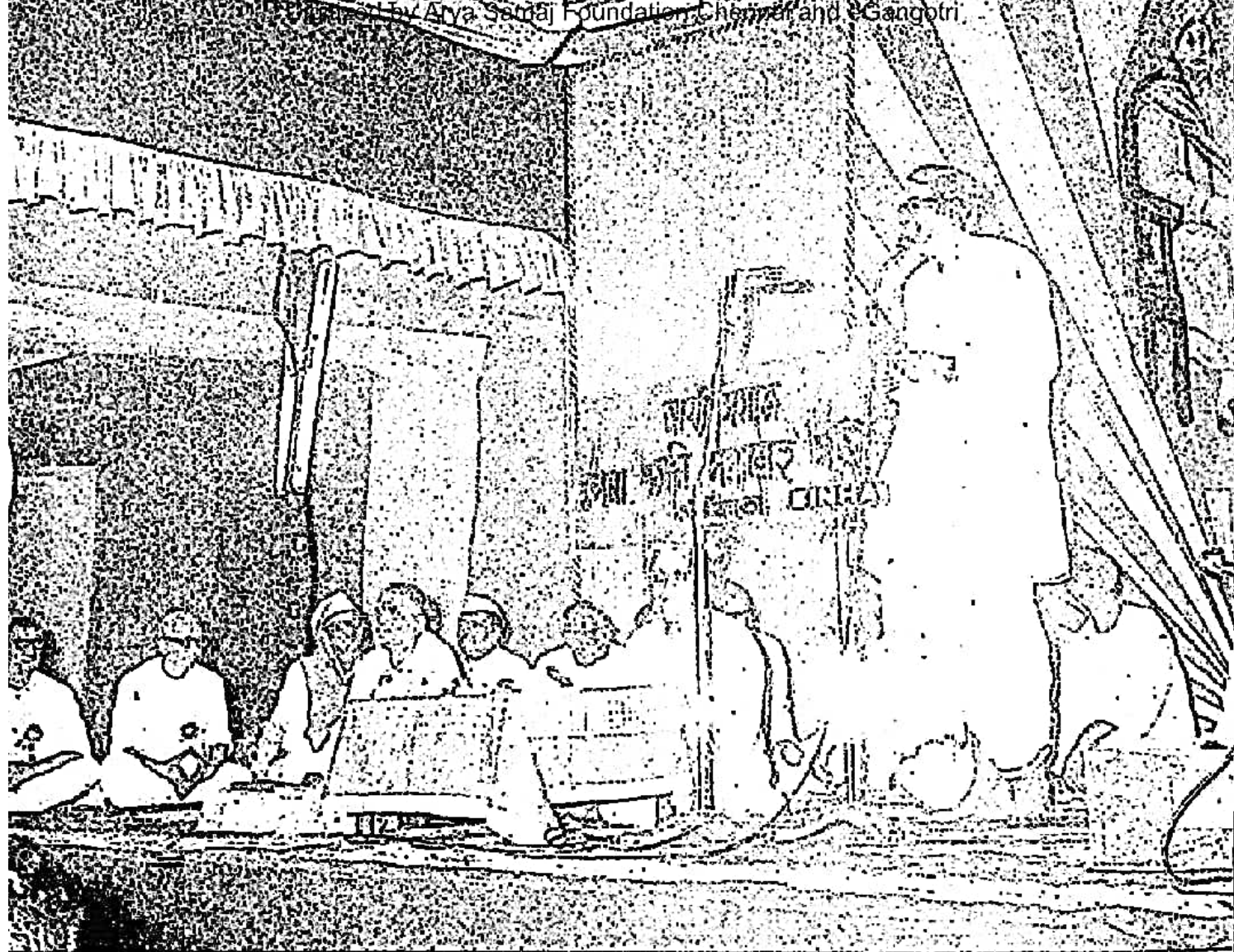
आर्यसमाज स्थापना शताब्दी समारोह में मुख्यमन्त्री श्री सिद्धार्थशंकर राय सम्बोधित करते हुए

मॉरिशस (अफ्रीका) से आये हुए अतिथियों का आर्यसमाज मन्दिर कलकत्ता में स्वागत

कलकत्ता में आर्यसमाज कलकत्ता के साथ विड़ला परिवार का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और इस सम्बन्ध के सूत्रधार रहे हैं पोद्दार परिवार के श्री किशनलालजी पोद्दार। विड़ला-बन्धु और उनके वंशज परिजन आर्यसमाज के कार्यों से सहानुभूति रखते हैं एवं सदा ही आर्यसमाज की सहायता के लिए तत्पर रहते हैं।

षोडश अध्याय

पोद्दार परिवार

आर्यसमाज कलकत्ता के इतिहास में पोद्दार परिवार का अपना एक अनुपम स्थान है। प्रारम्भ से लेकर आज तक इस परिवार का सम्बन्ध आर्यसमाज के साथ बना हुआ है। सक्रिय सहयोग से लेकर आर्थिक सहयोग तक इस परिवार ने सदा बड़े उत्साह से आर्यसमाज का कार्य किया है। ऐसा दीर्घकालिक निरन्तर सहयोग आर्यसमाज कलकत्ता को किसी अन्य परिवार से मिला हो यह हमें ध्यान नहीं आता। पोद्दार परिवार के श्री जयनारायणजी पोद्दार से आरम्भ करके श्री दीपचन्दजी, श्री किशनलाल जी, श्री आनन्दीलालजी, श्री बद्री प्रसाद जी, श्री राजेन्द्र कुमारजी, श्री देवकीनन्दन जी सभी अपने-अपने ढंग से आर्यसमाज के कार्य में लगे हुए हैं। आर्यसमाज कलकत्ता के इतिहास में इस परिवार का एक अपना पृथक् ही अध्याय है।

श्री जयनारायणजी पोद्दार :

श्री जयनारायणजी पोद्दार, पोद्दार परिवार के प्रथम व्यक्ति थे जो कलकत्ता पधारे। श्री जयनारायणजी का जन्म राजस्थान में रामगढ़ में सन् १८५२ ई० में हुआ था। ये सन् १८६८ ई० में कलकत्ता आये। यहाँ ये ताराचन्द घनश्यामदास नामक प्रसिद्ध फर्म के मुनीम बनकर कार्य करने लगे। इतिहास के विभिन्न अंशों को देखने पर यह पता

लगता है कि सन् १९०० ई० में इनके पुत्र श्री रामचन्द्रजी पोद्दार ने अपना कारबार शुरू कर दिया था। हम श्री जयनारायणजी के व्यावसायिक जीवन के सम्बन्ध में यहाँ कुछ न लिखकर उनके आर्य-सामाजिक जीवन से सम्बन्धित पक्ष को ही लेते हैं।

महात्मा कालूरामजी के सम्पर्क में :

श्री जयनारायणजी महात्मा कालूरामजी के सम्पर्क में आये। महात्मा कालूरामजी का नाम था श्री कालूरामजी तिवारी। जाति के ब्राह्मण, सिद्धान्तों में स्वामी दयानन्द के परम भक्त, कठोर आचार-विचार के विश्वासी, निष्ठा में बड़े-बड़े नामधारी सनातनधर्मियों से कहीं बढ़-चढ़ कर, महात्मा कालूरामजी थे। वे रामगढ़ में रहते थे। वे एक सद्गृहस्थ थे। शीघ्र ही उनकी पत्नी दिवंगत हो गयीं और फिर उन्होंने संन्यास ले लिया था। महात्मा कालूरामजी कुछ दिन कलकत्ता में भी रहे थे। किन्तु संन्यासी बनकर उन्होंने अपना स्थायी निवास रामगढ़ को ही बना लिया था। श्री जयनारायणजी पोद्दार इन्हीं महात्मा कालूरामजी के शिष्यों में से एक थे। महात्मा कालूरामजी के जीवन के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि वे मधुर भाषी थे, विलक्षण तार्किक थे, व्यवहारचतुर और नीतिनिपुण थे। उनके सम्पर्क में आकर व्यक्ति उनके आकर्षण से उनका अपना बन जाने के लिए बाधित हो जाता था।

श्री जयनारायणजी सन् १८९८ ई० में जब कलकत्ता आये, उस समय वे निष्ठावान् आर्यसमाजी बन चुके थे। त्याग की भावना भी थी और दान देने का मन भी था। श्री जयनारायणजी की आर्यसमाज के सिद्धान्तों में कट्टरतापूर्वक आस्था थी। उनके परिवार में दैनिक सन्ध्या और अग्निहोत्र तभीसे नियमित रूप से आरम्भ हो गया था। दैनन्दिन आचार-विचार में भी वे बड़े कट्टर थे। संस्कारों के प्रति कट्टरता उसी समय से आरम्भ हो गयी थी। पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म आदि संस्कारों को भी कट्टरता के साथ किया जाता रहा है।

श्री जयनारायणजी का आर्यसमाज के प्रति सहयोग एक सर्वविदित बात थी। मारवाड़ी वैश्य अपनी सनातनधर्मी कट्टरता के लिये प्रसिद्ध हैं। उनमें श्री जयनारायणजी जैसा प्रभावशाली व्यक्ति आर्यसमाजी बन जाय और वह भी कट्टर, निष्ठावान, संस्कारप्रिय, दानशील, प्रचार कर्मों में अग्रसर रहने वाला; तो इन सबका एक स्वाभाविक पक्ष था

श्री जयनारायणजी पोद्दार

कि मारवाड़ी समाज में मौन रूप से छिपे-छिपे कई लोग उनसे डाह करने लगे थे। श्री जयनारायणजी की आर्यसामाजिक निष्ठा का पता केवल आर्यसमाज के स्रोतों से नहीं मिलता बल्कि आर्यसमाज से बाहर भी उनका आर्यसमाज के प्रति सहयोग पर्याप्त चर्चा का विषय रहा है। अग्रवाल जाति के इतिहास से एक उद्धरण हमारी बात को अधिक सुस्पष्ट कर देता है।[१]

१. श्री बालचन्दजी मोदी—अग्रवाल जाति का इतिहास—पृ० २३०

"आर्य वैदिक धर्म के प्रचार में आप (श्री जयनारायणजी पोद्दार) बहुत सहायता पहुँचाते थे। आपने कलकत्ता स्थित आर्य कन्या विद्यालय का भवन बनाने के लिए पचीस हज़ार रुपये प्रदान किये। इसी प्रकार आर्यसमाज की संस्थाओं जैसे गुरुकुल कांगड़ी, गुरुकुल वृन्दावन इत्यादि को भी समय-समय पर ठोस सहायता पहुँचाते रहते थे।"

मारवाड़ी समाज में विरोध की भावना :

श्री जयनाराणजी कुशल व्यवसायी, प्रतिभाशाली व्यवस्थापक और कट्टर आर्यसमाजी थे। ये सब ऐसे सुयोग थे जो प्रायः दुर्लभ से ही होते हैं। महात्मा कालूरामजी के सम्पर्क से स्वाध्याय का विकास हुआ, तार्किकता के सामने कट्टरपंथी मारवाड़ी कभी ठहर न पाते थे। उधर श्री जयनारायणजी थे कि सारे परिवार में सदाचार, सद्विचार, सात्विकता का बोलवाला था। परिवार में नित्य अग्निहोत्र होता था, जो उस समय वैश्य तो क्या बड़े-बड़े पंडितों के घर भी कम ही होता था। परिवार के सारे सदस्य सन्ध्या करते थे। विना सन्ध्या किये कोई प्रातःकाल का जलपान भी न करता था। परिवार में न बीड़ी, न हुक्का, सिगरेट और चरस की बात ही क्या हो सकती थी! इन सब कारणों से जहाँ एक ओर श्री जयनारायणजी का समाज में सम्मान बढ़ रहा था, उनकी सच्चरित्रता और दानशीलता की धाक जम रही थी, वहीं विरोधियों में विरोध और क्षोभ भी बढ़ रहा था। विरोधियों ने जयनारायणजी के विरुद्ध मारवाड़ी समाज और मरवाड़ी पंचायत में छिपछिप कर कुभावनाग्रस्त विरोध का वातावरण बनाना आरम्भ कर दिया था। इसके विस्तार में जाने से पूर्व यह बताना आवश्यक है कि श्री जयनारायणजी की दादी का अन्त्येष्टि संस्कार रामगढ़ में वैदिक रीतिसे पाली रामजी (जयनारायण के पिता जी) ने किया था। इस प्रकार अन्त्येष्टि संस्कार तो इनके परिवार में श्री जयनारायणजी

के पिताजी पालीरामजी के समय से ही होता था। अतः जयनारायणजी ने अपनी पैतृक परम्परा ही अपनायी थी। किन्तु विरोधियों को तो विरोध से काम था। उन्हें उचित अनुचित के विचार से कुछ प्रयोजन न था।

इस समय जयनारायणजी के परिवार में एक दुःखद घटना घटी और उससे विरोधियों ने बड़ा बवेला खड़ा कर दिया। इस घटना को अपनी ओर से न लिखकर श्री बालचन्दजी मोदी के इतिहास से हम अविकल उद्धृत कर रहे हैं[1]—

"१९६६ विक्रमी में हठात् एक ऐसी घटना घटी की गुप्तगोष्ठी वालों को और भी आगे बढ़ने का सहारा मिल गया। घटना यह थी कि जयनारायणजी के मझले पुत्र श्री दीपचन्दजी की स्त्री का असमय में ही शरीरान्त हो गया। जयनारायणजी ने १६ संस्कारों के अनुसार अपनी पुत्रवधू का अन्त्येष्टि कर्म कराया। सनातनधर्मी शव का सिर दक्षिण की ओर रखते हैं किन्तु जयनारायणजी ने शव का सिर उत्तर की ओर रखा और उसी अवस्था में उसका दाहकर्म भी किया गया। अन्त्येष्टि कराने वाले बड़ाबाजार के सुप्रसिद्ध वैद्य पं० रामदयालजी शर्मा सिंघानेवाले थे। ये वैद्यजी यद्यपि विशुद्ध सनातनी थे किन्तु चरम सत्य के प्रतिपालक थे। फिर क्या था? कुछ व्यक्तिओं ने भोलीभाली जनता को भड़काना शुरू कर दिया कि मृत व्यक्तिओं की अन्त्येष्टि करानी सनातनधर्मविहित कर्म नहीं है। इस कर्म को कराने वाले या तो नास्तिक होते हैं या आर्यसमाजी। अन्त्येष्टि कर्म कराना सनातनधर्म के अनुकूल है, या प्रतिकूल इसका विचार किसीने नहीं किया। इसके अतिरिक्त किसीने यह भी नहीं सोचा कि १६ संस्कारों का क्या महत्त्व है। श्री जयनारायणजी और पं० रामदयालजी के विरुद्ध समाज में एक बड़ा आन्दोलन शुरू हो गया।..............गुप्तगोष्ठी द्वारा

१. आनन्दीलाल पोद्दार स्मृति पुष्पी पृ० ६१-६२

सनातनधर्म नामक दैनिक पत्र निकाला गया। उसने उचित-अनुचित सभी प्रकार से मनमानी हांकनी शुरू की। बदले में सत्य सनातनधर्म पत्र का प्रादुर्भाव हुआ और जैसे को तैसा उत्तर दिया जाने लगा।

"गुप्तगोष्ठी वालों ने वाहर से कुछ ऐसे नामीगरामी विद्वानों और वक्ताओं को बुलाया जो सनातनधर्म के प्रकाण्ड विद्वान् माने जाते थे और भोलीभाली जनता पर अपना रंग जमा सकते थे। आने वाले विद्वानों में सर्वश्री पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र मुरादाबादी, दिल्ली के पं० हरनारायण जी शास्त्री वाणीभूषण, पं० नन्दकिशोरजी शुक्ल और सुप्रसिद्ध पं० भीमसेनजी शर्मा थे—(भीमसेन जी शर्मा पहले कई वर्ष आर्यसमाज के लीडर रह चुके थे और आर्य सिद्धान्त पत्र में अपने आपको स्वामी दयानन्दजी सरस्वती के शिष्य घोषित किया करते थे, एवं चूरू के सेठ माधो प्रसादजी खेमका के अग्नीष्टोम यज्ञ कराने के समय इटावा में पशुहिंसा के भावों को लेकर आर्यसमाज से हट कर सनातनी वन गये थे)।[१]

"इन विद्वानों का जब कलकत्ता में आगमन हुआ तो यद्यपि समाज का वातावरण दूषित हो रहा था तथापि कुछ विचारशील और निष्पक्ष व्यक्तियों ने यह समझा कि अन्त्येष्टि क्रिया को लेकर जो आन्दोलन चल रहा है उसकी मीमांसा इन विद्वानों द्वारा हो जायेगी और निश्चय ही ये लोग अन्त्येष्टि क्रिया को वैदिक सनातन धर्म के अनुकूल करार देगें। परन्तु हुआ इसके विपरीत। आये हुये विद्वान् १६ संस्कारों के महत्त्व की ओर ध्यान न देकर साम्प्रदायिकता की ओर झुक गये और धनिकों के प्रभाव में आकर अन्त्येष्टि कर्म का निषेध करने लगे। उनका अखाड़ा हरिसन रोड स्थित श्री विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय में प्रायः डेढ़ महीने तक लगता रहा। उन्होंने इसी विषय को लेकर मनमाने ढंग से बहुत अधिक प्रचार किया और समाज में इतनी

१—वस्तुतः आर्यसमाज ने भीमसेनजी को पशुहिंसा के समर्थन के कारण आर्यसमाज से निकाल दिया था—लेखक

कटुता बढ़ गयी कि लोगों के दिल फट गये। आश्चर्य तो यह देखने में आया कि इन विद्वानों ने सनातनधर्म के १६ संस्कारों की ओर दृष्टिपात भी नहीं किया और साधारण साम्प्रदायिकता को महत्त्व देकर विरोध ही बढ़ाते रहे। हमारी तो यह धारणा है कि यदि ये विद्वान् साम्प्रदायिक भावना और झगड़े को प्रोत्साहन न देकर सिद्धान्त पर ध्यान देते तो अन्त्येष्टि कर्म की मीमांसा हो जाती साथ ही समाज का बढ़ता वैमनस्य भी दब जाता।"

यह तो श्री मोदीजी के इतिहास से लम्बा उद्धरण है। श्री मोदीजी ने इसे अपने दृष्टिविन्दु से देखा है। हम इस घटना को आर्यसमाज कलकत्ता के इतिहास के सन्दर्भ में एक और ही दृष्टि से देखते हैं। श्री जयनारायणजी अपने चरित्र और सिद्धान्त में लौहपुरुष थे। उनके झुकने का अर्थ होता था एक सिद्धान्त का झुकना। उन्होंने कट्टरता से अपने सिद्धान्त की रक्षा की। कहा जाता है कि मारवाड़ियों की पंचायत में जब किसी व्यक्ति ने यह कहा कि जयनारायणजी और उनके परिवार में न कोई चरित्रगत दोष है न उनमें और कोई त्रुटि है, वे अपने सिद्धान्तों के अनुसार चलते हैं तो इसमें क्या आपत्ति है। अन्ततः जयनारायणजी को कोई पंचायती दण्ड नहीं भरना पड़ा और उनके परिवार में अन्त्येष्टि संस्कार वैदिक रीति से ही होता चला आ रहा है। यह उस लौहपुरुष चरित्र के विजय का परम प्रमाण है। श्री जयनारायणजी के पश्चात् श्री रामचन्द्रजी, श्री दीपचन्दजी, श्री गुरुप्रतापजी, श्री किशनलालजी, श्री आनन्दीलालजी, श्री बद्रीप्रसादजी और पोद्दार परिवार की नयी पीढ़ियाँ आर्यसमाज के साथ अपनी इस बुनियादी परम्परा को प्रसन्नतापूर्वक निभाती चल रही हैं। पोद्दार परिवार आज भी वैदिक रीति से ही अन्त्येष्टि संस्कार कराता है और मारवाड़ी समाज में उनकी प्रतिष्ठा दिनोदिन बढ़ती ही जा रही है।

श्री जयनारायणजी आर्यसमाज के श्रद्धावान् परिपोषक थे। अपने देहान्त से कुछ समय पहले सं० १९७२ वि० में उन्होंने एक लाख

रुपये का एक धर्मार्थ फण्ड निकाला जिससे हरिसन रोड पर एक मकान खरीदा गया। वे आर्यसमाज के प्रति ऐसी ही अखण्ड निष्ठा मृत्यु पर्यन्त रखते रहे।

श्री जयनारायणजी के जीवन से सम्बन्धित एक उद्धरण हम गुरुकुल महाविद्यालय वैद्यनाथ धाम की पंचवर्षीय रिपोर्ट से दे रहे हैं।—

"कलकत्ते के माननीय सेठ श्री जयनारायणजी पोद्दार आर्यसमाज के परम भक्त, गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के प्रेमी एवं कर्मठ समाजसुधारक थे। गुरुकुल काँगड़ी की स्थापना में महात्मा मुँशीरामजी (स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज) को बड़ी श्रद्धा से सहायता पहुँचायी थी। श्री दयानन्द महाराज के अनन्य भक्त होने के कारण स्थान-स्थान पर गुरुकुल की स्थापना कर विद्यातीर्थ निर्माण की प्रेरणा दिया करते थे। बिहार-बंगाल के आर्यों को भी गुरुकुल खोलने की प्रेरणा एवं आशीर्वाद समय-समय पर उनसे प्राप्त होता रहा। गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली के प्रति उनकी प्रगाढ़ भक्ति होने के कारण ही उनके पुत्रों ने इस गुरुकुल के पौधे को जन्मकाल से ही सींचने का भार उठाया और अपने पूज्य पिताजी के चरणों का अनुसरण करते हुए इस संस्था को इस रूप में खड़ा किया। आरम्भ से ही पोद्दार परिवार ने गुरुकुल की भिन्न-भिन्न कठिनाइयों, आपदाओं और भयंकर आर्थिक परिस्थितियों में अपनी सहायता प्रदान कर संस्था को जीवित रखने के लिए समय-समय पर अमृत की घूँट दी है। इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि पोद्दार पररिवार ने इस संस्था को खड़ा रखने में उसके शरीर की रीढ़ बनने का कार्य सम्पादित किया है।"

श्री जयनारायणजी ने गुरुकुल काँगड़ी में सं० १९७६ वि० में ५०००) दान दिया था।

श्री जयनारायणजी आर्यसमाज कलकत्ता के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं में रहे। आर्यसमाज कलकत्ता की भूमि को खरीदने वाले ट्रस्ट के ये ट्रस्टी थे। आर्यसमाज कलकत्ता का भवन बनाने के लिए भी इन्होंने आर्थिक सहायता की थी। श्री जयनारायणजी ने वैदिक साहित्य के प्रचार के लिए भी दान दिया था। पं० दीनबन्धुजी की सूचना के अनुसार सेठ जयनारायणजी पोद्दार ने 'पंच महायज्ञ विधि' और 'आर्याभि-विनय' का बंगला अनुवाद पं० शंकरनाथजी से कराया और अपने दान से उसे प्रकाशित किया। सेठ जयनारायणजी स्वयं आर्यसमाज के लिए समर्पित थे और उनके पुत्र श्री रामचन्द्रजी, श्री दीपचन्दजी तथा श्री गुरुप्रतापजी भी आर्यसमाज के लिए समर्पित जीवन ही रहे। जयनारायणजी का देहान्त वैशाख सुदी ११, १९८१ सं० को हुआ।

श्री रामचन्द्रजी पोद्दार

श्री जयनारायणजी पोद्दार के तीन यशस्वी सुपुत्र हुए, श्री रामचन्द्रजी पोद्दार, श्री दीपचन्दजी पोद्दार और श्री गुरुप्रतापजी पोद्दार। श्री राम-चन्द्रजी पोद्दार को अधिक दीर्घ जीवन नहीं मिला, किन्तु अपने अल्प जीवन में ही उन्होंने योग्य पिता के योग्य पुत्र की उक्ति को चरितार्थ कर दिया। श्री रामचन्द्रजी कुशल व्यवसायी थे। श्री जयनारायणजी ने रामचन्द्रजी की शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था महात्मा कालूरामजी के सम्पर्क में करायी थी। अतः रामचन्द्रजी आर्यसमाज और वैदिक धर्म के कट्टर निष्ठावान् व्यक्ति बने। यह कट्टरता सिद्धान्त निष्ठा में उसी प्रकार स्थायी बनी रही जिस प्रकार सेठ जयनारायणजी के सामने थी। दैनिक अग्निहोत्र, सन्ध्या, वैदिक कर्मकाण्ड आर्यसमाज और आर्य-समाज की संस्थाओं के लिए श्री रामचन्द्रजीने अपने पिताजी की चलायी हुई परम्परा को पूर्णरूप से निभाया। असमय में ही श्री रामचन्द्रजी का सन् १९३० ई० में निधन हो गया और आर्यसमाज के कार्यक्षेत्र में पोद्दार परिवार से श्री दीपचन्दजी अग्रसर हुए।

यद्यपि यह अल्पायु का मरण बड़ा हृदय विदारक है फिर भी इतिहास की दृष्टि से एक घटना का अति संक्षिप्त संकेत मात्र भी आवश्यक प्रतीत होता है। जिस वर्ष श्री रामचन्द्रजी का निधन हुआ उस वर्ष अग्रवाल महासभा के मुख पत्र "अग्रवाल" में एक विज्ञप्ति प्रकाशित हुई थी। संवत १९८८ वि० के वैशाख अंक में पृष्ठ ३०५ पर प्रकाशित किया गया है—

> "मृतक भोज के विरोध में अग्रवाल महासभा की ओर से जो आन्दोलन हो रहा है, वह जोरों के साथ फैल रहा है।...... कलकत्ता के अग्रवाल समाज में भी इसकी सफलता के चिह्न दिखाई पड़ रहे हैं। अभी हाल में ही श्रीयुत रामचन्द्रजी पोद्दार.........आदि के श्राद्धोपलक्ष में इस कुप्रथा का व्यवहार नहीं किया गया।"

श्री रामचन्द्रजी गुरुकुल वैद्यनाथ धाम के प्रधान थे और उस समय उन्होंने गुरुकुल की अच्छी उन्नति करायी। उन्होंने मथुरा में गोचर भूमि की व्यवस्था की थी।

अल्पायु में ही श्री रामचन्द्रजी ने इहलौकिक लीला संवरण कर ली थी और अपने पीछे श्री नन्दलालजी, श्री आनन्दीलालजी, श्री बद्रीप्रसादजी, श्री शुभकरणजी, श्री चम्पालालजी पांच सुपुत्र छोड़ गये।

श्री दीपचन्दजी पोद्दार

श्री दीपचन्दजी पोद्दार श्री जयनारायणजी पोद्दार के सुपुत्र थे। जयनारायणजी जैसे कट्टर सिद्धान्तनिष्ठ क्रान्तिकारी पिता का पुत्र होना एक गौरव की बात है। श्री दीपचन्दजी का जन्म श्रावण बदी ५ संवत १९३२ वि० को हुआ था। घर में सैद्धान्तिक कट्टरता और आर्य-समाजी निष्ठा भरपूर थी। महात्मा कालूरामजी पोद्दार परिवार के गुरु थे और जयनारायणजी का परिवार उनके सम्पर्क से भरपूर लाभ

उठाता था। वैश्य वर्ण के होकर भी जयनारायणजी ने अपने पुत्रों का यज्ञोपवीत थोड़ी उम्र में ही कर दिया था और उन्हें सन्ध्या-अग्निहोत्र की दीक्षा दिला दी थी। दीपचन्दजी ने अपने जीवन की कुछ पंक्तियाँ स्वयं जो लिख रखी हैं उनसे पता चलता है कि श्रीदीपचन्दजी का यज्ञोपवीत चैत्र सुदी ६ संवत् १९४१ वि० को हो गया था। अभी आपकी आयु ६ वर्ष की भी पूरी नहीं थी। रामचन्द्रजी और दीपचन्दजी का यज्ञोपवीत महात्मा कालूरामजी के सान्निध्य में सम्पन्न हुआ था। दीपचन्दजी ने अपने शैशव के सम्बन्ध में स्वयं लिखा है कि लगभग ३ महीने में सन्ध्या कण्ठस्थ कर वे नियमित सन्ध्या करने लगे थे। यह भी एक वैश्य परिवार में सैद्धान्तिक कट्टरता का अच्छा उदाहरण है।

दीपचन्दजी की शिक्षा परम्परा के अनुसार शुरू हुई थी। थोड़ी पढ़ाई हो जाने के बाद जब कुछ अध्ययन बढ़ा तो उन्होंने दो किताबें फारसी भी पढ़ी थी। यह भी एक तुक था कि दीपचन्दजी आर्यसमाज के उस समय के प्रसिद्ध व्यक्ति, एवं स्वामी दयानन्द के साथ प्रेस में कार्य करने वाले मुंशी समर्थ दान के पास रहे। २-३ वर्ष हिन्दी, महाजनी की पढ़ाई की और फिर कार्यक्षेत्र में उतर आये। दीपचन्दजी दिल्ली, कानपुर इत्यादि कई स्थानों पर रहकर कलकत्ता आ गये।

श्री जयनारायणजी आर्यसमाजी तो थे ही, दीपचन्दजी आर्यसमाज चावड़ी बाजार (दिल्ली) में जाया करते थे। वहाँ उनका सम्पर्क पं० लेखरामजी, श्री रामभज दत्तजी, लाला मुंशीरामजी (स्वामी श्रद्धानन्दजी) आदि से रहा। इस प्रकार दीपचन्दजी में आर्यसमाज के संस्कार आरम्भ से ही दृढ़ हो गये थे।

आर्यसमाज कलकत्ता के सम्पर्क में :

श्री दीपचन्दजी संवत् १९६३ वि० अर्थात् लगभग सन् १९०६ ई० से आर्यसमाज कलकत्ता के अन्तरंग के सदस्य रहे। सन् १९८५ ई०

में आर्यसमाज की स्थापना हुई और सन् १९०७ ई० में आर्यसमाज के लिए भूमि क्रय करने के लिए जो ट्रस्ट बना था उन ट्रस्टियों में सेठ जयनारायणजी पोद्दार का नाम है। सन् १९०९ ई० में आर्यसमाज कलकत्ता का जब पंजीकरण सोसाइटीज़ ऐक्ट के अनुसार हुआ तो उसमें सेठ दीपचन्दजी पोद्दार का नाम कार्यकारिणी के सदस्यों में

श्री दीपचन्दजी पोद्दार

अंकित है। पीछे दीपचन्दजी का अपना एक ऐसा युग आरम्भ होता है कि जैसे आर्यसमाज कलकत्ता के हर कार्य में उनकी भूमिका बड़ी प्रमुख हो गयी थी। कितने ही वर्षों तक और कितनी ही बार वे आर्यसमाज कलकत्ता के प्रधान रहे। कन्या विद्यालय के भी ट्रस्टी एवं प्रवन्धकारिणी सभा के प्रधान रहे। आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल के भी वे प्रधान रहे। श्री दीपचन्दजी का आर्यसमाज के बाहर मारवाड़ी ऐसोसियेशन, मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी, कलकत्ता पिंजरापोल

सोसाइटी, बाबा काली कमली वाला पंचायत क्षेत्र इत्यादि से घना सम्बन्ध था। आप अनेक जगह अध्यक्ष, उपाध्यक्ष एवं ट्रस्टी रहे।

गुरुकुल वैद्यनाथ धाम में श्री रामचन्द्रजी पोद्दार के देहान्त के पश्चात् संवत १९८७ वि० से श्री दीपचन्द्रजी प्रधानपद का कार्यभार संभालते रहे। गुरुकुल वैद्यनाथ धाम में आपकी सेवाएँ चिरस्मरणीय हैं।

श्री दीपचन्दजी के सुपुत्र श्री किशनलाल जी का जन्म कार्तिक बदी ५ संवत १९५३ वि० को हुआ। इनके पश्चात् दो और सन्तान हुए। संवत १९६६ वि० में उनकी पत्नी का देहान्त हो गया। इस ३४ वर्ष की आयु में एक कुलीन धनाढ्य सेठ का विधुर होना ऐतिहासिक दृष्टि से इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि अनेक प्रयत्नों के पश्चात् भी उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया।

श्री दीपचन्दजी ने इस प्रसंग को स्वयं इस प्रकार लिखा है। "और घर से लक्ष्मी चली गयी। मेरे से अपनी मृत्यु के पहले विवाह का पूछा—मैंने कहा यह पूछना वृथा है, कहना भी अनुचित है, तेरे लड़के को कष्ट नहीं होगा, मैं यह विश्वास दिलाता हूँ। इसके सिवाय मैं स्वतन्त्र हूँ, न कुछ कहूँगा न ज़्यादा कहना ही चाहिए।.........मैंने कड़ा दिल बनाया व विवाह नहीं किया। परमात्मा ने निभाया है। आशा है यह कभी खयाल नहीं होगा कि मैंने भूल किया। नहीं—अच्छा ही किया।"[१]

श्री दीपचन्दजी की अपनी लेखनी और भाषा से उनके चरित्र का अति दृढ़ एवं पवित्र पक्ष उजागर होता है। सैद्धान्तिक कट्टरता के सम्बन्ध में श्री दीपचन्द जी ने स्वयं लिखा है कि—

"उनका सम्पूर्ण कुटुम्ब सत्यार्थ प्रकाश और संस्कार विधि पर चलने की चेष्टा करता रहा। संवत १९३४ वि० में पूजनीय पिताजी की दादीजी का (बाबाजी की माताजी) स्वर्गवास हुआ। उनका अन्त्येष्टि-संकार वैदिक रीति मूजब कराया गया।

१. श्री दीपचन्दजी की आत्मकथा (अप्रकाशित) से।

इस मान्यता के कारण सामाजिक कइनाइयाँ भी भोगनी पड़ीं। यहाँ तक की अपने पोद्दार भाइयों ने बहिष्क्रत तक प्रचार किया। उसको न माना, दृढ़ता रखी, सब चुप होते गये, वैसा ही ख़याल अपना भी रहा। हर समय धर्म भावना रखी गयी।"[१]

जीवन के पिछले भाग में श्री दीपचन्दजी अपने व्यक्तिगत व्यवसाय के कारबार से पृथक् हो गये थे। घर में रहते हुए भी उनका जीवन विरक्त वानप्रस्थी जैसा हो गया था। उस समय भी सार्वजनिक संस्थाओं का कार्य, आर्यसमाज, बाबा काली कमलीवाला पंचायत क्षेत्र, पिंजरा-पोल सोसाईटी, इत्यादि का कार्य बड़ीनिष्ठा और भक्ति से किया करते थे। श्री दीपचन्दजी का विद्या और स्वाध्याय में भी विशेष अनुराग था। मृत्यु से ४ साल पूर्व ८२ वर्ष का आयु से आर्यसमाज कलकत्ता के संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य पं० रमाकान्तजी शास्त्री से उन्होंने पाणिनीय व्याकरण पढ़ना आरम्भ किया था। संस्कृत के शब्दरूप, धातुरूप और हिन्दी से संस्कृत अनुवाद बनाने, बच्चों की तरह अभ्यास करने में उनकी वृद्धावस्था कभी रुकावट न बनी थी। श्री दीपचन्दजी ने अपने पीछे अपने एकमात्र पुत्र श्री किशनलालजी पोद्दार को आर्यसमाज एवं अन्य सार्वजनिक कार्यों में दीक्षित करके समाज को अर्पित कर दिया है।

श्री किशनलालजी पोद्दार

श्री किशनलालजी पोद्दार श्री दीपचन्दजी पोद्दार के अकेले पुत्र हैं—स एव ज्येष्ठः स एव कनिष्ठः। पोद्दार परिवार आर्यसमाज की सेवा-सहायता में पीढ़िओं से लगा हुआ है। श्री किशनलालजी इस श्रृंखला की महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं। सैद्धान्तिक कट्टरता तो श्री जयनारायण जी के काल से ही चली आ रही थी, अब पोद्दार परिवार में

---

१ श्री दीपचन्दजी की आत्मकथा (अप्रकाशित) से।

आर्यसमाज के सिद्धान्त क्रान्ति की जगह परम्परा के रूप में गृहीत हो गये हैं। श्री किशनलालजी का बचपन, यौवन और सारा जीवन ही आर्यसमाज की सेवा में गया है। यह आकलन करना पर्याप्त कठिन है कि श्री किशनलालजी पोद्दार ने आर्यसमाज कलकत्ता की किस-किस रूप में और कितनी सेवा की है। सही बात यह है कि पिछले कई दशकों में आर्यसमाज कलकत्ता ने जो कुछ भी किया है, श्री किशन-लालजी उसमें सदा अग्रणी रहे हैं। आर्थिक सहयोग की दृष्टि से तो पोद्दार परिवार अग्रगण्य है ही और उसमें भी श्री किशनलालजी इस समय बड़े भी हैं सर्वोपरि अग्रगण्य हैं।

व्यक्तिगत जीवन में सरल प्रकृति, हँसमुख स्वभाव, चरमकोटि की मिलनसारिता, विद्वानों की तरह स्वाध्याय से प्रेम, कट्टरतापूर्वक वैदिक कर्मकाण्ड में निष्ठा, यह सब श्री किशनलालजी पोद्दार के स्वभाव का अंग बन गया है। स्वयं स्वाध्याय करना और दूसरों के लिए स्वाध्याय की प्रेरणा करना यह जैसे उनका व्यसन बन गया है। श्री किशनलालजी के स्वाध्याय में भी सुरुचि का पुट रहता है। कई बार उनकी पुस्तकों पर आवश्यक अंश रेखांकित होते हैं—पट्टी लगा कर सीधी सरल रेखाएँ खींचना इनके स्वभाव में है। कई बार पुस्तकों पर किस दिन कितना स्वाध्याय किया, किस पुस्तक को कब आरम्भ किया और किस पुस्तक को कब समाप्त किया, यह सब तिथियाँ उनकी पुस्तकों पर अंकित रहती हैं।

साधु-संन्यासी, पंडित-विद्वान् सबके परम भक्त, गुण ग्राहकता का बड़ा सुन्दर नमूना श्री किशनलालजी के रूप में उपस्थित हैं। कोई सुन्दर-सी पुस्तक उनकी निगाह में आयी नहीं कि उसे उचित पात्रों के पास, स्वाध्यायशील विद्वानों के पास पहुँचाने के लिए वे तत्पर हो जाते हैं। श्री किशनलालजी में विद्वान् संन्यासियों के सम्मान की भावना है और उसीके साथ पंडित-विद्वानों को अपनाने की भी

श्रीमती सुवादेवी पोद्दार हॉल का शिलान्यास करते हुए सपत्नीक श्री बद्रीप्रसादजी पोद्दार

श्रीमती सुत्रादेवी पोद्दार हॉल का उद्‌घाटन करते हुए दिल्ली के
महापौर श्री हंसराजजी गुप्त
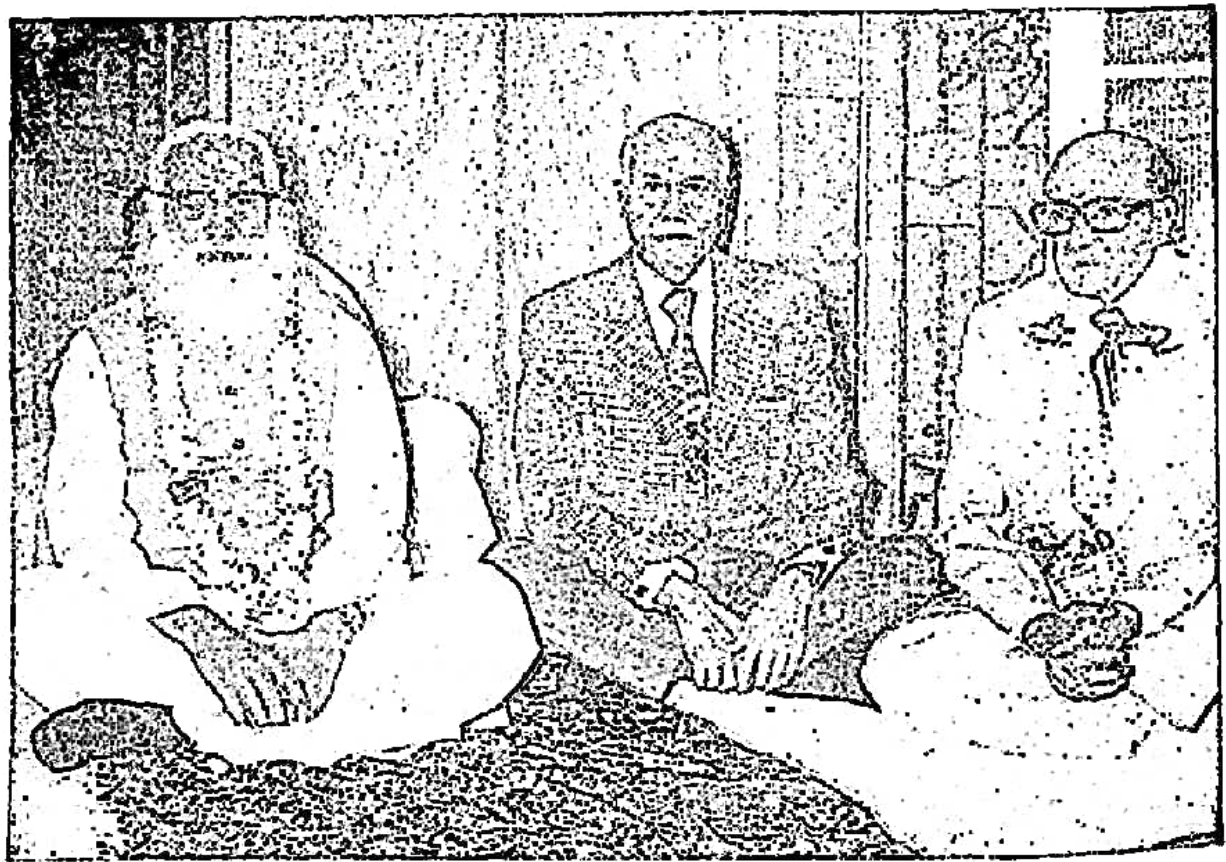
श्रीमती सुत्रादेवी पोद्दार हॉल की वेदी पर आसीन (बायें से)
श्री हंसराजजी गुप्त, श्री लक्ष्मीनिवासजी बिड़ला एवं श्री बद्रीप्रसादजी पोद्दार

भावना है। श्री किशनलालजी गुरुपूर्णिमा और अन्य मंगलमय अवसरों पर अपनी परम्परा के अनुसार हमलोगों को सदा स्मरण करते रहते हैं।

श्री किशनलालजी कितनी बार और कितने दिनों तक आर्यसमाज कलकत्ता के प्रधान, आर्य कन्या महाविद्यालय के प्रधान और आर्य विद्यालय के प्रधान रहे हैं, यह हिसाब लगाना कठिन है। आर्य कन्या

श्री किशनलालजी पोद्दार

विद्यालय का विशाल भवन निर्माण पोद्दारजी की कर्तव्य भावना एवं दानशीलता का परिचायक तो है ही, साथ ही दूसरे सम्पन्न सेठों से, विशेषरूप से दानवीर बिड़ला परिवार से स्तुत्य आर्थिक सहयोग मिलने में श्री किशनलालजी का बड़ा महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा है।

कलकत्ता आर्यसमाज के विशाल भवन से लगी हुई सामने की ओर थोड़ी-सी भूमि आर्यसमाज मन्दिर और सड़क के बीच में थी। यह भूमि श्री बिड़लाजी की थी। श्री किशनलालजी पोद्दार की

कार्यकुशलता और पहुँच के कारण श्री बिड़लाजी ने न केवल वह भूमि ही आर्यसमाज को दी अपितु उस पर रानी बिड़ला आर्य अतिथिशाला के दो तल्लों का निर्माण कराकर जहाँ उदारता और दानशीलता का परिचय दिया वहीं यह सब श्री किशनलालजी पोद्दार की कार्यकुशलता, सेवा और प्रभाव का फल है, इसमें भी दो राय नहीं हैं।

रघुमल आर्य विद्यालय के लिए भवन का निर्माण श्री किशनलालजी पोद्दार के सहयोग का सुन्दर स्वरूप है। आर्य विद्यालय आर्यसमाज के मन्दिर में लगता था। फिर कन्या विद्यालय के भवन में कुछ दिन चलता रहा, किन्तु उसके लिए स्थायी भवन की आवश्यकता थी। यह न्यूनता सदा खटकती रहती थी। यह श्री किशनलालजी पोद्दार की सूझबूझ का सुफल है कि सुप्रसिद्ध रघुमल चैरिटी ट्रस्ट ने आर्य विद्यालय के लिए भवन बनाने के निमित्त विपुल धनराशि दान की। श्री पोद्दारजी रघुमल चैरिटी ट्रस्ट के प्रभावशाली ट्रस्टी भी हैं और इस कार्य द्वारा रघुमल आर्य विद्यालय के इतिहास के साथ जहाँ रघुमल चैरिटी ट्रस्ट अविस्मरणीय है वहीं श्री किशनलालजी पोद्दार की ओर से स्वयं दान करना और विद्यालय के भवन का निर्माण कराना ऐसा सुकार्य है कि श्री किशनलालजी भी आर्य विद्यालय के इतिहास के साथ चिरस्मरणीय रहेंगे।

यद्यपि हम आर्यसमाज कलकत्ता के इतिहास की शृंखला को जोड़ रहे हैं, फिर भी श्री किशनलालजी अपने सार्वजनिक जीवन में बहुत वर्षों तक गुरुकुल वैद्यनाथ धाम के प्रधान रहे हैं। आज भी इस गुरुकुल की उन्नति के लिए सदा प्रयत्नशील रहते हैं। कलकत्ता पिंजरापोल सोसाइटी जैसी अन्य कई संस्थाएँ श्री किशनलालजी का कार्यक्षेत्र रही हैं। पर हम मुख्यरूप से आर्यसमाज कलकत्ता की सीमा के भीतर ही उनका विचार कर रहे हैं।

श्री किशनलालजी पोद्दार इस चरम वृद्धावस्था में भी जब कलकत्ता रहते हैं तो सदा ही आर्यसमाज के सत्संग में अनिवार्यरूप से आते

हैं। सत्संग में शान्त, दत्तचित्त एक भक्त की भावना के सदा सम्मिलित होते हैं और सदस्यों में सन्ध्या, अग्निहोत्र, स्वाध्याय की ओर अधिक रुचि जागृत हो, लोगों के जीवन में ये अपूर्व सिद्धान्त आयें, इसके लिए सतत् प्रयत्नशील रहते हैं। अन्तरंग में, विचारगोष्ठिओं में अनिवार्य रूप से बैठना और अपने सुलझे हुए विचारों से समाज को लाभान्वित करना इनका स्वभाव है। उग्र से उग्र अवसरों पर भी अपनी मृदुता और मधुरता को बनाये रखते हैं, न कभी उत्तेजित होते हैं न कभी क्षुब्ध होते हैं। ऐसा व्यक्तित्व जिस भी समाज, संगठन को प्राप्त हो, यह उस समाज और संगठन का सौभाग्य ही है ।।

श्री आनन्दीलालजी पोद्दार

श्री आनन्दीलालज पोद्दार कलकत्ता के सामाजिक जगत् के अत्यन्त उद्दीप्त सितारे के रूप में चमकते रहे थे। जीवन आपको थोड़ा मिला था, किन्तु ४६ वर्षों की अल्पायु में ही आपकी गणना कलकत्ता के देदीप्यमान नक्षत्रों में होती है।

श्री आनन्दीलालजी का जन्म सन् १६१४ ई० में कलकत्ता के प्रसिद्ध आर्यसमाजी पोद्दार परिवार में हुआ था। आप श्री जयनारायण पोद्दार के पौत्र और श्री रामचन्द्र पोद्दार के सुपुत्र थे। आर्यसमाजी कट्टरता और निष्ठा आपके परिवार में कई पीढ़ियों से चली आ रही थी।

श्री आनन्दीलालजी की शिक्षा-दीक्षा यहीं कलकत्ता में हुई। अपनी कुशाग्र-बुद्धि और असीम श्रमशीलता के कारण श्री आनन्दलालजी बड़ी थोड़ी ही आयु में बड़ाबाजार के व्यावसायिक जगत् में जगमगाने लगे थे और आपकी गणना हायर परचेज के के कारबार में अग्रणी के रूप में होने लगी थी।

श्री आनन्दीलालजी का सार्वजनिक जीवन अद्भुत उपलब्धियों से भरपूर है। २५ वर्ष के अल्पायु में मारवाड़ी ऐसोशियेशन ने इन होनहार नवयुवक को अपना सभापति बना लिया था। श्री आनन्दी-

लालजी का नेताजी सुभाष चन्द्र बोस से निकट का सम्पर्क था और आप नेताजी के निकटस्थ सहयोगी माने जाते थे। २५ वर्ष की आयु में ही आप कलकत्ता करपोरेशन के निर्विरोध कौन्सिलर निर्वाचित हुए। शीघ्र ही डिप्टी मेयर और साल भर बाद ही कलकत्ता कारपोरेशन के मेयर चुन लिए गये। कारपोरेशन के इतिहास में इतनी कम आयु में ऐसे युवक का मेयर होना अपने आपमें एक अनुपम इतिहास है। कलकत्ता कारपोरेशन के इतिहास में श्री आनन्दीलालजी प्रथम हिन्दी भाषाभाषी मेयर बने। उस समय नेताजी बर्लिन में थे और वहीं से उन्होंने श्री आनन्दीलालजी को बधाई का सन्देश भेजा था।

श्री आनन्दीलालजी पैतृक दायभाग के रूप में आर्यसमाजी संस्कारों और वैदिक निष्ठा के थे। नित्य सन्ध्या, अग्निहोत्र बड़ी कट्टरता से करते थे। सन्ध्या, अग्निहोत्र से पूर्व प्रातराश भी न लेने का नियम जीवन में था। आर्यसामाजिक निष्ठा के कारण तथा तीन-चार पीढ़ियों का इतना पुराना, इतना सम्पन्न आर्यसमाजी सेठ परिवार आर्यसमाजी गतिविधियों का केन्द्र बना रहता था। सुहरावर्दी की मुस्लिमलीगी मिनिस्ट्री का ऐसा प्रतिभासम्पन्न प्रभावशाली युवक आर्यसमाजी एवं कांग्रेसी नेता से असन्तुष्ट रहना अस्वाभाविक न था। सन् १९४६ में जब बंगाल में मुस्लिम लीग मन्त्रिमण्डल बना और बहुत सारे हिन्दुओं ने इनके पैतृक निवास-स्थान में शरण ली, उस समय सुहरावर्दी की मुस्लिम लीगी साम्प्रदायिक सरकार ने बड़ी निर्ममता और निष्ठुरता से आपके घर की तलाशी ली, किन्तु सुहरावर्दी हाथ मलता रह गया और आनन्दीलालजी जैसे प्रतिष्ठित नेता और पोद्दार जैसे सम्मानित परिवार पर हाथ न लगा सका। उस समय श्री आनन्दीलालजी और श्री किशनलालजी पोद्दार के भवन दंगा पीड़ित हिन्दुओं के लिए शरणार्थी शिविर के रूप में बदल गये थे। श्री आनन्दीलालजी की माताजी, जिन्हें श्रद्धा और प्यार से ताईजी की उपाधि मिली थी, स्वयं स्वयंसेविका बनकर शरणार्थी बच्चों को दूध

पिलाती थीं। पोद्दारजी के मकान से बसों और गाड़ियों में भरकर शरणार्थियों को आर्यसमाज मन्दिर और कन्या विद्यालय के शरणार्थी शिविरों में भेजा जाता था।

बिहार भूकम्प के समय श्री आनन्दीलालजी महात्मा खुशहाल चन्दजी (आनन्द स्वामीजी) की प्रेरणा से उन्हींके साथ साधन-

श्री आनन्दीलालजी पोद्दार

सामग्री लेकर सेवाकार्य के लिये बिहार स्वयं गये थे। कई शिविरों में काफी दिनों तक आपने सेवाकार्य किया था। धनवान धन तो दे सकते हैं किन्तु एक श्री आनन्दीलालजी ही थे जो धन तो भरपूर देते ही थे स्वयं भी ऐसे कार्यों में स्वयंसेवक के रूप में तत्पर हो जाते थे।

श्री आनन्दीलालजी यावज्जीवन आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्य रहे। भरपूर दान देते रहे। यों तो पोद्दार परिवार से श्री किशनलालजी

आयु में बड़े और आर्यसमाज कलकत्ता में अग्रणी रहे किन्तु श्री आनन्दीलालजी भी संगठन में आगे आते रहे और आर्यसमाज के उप-प्रधान भी बने। श्री आनन्दीलालजी आर्यसमाज के ट्रस्टों के ट्रस्टी भी बने। सन् १९५९ ई० में जब आर्य विद्यालय ट्रस्ट बना तो जयनारायण पोद्दार ट्रस्ट की ओर से श्री आनन्दीलालजी पोद्दार ट्रस्ट के ट्रस्टी बने।

श्री आनन्दीलालजी कांग्रेस के भी प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता थे। आप प० बङ्ग विधान सभा के अनेक बार विधायक भी चुने गये। कलकत्ता ट्राम कम्पनी के आप प्रथम भारतीय डायरेक्टर थे। कलकत्ता के प्रसिद्ध हिन्दुस्तान क्लब के आप संस्थापक थे। श्री आनन्दीलालजी मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी के भी सभापति चुने गये थे।

३० जुलाई सन् १९६० ई० को ४६ वर्ष की अल्पायु में आपका देहान्त हो गया, किन्तु यावज्जीवन आप बड़ाबाजार के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जगत् पर पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह आह्लादकता के साथ चमकते रहे। जनसेवा के कार्यों में आनन्दीलालजी जैसा व्यक्ति मिलना कठिन है।

श्री बद्री प्रसादजी पोद्दार

कलकत्ता के सेठों में श्री जयनारायणजी पोद्दार का परिवार कई पीढ़ियों से आर्यसमाज के सम्पर्क में रहा है। श्री जयनारायणजी और उनके पुत्र श्री रामचन्द्रजी सदा बड़ी कट्टरता से वैदिक मान्यताओं को पूर्ण निष्ठा से निभाते रहे। श्री रामचन्द्रजी पोद्दार के ज्येष्ठ पुत्र श्री आनन्दीलालजी, द्वितीय पुत्र श्री बद्रीप्रसादजी और तृतीय पुत्र चम्पालालजी थे। श्री चम्पालालजी आर्यनिष्ठा में कम नहीं थे किन्तु अल्पायु होने के कारण उनका जीवन सार्वजनिक क्षेत्र में अधिक उजागर न हो पाया। श्री आनन्दीलालजी और श्री बद्री प्रसादजी व्यापारिक और सामाजिक जगत् में जाज्वल्यमान नक्षत्रों की तरह चमकते रहे।

श्री बद्री प्रसादजी पोद्दार का जन्म सन् १६२० ई० में हुआ था। आप सुधी विद्यार्थी थे। कलकत्ता विश्वविद्यालय के आप स्नातक थे। व्यावसायिक जगत्, शिक्षा एवं समाजसेवा तीनों ही क्षेत्रों में श्री बद्री प्रसादजी अग्रगण्य थे। आपने कई प्रकार के उद्योग चालू किये। परिवहन तो आपका पारिवारिक व्यवसाय था ही, कलकत्ता ट्राम कम्पनी के आप डाइरेक्टर थे। भारत चैम्बर ऑफ कामर्स ऐण्ड इन्डस्ट्रीज के आप अध्यक्ष थे। देश के व्यावसायिक स्तर से ऊपर उठकर अन्तर्राष्ट्रीय जगत में भी आपका बड़ा सम्माननीय स्थान था। अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य मण्डल के एशियाई तथा प्रशान्त महासागरीय आयोग के आप अध्यक्ष थे। लगभग ११ वर्षों तक आप बड़ी प्रतिष्ठापूर्वक पश्चिम बंगाल विधान सभा के सदस्य जोड़ाबगान क्षेत्र से निर्वाचित होते रहे।

शिक्षा के क्षेत्र में आई० आई० टी० खड़गपुर के अध्यक्ष तथा जवाहरलाल विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी समिति के सदस्य थे। मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी के आप सभापति थे। अन्य और बड़ी संस्थाओं से आपका सम्बन्ध था। इण्डियन रेडक्रास सोसाइटी के आप अध्यक्ष थे। केन्द्रीय भविष्य निधि और राष्ट्रीय जहाजरानी बोर्ड के सदस्य थे। कलकत्ता पोर्ट ट्रस्ट के कमिश्नर और कलकत्ता इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट के ट्रस्टी थे। आप भारतीय वाणिज्य प्रतिनिधि मण्डल के नेता के रूप में कई देशों में गये थे। श्री बद्री प्रसादजी का जीवन इन सब तथ्यों से भरा पड़ा है।

श्री बद्री प्रसादजी वैदिक विचारधारा की कट्टर निष्ठा के व्यक्ति थे। सन्ध्या, अग्निहोत्र किये बिना आप कभी जलपान न करते थे। कई बार कलकत्ता से तड़के हवाई जहाज पकड़ना होता था तो भी सन्ध्या, अग्निहोत्र करके ही निकलते थे। यावज्जीवन आर्यसमाज कलकत्ता के वरिष्ठ दानदाता सदस्यों में रहे। आपकी आर्यसमाजी निष्ठा का कुछ विशेष विवरण आर्यसमाज के भवन-निर्माण के प्रसंग

में श्रीमती सुवादेवी पोद्दार स्मृति-हाल के सन्दर्भ में इतिहास के इन्हीं पृष्ठों में आया है। कलकत्ता में जब कभी सरकारी स्तर पर, व्यावसायिक स्तर पर या सामाजिक स्तर पर आवश्यकता पड़ती थी तो श्री बद्री प्रसादजी कभी पीछे न हटते थे। आर्यसमाज को दान देकर ये प्रसन्न होते थे। श्रीमती सुवादेवी पोद्दार स्मृति-हाल के लिए हमलोग चन्दा करने गये थे। हमने हाल बनवाने का इनसे आग्रह भी नहीं किया था। हमने केवल इतना कहा था कि आर्यसमाज का हाल बन जाना चाहिए। आप स्वयं दीजिये और दूसरों से भी दिलवाइये। अगले क्षण श्री बद्री बाबू ने हमसे यह पूछा कि हाल के निर्माण में कितना व्यय होगा। फिर बोले—और कहाँ जाइयेगा, सब मुझ से ही ले लीजिये। और इस तरह अकेले ही यह विशाल हाल बनवा दिया, जिससे इतना बड़ा सामाजिक उपकार हो रहा है।

आर्यसमाज के लिये बद्री बाबू की यह निष्ठा थी कि किसी दिन वे और हम दो ही जन उनके घर पर कुछ जलपान कर रहे थे कि बातों-बातों में उन्होंने कहा—"पण्डितजी, पचीस-तीस हजार रुपया आपको देता हूँ जहाँ इच्छा हो लगा दीजिये। मेरा भी निःस्पृह ब्राह्मण का सीधा-सा उत्तर था कि कहीं आवश्यकता पड़ी तो आपको दिखाकर, बताकर आपसे दान करवा दूँगा। बद्री बाबू भी मुस्कराने लगे। एक बार जब आर्यसमाज की स्थापना शताब्दी (१६७५ ई०) का आयोजन हमलोगों ने कलकत्ता में किया था तो उसका उद्घाटन पश्चिम बंगाल के उस समय के मुख्य मन्त्री श्री सिद्धार्थ शंकर राय ने किया था और इस उद्घाटन-उत्सव के प्रधान अतिथि न्यायमूर्ति श्री शंकर प्रसाद मित्र थे। हमने इस उत्सव में आने के लिए श्री बद्री बाबू से भी आग्रह किया था। उत्सव की समाप्ति पर जब जाने लगे तो उठते-उठते मुझसे बोले—पण्डितजी, रुपयों के लिए आर्यसमाज का कोई काम नहीं रुकना चाहिए, जो भी आवश्यकता हो मेरे यहाँ से मंगवा लीजिये।

श्री बद्री प्रसादजी पोद्दार यावज्जीवन इसी प्रकार की वैदिक निष्ठा में रहे। जीवन के अन्तिम दिनों में लम्बी बीमारी पायी। देश-विदेश सर्वत्र चेष्टा के वाद भी उनके जीवन को वचाया न जा सका।

श्री बद्री प्रसादजी पोद्दार

२६ जुलाई सन् १६८१ ई० को कलकत्ता में इनका देहान्त हो गया। श्री बद्री बाबू की स्नेहिल स्मृतियाँ किसी भी स्नेही की अक्षय-निधि के रूप में रहेंगी।

श्री शिवरामजी पोद्दार

श्री शिवरामजी पोद्दार कलकत्ता के प्रसिद्ध पोद्दार परिवार के सम्पर्क में व्यवसायी सेठ हैं। आप आर्यसमाज के सम्पर्क में पैतृक परम्परा से आये हैं। आपके पिताजी वानप्रस्थी होकर साधना में लग गये थे। श्री शिवरामजी का जीवन धार्मिक, यज्ञप्रेमी, सन्ध्या, अग्निहोत्र,

कट्टर भक्तिभावों से परिपूर्ण हैं। आप जबतक कलकत्ता में रहे तबतक आर्यसमाज कलकत्ता के सत्संगों और धार्मिक प्रोग्रामों में पूरी रुचि से भाग लेते रहे।

बड़ाबाजार के सार्वजनिक जीवन में शिवरामजी सदा काम करते रहे। बड़ाबाजार कुमार सभा पुस्तकालय के आप सभापति रहे।

श्री शिवरामजी आजकल अपने व्यावसायिक कार्यों से बम्बई में रहने लगे हैं। फिर भी आर्यसमाज एवं सार्वजनिक सेवा में अभी भी आप बराबर तत्पर रहते हैं। नियमित सन्ध्या, अग्निहोत्र और स्वाध्याय के प्रति आप विशेष कट्टर हैं।

श्री राजेन्द्र कुमारजी पोद्दार

कलकत्ता के आर्यसमाजी क्षेत्र में श्री जयनारायणजी पोद्दार के वंशधरों का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। पोद्दार परिवार अपनी आर्यसमाजी निष्ठा के लिए कलकत्ता के सेठों में सुप्रसिद्ध है। इस पोद्दार परिवार की वर्तमान पीढ़ी में श्री राजेन्द्र कुमारजी पोद्दार आर्यसमाज के कार्यों में विविध प्रकार से सहयोग करते रहते हैं।

श्री राजेन्द्रजी का जन्म ५ दिसम्बर, सन् १९३६ ई० को हुआ। इनके श्रद्धेय पिताजी श्री आनन्दीलालजी पोद्दार कलकत्ता के सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक जगत् में उज्ज्वल नक्षत्र की तरह दीप्तमान थे। ऐसे महान् पिता की निष्ठा, सेवा, सामाजिकता श्री राजेन्द्र बाबू को पैतृक विरासत में प्राप्त है। श्री राजेन्द्रजी एक कुशल व्यवसायी और सुलझे हुए सामाजिक कार्यकर्ता हैं। व्यवसाय के क्षेत्र में आपने अपने पैतृक व्यवसाय को आगे बढ़ाया एवं समाज और राजनीति के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिष्ठा स्थापित की। श्री राजेन्द्र बाबू सन् १९६७ ई० में जोड़ा बगान क्षेत्र से पश्चिम बंगाल विधान सभा के विधायक निर्वाचित हुए थे। सन् १९६८ ई० में आप राज्य-सभा के सदस्य बनकर दिल्ली की राजनीतिक गतिविधि में सम्मिलित

हो गये। आप सन् १९८० ई० तक बड़ी प्रतिष्ठा से भारतवर्ष के उच्च सदन—राज्यसभा के सदस्य रहे।

श्री राजेन्द्र कुमारजी पोद्दार

श्री राजेन्द्र बाबू कलकत्ता आर्यसमाज के सदस्य हैं। समाज के हर कार्य में उदारतापूर्वक सहयोगी बने रहते हैं। रघुमल आर्य विद्यालय ट्रस्ट के आप ट्रस्टी हैं। श्री राजेन्द्र बाबू का कार्यक्षेत्र बंगाल आर्य प्रतिनिधि सभा भी प्रमुख रूप से रहा है। आप वहांके वरिष्ठ उपप्रधान रहे हैं। आपके नेतृत्व में प्रान्तीय सभा का महासम्मेलन शहीद मीनार में बड़ी सफलता से मनाया गया था।

बंगाल और बिहार प्रतिनिधि सभा के सम्मिलित गुरुकुल आश्रम वैद्यनाथ धाम के आप प्रधान हैं। विभिन्न समस्याओं से गुरुकुल को उबार कर आप अपने नेतृत्व के सहारे इसे संचालित किये जा रहे हैं।

आपकी सूझबूझ और कार्यकुशलता से आर्यसमाज कलकत्ता, आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल, गुरुकुल महाविद्यालय एवं आर्यसमाज संगठन को बड़ी आशाएँ हैं।

श्री देवकीनन्दन पोद्दार

श्री देवकीनन्दन पोद्दार का जन्म १० सितम्बर १९३४ ई० को हुआ। आप कलकत्ता के प्रसिद्ध जयनारायण पोद्दार परिवार के युवा
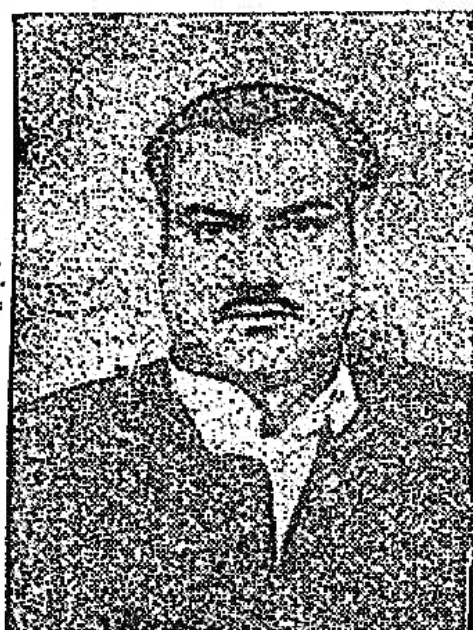
श्री देवकीनन्दनजी पोद्दार

पीढ़ी के राजनीतिक कार्यकर्ता हैं। आप श्री घासीराम पोद्दारजी के सुपुत्र हैं। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा पटना में हुई थी, किन्तु कार्यक्षेत्र कलकत्ता ही बना। आरम्भ से ही आपकी अभिरुचि राजनीति में रही है। परिवार में प्रसिद्ध उद्योगपति, समाजसेवी और राजनीति के कार्यकर्ता श्री आनन्दीलालजी पोद्दार और श्री बद्रीप्रसादजी पोद्दार जैसे सुप्रसिद्ध लोगों का सहयोग एवं आशीर्वाद श्री देवकी बाबू को आरम्भ से ही मिलता रहा है। श्री देवकीनन्दनजी पश्चिम बंग विधान सभा के कांग्रेसी विधायक हैं। आप जोड़ासाकू निर्वाचन क्षेत्र से सफल चुनाव लड़ा करते हैं।

श्री देवकीनन्दनजी सामाजिक कार्यों में भी अभिरुचि लेते हैं।

आप काशी विश्वनाथ सेवा समिति के अध्यक्ष रहे हैं। विशुद्धानन्द हॉस्पिटल, मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी, विशुद्धानन्द सरस्वती मारवाड़ी हॉस्पिटल के माध्यम से आप जनसाधारण की सेवा करते रहते हैं। आप प्रसिद्ध शिक्षण-संस्थान श्री विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय के मन्त्री हैं।

पोद्दार परिवार आर्यसमाज के प्रत्येक कार्य में सहयोगी बना रहता है। श्री देवकीनन्दनजी मूल रूप से राजनीति के सार्वजनिक व्यक्ति होकर भी यथाशक्ति आर्यसमाज के संगठनोंमें सहयोग करते रहते हैं। आप आर्यसमाज कलकत्ता द्वारा स्थापित एवं संचालित रघुमल आर्य विद्यालय के अध्यक्ष हैं, साथ ही रघुमल आर्य विद्यालय ट्रस्ट के मन्त्री भी हैं। श्री देवकीनन्दनजी आर्यसमाज के स्वरूप और पोद्दार परिवार के सेवाभाव को अक्षुण्ण रखने में प्रयत्नशील रहते हैं।

सप्तदश अध्याय

सेवाव्रती पदाधिकारी

आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना १८८५ ई० हुई और १९३५ ई० में इसकी स्वर्णजयन्ती मनायी गयी। इस बीच में अधिकारियों के रूप में किन सज्जनों का योगदान रहा इसकी सूची सन् १९३४ ई० से प्राप्त होती है। १८८५ से १९३४ ई० तक कौन-कौन अधिकारी रहे, इसका समाज में कोई रेकार्ड प्राप्त नहीं हो सका। १९३४ से आज तक के रजिस्टर अन्तरंग की कार्यवाही, वार्षिक विवरण, निर्वाचन की रिपोर्ट सभी कुछ मिल रहा है किन्तु १९३४ से पूर्व के रिकार्ड नहीं मिले। पता नहीं कहाँ नष्ट हो गये। हाँ, इतना सुयोग अवश्य मिला है कि मन्दिर की भूमि का पञ्जीकृत विक्रीपत्र, मन्दिर निर्माण का नक्शा, आर्यसमाज कलकत्ता का पञ्जीकरण का पत्र और अन्य कानूनी डाकूमेन्ट सब पूर्ण सुरक्षित रखे हुए हैं। किन्तु संघटन के कार्यवाही रजिस्टर आदि कुछ उपलब्ध न हो सके।

सन् १९३४ ई० से पूर्व प्रधान और मन्त्रियों की शृंखला अवान्तर सूचनाओं से पर्याप्त दूर तक पूर्ण उपलब्ध हो जाती है। हम सन् १९३४ ई० से आरम्भ करके आज तक के सभी अधिकारियों की सूची यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। उससे भी पूर्व अवान्तर सूचनाओं के आधार पर १९३४ से पूर्व की सूची के सम्बन्ध में हम इतिहास की शृंखला को निम्नरूप में जोड़ सकते हैं।

स्थापना के समय १८८५ ई० में श्री राजा तेजनाराणजी संस्थापक प्रधान थे और श्री बाबू महावीर प्रसादजी मन्त्री और पण्डित शंकरनाथजी पण्डित उपप्रधान थे। ये आरम्भिक दिन थे और आर्यसमाज का अधिकारी बनना काँटों का ताज पहनना था। अतः यह सहज अनुमान है कि शीघ्र ही अधिकारियों का परिवर्तन नहीं हुआ होगा। इन तीनों सज्जनों का त्रिक यावज्जीवन आर्यसमाज की सेवा में लगा रहा।

श्री राजा तेजनारायणजी का देहान्त १८९८ ई० में लण्डन में हुआ था। उनके लण्डन जाने के पश्चात् बाबू महावीर प्रसादजी भी आर्य-समाज कलकत्ता के प्रधान निर्वाचित हुए प्रतीत होते हैं। इस बीच श्री तुलसीदास दत्त, श्री बाबू टेकचन्दजी आदि का कार्यकाल है। १९०२ में आर्यकन्या विद्यालय की स्थापना हुई। १९०७ ई० में मन्दिर की भूमि-क्रय के समय और १९१० ई० में मन्दिर के निर्माण के समय तक प्रधान श्री रलारामजी थे। इसी मध्य १९०९-१२ के मध्य बैरिस्टर श्यामकृष्ण सहायजी मन्त्री बने थे। श्री गोविन्दराम हासानन्दजी भी इसी अवधि में मन्त्री थे। श्री रलारामजी, श्री छाजूरामजी, श्री तुलसी-दास दत्त, श्री बाबू टेकचन्दजी आदि का कार्यकाल पर्याप्त महत्त्वपूर्ण और दीर्घ था। आर्यसमाज मन्दिर का निर्माण, कन्या विद्यालय के भवन का निर्माण आदि कार्य इसी अवधि के हैं।

१९२३ ई० में पण्डित शंकरनाथजी पण्डित प्रधान थे। १९२६ में श्री दीपचन्द पोद्दार प्रधान और श्री हरगोविन्दजी गुप्त मन्त्री थे। १९३१-३२ में श्री गोविन्दराम हासानन्दजी मन्त्री थे। १९३३ में विष्णुदास बंसल प्रधान थे और महाशय रघुनन्दनलाल मन्त्री थे। इस प्रकार १८८५ से १९३३ तक प्रधान और मन्त्रियों की निम्न सूची अवान्तर वर्णनों के आधार पर बन जाती है—

प्रधान	मन्त्री
श्री राजा तेजनारायण सिंह	श्री बाबू महावीर प्रसादजी
श्री बाबू महावीर प्रसाद	श्री तुलसीदास दत्तजी
श्री रायसाहब रलाराम	श्री टेकचन्दजी
पण्डित शंकरनाथ पण्डित	बैरिस्टर श्यामकृष्ण सहायजी
श्री दीपचन्द पोद्दार	श्री गोविन्दराम हासानन्दजी
श्री विष्णुदास बंसल	श्री बालकृष्ण मोहता
	श्री हरगोविन्द गुप्त

सन् १९३४ से १९८५ तक के अधिकारियों की सूचना आर्यसमाज कलकत्ता के रजिस्टरों में निम्न रूप में प्राप्त होती है—

१९३४ ई०	प्रधान	: सर्वश्री विष्णुदासजी बांसल
	उप-प्रधान	: कृष्णलाल पोद्दार
	प्रधान मन्त्री	: सुरेन्दनाथजी विद्यालंकार
	प्रचार मन्त्री	: शम्भू प्रसादजी
	संयुक्त मन्त्री	: लक्ष्मीप्रसादजी
	बंग प्रचार मन्त्री	: पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री
	अर्थमन्त्री	: पं० लक्ष्मीनारायणजी
	कोषाध्यक्ष	: रामकृष्णजी गुप्त
	पुस्तकाध्यक्ष	: कनकलालजी साह
१९३५ ई०	प्रधान	: सर्वश्री सेठ दीपचन्दजी पोद्दार
	उप-प्रधान	: श्रीमती कौशल्या देवीजी,
		: श्रीहरगोविन्दजी गुप्त
	प्रधान मन्त्री	: लक्ष्मी प्रसादजी
	संयुक्त मन्त्री	: पं० सुरेन्द्रनाथजी विद्यालंकार
	प्रचार-मन्त्री	: म० नित्यानन्दजी
	बंग प्रचार-मन्त्री	: म० पारसनाथ सहायजी
	अर्थमन्त्री	: पं० लक्ष्मीनारायणजी शर्मा

कोषाध्यक्ष : सेठ कृष्णलालजी पोद्दार
पुस्तकाध्यक्ष : म० शम्भू प्रसादजी शर्मा

१९३६ ई० प्रधान : सर्वश्री सेठ दीपचन्दजी पोद्दार
उप-प्रधान : म० हरगोविन्दजी गुप्त
उप-प्रधान : श्रीमती कौशल्या देवीजी
प्रधान मन्त्री : म० लक्ष्मी प्रसादजी
संयुक्त मन्त्री : पं० सुरेन्द्रनाथजी विद्यालंकार
प्रचार-मन्त्री : म० नित्यानन्दजी
वंग प्रचार-मन्त्री : उपेन्द्रनाथजी भादुरी
अर्थमन्त्री : पं० लक्ष्मीनारायणजी शर्मा
कोषाध्यक्ष : सेठ कृष्णलालजी पोद्दार
पुस्तकाध्यक्ष : म० शम्भू प्रसादजी वर्मा

१९३७ ई० प्रधान : सर्वश्री सेठ दीपचन्दजी पोद्दार
उप-प्रधान : हरगोविन्दजी गुप्त
उप-प्रधान : श्रीमती कौशल्या देवी जी
मन्त्री : सुरेन्द्र नाथजी विद्यालंकार
संयुक्त मन्त्री : श्रीमान् म० लक्ष्मी प्रसादजी
प्रचार-मन्त्री : रघुनन्दन लालजी
प्रचार-मन्त्री : सुरेन्द नाथजी पंडित
अर्थमन्त्री : रखारामजी गम्भीर
कोषाध्यक्ष : श्रीकृष्णलालजी पोद्दार
पुस्तकाध्यक्ष : पं० प्रभुदयालजी अग्निहोत्री

१९३८ ई० प्रधान : म० हरगोविन्दजी गुप्त
उप-प्रधान : शम्भू प्रसादजी वर्मा
उप-प्रधान : पं० नन्दकिशोरजी विद्यालंकार
प्रधान मन्त्री : म० लक्ष्मीप्रसादजी

उप-मन्त्री	:	सर्वश्री पं० प्रभुदयालजी अग्निहोत्री
प्रचार-मन्त्री	:	पं० अवधबिहारी लालजी
अर्थमन्त्री	:	म० नित्यानन्दजी
बंग प्रचार-मन्त्री	:	पं० सुरेन्द्र नाथजी पंडित
कोषाध्यक्ष	:	सेठ कृष्णलालजी पोद्दार
पुस्तकाध्यक्ष	:	म० रुलियारामजी
१६४० ई० प्रधान	:	सर्वश्री पं० अयोध्या प्रसादजी
उप-प्रधान	:	पं० सुरेन्द्रनाथ विद्यालंकार
उप-प्रधान	:	सेठ आनन्दी लालजी पोद्दार
मन्त्री	:	पं० प्रभुदयालजी अग्निहोत्री
उप-मन्त्री	:	महाशय रघुनन्दन लालजी
प्रचार-मन्त्री	:	महाशय लक्ष्मण दासजी
बंग प्रचार-मन्त्री	:	पं० उपेन्द्र नाथजी भादुरी
अर्थमन्त्री	:	पं० लक्ष्मी नारायणजी शर्मा
कोषाध्यक्ष	:	सेठ रखारामजी गम्भीर
पुस्तकाध्यक्ष	:	पं० व्रजेश्वर रायजी
१६४१ ई० प्रधान	:	सेठ दीपचन्दजी पोद्दार
उप-प्रधान	:	पं० सुरेन्द्रनाथजी वि० अ०
उप-प्रधान	:	पं० ज्ञानकुमारजी चटर्जी
मन्त्री	:	म० रघुनन्दन लालजी
उप-मन्त्री	:	म० शान्ति स्वरूपजी गुप्त
उप-मन्त्री	:	राम नारायण सिंहजी
उप-मन्त्री	:	मनीन्द्रनाथजी बैसाख
कोषाध्यक्ष	:	पं० शम्भू नाथजी शर्मा
अर्थमन्त्री	:	म० शम्भू प्रसादजी वर्मा
पुस्तकाध्यक्ष	:	म० रुलियारामजी गुप्त

आर्यसमाज कलकत्ता का वार्षिक विवरण रजिस्टर देखने से विदित होता है कि १६४१ ई० के पश्चात् १६४२ ई० और १६४३ ई० में न वार्षिक साधारण सभा हुई है और न निर्वाचन ही हुआ है। ऐसा अनुमान है कि इन वर्षों में कलकत्ता की स्थिति असामान्य थी। द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण यह भगदड़ का समय था। रजिस्टर में १६४१ ई० की कार्यवाही की संपुष्टि १६४४ ई० की साधारण सभा में हुई थी।

१६४४ ई०	प्रधान	: सर्वश्री सेठ कृष्णलालजी पोद्दार
	उप-प्रधान	: शम्भु प्रसादजी वर्मा
	मन्त्री	: शान्ति स्वरूपजी गुप्त
	उप-मन्त्री	: रुलियारामजी गुप्त
	प्रचार-मन्त्री	: शिवचन्दजी विद्याविनोद
	कोषाध्यक्ष	: जांइया साहजी
	पुस्तकाध्यक्ष	: व्रजेश्वर रायजी
१६४५ ई०	प्रधान	: सर्वश्री मिहिरचन्दजी धीमान
	उप-प्रधान	: सुरेन्द्र नाथजी पण्डित
	उप-प्रधान	: सुरेन्द्र नाथजी विद्यालंकार
	उप-प्रधान	: विज्ञानचन्द्रजी बसु
	मन्त्री	: रायसाहब प्रो० रामनारायण सिंह
	संयुक्त मन्त्री	: व्रजेश्वर रायजी
	प्रचार-मन्त्री	: रामचन्द्रजी आर्य
	कोषाध्यक्ष	: जांइया शाहजी
	पुस्तकाध्यक्ष	: तुलसीरामजी विशारद
१६४६ ई०	प्रधान	: सर्वश्री कृष्णलालजी पोद्दार
	उप-प्रधान	: मिहिरचन्दजी धीमान
	उप-प्रधान	: सुरेन्द्रनाथजी पण्डित

उप-प्रधान	:	सर्वश्री पं० सुरेन्द्रनाथजी विद्यालंकार
मन्त्री	:	म० रघुनन्दन लालजी
संयुक्त मन्त्री	:	प्रो० रामनारायण सिंह
संयुक्त मन्त्री	:	शान्ति स्वरूपजी गुप्त
१९४७ ई० प्रधान	:	कृष्णलालजी पोद्दार
उप-प्रधान	:	पं० मिहिरचन्दजी धीमान
उप-प्रधान	:	पं० सुरेन्द्रनाथजी विद्यालंकार
उप-प्रधान		..।० रामनारायण सिंह
मन्त्री	:	पं० रघुनन्दन लालजी
संयुक्त मन्त्री	:	शान्ति स्वरूपजी गुप्त
संयुक्त मन्त्री	:	पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री
उप-मन्त्री	:	ब्रजेश्वर रायजी
प्रचार-मन्त्री	:	रामचन्द्रजी आर्य
कोषाध्यक्ष	:	नित्यानन्दजी
पुस्तकाध्यक्ष		पं० रामतीर्थ जी एम० ए०
१९४८ ई० प्रधान	:	सर्वश्री कृष्ण लालजी पोद्दार
उप-प्रधान	:	पं० सुरेन्द्रनाथजी विद्यालंकार
उप-प्रधान	:	रखारामजी गम्भीर
उप-प्रधान	:	विमान चन्द्रजी वसु
मन्त्री	:	रघुनन्दन लालजी
मन्त्री	:	रामनारायण सिंहजी
उप-मन्त्री	:	श्री ए० आर० भारद्वाज
उप-मन्त्री	:	रामतीर्थजी भारद्वाज
कोषाध्यक्ष	:	मुरलीधरजी महोदिया
पुस्तकाध्यक्ष	:	नन्दलालजी
१९४९ ई० प्रधान	:	सर्वश्री रखारामजी गम्भीर

उप-प्रधान	:	सर्वश्री सुरेन्द्र नाथजी पण्डित
उप-प्रधान	:	बैजनाथ प्रसादजी
उप-प्रधान	:	गंगाप्रसादजी भौतिका
मन्त्री	:	नित्यानन्दजी
उप-मन्त्री	:	रामचन्द्रजी
उप-मन्त्री	:	तुलसीरामजी गुप्त
कोषाध्यक्ष	:	रुलियारामजी गुप्त
पुस्तकाध्य	:	जंगीलालजी
१९५० ई० प्रधान	:	सर्वश्री कृष्णलालजी पोद्दार
उप-प्रधान	:	हंसराजजी हाडा
उप-प्रधान	:	रखारामजी गम्भीर
उप-प्रधान	:	सुरेन्द्र नाथजी पण्डित
मन्त्री	:	ए० आर० जी भरद्वाज
संयुक्त मन्त्री	:	श्रीराम खट्टरजी
उप-मन्त्री	:	गोपाल दासजी
कोषाध्यक्ष	:	रुलियारामजी गुप्त
पुस्तकाध्यक्ष	:	जंगीलालजी
१९५१ ई० प्रधान	:	सर्वश्री हंसराजजी हाण्डा
उप-प्रधान	:	रखारामजी गम्भीर
उप-प्रधान	:	सुरेन्द्रनाथजी पण्डित
उप-प्रधान	:	गंगाप्रसादजी भोतिका
मन्त्री	:	ए० आर० जी भारद्वाज
संयुक्त मन्त्री	:	श्रीरामजी खट्टर
उप-मन्त्री	:	ब्रजेश्वर राजजी
कोषाध्यक्ष	:	सूर्यमलजी घीया
पुस्तकाध्यक्ष	:	नन्दलालजी आर्य
१९५२ ई० प्रधान	:	सर्वश्री कृष्णलाल पोद्दार

उप-प्रधान	:	सर्वश्री रघुनन्दन लालजी
उप-प्रधान	:	मिहिरचन्दजी धीमान
उप-प्रधान	:	सुरेन्द्रनाथजी पण्डित
मन्त्री	:	ए० आर० जी भरद्वाज
उप-मन्त्री	:	श्रीरामजी खट्टर
उप-मन्त्री	:	गुमान सिंहजी
उप-मन्त्री	:	ब्रजेश्वर रायजी
कोषाध्यक्ष	:	सूरजमलजी घीया
पुस्तकाध्यक्ष	:	नन्दलालजी आर्य
१९५३ ई० प्रधान	:	सर्वश्री रघुनन्दनलालजी
उप-प्रधान	:	गंगाप्रसादजी भोतिका
उप-प्रधान	:	सुरेन्द्रनाथजी पण्डित
उप-प्रधान	:	रुलियारामजी गुप्त
मन्त्री	:	गुमान सिंहजी
उप-मन्त्री	:	श्रीरामजी खट्टर
उप-मन्त्री	:	सुखदेवजी शर्मा
कोषाध्यक्ष	:	सूरजमलजी घीया
पुस्तकालय	:	नन्दलालजी
१९५४ ई० प्रधान	:	सर्वश्री महाशय रघुनन्दनलालजी
उप-प्रधान	:	हंसराजजी चड्ढा
उप-प्रधान	:	गंगाप्रसादजी भोतिका
मन्त्री	:	ए० आर० जी भारद्वाज
उप-मन्त्री	:	सुखदेवजी शर्मा
उप-मन्त्री	:	अमरनाथजी शर्मा
कोषाध्यक्ष	:	सूरजमलजी घीया
पुस्तकाध्यक्ष	:	नन्दलालजी आर्य

१६५५ ई० प्रधान : सर्वश्री रघुनन्दन लालजी
उप-प्रधान : सौदागरमलजी चोपड़ा
उप-प्रधान : हंसराजजी चड्ढा
मन्त्री : ए० आर० जी भारद्वाज
उप-मन्त्री : सुखदेवजी शर्मा
प्रचार-मन्त्री : हुकूमतरायजी खोसला
कोषाध्यक्ष : प्रकाशचन्दजी पोद्दार
पुस्तकाध्यक्ष : सूरजमलजी घीया

१६५६ ई० प्रधान : सर्वश्री देवीप्रसाद मस्करा
उप-प्रधान : गोपालदास गुप्त
उप-प्रधान : सौदागरमल चोपड़ा
उप-प्रधान : हंसराज चड्ढा
मन्त्री : ए० आर० भारद्वाज
उप-मन्त्री : हुकूमतराम खोसला
उप-मन्त्री : प्रकाशचन्द्र पोद्दार
उप-मन्त्री : लक्ष्मणदास खन्ना
कोषाध्यक्ष : सूरजमल घीया
पुस्तकाध्यक्ष : नन्दलाल आर्य

१६५७ ई० प्रधान : सर्वश्री देवी प्रसाद मस्करा
उप-प्रधान : गोपालदास गुप्त
उप-प्रधान : रुलियाराम गुप्त
उप-प्रधान : सौदागरमल चोपड़ा
मन्त्री : कृष्णलाल खट्टर
उप-मन्त्री : प्रकाशचन्द्र पोद्दार
उप-मन्त्री : सुखदेव शर्मा
प्रचार-मन्त्री : हुकूमत राय खोसला

	कोषाध्यक्ष	: सर्वश्री सूरजमल घीया
	पुस्तकाध्यक्ष	: रघुनन्दनलालजी
१९५८ ई०	प्रधान	: सर्वश्री देवी प्रसाद मस्करा
	उप-प्रधान	: राजेन्द्र सिंह मल्लिक
	उप-प्रधान	: सौदागरमल चोपड़ा
	उप-प्रधान	: रुलियाराम गुप्त
	मन्त्री	: कृष्णलाल खट्टर
	उप-मन्त्री	: उमाकान्त उपाध्याय
	उप-मन्त्री	: प्रकाश चन्द्र पोद्दार
	उप-मन्त्री	: हुकूमत राय खोसला
	कोषाध्यक्ष	: जाइयां शाहजी
	पुस्ताकाध्यक्ष	: म० रघुनन्दनलालजी
	सहायक पुस्तकाध्यक्ष	: महेन्द्र प्रताप
१९५९ ई०	प्रधान	: सर्वश्री गंगा प्रसाद भोतिका
	उप-प्रधान	: म० रघुनन्दन लाल
	उप-प्रधान	: सौदागरमल चोपड़ा
	उप-प्रधान	: रुलियाराम गुप्त
	मन्त्री	: ए० आर० भारद्वाज
	उप-मन्त्री	: बलवीर खोसला
	उप-मन्त्री	: उमाकान्त उपाध्याय
	प्रचार-मन्त्री	: हुकूमतराय खोसला
	सहायक प्रचार-मन्त्री	: रामगोपाल गुप्त
	कोषाध्यक्ष	: सूरजमल घीया
१९६० ई०	प्रधान	: सर्वश्री गंगा प्रसाद भोतिका
	उप-प्रधान	: महाशय रघुनन्दन लाल
	उप-प्रधान	: देवी प्रसाद मस्करा
	उप-प्रधान	: हरिश्चन्द्र वर्मा

	मन्त्री	: सर्वश्री ए० आर० भारद्वाज
	उप-मन्त्री	: बलवीर चन्द्र खोसला
	उप-मन्त्री	: प्यारेलाल मनचन्दा
	प्रचार-मन्त्री	: हुकूमत राय खोसला
	कोषाध्यक्ष	: सूरजमल घीया
	पुस्तकाध्यक्ष	: महेन्द्र प्रताप
१९६१ ई०	प्रधान	: सर्वश्री महाशय रघुनन्दन लाल
	उप-प्रधान	: हरिश्चन्द्र वर्मा
	उप-प्रधान	: राजेन्द्र सिंह मल्लिक
	उप-प्रधान	: सौदागरमल चोपड़ा
	मन्त्री	: सुखदेव शर्मा
	उप-मन्त्री	: बलवीर खोसला
	प्रचार-मन्त्री	: ज्योति स्वरूप गिडला
	उप-मन्त्री	: हुकूमत राय खोसला
	कोषाध्यक्ष	: सूरजमल घीया
	पुस्तकाध्यक्ष	: महेन्द्र प्रताप
१९६२ ई०	प्रधान	: सर्वश्री रघुनन्दन लाल
	उप-प्रधान	: रलियाराम गुप्त
	उप-प्रधान	: हरिश्चन्द्र वर्मा
	उप-प्रधान	: राजेन्द्रसिंह मल्लिक
	मन्त्री	: सुखदेव शर्मा
	उप-मन्त्री	: बलवीर खोसला
	उप-मन्त्री	: प्यारेलाल मनचन्दा
	उप-मन्त्री	: ज्योति स्वरूप गिडला
	उप-मन्त्री	: उमाकान्त उपाध्याय
	कोषाध्यक्ष	: सूरजमल घीया
	पुस्तकाध्यक्ष	: महेन्द्र प्रताप

१९६३ ई० प्रधान : सर्वश्री हरिश्चन्द्र वर्मा
उप-प्रधान : रुलियाराम गुप्त
उप-प्रधान : राजेन्द्र सिंह मल्लिक
उप-प्रधान : देवी प्रसाद मस्करा
मन्त्री : सुखदेव शर्मा
उप-मन्त्री : पूनमचन्द आर्य
उप-मन्त्री : ज्योति स्वरूप गिडला
उप-मन्त्री : श्रीकान्त उपाध्याय
उप-मन्त्री : बलवीरचन्द खोसला
कोषाध्यक्ष : सूरजमल घीया
पुस्तकाध्यक्ष : महेन्द्र प्रताप आर्य

१९६४ ई० प्रधान : सर्वश्री हरिश्चन्द्र वर्मा
उप-प्रधान : रुलियाराम गुप्त
उप-प्रधान : छबीलदास सैनी
उप-प्रधान : विष्णुदत्त जी
मन्त्री : राजेन्द्र सिंह मल्लिक
उप-मन्त्री : पूनमचन्द आर्य
उप-मन्त्री : बलवीरचन्द खोसला
उप-मन्त्री : श्रीकान्त उपाध्याय
कोषाध्यक्ष : सूरजमल घीया
पुस्तकाध्यक्ष : सुदर्शन कुमार कपूर

१९६५ ई० प्रधान : सर्वश्री हरिश्चन्द्र वर्मा
उप-प्रधान : राजेन्द्र सिंह मल्लिक
उप-प्रधान : छबीलदास सैनी
मन्त्री : पूनमचन्द्र आर्य
उप-मन्त्री : श्यामकुमार राव

	उप-मन्त्री	: सर्वश्री प्यारेलाल मनचन्दा
	उप-मन्त्री	: अमरसिंह सैनी
	कोषाध्यक्ष	: किशोरीलाल दवे
	पुस्तकाध्यक्ष	: रामेश्वर दयाल गुप्त
१९६६ ई०	प्रधान	: सर्वश्री सुखदेव शर्मा
	उप-प्रधान	: छबीलदास सैनी
	उप-प्रधान	: रुलियाराम गुप्त
	मन्त्री	: पूनमचन्द आर्य
	उप-मन्त्री	: श्यामकुमार राव
	उप-मन्त्री	: अमरसिंह सैनी
	कोषाध्यक्ष	: प्रकाशचन्द पोद्दार
	पुस्तकाध्यक्ष	: दूधनाथ लाल
१९६७ ई०	प्रधान	: सर्वश्री रुलियारामजी गुप्त
	उप-प्रधान	: ओम् प्रकाशजी गोयल
	उप-प्रधान	: छबीलदासजी सैनी
	मन्त्री	: पूनमचन्दजी आर्य
	उप-मन्त्री	: श्यामकुमारजी राव
	उप-मन्त्री	: अमरसिंहजी सैनी
	कोषाध्यक्ष	: श्रीरामजी जायसवाल
	पुस्तकाध्यक्ष	: महाशय रघुनन्दन लालजी
	उप-पुस्तकाध्यक्ष	: ज्योति स्वरूपजी गिडला
१९६८ ई०	प्रधान	: सर्वश्री रुलियारामजी गुप्त
	उप-प्रधान	: ओम् प्रमाशजी गोयल
	उप-प्रधान	: पूनमचन्दजी आर्य
	मन्त्री	: छबीलदासजी सैनी
	उप-मन्त्री	: अतुलकान्तजी गुप्त

	उप-मन्त्री	:	सर्वश्री दशरथलालजी गुप्त
	प्रचार-मन्त्री	:	लक्ष्मणजी सिंह
	पुस्तकाध्यक्ष	:	महाशय रघुनन्दनजी लाल
	उप-पुस्तकाध्याक्ष	:	ज्योति स्वरूपजी गिडला
	कोषाध्यक्ष	:	सत्यानन्दजी आर्य
१९६९ ई०	प्रधान	:	रुलियारामजी गुप्त
	उप-प्रधान	:	ओम् प्रकाशजी गोयल
	उप-प्रधान	:	पूनमचन्दजी आर्य
	मन्त्री	:	छबील दासजी सैनी
	उप-मन्त्री	:	दशरथ लालजी गुप्त
	उप-मन्त्री	:	अमर सिंहजी सैनी
	प्रचार-मन्त्री	:	सोमदेवजी गुप्त
	उप-प्रचार-मन्त्री	:	श्रीरामजी जयसवाल
	कोषाध्यक्ष	:	सत्यानन्दजी आर्य
	पुस्तकाध्यक्ष	:	महाशय रघुनन्दन लालजी
	उप-पुस्तकाध्यक्ष	:	सतीशचन्द्रजी श्रीवास्तव
१९७० ई०	प्रधान	:	सर्वश्री बनारसी दासजी आरोड़ा
	उप-प्रधान	:	ओम् प्रकाशजी गोयल
	उप-प्रधान	:	प्यारेलालजी मनचन्दा
	मन्त्री	:	छबीलदासजी सैनी
	उप-मन्त्री	:	दशरथ लालजी गुप्त
	उप-मन्त्री	:	श्रीरामजी जयसवाल
	प्रचार-मन्त्री	:	शिवदासजी गुप्त
	उप-प्रचार-मन्त्री	:	बासुदेवजी साहू
	कोषाध्यक्ष	:	श्रीनाथदासजी गुप्त
	पुस्तकाध्यक्ष	:	रघुनन्दन लाल आर्य
	उप-पुस्तकाध्यक्ष	:	सतीशकुमारजी श्रीवास्तव

१९७१ ई० प्रधान	:	सर्वश्री बनारसीदासजी आरोड़ा
उप-प्रधान	:	प्यारेलालजी मनचन्दा
उप-प्रधान	:	छबीलदासजी सैनी
उप-प्रधान	:	लक्ष्मण सिंहजी
मन्त्री	:	श्रीनाथदासजी गुप्त
उप-मन्त्री	:	श्रीरामजी जयसवाल
उप-मन्त्री	:	अमरसिंहजी सैनी
कोषाध्यक्ष	:	सत्यानन्दजी आर्य
प्रचार-मन्त्री	:	दशरथ लालजी गुप्त
उप-प्रचार-मन्त्री	:	किशोरी लालजी दवे
पुस्तकाध्यक्ष	:	रघुनन्द लालजी आर्य
उप-पुस्तकाध्यक्ष	:	धीरेन्द्र कुमार झाजी
१९७२ ई० प्रधान	:	सर्वश्री बनारसी दासजी आरोड़ा
उप-प्रधान		लक्ष्मण सिंह जी
उप-प्रधान	:	छबीलदासजी सैनी
उप-प्रधान	:	रलियारामजी गुप्त
मन्त्री	:	कृष्णलालजी खट्टर
उप-मन्त्री	:	यशपालजी वेदालंकार
उप-मन्त्री	:	श्रीरामजी जायसवाल
उप-मन्त्री	:	अमरसिंहजी सैनी
कोषाध्यक्ष	:	श्रीनाथदासजी गुप्त
पुस्तकाध्यक्ष	:	महाशय रघुनन्दन लालजी
उप-पुस्तकाध्यक्ष	:	दशरथलालजी गुप्त
१९७३ ई० प्रधान	:	सर्वश्री छबील दासजी सैनी
उप-प्रधान	:	लक्ष्मण सिंहजी
उप-प्रधान	:	रलियारामजी गुप्त

	उप-प्रधान	:	सर्वश्री प्यारेलालजी मनचन्दा
	मन्त्री	:	कृष्णलालजी खट्टर
	उप-मन्त्री	:	यशपाल वेदालंकारजी
	उप-मन्त्री	:	श्रीराम जायसवालजी
	उप-मन्त्री	:	श्रीमती सुनीति देवी शर्मा
	कोषाध्यक्ष	:	रामस्वरूप खन्नाजी
	पुस्तकाध्यक्ष	:	महाशय रघुनन्दन लालजी
	उप-पुस्तकाध्यक्ष	:	सत्यनारायण सेठजी
१९७४ ई०	प्रधान	:	सर्वश्री सीताराम आर्य
	उप-प्रधान	:	श्रीमती विद्यावत्ती सभरवाल
	उप-प्रधान	:	रुलियाराम गुप्त
	उप-प्रधान	:	छबीलदास सैनी
	मन्त्री	:	लक्ष्मण सिंह
	उप-मन्त्री	:	श्रीराम जायसवाल
	उप-मन्त्री	:	रामलखन सिंह
	उप-मन्त्री	:	शीतल प्रसाद आर्य
	कोषाध्यक्ष	:	श्रीनाथदास गुप्त
	पुस्तकाध्यक्ष	:	कुलभूषण सभरवाल
	उप-पुस्तकाध्यक्ष	:	श्री धीरेन्द्र कुमार झा
१९७५ ई०	प्रधान	:	सर्वश्री सीताराम आर्य
	उप-प्रधान	:	पूनमचन्द आर्य
	उप-प्रधान	:	छबीलदास सैनी
	उप-प्रधान	:	श्रीमती विद्यावती दत्ता
	मन्त्री	:	लक्ष्मण सिंह
	उप-मन्त्री	:	रामलखन सिंह
	उप-मन्त्री	:	शीतल प्रसाद आर्य

	उप-मन्त्री	: सर्वश्री श्रीमती सुनीति देवी शर्मा
	कोषाध्यक्ष	: श्रीनाथदास गुप्त
	पुस्तकाध्यक्ष	: राजकुमार आर्य
	उप-पुस्तकाध्यक्ष	: सत्य नारायण आर्य
१९७६ ई०	प्रधान	: सर्वश्री पूनमचन्द आर्य
	उप-प्रधान	: लक्ष्मण सिंह
	उप-प्रधान	: सुखदेव शर्मा
	उप-प्रधान	: विद्यावती दत्ता
	मन्त्री	: श्रीनाथदास गुप्त
	उप-मन्त्री	: गणेशप्रसाद जायसवाल
	उप-मन्त्री	: श्रीराम आर्य
	उप-मन्त्री	: राधकृष्ण ओझा
	कोषाध्यक्ष	: रामयश आर्य
	पुस्तकाध्यक्ष	: राजकुमार आर्य
	उप-पुस्तकाध्यक्ष	: अशोक कुमार सिंह
१९७७ ई०	प्रधान	: सर्वश्री पूनमचन्द आर्य
	उप-प्रधान	: लक्ष्मण सिंह
	उप-प्रधान	: सुखदेव शर्मा
	उप-प्रधान	: श्रीमती विद्यावती दत्ता
	मन्त्री	: श्रीनाथदास गुप्त
	उप-मन्त्री	: राधाकृष्ण ओझा
	उप-मन्त्री	: श्रीराम आर्य
	उप-मन्त्री	: शीतलप्रसाद आर्य
	कोषाध्यक्ष	: रामयश आर्य
	पुस्ताकाध्यक्ष	: राजकुमार आर्य
	उप-पुस्तकाध्यक्ष	: अशोक कुमार सिंह

१९७८ ई०	प्रधान	:	सर्वश्री सीताराम आर्य
	उप-प्रधान	:	लक्ष्मण सिंह
	उप-प्रधान	:	सुखदेव शर्मा
	उप-प्रधान	:	श्रीमती विद्यावती दत्ता
	मन्त्री	:	श्रीनाथदास गुप्त
	उप-मन्त्री	:	श्रीराम आर्य
	उप-मन्त्री	:	अमरसिंह सैनी
	उप-मन्त्री	:	गणेश प्रसाद जायसवाल
	कोषाध्यक्ष	:	रामयश आर्य
	पुस्तकाध्यक्ष	:	राधाकृष्ण ओझा
	उप-पुस्तकाध्यक्ष	:	सत्यनारायण आर्य
१९७९ ई०	प्रधान	:	सर्वश्री सीताराम आर्य
	उप-प्रधान	:	रलियाराम गुप्त
	उप-प्रधान	:	श्रीनाथदास गुप्त
	उप-प्रधान	:	छबीलादास सैनी
	मन्त्री	:	कृष्णलाल खट्टर
	उप-मन्त्री	:	ईश्वरचन्द्र आर्य
	उप-मन्त्री	:	रामयश आर्य
	उप-मन्त्री	:	अशोक कुमार सिंह
	कोषाध्यक्ष	:	पूनमचन्द आर्य
	पुस्तकाध्यक्ष	:	राधाकृष्ण ओझा
	उप-पुस्तकाध्यक्ष	:	दूधनाथ लाल
	उप-पुस्तकाध्यक्ष	:	सत्यनारायण आर्य
१९८० ई०	प्रधान	:	सर्वश्री सीताराम आर्य
	उप-प्रधान	:	रलियाराम गुप्त
	उप-प्रधान	:	यशपाल वेदालंकार

	उप-प्रधान	:	सर्वश्री श्रीनाथदास गुप्त
	मन्त्री	:	कृष्णलाल खट्टर
	उप-मन्त्री	:	अशोक कुमार सिंह
	उप-मन्त्री	:	ईश्वरचन्द्र आर्य
	उप-मन्त्री	:	किशोरीलाल दवे
	कोषाध्यक्ष	:	रामयश आर्य
	पुस्तकाध्यक्ष	:	देवव्रत आर्य
	उप-पुस्तकाध्यक्ष	:	सुरेश कुमार अग्रवाल
१९८१ ई०	प्रधान	:	सर्वश्री रुलियाराम गुप्त
	उप-प्रधान	:	लक्ष्मण सिंह
	उप-प्रधान	:	छबीलादास सैनी
	उप-प्रधान	:	सुखदेव शर्मा
	मन्त्री	:	राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल
	उप-मन्त्री	:	ईश्वरचन्द्र आर्य
	उप-मन्त्री	:	मनीराम आर्य
	उप-मन्त्री	:	अमरसिंह आर्य
	कोषाध्यक्ष	:	रामयश आर्य,
	पुस्तकाध्यक्ष	:	देवव्रत आर्य
	उप-पुस्तकाध्यक्ष	:	सुरेश अग्रवाल
१९८२ ई०	प्रधान	:	सर्वश्री रुलियाराम गुप्त
	उप-प्रधान	:	लक्ष्मण सिंह
	उप-प्रधान	:	छबीलादास सैनी
	उप-प्रधान	:	सुखदेव शर्मा.
	मन्त्री	:	राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल
	उप-मन्त्री	:	ईश्वरचन्द्र आर्य
	उप-मन्त्री	:	मनीराम आर्य
	उप-मन्त्री	:	अमरसिंह सैनी

	कोषाध्यक्ष	: सर्वश्री रामयश आर्य
	पुस्तकाध्यक्ष	: देवव्रत आर्य
	उप-प्रधान	: सुरेश कुमार अग्रवाल
१९८३ ई०	प्रधान	: सर्वश्री रुलियाराम गुप्त
	उप-प्रधान	: सुखदेव शर्मा
	उप-प्रधान	: लक्ष्मण सिंह
	उप-प्रधान	: छबीलदास सैनी
	मन्त्री	: राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल
	उप-मन्त्री	: अशोक कुमार सिंह
	उप-मन्त्री	: मनीराम आर्य
	उप-मन्त्री	: मन्शाराम वर्मा
	कोषाध्यक्ष	: रामयश आर्य
	पुस्तकाध्यक्ष	: राधाकृष्ण ओझा
	उप-पुस्तकाध्यक्ष	: देवव्रत आर्य
	उप-पुस्तकाध्यक्ष	: सुरेश कुमार अग्रवाल
१९८४ ई०	प्रधान	: सर्वश्री रुलियाराम गुप्त
	उप-प्रधान	: श्रीमती विद्यावती दत्ता
	उप-प्रधान	: लक्ष्मण सिंह
	उप-प्रधान	: छवील दास सैनी
	मन्त्री	: राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल
	उप-मन्त्री	: अशोक कुमार सिंह
	उप-मन्त्री	: मन्शाराम वर्मा
	उप-मन्त्री	: मनीराम आर्य
	कोषाध्यक्ष	: श्रीनाथदास गुप्त
	पुस्तकाध्यक्ष	: वेदव्रत आर्य
	उप-पुस्तकाध्यक्ष	: सत्य नारायण आर्य
	उप-पुस्तकाध्यक्ष	: कुलभूषण सभरवाल

१९८५ ई०	प्रधान	:	सर्वश्री सीताराम आर्य
	उप-प्रधान	:	सुखदेव शर्मा
	उप-प्रधान	:	श्रीमती विद्यावती दत्ता
	उप-प्रधान	:	शिवचन्दराय अग्रवाल
	मन्त्री	:	पूनमचन्द आर्य
	संयुक्त मन्त्री	:	राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल
	उप-मन्त्री	:	मन्शाराम वर्मा
	प्रकाशन-मन्त्री	:	अच्छेलाल जायसवाल
	प्रचार-मन्त्री	:	अमरसिंह सैनी
	कोषाध्यक्ष	:	श्रीनाथदास गुप्त
	पुस्तकाध्यक्ष	:	घनश्याम मौर्य
	उप-पुस्तकाध्यक्ष	:	सत्य नारायण आर्य
	उप-पुस्तकाध्यक्ष	:	मनीराम आर्य

अष्टादश अध्याय

पूर्व पुरुष : पुण्य पुरुष

इतिहास जहाँ एक ओर 'इतिवृत्त' का समीक्षात्मक विवरण है, वहीं पूर्व पुरुषों के यश की धरोहर और उनके क्रिया-कलापों का तटस्थ विवरण भी है। यह समीक्षात्मकता और तटस्थता इतिहास-लेखक के लेखकत्व का निकष है। इतिहास-लेखक जब किसी धारा का श्रद्धालु अनुगामी और पूर्व पुरुषों का गुणमुग्ध सहगामी हो तो उसकी स्थिति कुछ अधिक कठिन हो जाती है। इस अध्याय में हमने पूर्व पुरुषों के पुण्य-चरित्र-विवरण प्रस्तुत करने का यावच्छक्य प्रयास किया है।

इस विवरण के एकत्र करने में कई कठिनाइयाँ आयीं। एकाध का तो पूर्वाभास भी था। कलकत्ता परदेशियों का नगर है। यहाँ लोग व्यवसाय, नौकरी, आजीविका की तलाश में आते हैं। कुछ वर्ष यहाँ रहते हैं और अपनी क्षमता और प्रतिभा के अनुकूल इस विस्तीर्ण गगन में चमचमाकर या टिमटिमाकर पुनः अपनी जन्मभूमि को लौट जाते हैं। कुछ के परिवार यहीं रह जाते हैं, शेष का कलकत्ता में कुछ चित्र भी अवशिष्ट नहीं रह जाता। ऐसे कई पूर्व पुरुषों के उदात्त पुण्य चरित्र इस इतिहास की धारा में झाँकते दिखाई पड़ रहे हैं, किन्तु उनके सम्बन्ध में हम कुछ अधिक नहीं जान पाये। एक ही उदाहरण से अपनी बात स्पष्ट कर दूँ।

रायबहादुर रलारामजी कलकत्ता आये और जितने वर्षों रहे, जाज्वल्यमान नक्षत्र के समान उद्दीप्त रहे। आर्यसमाज कलकत्ता का

मन्दिर, इसकी विशालता, सुदृढ़ता इसका एक-एक ईंट उस निस्पृह व्यक्ति का मौन यशोगान कर रहा है। किन्तु उनके सम्बन्ध में कुछ अधिक पता न चला। स्थायी पता कैम्पबेल रोड कराँची दिया हुआ है। जो कुछ हम संग्रह कर पाये, उसीमें सन्तोष करना पड़ा। ऐसे दर्जनों व्यक्ति हैं जिनका नाम अधिकारियों की सूची में है किन्तु उनका इतिवृत्त विस्मृति में विलीन हो गया है।

इस कठिनाई का कुछ-कुछ आभास हमें आरम्भ से ही होने लगा था।

हमें एक और असुविधा भोगनी पड़ी, जिसका पूर्व अनुमान न था। कई व्यक्तियों का परिवार है, बाल-बच्चे पढ़े-लिखे, खाते-पीते सम्पन्न व्यक्ति हैं, कई तो स्वयं भी जीवित हैं। उनका असहयोग या उदासीनता अति नैराश्यजनक, कई बार तो, वेदनाकारी भी प्रतीत हुई। फिर भी जो कुछ सूत्र हाथ लगे और जितनी सामग्री हम सूत्रित कर सके, उसके लिए हमें सन्तोष है, प्रसन्नता है।

राजा तेजनारायण सिंहजी

आर्यसमाज कलकत्ता के इतिहास के साथ भागलपुर के प्रसिद्ध जमींदार राजा तेजनारायण सिंह का सम्बन्ध स्वतः ही जुड़ जाता है। आप रईस थे, सम्पन्न थे और स्वामी दयानन्द के भक्त थे। सन् १८८५ ई० में जब आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना हुई तो राजा तेजनारायण सिंहजी आर्यसमाज कलकत्ता के संस्थापक प्रधान बनाये गये। उस समय प्रसिद्ध विद्वान् पं० शंकरनाथ पण्डित आर्यसमाज के संस्थापक उप-प्रधान बने और बाबू महावीर प्रसादजी आर्यसमाज कलकत्ता के संस्थापक मन्त्री बने। श्री महावीरजी भी राजा तेजनारायण सिंह के सम्बन्धी और व्यावसायिक प्रधान कार्यकर्त्ता थे। आर्यसमाज कलकत्ता में उनके सहयोग का श्रेय भी राजा तेजनारायणजी को ही है।

राजा तेजनारायण सिंह का परिवार भागलपुर में रहता था। इनके

पूर्वज लखनऊ में नवाबगंज के रहने वाले थे। यहाँ से कलवार वंश के शाह खड़गी दासजी भागलपुर की व्यावसायिक मण्डी में आकर बस गये। खड़गी दास के पुत्र साहु नन्दी लालजी थे। साहु नन्दी लालजी के घर बाबू लक्ष्मीनारायणजी का जन्म हुआ। राजा तेजनारायण सिंहजी इन्हीं बाबू लक्ष्मीनारायणजी के सुपुत्र थे। कलवार क्षत्रिय मित्र की सूचना के अनुसार राजा तेजनारायणजी का जन्म संवत् १९०९ की कार्तिक मास की अमावास्या को गुरुवार के दिन हुआ था। रईस तो ये थे ही। इनके पूज्य पिताजी बाबू लक्ष्मीनारायणजी ने इन्हें गवर्नमेन्ट हाई स्कूल भागलपुर में अंग्रेजी की शिक्षा दिलायी। बाबू तेजनारायणजी बड़े कुशाग्रबुद्धि थे और उन्होंने शिक्षा में अच्छी सफलता प्राप्त की, किन्तु १७ वर्ष की कच्ची आयु में ही आपके पिताजी का शाश्वतिक वियोग हो गया। पिताजी के देहान्त के पश्चात् इस अल्पायु में ही आपको सब ताल्लुकेदारी के काम सम्हालने पड़े। सरकार ने आपको रायबहादुर की पदवी से विभूषित किया। प्रजा-पालन, अपने ताल्लुके में कुआँ, तालाब, नालियाँ, बांध आदि का लाखों रुपयों के व्यय से निर्माण कराया। राजा तेजनारायणजी ने भागलपुर में एक स्कूल भी खोला और राजा तेजनारायण डिग्री कालेज भी भागलपुर में चालू कर दिया। सन् १८८७ ई० में सरकार ने आपको रायसाहब का खिताब दिया था।

स्वामी दयानन्द के सम्पर्क में :

स्वामी दयानन्दजी सरस्वती कलकत्ता आने से पूर्व भागलपुर गये थे और भागलपुर की सुबुद्ध देश-जाति-प्रेमी जनता पर स्वामीजी के आगमन का अच्छा प्रभाव पड़ा था। ऐसा सहज अनुमान है कि तेजनारायणजी भागलपुर से ही स्वामी दयानन्दजी के मिशन के समर्थक बन गये थे।

राजा तेजनारायणजी उदार दानी थे और देशप्रेमी थे। जाति-

उत्थान की भावना उनमें काम कर रही थी। उस समय कलकत्ता देश की राजधानी थी और बंगाल-बिहार का सारा राजनयिक कार्य कलकत्ता को केन्द्र करके ही चल रहा था। राजा तेजनारायण ने कलकत्ता में मोजे, बनियाइन आदि बनाने का एक कारखाना शुरू किया था और उनकी ओर से यहाँ का कार्य उनके सम्बन्धी बाबू महावीर प्रसादजी देखते थे। वैसे बाबू महावीर प्रसादजी थे तो आर्य-समाज कलकत्ता के मन्त्री, किन्तु राजा तेजनारायणजी का प्राय:

राजा तेजनारायणजी सिंह

कलकत्ता में रहना कम होता था, अतः बाबू महावीर प्रसादजी ही प्रधानजी भी कहलाते थे।

आर्यसमाज कलकत्ता की सेवा में :

सन् १८८५ ई० में जब आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना हुई और

राजा तेजनारायणजी इसके प्रधान बने तो स्वाभाविक ही था कि पं० शंकरनाथजी जैसे साहित्य-प्रेमी, विद्वान् के सम्पर्क से यहाँ साहित्य का कार्य भी आरम्भ होता। कलकत्ता में आर्यसमाज के लिए राजा तेजनारायणजी ने क्या धनराशि दी थी इसका तो कहीं उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु सन् १८८७ ई० में जब आर्यावर्त प्रेस ६२ नं० शम्भूनाथ पण्डित स्ट्रीट, कलकत्ता में खुला तो राजा तेज नारायणजी ने २०,००० रुपये आर्यावर्त प्रेस और पत्र के लिए दिये थे। यह भी सुना जाता है कि देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्यक्ष को ऋषि की जीवनी की सामग्री एकत्र करने के लिए राजा तेजनारायणजी ने १०,००० रुपयों की राशि प्रदान की थी।

राजा तेजनारायणजी उदार विचारों के सुधारवादी रईस थे। आपने विलायत में भी कारबार आरम्भ किया। आप सन् १८९८ ई० में इंग्लैण्ड-योरोप की यात्रा पर गये। ११ फरवरी सन् १८९८ ई० को आप इंग्लैण्ड से भारतवर्ष के लिए प्रस्थान करने वाले थे कि उसी दिन अचानक ४७ वर्ष की अवस्था में लन्दन में ही आपका देहान्त हो गया और आर्यसमाज कलकत्ता अपने संस्थापक प्रधान उदार रईस राजा तेजनारायणजी की सेवाओं से वंचित हो गया।

राजा तेजनारायण सिंह और देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय कृत स्वामीजी का जीवन-चरित्र :

स्वामी दयानन्द एक ही बार कलकत्ता आये थे और लगभग चार मास रहकर चले गये थे। फिर बंगाल की दूसरी यात्रा उन्होंने की ही नहीं। इन चार महीनों के कलकत्ता प्रवास का कई प्रकार से ऐतिहासिक महत्त्व है। यहाँ के प्रबुद्ध वर्ग पर उनके विचारों का अच्छा प्रभाव पड़ा था। बंगाल के विद्वत्समाज में सामाजिक और साहित्यिक चेतना बहुत पहले से रही है। ऋषि के आरम्भिक जीवनचरित्रों में श्री नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्यायकृत स्वामी दयानन्द की

संक्षिप्त जीवनी सन् १८८६ ई० में प्रकाशित हुई थी। फिर श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय स्वामी दयानन्द के जीवन की ओर आकृष्ट हुए। श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय धर्म की दृष्टि से ब्राह्मसमाजी थे, किन्तु स्वामी दयानन्द के अद्भुत भक्त थे। स्वामी दयानन्द की जीवनी लिखने से पूर्व उन्होंने सेन्टपॉल की जीवनी लिखकर जीवनचरित्र लेखन-कला की दृष्टि से अच्छा यश प्राप्त किया था। श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने स्वामी दयानन्दजी का जीवनचरित्र बंगला भाषा में दो खण्डों में प्रकाशित किया। यह सन् १८९८ ई० में प्रकाशित हुआ था। राजा तेजनारायण सिंह आर्यसमाज कलकत्ता के संस्थापक प्रधान थे और उन्होंने देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय को आर्थिक सहायता प्रदान की। यद्यपि यह देवेन्द्रनाथजी के अन्वेषण एवं परिश्रम का पारिश्रमिक न था, किन्तु उस सहायता से देवेन्द्रनाथजी के कार्य में निश्चित ही सुविधा आयी थी। देवेन्द्रनाथजी ने सम्पूर्ण भारतवर्ष में उन स्थलों को जाकर देखा और लोगों से सम्पर्क कर ऋषि के जीवन की सामग्री एकत्र की। यद्यपि अपनी एकत्र की हुई सामग्री को विधिवत् जीवनचरित्र का स्वरूप देने से पूर्व श्री देवेन्द्रनाथजी का देहान्त हो गया, और यह कार्य मेरठ के प्रसिद्ध विद्वान् श्री घासीरामजी ने किया। यहाँ हमारा इतना ही आशय है कि आर्यसमाज कलकत्ता के आर्यगण ऋषि-जीवन के प्रकाशन में रुचि भी रखते थे और सहयोगी भी बने थे।

बाबू महाबीर प्रसादजी

बाबू महाबीर प्रसादजी भागलपुर के जमींदार राजा तेजनारायणजी के कलकत्ता में मुख्य कार्यकर्ता थे। सम्भवतः उनके सम्बन्धी और उनके मुनीम थे। राजा तेजनारायणजी तो कभी भागलपुर और कभी कलकत्ता रहते थे, किन्तु बाबू महाबीर प्रसादजी राजा तेजनारायणजी की ओर से कलकत्ता में उनकी जमींदारी की देखभाल करते थे। सन् १८८५ ई० में जब आर्यसमाज की स्थापना का उपक्रम हुआ था तो

इसमें बाबू महावीर प्रसादजी की भूमिका बड़ी महत्त्वपूर्ण थी। यह परामर्श-सभा बाबू महावीर प्रसादजी की व्यवस्था में ही बुलायी गयी थी और इसमें राजा तेजनारायणजी आर्यसमाज कलकत्ता के प्रधान और बाबू महावीर प्रसादजी आर्यसमाज कलकत्ता के संस्थापक मन्त्री बने थे। इन्द्र विद्यावाचस्पतिजी ने आर्यसमाज के इतिहास में लिखा है—

> तीसरे वर्ष सन् १८८५ ई० में जो स्मारक सभा हुई उसके प्रधान आदि ब्राह्मसमाज के संचालक श्री राज नारायण वसु थे। वसु महोदय वर्तमान काल के प्रसिद्ध वेदज्ञ महात्मा अरविन्द घोष के पितामह थे। उसी सभा में आर्यसमाज की स्थापना का प्रस्ताव उठाया गया जो शीघ्र ही कार्यान्वित हो गया। कलकत्ता आर्यसमाज की स्थापना हो गयी जिसके पहले प्रधान भागलपुर के जमींदार श्री महावीर प्रसादजी चुने गये।[1]

यहाँ सूचना में कुछ भूल हो गई है। वस्तुतः आर्यसमाज के संस्थापक प्रधान राजा तेज नारायणजी और मन्त्री महावीर प्रसादजी थे। हमने इस प्रसंग पर आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना वाले प्रसंग में कुछ अधिक विस्तार से विचार किया है। राजा तेजनारायणजी का देहान्त सन् १८९८ ई० में हुआ था, किन्तु बाबू महावीर प्रसादजी कब कलकत्ता से चले गये या आगे उनके जीवन में क्या कुछ हुआ यह सब आज विस्मृति के गर्त में विलीन हो गया है। उनके सम्बन्ध में और अधिक सूचना न कलकत्ता से मिल सकी है, न भागलपुर से ही।

रायबहादुर रलारामजी

रायबहादुर रलारामजी का जन्मस्थान कहाँ था, कैसे उनका आर्यसमाज से सम्पर्क हुआ, उनके मातापिता या और कुछ परिवारिक

१. इन्द्र विद्यावाचस्पतिकृत आर्यसमाज का इतिहास-प्रथम भाग-पृष्ठ २८३

परिचय के सम्बन्ध में कुछ भी बताने वाला कोई सूत्र नहीं मिला। कलकत्ता मुख्य रूप से परदेशियों का शहर है और ऐसे बहुत लोग हैं जो कलकत्ता आते हैं, यहाँ जीवन-निर्वाह करते हैं और फिर लौटकर अपने परिवार के स्थायी निवास में जा मिलते हैं। ऐसे परदेशी कलकत्ता वासियों का पीछे कुछ पता लगना कठिन हो जाता है। रायबहादुर रलारामजी ऐसे ही परदेशी लगते हैं। नाम से तो ये पंजाबी प्रतीत होते हैं। महिला-मण्डल की ट्रस्टडीड में इनका नाम और स्थायी पता दिया हुआ है। यह ट्रस्टडीड सन् १९३३ ई० में पंजीकृत हुआ था। उसमें ट्रस्टियों की नामावली में दूसरे स्थान पर इस प्रकार अंकित है—

> 'राय रलाराम बहादुर, सी० आई० ई०, आई० एस० ओ० रिटायर्ड चीफ इन्जीनियर ईस्ट बंगाल रेलवे, कैम्प बेल स्ट्रीट, करांची।'

इससे इतना तो पता लगता है कि रायसाहब रलारामजी स्थायी रूप से कैम्पबेल स्ट्रीट करांची के रहने वाले थे और पेशा से वे पूर्वी बंगाल रेलवे के इन्जीनियर थे। उन दिनों आर्यसमाज कलकत्ता के कई प्रमुख कार्य हुये थे और उन सब लेखा-पत्रों में रायबहादुर रलाराम का प्रमुख स्थान है। सन् १९०७ ई० में आर्यसमाज मन्दिर के लिये भूमि खरीदी गयी थी। इस भूमि को क्रय करने के लिये आर्यसमाज कलकत्ता ने एक ट्रस्ट बनाया था। इस ट्रस्ट के ट्रस्टियों के नाम भूमि खरीदी गयी थी। इन ट्रस्टियों में रायसाहब रलारामजी प्रथम स्थान पर ही उल्लिखित हैं और इनका पेशा पूर्वी बंगाल राज रेलवे का इन्जीनियर लिखा हुआ है। सन् १९०७ ई० से पूर्व रायबहादुर रलारामजी का कोई वर्णन नहीं मिल रहा है। लगता है उसी समय के आसपास ये कलकत्ता आये और सर्वात्मना आर्यसमाज कलकत्ता की सेवा में जुट गये। सन् १९१० ई० में आर्यसमाज कलकत्ता के रजत-जयन्ती-वर्ष में मन्दिर का निर्माण हुआ और सन् १९१९ ई० में

आर्यसमाज का पंजीकरण कराया गया। उस समय रायबहादुर रलारामजी आर्यसमाज कलकत्ता के प्रधान थे। इससे इतना तो पता लगता ही है कि रायबहादुर रलारामजी सन् १९०७ ई० के आसपास कलकत्ता आये और कम से कम सन् १९३५ ई० तक आर्यसमाज कलकत्ता की सेवा में रहे। इस सम्बन्ध में श्री सुरेन्द्र नाथजी ने आर्य-समाज के हीरक-जयन्ती-विशेषांक में एक संस्मरण लिखा है। संस्मरण में वे लिखते हैं कि सन् १९१० ई० से पूर्व आर्यसमाज का सत्संग कभी सुतापट्टी में और कभी किसी स्कूल में, कभी किसी वृक्ष के नीचे हुआ करते थे और आर्यसमाज अधिक लोकप्रिय होने लगा था। संस्मरण में आगे उन्होंने लिखा है—'उन्हीं दिनों स्वर्गीय श्री रायबहादुर रलारामजी का कलकत्ता में आगमन हुआ। रायबहादुरजी ने तन-मन-धन से आर्यसमाज के कार्य में निष्काम भाव से सहयोग दिया। उस समय न आर्यसमाज का भवन था, न आर्य कन्या विद्यालय का। इन्होंने कुछ दानी और उदारचेता व्यक्तियों के सामने भवन-निर्माण की अपील की और उसी मीटिंग में बैठे-बैठे एक लाख रुपये एकत्र हो गये। जिनमें रायबहादुर रलाराम के अतिरिक्त सेठ छाजूरामजी चौधरी········सहयोग था। उसी धनराशि से आर्य कन्या विद्यालय का भवन खरीदा गया तथा आर्यसमाज की नींव रखी गयी।'

इस संस्मरण से यह प्रतीत होता है कि भूमि खरीदने और मन्दिर बनवाने में रायबहादुर रलारामजी का अग्रगण्य योगदान था। आर्य-समाज के इतिहास में पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति ने लिखा है—

> 'कलकत्ता का जो आर्यसमाज मन्दिर आज अनेक सामाजिक प्रगतियों का केन्द्र बना हुआ है और जिससे सभी आर्यजन सुपरिचित हो गये हैं, वह सन् १९१० ई० में बना था। उसके बनाने का श्रेय मुख्य रूप से ई० आई० रेलवे के

तत्कालीन चीफ इन्जीनियर रायबहादुर रलारामजी को प्राप्त हुआ जिनके उद्योग और निरीक्षण के बिना कलकत्ता जैसे बड़े गुन्जान शहर में ऐसा अच्छा और विशाल भवन तैयार न हो सकता।[1]

श्री रलारामजी पच्चीसों वर्ष आर्यसमाज कलकत्ता के संगठन में नेतृत्व की दृष्टि से चमकते रहे और फिर सन् १६३५ ई० के पश्चात् कुछ पता नहीं लगता। सन् १६३५ ई० को भी आज ५० वर्ष पूरे हो रहे हैं, कोई कुछ बताने वाला नहीं है, न उनका कहीं कोई चित्र मिलता है, न कलकत्ता में उनका कोई सम्बन्धी सुना जा रहा है। लगता है उन दिनों रायबहादुर रलारामजी कलकत्ता छोड़कर जो गये तो फिर कलकत्ता वालों से उनका कोई सम्पर्क न रह गया।

श्री विष्णुदासजी बांसल

श्री विष्णुदासजी बांसल पंजाब के रहने वाले थे। कलकत्ता आकर उन्होंने ऊषा फैन का निर्माण आरम्भ किया और व्यवसायी के रूप में प्रतिष्ठित हो गये। सन् १६१६ ई० में जब आर्यसमाज कलकत्ता का पंजीकरण हुआ था, उस समय श्री विष्णुदासजी बांसल आर्यसमाज कलकत्ता के मन्त्री थे। सन् १६३५ ई० में जब आर्य कन्या विद्यालय की प्रबन्धक समिति ने आर्य महिला-शिक्षा-मण्डल ट्रस्ट बनाया था उस समय श्री विष्णुदासजी बांसल आर्यसमाज की ओर से निर्वाचित सात सदस्यों में प्रथम थे। उस समय श्री बांसलजी आर्यसमाज कलकत्ता के प्रधान थे। मण्डल की जो प्रथम संचालक समिति बनी थी उसके प्रधान सेठ दीपचन्दजी पोद्दार और मन्त्री श्री बिष्णुदासजी बांसल थे। सन् १६३५ ई० में जब आर्य विद्यालय की स्थापना का संकल्प लिया गया उसमें भी श्री विष्णुदासजी बांसल का योगदान प्रमुख था। इस प्रकार श्री बिष्णुदासजी बांसल १५-२० वर्षों तक आर्यसमाज

१. पं० इन्द्र विद्यावाचस्पतिकृत 'आर्यसमाज का इतिहास' पृष्ठ २८३-८४

कलकत्ता में अधिकारियों में बड़े मुख्यरूप से दिखाई पड़ते हैं। व्यावसयिक दृष्टि से ये बड़े सफल व्यवसायी थे। इसका निवास स्थान आर्य महिला-शिक्षा-मण्डल ट्रस्ट की सूचना के अनुसार २५ नं० लैन्सडाउन रोड, कलकत्ता दिया हुआ है। श्री बांसलजी का योगदान मन्दिर-निर्माण, कन्या महाविद्यालय का संचालन और आर्य विद्यालय

श्री विष्णुदासजी बांसल

का संचालन सभी कार्यों में बड़ी उदारता से मिलता रहता था। स्वर्ण-जयन्ती-वर्ष में श्री बांसलजी आर्यसमाज कलकत्ता के प्रधान थे।

चौधरी छाजूरामजी

आर्यसमाज कलकत्ता के आरम्भिक काल में जिन कुछ व्यक्तियों की छवियां महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं, चौधरी छाजूरामजी उनमें

अग्रगण्य हैं। आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना में राजा तेजनारायण-सिंह, महाबीर बाबू और पं० शंकरनाथजी पण्डित जैसे लोगों को श्रेय है तो दूसरी पीढ़ी में आर्यसमाज के लिए भूमि लेना, मन्दिर-निर्माण करवाना, कन्या विद्यालय की स्थापना और कन्या विद्यालय के लिए भवन आदि की व्यवस्था करवाना, इस सब कामों में चौधरी सर छाजूराम का नाम सदा बड़े सम्मान से स्मरणीय रहेगा। वस्तुतः आर्यसमाज की स्थापना को यदि हम राजा तेजनारायण और पं० शंकरनाथ पण्डित का युग कह लें तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि आर्यसमाज की स्थापना के पश्चात् आर्यसमाज के कार्यों को स्थायी रूप देना और उन्हें प्रगति के पथ पर अग्रसारित करना, यह चौधरी छाजूराम जैसे कुछ लोगों का कृतित्व था। इस दृष्टि से आर्यसमाज कलकत्ता की दूसरी पीढ़ी को चौधरी छाजूराम युग के नाम से अभिहित करने में ही इतिहास के साथ न्याय होता है।

चौधरी छाजूराम का जन्म सन् १८६२ ई० में हरियाणा के भिवानी अंचल में अलखपुर के एक साधारण कृषक जाट परिवार में हुआ था। छाजूरामजी बुद्धिमान विद्यार्थी थे और एन्ट्रन्स की परीक्षा पास करके आप कलकत्ता आ गये। यह भी छाजूरामजी के साहसिक बुद्धिमान जीवन का एक प्रमाण है कि वे उस समय बिना किसी समर्थ सहायक के कलकत्ता आ गये। आजीविका के लिए उन्होंने ट्यूशन करना आरम्भ किया। जीवन का आरम्भ एक शिक्षक के रूप में हुआ और पीछे चलकर अपनी विपुल धनराशि से जिस प्रकार उन्होंने शिक्षा-जगत् की सेवा की है, उसकी भूमिका का सहज अनुमान जीवन के इस आरम्भिक कार्यक्षेत्र से लग जाता है।

ट्यूशन करते-करते छाजूरामजी ने व्यावसायिक गतिविधि को भी पहिचाना। उन्होंने सट्टा का काम आरम्भ किया, फिर शेयर बाजार में पाट की दलाली की और अन्त में बोरों की दलाली भी करते रहे।

बताया जाता है कि यह प्रथम विश्वयुद्ध का समय था और छाजूरामजी को भी व्यवसाय की कई बार घट-बढ़ देखनी पड़ी। फिर भी अपने व्यावसायिक विवेक से काम लिया। सदा धैर्य से रहे और अपार धनराशि का उपार्जन किया। छाजूरामजी एक कुशल व्यवसायी ही नहीं, अपितु सामाजिक कार्यकर्ता और बड़े उदार दानशील व्यक्ति थे। ब्रिटिश सरकार ने चौधरीजी को सी० आई० ई० और सर की उपाधियों से विभूषित किया था।

चौधरी छाजूरामजी का आर्यसमाज कलकत्ता में इतना बड़ा योगदान है कि इस द्वितीय पीढ़ी में चौधरीजी सारे कार्यों में प्रथम पंक्ति में दिखाई पड़ते हैं। जब आर्यसमाज के लिए १६, विधान सरणी की भूमिका क्रय किया गया तो उस समय आर्यसमाज का एक ट्रस्ट बना था। उन ट्रस्टियों में रायसाहब रलारामजी, सेठ जयनारायणजी पोद्दार, चौधरी छाजूरामजी, पं० शंकरनाथ पण्डित इत्यादि मुख्य थे। आर्यसमाज की यह भूमि इन्हीं ट्रस्टियों के नाम खरीदी गयी थी। सन् १६१० ई० में जो आर्यसमाज कलकत्ता का रजत-जयन्ती-वर्ष था, उसी समय आर्यसमाज मन्दिर का निर्माण हुआ। सन् १६१६ ई० में आर्यसमाज कलकत्ता का पञ्जीकरण किया गया। उस पंजीकरण के समय पंजीकरण के दस्तावेज में जिन अधिकारियों और अन्तरंग सदस्यों की सूंची दी हुई है उसमें सेठ चौधरी छाजूरामजी आर्यसमाज कलकत्ता के कोषाध्यक्ष थे। चौधरी छाजूरामजी जैसा दानदाता व्यक्ति आर्यसमाज कलकत्ता का कोषाध्यक्ष हो यह भी अपने उचित-सी ही बात लगती है।

आर्य कन्या विद्यालय की स्थापना सन् १६०२ ई० में हुई। सन् १६१० ई० में आर्यसमाज मन्दिर का निर्माण हुआ और सन् १६०२ ई० में कन्या विद्यालय के लिए एक पुराना मकान खरीदा गया। जिस जगह पीछे २० नं०, विधान सरणी का कन्या विद्यालय का

विशाल भवन बनवाया गया। उस समय भवन-निर्माण की दृष्टि से रुपयों की बहुत आवश्यकता थी। इस निमित्त एक सभा की गयी जिसमें सेठ जुगलकिशोरजी बिड़ला, सेठ छाजूरामजी चौधरी, सेठ जयनारायणजी पोद्दार, श्री तुलसीदासजी दत्त प्रत्येक ने २५-२५ हजार रुपये दान देकर एक लाख एकत्र कर लिया। कहते हैं कन्या

सेठ छाजूरामजी चौधरी

विद्यालय की लड़कियों ने एक गीत गाया था जिसका भाव यह था कि हमको भूल मत जाना। इस गीत से चौधरी छाजूरामजी ऐसे पिघल गये कि उन्होंने अपनी २५ हजार की राशि को ५० हजार कर दिया। इन सब कार्यों से चौधरी छाजूरामजी का एक ओर जहाँ आर्यसमाज के प्रति प्यार, श्रद्धा और आस्था व्यक्त होती है वहाँ उनकी प्रबल उदार दानशीलता भी प्रमाणित हो जाती है।

सन् १९३५ ई० में महिलाओं की शिक्षा इत्यादि की उन्नति के लिए एक महिला-मण्डल ट्रस्ट का निर्माण किया गया। इस मण्डल के ट्रस्टियों में प्रथम नाम ही सर छाजूरामजी चौधरी के० टी० सी० आई० ई०, बैंकर एण्ड मर्चेन्ट, २१, वेलवीडियर रोड लिखा हुआ है। इस महिला-मण्डल ट्रस्ट के सर छाजूराम चौधरी ही प्रथम संस्थापक प्रधान थे।

चौधरी छाजूरामजी कलकत्ता में उन दिनों में आर्यसमाज के अग्रगण्य कार्यकर्त्ता तो थे ही, साथ ही सरकार से भी के० टी० सी० आई० ई० और सर आदि की उपाधियों से सम्मानित हुए थे। इससे यह छवि बन सकती है कि चौधरीजी बृटिश शासन के भक्त थे। चौधरीजी सार्वजनिक कार्यकर्त्ता थे। उदार दानी थे और जनकल्याण के कार्यों में खुल कर दान करते थे। कलकत्ता के अतिरिक्त हिसार में डी० ए० वी० कालेज को एक लाख रुपये दिया था और पीछे २ लाख रुपये लगाकर हिसार डी० ए० वी० कालेज़ का छात्रावास वनवाया। रोहतक में जाट हाई स्कूल के लिए एक लाख रुपयों का दान किया। हिसार में जाट हाई स्कूल और छात्रावास के लिए चार लाख रुपयों का दान किया। भिवानी में पाँच लाख रुपये लगाकर एक महिला अस्पताल बनाया। सन् १८९९ ई० में दो लाख रुपये अकाल पीड़ियों की सहायता में व्यय किया। यह सब अपनेमें इतिहास का एक अनुपम अंग-सा बन गया है और बृटिश सरकार ने उन्हें जो उपाधियों से सम्मानित किया, उसका कारण ये सब जनसेवाएँ हैं।

चौधरी छाजूरामजी केवल निष्ठावान् धार्मिक व्यक्ति, समाज-सेवी, सफल व्यवसायी और उदार दानी ही नहीं थे। बल्कि वे स्वतन्त्रता प्रेमी और क्रान्ति के सम्पोषक भी थे। यह सब अपनेमें विषमयोग-सा लगता है। किन्तु चौ० छाजूरामजी ही थे जो एक ओर बृटिश सरकार की उपाधियों के सम्मानपात्र थे तो दूसरी ओर भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम

श्री श्यामकृष्ण सहायजी का जन्म अनुमानतः सन् १८७९-८० ई० में राँची में हुआ था और ८४ वर्ष की अवस्था में २ अप्रैल, सन् १९६३ ई० को उनका देहान्त हो गया।

श्री बालकृष्ण सहायजी कट्टर आर्यसमाजी थे और पं० अयोध्या प्रसादजी को आर्यसमाज की ओर आकृष्ट करने में उनका बड़ा हाथ था। रांची के श्री दयाराम पोद्दार ने अपने एक लेख में लिखा है कि स्वर्गीय पं० अयोध्या प्रसादजी वैदिक रिसर्च स्कालर, बालकृष्ण सहायजी को अपना धर्म पिता मानते थे।[1] श्री श्यामकृष्ण सहायजी की शिक्षादीक्षा ऐसे कट्टर निष्ठावान् आर्यसमाजी बड़े भाई के अभिभावकत्व में आरम्भ हुई। श्री श्यामकृष्ण सहायजी ने आरम्भिक शिक्षा राँची में प्राप्त की और कालेज की शिक्षा के लिये वे कलकत्ता के प्रसिद्ध प्रेसीडेन्सी कालेज में प्रविष्ट हुए। सन् १९०६ ई० में प्रेसीडेन्सी कालेज से बी० ए० पास करके बैरिस्टरी पढ़ने के लिये इङ्गलैण्ड गये। जिस समय श्यामकृष्णजी सहाय कलकत्ता में थे, उस समय आर्यसमाज कलकत्ता अपनी प्रगति में आगे बढ़ रहा था। बहुत कुछ सम्भव है कि श्रीश्यामकृष्णजी सहाय उस समय कलकत्ता समाज के सम्पर्क में रहे हों। उस समय कलकत्ता समाज में पं० शंकरनाथजी, राय बहादुर रलारामजी, श्री टेकचन्दजी, श्री तुलसीदास दत्तजी का कार्यकाल था। ये सब विद्या और सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से अपना उच्च स्थान रखते थे। राजा तेजनारायण सिंहजी का सन् १८९८ ई० में लण्डन में ही देहान्त हुआ था। श्री टेकचन्दजी भी लण्डन गये थे, श्री रलारामजी उच्च कोटि के इञ्जीनियर थे, पं० शंकरनाथजी, श्री श्री तुलसीदास दत्तजी इत्यादि की भी बड़ी प्रतिष्ठा थी। अतः सर्वथा सम्भव है कि कलकत्ता में विद्याध्ययन के साथ श्री श्यामकृष्णजी सहाय

---

१. सहाय-परिवार के साथ पं० अयोध्या प्रसादजी के सम्बन्धों की जानकारी के लिये द्रष्टव्य है इसी इतिहास का दशम् अध्याय—पं० अयोध्या प्रसादजी का जीवन वृत्तान्त।

का सम्पर्क आर्यसमाज के साथ रहा हो। प्रेसीडेन्सी कालेज और आर्यसमाज कलकत्ता में पैदल का भी दस मिनट का भी अन्तर नहीं है। जो भी हो, श्री श्यामकृष्ण सहायजी श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा की प्रेरणा से अपने बड़े भाई श्री बालकृष्ण सहायजी की स्वीकृति से बैरिस्टरी पढ़ने के लिये लण्डन गये। बड़े भाई ने उन्हें सत्यार्थ प्रकाश आदि आर्य
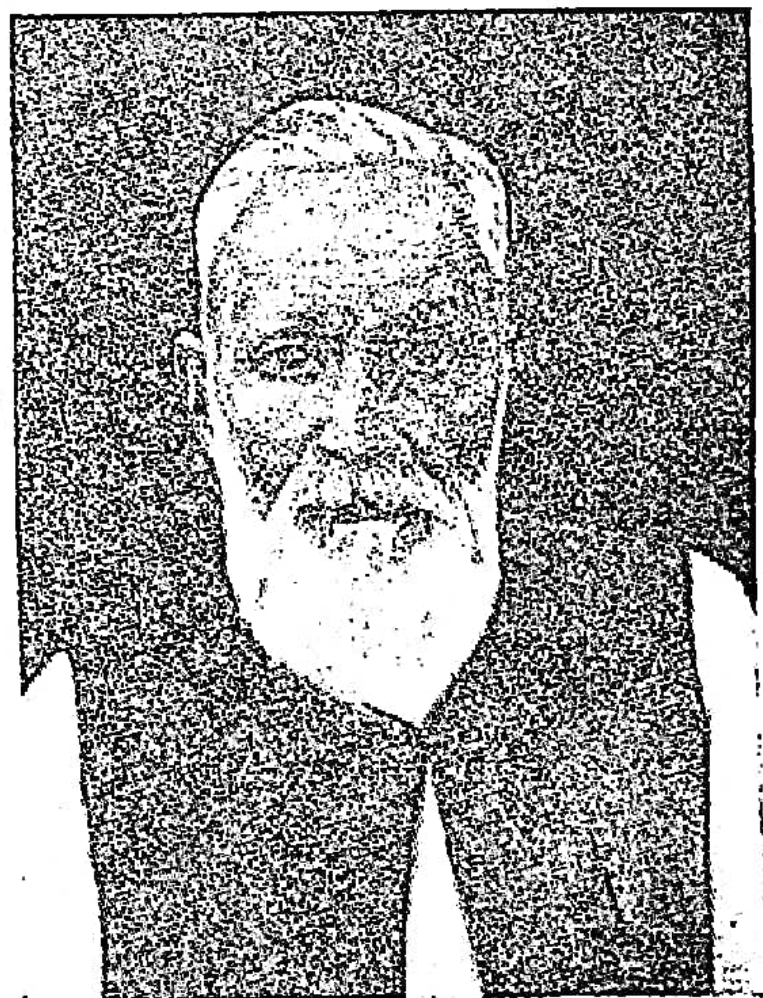
बैरिस्टर श्री श्यामकृष्ण सहाय

साहित्य के अध्ययन और मद्य-मांस आदि सेवन न करने के लिये प्रतिज्ञा करवायी। इस प्रतिज्ञा का पालन श्री श्यामकृष्णजी सहाय ने जीवन भर किया। श्रीश्यामकृष्णजी सहाय ने मिडिल टेम्पुल (Middle Temple) से बैरिस्टरी पास कर सन् १६०६ ई० में भारत लौटने पर कलकत्ता में ही बैरिस्टरी आरम्भ की। यह वह समय था जब विदेशयात्रा का सामाजिक दण्ड जाति बहिष्कार था। श्री श्यामकृष्णजी सहाय को भी कायस्थ जाति

की क्रान्ति के समर्थ पोषणकर्ता भी थे। यह इतिहास प्रसिद्ध घटना है कि अमर शहीद भगतसिंहजी दुर्गा भाभी और उनके पुत्र को साथ लेकर एक विवाहित युवक का रूप बनाकर, दाढ़ी-बाल कटवा कर गैरसिख रूप में कलकत्ता आये थे। पुलिस भगत सिंह की खोज में तो थी, पर उन्हें अविवाहित, दाढ़ी-केशों वाला सिख युवक समझकर सूराग लगा रही थी। इधर भगतसिंह थे कि उन्होंने बाल कटा दिये और दुर्गा भाभी तथा उनके पुत्र को ऐसे साथ ले लिया जैसे यह उन्हीं का परिवार हो। पुलिस को यह चकमा देकर भगतसिंह हावड़ा स्टेशन पर उतरे। यह साण्डर्स-वध के पश्चात् भगत सिंह का फरारी का रूप था। कलकत्ता आना और सिख से गैर-सिख रूप बना लेना, अविवाहित से पत्नी-पुत्र का जुगाड़ कर लेना जितना कठिन कार्य था, उससे कम कलकत्ता में छिपकर रहना न था। क्रान्ति की योजना के अनुसार सुशीला दीदी चौधरी छाजूराम के यहाँ ही रहती थीं और चौधरीजी की पत्नी लक्ष्मी देवी से उनकी घनिष्ठता थी। सुशीला दीदी क्रांतिकारी थीं तो क्या, स्त्री थीं और स्त्रियों में रहना पुलिस की निगाह को अधिक आकृष्ट नहीं करता था। किन्तु जब भगत सिंहजी दुर्गा भाभी आदि को लेकर आ गये तो ये भी सर छाजूराम के ही अतिथि बने। यह सर छाजूरामजी की क्रांति-भक्ति का एक सुस्पष्ट निदर्शन है।

युगद्रष्टा भगत सिंह नामक पुस्तक में पृष्ठ १७४ पर एक प्रसंग आता है—

> "भगत सिंह और दुर्गा भाभी एक दिन होटल में रहे। दूसरे दिन सर छाजूरामजी की कोठी में चले गये और एक सप्ताह से अधिक वहीं रहे।·······भगत सिंह को वहाँ रखने की और निश्चिन्त रहने की स्वीकृति सर सेठ छाजूराम की पत्नी लक्ष्मीदेवी ने ही सुशीला दीदी को दी थी। इन लोगों को ऊपर की मंजिल में ठहराया गया था और भोजन वगैरह की व्यवस्था स्वयं लक्ष्मी देवी ही करती थीं। उन दो के

अतिरिक्त भगत सिंह का सही परिचय किसी को भी न था। यह इतिहास का चरित्र है कि उसने एक सप्ताह के आतिथ्य के बदले में माता लक्ष्मीदेवी और उनके पति सर सेठ छाजूराम को सदा के लिए अपना अतिथि बना लिया।"

यहाँ यह तो सुस्पष्ट है कि सर छाजूरामजी के जीवन में क्रान्तिकारियों के लिए कितना बड़ा स्थान था। छाजूरामजी की कोठी सेठ की कोठी थी और इस क्रान्तिकारी का रहस्योद्घाटन कभी भी हो सकता था। इसीलिए सरदार भगत सिंह को छाजूरामजी की कोठी से आर्यसमाज मन्दिर १९, विधान सरणी में स्थानांतरित कर दिया गया था। यह व्यवस्था चौधरी छाजूरामजी की ही थी। भगत सिंहजी आर्यसमाज कलकत्ता के मन्दिर की छत के ऊपर गुम्बज वाली एक कोठरी में रहते थे। यह गुप्त प्रवास ही नहीं था अपितु मृत्युवरण का एक चरण भी था। सरदार भगत सिंह इसे समझते थे। उनके साथी भी इसे इसी रूप में समझते थे। आर्यसमाज कलकत्ता में भगत सिंह अपने परिवर्तित नाम—'हरि' के नाम से जाने जाते थे। अंग्रेजी पोशाक और हैट लगाते थे। उनका हैट वाला प्रसिद्ध चित्र आर्यसमाज कलकत्ता के निवासकाल का ही है। यह क्रान्ति के पथ पर चलते हुये बलिदान की यात्रा थी। ऐसा बलिदान जिसे वे लोग निश्चित-सा ही मानते थे। आर्यसमाज कलकत्ता मन्दिर से चलते समय सुशीला दीदी ने भगत सिंह को अपने रक्त का टीका किया था। भगत सिंहकी यात्रा जहाँ अपने में गौरवमयी है वहाँ चौधरी छाजूराम के देशप्रेम और क्रान्तिप्रेम की उज्ज्वल कहानी है।

चौधरी छाजूरामजी कलकत्ता से जाने के पश्चात् पंजाब कौंसिल के सदस्य भी बने थे। चौधरीजी का जीवन आर्यसमाज के इतिहास और सार्वजनिक इतिहास में सदा समादरणीय है।

श्री रघुमलजी खण्डेलवाल

आर्यसमाज कलकत्ता के आरम्भिक दिनों में कई उच्चकोटि के सम्पन्न व्यक्तियों का सहयोग मिला था। उनमें श्री रघुमलजी भी प्रमुख हैं। श्री रघुमलजी का जन्म सन् १८७४ ई० में हुआ था। आपके पिताजी लोहे के व्यवसायी थे और दिल्ली को केन्द्र बनाकर अपना व्यवसाय चला रहे थे। श्री रघुमलजी प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व ही कलकत्ता आ गये थे और प्रसिद्ध लोहे की फर्म टाटा से सम्पर्क करके आपने अच्छी व्यावसायिक उन्नति की थी। सन् १६१३ ई० में रघुमलजी ने माधोराम हरदेव दास नामक फर्म की स्थापना की और इसी फर्म के नाम से व्यवसाय करने लगे। तभी से आप आर्यसमाज के सम्पर्क में रहे।

श्री रघुमलजी का आर्यसमाज से सम्पर्क भी एक विचित्र संयोग से हुआ। श्री रघुमलजी दिल्ली में अपना पैतृक व्यवसाय देखते थे। इनके कई मकान भाड़े पर लगे हुए थे। इन मकानों में से कुछ मकानों में वेश्याएँ भड़ैते के रूप में रहती थीं और अपना धन्धा करती थीं। उन्हीं दिनों स्वामी श्रद्धानन्दजी का दिल्ली आना-जाना हुआ। स्वामी श्रद्धानन्दजी ने गुरुकुल तो खोला ही था और एक साधु गंगा के किनारे ब्रह्मचारियों को लेकर गुरुकुल चला रहा है, यह सब प्रसिद्धि हिन्दू समाज में होनी ही थी। इन साधु बाबा की चर्चा रघुमलजी के कानों तक भी पहुँची। और स्वामीजी का व्याख्यान सुनने के लिए किसी पास के समाज-मन्दिर में दूसरे व्यवसायी साथियों के आग्रह से आप भी चले गये। स्वामी श्रद्धानन्दजी का व्याख्यान अपनी गति से चल रहा था। क्या जाने उनके मन में क्या प्रेरणा हुई कि उन्होंने श्रोताओं की ओर पैनी दृष्टि डाली और कहने लगे कि मैं देख रहा हूँ कि यहाँ भी कुछ व्यवसायी बैठे हैं जिनके मकानों में वेश्याओं के कोठे

हैं। यह पाप की कमाई है। आप इसे छोड़ दें। इससे आपका धन बढ़ेगा, घटेगा नहीं आप साधु की बात का विश्वास करें।

तीर निशाने पर लग गया था। रघुमलजी ने वहीं निश्चिय किया कि अपने मकानों को वेश्याओं से खाली करवा लेंगे। समाज-मन्दिर से अपनी गद्दी पर लौटे और मुनीम को बोले कि सभी मकानों में से वेश्याओं को निकलने की नोटिस दो। अपनी रोकड़-बही पर अपने हाथों लिख दिया कि आज से हमारा कोई मकान वेश्याओं को नहीं दिया जायेगा। श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति ने अपने संस्मरणों में यह लिखा है कि यह सब बताते-बताते रघुमलजी द्रवित हो गये और कहने लगे कि साधु के आशीर्वाद से व्यवसाय ऐसा चमक उठा है और इतने रुपये आ रहे हैं कि यह भी समझ में नहीं आता कि इन रुपयों का क्या किया जाय। श्री रघुमलजी यह जो आर्यसमाजी बने और धार्मिक वृत्ति जागी, वह उनके सारे जीवन बनी रही। आप आर्यसमाज की संस्थाओं को भरपूर दान देते ही थे। काशी विश्वविद्यालय, रामजस कालेज, दिल्ली आदि को भी आपने खुलकर दान दिया था। दिल्ली के माधोराम शहीद हाल बनवाने के लिए स्वामी श्रद्धानन्दजी को को एक लाख रुपया दिया था। स्वामी श्रद्धानन्द के तो अनन्य भक्त थे ही, अन्य क्षेत्रों में भी दान देने में आपकी और आपके ट्रस्ट की बड़ी ख्याति है।

अपने जीवन के अन्तिम दिनों में अपनी सम्पत्ति के अधिकांश भाग को रघुमल चैरिटी ट्रस्ट नाम का ट्रस्ट बनाकर वसीयत कर दी। कलकत्ता में जब आर्य विद्यालय के लिए भवन की आवश्यकता पड़ी तो सन् १९६२ ई० में सेठ रघुमलजी के रघुमल चैरिटी ट्रस्ट से एक लाख पच्चीस हजार रुपये की सहायता आर्य विद्यालय को दी गयी। श्री रघुमलजी की सुपुत्री श्रीमती अंगिरा देवीजी के हाथों विद्यालय भवन का शिलान्यास हुआ और इस कृतज्ञता को चिरस्थायी रखने के लिए

आर्य विद्यालय का नाम रघुमल आर्य विद्यालय कर दिया गया। इस ट्रस्ट के द्वारा आर्य कन्या विद्यालय को और दिल्ली की कई शैक्षणिक संस्थाओं को दान-अनुदान मिलता रहा है। श्री रघुमलजी सार्वजनिक
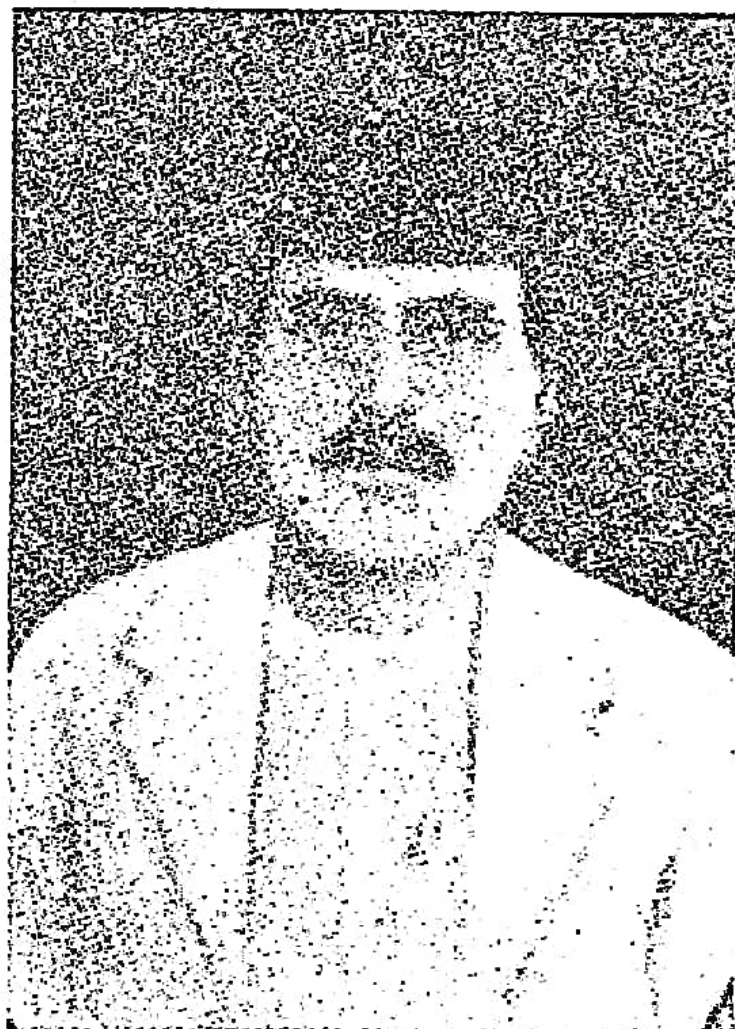
श्री रघुमलजी खण्डेलवाल

आवश्यकताओं के समय, बाढ़पीड़ितों, अकालपीड़ितों आदि को मुक्त-हस्त से दान किया करते थे।

आप सफल सम्पन्न व्यवसायी तो थे ही, साथ ही उदारदानी और और जनसेवी के रूप में आपका यश सदा अक्षुण रहेगा।

बेरिस्टर श्यामकृष्ण सहायजी

श्री श्यामकृष्ण सहायजी राँची के प्रतिष्ठित सहाय परिवार के थे। आप राँची के प्रसिद्ध व्यक्ति श्री बालकृष्णजी सहाय के अनुज थे।

से बहिष्कृत कर दिया गया था। किन्तु एक कट्टर आर्यसमाजी की तरह उन्होंने अपने सिद्धान्त से मुख न मोड़ा। सन् १९०६ ई० से सन् १९१२ ई० या १९१३ ई० तक आपने कलकत्ता में बैरिस्टरी की। इस बीच आप आर्यसमाज कलकत्ता के मन्त्री भी निर्वाचित हुये थे। सन् १९१३ ई० में इनके अग्रज श्री बालकृष्णजी सहाय का देहान्त हो गया और ये कलकत्ता छोड़ कर राँची में रहने लगे और वहीं वकालत करने लगे। श्री श्यामकृष्णजी सहाय का राँची का सार्वजनिक जीवन बड़ी प्रतिष्ठा का जीवन है और वे राँची के सार्वजनिक क्षेत्र में जीवन भर उज्ज्वल नक्षत्र की तरह चमकते रहे। बहुत दिनों तक राँची आर्यसमाज के प्रधान रहे। वे राँची नगरपालिका के चेयरमैन रहे। कुछ दिनों तक बिहार, उड़ीसा कौन्सिल के भी सदस्य रहे, राँची लॉ कालेज के संस्थापक प्रिन्सिपल थे, बहुमुखी दिशाओं में एक उज्ज्वल नक्षत्र की तरह चमकते हुये श्री श्यामकृष्ण सहाय जी अपने ८४ वर्षों के सुदीर्घ जीवन काल में सदा आर्यसमाज के निष्ठावान कार्यकर्त्ता की हैसियत से जीवन विताते रहे।

श्री नागरमलजी मोदी

श्री नागरमलजी मोदी एक समाज सुधारक, विधवा विवाह समर्थक, आर्यसमाज के भक्त व्यक्ति थे। श्री मोदीजी का जन्म जयपुर में मण्डावा नामक स्थान में संवत् १९३४ विक्रमी में हुआ था। आपका पैतृक व्यवसाय राँची में था। आपके पिता श्री भीमराजजी मोदी वहीं से व्यवसाय करते थे। श्री नागरमलजी अपने पैतृक व्यवसाय के सिलसिले में कलकत्ता आये। यहाँ उन्होंने जहाँ अपना व्यवसाय बढ़ाया, वहीं समाज-सुधार के कार्यों में बड़ी निष्ठा से भाग लिया एवं आर्यसमाज के विचारों से अत्यधिक प्रभावित हुए, और आर्यसमाज कलकत्ता में सक्रिय सहयोग करने लगे। आर्यसमाज के सामाजिक कार्य और शिक्षा-प्रचार सम्बन्धी कार्यों में श्री नागरमलजी मोदी

पूरी रुचि लेते थे। सन् १९३५ ई० में जब आर्य महिला-शिक्षा-मण्डल ट्रस्ट का निर्माण हुआ तो मण्डल के निर्माता आठ व्यक्तियों में श्री नागरमलजी मोदी भी सम्मिलित थे। आर्य कन्या विद्यालय, महिला-शिक्षा-मण्डल ट्रस्ट में तो श्री मोदी जी का सहयोग था ही, आप विधवा विवाह के उग्र समर्थक थे और बालविवाह तथा पर्दाप्रथा का घोर विरोध करते थे। आप अपने सिद्धान्तों और निष्ठा के इतने ईमानदार भक्त थे कि अपने पुत्र का विवाह एक विधवा के साथ ही कराया। श्री मोदीजी बालविवाह इत्यादि का बहिष्कार करते थे।

श्री नागरमलजी मोदी

आर्यसमाज के नारी-शिक्षा, विधवा-विवाह, समाज-सुधार इन सब कार्यों के साथ ही श्री नागरमलजी मोदी स्वतन्त्रता संग्राम के एक निष्ठावान् सिपाही थे। आपने सन् १९०५ ई० में बंगभंग आन्दोलन के समय से ही देशभक्ति के आन्दोलनों में भाग लेना आरम्भ कर कर दिया था। आपने खादी पहिनने का व्रत लिया था। कई बार स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने के कारण आपको बृटिश सरकार के हाथों कारावास का दण्ड भोगना पड़ा था।

श्री मोदीजी सन् १९४६ ई० में बिहार विधान सभा के कांग्रेसी विधायक भी निर्वाचित हुए थे। राँची में आपकी स्मृति में नागरमल मोदी सेवा-सदन आपके भाइयों ने बनवाया है। आपकी जन्मभूमि मण्डावा में भी आपकी स्मृति में एक बाल-मन्दिर चल रहा है। श्री मोदीजी ८० वर्ष की परिपक्व आयु में इस संसार से चल बसे।

श्री मोदीजी ने मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी की स्थापना में सह-

योग किया था। राँची के आरोग्य भवन में भी आपका सहयोग स्मरणीय है। अपनी जन्मभूमि मण्डावा में आपने सामाजिक कार्य किये। श्री मोदीजी समाज सुधारक और जन-हितकारी व्यक्ति के रूप में अपनी पावन स्मृति को चिरस्थायी कर गये हैं।

श्री बालकृष्णजी मोहता

श्री बालकृष्णजी मोहता एक समाज सुधारक गाँधीवादी स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करने वाले आर्यसमाज के प्रेमी के रूप में हमारे सामने आते हैं। श्री मोहताजी का जन्म १६ फरवरी १८६३ ई० को बीकानेर में हुआ था। शिक्षा का अच्छा सुयोग इसलिए नहीं बन पाया था कि दस वर्ष की अल्पायु में ही आपको अपने पितृ-चरणों की छाया से वंचित हो जाना पड़ा था। श्री बालकृष्णजी कर्मकुशल थे और अनेक प्रकार के छोटे-मोटे कारखाने चलाते रहे। कहा जाता है कि भारत में कोल्ड स्टोरेज का काम सर्वप्रथम बालकृष्णजी ने ही शुरू किया था। सन् १६३० ई० के आसपास अपने समाज सुधारक संस्कारों के कारण आप आर्यसमाजी हो गये थे और कलकत्ता आर्यसमाज के मन्त्री भी रहे। मोहताजी समाज-सुधारक थे और समाज-सुधार के कार्यों का सदा प्रबल समर्थन किया करते थे। आर्यसमाजी संस्कार तो थे ही, श्री बालकृष्णजी मृतकश्राद्ध, मृत्युभोज, दहेज, पर्दाप्रथा, बालविवाह आदि सामाजिक बुराइयों का घोर विरोध किया करते थे। विधवा-विवाह और अन्तर्जातीय विवाह के प्रबल समर्थक थे।

श्री बालकृष्णजी केवल मौखिक सुधारक ही नहीं थे। अपनी माताजी और दादीजी की मृत्यु पर आपने मृतक श्राद्ध आदि नहीं किया। बालकृष्ण मोहताजी स्वयं माहेश्वरी थे किन्तु अपने पुत्र का विवाह अग्रवालों के यहाँ करके आपने माहेश्वरी अग्रवाल मिलन को आरम्भ किया। आप हिन्दू अबला आश्रम के उप-मन्त्री भी रहे। श्री मोहताजी ने अपने पौत्र का विवाह एक विधवा अग्रवाल कन्या के

साथ किया। इन सारे सामाजिक कार्यों में आपने दहेज और पर्दा-प्रथा का सर्वथा बहिष्कार कर रखा था।

श्री बालकृष्णजी अपने आर्यसमाजी स्वरूप में तो उजागर थे ही, आप स्वतन्त्रता प्रेमी एवं समाजसेवी के रूप में भी स्मरणीय हैं। गाँधीजी के सम्पर्क से सन् १९३१ ई० से ही आपने खादी पहिनना आरम्भ कर दिया था। श्री मोहताजी माहेश्वरी सभा, माहेश्वरी विद्यालय आदि के भी अध्यक्ष एवं मन्त्री रहे।

श्री बालकृष्णजी मोहता

सन् १९६२ ई० से आप राँची रहने लगे थे। यह एक प्रकार से आपका सामाजिक जीवन से संन्यास था। कहते हैं यहीं राँची में सन् १९६७ ई० में आपकी हत्या कर दी गयी थी।

श्री मोहताजी एक आदर्श समाज सुधारक के रूप में चिरस्मरणीय रहेंगे।

श्री रामगोपालजी सर्राफ

श्री रामगोपालजी सर्राफ का जन्म राजस्थान के प्रसिद्ध फतेहपुर शेखावाटी में चैत्र बदी ३ संवत् १९४४ विक्रमी को हुआ था। किशोरावस्था से ही आप आर्यसमाज के सम्पर्क में आ गये और एक कट्टर आर्यसमाजी के रूप में विख्यात हो गये। सामाजिक अन्धविश्वासों और कुरीतियों के आप प्रबल विरोधी थे और हमेशा इनको दूर करने की चेष्टा करते रहते थे। कलकत्ता में व्यवसाय की दृष्टि से आप फाटके की दलाली करते थे। श्री राम गोपालजी विधवा-विवाह के प्रबल समर्थक थे। फतेहपुर के निवासी एक नागरमल लील्हा थे। श्री नागरमलजी कट्टर आर्यसमाजी थे और भजन गाकर आर्यसमाज

का प्रचार करने वाले मारवाड़ी सज्जन थे। नागरमलजी ने एक विधवा से विवाह किया। रामगोपालजी सर्राफ फतेहपुर के ही थे। कट्टर आर्यसमाजी और विधवा-विवाह के समर्थक थे। जब रामगोपालजी नागरमल लील्हा के विवाह में खुलकर सम्मिलित हुए तो मारवाड़ी समाज ने इस विवाह में सम्मिलित होने के कारण रामगोपालजी को भी जाति से बहिष्कृत कर दिया। इन्हींके साथ कुल १२ व्यक्ति जाति से बहिष्कृत हुए थे। किन्तु रामगोपालजी आजीवन समाजसुधार और आर्यसमाज का प्रचार करते रहे।

श्री रामगोपालजी सर्राफ

आर्यसमाज कलकत्ता की जमीन जिन ९ ट्रस्टियों के नाम से खरीदी गयी है उनमें अन्तिम नवाँ नाम श्री रामगोपाल व्यवसायी का है। बहुत कुछ सम्भव है कि यह राम गोपालजी सर्राफ हो सकते हैं।

श्री रामगोपालजी आजीवन समाज-सेवा और अछूतोद्धार में लगे रहे। अपनी जन्मभूमि में जाकर आप मेहतरों को पढ़ाया करते थे जो उस युग में बड़े साहस का कार्य था। आपने अपनी जमीन लक्ष्मीनाथ विद्यालय को दान कर दी थी। श्री रामगोपाल सर्राफजी का देहान्त संवत् २०१५ में हुआ। श्री सर्राफजी समाज सुधारक के रूप में स्मरण किये जाते हैं।

श्री लक्ष्मीनारायणजी खेमानी

श्री लक्ष्मीनारायणजी खेमानी का जन्म सन् १८८८ ई० में राजस्थान में हुआ था। आप सामाजिक उत्थान और कुप्रथाओं के विरोध में रहते थे। आर्यसमाज के दृढ़ श्रद्धालु भक्त थे। पाखण्डों का खण्डन, सामाजिक उत्थान, बालविवाह का विरोध, विधवा-विवाह का समर्थन

श्री लक्ष्मीनारायणजी खेमानी

इत्यादि आपके जीवन के आदर्श थे। उन दिनों कट्टर आर्यसमाजी और भजनों द्वारा आर्यसमाज का प्रचार करने वाले श्री नागरमल लील्हा ने जब एक विधवा से विवाह कर लिया तो उस समय रूढ़िवादी मारवाड़ियों ने जिन १२ व्यक्तियों को जाति से बहिष्कृत किया था, उनमें श्री लक्ष्मीनारायण खेमानी भी थे। इन सब कुरीतियों का विरोध करने में उन दिनों आर्यसमाजियों को इसी प्रकार के दण्ड मिला करते

थे। किन्तु उन दिनों के श्रद्धालु आर्यसमाजी भी जिस उत्साह और उमंग के थे कि वे कभी भी ऐसे कट्टरपंथियों के विरोध से न घबड़ाते थे, न अपनी सुधारवादी निष्ठाओं को छोड़ते थे। श्री लक्ष्मीनारायण खेमानीजी भी उन्हीं लोगों में थे। ज्यों-ज्यों विरोधियों ने आपको रगड़ना चाहा, त्यों-त्यों आपकी निष्ठा और भी बलवती होती गयी।

आप जागरूक और निर्भय रहने वाले व्यक्ति थे। सन् १९७९ ई० में आपका देहान्त हो गया।

श्री हरगोविन्दजी गुप्त

श्री हरगोविन्दजी गुप्त उत्तर प्रदेश वाराणसी जिले से कलकत्ता आये थे। आपका जन्म-स्थान वाराणसी है। श्री हरगोविन्दजी पेशा से व्यापारी थे, पर स्वभाव से आर्यसमाज के दीवाने, भक्त कार्य-कर्त्ता और नेता थे। श्री हरगोविन्दजी आर्यसमाज कलकत्ता और आर्य प्रतिनिधि सभा, दोनों के समान रूप से कार्यकर्त्ता नेता थे। श्री हरगोविन्दजी कब कलकत्ता आये और कब से आर्यसमाज की सेवाओं में समर्पित हो गये, इसका कुछ निश्चित पता नहीं लगता, किन्तु इतना तो आर्य प्रतिनिधि सभा के लेखों और रजिस्टरों से पता चलता है कि सन् १९२६ ई० में जब बंगाल और बिहार प्रतिनिधि सभाएँ अलग-अलग बनीं, तभी से हरगोविन्दजी प्रतिनिधि सभा और कलकत्ता समाज दोनों के अग्रगण्य सक्रिय कार्यकर्त्ता बने रहे। सन् १९३० ई० में आर्य प्रतिनिधि सभा बंग-आसाम का नवीकरण हुआ। सन् १९३३-३४ ई० में प्रान्तीय सभा का पंजीकरण हुआ। हरगोविन्दजी सन् १९३० ई० से सन् १९४० ई० तक लगातार प्रान्तीय सभा के मन्त्री रहे और सन् १९४१ ई० से सन् १९४३ ई० तक सभा के प्रधान रहे। श्री हरगोविन्दजी गुप्त का यह प्रान्तीय नेतृत्व का काल था। साथ ही वे आर्यसमाज कलकत्ता के भी अधिकारी कार्यकर्त्ता थे। आर्यसमाज कलकत्ता में श्री हरगोविन्दजी सन् १९३३-३४ ई० से ही प्रधान और उप-प्रधान के पदों

पर अंकित हैं। सन् १९३५ ई० में जब आर्य महिला-मण्डल-ट्रस्ट बना था तो उसके आठ ट्रस्टियों में श्री हरगोविन्दजी गुप्त भी थे और वे ट्रस्ट की कार्यकारिणी के भी सदस्य थे। सन् १९३५ ई० में जब आर्य विद्यालय की स्थापना हुई तो उसमें भी श्री हरगोविन्दजी गुप्त विशिष्ट सहयोगियों में देखे जाते हैं।

श्री हरगोविन्दजी गुप्त

श्री हरगोविन्दजी गुप्त का आर्यसमाज कलकत्ता और बंग-आसाम प्रतिनिधि सभा पर समान रूप से प्रभाव था। श्री गुप्तजी बड़े यशस्वी और सर्वसम्मत नेता थे। श्री हरगोविन्दजी की एक विशेषता यह भी बतायी जाती है कि वे आर्यसमाज कलकत्ता के वार्षिकोत्सव पर कलकत्ता से बाहर के ग्रामाञ्चल के आर्यसमाजियों को भी आमन्त्रित

करते थे और बड़े प्यार और स्नेह से उनका आतिथ्य करते थे। श्री हरगोविन्दजी के इस पुरोगम में आर्यसमाज कलकत्ता के वार्षिकोत्सव में प्रान्तीय सम्मेलन का-सा रूप दिखायी पड़ने लगता था। बाहर से आये हुए इन सब अतिथियों का भोजन-निवास-आतिथ्य आर्यसमाज कलकत्ता में हुआ करता था।

श्री हरगोविन्दजी गुप्त और श्री नित्यानन्दजी श्रीवास्तव के सहयोग से आर्यसमाज कलकत्ता का मासिक मुखपत्र 'आर्य गौरव' सन् १६३१ ई० से प्रकाशित हुआ था। यह आर्यसमाज कलकत्ता के सह-योग से निकला था। इससे ग्रामीण अञ्चलों में आर्यसमाज के प्रचार में अच्छा सहयोग हो सका था।

श्री हरगोविन्दजी आर्यसमाज के मिशन के लिये तो समर्पित थे ही, वे आर्य विद्यालय और आर्य कन्या महाविद्यालय जैसे आर्यसमाज की शिक्षण-संस्थाओं की भी पूरी देखरेख रखते थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् जब आर्य विद्यालय आर्यसमाज मन्दिर में फिर से खुला, उस समय श्री हरगोविन्दजी गुप्त ने विद्यालय को सम्हालने और संचालित करने में बड़ा अच्छा योगदान किया था।

श्री हरगोविन्दजी आर्यसमाज के नेता तो थे ही, जायसवाल बिरादरी के लोग भी कलकत्ता में उनके आदर्श नेतृत्व की याद करते हैं। जायसवाल बिरादरी और सामाजिकता की दृष्टि से बहुत सारी बुराइयों के शिकार तो थे ही, शराब, वेश्याओं का नाच आदि इनमें खूब चलता था। इस वर्ग के लोग व्यवसायी तो थे ही, सम्पन्न भी थे और शादी-विवाह के अवसरों पर वेश्याओं के नाच में शराब का दौर असामाजिकता का रूप उग्रता से ले लेता था। किसी विवाह में वेश्या के नाच में किन्हीं दो सेठों में ऐसी लागडाँट हुई कि वे एक-दूसरे से बढ़-चढ़ कर वेश्या पर रुपये लुटाने लगे। ऐसे असामाजिक स्थलों पर श्री हरगोविन्दजी कभी न जाते थे। लोग गुप्तजी के घर पर दौड़ कर आये और उन्हें इस अशोभनीय काण्ड की सूचना दी। गुप्तजी ने

उन्हीं लोगों से कहलवा दिया कि जब तक जायसवाल अपने विवाहों में वेश्या के नाच को बन्द करने का निर्णय नहीं लेते, तब तक मैं अनशन करूँगा, और अनशन करते मर जाऊँगा। जब बिरादरी वालों ने सुना तो उन्होंने कलकत्ता में विवाहों में बाजा और नाच बन्द करने की शपथ ली। कलकत्ता के जायसवाल आजतक इस शपथ का निर्वाह करते देखे जाते हैं।

श्री हरगोविन्दजी गुप्त अन्तिम दमतक एक आदर्श नेता-कार्यकर्त्ता की तरह कार्य करते रहे और सन् १९४४-४५ ई० तक आर्यसमाज के नेतृत्व पर उनकी अच्छी छाप रही। उन्होंने बहुतों को आर्यसमाजी बनाया। उनके देहान्त से जैसे एक युग की समाप्ति हो गयी।

श्री सुरेन्द्रनाथजी विद्यालंकार

पं० सुरेन्द्रनाथजी विद्यालंकार

श्री सुरेन्द्रनाथजी विद्यालंकार पंजाब के निवासी थे। उनकी उपाधि

से ही यह प्रतीत होता है कि वे गुरुकुल के स्नातक थे। जिस समय आर्यसमाज कलकत्ता की स्वर्ण-जयन्ती मनायी जा रही थी उस समय वे आर्यसमाज कलकत्ता के संयुक्त मन्त्री थे। श्री सुरेन्द्रनाथजी आर्यसमाज कलकत्ता में मन्त्री और उप-प्रधान जैसे पदों पर बहुत दिनों तक बड़ी योग्यता से कार्य करते रहे। जिस समय कलकत्ता में षष्ठ आर्य महासम्मेलन मनाया गया था उस समय श्री सुरेन्द्रनाथजी ने सम्मेलन में बड़ी योग्यता से भाग लिया था।

श्री सुरेन्द्रनाथजी कलकत्ता से पटना चले गये थे फिर भी आर्यसमाज कलकत्ता के प्रति उनका बड़ा स्नेह भाव था। १९६१ ई० में जब आर्यसमाज कलकत्ता की हीरक-जयन्ती मनायी गयी थी उस समय श्री सुरेन्द्रनाथजी ने आर्यसमाज कलकत्ता के लिये एक बड़ा प्यारा संस्मरण लिखा था।

श्री सुरेन्द्रनाथजी आर्यसमाज के बड़े सक्रिय कार्यकर्ता थे किन्तु उनके जीवन के बारे में और अधिक सूचना नहीं मिल सकी है। श्री सुरेन्द्रनाथजी पटना चले गये। वहीं उनका देहान्त हो गया। उनके परिवार का या निकट का कोई व्यक्ति कलकत्ते में न मिल सका। हम यह श्रद्धामय संस्मरण लिखकर ही सन्तोष कर रहे हैं।

महाशय श्री रघुनन्दन लाल

श्री महाशय रघुनन्दन लाल आर्यसमाज कलकत्ता के उन दीवाने सर्वत्यागी कार्यकर्ताओं में से हैं जो अपना धन-जन-परिवार सब कुछ छोड़ सकते थे, किन्तु आर्यसमाज और आर्यसमाज की सेवा से अलग नहीं रह सकते थे। श्री महाशय रघुनन्दन लाल अपने को आर्यसमाज कलकत्ता का रखवाला (वाच डाग) कहते थे और यह बात सर्वथा सत्य थी। महाशयजी के बैठे रहते आर्यसमाज और आर्यसमाज के किसी हित को किसी प्रकार की आँच नहीं लग सकती थी। महाशय रघुनन्दन लालजी कई दशाब्दियों तक आर्यसमाज कलकत्ता के कार्य-

कर्त्ता, अधिकारी के रूप में रहे। कुछ काल तो आर्यसमाज कलकत्ता के इतिहास में ऐसा भी लिखा गया है कि महाशय रघुनन्दन लालजी जैसे संगठन के प्राण थे। वल्कि उनकी समर्पण वृत्ति को देखते हुए यह कहना अधिक उचित होगा कि आर्यसमाज महाशय रघुनन्दलाल का प्राण था, उन्हें आर्यसमाज के सामने अपने प्राणों की भी चिन्ता
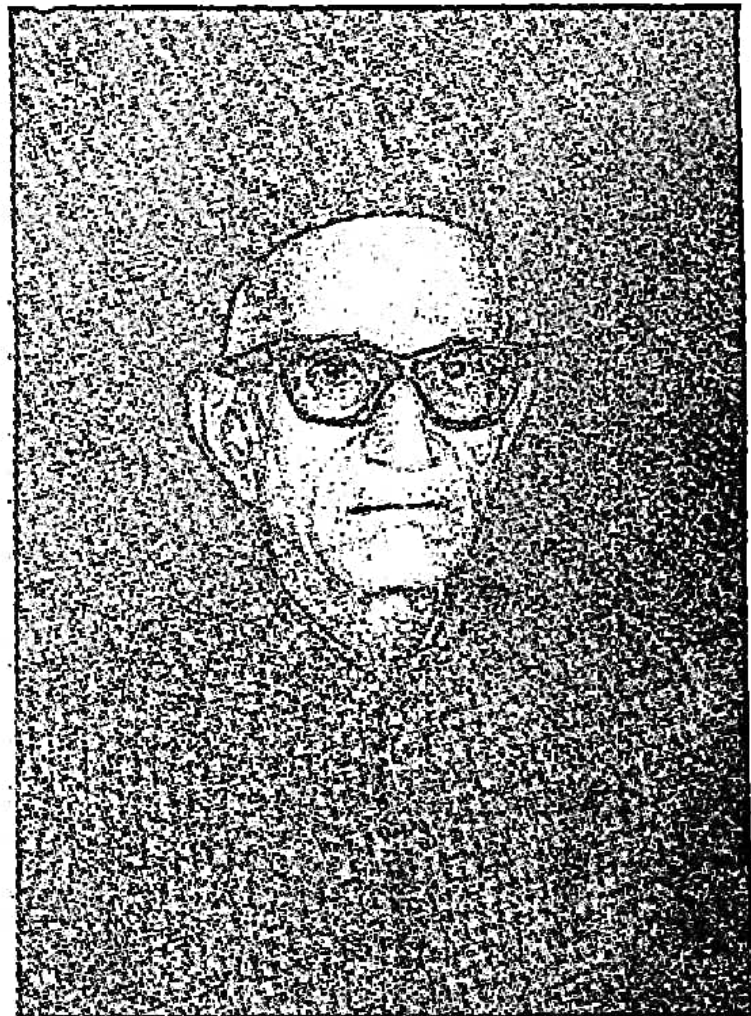
महाशय श्री रघुनन्दन लाल

न थी। जीवन के अन्तिम दस-पन्द्रह वर्ष तो वे एक विरक्त त्यागी की भाँति आर्यसमाज मन्दिर में ही रहने लगे थे। उनका स्वरूप श्वेत वस्त्रों में एक संन्यासी का स्वरूप था। वे अपनी आजीविका मात्र के लिए थोड़ी-सी दलाली का कार्य कर लेते थे और शेष सारा समय रातोंदिन आर्यसमाज की सेवा में अर्पित रहता था। जीवन के १०-१५ वर्ष तो ऐसे भी गये हैं कि जब वे अपनी रोटी की भी चिन्ता न करके

केवल आर्यसमाज के काम में लगे रहते थे। उन दिनों इनका भोजन श्री सौदागरमलजी चोपड़ा के घर से आ जाता था। श्री चोपड़ाजी के पुत्रों और वहुओं ने भी महाशयजी की सेवा अपने घर के बुज़ुर्ग की तरह की थी। वस्तुतः सौदागरमलजी चोपड़ा और महाशय रघुनन्दन लाल में इतनी घनिष्ठता थी कि वे दोनों 'एक प्राण दुइ गात' जैसे लगते थे।

महाशय श्री रघुनन्दन लालजी का जन्म पश्चिमी पंजाब में हुआ था। वात इतनी पुरानी है कि न उसका कोई लिखित रूप सामने है और न कोई उन वातों को वताने वाला रह गया है। हमलोगों के साथ भी महाशय रघुनन्दन लालजी का ३०-३५ वर्षों का वड़ा सहृदयतापूर्ण सम्बन्ध था और वातों-वातों में जो कुछ उनसे प्राप्त हुआ उसका संस्मरणात्मक स्वरूप यह है कि महाशय रघुनन्दन लालजी यौवन के दिनों में पंजाव से पश्चिमी अफगानिस्तान, कावुल इत्यादि तक व्यवसाय के सिलसिले में जाया करते थे। उन दिनों अन्तर्देशीय आवागमन इतना प्रतिवन्धित न था ओर अंग्रेजी भारत का प्रभुत्व तो आसपास था ही। पंजाब से चलकर महाशयजी कुछ दिन बम्बई में भी रहे। फिर कुछ दिन बैंकर का काम भी किया था। फिर कलकत्ता आकर दलाली करने लगे थे। एक व्यवसायी या गृहस्थ के रूप में महाशय रघुनन्दन लालजी का जीवन अति सामान्य होते हुए भी परम सरल और सात्विक था।

महाशय रघुनन्दन लालजी बहुत बार आर्यसमाज कलकत्ता के विभिन्न अधिकारी पदों पर रहे हैं। मन्त्री तो बहुत वार रहे हैं। कभी पुस्तकालयाध्यक्ष भी रहे हैं। वस्तुतः आर्यसमाज कलकत्ता के इतिहास में बीसों वर्ष इस प्रकार के गये हैं कि जो भी मन्त्री, प्रधान वनता था, वह महाशय रघुनन्दन लाल से उसी प्रकार परामर्श लिया करता था जैसे घर के वड़े-वड़े बुजुर्गों से परामर्श लिया जाता है। महाशय रघुनन्दन लाल बहुत दिनों तक आर्य कन्या महाविद्यालय के मन्त्री

थे। श्री महाशयजी आर्यसमाज के संगठन में तो लगे ही रहते थे, साथ ही सहायता (रिलीफ) के जितने भी कार्य कलकत्ता से होते थे, उनमें प्रमुख रूप से भाग लिया करते थे। महाशय रघुनन्दन लाल सचमुच आर्यसमाज कलकत्ता के सफेद वस्त्रधारी संन्यासी के रूप में व्यवस्थापक थे। जब आर्यसमाज कलकत्ता ने यह निर्णय लिया कि कलकत्ता आर्यसमाज का हाल आर्यसमाज के अतिरिक्त और किसी संगठन को नहीं दिया जायेगा और विशेषरूप से राजनीतिक संगठनों को नहीं दिया जायेगा तो एक अवसर पर स्थानीय मुहल्ले के नवयुवकों ने बलात् मन्दिर में आना और उत्सव कर लेना चाहा। उस समय महाशयजी मन्दिर की सीढ़ियों पर लेट गये और उन नवजवानों को सीधा ललकारा कि यदि समाज-मन्दिर में मीटिंग करनी है तो हमारी लाश के ऊपर से ही जाना पड़ेगा। इस परिस्थिति में वे नव-जवान हट गये।

महाशय रघुनन्दन लालजी कलकत्ता आर्यसमाज के अतिरिक्त अन्य आर्यसमाजों के सहयोग में भी रहते थे। कलकत्ता के आसपास मिल अञ्चलों में भी उनका बड़ा प्रभाव था। वे प्रायः सबके उत्सवों पर पहुँचते थे। वस्तुतः महाशयजी आर्यसमाज के दीवाने भक्त थे और अपना सर्वस्व आर्यसमाज को समर्पित करके ही जीवित रहे।

सैद्धान्तिक समझौता न करके वे अपने इकलौते पुत्र से भी अलग-थलग समाज-मन्दिर में रहते थे। जीवन के अन्तिम दिनों में बड़ी लम्बी बीमारी पाकर महाशयजी दिवंगत हो गये और एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व का आर्यसमाज कलकत्ता में अवसान हो गया।

श्री मिहिरचन्दजी धीमान

आर्यसमाज कलकत्ता ही नहीं, बंगाल के आर्यसामाजिक जगत् में श्री मिहिरचन्दजी धीमान एक देदीप्यमान नक्षत्र की तरह कई दशाब्दियों तक अपनी स्वाभाविक नेतृत्व सम्पन्न प्रतिभा से चमकते रहे। वस्तुतः

आर्यसमाज में धीमानजी का अपना एक युग है। उस युग में धीमानजी के बिना कोई भी स्थान कुछ न कुछ अधूरा ही लगता था। आर्य-समाज कलकत्ता, आर्यसमाज हावड़ा, आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल ये सब धीमानजी के कार्यक्षेत्र थे। धीमानजी पर जैसी लक्ष्मीजी की कृपा, वैसा ही शरीर का वैभव, वैसी ही ओजस्वी वाणी और वैसी ही नेतृत्व की क्षमता थी। वे जहाँ पहुँच जाते थे वहाँ अपने व्यक्तित्व से सबसे अलग प्रतिभासित होने लगते थे। आपका प्रतिभासम्पन्न व्यक्तित्व बलात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेता था।

श्री धीमानजी का परिवार ६०-७० वर्ष पूर्व कलकत्ता आया था। उस समय मिहिरचन्दजी अपने पिताजी के साथ कलकत्ता आये थे। वैसे इनकी पैतृक भूमि पंजाब थी। कलकत्ता आकर आपके पिताजी ने लोहे का व्यवसाय आरम्भ किया। आपके बड़े भाई धर्मचन्दजी धीमान व्यवसाय के क्षेत्र में उन्नति करते गये और मिहिरचन्दजी का पारिवारिक निवास-स्थान तुलसी-भवन सलकिया, हावड़ा में आर्य-समाज के क्रियाकलाप का केन्द्र बन गया।

श्री धीमानजी का नेतृत्व का जीवन धन-वैभव से अति सम्पन्न था। आपने अपने सामाजिक जीवन का आरम्भ आर्यसमाज हावड़ा से किया। श्री धीमानजी १०-१५ वर्ष आर्यसमाज हावड़ा के प्रधान रहे। धीमानजी वीर स्वभाव के थे और हावड़ा समाज के वार्षिकोत्सव में अपने वीर बाने में आर्य वीरदल हावड़ा का नेतृत्व करते थे। धीमानजी ने आर्यसमाज हावड़ा की जमीन खरीदने और मन्दिर बनवाने में पूरा सहयोग किया। उस समय हावड़ा में पीलखाना नामक स्थान से आर्यसमाज का जुलूस नहीं जा सकता था। उसमें मुसलमान निवासियों की ओर से अड़चन डाली जाती थी। धीमानजी ने इस चैलेञ्ज को स्वीकार किया और बड़े साहस और प्रयास के साथ आर्यसमाज हावड़ा का जुलूस पीलखाना के अञ्चल से

निकाला और वह आज तक निकलता चला जा रहा है। श्री धीमानजी आर्यसमाज के तो प्राण थे ही, आर्यसमाज कलकत्ता का भी कोई कार्य ऐसा न होता था जिसमें धीमानजी का प्रशंसनीय योगदान न रहा हो। आप आर्य कन्या महाविद्यालय की प्रवन्धकारिणी समिति के प्रधान थे। आर्यसमाज कलकत्ता के तो हर प्रकार के परम सक्रिय
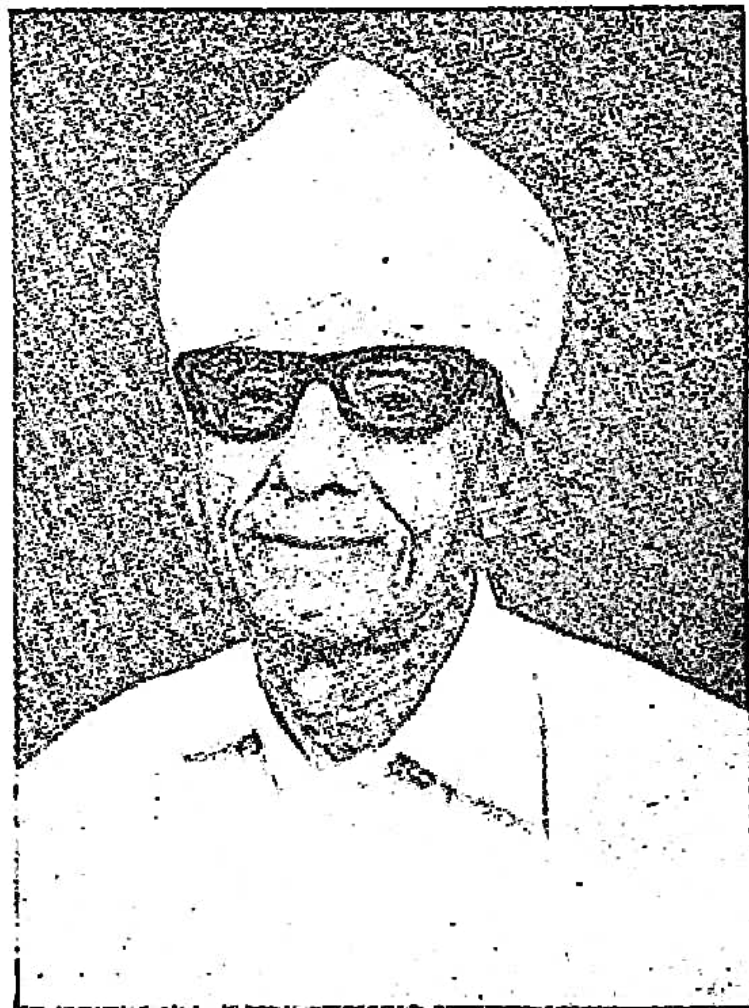
श्री मिहिरचन्दजी धीमान

कार्यकर्त्ता थे ही। श्री धीमानजी बहुत वर्षों तक वंग-आसाम आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री और प्रधान रहे। जब तक आर्य प्रतिनिधि सभा आर्यसमाज कलकत्ता के मन्दिर में कार्यालय बनाकर कार्य करती रही तब तक तो बात अलग थी, पीछे जब आर्य प्रतिनिधि सभा २४/२, विधान सरणी में अपना कार्यालय ले गयी तो सभा का भाड़ा

धीमानजी स्वयं निरन्तर देते रहे। धीमानजी ने आर्यसमाज और प्रतिनिधि सभा की जो आर्थिक सहायता की है वह भी अपने में एक इतिहास है। धीमानजी इतने उदार थे कि पं० अयोध्या प्रसादजी के वृद्ध हो जाने पर इन्हें अपनी एक गाड़ी चढ़ने के लिये उन्हें दान में दे दी थी।

श्री धीमानजी आर्यसमाज के नेता तो थे ही, हिन्दुत्व की विचार-धारा के भी प्रवल समर्थक थे। धीमानजी के प्रभाव से ही श्री एन० सी० चटर्जी, डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी, डा० कालीदास नाग, श्री हेमन्त प्रसाद घोष, श्री चपलाकान्त भट्टाचार्य आदि बंगाल के विशिष्ट नेता आर्यसमाज के सम्पर्क में आये थे। सन् १९४५ ई० में जब दिल्ली का आर्य महासम्मेलन हो रहा था तब उस सम्मेलन में डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी को प्रधान पद के लिये तैयार करने का श्रेय धीमानजी को ही है। बंगाल में धीमानजी के कारण आर्यसमाज की अच्छी प्रगति होती रही।

श्री धीमानजी अपने स्वभाव से नेता थे और नेतृत्व के लिए जो कुछ आवश्यक होता है वह सब कुछ धीमानजी के पास था। सुन्दर सक्रिय शरीर था, ओजस्वी वीरतापूर्ण वाणी थी, धन तो था ही, उच्चकोटि के नेताओं से सम्पर्क था और सभी इन्हें सम्मान की दृष्टि से देखते थे। नेतृत्व के लिए प्रेस और पत्र भी एक आवश्यक सामग्री है। श्री धीमानजी ने सलकिया, हावड़ा से जागृति नाम का एक दैनिक पत्र प्रकाशित कराया, जिसके श्री धीमानजी स्वामी थे और श्री जगदीश चन्द्रजी हिमकर सम्पादक थे। यह यूँ तो आर्यसमाज का पत्र न था, किन्तु वस्तुतः सब प्रकार से आर्यसमाज के प्रचार में संलग्न था। आरम्भ में यह पत्र साप्ताहिक के रूप में प्रकाशित हुआ था। डा० भवानीलाल भारतीय ने अपने ग्रन्थ में निम्न प्रकार से लिखा है—

"कलकत्ता की आर्यसामाजिक प्रवृत्तियों के सूत्रधार श्री मिहिरचन्दजी धीमान, कुसुमाकर-हिन्दीभूषणने सन् १९३७ई०

में जागृति नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन बंगदेश की राजधानी से किया। धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से पत्र आर्यसमाज की नीति का समर्थक था। पत्र के सम्पादक प्रसिद्ध हिन्दी पत्रकार मुंशी नवजादिक लाल श्रीवास्तव तथा वीरेन्द्र विद्यावाचस्पति थे। कालान्तर में यह पत्र दैनिक के रूप में भी निकला। इस समय इसका सम्पादन श्री जगदीश चन्द्र हिमकर ने किया।[1]

जागृति आर्यसमाज और हिन्दुत्व के विचारों से परिपूर्ण पत्र था, किंतु पत्रकारिता की व्यावसायिक क्षमता नेताओं में कब होती है। इस प्रकार जागृति का प्रकाशन तो धीमे-धीमे बन्द हो गया, किन्तु धीमानजी अपने नेतृत्व में पूर्ववत् चमकते रहे।

जब कलकत्ता में पष्ठ आर्य महासम्मेलन मनाया गया तो उसके स्वागताध्यक्ष श्री धीमानजी ही थे। एक प्रकार से इस महासम्मेलन में उस समय के बंगाल के राज्यपाल श्री कैलाशनाथ काटजूजी को ले आने में एवं सम्मेलन को सफल बनाने में श्री धीमानजी का अप्रतिम योगदान था।

बंगाल की भौगोलिक और राजनैतिक स्थिति ऐसी रही है कि यहाँ सहायता (रिलीफ) का कार्य सदा होता रहा है। मिदनापुर का समुद्री तूफान, बंगाल का अकाल, आसाम का भूकम्प और बाढ़, फिर देश के विभाजन से सम्बन्धित दंगे, यह २०-२५ वर्षों को सहायता की शृङ्खला चलती रही है और धीमानजी का उत्साहपूर्ण योगदान सामाजिक स्तर से आरम्भ करके सरकारी स्तर तक सब समय सुलभ रहा है।

धीमानजी एक देदीप्यमान नक्षत्र की तरह उदय हुये और चमकते रहे, किन्तु अस्ताचल की ओर जाने से पहले पारिवारिक परिस्थितियों ने उन्हें लक्ष्मी की प्रचुरता से वंचित कर दिया और धीरे-धीरे

---

१. आर्यसमाज के पत्र और पत्रकार—पृष्ठ १४६

वृद्धावस्था में सारी प्रतिभाएँ सिमट कर विलीन हो गयीं। लम्बी बीमारी, असमर्थता इत्यादि भोगते हुए २२ अप्रैल सन् १६८५ ई० को श्री धीमानजी का देहान्त हो गया और पचासों वर्षों का एक देदीप्यमान व्यक्तित्व अस्त हो गया।

श्री नित्यानन्दजी

श्री नित्यानन्दजी का जन्म सन् १८६८ ई० में लखनऊ में हुआ था। आरम्भिक शिक्षा लखनऊ में ही हुई थी। हाई स्कूल पास करके

श्री नित्यानन्दजी

नित्यानन्दजी ने आयुर्वेद की शिक्षा ली और कुछ उपाधि और डिप्लोमा भी प्राप्त किया। आरम्भ में कलकत्ता आने पर इन्होंने कोई नौकरी की किन्तु थोड़े ही दिनों में अपना निजी निर्यात का व्यवसाय करने लगे। इस निर्यात के व्यवसाय के सिलसिले में आप विदेशों में

वैदिक सन्ध्या, वैदिक वन्दन आदि पुस्तकें भी विदेश को भेजा करते थे।

कलकत्ता आने पर आपका सम्पर्क श्री हरगोविन्द्रजी गुप्त आदि उस समय के आर्यसमाजी कार्यकर्त्ताओं से हुआ और धीरे-धीरे आप आर्यसमाज कलकत्ता के सक्रिय सदस्य बन गये। आप आर्यसमाज और आर्यसमाज की शिक्षण-संस्थाओं में बहुत बार अधिकारी भी बनते रहे। आप अपने यौवनकाल में ही आर्यसमाज के सम्पर्क में आ गये थे और यावज्जीवन आर्यसमाजी निष्ठा के रहे।

जिन दिनों आर्यसमाज मन्दिर क्रान्ति का केन्द्र बना हुआ था उन दिनों श्री नित्यानन्दजी आर्यसमाज में सक्रिय कार्यकर्त्ता थे ओर कहा जाता है कि क्रान्ति की गोपनीयता में उनका अच्छा सहयोग था। जब आर्य विद्यालय की स्थापना हुई उस समय नित्यानन्दजी आर्यसमाज के प्रचार-मन्त्री थे और इन्होंने अच्छा सहयोग किया था। श्री नित्यानन्दजी आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल-आसाम के भी सक्रिय कार्यकर्त्ता थे। आर्यसमाज कलकत्ता की स्थानीय इकाई से लेकर सार्वदेशिक तक अनेक स्तरों पर आपने सहयोग किया था। जीवन के अन्तिम दिनों में आप लखनऊ चले गये थे और वहीं पर ८ फरवरी १९७८ ई० को आपका देहान्त हो गया। आपने सुशिक्षित सुयोग्य तीन पुत्रों और दो पुत्रियों का भरा-पूरा परिवार अपने पीछे छोड़ा है।

श्री हंसराजजी हांडा

श्री हंसराजजी हांडा पंजाब के रहने वाले थे। वहीं से आकर आप कलकत्ता में निजी व्यावसायिक फर्म में कार्यरत थे। यहाँ आकर श्री हांडाजी भवानीपुर आर्यसमाज के सदस्य बने और वहाँ प्रधान के रूप में अच्छी ख्याति अर्जित की। सन् १९४८ ई० में जब कलकत्ता में अखिल भारतीय षष्ठ आर्य महासम्मेलन हुआ था उस समय

श्रीमानजी स्वागताध्यक्ष और श्री हांडाजी स्वागत मन्त्री निर्वाचित हुए थे। इस जोड़ी ने बड़ा अच्छा काम निबाहा था, और षष्ठ आर्य महासम्मेलन बड़ी सफलता से सम्पन्न हुआ था। उसी सम्पर्क-स्थापन के पश्चात् श्री हंसराजजी हांडा आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्य बने

श्री हंसराजजी हांडा

और सन् १९५० ई० में आर्यसमाज कलकत्ता के उप-प्रधान निर्वाचित हुये तथा सन् १९५१ ई० में आर्यसमाज कलकत्ता के प्रधान बने। फिर तो श्री हांडाजी सदा आर्यसमाज कलकत्ता के सक्रिय कार्यकर्त्ता रहे। श्री हंसराजजी हांडा सन् १९५३ ई० से सन् १९५५ ई० तक आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल के उप-प्रधान रहे। सन् १९५६ ई० से सन् १९५८ ई० तक प्रतिनिधि सभा बंगाल के मन्त्री रहे, फिर एक बार प्रतिनिधि

सभा बंगाल के उप-प्रधान बने और सन् १९६६ ई० में श्री हांडाजी आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल के प्रधान बने। आपके सहयोग से प्रतिनिधि सभा बंगाल का भवन १९६० ई० में खरीदा गया।

श्री हंसराजजी हांडा स्वभाव से ही नेता थे और उसी प्रकार उन्हें लगनशील, सेवावृत्ति में लगी हुई कौशल्या देवीजी हांडा धर्मपत्नी के रूप में प्राप्त थीं। श्री हंसराजजी हांडा और श्रीमती कौशल्यादेवी हांडा दोनों ही आर्यसमाज के हर काम में तन-मन-धन से जुट जाते थे। देश के विभाजन के पश्चात् पंजाब से आये हुए शरणार्थियों की सहायता में हांडा दम्पती कलकत्ता से ही बहुत सक्रिय हो उठे थे। पूर्वी बंगाल से शरणार्थियों के शिविरों में और स्टेशन पर हांडा दम्पती की सेवा अविस्मरणीय रहेगी। श्री हंसराजजी हांडा यावज्जीवन पूरी निष्ठा के साथ आर्यसमाज की सेवा में थे।

श्रीमती कौशल्या देवीजी हांडा

श्रीमती कौशल्यादेवीजी हांडा श्री हंसराजजी हांडा की पत्नी थीं। जैसे श्री हंसराजजी आर्यसमाज के कामों के लिए समर्पित थे, श्रीमती हांडा इस समर्पण में सदा उनके साथ उनका सहयोग करती रहीं, बल्कि यह लगता है कि श्री हांडाजी से भी वे कुछ आगे ही रहती थीं। श्रीमती हांडा में आर्यसमाज, वैदिक धर्म और स्वामी दयानन्द के लिए भक्ति भावना थी तो मानवता की सेवा भी प्रबल थी। रिलीफ का कार्य कहीं भी होता था, श्रीमती हांडाजी सबसे आगे रहती थीं। यूं तो हर रिलीफ के काम में श्रीमती हांडा अग्रगण्य ही थीं किंतु स्वतन्त्रता एवं देश के विभाजन के समय जो जातीय विपत्ति आयी थी, श्रीमती हांडा उसमें सर्वात्मना जुट गई थीं। उन्हें सन् १९४६ ई० में बंगाल के दंगे के बाद और सन् १९४७ ई० में देश के बँटवारे के बाद आये हुए शरणार्थियों की सेवा में स्वयं लगकर काम करते देखने पर ऐसा नहीं लगता था कि यह अमीर परिवार की महिला हैं। शर-

णार्थियों में खिचड़ी इत्यादि बाँटना, उन्हें भोजन कराना, उनके लिये वस्त्र एकत्र करना, इन सब कार्यों में श्रीमती हांडाजी स्वयंनियुक्त स्वयंसेविका थीं।

पंजाब से सब शरणार्थी दिल्ली आये और उनका कुरुक्षेत्र में कैम्प लगा तो श्रीमती हांडा ने ट्रक भर कर कपड़ा, दवाइयाँ, रुपये इत्यादि

श्रीमती कौशल्या देवीजी हांडा

अन्य भाई-बहिनों की सहायता से एकत्र किया और दिल्ली के लिये चल पड़ीं। उस समय कुरुक्षेत्र कैम्प में जाने की अनुमति कम ही मिलती थी। श्रीमती हांडा धुन की पक्की थीं और सरदार बल्लभ भाई पटेल के घर के बाहर जाकर बैठ गयीं।

इस आशा में बैठी रहीं कि पटेलजी निकलेंगे तो उनसे स्वीकृति ले लूंगी। जब पटेलजी निकले तो कौशल्या देवीजी ने अपने हाथ की चूड़ियाँ, अंगूठी इत्यादि जो कुछ भी आभूषण थे उतार कर पटेलजी के

सामने शरणार्थियों के लिये भेंट कर दिया और उनसे कपड़ा, दवाइयाँ, रुपये इत्यादि शरणार्थियों में बाँटने की इजाजत माँगी। सरदार पटेल ने उसी समय मिलिटरी तक का इन्तजाम किया और श्रीमती हांडा को परमिट मिल गया। यह उनके आत्मबल का एक उदाहरण है।

सन् १९५१ ई० में जब पूर्वी बंगाल से शरणार्थी फिर आने लगे तो श्रीमती हांडा ने ऑल इण्डिया वीमेन्स आर्गनाइजेशन बनाकर उनकी सहायता की। श्रीमती हांडा ने दण्डकारण्य में भी शरणार्थियों की सहायता की थी। उड़ीसा में क्रिश्चियनों के बढ़ते हुए प्रचार को सुनकर वहाँ अपने पति के साथ गयीं और स्वामी ब्रह्मानन्दजी और उनके आश्रम की सहायता करती रहीं। श्रीमती हांडा ने आर्य स्त्री-समाज भवानीपुर की स्थापना की, उसके लिये जमीन खरीदी गयी और बड़ी कठिनाइयों के बावजूद जमीन पर कब्जा हुआ। सन् १९६६-६७ ई० में श्रीमती हांडा और एवं उनके अन्य सहयोगी बहनों के त्याग से मन्दिर का निर्माण हो गया।

पंजाब हिन्दी-रक्षा-आन्दोलन के समय श्रीमती हांडा का सक्रिय सहयोग था। आर्यसमाज कलकत्ता हो या आर्यसमाज भवानीपुर, श्रीमती हांडा सब जगह पूरी लगन और निष्ठा से आर्यसमाज की सेवा में जुटी रहती थीं।

श्री हंसराजजी चड्ढा

श्री चड्ढाजी का जन्म ३० जनवरी सन् १८९८ ई० को रंगपुरा नामक ग्राम, जिला स्यालकोट में हुआ था। इनके पूज्य पिताजी का नाम तुलसी राय तथा माताजी का नाम गणेश देवी था। श्री चड्ढाजी को धार्मिकता, आस्तिकता और प्रभुभक्ति जैसे विरासत में मिली थी। उन्होंने स्वयं बताया था कि अभी शिशु ही थे कि उन्हें एक फोड़ा हो गया और डाक्टरों ने उसे असाध्य कहकर इन्हें अपनी मौत मरने के लिए छोड़ दिया। उसी समय एक संन्यासी ने इन्हें एक जड़ी

के उपचार से अच्छा कर दिया। उस घाव का निशान तो सारे जीवन रहा, पर वह निशान सारे जीवन चड्ढाजी को निश्छल प्रभुभक्ति और साधु-संन्यासी-विद्वानों का भक्त भी बना रहने की प्रेरणा देता रहा। चड्ढाजी ने अपने जीवन में लाखोंलाख कमाया और दान किया, पर

श्री हंसराजजी चड्ढा, ध्यान मुद्रा में

स्वयं एक विरक्त त्यागी का जीवन जीने में सदा आनन्द पाते रहे। श्री चड्ढाजी की शिक्षा स्यालकोट कालेज में हुई। सन् १६१६ ई० में कालेज छोड़ने के समय इनके प्रिन्सिपल ने इन्हें विदाई पर सलाह दी थी कि तुम व्यवसायी के पुत्र हो, कोई कोट खरीदने आवे तो तुम उसे कोट के साथ पायजामा भी बेचने की इच्छा रखना। श्री चड्ढाजी सारे

जीवन बड़े सफल व्यवसायी रहे। परिवार में प्रभृत धन-सम्पत्ति, और बिरादरी में पूरी मान-मर्यादा थी। पिताजी भी आर्यसमाज के भक्त थे। श्री चड्ढाजी बताया करते थे कि स्यालकोट में आर्यसमाज के उत्सव पर विद्वान् लोग इन्हींके घर पर रहा करते थे। इनका कारबार स्यालकोट, रावलपिण्डी तथा उत्तर प्रदेश में भी कई जगहों पर होता था। श्री चड्ढाजी जैसे सफल व्यवसायी थे वैसे ही कट्टर धार्मिक व्यक्ति थे। सन्ध्या, अग्निहोत्र, स्वाध्याय और प्रातःकाल का भ्रमण बिना कभी नागा किये किया करते थे। आर्यसमाज के प्रति तो इनका पैतृक सम्मान था। स्वामी शिवानन्द और श्री रमण महर्षि से भी आप प्रभावित थे।

पाकिस्तान बन जाने के पीछे मुआवजे का रुपया लेकर आपने मंसूरी में एक मकान खरीदा और संसार से विरक्त से होकर वहीं रहने लगे, किन्तु मन में एक भाव उठा—यह निष्क्रियता का जीवन छोड़ देना चाहिए। चड्ढाजी सफल व्यवसायी तो थे ही, आपने कलकत्ता आकर धर्मतल्ला में 'फुटबाल कार्नर' नाम से अच्छा व्यवसाय फिर से आरम्भ किया। तभीसे आपका आर्यसमाज कलकत्ता से सम्बन्ध रहा। श्री चड्ढाजी आर्यसमाज के आर्य सभासद् थे। कई वर्षों तक अन्तरंग के सदस्य और अधिकारी भी रहे। साप्ताहिक सत्संग, वेद सप्ताह, अन्य कथावार्ता में श्री चड्ढाजी सदा उपस्थित रहते थे। हर काम में अपनी सूझबूझ से परामर्श देना और आर्थिक सहयोग करने में भी चड्ढाजी कभी पीछे नहीं रहते थे। श्री चड्ढाजी इतने वैराग्य भाव से रहते थे, इतनी सादगी और सरलता से जीवन बिताते थे कि कोई यह अनुमान भी नहीं कर सकता था कि श्री चड्ढाजी ने लाखोंलाख कमाया और लाखोंलाख दान किया है। ध्यान-साधना और देशाटन श्री चड्ढाजी को बहुत प्रिय थे। श्री चड्ढाजी की योगियों जैसी मृत्यु हुई थी। प्रातःभ्रमण, दैनिक हवन और उनके पश्चात् प्रभु का भजन-

कीर्तन करते-करते श्री चड्ढाजी इस संसार से चले गये थे। श्री चड्ढाजी का जीवन एक गृहस्थ साधक एवं संन्यासी का जीवन था।

श्री बनमाली रावजी पारिख

श्री बनमालीरावजी पारिख जहाँ आर्यसमाज की कट्टरता के लिए प्रसिद्ध थे वहीं जीवदया प्रचार के लिए यावज्जीवन जूझते रहे। घर से निकलते तो गौरवपूर्ण गुजराती पोशाक—धोती-कुर्ता या सफेद कोट, सिर पर सफेद टोपी, आँखें नीचे और हाथ पीछे बंधे हुए अकेले ही रास्ते पर बोलते जाते थे।………………बकरा मत खाओ, बकरे की माँ रोती है, माँ-माँ-करती है, मछली मत खाओ, मछली दूसरे का थूक-खखार खाती है, मछली गू खाती है—इस तरह के वाक्यों का सम्पुट उनका बराबर चलता रहता था। सड़क पर पैदल चल रहे हों या ट्राम या बस में हों, अकेले ही इसी तरह बोला करते थे। लोग उनका उपहास करते थे किन्तु अपनी धुन के पक्के, बनमालीजी कभी किसी का विचार न करते थे।

श्री बनमालीरावजी का जन्म मार्गशीर्ष सुदी १४ संवत् १९३१ विक्रमी को हुआ था। और उनका देहान्त वैशाख बदी १४ संवत् २०२५ विक्रमी को हो गया। श्री पारिखजी का जन्म अमरेली, सौराष्ट्र में हुआ था। ढाई वर्ष की अल्पायु में आपको पिताजी का वियोग सहना पड़ा और आपका पालन-पोषण आपके दादाजी ने किया। १५ वर्ष की आयु में बनमालीरावजी आजीविका हेतु बम्बई गये। विक्रम सम्वत् १९६१ में कलकत्ता आ गये। कलकत्ता में आप बारदाना की दलाली करते थे और यावज्जीवन यही काम करते रहे।

श्री बनमाली रावजी आर्यसमाज कलकत्ता के प्रतिष्ठित सक्रिय सहयोगी सदस्य थे। पीछे आर्यसमाज बड़ाबाजार के सदस्य बन गये जहाँ आप प्रधान, उप-प्रधान आदि पदों पर भी रहे।

पारिखजी का जीवन एक ओर जीव दया प्रचार के लिए अर्पित था तो दूसरी ओर अबला-अनाथ-रक्षा विभाग में लगा हुआ था। सन् १९३२ ई० में जीवदया प्रचार समिति की स्थापना की और कालीघाट में बकरा बलि रुकवाने की चेष्टा की। पं० रामचन्द्र शर्मा 'वीर' के साथ आपने पशुबलि विरोध में अनशन भी किया। आपके प्रयास से काशीपुर के प्रसिद्ध सर्वमंगला देवी मन्दिर में बलिप्रथा बन्द हो गयी थी और वधस्तम्भ हटा दिया गया था।
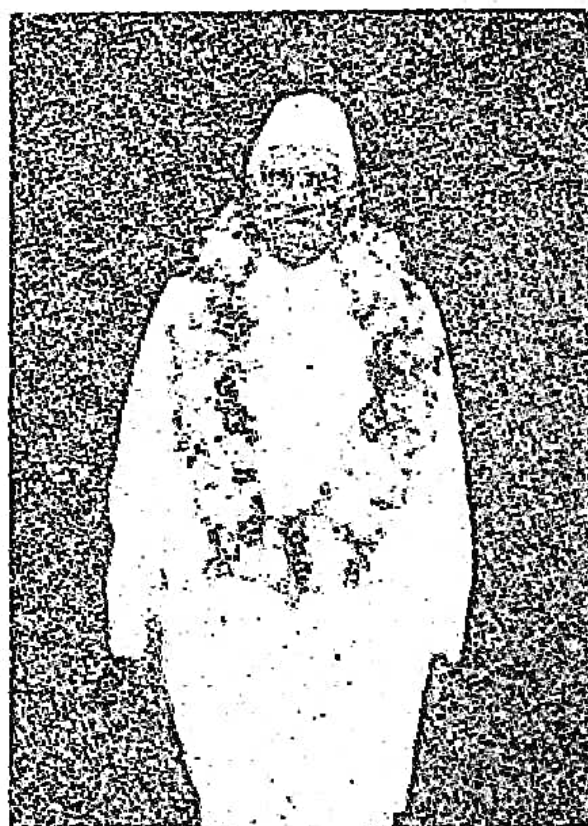
श्री बनमालीरावजी पारिख

अबला-अनाथ-रक्षा विभाग में आपने दो कर्मचारी रखे थे जो सुबह से शाम तक हावड़ा स्टेशन पर बहकाई हुई महिलाओं का पता लगाते थे। श्री हरिगोविन्दजी गुप्त और महाशय रघुनन्दनलालजी तथा अन्य आर्यसमाजी कार्यकर्ताओं की सहायता से, अनुमान है कि बनमाली रावजी पारिख ने हजारों बहिनों का उद्धार कराया था। आर्यसमाज कलकत्ता के सहयोग से सन् १९३८ ई० में अबला-अनाथ-

रक्षा विभाग बना था और बनमाली रावजी उसके सक्रिय कार्यकर्ता थे।

बनमाली भाई को तीर्थयात्रा का बड़ा शौक था। उन्होंने उत्तराखण्ड की यात्रा की थी। आसाम, बिहार और सुन्दरवन में सेवाकार्य हेतु गये थे।

श्री बनमालीजी वेदव्यास गुरुकुल आश्रम, पानपोस, उड़ीसा की भी अच्छी सहायता करते रहते थे। श्री बनमाली भाई जहाँ सन्ध्या, अग्निहोत्र और आर्यसमाजी निष्ठा के कट्टर थे वहीं विधवा-विवाह, अनाथ-अबला-उद्धार और अछूतोद्धार के काम में सदा तत्पर रहते थे।

श्री रक्खारामजी गम्भीर

स्वर्गीय रक्खारामजी गम्भीर का जन्म पश्चिमी पंजाब के जिला गुजरांवाला के रामनगर नामक गाँव में हुआ था। अब गुजरांवाला पाकिस्तान में है। रक्खारामजी ने अपने जीवन में प्रभूत धन का उपार्जन किया, अपने व्यवसाय को बहुत आगे बढ़ाया, किन्तु इनका शैशव दुःख और कष्ट का जीवन था। इनके जन्म के दो माह पूर्व इनके पूज्य पिताजी का देहान्त हो गया था। परिवार में सम्पत्ति थी ही कुछ नहीं, जैसे-तैसे करके माताजी ने बड़े कष्टों से इनका पालन-पोषण किया। परिवार की दरिद्रता की यह स्थिति और जन्म से पूर्व ही पिताजी की छाया का उठ जाना, सो रक्खारामजी गम्भीर की पढ़ाई-लिखाई नाममात्र को भी न हो पायी। परिवार जिन कठिनाइयों से गुजर रहा था उनके कारण बालक रक्खारामजी को आठ वर्ष की आयु में ही काम करने के लिए बाधित हो जाना पड़ा।

रक्खारामजी गम्भीर अपने बहनोई श्री रामनारायण गुलाटी के कारण आर्यसमाज के विचारों के सम्पर्क में आये। ये रामनारायणजी पेशावर में तार बाबू थे। इसी बीच अभी रक्खारामजी की आयु दस वर्ष की ही थी कि इनकी पूज्या माताजी का भी देहान्त हो गया।

कष्टों के बाद कष्ट, कठिनाइयों पर कठिनाइयाँ आती ही गयीं। इन सब मुसीबतों को झेलते हुये रक्खारामजी १६ वर्षकी आयु में कलकत्ता आये। यहाँ किनके सहारे रहे या किस प्रकार दो समय अन्न का योग बैठता था, यह पता नहीं चलता, किन्तु इतना पता चलता है कि रक्खारामजी ने अपने हाथों से साबुन बनाना आरम्भ किया और यही व्यवसाय करने लगे। इस व्यवसाय में रक्खारामजी को अच्छी

श्री रक्खारामजी गम्भीर

सफलता मिली। 'व्यापारान्ते वसेल्लक्ष्मीः' की कहावत चरितार्थ हुई और कालान्तर में रक्खारामजी गम्भीर प्रसिद्ध गोल्डेन सोप फैक्टरी के स्वामी बने।

कलकत्ता आने पर इनका सम्पर्क एक शालग्राम नामक वकीलजीके परिवार से हुआ। श्री रक्खारामजी में आर्यसमाज के विचार तो पहले से थे, अब धन के साथ आर्यसमाज में कार्य करना और दीन-दुखियों

को सहायता पहुँचाना इनके जीवन का अंग बन गया। इनकी पत्नी स्वर्गीया यशवन्तकौरजी आर्य विचारों की हो गयीं और पति-पत्नी मिलकर श्रद्धा और निष्ठा से आर्यसमाज का कार्य करने लगे। गम्भीरजी वर्षों आर्यसमाज के अधिकारी रहे। आर्यसमाज के हर कार्य में सहयोग करते रहे। गोल्डेन सोप फैक्टरी हावड़ा में है। किन्तु वहाँ से भी नियमित रूप से सत्संगों में आते-जाते थे।

जिन दिनों रखारामजी आर्यसमाज में सक्रिय होने लगे थे वह गाँधीजी के नमक सत्याग्रह का युग था। आर्यसमाजियों में स्वदेशी की भावना बड़ी उग्रता से काम कर रही थी। प्रायः सभी आर्यसमाजी खादी पहिनते थे और उन दिनों यह प्रभाव गम्भीरजी पर पड़ा था।

सन् १९४२ ई० में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन, उसके पश्चात् मुस्लिम लीग की सीधी कार्यवाही, देश का विभाजन, इन सब अवसरों पर गम्भीर दम्पती ने आर्यसमाज के माध्यम से गेहूँ, चावल, कपड़े, दवाइयाँ इत्यादि से पीड़ितों और विस्थापितों की सेवा सहायता की। गम्भीरजी बहुत बार विधवाओं को सिलाई मशीन देकर आत्म-निर्भर बना देते थे। कई अनाथ विधवाओं को मासिक आर्थिक सहायता भी देते थे। आर्यसमाज कलकत्ता में रखारामजी गम्भीर का अपने समय का एक सेठाना व्यक्तित्व था। हर काम में समाज के साथ लगे रहना, यथाशक्ति सहायता करना उनका स्वभाव बन गया। गम्भीरजी कभी अधिकारी नहीं भी रहते थे तो भी आर्यसमाज की सेवा-सहायता में कोई कमी नहीं होने देते थे।

श्रीमती यशवन्तकौर गम्भीर

श्रीमती यशवन्तकौर गम्भीर श्री रखारामजी गम्भीरकी धर्मपत्नी थीं और उन्हींके धार्मिक संस्कारों के कारण श्रीमती यशवन्तकौर में भी आर्यसमाज के भाव जगे थे। आपने पूरी श्रद्धाभक्ति और निष्ठा के साथ प्रत्येक धार्मिक कार्य में और आर्यसमाज के संगठन और जन-

सेवामें अपने पति का खुलकर उदारतापूर्वक साथ दिया। श्री रक्खाराम गम्भीर को जब आर्थिक सफलता मिलने लगी तो श्रीमती गम्भीर उनके साथ आर्यसमाज में सेवासहायता सम्बन्धी कार्यों में सक्रिय रहने लगीं। श्रीमती गम्भीर ने आर्यसमाज कलकत्ता के महिला समाज को पूरा सहारा दिया। श्री गम्भीरजी द्वारा विधवाओं और अनाथों की

श्रीमती यशवन्तकौर गम्भीर

सहायता में श्रीमती गम्भीर का अच्छा सहयोग और समर्थन रहता था। ये सब सहायताएँ श्री रक्खारामजी के देहान्त के पीछे भी श्रीमती यशवन्तकौरजी के देहान्त तक उसी प्रकार चलती रहीं।

श्रीमती यशवन्तकौर ने अपने पति की स्मृति को चिरस्थायी करने के लिए लिलुआ-हावड़ा में 'गम्भीर धर्मशाला' बनवायी। इन्होंने हरद्वार में भी एक पक्की सड़क बनवायी। देश-विभाजन के पश्चात्

पाकिस्तान में स्थित गम्भीरजी की जन्मभूमि रामनगर में आर्यसमाज की सहायता करते रहे। विभाजन के पश्चात् भी रामनगर आर्यसमाज में ये दवाइयाँ भेजती रहीं और वहाँ इन दवाइयों का निःशुल्क वितरण होता रहा। गम्भीर दम्पती अपने आरम्भिक दिनों की स्मृति सदा बनाये रखते थे और निर्धनों, अनाथों की सेवा-सहायता में सदा उत्साहपूर्वक योगदान किया करते थे।

श्री जाइयाँशाहजी सभरवाल

श्री जाइयाँशाह सभरवालजी पंजाब के निवासी थे। व्यावसायिक

श्री जाइयाँशाहजी सभरवाल

सिलसिले में आप कलकत्ता आ गये। आपका आर्यसमाज से पारिवारिक सम्बन्ध था। आप जब पंजाब में थे, तभी से आपकी कट्टर आर्यसमाजी निष्ठा थी।

आर्यसमाज कलकत्ता में सदा ही कुछ ऐसे दम्पती रहते आये हैं जिनका जोड़ा सर्वात्मना आर्यसमाज को समर्पित रहता है। श्री जाइयाँ शाहजी सभरवाल और श्रीमती विद्यावतीजी सभरवाल का ऐसा ही एक दम्पती जोड़ा था। श्रीमती विद्यावती सभरवाल आर्यसमाज के लिये सर्वात्मना समर्पित महिला हैं। स्वामीजी के प्रति आपकी बड़ी दृढ़ एवं श्रद्धामयी निष्ठा है। श्री जाइयाँशाहजी और श्रीमती सभरवालजी जब तक कलकत्ता रहे आर्यसमाज के समर्पित सिपाही की तरह रहे।

श्री जाइयाँशाहजी आर्यसमाज कलकत्ता के कई दशाब्दियों तक सक्रिय कार्यकर्त्ता थे। कई बार आप आर्यसमाज कलकत्ता के कोषाध्यक्ष भी निर्वाचित हुए थे।

श्री जाइयाँशाहजी का बड़ा सुयोग्य परिवार और कमासुत पुत्र हैं। जब पुत्र अपने-अपने कार्यों से कलकत्ता से बाहर रहने लगे तब इनके पुत्रों ने नासिक के पास देवलाली में इनके लिये एक घर बनवाया। श्री जाइयाँशाहजी और श्रीमती विद्यावती सभरवाल कलकत्ता से जाकर वहीं रहने लगे। कुछ वर्ष हुए जाइयाँशाहजी का वहीं देवलाली में देहान्त हो गया।

प्रोफेसर रामनारायण सिंह

प्रोफेसर रामनारायण सिंह कलकत्ता के प्राध्यापक वर्ग में हिन्दी शिक्षक और प्रचारक के रूप में सुविख्यात हैं। आप रायसाहब प्रोफेसर रामनारायण सिंह के रूप में स्मरण किये जाते हैं। आपका जन्म गाजीपुर, उत्तर प्रदेश में हुआ था। आपने हिन्दी में एम० ए० की परीक्षा पास की और कलकत्ता में हिन्दी प्रचार के लिए बद्धपरिकर हो गये। आप सिटी कालेज में हिन्दी के प्राध्यापक थे। कलकत्ता का हिन्दी-संसार आपकी हिन्दी-सेवाओं को सदा स्मरण करेगा। अहिन्दी भाषियों में हिन्दी प्रचार की चेष्टा प्रो० रामनारायण सिंह में अद्भुत थी।

आप निष्ठा से कट्टर आर्यसमाजी न थे, किन्तु आर्यसमाज की समाजसेवा, शिक्षा प्रचार, आर्यसमाज कलकत्ता के बड़े-बड़े दो विद्यालयों का हिन्दी के क्षेत्रमें कार्य आदि ऐसा आकर्षण विन्दु था कि आप आर्यसमाज की ओर उन्मुख हुए। प्रो० रामनारायण सिंहजी ने अपनी पौराणिक निष्ठा के साथ समझौता कर लिया और आर्यसमाज, १९ विधान सरणी के सदस्य बन गये। रायसाहब एकाध बार उपमन्त्री और एक बार तो आर्यसमाज कलकत्ता जैसी समर्थ और सम्पन्न समाज के महामन्त्री भी निर्वाचित हो गये।

रायसाहब का मन्त्री बन जाना कट्टर आर्यसमाजियों के लिए एक चुभती चुनौती बन गया। वे खुले रूप में शिथिल निष्ठा के थे। उसी समय से जनतन्त्र का अतिरूप नियन्त्रित किया गया। आर्य-सभासदी के नियम का कड़ाई से पालन आरम्भ हुआ। यह सब अपने में अलग कथा है, किन्तु रायसाहब प्रो० रामनारायण सिंह आर्य-समाज कलकत्ता के मन्त्री जैसे उच्च पद पर विराजमान हुए ही थे।

आपने कई शिक्षण संस्थानों की स्थापना की थी। कलकत्ता जैसे विशाल नगर में राष्ट्रभाषा हिन्दी के सेवकों में आपका नाम अग्रगण्य है।

श्री सौदागरमलजी चोपड़ा

श्री सौदागरमलजी चोपड़ा का जन्म सन् १८९६ ई० में गुजरां-वाला (वर्तमान पाकिस्तान) में हुआ था। श्री चोपड़ाजी सन् १९१४ में कलकत्ता आये। श्री सौदागरमलजी के पिताजी आर्यसमाजी थे और इस प्रकार आर्यसमाज चोपड़ाजी को वंश परम्परा से ही प्राप्त हो गया था। श्री चोपड़ाजी कलकत्ता में कई प्रकार से व्यावसायिक कार्यों में लगे रहे और कुछ समय पश्चात् उन्होंने राजा नामक धानकल का निर्माण किया और रजिस्ट्रेशन करा लिया। उन्हें अपने व्यवसाय में अच्छी सफलता मिली और उनके सुपुत्र श्री रघुनाथजी चोपड़ा, श्री यशवन्तजी

चोपड़ा आदि के सहयोग से उन्हें अच्छी व्यावसायिक सफलता मिली।

श्री सौदागरमलजी चोपड़ा का आर्यसमाज से सम्पर्क पैतृक सम्पर्क था। कलकत्ता आने पर व्यावसायिक सफलता के साथ उनका आर्य-समाज से सहयोग भी बढ़ने लगा। श्री चोपड़ाजी के साथ उनकी पत्नी

श्री सौदागरमलजी चोपड़ा

भी श्रीमती कौशल्यादेवी चोपड़ा सदा ही आर्यसमाज के कामों में निष्ठा से सहयोग करती रही हैं। श्री चोपड़ाजी अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे किन्तु उनमें आर्यसमाज और स्वामी दयानन्दजी के प्रति श्रद्धा-भक्ति कट्टरता के रूप में विद्यमान थी। स्वयं विद्वान् न होकर भी संन्यासियों, विद्वानों का सदा यथोचित सम्मान किया करते थे। आर्यसमाज कलकत्ता के सभी पुरोगमों में वार्षिक यज्ञ, वेद सप्ताह, साप्ताहिक

सत्संग में श्री सौदागरमलजी चोपड़ा और उनकी पत्नी श्रीमती कौशल्या देवी चोपड़ा अपनी पुत्रबधुओं के साथ सदा सहयोग किया करते थे। श्री सौदागरमलजी चोपड़ा और महाशय रघुनन्दनलालजी कलकत्ता आर्यसमाज के ऐसे दो स्तम्भ थे कि महाशय रघुनन्दनलालजी का तो अपना एक युग ही रहा है और श्री सौदागरमलजी चोपड़ा उस युग के

श्रीमती कौशल्यादेवी चोपड़ा

एक स्तम्भ सिपाही थे। इन्हींके साथ श्री ए० आर० भारद्वाज मिल जाते थे और यह आर्यमाज कलकत्ता की त्रिमूर्त्ति थी। श्रीमती कौशल्या देवीजी का देहान्त पहले ही हो गया था। श्री सौदागरमलजी चोपड़ा विश्राम हेतु सन् १९७१ ई० में ज्वालापुर वानप्रस्थाश्रम में गये हुये थे। वहाँ से लौटते हुए उनका देहान्त हो गया। इस प्रकार आर्यसमाज कलकत्ता का एक भक्त सिपाही इस संसार से उठ गया।

श्री गंगाप्रसादजी भौतिका

अत्यन्त सरल, स्वभाव से सीधे-सादे अपने कार्य में सदा जागरूक, श्री गंगाप्रसादजी भौतिका उच्च शिक्षाप्राप्त व्यक्ति थे। एम० ए०, एल० एल० बी०, काव्यतीर्थ आपकी शिक्षा सम्बन्धी उपाधियाँ थीं। विचारों से एवं वेश-भूषा से भी आप स्वतन्त्रता-प्रेमी गांधीवादी दिखाई पड़ते थे। बड़ाबाजार जिला कांग्रेस कमेटी के सक्रिय सदस्य थे। श्री भौतिकाजी कई वर्षों तक माहेश्वरी विद्यालय के अध्यापक भी थे।

श्री गंगाप्रसादजी भौतिका

मारवाड़ी बालिका विद्यालय के मन्त्री थे। आर्य कन्या महाविद्यालय के भी आप बहुत दिनों तक कार्यकारिणी के सदस्य और मन्त्री थे। आर्यसमाज कलकत्ता के बहुत वर्षों तक निरन्तर कोषाध्यक्ष और लेखा परीक्षक थे। श्री भौतिकाजी निर्विवाद व्यक्तित्व के धनी थे। समाज-सुधार, दलित-उद्धार, महिला-उत्थान आदि कार्यों में बड़ी रुचि के साथ आप सक्रिय भाग लेते थे।

श्री गंगाप्रसादजी भौतिका शिक्षाप्रेमी, स्वतन्त्रता आन्दोलनों में सहयोग करने वाले और शिक्षा-संस्थाओं में पूर्ण रुचि से भाग लेने

वाले संगठनात्मक दलबन्दिओं की दलदल से दूर रहने वाले व्यक्ति थे। अपने पत्र-सम्पादनकला की दृष्टि से भी मारवाड़ी सम्मेलन के मुख पत्र समाज सेवक का सम्पादन किया। आपने कलकत्ता पुस्तक भण्डार की स्थापना में भी सहयोग किया। बड़ाबाजार की अनेकानेक संस्थाओं से आपका सम्बन्ध था। आर्यसमाज और आर्य कन्या महाविद्यालय से आपका सम्बन्ध आपके जीवन के अन्तिम दिनों तक था। श्री भौतिकाजी आर्यसमाज के सामाजिक उत्थान, अछूतोद्धार, अबला-अनाथ सहायता विभाग इत्यादि कार्यों में सक्रिय सहयोग करते रहते थे।

श्री सीताराम आर्य (बाबाजी)

श्री सीतारामजी आर्य उत्तर प्रदेश में सकरारा, सीतापुर (उ० प्र०) के थे। आपका जन्म सन् १८८७ ई० में यहीं सकरारा, सीतापुर में हुआ था। आपके पिताजी का नाम श्री ललिता प्रसादजी था। व्यावसायिक कार्यों से आजीविका एवं अर्थोपार्जन के लिए आपने ललिताप्रसाद सीताराम नामक फर्म की स्थापना की थी। श्री सीतारामजी पीछे बाबाजी या बाबा सीतारामजी कहलाते थे। बड़े सात्विक विचारों के ईमानदार सत्यनिष्ठ व्यक्ति थे। सत्य के साथ समझौता न कर सकना आपके आर्यसमाजीपन का प्रमुख अंग था।

श्री सीतारामजी एक ओर स्वाधीनता संग्राम में सहयोग करते हुए बड़ाबाजार कांग्रेस के सक्रिय सदस्य थे तो दूसरी ओर आर्यसमाज की कलकत्ता में प्रत्येक गतिविधि में आपका उन्मुक्त सहयोग रहता था। आप कलकत्ता आर्यसमाज के सदस्य एवं सहयोगी रहे। पीछे आर्यसमाज बड़ाबाजार के वरिष्ठ कार्यकर्ता और प्रधान आदि महत्त्वपूर्ण पदों पर कार्य करते रहे। आपके ही प्रयास से आर्यसमाज बड़ाबाजार के लिए १ नं०, मुन्शी सदरुद्दीन लेन में भूमि खरीदी गयी। इस निमित्त आर्यसमाज बड़ाबाजार का एक ट्रस्ट बनाया गया था।

आप आर्यसमाज बड़ाबाजार के इस ट्रस्ट के ट्रस्टी भी थे। प्रतिवष अपनी फर्म का हिसाब कर लेने पर शतांश लाभ आर्यसमाज को सदस्यता के रूप में देते रहना आपका सुदृढ़ नियम था। यावज्जीवन आप इस नियम का पालन करते रहे।

अपनी जन्मभूमि सीतापुर आर्यसमाज को भी आप बराबर सहायता करते रहते थे। कई सार्वजनिक संस्थाओं से आपका सम्बन्ध

श्री सीतारामजी आर्य (बाबाजी)

था। काशी विश्वनाथ सेवा समिति, बड़ाबाजार व्यायामशाला और कुमार सभा पुस्तकालय में आपका सक्रिय सहयोग रहता था।

श्री सीतारामजी का जीवन स्वाधीनता संग्राम में एक कट्टर निष्ठावान् सिपाही की तरह बीता था। कांग्रेस का सहयोग करने के कारण आपको सीतापुर में ही कारावास का दण्ड मिला था। कलकत्ता आने पर स्वतन्त्रता आन्दोलनों के कारण आपने फिर जेलयात्रा की थी। वहीं आपका श्री प्रफुल्लचन्द्र सेन इत्यादि बंगाल के नेताओं से सम्पर्क हुआ था। आपने सन् १९२१ ई० और सन् १९४२ ई० के आन्दोलनों में बड़े उत्साह से भाग लिया था। सन् १९४२ ई० में 'भारत

छोड़ो' आन्दोलन के समय आपने बड़ी निर्भीकता का चिरस्मरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया था।

१२ अक्टूबर, सन् १६६६ ई० को आपका देहान्त हो गया। श्री सीतारामजी एक स्वतन्त्रता संग्रामी, समाजसेवी और वैदिक धर्म के कट्टर निष्ठावान् भक्त के रूप में चिरस्मरणीय हैं।

श्री लालमनजी आर्य

श्री लालमनजी का जन्म सन् १६११ ई० में राजस्थान प्रदेश में शेरडा नामक ग्राम में हुआ था। यौवनकाल में ही अपने परिवार के बड़े भाई श्री रामानन्दजी आर्य के सम्पर्क से लालमनजी का झुकाव आर्यसमाज की ओर हुआ। श्री आर्यजी आर्यसमाज के सम्पर्क में क्या आये, वैदिक धर्म के प्रति उनकी आस्था अडिग हो गयी। स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज के मिशन के प्रति सर्वात्मना समर्पित हो गये। लालमनजी कट्टर आर्यसमाजी थे और बड़ी लगन से आर्य-समाज के कार्यों और समाजसुधार के कार्यों में लगे रहते थे। उन्होंने समाजसुधार का कार्य अपने घर एवं परिवार से आरम्भ किया था। मृतक भोज, पिण्डदान, छुआछूत, पर्दा-प्रथा, दहेज, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, इत्यादि प्रथाओं के कट्टर विरोधी थे। विधवा-विवाह, अछूतोद्धार, अबला उद्धार, इत्यादि कार्यों में बड़ी तन्मयता से लगे रहते थे। श्री आर्यजी का जीवन क्रियात्मक रूप से सम्पूर्णतः आर्य-जीवन था। वे प्रतिदिन सन्ध्या-हवन करते, सन्ध्या में बड़े प्रेम से घण्टे आधे घण्टे लगाते थे। जो भी उनके सम्पर्क में आता था, उसे सन्ध्या, अग्निहोत्र की प्रेरणा देते थे। इन्होंने सैकड़ों व्यक्तियों को सन्ध्या, हवन, यज्ञ की प्रेरणा दी और उनके परिवारों में यह सब मंगल कार्य आरम्भ कराये।

श्री लालमनजी व्यवसाय के सिलसिले में अपने नवयौवन काल में ही उत्तरी बंगाल के चाय बगानों वाले अंचल में चले गये थे। वहाँ

अपने अग्रजतुल्य श्री रामानन्दजी आर्य और श्री भूपालजी आर्य साथ ही व्यवसाय करते थे। तीनों सगे भाइयों की तरह दिन में आजीविका के लिये व्यवसाय करते थे और सायंकाल प्रचारार्थ चाय बगान के मजदूरों के बीच चले जाते थे और उन मजदूरों को आर्यसमाज और वैदिक धर्म का उपदेश देते थे। श्री लालमनजी गाते एवं गीत बनाते भी थे। गीतों के माध्यम से आपने वैदिक धर्म के सन्देशों को बड़ा जनप्रिय

श्री लालमनजी आर्य

बना दिया था। द्वितीय युद्ध छिड़ने पर आप कलकत्ता आ गये और यहाँ कपड़े का व्यवसाय किया। आर्यसमाज बड़ाबाजार के सदस्य बने और धीमे-धीमे अधिकारी तो क्या सामाजिक संगठनों के कर्णधार और सूत्रधार बन गये। आर्यसमाज बड़ाबाजार के साथ ही आर्यसमाज कलकत्ता और कलकत्ता के सारे आर्य सामाजिक संगठनों को आपकी सेवाएँ मिलने लगीं। आपके पुत्रों ने परिवहन का कार्य

आरम्भ किया और उसमें भी इन्हें चरम कोटि की सफलता मिली। धीमे-धीमे सम्पूर्ण भारतवर्ष आर्य परिवार की श्रद्धाभक्ति और दान-शीलता से प्रभावित होने लगा। श्री लालमनजी ने हिन्दी-रक्षा-आन्दोलन के समय बड़ी कर्मठता और लगन के साथ कार्य किया था। कलकत्ता में जब आर्यसमाज स्थापना शताब्दी मनायी गयी थी तो उस विशाल आयोजन के स्वागताध्यक्ष श्री लालमनजी आर्य ही थे। आपकी सेवाओं के कारण आर्यसमाज बड़ाबाजार ने आपका सार्वजनिक अभिनन्दन किया था।

श्री लालमनजी ने व्यावसायिक कार्य अपने पुत्रों को सौंप दिया था और स्वयं तटस्थ निस्पृह होकर हिसार में रहने लगे थे। श्री आर्य जी कई जगहों पर सेवाकार्य कर रहे थे। दयानन्द ब्राह्म महा-विद्यालय, हिसार, गुरु बिरजानन्द वैदिक साधना आश्रम मथुरा, बाल सेवासदन भिवानी, वैश्य विधवा हितकारिणी सभा, आर्यसमाज बड़ाबाजार ट्रस्ट, कलकत्ता, आर्य प्रादेशिक उप-प्रतिनिधि सभा, हरियाणा, आदि संस्थाओं के माध्यम से श्री आर्यजी जनसेवा करते रहे। श्री आर्यजी ने अपनी जन्मभूमि शेरडा में स्कूल, औषधालय, कूप, एक विशाल सरोवर और विश्राम-गृह बनवाया और उसका सुन्दर संचालन उनकी और उनके परिवार की उदारता एवं दानशीलता का परिचायक है। श्री आर्यजी ने ६१ वर्ष की आयु में वानप्रस्थ आश्रम की दीक्षा ले ली थी। यह एक कोटिपति सेठ की परम धार्मिक निष्ठा ही थी। श्री आर्यजी इस बात में भी परम सौभाग्यशाली थे कि उनके सभी पुत्र अपने-अपने स्थान पर आर्यसमाज की सेवा में पूर्ण रूप से जुटे रहते हैं। ज्येष्ठ पुत्र श्री गजानन्दजी आर्य कलकत्ता में हैं, मध्यम पुत्र श्री प्रकाशानन्दजी आर्य बंगलौर में हैं और कनिष्ठ पुत्र श्री सत्यानन्दजी आर्य दिल्ली में हैं। तीनों निष्ठावान् पिता के श्रद्धावान् पुत्र हैं और अपनी-अपनी जगह पर सभी आर्यसमाज की सेवा में पूर्ण श्रद्धा-भक्ति से संलग्न हैं।

श्री प्रभुदयाल अग्रवाल

आपका जन्म सन् १६२० ई० में नांगल, जो अब भोरुग्राम के नाम से प्रसिद्ध है, में हुआ था। आप सड़क परिहन उद्योग के जनक ही नहीं, अपितु आप एक अथक समाजसेवी और उद्योगपति थे।

श्री प्रभुदयालजी अग्रवाल

मिडिल स्कूल की शिक्षा प्राप्त करने के बाद आपने अपना अध्ययन छोड़कर उत्तर बंगाल के बानरहाट के समीप स्थित रेड बैंक टी स्टेट में एक साधारण कर्मचारी के रूप में अपनी जीवन यात्रा प्रारम्भ की। उसके बाद सन् १६३६ ई० में आपने अपना कपड़े का व्यापार "जसवंत राय एण्ड ब्रदर्स" प्रतिष्ठान के नाम से आरम्भ किया। कलकत्ता के

बड़ाबाजार में बिलासराय कटरा में आपकी फर्म स्थित थी। उद्यम तथा अदम्य उत्साह ने आपको एक प्रतिष्ठित उद्योगपति के रूप में प्रतिष्ठित किया। आपके विशाल बढ़ते औद्योगिक साम्राज्य में स्टील (भोरुका स्टील लि०), टैक्सटाइल (मुकेश टैक्सटाइल तथा भोरुका टैक्सटाइल लि०), इञ्जीनियरिंग तथा औद्योगिक गैसेज (कर्नाटका आक्सीजन लि०), आल्यूमिनियम (कर्नाटका आल्यूमिनियम) और सबसे महत्त्वपूर्ण ट्रान्सपोर्ट कारपोरेशन आफ इण्डिया लि०, जो इस उप-महाद्वीप में सड़क परिवहन का सबसे विशाल संगठन है, भी शामिल हो गया। विशेष रूप से सड़क परिवहन उद्योग से गहरा लगाव तथा औद्योगिक क्षेत्र में अभिरुचि के कारण आपने टी० सी० आई० लि० तथा उसके सहयोगी ट्रान्सपोर्ट प्रतिष्ठानों विशेष रूप से ए० बी० सी० इण्डिया लि०, को मालों के चलाचल हेतु एक शक्तिशाली राष्ट्रीय विकल्प के रूप में उपलब्ध करने का सपना हमेशा संजोया, जिससे आवश्यक वस्तुओं की सार्वजनिक वितरण-प्रणाली सुदृढ़ हो सके।

अथक समाज सुधारक के रूप में आपने पददलितों तथा पिछड़े वर्गों को ऊपर उठाने में अथक सहायता की। आर्यसमाज के आन्दोलनों के समर्थक श्री पी० डी० अग्रवाल अनेक संगठनों के ट्रस्टी संरक्षक तथा विधवा विवाह, दहेज विरोधी आन्दोलन, शिक्षा, गरीबों के लिए मेडिकल सुविधा तथा प्राकृतिक विपत्तियों के समय राहत कार्य करने वाली अनेक संस्थाओं की प्रबन्ध समिति के सदस्य थे। उनमें उल्लेख-नीय संस्थाएँ : काशी विश्वनाथ सेवा समिति, मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी, इण्डियन रेड क्रास, सेंट जान्स एम्बुलेन्स एसोसिएशन, हरियाणा चैरिटेबुल सोसाइटी, सेवकी हास्पीटल हिसार; हरियाणा भवन; हरियाणा नागरिक संघ, कुम्हार टोली सेवा समिति, अ० भा० अग्रवाल महासम्मेलन, सरस्वती विद्या मन्दिर, राउरकेला, अग्रोहा जीर्णोद्धार समिति आदि।

उनके निर्देशन में राजस्थान, कर्नाटक, उ० प्र० तथा आन्ध्र प्रदेश में चार हाईस्कूलों की स्थापना की गयी तथा सम्पूर्ण भारत में १२ निःशुल्क चिकित्सालयों की स्थापना भी की गयी। इनमें प्रति वर्ष दो लाख से अधिक मरीजों का इलाज किया जाता है।

आल इण्डिया मोटर ट्रान्सपोर्ट कांग्रेस की वर्तमान कार्यकारिणी के सदस्य तथा भूतपूर्व अध्यक्ष तथा कलकत्ता गुड्स ट्रान्सपोर्ट एसोसिएशन के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री प्रभुदयाल अग्रवाल ने केन्द्रीय सरकार के परिवहन विकास परिषद् के भी सदस्य के रूप में अपनी सेवाएँ अर्पित कीं।

आपका आकस्मिक निधन १७ सितम्बर १९८२ को टेक्सास स्थित हाटन इन्सटीट्यूट में ६३ वर्ष की आयु में हृदयगति रुकने से हो गया।

आप जन्म से आर्यसमाजी थे तथा पूरे भारतवर्ष में आर्यसमाज के विभिन्न कार्यक्रमों में विशेष योगदान देते रहे। समय-समय पर आपने कलकत्ता आर्यसमाज की भरपूर सहायता की है।

श्री अचर्जरामजी भारद्वाज

श्री अचर्जराम भारद्वाज का जन्म पेशावर नगर में सन् १९०० ई० में हुआ था। इनके पिताजी का नाम लाला गुरुदित्तमल भारद्वाज था। इन्होंने पेशावर में ही सन् १९२० ई० में बी० ए० पास किया और सन् १९२३ ई० श्रीमती शकुन्तला भारद्वाज से विवाह किया। श्रीमती भारद्वाज इस समय ८० वर्ष की हैं। आप पूरी निष्ठा से आर्यसमाज और स्वामी दयानन्द की भक्त हैं।

श्री अचर्जराम भारद्वाज ने अपना जीवन एक स्कूल शिक्षक के रूप में आरम्भ किया था। वे व्यवसाय की दृष्टि से सन् १९३७ ई० में कलकत्ता आये। श्री भारद्वाजजी आरंभ से ही आर्यसमाज कलकत्ता

के सम्पर्क में थे। ये आर्यसमाज कलकत्ता के बड़े ही सक्रिय कार्यकर्त्ता थे। महाशय रघुनन्दलालजी और श्री भारद्वाजजी की जोड़ी आर्यसमाज कलकत्ता के इतिहास में स्मरणीय है। श्री भारद्वाजजी सन् १९४८ ई० में आर्यसमाज कलकत्ता के उपमन्त्री निर्वाचित हुये थे। सन् १९५१ ई० में वे आर्यसमाज कलकत्ता के प्रधान मन्त्री बने। इसके पश्चात् निरन्तर यावज्जीवन आर्यसमाज के किसी न किसी रूप में अधिकारी बने रहे। श्री भारद्वाजजी का देहान्त ७ जून सन् १९६१ ई० को ६१ वर्ष की आयु में कलकत्ता में हो गया। श्री भारद्वाजजी देहान्त के समय में भी आर्यसमाज कलकत्ता के सक्रिय अधिकारी थे।

श्री अचर्जरामजी भारद्वाज

श्री भारद्वाजजी का जीवन अत्यन्त सादा और सरल था। जीवन में जैसी सादगी और सरलता थी काम में उतनी ही दृढ़ता और लगन थी। आर्यसमाज के लिये श्री भारद्वाजजी दिन-रात एक कर देते थे। आर्यसमाज कलकत्ता के परम सक्रिय कार्यकर्ताओं में श्री ए० आर० भारद्वाज सदा स्मरणीय रहेंगे।

श्री बैजनाथजी अरोड़ा

श्री बैजनाथ अरोड़ा देश-विभाजन से पूर्व लाहौर, पंजाब में रहते थे और वहाँ बच्छोवाली आर्यसमाज के सदस्य और कार्यकर्त्ता थे। लाहौर में ही इनका व्यवसाय था। श्री बैजनाथजी सन्ध्या, हवन और सत्संग के कट्टर भक्त थे। स्कूली शिक्षा कम होने पर भी उनको ये सब मन्त्र कण्ठस्थ थे। श्री बैजनाथजी के सभी पुत्र और पुत्रियाँ आर्यसमाजी निष्ठा के हैं और सारा परिवार आर्यसमाज का भक्त है।
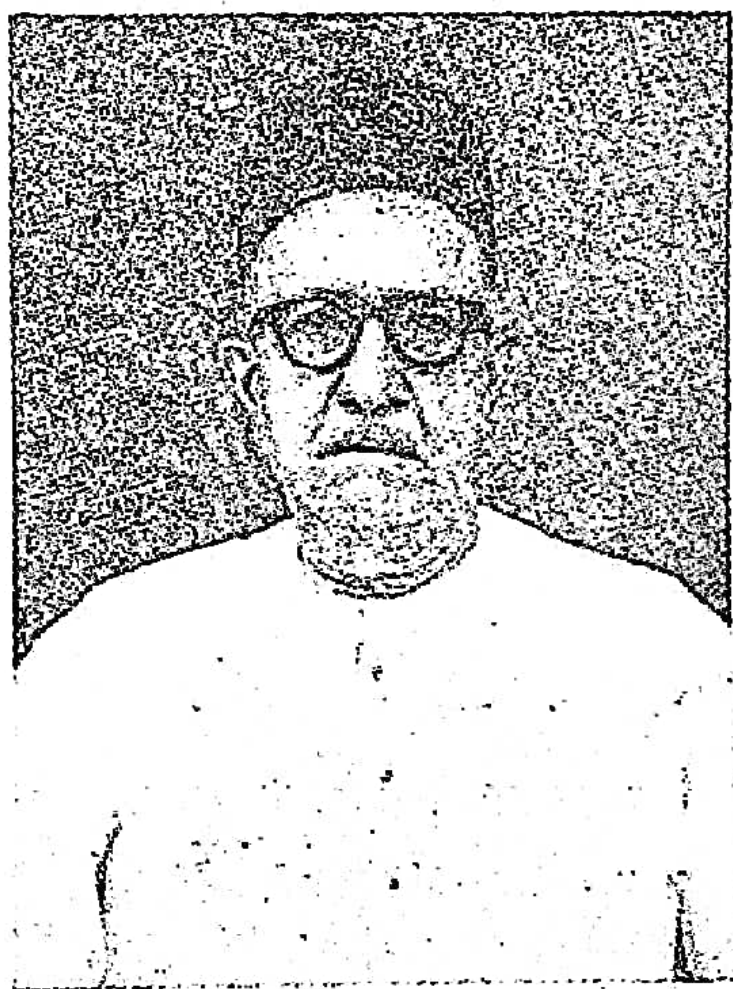
श्री बैजनाथजी अरोड़ा

श्री बैजनाथजी की धर्मपत्नी श्रीमती वीरांवाली देवी थीं। चौथी श्रेणी तक स्कूली पढ़ाई हुई थी किन्तु वेदपाठ, सन्ध्या, हवन आदि इनका नित्यकर्म था। ये निरलस भाव से आर्यसमाज की सेवा, अतिथि

सत्कार और परिवार के पालन में लगी रहती थीं। कलकत्ता आकर ये बराबर आर्यसमाज में आना जाना रखती रही हैं। आर्य स्त्री-समाज कलकत्ता की स्थापना में श्रीमती वीरांवाली देवीजी का हाथ

श्रीमती वीरांवाली अरोड़ा

महत्त्वपूर्ण है। आप यावज्जीवन आर्यसमाज की सेवा में समर्पित रहीं।

श्री बनारसीदासजी अरोड़ा

श्री बनारसी दासजी अरोड़ा का जन्म सन् १९०९ ई० में एक पौराणिक परिवार में हुआ था। इनके पिताजी श्री केवलकृष्ण अरोड़ा कट्टर सनातन धर्मी विचारों के थे। श्री अरोड़ाजी की शिक्षा श्री विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय कलकत्ता में हुई थी। श्री अरोड़ाजी का परिवार

पौराणिक तो था किन्तु परिवार में यज्ञ, सत्संग इत्यादि के प्रति बड़ा आदर भाव था।

श्री बनारसी दासजी अपनी जवानी के दिनों में स्वतन्त्रता संग्राम के दीवाने कार्यकर्त्ता थे। विदेशी कपड़ों की होली लगाना, शराब की दूकानों पर धरना देना और स्वतन्त्रता के अन्य कामों में लगे रहना श्री बनारसी दासजी का व्रत जैसा ही था।
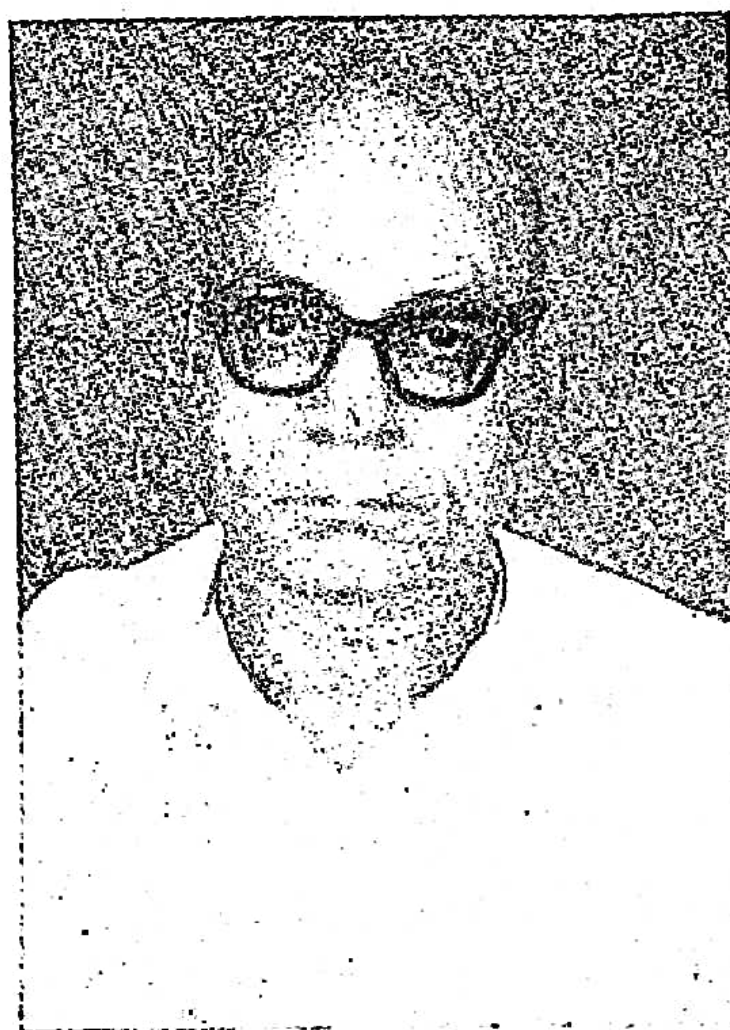
श्री बनारसी दासजी अरोड़ा

श्री बनारसी दासजी अपने पैतृक व्यवसाय में लग गये किन्तु मन में आत्मशान्ति की आकांक्षा सदा बनी रहती थी और जहाँ भी अवसर मिलता वे सभी सत्संगों में जाते रहते थे। सन् १९४० ई० में आर्य-समाज कलकत्ता का उत्सव गिरीश पार्क में हो रहा था, वहीं व्याख्यानों को सुनकर इनके मन को शान्ति मिली और फिर स्वामी दयानन्द

और आर्यसमाज के साहित्य को पढ़कर ये आर्यसमाज की ओर झुक गये। इनका आर्यसमाज के विद्वानों से निकट का सम्पर्क रहता था। पं० रमाकान्तजी तो उनके अपने घर के सदस्य जैसे थे। अरोड़ाजी की धर्मपत्नी श्रीमती सावित्री देवी अरोड़ा भी पौराणिक परिवार में जन्म लेकर भी अरोड़ाजी के विचारों के साथ सदा सहमत रहीं और आर्यसमाज के हर कार्य में अरोड़ाजी के साथ योगदान करती रहीं। श्री अरोड़ाजी आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्य बने और धीरे-धीरे आर्यसमाज के कामों में हाथ बँटाने लगे।

श्री अरोड़ाजी आर्यसमाज कलकत्ता के सक्रिय कार्यकर्त्ता थे। वर्षों तक अन्तरंग के सदस्य रहे, अन्य आवश्यक और महत्वपूर्ण कार्यों को करते हुए कई वर्ष आर्यसमाज कलकत्ता के मन्त्री भी रहे। पीछे जब न्यू अलीपुर आर्यसमाज की स्थापना हुई, श्री अरोड़ाजी न्यू अलीपुर आर्यसमाज के भी प्रधान बने। श्री अरोड़ाजी को यज्ञ, सत्संग और स्वाध्याय से बड़ा स्नेह था। इनके सभी परिजन, सभी बच्चे और बहुएँ यज्ञ, सत्संग संस्कारों से प्रभावित हैं।

डा० रोशनलाल खट्टर

डा० रोशनलाल खट्टर का जन्म पश्चिम पंजाब के सरगोधा जिले में भेरा नामक स्थान में ७ अप्रैल सन् १६२१ ई० को हुआ था। रोशनलालजी के दोनों बड़े भाई श्री कृष्णलालजी खट्टर और श्री रामजी खट्टर कट्टर आर्यसमाजी थे। इस प्रकार रोशनलालजी अपने बड़े भाई श्री कृष्णलालजी खट्टर की छत्रछाया में आर्यसमाज से प्रभावित हुए और आर्यसमाज के सदस्य बने। मैट्रिक की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् श्री रोशनलालजी ने दयानन्द आयुर्वेदिक कालेज लाहौर से कविराज और कलकत्ता की एम० ए० एम० एस० की परीक्षाएँ पास कीं। श्री रोशनलालजी ने आजीविका के रूप में डाक्टरी की लाइन को ही पकड़ रखा था।

परिवार के आर्यसमाजी वातावरण में कट्टरता के कारण श्री रोशन लालजी हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तानी के सक्रिय समर्थक बन गये। यों तो आपने लाहौर में राष्ट्रीय फार्मेसी की स्थापना की थी, किन्तु देश और जाति डा० रोशनलाल से कुछ और ही आकांक्षा कर रही थी। इधर राष्ट्र का वातावरण विभाजन की ओर उन्मुख हो रहा था। रोशनलालजी अपनी आजीविका और अपनी फार्मेसी की चिन्ता छोड़ कर जातीयता के मौन आह्वान को सुनकर जातीय संगठन में ही

डा० रोशनलालजी खट्टर

लग गये। स्वाभाविक था व्यवसाय और आजीविका इस प्रकार चलती नहीं, किन्तु रोशनलालजी ने अपनी फार्मेसी की चिन्ता छोड़कर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ में सक्रिय योगदान आरम्भ कर दिया। इधर देश के विभाजन की तैयारी थी और उधर रोशनलालजी खट्टर लाहौर के प्रसिद्ध राजगढ़ केस में बन्दी बना लिये गये और आपको कारावास की सजा हो गयी। २१ मार्च सन् १९४८ तक पाकिस्तान की जेल में

जेल की यातनाएँ भुगत कर रोशनलालजी जेल से छूटे। इधर इनके बड़े भाई श्री कृष्णलालजी खट्टर एवं श्री श्रीरामजी खट्टर कलकत्ता आ गये थे। पाकिस्तान बनने के बाद सारा खट्टर परिवार ही कलकत्ता आ गया था। इस प्रकार रोशनलालजी भी कलकत्ता आ गये और बड़ा-बाजार में राष्ट्रीय फार्मेसी बनाकर कार्य करने लगे। यहाँ भी आजीविका से अधिक रोशनलालजी का सम्बन्ध राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, जनसंघ, जनता पार्टी और भारतीय जनता पार्टी से था।

श्री रोशनलालजी कट्टर आर्यसमाजी थे। वे आर्य कन्या महाविद्यालय की प्रबन्धक समिति के सदस्य थे। आर्यसमाज कलकत्ता के वार्षिक वेद पारायण यज्ञों पर तथा वेद सप्ताह के वेद पारायण यज्ञों पर सबसे पहले आकर यज्ञ की व्यवस्था में श्रमजीवी स्वयं सेवक की तरह जुट जाते थे। श्री रोशनलालजीको सत्यार्थ प्रकाशकी परीक्षा में प्रथम स्थान मिला था। श्री रोशनलालजी का १ दिसम्बर सन् १९८२ ई० को देहान्त हो गया, किन्तु इनका साहसी स्वभाव एवं राष्ट्र-भक्ति सदा अविस्मरणीय हैं।

ऊनविंश अध्याय

वर्तमान आयाम

आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना सन् १८८५ ई० में हुई और सन् १९०७ ई० में आर्यसमाज के लिए भूमि खरीद ली गयी तथा सन् १९१० ई० में प्रसिद्ध आर्यसमाज कलकत्ता के मन्दिर १९, कार्नवालिस स्ट्रीट का निर्माण हुआ। यह मन्दिर कलकत्ता जैसे शहर में स्थान की दृष्टि से विशाल और बहुमुखी गतिविधियों का केन्द्र बना रहा है। मन्दिर के सामने थोड़ी सी खाली भूमि थी जो आर्य हिन्दू धर्म सेवा संघ की थी। आर्यसमाज कलकत्ता के प्रसिद्ध कार्यकर्ता श्री किशनलालजी पोद्दार की प्रेरणा और प्रयास से श्री बिड़ला बन्धुओं ने वह भूमि खरीदकर आर्यसमाज कलकत्ता को दान देने का निश्चय कर दिया और वह भूमि आर्यसमाज कलकत्ता को मिल गयी। भूमि अपने में इतनी कम थी कि उस पर अलग से कुछ न बन सकता था और साथ ही आर्यसमाज कलकत्ता का सड़क की ओर से सामने का भाग छिप भी जाता था। अतः आर्यसमाज कलकत्ता के अधिकारियों ने श्री बिड़लाजी के साथ मिलकर यह निर्णय किया कि इस भूमि को आर्यसमाज कलकत्ता के सामने के भाग के साथ मिला दिया जाय और आर्यसमाज मन्दिर का विस्तार उस पूरी रिक्त भूमि तक हो जाय। इस विस्तार में आर्यसमाज कलकत्ता को थोड़ी जगह अधिक मिल गयी और कार्यालय, पुस्तकालय, वाचनालय एवं महर्षि दयानन्द

दातव्य औषधालय के लिए निचले तल्ले पर ही पूरी व्यवस्था बन गयी, किन्तु प्राचीन मन्दिर के साथ इस अभिनवीकरण एवं विस्तार के प्रयास में मन्दिर के सामने का पश्चिम ओर का वह भाग जिसमें मन्दिर की की छत पर उत्तरी और दक्षिणी दोनों सिरों पर मन्दिरनुमा गुम्बद वाली दो कोठरियाँ थीं, उस अंश का भी इसमें विलयन हो गया और वे ऐतिहासिक कोठरियाँ अब केवल अतीत की स्मृति मात्र ही रह गयी हैं। ये दोनों कोठरियाँ आर्यसमाज मन्दिर की छत पर पश्चिम की ओर उत्तर और दक्षिण के किनारों पर थीं। इन्हीं कोठरियों में अमर शहीद भगत सिंहजी कलकत्ता प्रवास के समय रहे थे। इन्हीं कोठरियों में पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री ने बहुत सारा साहित्यिक कार्य किया था। वे अतीतकी स्मृतियाँ, स्वाभाविक ही, अभिनवीकरणके प्रयासमें विलीन हो गयीं और आर्यसमाज कलकत्ता का मन्दिर पश्चिम की ओर ट्राम रास्ते तक विस्तृत हो गया। इस विस्तार के कारण पुराने सभाकक्ष का पुराना विशाल आयतन भी जैसे का तैसा रह गया, उसमें कोई परिवर्तन न करना पड़ा, साथ ही सभाकक्ष के सामने पश्चिम की ओर इतनी पर्याप्त जगह निकल आयी कि आर्यसमाज कलकत्ताको कार्यालय पुस्तकालय, वाचनालय एवं श्रीमद्दयानन्द दातव्य औषधालय के लिए पर्याप्त स्थान निकल आया।

अभिनवीकरण की ओर

इस अभिनवीकरणका श्रेय श्री हरिश्चन्द्रजी वर्मा, तात्कालिक प्रधान, आर्यसमाज कलकत्ता, राजेन्द्रसिंह मल्लिक और श्री पूनमचन्दजी आर्य- तात्कालिक मन्त्री, आर्यसमाज कलकत्ता, को विशेष रूपसे प्राप्त है। यह सन् १९६४-६५ ई० की प्रगति है। श्री हरिश्चन्द्रजी वर्मा नई पीढ़ी के प्रधान थे। उनमें कार्य करने की कई प्रकार की क्षमताएँ और उमंग थी। संयोग से उन्हें उसी प्रकार के मन्त्री श्री पूनमचन्दजी मिल गये। मन्त्री और प्रधान ने सारे आर्यसमाज मन्दिर को एक

नया ही स्वरूप और रंग दे डाला। पुराना फर्श अभिनव मोजाइक फर्श बनाया गया, दीवालों को कलात्मकता की दृष्टि से सजाया गया, सभाकक्ष की वेदी को नये ढंग से सुघर स्वरूप दिया गया। सभाकक्ष को आर्यसमाज के प्रसिद्ध संन्यासी, विद्वानों एवं नेताओं के तैलचित्रों से सुशोभित किया गया, व्यासपीठ पर महर्षि दयानन्दजी का नव्य-भव्य विशाल तैलचित्र लगाया गया। सभाकक्ष का प्रमुख द्वार कलात्मकता की दृष्टि से नूतन रूप में बनवाया गया और पारदर्शी शीशे से द्वार का सुन्दर आवरण बनाया गया। इस प्रकार आर्य-समाज मन्दिर का सभा-कक्ष बड़ा सुन्दर और आकर्षक बन गया।

आर्यसमाज कलकत्ता का भवन :

आर्यसमाज कलकत्ता की भूमि की रजिस्ट्री के दस्तावेज़ में यह भूमि ६ कट्ठा, १ छटांक, १२ वर्गफीट लिखी हुई है। इस समय आर्य-समाज का भवन लगभग १०८ फीट लम्बा और ६५ फीट चौड़ा है। इस प्रकार आर्यसमाज के भूमि का क्षेत्रफल ६,६०० वर्ग फीट के लगभग होता है। इसमें समाज मन्दिर के पश्चिम की ओर बिड़ला बन्धुओं के दान की भूमि शामिल है। आर्यसमाज के सत्संग-कक्ष की लम्बाई लगभग ५१ फीट और चौड़ाई ४४ फीट है। सत्संग हाल में पूर्व की ओर १८ फीट ६ इंच × १२ फीट ६ इंच की व्याख्यान वेदी मध्य में बनी हुई है। व्याख्यान वेदी के पीछे की दीवार पर स्वामी दयानन्द का विशाल भव्य तैलचित्र टँगा हुआ है और वेदी के दायें-बायें कठोपनिषद् का 'श्रेयश्च प्रेयश्च' वाला प्रसिद्ध उद्धरण पत्थर की शिलाओं पर उत्कीर्ण किया हुआ लगा हुआ है। इस प्रकार सत्संग कक्ष की व्याख्यान-वेदी अपने आध्यात्मिक स्वरूप को प्रकट करती है। सत्संग हाल की ज़मीन से छत की ऊँचाई २८ फीट है। आर्यसमाज के सत्संग हाल के उत्तर-पूर्व के कोने में हाल से बाहर अन्तरंग सभा का विचार कक्ष बना हुआ है। यह अन्तरंग कक्ष २० फीट ६ इंच ×

१६ फीट ६ इंच लम्बा चौड़ा है। इसमें डवल लम्बी मेज के साथ पर्याप्त सुन्दर कुर्सियों से यह कक्ष सजा हुआ है। इसमें स्थानीय विद्वानों—पं० शंकरनाथजी, पं० अयोध्या प्रसादजी, पं० सदाशिवजी, पं० शिवशंकर शर्मा, पं० रमाकान्तजी इत्यादि के चित्र टंगे हुए हैं।

आर्यसमाज के सत्संग हाल में आर्यसमाज के अखिल भारतीय संन्यासियों, विद्वानों, नेताओं के तैलचित्र लगे हुए हैं। इनमें पं०गणपति शर्मा, स्वामी ध्रुवानन्द सरस्वती, स्वामी स्वतन्त्रतानन्द सरस्वती, स्वामी विश्वेश्वरानन्द सरस्वती, स्वामी नित्यानन्द सरस्वती, स्वामी सर्वदानन्द सरस्वती, स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती, महात्मा नारायण स्वामी, स्वामी श्रद्धानन्द, महाराजा सज्जन सिंह, महाराजा नाहर सिंह, महात्मा हंसराज, पं० गुरुदत्त विद्यार्थी, पं० लेखराम आर्य मुसाफिर, श्री लाला लाजपत राय के तैलचित्र लगे हुए हैं।

आर्यसमाज के सभा हाल के पश्चिम की ओर २१ फीट × १० फीट का आर्यसमाज का कार्यालय है। उसमें भी और पश्चिम की ओर आर्यसमाज के पुस्तकालय की आलमारियां और नीचे वाचनालय की मेज और बेंचे लगी हुई हैं। पुस्तकालय दक्षिण की ओर और औषधालय उत्तर की ओर हैं। औषधालय का क्षेत्रफल २५ फीट × १५ फीट है। इसमें औषधि रखने और देने का स्थान अलग, वैद्यजी के बैठने और रोगी देखने का कक्ष अलग और रोगियों के बैठने की जगह अलग व्यवस्थित की हुई है।

समाज मन्दिर का मुख्यद्वार ट्राम रास्ते की ओर पश्चिम की दिशा में खुलता है। मुख्य द्वार ६ फीट × ४ फीट ६ इंच का है। इस प्रकार सभाकक्ष की वेदी से मन्दिर के मुख्य द्वार तक आर्यसमाज मन्दिर लगभग ८७ फीट की लम्बाई में फैला हुआ है। उसीके साथ सभाकक्ष के बाहर का अन्तरंग कक्ष लगभग २० फीट ६ इंच है। इस प्रकार आर्यसमाज की भूमि की लम्बाई लगभग १०८ फीट लम्बी और ६५ फीट चौड़ी है।

यज्ञशाला :

आर्यसमाज मन्दिर के विशाल सत्संग कक्ष के दक्षिण पूर्व में थोड़ी खाली जगह पड़ी थी। यहीं बहुत पहले से आर्यसमाज की यज्ञवेदी बनी थी। यों तो यह यज्ञवेदी भी अपने में विशाल थी और उस यज्ञवेदी पर बड़े-बड़े वेद पारायण यज्ञ होते रहे हैं। एक बार सन् १९४७ ई० से भी पूर्व एक महीने का निरन्तर यज्ञ उसी यज्ञवेदी पर उसी के विशाल हवनकुण्ड में हुआ था। किन्तु वह यज्ञशाला
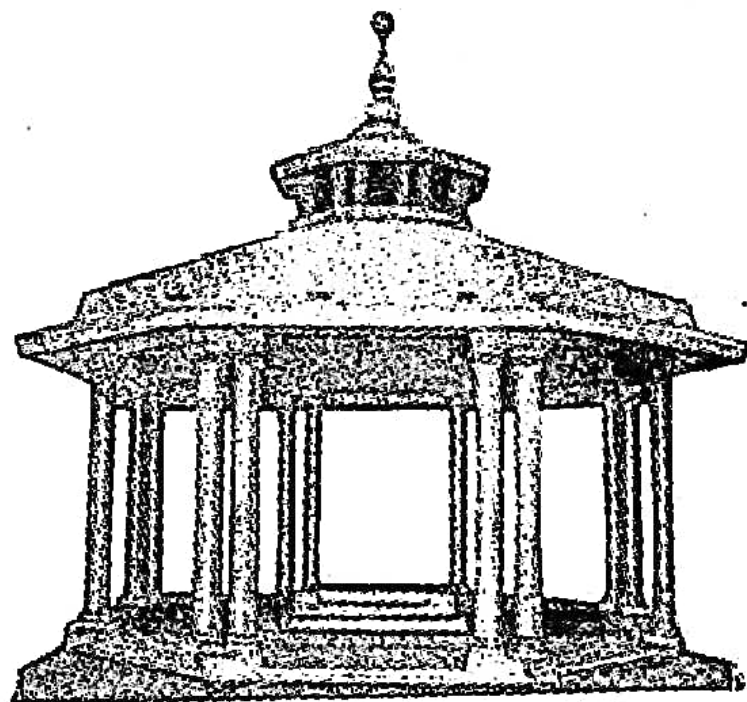
यज्ञशाला

पुरानी थी और पुरानेपन में नयनाभिरामिता तो कम हो ही जाती है। फलतः आर्यसमाज के अधिकारियों ने सुन्दर संगमरमर की यज्ञशाला बनाने का निश्चय किया। उसी प्राचीन यज्ञशाला का अभिनवीकरण किया गया और १६ खम्भे की यज्ञशाला बनायी गयी। दो-दो के जोड़े में ८ खम्भों पर यह यज्ञशाला अपने में बहुत सुन्दर है। ऊपर मन्दिर की गुम्बजनुमा छत और नीचे ३ मेखलाओं से युक्त हवनकुण्ड बहुत सुन्दर ढंग से बना हुआ है। यह विशाल यज्ञशाला १८ फीट ३ इञ्च×१८ फीट ३ इञ्च के क्षेत्रफल की है। इसमें ५ फीट× ५ फीट का विशाल हवनकुण्ड केन्द्र में बना हुआ है। इस सारी

यज्ञशाला के निर्माण में पं० शिवनन्दन प्रसाद जी काव्यतीर्थ वैदिक ने महर्षि दयानन्द प्रतिपादित यज्ञशाला निर्माण विधि की यथाशक्ति पूर्णरूप से रक्षा की है।

यह यज्ञशाला सभाकक्ष के पूर्व में दक्षिण कोने पर है। इसका निर्माण भी महाशय रघुनन्दन लाल के युग का है। यज्ञशाला के उत्तर की ओर आर्यसमाज की भूमि में ही १५०-२०० व्यक्तिओं के बैठने की जगह खाली पड़ी हुई थी। यज्ञशाला बन जाने के पश्चात् वह जगह मन्दिर की पीठिका से और यज्ञशाला से भी नीची होने के कारण व्यर्थ-सी हो गई थी। एक बार जब श्री छबीलदासजी सैनी प्रधान हुए तो उन्हें यह भूमि की निरर्थकता खटकी और उन्होंने मन्दिर और यज्ञशाला के धरातल के साथ उतना ही ऊँचा पक्का धरातल बनवा दिया। इस प्रकार लगभग २०० व्यक्तिओं के बैठने की जगह निकल आयी और वह मन्दिर का सारा खण्ड उपयोगी तो हो ही गया, सुन्दर भी लगने लगा।

सभाकक्ष के ऊपर दीवारों के साथ लगती हुई एक गैलरी दक्षिण, उत्तरऔर पश्चिम तीन ओर से बनी हुई है। पूर्व की ओर व्याख्यान वेदी है और उधर वेदी के ऊपर हाल की छत तक विशाल ऊँची दीवारों के मध्य गैलरी की जगह पर स्वामी दयानन्द का विशाल तैल चित्र लगा हुआ है। यह गैलरी उत्तर और दक्षिण की तरफ ५० फीट ९ इंच×८ फीट ६ इंच प्रत्येक दिशा में तथा पश्चिम की ओर ४३ फीट ९ इंच×४ फीट ९ इंच के आयतन में बनी हुई है। इस प्रकार सम्पूर्ण गैलरी की लम्बाई लगभग १४५ फीट हो जाती है।

आर्यसमाज के पुराने मन्दिर में सभाकक्ष के ऊपर दीवारों के साथ तीन ओर से गैलरी बनी थी। यह लोगों के बैठने और रात में अतिथियों के सोने के काम आती थी। इसी गैलरी में आर्य विद्यालय की कक्षाएँ भी लगती थीं। श्री हरिश्चन्द्र वर्मा और श्री पूनमचन्द्जी

आर्य ने अपने साथी-सहयोगियों की सलाह से इसके भी अभिनवीकरण की योजना बनायी। सारी गैलरी पत्थरों पर मुराल पेंटिंग्स की कलाओं से भित्ति-चित्रों द्वारा सुशोभित हो रही है। यह चित्रशाला दिव्य दयानन्द दर्शन के नाम से अभिहित है। स्वामी दयानन्द के सम्पूर्ण जीवन—जन्म से मृत्यु पर्यन्त को भित्ति-चित्रों में इतनी सुन्दरता और अधिकता से सम्भवतः अन्यत्र और कहीं नहीं सजाया गया है। आर्यजगत् में अपने ढंग का यह पहला प्रयास है। भित्ति-चित्रों के नीचे चित्रों का संक्षिप्त परिचय दीवारों पर उत्कीर्ण करके लगे हुए हैं। यह चित्रशाला देशी-विदेशी यात्रियों के लिए एक दर्शनीय आकर्षण है। समय-समय पर विदेशों से आये आर्य अतिथियों की मण्डली एवं रूस आदि देशों से पधारे हुए यात्रियों ने इस चित्रशाला की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। वस्तुतः यह चित्रशाला आर्यसमाज कलकत्ता की ओर से आर्यजगत् के लिए विशेषरूप से, और कला-प्रेमिओं के लिए जाति-धर्म-निर्विशेष रूप से एक दर्शनीय अवदान है।

दिव्य दयानन्द दर्शन :

दिव्य दयानन्द दर्शन नामक चित्रावली मुराल पेन्टिंग्स में प्रसिद्ध चित्रकार श्री चारुचन्द्र खान की कलाकृति है। इस चित्रावली का निर्देशन आर्यसमाज के तात्कालिक प्रधान श्री हरिश्चन्द्र वर्मा ने किया था। ये चित्र स्वामी दयानन्दजी के जीवन की घटनाओं के आधार पर बनाये गये हैं। इन चित्रों की संख्या ६० हैं और इनमें चित्र के नीचे चित्रों का नाम परिचय कुछ निम्न प्रकार से दिया हुआ है :

जन्म,
शिक्षा-दीक्षा,
अध्ययन,
शिवरात्रि का व्रत,
मूर्तिपूजा में अविश्वास,
वैराग्योदय,
गृहत्याग,
अनन्त पथ का यात्री,

मूलजी से शुद्ध चैतन्य,
सिद्धपुर के मेले में,
सिद्धपुर के मेले में पिताजी से अन्तिम भेंट,
पिताजी से पीछा छुड़ाकर लक्ष्यपूर्ति की ओर,
चाणोद कर्नाली के मार्ग में,
शुद्ध चैतन्य से दयानन्द नाम ग्रहण,
चतुर्थाश्रम में प्रवेश करने के बाद,
उत्तराखण्ड की ओर,
टिहरी से वापस,
नर्मदा स्रोत की ओर,
देश की दरिद्रता पर आँसू,
रास्तों के चक्कर में,
मथुरा में आगमन,
गुरुदक्षिणा,
विविध स्थानों में भ्रमण,
पाखण्ड-खण्डनी पताका,
कुम्भ मेले में प्रचार,
कर्ण सिंह की तलवार, महादेव प्रसादजी को ईसाई बनाने से बचाना,
स्वामीजी के प्राण लेने की चेष्टा,
काशी आगमन,
काशी शास्त्रार्थ,
विषदान
कलकत्ता आगमन
ब्राह्मसमाज के वार्षिकोत्सव के उपलक्ष में,
केशवचन्द्र सेन के गृह पर व्याख्यान,
परमहंस रामकृष्ण देव से भेंट,
हुगली शास्त्रार्थ,
बंगाल से प्रस्थान,
मुरसान के राजा टीकम सिंह द्वारा आतिथ्य,
काशी आगमन,
प्रयाग में प्रचारकार्य,
बम्बई यात्रा,
बम्बई से अहमदाबाद आदि में प्रचार करके बम्बई यात्रा,
दिल्ली दरबार,
पादरी लुक्स से बातचीत,
मेला चाँदापुर,
पंजाब यात्रा,
लुधियाना से लाहौर,
आर्यसमाज के नियमों का पुनर्निर्माण,
समाज स्थापना,
उत्तर प्रदेश की ओर
गोरक्षिणी सभा की स्थापना,
आगरा से प्रस्थान करने से पूर्व,
पं लेखरामजी से भेंट,
उदयपुर में उपस्थिति,
महाराणा उदयपुर को उपदेश दान,
स्वीकार-पत्र

शाहपुरा गमन,
जोधपुर में उपस्थिति,
जोधपुर में विषदान,
अजमेर में महाप्रयाण,
शवयात्रा,
चिता चयन, शरीर के तत्त्वों का
मूल में मिलन,
परलोक प्रयाण कालीन अंतिम संदेश।

इस चित्र-गैलरी का उद्घाटन २ जनवरी, सन् १९६६ ई० तदनुसार पौष शुक्ला १०, विक्रमी २०२२, दयानन्दाब्द १४१ को रविवार के दिन हुआ था। इस उद्घाटन-समारोह की अध्यक्षता श्री पूज्य अमर स्वामीजी ने की थी और उद्घाटन श्री शिवजी भाई सेठ ने किया था।

समाज मन्दिर के हाल के अभिनवीकरण और गैलरी को चित्रित करने में ५०,००० रुपये से अधिक व्यय हो गया था। इस दान में श्री रघुवीर प्रसादजी गुप्त, श्रीमती यशवन्तजी कौर गम्भीर, मेसर्स दुआर्स ट्रान्सपोर्ट, श्री भगवानदासजी गुप्त, श्रीमती विद्यावती दत्त, मेसर्स एयर ट्रान्सपोर्ट कारपोरेशन, श्री लालचन्दजी वाहरी धमार्थ ट्रस्ट के नाम विशेषरूप में उल्लेखनीय हैं।

अतिथिशाला और ऊपर का सभाकक्ष :

आर्यसमाज मन्दिर की विशाल छत पर एक सभाकक्ष बनाने का प्रस्ताव बहुत दिनों से विचाराधीन था। आर्यसमाज एक धार्मिक संस्था होने के साथ एक समाजसेवी संस्था भी है। अहिन्दुओं को शुद्धियज्ञ द्वारा आर्य हिन्दूधर्म में दीक्षित करना, वाग्दान, विवाह, शोकसभाएँ इत्यादि बहुत-से सामाजिक कार्य करने के लिए लोगों को विशाल सभागार की आवश्यकता पड़ती है। पहले ये सब कार्य आर्य-समाज मन्दिर के सभागार सत्संगकक्ष में ही होते रहे हैं। कई बार कई अवसरों पर भोज इत्यादि का भी आयोजन होता रहता है। यह भोजन कराने का प्रोग्राम भी पहले इसी सत्संग वाले हाल में किया जाता था। साथ ही यह सभागार मूलरूप से तो सत्संग भवन है ही,

आध्यात्मिक प्रवचन, सन्ध्या, भजन और कई बार ध्यान और साधना जैसे आध्यात्मिक कार्य इस सत्संग भवन में हुआ करते हैं। समझदार आध्यात्मिकताप्रिय आर्यों के मन में एक भाव सदा ही उठता रहा है कि विवाह इत्यादि और ऐसे अवसरों पर भोज इत्यादि यदि सत्संग कक्ष में न हों तो अधिक अच्छा होगा। यह विचार सदा से प्रेरित करता रहता था कि सत्संग में शुद्ध धार्मिक एवं आध्यात्मिक कार्य ही निष्पन्न हों। यह तभी सम्भव हो सकता था जब विवाह इत्यादि सामाजिक कार्यों के लिए कोई दूसरा सुन्दर हॉल बनाया जा सके। आर्यसमाज कलकत्ता के भवन की नींव इतनी गहरी और सुदृढ़ है कि कलकत्ता कार्पोरेशन ने छत पर हॉल बनाने की स्वीकृति दे दी। कई वर्ष पूर्व यह प्रयास आरम्भ भी हुआ किन्तु लाखों की आर्थिक समस्या थी और उस समय तुक-की बात थी कि रुपयों का उतना अधिक प्रबन्ध सुगम न दिखायी पड़ता था। कुछ दिनों के लिए यह बात आयी-गयी-सी हो गयी।

कई वर्षों पश्चात् उत्साही अधिकारियों के मन में यह बात फिर आयी कि आर्यसमाज की छत पर एक विशाल सभागार बनवा लिया जाय जो विशेष रूप से सामाजिक कार्यों के लिए प्रयोग किया जाय। अर्थ-संग्रहके लिए समिति बनायी गयी और इस अर्थ-संग्रहके अभियान को अधिक बल से आरम्भ करने की योजना बनी। हॉल के निर्माण के लिए आर्थिक सहयोग किन सज्जनों से आरम्भ किया जाय, यह भी एक प्रश्न आया। कई बार पूर्व दान लिखाने वाले की कलम को सुन कर अधिक देने वाले भी इसलिए कम देते हैं कि आरम्भ छोटी राशि से हुआ है, अतः पहले राशि किनसे लिखवाई जाय, यह सब भी सहायता-संग्रह करने वालों के लिए विचारणीय हो जाता है।

कलकत्ता में प्रसिद्ध पोद्दार परिवार अपने सहयोग की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस पोद्दार परिवार में श्री आनन्दीलालजी पोद्दार, श्री बद्रीप्रसादजी पोद्दार आदि भाइयों का सेठों की दृष्टि से अच्छा

सुयश है। श्री आनन्दीलालजी का तो बहुत वर्ष पूर्व ही देहान्त हो गया था। श्री बद्रीप्रसादजी पूरी श्रद्धा एवं निष्ठा से आर्यसमाज के भक्त थे। जीवन में सन्ध्या और अग्निहोत्र उनके लिए अनिवार्य था। वे I. I. T. खड़गपुर के अध्यक्ष भी रहे थे। Indian Chamber of Commerce एवं Inter-national Chamber of Commerce में भी उनका महत्त्वपूर्ण स्थान था। वे कई बार राज्य विधान सभा के सदस्य निर्वाचित हुए थे। पोद्दार परिवार राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र श्री आनन्दीलालजी पोद्दार के समय से ही था। श्री बद्रीप्रसादजी पोद्दार प्रान्तीय और केन्द्रीय दोनों क्षेत्रों में राजनीतिक दृष्टि से भी अपना स्थान रखते थे। इसी प्रकार उद्योग, व्यवसाय और सम्पन्नता की दृष्टि से श्री बद्रीप्रसादजी पोद्दार का सेठों के समाज में अच्छा उच्च स्थान था। व्यवसाय और राजनीति के साथ ही आर्य-समाज में उनकी निष्ठा के एक-दो उदाहरण यहाँ अप्रसांगिक न होंगे।

कई वर्ष पूर्व एक साल जब कलकत्ता आर्यसमाज का नगर कीर्तन कलाकार स्ट्रीट से होकर निकल रहा था तो उस समय भिवानी के डा० बी० डी० गिरधर ने अपने चैम्बर के सामने आर्यसमाजियों को माला पहना कर स्वागत किया और मिश्री, इलायची, सौंफ आदि जुलूस में बांटा। अपने चैम्बर के सामने सड़क पर उन्होंने एक स्वागत-द्वार भी बनवा दिया था और उसपर ओम् का झण्डा लगा दिया था। बड़ाबाजार के ओ० सी० डा० गिरधर से कुछ खिंचकर रहते थे, सो वे मौके की तलाश में थे। इस स्वागत द्वार का बहाना लेकर उन्होंने डा० गिरधर को हिरासत में ले लिया और ओम् का झण्डा भी उतार लिया। अभी जुलूस सत्यनारायण पार्क भी न पहुँच पाया था कि हमलोगों ने यह बात सुनी। प्रोफेसर श्यामरावजी (स्वामी अग्नि-वेशजी) उस समय आर्यसमाज कलकत्ता के कार्यकर्ता थे। उन्होंने

मुझसे किंकर्तव्यता की सलाह ली। मैंने कहा कि जब जुलूस हरिसन रोड पर बड़ाबाजार थाने के सामने पहुँचे तो हमें वहीं धरना दे देना चाहिए। इस प्रकार कलाकार स्ट्रीट, हरिसन रोड और बहुत सारा उत्तरी कलकत्ता यातायात की दृष्टि से फँस जाता था। इससे ओ० सी० पर दबाव पड़ सकता था। हमने ऐसा ही किया। हरिसन रोड पर सड़क के ऊपर थाने के सामने महिलाएँ बैठ गयीं। महिलाएँ और बच्चे भजन गाने लगे और नौजवानों ने नारा लगाना आरम्भ कर दिया—हमारा झंडा वापस दो, डा० गिरधर को छोड़ दो, ओ०सी० क्षमा मांगो, इत्यादि। झण्डा उतारने जैसी भूल करके ओ० सी० ने अपना केस बिल्कुल कमजोर कर लिया था। हम उसीका लाभ उठा रहे थे। श्यामरावजी तो इस विद्रोह का नेतृत्व करने लगे और मैं धीमे से जुलूस से बाहर निकलकर किसी पास की दूकान में २-४ प्रतिष्ठित आर्यसमाजियों को इस क्षोभकारी काण्ड की सूचना देने चला गया। हमारा उद्देश्य ओ० सी० पर दबाव डालकर समझौता कराने का था। हमें पहला फोन श्री बद्रीप्रसादजी पोद्दार का मिल गया। सारी बातें सुनकर उन्होंने कहा—आप लोग वहीं रहिये और मैं डी० सी० को फोन करके वहीं आपके साथ धरना देने आ रहा हूँ। हमको टेलीफोन पर यह सलाह देकर पोद्दारजी ने लालबाजार में पुलिस कमिश्नर को फोन किया। उन्हें परिस्थिति की गम्भीरता समझा कर धार्मिक झण्डा ओम् की पताका उतारने जैसी गम्भीर आरोप की बात बतायी और साथ में यह भी कह दिया कि यदि झण्डा वापस नहीं हुआ और सम्मान पूर्वक समझौता न हुआ तो कल से ही सैकड़ों-हजारों आर्यसमाजी इसे सत्याग्रह का प्रश्न बना लेंगे और पंजाब से भी लोग आने लग जायेंगे। मुझे याद है बद्रीबाबू ने कहा था—ओ० सी० ने ऐसी भूल की और भिड़ के (मधुमक्खी) छत्ते में हाथ मार दिया और इस परिस्थिति को झण्डा लौटा कर ही सुलझाया जा सकता है। पुलिस कमिश्नर ने तुरन्त ओ० सी० को फोन किया। झण्डा भी लौटवाया

और ससम्मान डा० गिरधर को भी छोड़ दिया गया। सचमुच श्री बद्रीबाबू को आर्यसमाज से भीतरी लगाव था।

एक बार महर्षि दयानन्द की आगमन-शताब्दी पर मुख्यमन्त्री श्री सिद्धान्तशंकर राय आर्यसमाज के विशाल पण्डाल में आये थे। उस समय बद्रीबाबू ने मुझे वहीं मंच पर ही कहा था—पण्डितजी, अर्थ की कमी के कारण आर्यसमाज का कोई काम रुकना नहीं चाहिए।

इस सारी भूमिका में अधिकारियों ने सबसे पहले बद्रीबाबू से ही दान की राशि लिखवानी चाही। बद्रीबाबू व्यक्तिगत रूप से मुझसे स्नेह और सम्मान का भाव रखते थे। अतः महाशय रघुनन्दन लालजी ने मुझे भी साथ ले लिया। जब हम उनके घर पहुँचे, पहुँचते ही उन्होंने मुझसे पूछा, पंडितजी क्या हुक्म है ? मैंने सहजभाव से कह दिया—बाबूजी, आर्यसमाज मन्दिर की छत पर हॉल बनवाना है। आप स्वयं सहयोग कीजिए और दूसरों से भी सहयोग दिलाइए ताकि यह काम पूर्ण हो जाय। उन्होंने एक सेकण्ड सोचकर पूछा—कुल कितने का बजट है। महाशय रघुनन्दनलालजी ने लगभग एक लाख रुपये का व्यय बताया। बद्रीबाबू ने कहा, और किसी को क्यों फोन करवाते हैं, मुझसे सब खर्चा मंगवा लीजिए और मेरी माताजी (सुवादेवी पोद्दार) की स्मृति में हॉल के निर्माण का कार्य आरम्भ कर दीजिए। यह हॉल अकेले उन्हींके दान से बनवाया गया है।

अतिथिशाला :

यह उल्लेख पहले किया जा चुका है कि बिड़ला बन्धुओं ने आर्यसमाज के सामने वाली भूमि आर्यसमाज को देकर उसपर रानी बिड़ला आर्य अतिथिशाला का निर्माण पहले तल्ले पर करा दिया था। इस अतिथिशाला में पाँच कमरे, दो स्नान-घर और दो शौचालय की व्यवस्था है। दूसरे तल्ले पर आर्यसमाज की छत पर जब हॉल का

निर्माण होने लगा तो साथ ही यह भी योजना बननी स्वाभाविक थी कि अतिथिशाला के ऊपर दूसरा तल्ला भी अतिथिशाला के रूप में निर्माण कराया जाय। इस भावना के साथ बिड़ला बन्धुओं को मिला जाय और सदा की भाँति श्री किशनलालजी पोद्दार ने श्री लक्ष्मी निवासजी बिड़ला से सम्पर्क करके अतिथिशाला के निर्माण की बात पक्की कर ली। इस प्रकार आर्यसमाज की छत के ऊपर श्रीमती सुवादेवी पोद्दार स्मृति हॉल और रानी बिड़ला आर्य अतिथिशाला का निर्माण हो गया। इस अतिथिशाला में भी पाँच कमरे और स्नान-घर, शौचालय वगैरह की व्यवस्था इस प्रकार की गयी है कि यह अतिथिशाला और हॉल दोनों के लिए समान रूप से व्यवहार किया जा सकता है।

हाल और अतिथिशाला का उद्घाटन :

श्रीमती सुवादेवी पोद्दार स्मृति हाल और रानी बिड़ला आर्य अतिथिशाला के उद्घाटन का भी एक महत्त्वपूर्ण अवसर बन आया। यह उद्घाटन कार्य सम्पन्न करने के लिए दिल्ली के भूतपूर्व महापौर श्री हंसराजजी गुप्त पधारे थे। उस अवसर पर श्री लक्ष्मीनिवासजी बिड़ला और श्री बद्री प्रसादजी पोद्दार भी उपस्थित थे। तीनों ने वैदिक ऋचाओं से यज्ञ कार्य सम्पन्न किया और चन्दन-कुमकुम-चर्चित भाल माला इत्यादि के साथ वेद मन्त्रों के उच्चारण के साथ हंसराज गुप्त ने इस हाल का उद्घाटन किया और उद्घाटन की वह भीड़ इसी हाल में एक जनसभा के रूप में परिणत हो गयी। श्री हंसराजजी ने सभापतित्व किया और आर्यसमाज के स्थानीय विद्वान् नेताओं के साथ श्री लक्ष्मीनिवासजी बिड़ला, श्री बद्री प्रसादजी पोद्दार और श्री हंस-राजजी गुप्त ने बड़े प्रेरणात्मक एवं मूल्यवान विचार एवं सुझाव प्रस्तुत किये।

इस हाल के बन जाने से आर्यसमाज की सामाजिक गतिविधियों—

भोज, विवाह, उत्सव आदि को ऊपर के हाल में सम्पादित किया जाने लगा और नीचे का हॉल यज्ञशाला के साथ शुद्ध मन्दिर के रूप में व्यवहृत होने लगा। इस प्रकार इस श्रीमती सुवादेवी पोद्दार स्मृति हॉल की उपयोगिता सामाजिक कार्य की दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण है।

महर्षि दयानन्द दातव्य औषधालय :

जिन दिनों प्रसिद्ध आर्य महोपदेशक ठाकुर अमर सिंहजी (महात्मा अमर स्वामीजी) आर्यसमाज कलकत्ता के निमन्त्रण पर प्रचारार्थ यहाँ पधारे थे, उस समय जो कुछ कार्य उन्होंने यहाँ सम्पन्न कराये उनमें महर्षि दयानन्द दातव्य औषधालय का प्रमुख स्थान है। ठाकुर अमरसिंहजी दीक्षाप्राप्त परम कुशल महोपदेशक रहे हैं। व्याख्यान देना, शास्त्रार्थ करना जैसे कार्यों की दीक्षा के साथ ही वे प्रचार और मिशनरी कार्यों में भी अति दक्ष, व्यवस्था में अति कुशल हैं। कलकत्ता आर्यसमाज में रहते हुए प्रचार और सेवा की सम्भावनाओं पर दृष्टि रखते हुए उन्होंने एक धर्मार्थ औषधालय खोलने की आवश्यकता का अनुभव किया और सन् १६५६ ई० में महर्षि दयानन्द दातव्य औषधालय खोल दिया गया। ठाकुर अमर सिंहजी आयुर्वेद के कुशल जानकार हैं। उस समय आर्यसमाज कलकत्ता के कार्यालय का भार कविराज श्री दिनेशचन्द्रजी शर्मा पर था। श्री दिनेशजी आयुर्वेद के अच्छे जानकार और अनुभवी चिकित्सक हैं। इस प्रकार ठाकुर अमर सिंह जी आर्य पथिक और आयुर्वेदभास्कर दिनेशचन्द्रजी शर्मा दातव्य औषधालय के लिए सोने में सुहागा के समान सिद्ध हुए। इनके साथ सहयोग में श्री अमृत नारायण झा सहायक का कार्य करने लगे। प्रायः औषधियाँ कूट-पीस कर समाज में ही बना ली जातीं, कुछ रस-रसायन और अन्य औषधियाँ बाहर से क्रय कर ली जातीं। इस प्रकार औषधालय का काम सुचारु रूप से चल निकला।

औषधालय आर्यसमाज कलकत्ता के सेवाकार्यों का एक अभिन्न

अंग है। आर्यसमाज मन्दिर भवन में मुख्य द्वार से प्रवेश करते समय ही दाहिनी ओर आर्यसमाज का वाचनालय और पुस्तकालय है और बायीं ओर दातव्य औषधालय है। औषधालय में वैद्यजी के बैठने का पृथक् कक्ष है, उसीके साथ प्रतीक्षा में बैठे रोगियों की बेंचें रहती हैं और सामने भीतर की ओर औषधियों का विभाग है जहाँ से वैद्यजी के नुस्खे के अनुकूल वैद्यजी के सहायक औषधियाँ बनाकर रोगियों को देते हैं। इस प्रकार औषधालय की एक छोटी-सी इकाई अपने में बड़े सुन्दर ढंग से चलती है। वैद्यजी स्वयं एक रजिस्टर रखते हैं और प्रतिदिन तारीख़ लिखकर रोगी का नाम, आयु, रोग और उपचार अपने रजिस्टर में अंकित कर लेते हैं। अच्छी संख्या में रोगी इस दातव्य औषधालय से लाभ उठाते हैं और आसपास के मोहल्लों में स्वाभाविक ही औषधालय की ख्याति है।

औषधालय की व्यवस्था का भार आर्यसमाज के किसी वरिष्ठ अधिकारी कार्यकर्ता पर रहता है। श्री छबीलदासजी सैनी, श्री रुलिया-रामजी गुप्त, श्रीमती विद्यावती दत्त औषधालय की व्यवस्था और आर्थिक स्थिति को सुधारने में सहयोग करते रहते हैं। आर्यसमाज कलकत्ता की सन् १९८४ ई० के वार्षिक विवरण से यह पता चलता है कि वर्ष भर में लगभग १६,००० रोगियों की चिकित्सा की गयी है। प्रतिदिन रोगियों की संख्या ६० के लगभग रहती है। औषधालय पर लगभग १५,००० रुपया वार्षिक व्यय आता है। सन् १९८४ ई० के विवरण में १०,००० रुपया दातव्य औषधालय के निमित्त दान दाताओं से आया है। ६,००० रुपया श्रीमती विद्यावती दत्त ने औषधालय के लिए एकत्र करके दिया है। शेष जो भी आर्थिक भार औषधालय की व्यवस्था में आता है, आर्यसमाज कलकत्ता उसे बड़े हर्ष से अपने जन-सेवा विभाग के तहत वहन करता है।

वर्तमान में महर्षि दयानन्द दातव्य औषधालय के चिकित्सक कविराज श्री अमृत नारायण झा बड़ी सूझ-बूझ और लगन के साथ

अधिकांश औषधियों का निर्माण आर्यसमाज मन्दिर में ही करते हैं और उनकी लगन, अनुभव, उनके सहयोगी की निष्ठा और कार्य तत्परता से औषधालय का कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। अधिकारियों में श्री छबीलादासजी सैनी औषधालय की व्यवस्था करते हैं और श्रीमती विद्यावती दत्त आर्थिक सहयोग पर ध्यान रखती हैं।

पुस्तकालय एवं वाचनालय :

आर्यसमाज कलकत्ता के मन्दिर में प्रवेश करते ही प्रवेश द्वार के बाई ओर महर्षि दयानन्द दातव्य औषधालय है तो दाहिनी ओर आर्यसमाज कलकत्ता का पुस्तकालय एवं वाचनालय है। आर्यसमाज कलकत्ता के इतिहास में यह एक महत्त्वपूर्ण बात रही है कि यहाँ प्रायः आरम्भ से ही उच्चकोटि के साहित्यसेवी रहे हैं। जिस समय आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना हुई थी उस समय कलकत्ता भारतवर्ष की राजधानी तो था ही, साहित्यिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक और व्यावसायिक दृष्टि से भी जातीय गतिविधियों का केन्द्र था। हिन्दी साहित्य और पत्र-कारिता की दृष्टि से, अहिन्दी-भाषी प्रदेश होने के बावजूद भी कलकत्ता का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान था। संस्कृत विद्या का तो केन्द्र था ही, संस्कृत कालेज, कलकत्ता विश्वविद्यालय, एशियाटिक सोसाइटी इत्यादि, इन सब गतिविधियों को बड़ा सहारा दे रहे थे। इस भूमिका में आर्यसमाज आरम्भ से ही साहित्य निर्माण के प्रति भी सावधान था। पं० शंकरनाथजी विद्वान् भी थे और लेखक भी थे। राजा तेजनारायणजी और श्री महाबीर प्रसादजी साहित्यिक कार्यों के प्रति पूरा उत्साह रखते थे। हम इन साहित्यिक गतिविधियों पर अन्यत्र विस्तार से प्रकाश डाल आये हैं।[१] यहाँ तो इतना ही अभिप्राय है कि

---

१. द्रष्टव्य—साहित्यिक कार्य, अध्याय—१२
पत्र पत्रिकाएँ—अध्याय—१८

कलकत्ता की उस परिस्थिति में आर्यसमाज में साहित्यिक जागरण अनिवार्य सा ही था, अतः आर्यसमाज में आरम्भ से ही एक पुस्तकालय रहा है। इसमें महत्त्वपूर्ण पुस्तकें क्रय करके रख दी जाती रही हैं। आज भी जो महत्त्वपूर्ण पुस्तकें निकलती हैं, उनकी प्रतियाँ पुस्तकालय के लिए खरीद ली जाती रही हैं। पुस्तकालय में सहस्रों पुस्तकें हैं। इनकी सूची समय-समय पर बनती सुधरती रहती है। सदस्यों को पढ़ने के लिए पुस्तकें देने को एक अलग रजिस्टर है जिसमें सदस्यों को दी जाने वाले पुस्तकें इत्यादि अंकित कर ली जाती हैं।

आजकल अध्ययन, स्वाध्याय की रुचि में निर्बलता होने के कारण पुस्तकालय विभाग का मूल्य अध्ययन स्वाध्याय की दृष्टि से बहुत उत्साहवर्धक नहीं प्रतीत होता।

पुस्तकालय में पुस्तकों का संग्रह एक बात है और उनका सुरक्षित रखना दूसरी बात। पुस्तकें उत्साह में खरीद ली जाती हैं किन्तु उनके रख-रखाव की समुचित व्यवस्था आसान नहीं है। आर्यसमाजों में पुस्तकाध्यक्ष को हर वर्ष चुनाव में निर्वाचित कर लिया जाता है। आर्यसमाज में पुस्तकाध्यक्ष को अनिवार्य अधिकारियों में निर्वाचित करने के लिए पुस्तकालय के महत्त्व का सुन्दर प्रमाण है। किन्तु कई बार यह पद किसी विद्वान् पुस्तक प्रेमी को न देकर किसी ऐसे व्यक्तियों को दे दिया जाता है जो पुस्तकों की सूची से आरम्भ करके पुस्तकों के रख-रखाव की सुरक्षात्मक व्यवस्था से सर्वथा अनभिज्ञ होते हैं। बड़े पुस्तकालयों में सुदक्ष पुस्तकाध्यक्ष न रहने का जो परिणाम होता है, आर्यसमाज कलकत्ता का पुस्तकालय उससे बचकर भी कैसे रह सकता था। बहुत सारी सूचियाँ अनेक बार बनीं और अनेक बार पुस्तकालय को संभालने की चेष्टा भी हुई किन्तु सन्तोषजनक स्थिति समझ में नहीं आती।

पिछली शताब्दी में कलकत्ता कई बार उत्पातों के भंवर में आता रहा। देश का विभाजन, मुस्लिमलीग की सीधी कार्यवाही, नोआ-

खाली का हृदयविदारक काण्ड इत्यादि अवसरों पर आर्यसमाज कलकत्ता रिलीफ की सक्रियता का केन्द्र हो उठता रहा है, किन्तु इन अवसरों पर कभी पुस्तकालय की कोई क्षति हुई हो, ऐसा ध्यान नहीं आता। हाँ, इतना अवश्य उल्लेखनीय है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के अन्तिम चरण में जब कलकत्ता पर भी बम वर्षा होने लगी थी, उस समय कलकत्ता में भगदड़ मच गयी थी और आर्यसमाज जैसी सार्वजनिक संस्थाओं में पुस्तकालय जैसे नाजुक विभाग का कितना कुछ रख-रखाव सम्भव हो सका था, यह कहने की स्थिति में हम नहीं हैं। हाँ, इतना तो अवश्य सत्य है कि उन दिनों आर्यसमाज के विद्यालय बन्द हो गये थे और युद्ध के बाद विद्यालयों को पुनः संचालित किया गया। इस परिस्थिति में आर्यसमाज के पुस्तकालय और इसकी पुस्तकों का कोई बहुत सुरक्षात्मक प्रबन्ध हो सका होगा, यह सन्देहास्पद है।

सैकड़ों की संख्या में सुन्दर-सुन्दर अलभ्य दुष्प्राप्य पुस्तकों का नाम सूची में है, किन्तु पुस्तकें नहीं हैं। कई बार पुस्तक प्रेम के साथ पुस्तक-चोरी बड़े-बड़े अन्यथा चरित्रवान लोगों के जीवन में भी सम्भव है। पुराने लोगों का कहना है कि आर्यसमाज कलकत्ता का पुस्तकालय इसका अपवाद नहीं। जो भी हो, आज भी आर्यसमाज कलकत्ता का पुस्तकालय अच्छा है, व्यवस्था और सुरक्षा की ओर अधिकारी ध्यान दे रहे हैं। इस समय आर्यसमाज के पुस्तकालय में हजारों पुस्तकें हैं।

बिक्री विभाग :

जिस समय गोविन्दराम हासानन्द का प्रकाशन का कार्य कलकत्ता में चल रहा था उसी समय से कलकत्ता समाज के अन्तर्गत एक बिक्री विभाग खोला गया था। इस बिक्री विभाग में आज भी पुस्तकें आती हैं और नूतन साहित्य आर्य सदस्यों को उपलब्ध होता रहता है। इस विभाग में कार्य सन्तोषजनक होता है। आर्यसमाज हजारों रुपयों का विनियोग पुस्तकों के खरीदने-बेचने में करता रहता है, इससे

सदस्यों को नई पुस्तकें मिलती रहती हैं। सन् १९८४-८५ ई० के वार्षिक विवरण के अनुसार बिक्री विभाग में १३ हजार रुपयों का साहित्य मँगाया गया। और १०, ५१५ रुपयों का साहित्य बेचा गया।

पुस्तक मेला और आर्यसमाज का बिक्री विभाग :

पिछले कुछ वर्षों से कलकत्ता में एक नई प्रवृत्ति का उदय हुआ है। यहाँ प्रति वर्ष पुस्तक मेला का आयोजन होने लगा है। जब यह पुस्तक मेला पहली बार लगा तो शिक्षित वर्ग और पुस्तक-प्रेमियों के लिए एक अपूर्व-सा आकर्षण दिखायी पड़ा। पुस्तक मेला में ईसाई, मुसलमान और भी अन्य प्रचारक मिशनरी संस्थाओं की दूकानें लगी थीं। कितना साहित्य बिक रहा है, इससे अधिक महत्त्वपूर्ण यह था कि विभिन्न दिशाओं के लाखों व्यक्ति साहित्य से परिचय प्राप्त कर रहे थे। इस दृष्टि से जब दूसरे वर्ष फिर पुस्तक मेला लगा तो आर्य-समाज कलकत्ता ने भी अपने बिक्री विभाग के लिए एक दूकान पुस्तक मेला में आरक्षित करवा ली। काम झमेले का था। यों तो २-४ हजार रुपयों के व्यय का प्रश्न था। किन्तु आर्यसमाज कलकत्ता के साधन इतने सुपुष्ट हैं कि आर्थिक समस्या कोई अधिक महत्त्वपूर्ण समस्या न थी। वास्तव में समस्या यह थी कि दिन भर की ड्यूटी, रात की रखवाली, पुस्तकों का हिसाब, बिक्री का हिसाब, यह सारी व्यवस्था कैसे की जाय। कठिनाइयों के बावजूद भी आर्यसमाज के नवयुवक कार्यकर्त्ता इस कार्य को करने के लिये आगे आये और बुजुर्ग अधि-कारियों की ओर से उन्हें समुचित सहयोग मिलता रहा। पुस्तक मेला में साहित्य बिकता भी है, पर उससे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ऐसे लोगों का आर्यसमाज के साहित्य के साथ राह चलते सम्पर्क हो जाता है जो सम्भवतः अन्य किसी माध्यम से न हो पाता। इसके अतिरिक्त आर्यसमाज की गतिविधि की सक्रियता का एक अंश भी तो सामने आ जाता है।

वाचनालय :

आर्यसमाज के पुस्तकालय के साथ ही वाचनालय विभाग अभिन्न रूप से बना हुआ है। वाचनालय में हिन्दी, बंगला और अंग्रेजी के प्रमुख दैनिक पत्र खरीदे जाते हैं, साथ ही आर्यसामाजिक क्षेत्र के प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाएँ उपस्थित रहती हैं। सुबह-शाम दोनों समय वाचनालय विभाग खुलता है और कुछ लोग नियमित रूप से पत्र पत्रिकाएँ पढ़ने जाते हैं। वाचनालय प्रातः सायं दोनों समय दो-दो घण्टे के लिए खुलता है। मेज-कुर्सी, पंखा-बत्ती आदि की सुन्दर व्यवस्था है। पुस्तकालय कक्ष की सज्जा भी सम्पन्न एवं नयनाभिराम है।

वाचनालय में कुछ समसामयिक साप्ताहिक पत्र भी खरीदे जाते हैं। आर्यसमाज से प्रकाशित होने वाली प्रायः सभी साप्ताहिक एवं मासिक पत्र-पत्रिकाएँ पाठकों के पढ़ने के लिए यहाँ सुरक्षित रखी जाती हैं।

पुस्तकालय वाचनालय पर विचार करते हुए एक बात तो अवश्य खटकती है कि समाज का पुस्तकालय उस रूप में सुसम्पन्न नहीं है जो कलकत्ता जैसे नगर के लिए सन्तोषजनक हो। कलकत्ता विश्वविद्यालयों की नगरी है। स्नातक और स्नातकोत्तर कालेज भरे पड़े हैं। कई लाख उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों का गढ़ है, पर इस सारी भूमिका में आर्यसमाज का पुस्तकालय विभाग, अनुसन्धान विभाग अपनी प्रतिष्ठा के अनुकूल बनने में बहुत कुछ आकांक्षा रखता है। यहाँ कम से कम पक्ष-विपक्ष का सम्पूर्ण आर्यसमाजी साहित्य तो सुलभ होना ही चाहिए। सन्दर्भ-प्रयोग के लिए अनुसन्धान की भी बड़ी आवश्यकता है। वाचनालय विभाग में केवल पत्र-पत्रिकाओं के पढ़ने वालों की उपस्थिति सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती। वैदिक वाङ्मय पर शोध की प्रवृत्ति को जगाना और उसकी व्यवस्था करना भी पुस्तकालय का एक आवश्यक अंग होना चाहिए।

साप्ताहिक सत्संग :

आर्यसमाज कलकत्ता में तीन साप्ताहिक सत्संगों का आयोजन होता है। रविवार का प्रातः कालीन सत्संग, रविवार को ही प्रातः काल बालकों का साप्ताहिक सत्संग और महिलाओं का साप्ताहिक सत्संग बुधवार को अपराह्न में होता है। इनके अतिरिक्त बहुत दिनों तक बंगला का साप्ताहिक सत्संग शनिवार को सायंकाल हुआ करता था।

रविवासरीय साप्ताहिक सत्संग :

आर्यसमाज कलकत्ता का प्रमुख साप्ताहिक सत्संग प्रति रविवार को प्रातःकाल ८ बजे से ११ बजे तक होता है। सन्ध्या, हवन और भजन के साथ सत्यार्थप्रकाश की कथा और फिर प्रमुख आध्यात्मिक उपदेश का कार्यक्रम रहता है। आर्यसमाज कलकत्ता की अन्तरंग ने यह निर्णय लिया है कि साप्ताहिक सत्संग का स्वरूप आध्यात्मिक ही रहेगा। साप्ताहिक सत्संग की सभा आध्यात्मिकता के अतिरिक्त राजनीतिक या उसी तरह के अन्य किसी कार्य के लिए नहीं होगी। कलकत्ता आर्यसमाज का साप्ताहिक सत्संग अपने में कुछ विशिष्ट अवश्य है। पुरुष, महिलाएँ सब मिलाकर दो सौ, कभी-कभी और भी अधिक की उपस्थिति अपने में महत्त्वपूर्ण है। यह ठीक है कि परम्परा से ही उपस्थिति का उत्कर्ष प्रमुख व्याख्यान के समय ही होता है। फिर भी आर्यसमाज कलकत्ता की यह परम्परा सदा से रही है कि सत्यार्थप्रकाश की कथा या ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका की कथा सदा ही किसी सुयोग्य स्वाध्यायसम्पन्न विद्वान् पण्डित के द्वारा ही होती रही है। पिछले ५० वर्षों में सत्यार्थ प्रकाश की कथा का भार पंडित शिवनन्दन प्रसादजी कव्यतीर्थ, आचार्य पंडित रमाकान्तजी शास्त्री और पण्डित रामनरेशजी शास्त्री जैसे स्वाध्यायशील, परम

विद्वान्, सिद्धान्तमर्मज्ञ के ऊपर न्यस्त रहा है। इससे यह सुस्पष्ट है कि आर्यसमाज कलकत्ता के अधिकारी ऋषिकृत ग्रन्थों के पाठमात्र से ही सन्तोष नहीं कर लेते, अपितु उसके लिए सुयोग्य, सुधी, सिद्धान्त-मर्मज्ञ विद्वान् के द्वारा कथा की व्यवस्था कराते हैं।

आर्यसमाज कलकत्ता का सत्संग अपने प्रमुख व्याख्यान के लिए सदा से ही प्रसिद्ध रहा है। बहुत दिनों तक पण्डित अयोध्या प्रसादजी जैसे विश्वविश्रुत विद्वान् के उपदेश सुनने का सौभाग्य यहाँ के श्रोताओं को मिलता रहा है। पण्डितजी की व्याख्यान-शैली अपने में कुछ निराली सूझ-बूझ लिए रहती थी। सन्ध्या के मन्त्रों की व्याख्या, यज्ञ के मन्त्रों की व्याख्या एवं स्फुट विषयों पर उनके व्याख्यान श्रोताओं के लिए विशेष आकर्षण थे। कई बार मन्त्रों का पदार्थ, भावार्थ और अंग्रेजी अनुवाद मुद्रित करके श्रोताओं को बाँट दिया जाता था। इस प्रक्रिया का सर्वत्र बड़ा सम्मान हुआ था। कलकत्ता से बाहर भी लोगों ने इस तरह के प्रकाशित मन्त्रों के पत्रकों का संग्रह संकलन किया था। पंडित अयोध्या प्रसादजी जब विश्वधर्म सम्मेलन में भाग लेने और विदेशों में प्रचार के लिए बाहर चले गये तो आर्यसमाज कलकत्ता के प्रमुख व्याख्यान का भार प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पं० श्री सुखदेवजी विद्यावाचस्पति पर था। पंडित सुखदेवजी परम विद्वान्, व्याख्यानकुशल और महर्षि के ग्रन्थों एवं वैदिक सिद्धान्तों की बड़ी सूक्ष्मता से व्याख्या करते थे। पंडित सुखदेवजी का वह काल था तो कुछ वर्षों के लिए, किन्तु आर्यसमाज के इतिहास में वह भी बड़ा वन्दनीय अंग है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय कलकत्ता पर एकाधिक बार बमबाजी हुई थी। उस समय कलकत्ता भी भगदड़ की चपेट में कुछ अंश तक आ ही गया था। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् समाज की गतिविधि फिर बद्धमूल होने लगी तो सत्यार्थप्रकाश की कथा का भार कभी

पण्डित शिवनन्दन प्रसादजी काव्यतीर्थ वैदिक पर रहता था तो कभी आचार्य पण्डित रमाकान्तजी शास्त्री पर। दोनों ही ऋषिग्रन्थों के स्वाध्यायशील दक्ष विद्वान् रहे हैं। आजकल सत्यार्थ प्रकाश की कथा श्री पं० रामनरेशजी शास्त्री करते हैं। शास्त्रीजी ऋषि-भक्त, वैदिक सिद्धान्तों के मर्मज्ञ एवं संस्कृत के प्रौढ़ विद्वान् हैं। इस दृष्टि से इनकी सत्यार्थ प्रकाश की कथा अपने में महत्त्वपूर्ण होती है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् जब आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संग नियमित रूप से होने लगे तो उस समय प्रमुख व्याख्यान पण्डित अयोध्या प्रसादजी का होता रहता था। कभी-कभी प्रसिद्ध विद्वान् मिशनरी कार्यकर्ता पण्डित सदाशिवजी शर्मा भी कलकत्ता पधारते थे। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में पंडित सदाशिवजी ने कलकत्ता आर्यसमाज मन्दिर में ही निवास किया था और उस समय वे यहाँ की गतिविधियों के अभिन्न अंग बन गये थे। पंडित अयोध्या प्रसादजी एक चमत्कारी व्याख्याता थे। प्रौढ़ दार्शनिक, सुविज्ञ ऐतिहासिक, वैदिक दर्शनों के अतिरिक्त इस्लाम, ईसाई, बौद्ध, जैन दर्शनों के माहिर पंडित थे। व्याख्यान के समय भावनाओं को सँवारने में इतने कुशल थे कि वीरता, करुणा, जोश और उल्लास की धारा मिनटों में बह निकलती थी। ऐसे सफल वक्ता कई दशतियों तक आर्यसमाज कलकत्ता के प्रमुख व्याख्यानदाता रहे, यह पण्डितजी के सौभाग्य का अंश था, सो एक बात, साथ ही हम श्रोता लोग उनके व्याख्यानों में मन्त्रमुग्ध हुए-से निहाल होते रहते थे, यह यहाँ की जनता और श्रोताओं का निश्चित ही सौभाग्य है।

देहान्त से कुछ वर्ष पूर्व पं० अयोध्या प्रसादजी एक अजीब प्रकार से विभ्रान्ति के शिकार हो गये थे। स्मृति जाती सी रही थी, यह भी भूल जाते थे कि ५-१० मिनट पहले क्या बोल चुके हैं। कई बार एक ही व्याख्यान में एक ही प्रसंग को एकाधिक बार भी बोल जाते थे। उनके मस्तिष्क की अवस्था देखकर जहाँ एक ओर करुणा आती

थी, वहाँ बड़ा दुःखद आश्चर्य होता था, ये वे ही महापण्डित थे जिन्हें पक्ष-विपक्ष के हजारों-हजार प्रमाण कण्ठस्थ थे, जिनकी वाक्शक्ति के सम्मुख देश-विदेश के श्रोता अभिभूत से रहते थे।

मस्तिष्क की इस निर्बलावस्था में कलकत्ता समाज ने पण्डित अयोध्या प्रसादजी को इस व्याख्यानभार से मुक्त किया, किन्तु कलकत्ता समाज ने और कलकत्ता के धनीमानी सम्पन्न भक्तों ने उनके जीवन भर उनकी ठीक परवरिश की। पण्डितजी के पश्चात् आर्यसमाज कलकत्ता के प्रमुख व्याख्यान का भार मेरे (उमाकान्त उपाध्याय) ऊपर आ पड़ा। जब अधिकारियों ने मुझसे इस कार्य के लिए आग्रह किया तो मन में कई बार यह आता था कि कहाँ ये विद्वान्, आर्यसमाज कलकत्ता की यह वैदुष्यपूर्ण परम्परा, और कहाँ मैं, सब प्रकार से अपने को अल्प-स्वल्प देखता था। फिर भी आर्यसमाज के मंच पर पंडित-उपदेशक की हैसियत से मैं कई वर्षों पहले से ही आ गया था, और 'अभावे शालिचूर्णम् वा' की उक्ति के अनुसार मैं प्रमुख व्याख्यान के कार्य को निभाता चल रहा हूँ। अपना मूल्यांकन अपने आप किया भी नहीं जा सकता, उचित भी नहीं है। हाँ, सन्ध्या, ईश्वर स्तुति, प्रार्थना, अग्निहोत्र आदि के मन्त्रों की व्याख्या, पद-पदार्थ, भावार्थ और अंग्रेजी अनुवाद की परम्परा वर्षों-वर्ष हमारे भी व्याख्यानों की चलती रही है। आजकल कुछ वर्षों से उपनिषदों की कथा चल रही है। अपने श्रोताओं को देखता हूँ तो अपने मन को सन्तोष अवश्य होता है, प्रभु जितने दिन यह सेवा करायें, मर्यादापूर्वक, ससम्मान अपने श्रोताओं को सन्तुष्ट करने की क्षमता-शक्ति प्रभु प्रदान करते रहें तो जीवन की सार्थकता का कुछ थोड़ा बहुत एहसास होता है।

बाल-सत्संग :

कलकत्ता आर्यसमाज अल्पवय बालक बालिकाओं में धार्मिक भावना के प्रचार की दृष्टि से बालक सत्संग का आयोजन करता है।

बालक सत्संग का यह आयोजन बहुत वर्षों से होता आ रहा है। पहले यह सत्संग आचार्य पं० रमाकान्तजी शास्त्री कराया करते थे। आदरणीय आचार्यजी के कार्य-विरत हो जाने के पश्चात् यह सत्संग पं० श्री प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण के सानिध्य में होता है। पंडितजी बच्चों को सन्ध्या, अग्निहोत्र, भजन इत्यादि सिखाते हैं, उन्हींसे अभ्यास कराते है, बच्चों में यह पुरोगम पर्याप्त प्रिय है। वार्षिकोत्सव के समय बच्चों के इस प्रोग्राम का सार्वजनिक रूप से प्रदर्शन भी होता है, उन्हें पुरस्कार भी दिया जाता है। इस प्रकार बालक सत्संग का कार्य बड़ी सफलता से चल रहा है। बच्चों की संख्या बढ़ते रहना स्वाभाविक है किन्तु औसत में ५० के लगभग बच्चे इस सत्संग में भाग लेते हैं।

आर्य स्त्रीसमाज कलकत्ता

आर्य स्त्रीसमाज कलकत्ता की स्थापना १९५२ ई० में हुई। उस समय तक उत्तर कलकत्ता की स्त्रियाँ भी दक्षिण कलकत्ता में पद्मोपुकुर रोड पर स्थित भवानीपुर स्त्री-समाज में प्रति बृहस्पतिवार को जाया करती थीं। उत्तर कलकत्ता से दक्षिण कलकत्ता जाना पर्याप्त कष्ट-साध्य कार्य था। जाने-आने में ही बहुत समय चला जाता था और अति कष्ट भी उठाना पड़ता था। माता विद्यावती सभरवाल, श्रीमती वीरांबाली मनचन्दा आदि ने उत्तर कलकत्ता में महिलाओं के लिए आर्यसमाज कलकत्ता में आर्य स्त्री-समाज की स्थापना कर डाली। आरम्भ में ये सब देवियाँ अपने परिवार की पुत्रियों, पुत्रवधुओं आदि के साथ स्त्री-समाज में आती रहीं। इन्हींके साथ श्रीमती शीलवती बिश्नोई और श्रीमती चन्दनदेवी गुलाटी आदि भी सम्मिलित हो गयीं और आर्य स्त्री-समाज का कार्य सुचारु रूप से चल निकला। वर्तमान में आर्य स्त्रीसमाज की सदस्यओं की संख्या लगभग चालीस है। माता कंकनवती बंसल इसकी प्रधान और श्रीमती सरोज आहुजा इसकी मंत्री हैं।

महिला सत्संग :

आर्यसमाज कलकत्ता का महिला-सत्संग प्रत्येक बुधवार को अपराह्न में लगा करता है। यों तो रविवासरीय प्रातःकाल के साप्ताहिक सत्संगमें पर्याप्त महिलाएँ आती हैं, फिर भी कई बार रविवार को प्रातः-काल के समय महिलाओं के लिए घर पर रहना आवश्यक हो जाता है। रविवार का सत्संग प्रायः ग्यारह-साढ़े ग्यारह बजे तक चलता है, फिर उसके पश्चात् घर जाना, भोजन बनाना और समय से परिवार वालों को भोजन कराना, यह कई बार कठिन सा कार्य हो जाता है। उस दिन बच्चों को भी छुट्टी होती है, आफिसों की भी छुट्टी होती है, मिलने-जुलने वालों का आना-जाना भी हो सकता है। इन दृष्टियों से रविवार का दिन कई महिलाओं के लिए सत्संग की दृष्टि से अनुकूल नहीं भी पड़ सकता। इसी विचार से महिला-सत्संग बुधवार को अपराह्न में होता है। सन्ध्या, हवन, भजन, कथा, उपदेश, सारे कार्यक्रम आदरणीय पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण की देखरेख में सम्पन्न होते हैं।

यद्यपि महिला-सत्संग का आर्थिक हिसाब अलग ही रहता है, किन्तु ये महिला-सदस्याएँ आर्यसमाज कलकत्ता की ही सदस्याएँ हैं और आर्यसमाज कलकत्ता के प्रत्येक कार्य में उनका सहयोग रहता है। महिला सदस्याओं में जो महिलाएँ आर्य सभासद् बनती हैं वे आर्य-समाज कलकत्ता की वार्षिक साधारण सभा में आर्यसभासदों की भाँति समान अधिकार से भाग लेती हैं। महिला-सत्संग चाहे बहुत अधिक लोकप्रिय नहीं हो पा रहा है, किन्तु सत्संग का प्रोग्राम प्रति सप्ताह होता ही रहता है, यह भी अपने में एक सन्तोष की बात है।

बंगला सत्संग :

आर्यसमाज कलकत्ता में बंगभाषी स्थानीय सदस्यों की संख्या सदा से कम रही है। यह भावप्रवण बंग निवासियों की आर्यसमाज

के प्रति उदासीनता सम्यक् रूप से विचारणीय है और प्रसंगतः हमने इस मुद्दे पर एकाधिक स्थलों पर विचार किया है। जितना ही यह सत्य है कि बंगालियों की संख्या आर्यसमाज कलकत्ता में कम है, उतना ही यह भी सत्य है, कि आर्यसमाज ने समय-समय पर बंगला भाषा-भाषियों में आर्यसमाज के प्रचार की यथाशक्ति पूरी चेष्टा की है। आर्य कन्या महाविद्यालय में आरम्भ से ही जैसे हिन्दी भाषा माध्यम है वैसे ही बंगला भाषा भी माध्यम है। आज तो पश्चिम-बंगाल की वामपन्थी सरकार ने १२वीं कक्षा तक की शिक्षा निःशुल्क कर दी है, किन्तु जब शुल्क लगता था उस समय बंगला सेक्शन की छात्राओं की फीस कम थी। अध्यापिकाएँ बहुतायत से बंगला भाषा-भाषिणी ही हैं। आर्यसमाज कलकत्ता ने समय-समय पर अपनी सुविधा के अनुसार बंगला में साहित्य प्रकाशन का भी कार्य किया है, साथ ही बंगभाषियों में वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार हो सके, इस दृष्टि से आर्यसमाज कलकत्ता ने दो तरह के प्रोग्राम अपनाये थे :—

(१) साप्ताहिक सत्संग :—

बंगला भाषा में प्रति शनिवार सायंकाल साप्ताहिक सत्संग का आयोजन बहुत दिनों तक चलता रहा था। प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री प्रति शनिवार सायंकाल बंगला सत्संग कराते थे। सन्ध्या, अग्निहोत्र, भजन तथा उपदेश आदि सामान्य सत्संग की तरह ही चलता था। यह वह युग था जब आर्यसमाज कलकत्ता का कार्यभार महाशय रघुनन्दन लालजी और श्री ए० आर० भारद्वाज के ऊपर था। काफी वर्षों तक यह चेष्टा चलती रही, किन्तु यह प्रोग्राम बंग-भाषियों में लोकप्रिय न हो सका और उपयोगिता के अभाव में शिथिलता बढ़ी तथा कुछ वर्षों में सत्संग भी समाप्त हो गया। पुनः कोई चेष्टा न बन पड़ी।

(२) पार्कों में बंगला प्रचार :—

पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री बड़े कुशल प्रचारक एवं मिशनरी कार्यकर्ता थे। उनके माध्यम से विभिन्न पार्कों में नित्य सायं-काल वैदिक धर्म के प्रचार का कार्यक्रम चलता था। कुछ दिनों तक पं० दीनबन्धुजी हेदुआ पार्क में सायंकाल प्रचार किया करते थे। पीछे काफी वर्षों तक विश्वविद्यालय के सामने कालेज स्क्वायर पार्क में प्रतिदिन सायंकाल पं० दीनबन्धुजी का प्रचार चलता रहता था। पीछे इस दैनिक प्रचार में गीता, उपनिषद्, महाभारत, रामायण आदि की कथा भी चलती थी। किन्तु इस सारे प्रचार कार्य में बहुधा ५-१० वे ही अवकाशप्राप्त वृद्ध बंगाली आकर सम्मिलित होते थे जो समय काटने या हवा खाने की दृष्टि से सायंकाल पार्क में आते थे। प्रचार के इस स्वरूप ने सिद्धान्त प्रचार की दृष्टि से अपनी अनुपयोगिता स्वयं प्रकट कर दी और धीरधीरे यह प्रचारकार्य भी शिथिल पड़ गया।

बंगला प्रचार के इस प्रसंग पर इतिहास की दृष्टि से यह अवश्य ही उल्लेखनीय है कि आर्यसमाज कलकत्ता को कोई बंगाली प्रचारक न मिल सका और पं० दीनबन्धुजी की वृद्धावस्था, अस्वस्थता आदि के कारण प्रचार की यह दिशा सर्वथा अवरुद्ध हो गयी। कलकत्ता जैसे केन्द्रीय महानगर में एक ओर राजनीति की आपाधापी है तो दूसरी ओर साम्यवादियों, मार्क्सवादियों का बौद्धिक क्षेत्र में पर्याप्त प्रभाव है। हिन्दू विचारधारा वाले राजनीतिक दलों के साथ जुड़ते चले गये और ब्रह्माकुमारी और हंसामत से लेकर ब्राह्मसमाज और ईसाईयत तक दर्जनों धार्मिक संगठनों की उपस्थिति में आर्यसमाज बंगभाषियों में अधिक कृतकार्य नहीं हो सका है।

आर्यसमाज कलकत्ता के प्रचार पुरोगम

आर्यसमाज कलकत्ता के प्रचार-कार्य की बहुमुखी दिशा है :

साप्ताहिक सत्संग तो एक प्रकार से हर समाज की अनुशासनीय अनिवार्यता है, किन्तु आर्यसमाज कलकत्ता अपने प्रचारकार्य को और भी अनेक दिशाओं में व्यापक करता चलता है। कुछ कार्य तो किसी विशेष समय पर किए जाते हैं। किन्तु कई कार्य परम्परा को प्राप्त होकर आर्यसमाज कलकत्ता के संगठन के लिए अनिवार्यता की कोटि में चले गये हैं।

वेदसप्ताह :

आर्यसमाज कलकत्ता का वेदसप्ताह नव दिनों का प्रोग्राम होता है। यह श्रावणी पूर्णिमा से आरम्भ होकर श्रीकृष्ण जन्माष्टमी तक चलता है। कहने को तो यह वेदसप्ताह का कार्यक्रम है, किन्तु इसमें ३ कार्यक्रम सन्निविष्ट हो जाते हैं : (१) श्रावणी उपाकर्म-ऋषितर्पण का कार्यक्रम, (२) वेदसप्ताह की वेदकथा, (३) श्रीकृष्ण जन्माष्टमी महोत्सव। इस वेद सप्ताह के अवसर पर वेदपारायण यज्ञ का बड़ा सुन्दर आयोजन प्रतिदिन प्रातःकाल हुआ करता है।

वेदपारायण यज्ञ :

श्रावणी उपाकर्म के दिन से आरम्भ करके जन्माष्टमी तक ९ दिनों का बृहद् यज्ञानुष्ठान चलता है। इसमें ५-६ उच्चकोटि के वैदिक विद्वान् ऋत्विज के रूप में वरण किये जाते हैं। प्रातःकाल ७ से ९ बजे तक यह २ घण्टों का कार्यक्रम चलता है। यह बृहद् यज्ञ प्रायः किसी न किसी वेद से वेदपारायण यज्ञ के रूप में प्रतिवर्ष चलता रहता है। क्रमशः चारों संहिताओं का पाठ होता रहता है। प्रतिदिन एक से अधिक सपत्नीक यजमान, यजमान के रूप में भाग लेते हैं, प्रायः सपत्नीक ४ यजमान इस यज्ञ में भाग लेते हैं। श्रावणी उपाकर्म के दिन ३००-४०० स्त्री-पुरुष-बच्चे उपस्थित हो जाते हैं और जन्माष्टमी के दिन पूर्णाहुति पर सारा आर्यसमाज का सभाकक्ष यज्ञवेदी इत्यादि सब भीड़ से भर जाता है और कभी-कभी यह उत्साहपूर्ण प्रोग्राम १००० तक

की उपस्थिति का बन जाता है। प्रतिदिन यज्ञ पर यज्ञ के साथ भजन, और यज्ञ के ब्रह्मा का छोटा सा उपदेश हुआ करता है।

वेदकथा :

प्रतिदिन सायंकाल वेदकथा का आयोजन रहता है। प्रायः बाहर के किसी गण्यमान विद्वान् को बुलाकर यह वेदसप्ताह की कथा करायी जाती है। अनेक बार स्थानीय विद्वानों के द्वारा भी इस वेदकथा का आयोजन होता है। आर्यसमाज कलकत्ता के वेद सप्ताह की कथा प्रायः वेदों से ही सम्बन्धित होती है। वेद-मन्त्रों की व्याख्या, स्वामी दयानन्द की वैदिक मान्यताएँ, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका की कथा इत्यादि सामान्यरूप से वेद सप्ताह की कथा के विषय होते हैं। कभी-कभी उपनिषदों की कथा और एकबार गीता की भी कथा हुई है।

यों तो कलकत्ता में उच्चकोटि के विद्वान् सदा से ही रहते हैं। पं० शंकरनाथजी, पं० अयोध्या प्रसादजी, पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति, पं० सदाशिवजी शर्मा, आचार्य रमाकान्तजी शास्त्री, पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री जैसे मूर्धन्य विद्वान् कलकत्ता आर्यसमाज के इतिहास के अंग बन गये हैं। आर्यसमाज कलकत्ता कई उच्चकोटि के प्रचारक, विद्वान् सफल वक्ताओं का आज भी केन्द्र है। वयोवृद्ध विद्वान् पं० शिवनन्दनप्रसादजी काव्यतीर्थ यहीं रहते हैं। वयोवृद्धता के कारण शारीरिक शिथिलता बढ़ गयी है, किन्तु उनकी सेवाओं से कृतार्थ होने का अवसर यहाँ की जनता को सुदीर्घ आधी शताब्दी से अधिक वर्षों से उपलब्ध रहा है। मैं (उमाकान्त उपाध्याय) लगभग ४० वर्षों से कलकत्ता में हूँ और २०-२५ वर्षों से आर्यसमाज की सेवा का सौभाग्य वरण कर रहा हूँ। पं० रामनरेशजी शास्त्री जैसे सात्विक गम्भीर विद्वान्, पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण जैसे समर्पित जीवन और विद्याभास्कर पं० आत्मानन्दजी शास्त्री जैसे निष्ठावान् विद्वानों का कार्यस्थल यह समाज है। फिर भी यहाँ अखिल भारतीय क्षेत्रों

अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन

लन्दन, १९८० ई०

में

आर्यसमाज कलकत्ता का

स्मरणीय योगदान
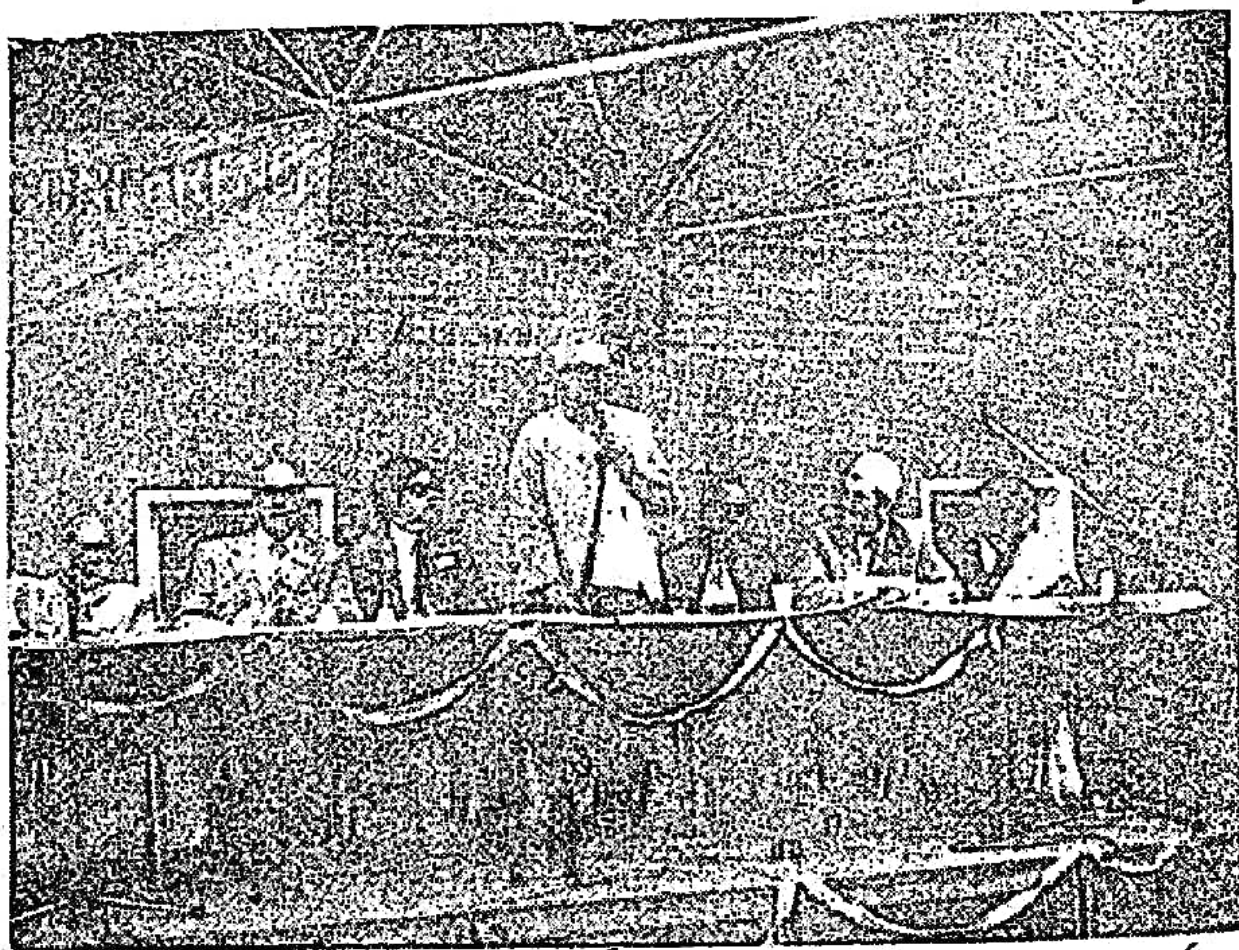
लन्दन अन्तर्राष्ट्रीय आर्यमहासम्मेलन के सर्वधर्म सम्मेलन में व्याख्यान देते हुए आर्यसमाज कलकत्ता के आचार्य प्रो० उमाकान्त उपाध्याय

अधिक ही रहती थी। सन् १९४७ ई० से २-३ वर्ष पूर्व एवं पश्चात् का समय साम्प्रदायिक तनाव की दृष्टि से बड़ा ही संवेदनशील था। दो-चार बार छुटपुट कुछ मुश्किलें भी आयीं। आर्यसमाज के नगर-कीर्तन पर झगड़े तो बहुत पहले भी हो जाते थे, किन्तु उन झगड़ों का बहाना तो—मस्जिद के सामने बाजा या भजन और नारेबाजी—ही हुआ करते थे। किन्तु यह ९ दिनों का उत्सव अपने में जितना प्रभावशाली होता था, उतना ही प्रतिक्रिया को आमन्त्रित कर लेता था। फिर भी आर्य नेताओं की सूझबूझ, आर्य वीरों की दिलेरी, बहादुरी, मुस्तैदी ने हर प्रकार की परिस्थितियों पर नियन्त्रण प्राप्त किया। धीरे-धीरे स्थिति सामान्य हो गयी। कुछ युग बदला, कुछ सहने की आदत आयी और कुछ नरमी का वातावरण भी बन गया। अब तो मोहम्मद-अली पार्क में आर्यसमाज का जलसा जैसे एक स्थायी अधिकार की बात बन गयी है।

जब १४४ धारा रद्द की गयी :

एक ऐसा भी समय आया जब किन्हीं कारणों से मध्य कलकत्ता के विशाल अञ्चल में १४४ धारा लगी हुई थी। आर्यसमाज कलकत्ता ने कई महीना पहले से अपना वार्षिकोत्सव निश्चित कर रखा था। विद्वान् आने-आने को थे और तैयारी पूरी हो चुकी थी, केवल पार्क में पण्डाल और यज्ञशाला निर्माण का कार्य होना था। आर्यसमाज के अधिकारियों ने बहुत सोच समझकर यह बहादुरी और दिलेरी का निर्णय लिया कि हमें अपना वार्षिकोत्सव न टालना है, न आर्यसमाज मन्दिर, न किसी हॉल में करना है। वार्षिकोत्सव करना है और मोहम्मदअली पार्क में ही करना है। एतदर्थ आर्यसमाज ने मुझे (उमाकान्त उपाध्याय) और श्री सुखदेवजी शर्मा को कार्यभार दिया कि हम पुलिस के साथ मिल बैठकर ऐसी व्यवस्था बनायें कि धारा १४४ के लगे रहने पर भी हमारा वार्षिकोत्सव मोहम्मदअली पार्क में ही हो जाय। हमने लालबाजार में सीधे डी० सी० महोदय से

सम्पर्क किया। डी० सी० महोदय ने अपनी असुविधा बतायी और हमने अपनी असुविधा बतायी। होते-होते डी०सी० महोदय आर्यसमाज के रेकार्ड, आर्यसमाज की जनसेवा, रिलीफ कार्य, शान्तिप्रियता, इत्यादि के कायल हुए और हमारे साथ कुछ सहानुभूति दिखाने लगे। परिस्थिति अनुकूल देखकर हमने एक प्रस्ताव दिया कि सारे अंचल में १४४ धारा लगी रहे, हमें कोई अड़चन नहीं। मोहम्मदअली पार्क में भी रात १० बजे से प्रातः ७ बजे तक पुलिस जो भी प्रतिबन्ध लगाये, हमें कोई अड़चन नहीं। हमारा यह आग्रह था कि प्रातः ७ बजे से रात १०बजे तक पार्क की सीमा के भीतर १४४ धारा शिथिल कर दी जाय। वैसे तो हमें कोई आवश्यकता नहीं थी, किन्तु हमने निवेदन किया कि यदि डी० सी० महोदय चाहें तो कुछ अतिरिक्त पुलिस नियुक्त कर दें। डी० सी० महोदय को हमारी बात जँच गयी और उन्होंने पार्क में १४४ धारा उठा दी। हमने कुछ अतिरिक्त उमंग, उल्लास और उत्साह से वह वार्षिकोत्सव किया। उस वार्षिकोत्सव पर कश्मीर के प्रसिद्ध विद्वान् पं० नेत्रपालजी शास्त्री भी आये हुए थे। उन्होंने आर्यसमाज कलकत्ता की इस अद्‌भुत सफलता पर एक बधाईपूर्ण लेख लिखा और देशभर की सारी आर्य जनता ने बधाई-सन्देशों से हमारा उत्साह बढ़ाया।

अब तो मोहम्मद अली पार्क में दिसम्बर के अन्तिम दिनों में आर्यसमाज कलकत्ता का वार्षिकोत्सव जैसे आर्यसमाज का परम्परा-सिद्ध अधिकार बन गया है।

आर्यसमाज कलकत्ता का वार्षिकोत्सव इन पुरोगमों से समन्वित होता है—

(१) प्रातःकाल ७ से ६ बजे तक वेदपारायण यज्ञ

(२) नगरकीर्तन

(३) अपराह्न २ से ५ बजे तक विविध सम्मेलन और गोष्ठियाँ

(४) रात ६ बजे से १० बजे तक व्याख्यान और उपदेशों का कार्यक्रम।

से विद्वान् आते रहे हैं। वेद सप्ताहों पर पं० बुद्धदेवजी विद्यालंकार, पं० ओमप्रकाशजी शास्त्री शास्त्रार्थमहारथी, पं०मदनमोहनजी विद्यासागर, पं० वाचस्पतिजी शास्त्री, ठाकुर अमरसिंहजी शास्त्रार्थमहारथी, पं० रुद्रदत्तजी शास्त्री इत्यादि विद्वानों के वेद प्रवचन, वेदसप्ताह पर होते रहे हैं।

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी :

यों तो श्रीकृष्ण जन्माष्टमी का पर्व भी वेदसप्ताह का अन्तिम और पूर्णाहुति का दिन होता है। इस दिन प्रातःकाल से ही झुण्ड के झुण्ड आबाल-वृद्ध-नर-नारी बड़ी संख्या में उमंग और उत्साह से आने लग जाते हैं। पूर्णाहुति के समय अच्छी खासी भीड़ हो जाती है। तुरन्त ही पूर्णाहुति के पश्चात् यह व्यवस्था जन्म महोत्सव के रूप में बदल जाती है। पूर्णाहुति पर कुछ प्रसाद आदि का आयोजन तो रहता ही है, अब साथ में आर्य कन्या महाविद्यालय की छात्राएँ, आर्य विद्यालय के छात्र और आर्यसमाज के नर-नारी सभी मिलकर जन्माष्टमी का पर्व मनाते हैं। संगीत, नाटक, भजन, व्याख्यान इत्यादि इस महोत्सव के अंग हैं। प्रायः कलकत्ता महानगर के कोई उच्चकोटि के विद्वान्, समाजसेवी इस महोत्सव पर वक्ता के रूप में आमन्त्रित किये जाते हैं। कलकत्ता विश्वविद्यालय के डा० हीरालाल चोपड़ा, प्रो० कल्याणमल लोढ़ा, प्रो० विष्णुकान्त शास्त्री, डा० प्रबोध नारायण सिंह, प्रो० शिवनाथ चौबे आज की वर्तमान पीढ़ी में आते रहे हैं। इतिहास के रूप में यह स्मरणीय है कि बंगाल के प्रसिद्ध जस्टिस रमाप्रसाद मुखर्जी, श्री चपलाकान्त भट्टाचार्य, बंगाल विधान सभा के अध्यक्ष श्री ईश्वरदासजी जालान, प्रसिद्ध बैरिस्टर कालीप्रसादजी खेतान, दैनिक विश्वमित्र संचालक बाबू मूलचन्द अग्रवाल, दैनिक लोकमान्य के संचालक पं० रामशंकरजी त्रिपाठी, जागृति के संचालक श्री मिहिरचन्दजी धीमान, सन्मार्ग के सम्पादक पं० सूर्यनारायण पाण्डेय इत्यादि विद्वान् श्रीकृष्णजन्माष्टमी और ऐसे ही अन्य उत्सवों पर आर्यसमाज मन्दिर में पधारते रहे हैं।

वार्षिकोत्सव

आर्यसमाज कलकत्ता का वार्षिकोत्सव भी प्रायः ६ दिनों का एक आयोजन होता है। दिसम्बर के अन्तिम दिनों में यह ६ दिनों का एक आकर्षक मेला जैसा प्रोग्राम होता है। इस वार्षिकोत्सव में कई बार श्रद्धानन्द बलिदान दिवस भी जुड़ जाता है। यह वार्षिकोत्सव एक प्रकार से जैसे सम्पूर्ण कलकत्ता का वार्षिकोत्सव बन जाता है। लोगों में काफी दिनों से, महीनों पहले से इस वार्षिकोत्सव की प्रतीक्षा होने लगती है। आर्य जगत् के उच्चकोटि के साधु-संन्यासी, विद्वान्, वक्ता, भजनोपदेशकों का यह ६ दिनों का कार्यक्रम अपने में स्वयं बहुत निराला है। आगे यह वार्षिकोत्सव बड़ाबाजार के गिरीशपार्क में मनाया जाता था। आर्यसमाज कलकत्ता की स्वर्ण-जयन्ती यहीं गिरीशपार्क के विशाल पण्डाल में मनायी गयी थी। पं० सुरेन्द्रनाथ विद्यालंकार की सूचना के अनुसार १६३२ ई० तक वार्षिकोत्सव समाज मन्दिर में ही मनाया जाता था। उसके पश्चात् प्रचार को अधिक व्यापक बनाने के लिए वार्षिकोत्सव गिरीशपार्क में मनाया जाने लगा।

गिरीशपार्क जब बगान-बगीचे के रूप में बदल गया तो एक-दो वर्ष बड़ाबाजार के मध्याञ्चल में सत्यनारायण पार्क में भी यह उत्सव मनाया जाता था, किन्तु यह स्थान जँचा कम था। एक तो यह पार्क आर्यसमाज कलकत्ता से दूर है और दूसरे परम्परा से आर्यसमाज बड़ाबाजार का वार्षिकोत्सव वहीं मनाया जाता था। इन सब बातों पर विचार करके आर्यसमाज कलकत्ता के अधिकारियों ने आर्यसमाज कलकत्ता का वार्षिकोत्सव चित्तरञ्जन एवेन्यू पर स्थित दमकल के पास वाले मोहम्मदअली पार्क में मनाना आरम्भ कर दिया।

मोहम्मदअली पार्क (दयानन्द पार्क) :

आर्यसमाज के अधिकारियों ने इस पार्क को वार्षिकोत्सव के समय दयानन्द पार्क कहना आरम्भ कर दिया। हिन्दू जनता ने शीघ्रता से

इस नामकरण को अपनाने की तत्परता दिखायी। पर स्वाभाविक ही था कि मुस्लिम जनता की ओर से, शुद्ध साम्प्रदायिकता के आधार पर, इसका विरोध होता और पार्क का कार्पोरेशन में लिखित नाम मोहम्मदलअी पार्क है किन्तु कम से कम वार्षिकोत्सव के समय, ब्रेकेट में ही सही, दयानन्द पार्क का नाम भी दिखायी पड़ जाता है।

मोहम्मदअली पार्क अञ्चल की दृष्टि से मुस्लिम बहुल अञ्चल था। पहले तो और भी अधिक मुसलमान वहाँ रहते थे। जकरिया स्ट्रीट, कोल्हू टोला का इलाका उसके सामने की ओर से जुड़ता है और पार्क के पिछवाड़े भी अच्छी खासी मुस्लिम ही बस्ती है। पार्क में मुसलमानों के क्लब, अखाड़ा, व्यायामशाला अभी भी चल रहे हैं। पार्क में घूमने के लिए बहुसंख्यक मुसलमान और खेलने के लिए बहुसंख्यक मुसलमान लड़के वहाँ आते रहते थे। ऐसे पार्क में आर्य-समाज का वार्षिकोत्सव, सो भी ६ दिनों का, प्रातःकाल ७ बजे से यज्ञ का आरम्भ, रात १० बजे तक व्याख्यानों की झड़ी लगे रहना, यह सब जैसे काबे में कुफ्र-सा हो रहा था। आरम्भिक वर्षों में तो कठिनाई आयी, किन्तु आर्यसमाज के सामने जगह की दृष्टि से और कोई दूसरा विकल्प न था। आसपास कोई पार्क न था जहाँ आर्य-समाज अपना वार्षिकोत्सव करता। बड़ी चख-चख और साम्प्रदायिक तनाव की स्थिति भी कभी-कभी पैदा हो जाती थी। एक तो वे दिन थे जब—खालिस्तान भले हो जाये, पाकिस्तान नहीं होगा—के सामूहिक उद्घोषों से हजारों-हजार की जनता झूम उठती थी। श्री ज्ञानेन्द्रदेवजी सूफी का दोटूक व्याख्यान जब मुसलमानों की साम्प्रदायिकता के विरोध में होता और श्री रामचन्द्र देहलवी के चोटीले पैने तर्क चलते तो उस समय पार्क में काफी संख्या में इधर-उधर मुसलमान भी बैठे रहते थे। श्री सुखलाल कुँवर आर्य मुसाफिर, पं० भगवद्दत्तजी, पं० बुद्धदेवजी विद्यालंकार, पं०अयोध्याप्रसादजी जैसे मूर्धन्य वक्ता प्रायः वार्षिकोत्सव पर उपस्थित ही रहते थे, आरंभिक दिनों में दोनों ओर से कुछ खींचतान

श्रीमती सूवादेवी हॉल के उद्घाटन के समय सभा का दृश्य

आर्यसमाज कलकत्ता द्वारा संगीतभारती श्रीमती सुनीतिदेवी शर्मा के गीतों के कैसेट का उद्घाटन

आर्य प्रतिनिधि सभा के साथ सम्बन्ध

जिस समय १८८५ ई० में आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना हुई थी उस समय कलकत्ता सम्पूर्ण भारत की राजधानी था। प्रशासनिक दृष्टि से बंगाल, बिहार, उड़ीसा सब एकही प्रान्त में सम्मिलित थे। उस समय इस सम्पूर्ण अंचल में आर्यसमाज दानापुर सबसे अधिक क्रियाशील समाज था। प्रान्तों में आर्यसमाज की गतिविधि को अधिक क्रियाशील बनाने की दृष्टि से प्रान्तीय स्तर पर आर्य प्रतिनिधि सभाओं का गठन हो रहा था। अतः सर्वप्रथम बिहार और बंगाल की एक संयुक्त प्रान्तीय सभा बनी। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा प्रकाशित आर्य निर्देशिका (जनवरी १९७५) के अनुसार यह संयुक्त आर्य प्रतिनिधि सभा १८९९ ई० में बनी थी। श्री इन्द्र विद्या-वाचस्पतिजी ने अपने ग्रन्थ 'आर्यसमाज का इतिहास' प्रथम भाग पृष्ठ २८३ पर इस संयुक्त आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना का वर्ष १८९९ ई० ही लिखा है। बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा, पटना द्वारा यह स्थापना सन् १९०४ ई० में हुई थी। डा० सत्यकेतु विद्यालंकार ने अपने इतिहास में निम्न प्रकार लिखा है—

> "१९८१ ई० में बिहार-बंगाल के प्रमुख आर्यों ने दानापुर आर्यसमाज के चौबीसवें वार्षिकोत्सव पर प्रान्तीय प्रतिनिधि सभा का संगठन बनाने का निर्णय किया। इस समय तक इस विशाल प्रान्त में सोलह आर्यसमाज स्थापित हो चुके थे। ५ अक्टूबर, १९०४ को दानापुर आर्यसमाज के उत्सव पर बिहार तथा बंगाल के आर्यों की एक बृहत् सभा हुई और इसमें बिहार-बंगाल आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना की गयी।"[1]

---

१. डा० सत्यकेतु विद्यालंकार कृत 'आर्यसमाज का इतिहास' भाग—२; पृष्ठ—३३०

प्रथम तीन वर्ष तक दानापुर आर्यसमाज में ही प्रतिनिधि सभा का कार्यालय रहा, फिर पटना चला गया। अप्रैल १९११ ई० में इस प्रतिनिधि सभा का पंजीकरण पटना में कराया गया। इसके पश्चात् प्रतिनिधि सभा का कार्यालय राँची चला गया। प्रतिनिधि सभा का कार्यालय १९१८ ई० तक राँची में रहा। १९१८ ई० में इस संयुक्त प्रतिनिधि सभा के प्रधान पण्डित शंकरनाथजी पण्डित और मंत्री बाबू हरगोविन्दजी गुप्त निर्वाचित हुये। पण्डित शंकरनाथजी और बाबू हरगोविन्दजी, दोनों ही कलकत्ता निवासी थे और बिहार-बंगाल प्रतिनिधि सभा का कार्यालय १९१८ में राँची से कलकत्ता आ गया।

पं० शंकरनाथजी पण्डित और बाबू हरगोविन्दजी गुप्त दोनों ही आर्यसमाज कलकत्ता के महत्त्वपूर्ण कार्यकर्ता थे। उन दिनों, सम्भवतः आर्यसमाज मंदिर १९, विधान सरणी में ही प्रतिनिधि सभा का कार्यालय था। आर्यसमाज का प्रचार बिहार में अधिक था और उसकी तुलना में बंगाल में आर्यसमाज का प्रचार कम था। प्रतिनिधि सभा का कार्यालय कलकत्ता में रहने से बिहार के प्रतिनिधियों को कठिनाई और असुविधा होना स्वाभाविक ही था। इस प्रकार बिहार की अलग प्रतिनिधि सभा बनाने की भावना बलवती होने लगी और १९२६ में बिहार के आर्य उपप्रतिनिधि सभा के सैंतालिस प्रतिनिधियों ने सर्वसम्मति से बिहार की पृथक् प्रतिनिधि सभा बनाने का प्रस्ताव पास कर दिया। १९२६ ई० में ४३ आर्यसमाजों के ५४ प्रतिनिधियों ने नियमानुसार बिहार आर्य प्रतिनिधि सभा के पृथक्करण की घोषणा कर दी और ८ मई, १९२६ को बिहार राज्य सोसाइटीज़ ऐक्ट के अनुसार बिहार प्रतिनिधि सभा की रजिस्ट्री करा दी गई[1]।

१९२७ई०में सार्वदेशिक सभा के तात्कालिक प्रधान माहात्मा नारायण स्वामी की अध्यक्षता में बिहार-बंगाल के आर्यों की एक सभा में दोनों

---

१. डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार 'आर्यसमाज का इतिहास भाग २, पृष्ठ ३३१

सभाओं के पुनः एकीकरण का निश्चय किया गया। अन्ततोगत्वा १३ मई १९२८ ई० को बिहार प्रतिनिधि सभा का पुनर्निर्माण हो ही गया।

इस समय तक प्रतिनिधि सभा का नेतृत्व आर्यसमाज कलकत्ता के पण्डित शंकरनाथजी पण्डित और बाबू हरगोविन्दजी गुप्त के ही हाथों में रहा।

आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल तथा असम का गठन :

बिहार प्रतिनिधि सभा के पृथक हो जाने के पश्चात् १९३० ई० में बंगाल तथा असम को पृथक् आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना हुई। बंगाल तथा असम की पृथक् प्रतिनिधि सभा के प्रथम प्रधान पण्डित शंकरनाथजी तथा प्रथम मन्त्री श्री हरगोविन्दजी गुप्त निर्वाचित हुए। १९३२ ई० में इस सभा की रजिस्ट्री कराई गयी। उस समय इसके प्रधान श्री दीपचन्दजी पोद्दार तथा मन्त्री श्री 'हरगोविन्दजी गुप्त थे। ये दोनों भी आर्यसमाज कलकत्ता के ही प्रतिष्ठित कार्यकर्ता थे।

सन् १९४३-४४ तक श्री हरगोविन्दजी गुप्त आर्यसमाज कलकत्ता और आर्य प्रतिनिधि सभा के सर्वमान्य नेता थे। हम इतिहास की इस कड़ी में आर्यसमाज कलकत्ता और आर्य प्रतिनिधि सभा के पारस्परिक सम्बन्ध पर विचार कर रहे हैं। श्री हरगोविन्दजी गुप्त के पश्चात् भी प्रतिनिधि सभा के स्थानीय कार्यकर्ताओं में बहुसंख्यक प्रधान, मंत्री एवं विशिष्ट कार्यकर्ता आर्यसमाज कलकत्ता के ही रहे हैं। श्री मिहिरचन्दजी धीमान, श्री हंसराजजी हांडा, श्री वटुकृष्णजी वर्मन, श्री नित्यानन्दजी, श्री राजेन्द्र कुमार पोद्दार, श्री जंगीलालजी, श्री सोम देव गुप्त इत्यादि सभी प्रतिनिधि सभा के प्रसिद्ध कार्यकर्ता आर्यसमाज कलकत्ता से ही रहे हैं। कभी-कभी दूसरे समाजों के भी वरिष्ठ कार्यकर्ता प्रतिनिधि सभाके शीर्ष अधिकारी बने। श्री नन्दलालजी पुरी, श्री रघुवीर प्रसादजी गुप्त, श्री गजानन्द आर्य, श्री मुल्कराज मलहोत्रा

आदि कुछ व्यक्तियों को छोड़कर प्रायः सदा ही आर्यसमाज कलकत्ता का प्रभाव प्रतिनिधि सभा के संगठन पर रहा है। यह जहाँ कलकत्ता आर्यसमाज के लिये सन्तोष का प्रसंग हो सकता है, वहीं यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि स्थानीय स्तर पर नेतृत्व का टकराव प्रतिनिधि सभा और आर्यसमाज कलकत्ता के पारस्परिक सम्बन्धों में भी टकराव और प्रतिद्वन्द्विता का स्वरूप ले लेता रहा है। यह टकराव कई बार स्वस्थ न होकर चिन्ता का विषय बन जाता है। इस प्रकार का टकराव कटुता और असहयोग की सीमा तक पहुँच जाता है। श्री नन्दलालजी पुरी के पश्चात् श्री हंसराजजी होंडा, श्री मिहिरचन्दजी धीमान, श्री वटुकृष्णजी वर्मन ने प्रतिनिधि सभा का नेतृत्व सँभाला। पिछली कई दशाब्दियों में वटुकृष्णजी वर्मन सर्वाधिक शक्तिमान प्रान्तीय स्तर पर नेता रहे हैं। संगठन के प्रान्तीय संगठन को संश्लिष्ट करके चलने की उनकी समस्याएँ हैं। इन दशाब्दियों में कलकत्ता समाज का नेतृत्व महाशय रघुनन्दनलाल को केन्द्र करके चलता रहा।

इस अवधि में एकाधिक बार आर्यसमाज ने दशांश देना रोक दिया। प्रतिनिधि सभा ने समाज के प्रतिनिधि अस्वीकार कर दिये। इस कशमकश में कभी सार्वदेशिक के प्रधान स्वामी ध्रुवानन्दजी ने बीच-बिचाव किया। कभी अन्य नेता आये और बालू पर लेप चढ़ाया गया। इस टकराव और कशमकश की शल्य-क्रिया अनुपयोगी है। इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण यह है कि समाज के स्थानीय संगठन के असन्तोष ने, पदलिप्सा के हत्यारे मोह ने, टकराव की स्थिति पैदा की। कभी किसी सिद्धान्त या नीति के कारण टकराव नहीं हुआ। व्यक्ति की महत्त्वाकांक्षा जब पदलोलुपता के वशीभूत होकर संगठन के हित की उपेक्षा कर देती है तो दलबन्दियाँ उत्पन्न होकर संगठन को हानि पहुँचाती हैं। यही आर्यसमाज और प्रान्तीय संगठन के कशमकश का पोशीदा सारांश है।

यह सब होते हुए भी महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर आर्यसमाज ने प्रान्तीय संगठन का साथ दिया है। अपने दोनों विद्यालयों को प्रतिनिधि सभा के साथ जोड़ कर विशेष संविधान लेने में सहयोग किया है। यद्यपि इसका भी संगठनात्मक एवं संघर्षात्मक मूल्य आर्यसमाज कलकत्ता ने चुकाया है। पुनरपि इस समय स्थानीय समाज और प्रान्तीय संगठन में सामञ्जस्य का ही भाव है।

इतिहास लेखक न न्यायाधीश है, न सरपंच। उसकी स्थिति तटस्थ द्रष्टा की है। इस तटस्थता की भूमि पर खड़े होकर हम इतना तो कह ही सकते हैं कि ताली एक हाथ से नहीं बजती। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जितनी ताली बज ली, उतना भी संगठन की प्रगति को अवरुद्ध करने के लिए पर्याप्त था।

कशमकश का निश्चित कारण दलबन्दी, पदलिप्सा, एवं अधिकार का मद ही है। इनको दबाकर यदि सामञ्जस्य का वातावरण बना रहे तो कार्य बहुत आगे जा सकता है। आर्यसमाज कलकत्ता की अन्तः क्षमता, अन्तःशक्यता बहुत अधिक है। आर्यसमाज कलकत्ता और प्रतिनिधि सभा, यदि एकजुट होकर कार्य करें तो प्रगति की रफ्तार अच्छी हो सकती है।

सन्तोष की बात है कि इस समय आर्यसमाज कलकत्ता और प्रतिनिधि सभा में सहयोग सामंजस्य के भाव हैं। इस भूमिका में प्रगति पथ अधिक प्रशस्त प्रतीत हो रहा है।

उपदेशक विद्यालय

कलकत्ता जैसे महान् नगर में आर्यसमाज की शक्ति और क्षमता कई दृष्टियों से पर्याप्त अच्छी है। किन्तु कई कार्य इस विशाल नगर की शोभा के अनुकूल हैं, और आर्यसमाज की क्षमता में भी हैं, किन्तु, वे यहाँ हो नहीं पाये हैं। कलकत्ता में आर्यसमाज द्वारा संचालित कोई न कॉलेज बन पाया, न विद्या का अन्य ही कोई उच्च संस्थान

बन सका। स्कूल तो कई बने किन्तु उनकी सीमा माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक तक ही रही। यहाँ का पुस्तकालय बहुत अच्छा था पर, पुस्तकों की सुरक्षा, पुस्तकालय की व्यवस्था इत्यादि अच्छे रूप में न हो सकी। शोध संस्थान या अनुसंधान विभाग भी कल्पना में ही रह गया। एक अनुसंधान ट्रस्ट बना भी है पर उसके द्वारा सत्यार्थ-प्रकाश के बंगला संस्करण का प्रकाशन तो हुआ किन्तु, अन्य कोई अनुसंधान या शोधकार्य न हो सके हैं।

कलकत्ता केवल बंगाल की ही राजधानी नहीं है, यह सम्पूर्ण पूर्वाञ्चल को अनुप्राणित करता है। कलकत्ता को केन्द्र बनाकर बंगाल, उड़ीसा, आसाम, त्रिपुरा, नागालैण्ड, अरुणाचल प्रदेश इत्यादि सम्पूर्ण पूर्वाञ्चल में कार्य करने की सुविधा है। इस दृष्टि से यहाँ कई तरह के कार्य अपेक्षित हैं। कलकत्ता में एक उच्च कोटि के उपदेशक विद्यालय की महती आकांक्षा है। एक बार जिस समय श्री नन्दलालजी पुरी प्रतिनिधि सभा के प्रधान थे, उस समय प्रतिनिधि सभा के कार्यालय में ही उपदेशक निर्माण की व्यवस्था बनायी गयी थी। किन्तु, वह अधिक दिन न चली और साल-दो-साल में ही समाप्त हो गयी।

कलकत्ता आर्यसमाज में उपदेशक विद्यालय चलाने का कार्य आरम्भ हुआ था। हमने दो तीन वर्षों का एक पाठ्यक्रम बना लिया था। पण्डित दीनबन्धुजी वेदशास्त्री, पण्डित शिवनन्दन प्रसादजी काव्यतीर्थ, पण्डित प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण और मैं स्वयं, हम सब, निःशुल्क अध्यापन करने लगे थे। चार-पाँच विद्यार्थियों को इस उपदेशक विद्यालय में अध्ययनार्थ रख भी लिया था। विद्यार्थियों को भोजन, वस्त्र, पुस्तकें देने की व्यवस्था की गयी थी और समाज मन्दिर में ही उनके आवास की व्यवस्था थी। आर्यसमाज कलकत्ता ने आर्थिक व्ययभार उठाया था। आर्यसमाज कलकत्ता पर अधिक व्ययभार न पड़े इस उद्देश्य से कलकत्ता के दूसरे उदार दानी महानुभावों से भी

सहायता ली गयी थी। विद्यालय अच्छा ही चल रहा था। इस उपदेशक विद्यालय के विद्यार्थियों में से एक को तो यहाँ उपदेशक के रूप में नियुक्त भी कर दिया था और वे आज भी एक अच्छे उपदेशक वक्ता पण्डित के रूप में कार्य कर रहे हैं। आर्यसमाज कलकत्ता में एक-दो ऐसे भी प्रभावशाली सदस्य हैं जिनके कारण उपदेशक विद्यालय को लेकर बात में कुछ अधिक ही टान आ गयी और आर्यसमाज कलकत्ता ने उपदेशक विद्यालय को बन्द कर देने का निर्णय कर लिया। जो विद्यार्थी पढ़ रहे थे उन्हें आर्यसमाज कलकत्ता ने ब्राह्म महाविद्यालय, हिसार में पढ़ने के लिए भेज दिया और उनका व्ययभार आर्यसमाज कलकत्ता ही वहन करता रहा। वे विद्यार्थी भी ब्राह्म महाविद्यालय से स्नातक बन कर लौट आये फिर उन्हें हम कलकत्ता में खपा भी न सके और वे हरियाणा और पंजाब में उपदेशक पण्डितों का जीवन बिता रहे हैं।

इस प्रकार दो बार उपदेशक विद्यालय आरम्भ तो हुए, किन्तु चिरस्थायी न हो सके।

आर्यसमाज कलकत्ता का संगठन

इस समय आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्यों की संख्या लगभग २०० है और आर्य सभासदों की संख्या लगभग ८० है। यह देखने में बड़ा आश्चर्यजनक विरोधाभास लगता है कि आर्यसमाज कलकत्ता का बजट लाखों रुपये में जाता है। सन् १९८४-८५ ई० में आर्यसमाज कलकत्ता का आय-व्यय का विवरण लगभग ३,१६,००० रुपये का है। लेकिन इसकी सदस्य संख्या मात्र २०० है। कई बार समाजों में वर्षों पर वर्ष सदस्यों के नाम निष्क्रियता के आलम में चालू ही रहते हैं। कलकत्ता समाज में काफी दिनों से यह नियम-सा बनाया हुआ है कि जो समाज में रुचि नहीं लेते, अपना वार्षिक चन्दा नहीं देते या कलकत्ता छोड़कर चले जाते हैं तो उनका नाम फिर समाज में रखने से कोई लाभ नहीं। वर्ष पर वर्ष समाज के रजिस्टर और लेखक का

कार्यभार निरर्थक ही बढ़ता रहता है। अतः २०० सदस्यों की संख्या देखने में कम लग कर भी कार्य की दृष्टि से अधिक निराशाव्यंजक नहीं है। फिर कलकत्ता तो है ही परदेशियों का नगर! यहाँ आना-जाना तो साधारण से रूप में लगा रहता है। यहाँ परदेशी अधिक, और स्थायी निवासी कम रहते हैं।

यों तो यह आर्यसमाज कलकत्ता का सबसे पुराना आर्यसमाज है ही, पर इसके आसपास अन्य और समाज स्थापित हो गये हैं और वे पूर्णतः सक्रिय समाज हैं। आर्यसमाज कलकत्ता के मन्दिर से कोई १५ मिनट पैदल की दूरी पर आर्यसमाज बड़ाबाजार है, जो पर्याप्त समर्थ और सक्रिय है। आर्यसमाज कलकत्ता से १५ मिनट से भी कम की दूरी पर आर्यसमाज जोड़ासांकू है, यह भी सक्रिय समाज है। आर्यसमाज कलकत्ता के पास ही आर्यसमाज मानिकतल्ला और आर्यसमाज धर्मतल्ला हैं। इस सन्दर्भ में यह अवश्य ही उल्लेखनीय है कि आर्यसमाज ने कई बड़े सुन्दर, उपयोगी और अन्य समाजों के लिए अनुकरणीय नियम या परम्पराएँ बना रखी हैं। प्रथम तो यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य समाज का सदस्य अधिकारी आदि बन जाता है तो आर्यसमाज कलकत्ता उसे अपने यहाँ की सदस्यता से उस समय मुक्त कर देता है, जब वह अन्य समाज का सदस्य बना रहने में दृढ़ता दिखाता है। इसी प्रकार आर्यसमाज कलकत्ता ने एक और परम्परा अति प्रभावपूर्ण रूप से स्थापित कर रखी है कि एक व्यक्ति एक अवधि में एक ही जगह अधिकारी रह सकता है। यदि कोई आर्यसमाज कलकत्ता का अधिकारी है तो वह आर्यसमाज के व्यापक उच्चस्तरों पर अधिकारी नहीं बन सकता। उदाहरणार्थ, यदि कोई प्रान्तीय प्रतिनिधि सभा में अथवा केन्द्रीय सार्वदेशिक सभा में अधिकारी बनना चाहता है तो उसे आर्यसमाज कलकत्ता के अधिकारी पद से पृथक् होना पड़ेगा। इस प्रकार कई महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति ऐसे कठोर संगठन में प्रतिबन्धित होना नहीं पसन्द करते हैं। इसलिए भी कुछ लोग आर्यसमाज कलकत्ता

की सदस्यता छोड़ कर अन्य आर्यसमाजों के सदस्य बन जाते हैं, जहां पर वे अधिकारी बने रहते हैं और अन्य जगह भी अपने पद-लोभ की तृप्ति करते हैं। आर्यसमाज कलकत्ता इससे मुक्त है।

यह थोड़ा सा स्पष्टीकरण इस बात का है कि इतने पुराने समाज की सदस्य संख्या केवल २०० ही क्यों है। वैसे प्रतिवर्ष १०-१५-२० या कुछ न्यून-अधिक आर्यसमाज कलकत्ता के नये सदस्य बनते ही रहते हैं, किन्तु समाज के अनुशासन में टिकने वालों की संख्या तो सामने है ही। हाँ, यह ठीक है कि आर्यसमाज कलकत्ता ने कभी अधिक सदस्य बनाने का अभियान नहीं चलाया। जो है सो ठीक ही है की स्थिति से भी लोग सन्तुष्ट से हैं। यदि उदासीनता का अंश है तो वह भी सुस्पष्ट सामने ही है।

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है कि आर्यसमाज कलकत्ता के सभासद् कुल ८० हैं। संविधान की दृष्टि से ये वे सदस्य हैं जो ३ या अधिक वर्षों से आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्य हैं, अपना शतांश या २५० रुपये साल का चन्दा देते हैं और आर्यसमाज के नियमों का निष्ठा-पूर्वक पालन करते हैं। यद्यपि समाजों के साधारण प्रयत्न में आर्य सभासद् बनने में कड़ाई नहीं है। प्रायः ३ साल की सदस्यता और मासिक चन्दा देते रहना ही आर्यसभासदी के लिये पर्याप्त समझा जाता है। किन्तु, आर्यसमाज कलकत्ता ने कुछ कटु परिस्थितियों का अनुभव किया। आर्यसमाज कलकत्ता के स्वामित्व में ७०-८० लाख या इससे भी अधिक मूल्य की सम्पत्ति समाज के मन्दिर और स्कूल के भवनों के रूप में है। इन पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष, आर्यसमाज कलकत्ता का नियन्त्रण है। इनमें अच्छी खासी संख्या में वेतनभोगी नौकरी पेशा लोग हैं। यदि आर्यसमाज कलकत्ता आर्य सभासदी की शर्तें शिथिल कर दे तो १००-२०० सदस्यों का बढ़ जाना और एकाध सैकड़े आर्य सभासदों का बढ़ जाना कुछ अधिक आश्चर्यजनक घटना न होगी। किन्तु आर्यसमाज के सुदूरगामी हित को देखते हुए

और नकली चेहरों के नियन्त्रण से समाज के संगठन को बचाने के लिए आर्यसामाज कलकत्ता का आर्य सभासदी के नियमों का कड़ाई से पालन करना अच्छा ही है। यदि आर्यसामाजिक निष्ठा, सन्ध्या, अग्निहोत्र, संस्कार आदि में वैदिक पद्धति इत्यादि को और अधिक सन्निविष्ट कर लिया जाय तो सम्भवतः भविष्य के लिए कुछ अधिक ही अच्छा रहेगा।

संगठन पर अन्तर्दृष्टि :

आर्यसमाज कलकत्ता के २०० सदस्यों में अच्छी बड़ी संख्या में नवयुवक सदस्य हैं। आर्यसमाज कलकत्ता में बूढ़े-बुजुर्ग हैं ही नहीं, या उनकी चलती नहीं, या उन्हें उपेक्षित रखा जाता है, ऐसी कोई बात नहीं है। यहाँ बूढ़े-बुजुर्ग भी हैं, आदर-सम्मान से हैं, अपने अनुभव और सूझबूझ से नवयुवकों को मार्गदर्शन कराते रहते हैं। हाँ, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कलकत्ता आर्यसमाज में नवयुवकों की कमी इतनी गम्भीरता से नहीं दिखाई पड़ती है कि भावी इतिहास की सम्भावनाएँ खिन्न-सी लगती हैं। आर्यसमाज कलकत्ता के अपने आध्यात्मिक, सामाजिक और संगठनात्मक प्रोग्राम हैं जिनमें नवयुवक पूरी रुचि लेते हैं। उन्हें पूरी रुचि लेने का अवसर भी मिलता है। अतः आर्यसमाज कलकत्ता में पर्याप्त नवयुवक हैं।

आर्यसमाज कलकत्ता के ८० आर्य सभासदों में ३६ व्यक्ति ५० वर्ष की या अधिक आयु के हैं और ४१ व्यक्ति ५० वर्ष की आयु से कम के हैं। यदि ५० वर्ष से कम आयु वालों को नई पीढ़ी का मान लिया जाय तो आर्यसमाज कलकत्ता के आर्य सभासदों में बहुसंख्यक कम से कम आधे से अधिक युवक कोटि के हैं, इसमें कोई अतिरञ्जन नहीं हैं। इसी प्रकार आर्यसमाज कलकत्ता की अन्तरंग में २४ सदस्य हैं। इनमें प्रतिष्ठित और पदेन आगत सदस्यों को सम्मिलित नहीं किया गया है। इन २४ अन्तरंग सदस्यों में ११ सदस्य युवकों में से ही आये हैं। इस प्रकार आर्यसमाज कलकत्ता के संगठन में युवकों का योगदान

महत्त्वपूर्ण है और यह भविष्य के लिए सुन्दर आशाव्यंजक परिस्थिति है। इन ८० सदस्यों में २० महिलाएँ हैं। अधिकारियों और अन्तरंग में भी ३ महिलाएँ हैं। इस प्रकार समाज के संगठन में महिलाओं का योगदान पर्याप्त सन्तोषप्रद ही नहीं, बल्कि, उत्साहवर्धक है।

समासदों की शैक्षणिक स्थिति :

सम्पूर्ण आर्यसमाज में इस समय सदस्यों की संख्या सारे संसार में करोड़ों में पहुँची हुई है। यह तथ्यगत सूचना है कि आर्यसमाज का कोई भी सदस्य अंगूठाछाप नहीं हैं, सभी साक्षर हैं, हस्ताक्षर करते हैं और कुछ-न-कुछ पढ़ने-लिखने में, स्वाध्याय, सत्संग में अभिरुचि रखते हैं। आर्यसमाज क्रान्तिकारी, सुधारवादी, धार्मिक संगठन है, अतः स्वाभाविक है कि इसमें अपढ़-निरक्षर लोगों की संख्या नगण्य-सी ही होगी। आर्यसमाज कलकत्ता के ८० सभासदों में सभी साक्षर, पुस्तक, समाचार-पत्र, सन्ध्या, सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थों के पढ़ने वाले हैं। इस दृष्टि से शिक्षागत-विभाग-विश्लेषण कुछ अधिक सार्थक नहीं लगता, फिर भी यों माना जा सकता है कि प्रायः सभी सभासद् शिक्षित हैं। तथापि आकलन की दृष्टि से ८० सदस्यों में २७ सभासद स्नातक या स्नातक समकक्ष और उससे भी ऊपर की शिक्षा से सम्पन्न हैं। इस दृष्टि से भी यह अपने में सन्तोष का विषय है कि सभासदों की शैक्षणिक स्थिति इतनी अच्छी है।

भाषागत स्थिति :

कलकत्ता एक महानगर ही नहीं है, बल्कि जनसंख्या, शिक्षा, सांस्कृतिक और व्यावसायिक केन्द्र के रूप में महानतम नगरों में सम्भवतः प्रथम है। यहाँ यों तो संसार की प्रायः सभी राष्ट्रीयता के व्यक्ति मिल जायेंगे। कम से कम, भारत के प्रत्येक प्रान्त के व्यक्ति तो अवश्य ही मिलेंगे। पंजाब से लेकर बंगाल एवं आसाम तक और हिमाचल प्रदेश से लेकर कन्याकुमारी तक प्रत्येक स्थान के लोग

कलकत्ता में मिलते हैं। आर्यसमाज कलकत्ता किसी समय कलकत्ता के सभी आर्यसमाजियों का केन्द्र था। किन्तु, इस समय कलकत्ता में कई समाज बन गये हैं, आञ्चलिकता की दृष्टि से सदस्यता का अपना स्वरूप स्वतः ही बन जाता है। पंजाबी और गुजराती प्रायः भवानीपुर को केन्द्र करके बस गये हैं, मारवाड़ी और व्यावसायिक वर्ग बड़ा-बाजार में केन्द्रित है। यह कोई अपवाद रहित नियम नहीं है, किन्तु, सामान्य प्रकृति का दिग्दर्शक मात्र है। आर्यसमाज कलकत्ता आञ्चलिकता की दृष्टि से हिन्दी भाषाभाषी उत्तर प्रदेश के व्यावसायिक अञ्चल से जुड़ा हुआ है। स्वाभाविक है कि सामाजिक उत्स की दृष्टि से इन्हीं लोगों की बहुसंख्या है। यद्यपि यह क्षेत्र बंगला भाषा-भाषियों के अञ्चल में भी आता है, फिर भी, संगठन की दृष्टि से उत्तर प्रदेश वालों की बहुलता है। यह कुछ अधिक सन्तोष या सुख का प्रसंग नहीं है कि नये सदस्य इसी अञ्चल के बनते हैं और स्वाभाविक ही वे अन्य भाषा-भाषियों से कम आते हैं। मातृभाषा की दृष्टि से ८० सभासदों में ७१ हिन्दी भाषाभाषी, ५ पंजाबी, २ बंगला और २ गुजराती भाषाभाषी हैं। भाषा की दृष्टि से हमने बिहार, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, इन सब प्रान्तों को हिन्दी प्रान्त ही समझ लिया है। भाषा और आञ्चलिकता की दृष्टि से यदि संगठन के उत्स अधिक मिश्रित और अनुपात में अधिक समान हों तो संगठन और भी अधिक स्वस्थ एवं संतुलित होगा।

पेशा एवं वृत्ति :

कलकत्ता व्यावसायिक नगर है। लोग प्रायः व्यवसाय की दृष्टि से ही यहाँ आते हैं। स्वाभाविक है कि आर्य सभासदों में व्यवसायियों की संख्या अधिक है। ८० सभासदों में से ६९ व्यवसायी हैं, १० नौकरी पेशे में हैं। इनमें अवकाशप्राप्त और पौरोहित वृत्ति के व्यक्ति भी सम्मिलित हैं। एक सभासद् वकालत भी करते हैं। इस प्रकार पेशे की दृष्टि से आर्यसमाज कलकत्ता व्यवसायीप्रधान समाज है।

एक विचारणीय समस्या :

आर्यसमाज कलकत्ता के संगठन के विभिन्न पहलुओं पर विचार करने से जहाँ कई तथ्य ऐसे प्रकट होते हैं जिनसे सन्तोष होना स्वाभाविक है, वहीं कुछ ऐसे तथ्य भी सामने आते हैं कि भविष्य की दृष्टि से उन पर ध्यान कर लेना सर्वथा उचित है। कलकत्ता आर्यसमाज की सन् १९८४-८५ ई० की बैलेन्स शीट ८,८०,००० रुपयों की है। वर्ष की आय-व्यय का लेखा ३,१६,००० रुपये के लगभग है। आज मँहगाई का युग है और रुपयों का मूल्य बहुत घट गया है, फिर भी ये आंकड़े असन्तोष के कारण नहीं हैं। १६,००० से अधिक रुपये चन्दा आये हैं और २५० रु० वार्षिक चन्दा देने वालों की संख्या ४१ है। ८० आर्यसभासदों में ४१ सभासद २५०) या अधिक वार्षिक देने वाले हों, दान, सहायता इत्यादि अलग, तो यह भी असन्तोष का विषय नहीं है। आधे से अधिक सदस्य नवयुवक कोटि के हैं और लगभग ३४-३५ प्रतिशत आर्य सभासद, स्नातक और उससे भी अधिक शिक्षा प्राप्त हैं। इन सब दृष्टिकोणों से आर्यसमाज कलकत्ता का संगठन स्वस्थ और प्रगतिशील कहा जा सकता है। किन्तु उसीके साथ कुछ ऐसे भी मुद्दे हैं कि जिनपर विचार करना इतिहास की दृष्टि से सर्वथा समीचीन है।

आर्यसमाज कोई आंचलिक संगठन नहीं है। न ही आंचलिकता को केन्द्र बनाकर इसके उद्देश्यों का निर्धारण किया गया है। 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' इसका सामूहिक जयघोष है। 'संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है।'[1]

इस दृष्टि से कलकत्ता जैसे नगर का प्रमुख समाज आञ्चलिकता के प्रभाव से रहित बना रह सके तो इतिहास की दृष्टि से यह सन्तोष की बात है। कलकत्ता आर्यसमाज में स्थानीय बंगला भाषा-भाषियों

---

१. आर्यसमाज का छठाँ नियम

का प्रायः अभाव-सा ही है। कलकत्ता में अब तो कुछ परिवार स्थायी रूप से रहने लगे हैं, नहीं तो यह परदेशियों का नगर है। लोग यहाँ परदेशियों की तरह आते हैं, व्यवसाय या नौकरी करते हैं, कभी परिवार को साथ रखते हैं तो कभी परिवार को गाँव पर ही छोड़कर आते हैं। एक परदेशी की मनोवृत्ति में उसका परिवार घर-गाँव बसा ही रहता है। छुट्टी पाते ही या आवश्यकता पड़ते ही वह बिना किसी को सूचना दिये अपनी जन्मभूमि की ओर भागता है। कलकत्ता आर्यसमाज के भी पर्याप्त सदस्य और सभासद् इन सारी सीमाओं के भीतर हों तो क्या आश्चर्य है। पर्याप्त संख्या में आर्य सभासद् यहाँ स्थायी रूप से रहने लगे हैं। फिर भी, बहुसंख्यक सदस्यों और सभासदों का स्वरूप परदेशी ही है। यदि स्थानीय बंगला भाषा-भाषी तत्त्व समाज के संगठन में और अधिक आता तो आंचलिक संतुलन की दृष्टि से, विश्वव्यापक उद्देश्यों की दृष्टि से, अधिक अच्छी बात होती।

आरम्भिक काल में आर्यसमाज के संगठन में यहाँ बंगला भाषा-भाषियों का अभाव उस तरह न खटकता था जैसा आज अनुभव होता है। धीरे-धीरे बंगला भाषा-भाषियों की कमी होती गयी और आज एक विशेष मोहल्ले की आञ्चलिकता का प्रभाव समाज के संगठन पर सुस्पष्ट दृष्टिगोचर है।

आज का विश्व विज्ञान, तकनीक और प्रगति का विश्व है। आज का युग आकाशमार्ग को छोड़कर अन्तरिक्ष से भी आगे बढ़कर दूसरे ग्रह-उपग्रहों पर जानेका युग है। यों तो विज्ञान और तकनीककी यह प्रगति आर्यसमाज के सम्पूर्ण संगठनको व्याप्त होकर चलती तो अच्छा रहता, किन्तु यहाँ तो हम कलकत्ता समाज की रीति-नीति पर एक अन्तर्दृष्टि डाल रहे हैं। आर्यसमाज कलकत्ता की कार्यसरणी वही नहीं होनी चाहिए जो पिछड़े क्षेत्रों के साधनहीन नगर, शहर, कस्बों में होती है। इस दृष्टि से कलकत्ता समाज के कार्य और प्रचार आयाम तो विस्तृत

इतिहास लेखक :
प्रो० उमाकान्त उपाध्याय

बंगला भाषा में अनुवादक :
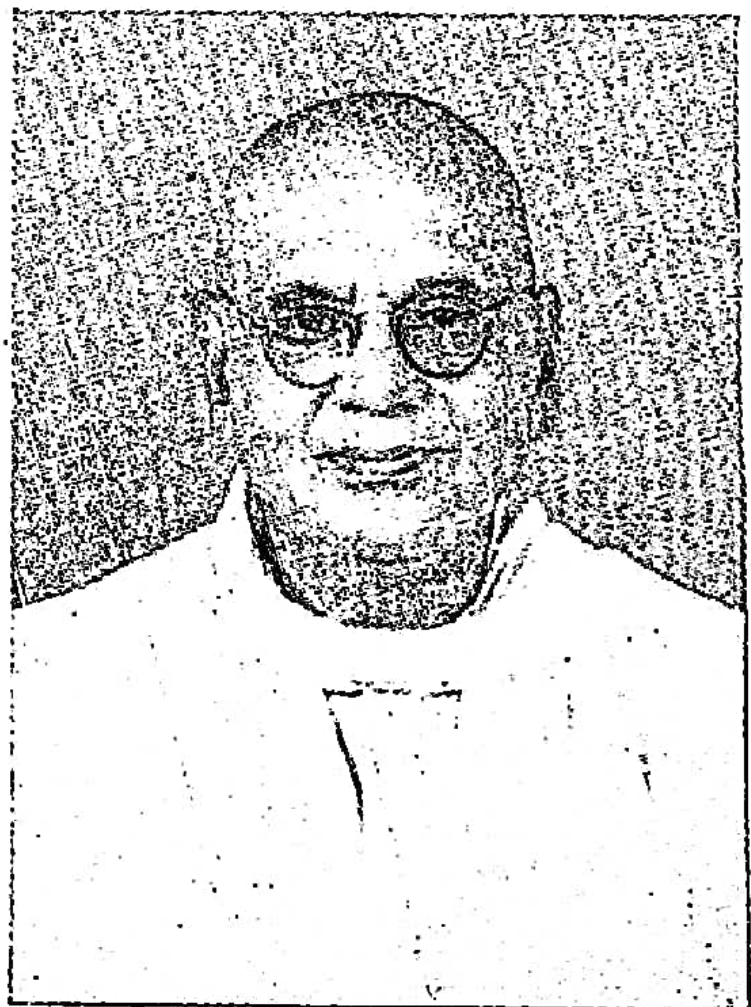
आर्यसमाज कलकत्ता शताब्दी वर्ष १९८५-८६ पदाधिकारी

श्री सीतारामजी आर्य
प्रधान

श्री पूनमचन्दजी आर्य
मन्त्री

श्री राजेन्द्र प्रसादजी जायसवाल
संयुक्त मन्त्री
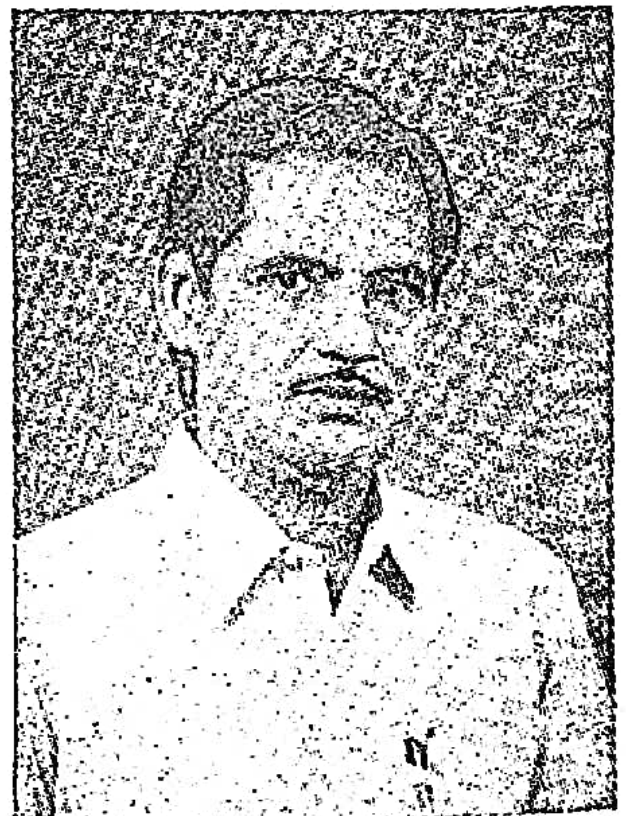
श्री श्रीरामजी आर्य
संयोजक, शताब्दी समारोह

है किन्तु कार्य और प्रचार में विज्ञान, तकनीक, आटोमेशन, कम्प्यूटर सिस्टम इत्यादि की दृष्टि से कलकत्ता समाज को नेता की भूमिका निभाने की ऐतिहासिक आकांक्षा है, अनुगामी बनने की नहीं।

आर्यसमाज कलकत्ता आरम्भिक काल से ही विद्या और व्यवसाय के उच्चतम स्तर के लोगों का केन्द्र रहा है। यह स्तर ऊर्ध्वगामी बना रहे और धारा नीचे की ओर न बहकर, ऊपर की ओर बहती रहे। संगठन के उत्सों की दृष्टि से इस तथ्य को सदा ध्यान में रखने की आवश्यकता है। संगठन के उत्स समवाय संश्लेषण से प्रभावित होते रहते हैं। जिस वर्ग और स्तर के लोग बहुलता और नेतृत्व में होते हैं, उसी स्तर, समुदाय के लोग संगठन में आने भी लगते हैं। पंजाब में लाला मूलराज, महात्मा हंसराज, लाला लाजपत राय, महात्मा मुन्शीराम से आरम्भ करके महाशय कृष्ण और खुशहाल चन्द युग के उस उत्स संगठन के कार्यकर्ता स्तर आदि पर दृष्टिपात करें तो यह सरलता से समझ में आ जाता है। कलकत्ता विद्या की दृष्टि से आर्यसमाज के क्षेत्र में पिछड़ा ही रह गया। यहां न कोई उच्चकोटि का कालेज बन पाया, न शोध-संस्थान, न बौद्धिकता की दृष्टि से आर्यसामाजिक जगत् का लेखन-प्रकाशन का केन्द्र ही बन पाया। इन सब दृष्टियों से यहाँ के सामाजिक संगठन के पिछड़ेपन को ओझल करना उचित नहीं है। यह विशेषरूप से विचारणीय है कि कलकत्ता विद्या और व्यवसाय का उच्चतम केन्द्र है। यहाँ एक ही शहर में विश्वविद्यालय और बीसों स्नातक श्रेणी के कालेज हैं, जिनमें लाखों विद्यार्थी और हजारों शिक्षक हैं। सैकड़ों प्रकाशक, हजारों लेखक; इतने बड़े विद्याकेन्द्र में, इस दृष्टि से आर्यसमाज की प्रगति पर पुनर्विचार और चिन्तन की आवश्यकता है। हिन्दी, बंगला, अंग्रेजी के कितने दैनिक पत्र-पत्रिकाएँ मासिक और पाक्षिक, साप्ताहिक कलकत्ता से प्रकाशित होते हैं, इस दृष्टि से भी आर्यसमाज और आर्य-समाजियों का कृतित्व सोचने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

श्री मिहिरचन्दजी धीमान ने जागृति नामक दैनिक पत्र निकाला था। गोविन्दराम हसानन्द ने प्रकाशन का कार्य भी आरम्भ किया था, किन्तु जागृति बन्द हो गया, गोविन्दराम हासानन्द का प्रकाशन दिल्ली स्थानान्तरित हो गया, जो भी हो, यह पक्ष भी संगठन के कर्णधारों के लिए विचारणीय है।

कलकत्ता ईसाइयों का गढ़ है। मुसलमानों का भी अच्छा केन्द्र है। ब्राह्मसमाज तो आरम्भ ही यहीं से हुआ था। रामकृष्ण मिशन, हरे कृष्ण हरे राम, इत्यादि संगठनों की प्रगति के साथ उनकी जन-सेवाएँ, उनके अस्पताल, उनके केन्द्र, मन्दिर, सभाकक्ष, प्रकाशन विभाग इत्यादि पर तुलनात्मक दृष्टि डालने से आपाततः ऐसा प्रतीत होता है कि इस स्थल में आर्यसमाज के लिए उर्वरता अधिक अनुकूल नहीं लग रही है। किन्तु सही बात यह समझ में आती है कि जैसा चारा फेंका जायगा वैसे पक्षी इकट्ठे हो जायेंगे। मांस के टुकड़ों पर चील्ह-गिद्ध टूटते हैं, तो चावल के दानों पर कबूतर। जो होगा सो होगा, यथा पूर्ववादिता और प्रगतिशीलता विरहित नेतृत्व, समय की गति और रफ्तार को बिना पहचाने उसके साथ सामञ्जस्य न स्थापित करने का प्रतिफल अक्षम्य प्रतिगामिता के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ?

आज का युग मध्यकोटि के लोगों के नेतृत्व का नहीं है। जो उच्चकोटि के विद्वान् चिन्तक, नेता, कार्यकर्ता, अधिकारी नहीं आकृष्ट कर सकेंगे, वे संगठन हों या समुदाय, पिछड़ जायेंगे। आर्यसमाज कलकत्ता ने समय की गति के साथ पर्याप्त प्रगति की है, फिर भी कई मोर्चों पर प्रगति के पथ को अधिक प्रशस्त, आकर्षक, जन-सुलभ बनाने की आवश्यकता को अस्वीकार करना अनुचित होगा। अपनी उपलब्धियों पर सन्तोष और आत्म-विश्वास श्लाघ्य है तो अपनी सीमाओं, न्यूनताओं पर सजग अन्तर्दृष्टि रखते हुए उन्हें दूर करना ही भविष्य की आकांक्षा है। यह ऐतिहासिक उपलब्धियों के विश्लेषण की भी आकांक्षा है।

आर्यसमाज कलकत्ता की अन्तरंग सभा के सदस्य, आर्यसमासद् एवं सदस्यों की सूची :

१. श्री सीताराम आर्य	प्रधान
२. श्री सुखदेव शर्मा	उपप्रधान
३. श्रीमती विद्यावतीदत्त	"
४. श्री शिवचन्दराय अग्रवाल	"
५. श्री पूनमचन्द आर्य	मन्त्री
६. श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल	संयुक्त मन्त्री
७. श्री मंशाराम वर्मा	उपमन्त्री
८. श्री अमरसिंह सैनी	प्रचार मन्त्री
९. श्री अच्छेलाल जायसवाल	प्रकाशन मन्त्री
१०. श्री श्रीनाथदास गुप्त	कोषाध्यक्ष
११. श्री कुलभूषण सभरवाल	हिसाब परीक्षक
१२. श्री घनश्याम आर्य	पुस्तकाध्यक्ष
१३. श्री सत्यनारायण आर्य	उप-पुस्तकाध्यक्ष
१४. श्री मनीराम आर्य	"
१५. श्री सुरेश कुमार अग्रवाल	अधिष्ठता आर्य वीरदल
१६. श्री श्रीराम आर्य	संयोजक, आर्यसमाज कलकत्ता स्थापना शताब्दी समारोह
१७. श्री रलियाराम गुप्त	अंतरंग सदस्य
१८. श्री ईश्वरचन्द आर्य	"
१९. श्री लक्ष्मण सिंह	"
२०. श्री छबीलदास सैनी	"
२१. श्री यशपाल वेदालंकार	"
२२. श्री रामधनी जायसवाल	"
२३. श्रीमती सुनीति देवी शर्मा	"

२४. श्री सरोज आहूजा — अन्तरंग सदस्य
२५. श्री रामलखन सिंह — पदेन (प्र० अ० रघुमल आर्य विद्यालय)
२६. श्रीमती सरोजिनी शुक्ल — पदेन (प्रधानाध्यापिका, आर्य कन्या महाविद्यालय)
२७. पं० उमाकान्त उपाध्याय — विशेष
२८. पं० प्रियदर्शन सिद्धान्तभूषण — "
२९. श्री कृष्णलाल खट्टर — "

सभी अन्तरंग सदस्य सभासद् होते हैं।
अन्तरंग सदस्यों के अतिरिक्त सभासद् :

३०. श्री राजकुमार आर्य
३१. श्री रामस्वरूप खन्ना
३२. श्रीमती स्वर्णलता खन्ना
३३. श्री अलगूराम वर्मा
३४. श्री रामसकल आर्य
३५. श्री घनश्यामदास जायसवाल
३६. श्री रामचरण जायसवाल
३७. श्री सुरेन्द्र कुमार अग्रवाल
३८. श्री किशोरीलाल दूबे
३९. श्री मेवालाल आर्य
४०. श्री राधेश्याम आर्य
४१. श्री सोमदेव गुप्त
४२. श्री छोटेलाल सेठ
४३. श्री सत्यप्रकाश आर्य
४४. श्री पंचमलाल जायसवाल
४५. श्री मदनलाल सेठ
४६. श्री लालबहादुर मिस्त्री
४७. श्री लक्ष्मीकान्त जायसवाल
४८. श्री आशाराम जायसवाल
४९. श्री शिवनन्दन प्रसाद वैदिक
५०. श्री देवव्रत आर्य
५१. श्री विन्देश्वरी प्र० जायसवाल
५२. श्री बन्दी प्रसाद जायसवाल
५३. श्री रामबचन मिश्र
५४. श्री राधाकृष्ण ओझा
५५. श्री प्यारेलाल मनचन्दा
५६. श्रीमती शकुन्तला सैनी
५७. श्री अशोक कुमार सिंह
५८. श्री छांगुर सिंह
५९. महेन्द्र प्रसाद सिंह

६०. श्री राजाराम जायसवाल
६१. श्री शीतल प्रसाद आर्य
६२. श्रीमती निर्मला देवी गुप्त
६३. श्रीमती कमला अरोड़ा
६४. श्रीमती रामदुलारी जायसवाल
६५. श्रीमती कंकनदेवी बंसल
६६. श्रीमती शान्ति देवी सैनी
६७. श्रीमती सावित्री देवी जायसवाल
६८. श्रीमती लोचनमणि दुबे
६९. श्रीमती गीतादेवी सेठ
७०. श्रीमती शान्ति देवी जायसवाल
७१. श्रीमती यशोदा देवी गुप्ता
७२. श्रीमती विद्यावती आर्य
७३. श्रीमती भानुमती जायसवाल
७४ श्रीमती कैलाश देवी
७५. श्रीमती सुमना आर्य
७६. श्रीमती लीला भारती
७७. श्री शिवदासजी
७८. श्री ईश्वरी नारायण सिनहा

सभी सभासद सदस्यों होते हैं। सभासदों के अतिरिक्त आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्य :

७९. श्री श्यामलाल गर्ग
८०. श्री विश्वनाथ पोद्दार
८१. श्री कृष्णलाल पोद्दार
८२. श्री गणेश प्रसाद जायसवाल
८३. श्री रघुनाथ चोपड़ा
८४. श्री विजय कुमार सैनी
८५. श्री राजेन्द्र कुमार पोद्दार
८६. श्री देवकीनन्दन पोद्दार
८७. श्री हरीराम आर्य
८८. श्री जगदीश तिवारी
८९. श्री दयानन्द आर्य
९०. श्री सूर्य प्रकाश खट्टर
९१. श्री सुखेश चन्द तलवार
९२. श्री ओमप्रकाश घीया
९३. श्री वेद प्रकाश गोयल
९४. श्री प्रेम प्रकाश आर्य
९५. श्री यतीन्द्र कुमार आर्य
९६. श्री रणजय बनर्जी
९७. श्री मोतीलाल आर्य
९८. श्री प्रमोद अग्रवाल
९९. श्री शिवनाथ गुप्त
१००. श्रीमती प्रणति दत्ता
१०१. श्री देवी प्रसाद मस्करा
१०२. श्री रामप्रताप आर्य

१०३. श्री शिवनन्दन प्रसाद
१०४. श्री गिरीश प्रसाद गुप्त
१०५. श्री भूपेन्द्र पाल कपूर
१०६. श्री रमेशचन्द गुप्त
१०७. श्री दूधनाथ लाल
१०८. श्री मिश्रीलाल जायसवाल
१०९. श्री रामलखन सिंह
११०. श्री ओमप्रकाश आर्य
१११. श्री विजय प्रकाश आर्य
११२. श्री सत्यप्रकाश आर्य
११३. श्री प्रेमचन्द अग्रवाल
११४. पं० आत्मानन्द शास्त्री
११५. श्री वामदेव चड्ढा
११६. श्री गणेश जायसवाल
११७. श्री मेवालाल जायसवाल
११८. श्री ओमप्रकाश जायसवाल
११९. श्री चन्द्रप्रकाश जायसवाल
१२०. श्री हरिश्चन्द वर्मा
१२१. श्री विजय प्रताप सिंह
१२२. श्री रामेश्वर प्रसाद मिश्र
१२३. श्री अवधेश कुमार झा
१२४. श्री विनोद कुमार गुप्त
१२५. श्री दयाशंकर जायसवाल
१२६. श्री हरिशंकर ठाकुर
१२७. श्री अनिरुद्ध राय
१२८. श्री शिवशंकर राय
१२९. श्री शिवाकान्त उपाध्याय
१३०. श्री मिथिलेश कुमार झा
१३१. श्री विश्वबन्धु गुप्त
१३२. श्रीमती बीणा आर्य
१३३. श्री कमलनाथ आर्य
१३४. श्री चन्द्रवली जायसवाल
१३५. श्री भागवत सिंह
१३६. श्री रामसमुझ साव
१३७. श्री वटुकृष्ण वर्मन
१३८. श्री विनय प्रसाद सिंह
१३९. श्रीमती शान्ति देवी
१४०. श्री जंगीलाल आर्य
१४१. श्री पुरुषोत्तमदास झुनझुनवाला
१४२. श्री अरुणदेव झा
१४३. श्री जयकरण राम
१४४. श्री सिद्धार्थ गुप्त
१४५. श्री मदनलाल लाहोटी
१४६. श्री भागीरथ प्रसाद गौड़
१४७. श्री राधेरमण सक्सेना
१४८. श्रीमती शीला सिंह
१४९. श्री उमाशंकर मिश्र
१५०. श्री चन्द्रभान राय
१५१. श्री कैलाशनाथ राय
१५२. श्री विजय कुमार गनेड़ीवाला
१५३. श्रीमती राधा गनेड़ीवाल
१५४. श्री दुर्गानन्द झा
१५५. श्री मदनलाल साव
१५६. श्री श्यामलाल गुप्त

१५७. श्री श्रीकान्त उपाध्याय
१५८. श्री सौखीलाल साव
१५९. श्री सुभाष छावड़ा
१६०. श्री विनोद कुमार मनचन्दा
१६१. श्री वनवारीलाल मनचन्दा
१६२. श्री सुदर्शनलाल मनचन्दा
१६३. श्री पुरुषोत्तमलाल मनचन्दा
१६४. श्री हरिवंशलाल मनचन्दा
१६५. श्री चन्द्रप्रकाश भारद्वाज
१६६. श्री गणेश चन्द्र पण्डा
१६७. श्री तारकनाथ केशरी
१६८. श्री हृदय नारायण झा
१६९. श्री राजेशकुमार पोद्दार
१७०. श्रीमती साधना वर्मा
१७१. श्री. कमलप्रताप गुप्त
१७२. श्री रामचन्द्र गुप्ता
१७३. श्री नन्दलाल सेठ
१७४. श्री सुरेश कुमार गुप्त
१७५. श्री ओम प्रकाश डिडवानिया
१७६. श्री संतोष कुमार सेठ
१७७. श्री फूलचन्द आर्य
१७८ श्रीमती चम्पादेवी आर्य
१७९. श्री शिवनारायण जायसवाल
१८० श्री राजेन्द्र सिंह
१८१. श्री रामपूजन वर्मा
१८२. श्री महेन्द्रप्रताप आर्य
१८३. श्री हरिशंकर बहल
१८४. श्री श्याम सुन्दर सिंह
१८५. श्रीमती केवला देवी
१८६. श्री किशनलाल माखरिया
१८७. श्री सतीश कुमार जायसवाल
१८८. श्रीमती प्रभावती देवी

उपाध्याय

१८९. श्री राजमणि वर्मा
१९०. श्री विनय कुमार आर्य
१९१. श्री वेद प्रकाश आर्य
१९२. श्री रामकुमार आर्य
१९३. श्री भारद्वाज पाण्डेय
१९४. श्री जगदीश नारायण शुक्ल
१९५. पं० नचिकेता भट्टाचार्य
१९६. श्री सत्यदेव चोपड़ा
१९७. श्री सूर्यप्रकाश आर्य
१९८. श्री वेदप्रकाश आर्य
१९९. श्री आनन्द कुमार आर्य
२००. श्रीमती सावित्री जायसवाल
२०१. पं० रामनरेश शास्त्री

आर्यसमाज के कार्यकर्त्ता

प्रत्येक संगठन के कई पक्ष होते हैं। आर्यसमाज कलकत्ता के भी कुछ पक्षों पर हम इस इतिहास में विचार कर रहे हैं। आर्यसमाज का भवन, विद्यालय-भवन, अतिथिशाला, यज्ञशाला, संस्कार हाल इत्यादि भौतिक पक्ष हैं। इन पर यथास्थान विचार किया जा चुका है। समाज का एक पक्ष आर्थिक भी है। इसका भी वृत्तात्मक स्वरूप यथास्थान वर्णित हो चुका है। सम्भावनाओं, शक्यताओं, आकांक्षाओं इत्यादि के आर्थिक पक्ष पर लिखना, इतिहास की अपेक्षा योजना का अधिक समन्वित रूप है।

समाज संघटन का एक मानव-पक्ष भी है। सामूहिक एवं समन्वित रूप में हमने संगठन पर अन्तर्दृष्टि डालते हुए थोड़ा-सा विचार किया है। हमने यहाँ, वर्तमान आयाम के इस प्रसंग में कार्यकर्ताओं का व्यक्तिशः परिचय प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

'पूर्व-पुरुष—पुण्य-पुरुष' प्रसङ्ग में कुछ व्यक्ति छूट गये थे। हमने उन्हें यहाँ गृहीत कर लिया है। कुछ अभी भी छूटे हुए हैं। उनके लिए पिछले तीन वर्षों से अधिक के काल में हम सामग्री-संग्रह का सूत्र-सन्धान न बैठा पाये। सभी व्यक्ति इस इतिहास का उपयोग-महत्त्व समान रूप से समझें, यह आवश्यक नहीं। इस प्रसङ्ग को अपूर्ण तो रहना ही था, सभीको इसमें सम्मिलित नहीं किया जा सकता था किन्तु कई ऐसे भी छूट रहे हैं जिनके छूटने में हमें असन्तोष और असामर्थ्य लग रहा है।

यथातथ्य इतिवृत्त लिखने में भी कुछ न कुछ मूल्यांकन हो ही जाता है। हमने पूरी चेष्टा की है कि ऐसे मूल्याङ्कन किसी प्रकार भी मानसिक या भावानात्मक छाया-निबद्ध न हों। फिर भी सम-सामयिक लेखक की सीमाएँ तो हैं ही।

यहाँ अति संक्षेप से वर्तमान के कार्यकर्ताओं का इतिवृत्तात्मक परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है :—

श्री रुलियारामजी गुप्त

आर्यसमाज कलकत्ता की वर्तमान पीढ़ी के कार्यकारी कार्यकर्ताओं में श्री रुलियारामजी गुप्त का नाम प्रथम पंक्ति में सम्मिलित होता है। अति सरल, सीधे, शान्त और मौन, पर सत्यनिष्ठ और समाज-सेवा में यथाशक्ति सदा संलग्न श्री रुलियारामजी के जीवन का इतिहास
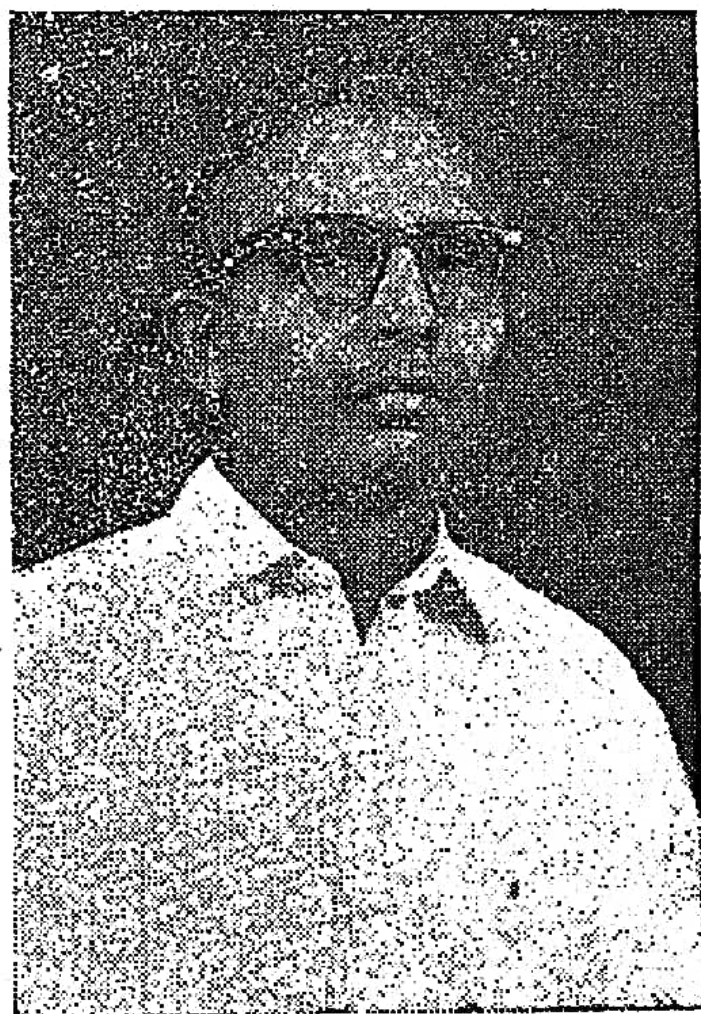
श्री रुलियारामजी गुप्त

अपने में स्वयं एक बड़ी भारी प्रेरणा है। जीवन में नियमानुवर्तित सन्ध्या, अग्निहोत्र में निरलस भाव से तत्पर श्री रुलियारामजी समाज के हर कार्य में सहयोगी के रूप में खड़े दिखाई पड़ते हैं।

श्री गुप्तजी का जन्म हरियाणा के रोहतक जिले में खरककलां ग्राम में सन् १६१५ ई० में हुआ था। इनके पूज्य पिताजी स्वर्गीय सांवलदासजी इन्हें ४ साल की आयु में ही छोड़ कर स्वर्गवासी हो

गए थे। बड़े भाई मनसारामजी के सहयोग से वैश्य हाई स्कूल, रोहतक में हाई स्कूल तक की शिक्षा प्राप्त की। होनहार विद्यार्थी को स्कूल की ओर से ८ रुपया मासिक की सहायता मिलती थी। घर की आर्थिक स्थिति आगे अध्ययन की स्वीकृति न देती थी। १७ वर्ष की आयु में श्री काशीराम गुप्त ने श्री रुलियारामजी को कलकत्ता लाकर अपने पास नौकरी में लगाया।

श्री रुलियारामजी जब गाँव में पढ़ते थे तो इनके स्कूल के प्रधानाध्यापक आर्यसमाजी विचारों के थे। होनहार विद्यार्थी का झुकाव वहीं से आर्यसमाज के आदर्शों की ओर मुड़ गया। जिस समय रोहतक में हाई स्कूल के छात्र थे वहाँ आर्यकुमार सभा से सम्पर्क हुआ। रोहतक में आर्यकुमार सभा और आर्यसमाज के सत्संग में निरंतर जाया करते थे। सन् १६३२ ई० में जब कलकत्ता आना हुआ तो लगभग उसी समय सन् १६३३ ई० से आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्य बने। आधी शताब्दी से भी अधिक समय निकल गया। श्री रुलियारामजी सदा ही आर्यसमाज कलकत्ता के अन्तरंग सदस्य से आरम्भ करके प्रधान के पद तक अनेक प्रकार से यथाशक्ति समाज की सेवा करते रहे। सर्वप्रथम ये आर्यसमाज कलकत्ता के पुस्तकाध्यक्ष बने। पहली बार आर्यसमाज के प्रधान के रूप में सन् १६६६ ई० में सर्व-सम्मति से निर्वाचित हुए। सन् १६७० ई० तक प्रधानपद पर बने रहे। तब से कितनी ही बार समाज के उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर कार्य-रत रहे। श्री गुप्तजी के कार्यकर्ता जीवन की एक घटना ऐतिहासिक दृष्टि से अपना महत्त्व रखती है—

आर्यसमाज कलकत्ता के सन् १६८२ ई० के निर्वाचन का समय था। उसके कुछ दिन पूर्व श्री रुलियारामजी को रक्त का वमन हुआ और अचेतन अवस्था में अस्पताल में भर्ती करा दिया गया। किसी को जीवन की अधिक आशा न रह गयी थी। १०-१२ दिन पीछे जब कुछ सुधार हुआ तो लालाजी ने घर

जाकर सर्वप्रथम यज्ञ कराने का निश्चय ही व्यक्त किया। उस समय ठीक से बैठ पाने में भी संकोच जान पड़ता था, फिर भी यज्ञ के प्रति भक्ति भावना, बड़ी श्रद्धाभक्ति से गुप्तजी ने यज्ञ किया। दिन-दो-दिन बाद ही डाक्टरी जाँच और यदि आवश्यकता हो तो आपरेशन कराने के लिए बम्बई जाना निश्चित हो गया। उधर रुलियारामजी बम्बई जा रहे थे और उसी दिन कलकत्ता आर्यसमाज का वार्षिक अधिवेशन और निर्वाचन था। आर्यसमाज कलकत्ता के सभासदों ने आदरपूर्वक सर्वसम्मति से रुलियारामजी को अपना प्रधान निर्वाचित कर लिया। स्वस्थ होकर लौटने पर रुलियारामजी ने बड़े भावुक रूप से इस बात को कहा कि और किसीको उनके जीवन का विश्वास रहा हो, न रहा हो, किन्तु आर्यसमाज कलकत्ता के सभासदों ने तो जैसे मृत्यु से भी आग्रह करके अपने प्रधान को लौटा लिया।

श्री गुप्तजी आर्यसमाज कलकत्ता में विभिन्न पदों पर कार्य करते रहे हैं। साथ ही आर्यसमाज द्वारा संचालित-संस्थापित अन्य संस्थाओं में भी आपका प्रशंसनीय योगदान रहा है। आप महिला-मण्डल-ट्रस्ट के ट्रस्टी एवं मन्त्री हैं। मन्त्री बनने के पश्चात् महिला-मण्डल-ट्रस्ट को कई प्रकार से सुव्यवस्थित किया। आप दयानन्द बालिका विद्यालय के प्रधान एवं वैदिक अनुसंधान ट्रस्ट के ट्रस्टी हैं। आर्यसमाज और आर्य संस्थाओं के अतिरिक्त अन्य कई सार्वजनिक संस्थाओं में आपका प्रमुख कार्यकर्त्ता के रूप में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी, हरियाणा चैरिटेबल ट्रस्ट, हरियाणा नागरिक संघ, वैदिक साधना आश्रम, तपोवन आदि उल्लेखनीय हैं।

श्री रुलियारामजी गुप्त नौकरी से व्यवसाय में आये। बंगाल प्रिंटिंग वर्क्स एवं कागज का व्यवसाय आजीविका के धन्धे हैं। प्रभु की कृपा से आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी है और व्यवसाय बड़ी सफ-

लतापूर्वक चल रहा है। श्री गुप्तजी की अभिरुचि आर्यसमाज के प्रचार में, सन्ध्या, अग्निहोत्र के विस्तार में और सुन्दर वैदिक साहित्य-निर्माण में सदा रहती है। आर्यसमाजियों के अतिरिक्त अन्य लोगों के घरों पर अपनी ओर से, श्री रामकुमारजी गुप्त के सहयोग से हवन सामग्री, यज्ञपात्र लेकर जाना, दूसरों के घर पर यज्ञ कराना और उन्हें सन्ध्या अग्निहोत्र की ओर आकृष्ट करना आपकी प्रशंसनीय अभिरुचियाँ हैं। अपने गाँव में अपने पिताजी के नाम पर एक समाज कल्याण केन्द्र खोल रखा है जिसका संचालन रेडक्रास की ओर से होता है, जिसमें छोटे बच्चे-बच्चियाँ पढ़ते और सिलाई का तथा अन्य काम सीखते हैं।

गुप्तजी का पारिवारिक जीवक सुखी-सम्पन्न एवं समृद्ध है। पत्नी श्रीमती रमादेवी आदर्श पतिपरायणा सरलता, सादगी की मूर्ति हैं। ज्येष्ठ पुत्र श्री सुरेश गुप्त और कनिष्ठ पुत्र श्री रमेश गुप्त अपने व्यवसाय में कुशलतापूर्वक उन्नति कर रहे हैं। श्री गुप्तजी के अपने जीवन का मिशन आर्यसमाज, वेद, धर्म और देश जाति की सेवा है।

श्री जंगीलालजी आर्य

श्री जंगीलाल आर्य का जन्म २१ अक्टूबर, सन् १९१२ ई० में कलकत्ता में हुआ था। आपके पिताजी का नाम श्री रामसुन्दर साव चौरसिया और माताजी का नाम श्रीमती देवकलाजी था। इनके पूर्वज कठिरांव जनपद वाराणसी से लगभग २०० वर्ष पूर्व कलकत्ता में आ गये थे। यहीं नन्दकुमार चौधरी लेन में चौरसियों के सम्पन्न परिवार में जंगीलालजी का जन्म हुआ और विधान सरणी में रेडी मेड कपड़े का व्यवसाय चल रहा है। जंगीलालजी की प्रारम्भिक शिक्षा इनके पैतृक स्थान वाराणसी में हुई और वहाँ से स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेने लगे। आजीविका के रूप में जंगीलालजी अपने पिताजी की कपड़े की दुकान पर व्यवसाय करने लगे। इस समय इनका

सम्पर्क कलकत्ता के प्रसिद्ध आर्यसमाजी कार्यकर्त्ता श्री हरगोविन्दजी गुप्त से हुआ और सन् १९३१ ई० से ये कलकत्ता आर्यसमाज के सत्संगों में सम्मिलित होने लगे। सन् १९३४ ई० में आर्यसमाज कलकत्ता के ये सदस्य बने। यहाँ इनका विद्वानों और नेताओं से अच्छा सम्पर्क रहा। श्री जंगीलालजी सन् १९५० ई० में आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल
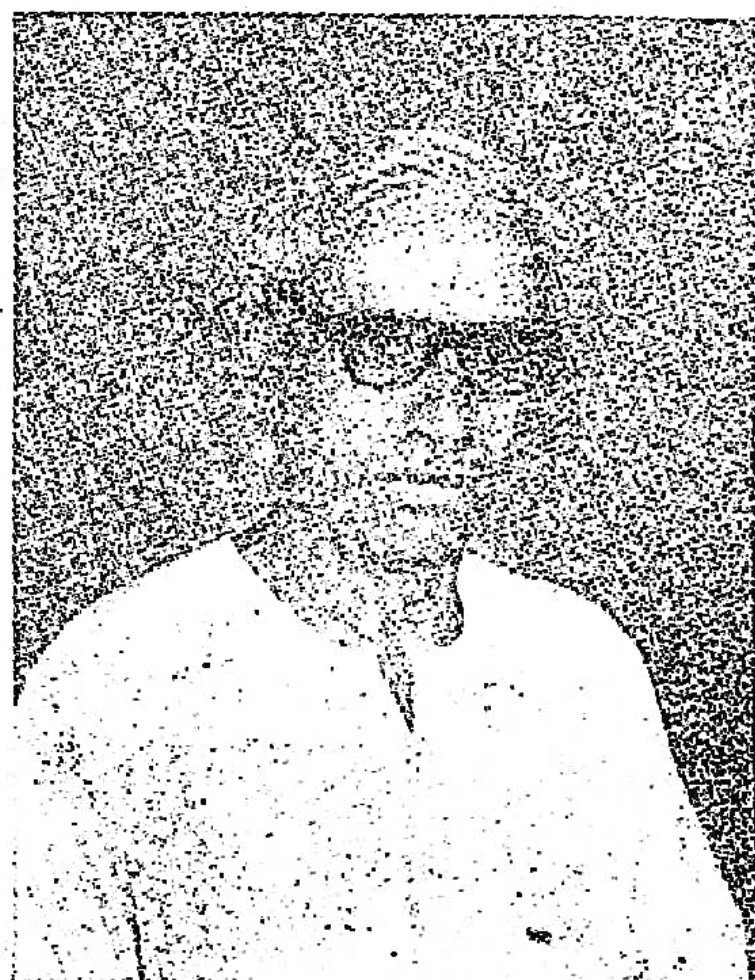
श्री जंगीलालजी आर्य

के सदस्य बने और सन् १९५३ ई० में ये बंगाल सभा के उपमन्त्री निर्वाचित हुए। श्री जंगीलालजी ने एक त्रिवार्षिक योजना बनायी थी और सन् १९५४ ई० में इनके प्रयास से स्वामी अभेदानन्दजी की अध्यक्षता में अखिल बंग-आसाम आर्य महासम्मेलन का प्रथम अधिवेशन सम्पन्न हुआ। श्री जंगीलालजी आर्यसमाज के कट्टर भक्त हैं। इन्होंने मदनमोहन मित्रा लेन में अपनी ठीका टेनेन्सी की कोई दो

लाख रुपये मूल्य की भूमि से अपना अधिकार निरस्त करके मात्र ४२ हजार रुपये में श्री रघुमल आर्य विद्यालय को जमींदार से दिलवा दिया, जहां आज रघुमल आर्य विद्यालय का भवन बना हुआ है। श्री जंगीलालजी ने बड़ी कुशलता से आर्य वीरदल का संचालन किया और वर्तमान कार्यालय भवन को क्रय करने में सक्रिय सहयोग दिया। आप आर्य प्रतिनिधि सभा के कई वर्षों तक संयुक्त मन्त्री, उपमन्त्री एवं उप प्रधान रहे। श्री जंगीलालजी ने पं० शिवनन्दन प्रसादजी वैदिक की अध्यक्षता में वेद प्रचारिणी सभा की स्थापना की और वैदिक धर्म का प्रचार करते रहे। आप बंगाल प्रतिनिधि सभा के मन्त्री भी रहे। गुरुकुल महाविद्यालय बैद्यनाथ धाम के भी आप सदस्य हैं। आप सार्वदेशिक सभा के भी समय-समय पर सदस्य रहे हैं। आपने हिन्दी रक्षा आनन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाई थी। श्री जंगीलालजी आर्यसमाज कलकत्ता के विभिन्न पदों पर उपमन्त्री, पुस्तकाध्यक्ष इत्यादि दायित्वों पर सक्रिय कार्य करते रहे हैं।

श्री वटुकृष्णजी वर्मन

श्री वटुकृष्णजी वर्मन का जन्म मेदिनीपुर जिले की धवल तहसील में भूता नामक गाँव में एक नवम्बर सन् १९१५ ई० को हुआ। श्री वर्मनजी अपने छात्र जीवन से ही आन्दोलनकारी और क्रान्तिप्रिय थे। सन् १९३४ ई० के छात्र आन्दोलन के कारण आपको अपने जिले से निष्कासित कर दिया गया था। अतः शेष स्कूली शिक्षा हुगली जिले में हुई। आप सन् १९३६ ई० से सन् १९४० ई० तक विद्यासागर कालेज के विद्यार्थी थे और उसी समय सन् १९३८ ई० में आर्यसमाज के सदस्य बने। आपने अपने गाँव भूता में भी आर्यसमाज की स्थापना की। इसी समय सत्याग्रहियों के नेता बनकर हैदराबाद सत्याग्रह में गये। इसी सत्याग्रह यात्रा और कारागार निवास के समय आर्य नेताओं के सम्पर्क में आपने आर्य सिद्धान्तों का गम्भीरतापूर्वक

अध्ययन किया। श्री वर्मनजी सन् १६३६ ई० से आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्य हैं।

श्री वटुकृष्णजी वर्मन का आर्य प्रतिनिधि सभा में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। भावी इतिहास की दृष्टि से यह इनका युग ही कहलायेगा। प्यार से लोग प्रायः इन्हें बट्टो बाबू संक्षिप्त नाम से जानते हैं।

श्री वटुकृष्णजी वर्मन

श्री वटुकृष्णजी वर्मन का कार्यक्षेत्र कलकत्ता आर्यसमाज की अपेक्षा आर्य प्रतिनिधि सभा अधिक रहा है। श्री वटुकृष्णजी सन् १६४१ ई० से सन् १६४३ ई० तक आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल आसाम के प्रचार मन्त्री रहे सन् १६४७ ई० से सन् १६४६ ई० तक ये प्रतिनिधि सभा के उपमन्त्री रहे। सन् १६५० ई० से सन् १६५५ ई० तक प्रतिनिधि सभा के महामन्त्री रहे। सन् १६५६ ई० से सन् १६५८ ई० तक संयुक्त

मन्त्री रहे पुनः सन् १९५९ ई० से सन् १९६३ ई० तक तथा सन् १९६६ से सन् १९७६ ई० तक पुनः प्रतिनिधि सभा के महामन्त्री रहे। सन् १९७९ ई० से सन् १९८३ ई० तक प्रतिनिधि सभा के कार्यकर्ता प्रधान और सन् १९८४ ई० से आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल के प्रधान हैं।

श्री वटुकृष्णजी वर्मन का कार्यक्षेत्र प्रतिनिधि सभा के साथ सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा भी है। सन् १९५० ई० से आज तक श्री वर्मनजी सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा में अनेक पदों पर, कभी अन्तरंग सदस्य और प्रायः उपमन्त्री एवं उप प्रधान भी रहते आये हैं।

श्री वटुकृष्णजी वर्मन ने बंगाल में आर्यसमाज के संगठन को सम्भालने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। ये आर्यसमाज के पदाधिकारी ही नहीं, बल्कि सफल वक्ता एवं प्रचारक भी हैं। श्री वर्मनजी पेशे से वकील हैं। इसीलिये भाषण देना, अपनी बात को समझाना ये बड़ी सफलता से करते रहते हैं। श्री वर्मनजी का कार्यक्षेत्र कलकत्ता की अपेक्षा ग्रामाञ्चल अधिक हैं। बंगाल में जब भी कोई रिलीफ सहायता कार्य आरम्भ हुआ, श्री वर्मनजी सभी कार्यों में आगे बढ़कर हाथ बँटाते रहे।

आर्यसमाज ने जब भी कोई आन्दोलन छेड़ा श्री वटुकृष्णजी उसमें पूर्ण रूप से सक्रिय हो उठे। हैदराबाद के सत्याग्रह के समय तो वर्मनजी ७० सत्याग्रहियों का जत्था लेकर स्वयं जत्थे का नेता बनकर गये थे। पंजाब के हिन्दी-रक्षा-सत्याग्रह के समय भी वर्मनजी ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। यहाँ से सत्याग्रहियों के जत्थे भेजना और यहाँ के पत्रों से जनसम्पर्क करने में श्री वटुकृष्णजी का अच्छा सहयोग था।

श्री वर्मनजी ने कई विद्यालयों और गुरुकुलों की स्थापना की है और उनका संचालन ये स्वयं कर रहे हैं। बंगाल में जिन गुरुकुलों और विद्यालयों की स्थापना और संचालन में वर्मनजी का कृतित्व है वे निम्न प्रकार हैं—

(१) गुरुकुल काउरचण्डी सन् १९५८ ई० में स्थापित

(२) कन्या गुरुकुल वासुदेवपुर सन् १९६७ ई० स्थापित

(३) भूता डी० ए० वी० हाई स्कूल सन् १९४२ ई० में स्थापित

(४) आर्य कन्या विद्यालय काउरचण्डी सन् १९६५ ई० में स्थापित

(५) राजा रामपुर सागर स्मृति वैदिक विद्यापीठ सन् १९६८ ई० में स्थापित।

श्री वटुकृष्णजी वर्मन के प्रयास से बंगाल में आर्यसमाज की संस्थाओं को अल्पसंख्यकों की संख्या घोषिध किया गया और आर्य-समाज की शिक्षा-संस्थाओं को विशेष नियम बंगाल सरकार से प्राप्त हुए। इनमें तीन हायर सेकेण्ड्री स्कूल, १८ हाई स्कूल और १६ प्राथमिक स्कूल हैं।

श्री वटुकृष्णजी अपने युग के महत्त्वपूर्ण स्तम्भ है। ये स्वयं में संगठन और संस्था हैं। एक सरल, सादा तपस्वी का जीवन वटुकृष्णजी वर्मन के रूप में आर्यसमाज और स्वामी दयानन्दजी के लिए समर्पित हो गया है।

श्री श्रीनाथदासजी गुप्त

श्री श्रीनाथदासजी गुप्त का जन्म ग्राम गुतवन जिला जौनपुर (उ०प्र०) में एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार में माघ सुदी ५ सम्वत् १९७० विक्रमी को हुआ था। आपने विद्याध्ययन कलकत्ता में ही किया। उत्तर प्रदेश से कलकत्ता आये हुए पूर्वाञ्चल के वैश्यों में आर्यसमाज का प्रचार श्री हरगोविन्दजी गुप्त आदि के कारण पहले से ही था। श्री श्रीनाथ दासजी के बड़े भाई श्री गोपाल दासजी गुप्त आर्य-समाज के सम्पर्क में थे। श्री श्रीनाथ दासजी ने स्वामी दयानन्दजी के अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश को पढ़ा और उनके हृदय में आर्यसमाज के लिए श्रद्धा की भावना जागरित हुई। श्री गुप्तजी सन् १९५० ई० में आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्य बने। शान्त-प्रकृति, साहित्य और स्वाध्याय में अभिरुचि रखते हुए श्री श्रीनाथदासजी गुप्त ने आर्यसमाज

कलकत्ता की सेवा अनेक पदों पर रहते हुए की है। आप कई बार मन्त्री, कोषाध्यक्ष और उप-प्रधान जैसे महत्त्वपूर्ण पदों पर सफलता-पूर्वक कार्य करते रहे हैं। इस शताब्दी वर्ष में आर्यसमाज कलकत्ता ने श्री गुप्तजी को अपना कोषाध्यक्ष बनाया है।

श्री श्रीनाथजी ने अपने मूल निवास स्थान मड़ियाहू, जौनपुर में आर्यसमाज की स्थापना की तथा वहाँ के भी मन्त्रित्व के भार को ग्रहण किया। सन् १९४५ ई० से सन् १९४९ ई० तक आप आर्य-समाज मड़ियाहू, जौनपुर के भी मन्त्री रहे। वहाँ से आकर आप आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्य और कार्यकर्ता बने।

श्री श्रीनाथदासजी गुप्त

श्री श्रीनाथजी आर्यसमाज कलकत्ता के साथ ही आर्य प्रति-निधि सभा बंगाल के कामों में भी सहयोग करते रहते हैं। आपका निवास स्थान स्वकीय भवन आर्यसमाज कलकत्ता के बिल्कुल ही समीप है, अतः सायं-प्रातः श्री गुप्तजी आर्यसमाज की सेवा में अधिक से अधिक समय दे लेते हैं।

व्यवसाय की दृष्टि से आप वस्त्रों के क्रय-विक्रय के व्यवसाय में लगे हुए हैं। आर्यसमाज की सेवा ही आपका व्यसन है। सादा जीवन उच्च विचार, स्वाध्याय एवं प्रचार आपके जीवन के उच्च आदर्श हैं।

श्री हरिश्चन्द्रजी वर्मा

श्री हरिश्चन्द्र गांगजी भाई वर्मा (आर्य) का जन्म आश्विन शुक्ला त्रयोदशी सम्वत् १९७३ विक्रम दिनांक २८-१०-१९१७ ई० को

नवसारी कच्छ, गुजरात के लोहाड़ा परिवार में हुआ था। आपके पिताजी गांगजी भाई पीताम्बर वर्मा और माताजी श्रीमती माया देवी थीं। हरिश्चन्द्रजी वर्मा की प्रारम्भिक शिक्षा गुरुकुल सूपा में हुई। इनके पिताजी श्री गांगजी भाई वर्मा आर्यसमाज के भक्त थे। स्वामी श्रद्धानन्दजी ने जब गुजरात में गुरुकुल खोलने की इच्छा प्रकट की

श्री हरिश्चन्द्रजी वर्मा

तो उस समय श्री गांगजी भाई वर्मा ने गुरुकुल खोलने में भी सहायता की और ६ वर्षीय बालक हरिश्चन्द्र को गोद में बिठाकर गुरुकुल सूपा के लिए दे दिया। हरिश्चन्द्र के बड़े-छोटे भाई तो गुरुकुल कांगड़ी एवं गुरुकुल चित्तौड़ में पढ़ते रहे। दो बहनें जालंधर कन्या महाविद्यालय में पढ़ती रहीं। इस प्रकार वर्माजी का सारा परिवार ही आर्यसमाज के संस्कारों से ओतप्रोत था।

श्री हरिश्चन्द्र वर्मा का सम्बन्ध आर्य कुमार सभा से भी रहा। इन्दौर में टेक्सटाइल मिल में सात वर्षों तक कार्य सीखकर सन् १९४६ ई० में कलकत्ता आये तथा ज्योति वीविंग फैक्टरी की स्थापना की। श्री वर्माजी को आयुर्वेदिक और होमियोपैथी की दवाइयों का अच्छा ज्ञान है। सन् १९७२ ई० में वीविंग फैक्टरी का राष्ट्रीयकरण हो गया और वर्माजी ने सिद्ध नागार्जुन फार्मेसी की स्थापना की।

श्री हरिश्चन्द्रजी वर्मा सन् १९४८ ई० से ही आर्यसमाज कलकत्ता के सम्पर्क में थे। सन १९५५ ई० से सपरिवार प्रत्येक साप्ताहिक सत्सङ्ग एवं आर्यसमाज के प्रत्येक कार्य में सहयोग देते रहे। श्री वर्माजी की पत्नी श्रीमती ऊषा देवी वर्मा भी आर्यसमाज के भक्त हैं और पूरा सहयोग देती रही हैं।

श्री हरिश्चन्द्रजी सन् १९६४ ई० के मध्य तीन वर्षों के लिए आर्य-समाज कलकत्ता के प्रधान निर्वाचित हुए थे। इस अवधि में श्री वर्माजी ने आर्यसमाज कलकत्ता के पुराने भवन को नया रूप दे दिया। इस नवीकरण में दयानन्द दिव्यदर्शन नामक महर्षि दयानन्द की सम्पूर्ण जीवन की चित्रावली, मुराल पेन्टिंग पर अंकित कराया (इसका विस्तृत वर्णन अलग इसी इतिहास में किया जा चुका है)। यह चित्र-गैलरी सारे देश में अपने ढंग की निराली है और श्री वर्माजी की कलाप्रियता का सुन्दर उदाहरण है। श्री वर्माजी और इनके सहयोगी श्री पूनमचन्दजी आर्य महर्षि की जन्मभूमि में टंकारा ट्रस्ट को ऋषि के जीवन की यह चित्रावली सम्पूर्ण सेट प्रदान किया।

श्री हरिश्चन्द्रजी वर्मा परोपकारिणी सभा के १५ वर्षों से सदस्य हैं। पं० श्री गंगाप्रसादजी उपाध्याय ने जब सत्यार्थ प्रकाश का चाइनीज भाषा में अनुवाद कराकर प्रकाशन कराया था उसमें भी श्री हरिश्चन्द्र वर्मा ने अच्छा सहयोग किया था। श्री हरिश्चन्द्रजी वर्मा आर्यसमाज कलकत्ता के क्रियाशील प्रधानों में एक प्रधान रहे हैं।

श्री देवीप्रसादजी मस्करा

श्री देवीप्रादजी मस्करा का जन्म सन् १६१४ ई० में राजस्थान में वैश्य के कुल में हुआ। आरम्भिक जीवन वहीं राजस्थान में बीता। श्री मस्कराजी सन् १६३० ई० में कलकत्ता आर्यसमाज के सम्पर्क में आये। उन दिनों पं० अयोध्या प्रसादजी विदेशयात्रा पर प्रचारार्थ चले गये थे और आर्यसमाज कलकत्ता के आचार्य श्री पं० सुखदेवजी

श्री देवीप्रसादजी मस्करा

विद्यावाचस्पति थे। उनके सम्पर्क में श्री मस्कराजी आर्यसमाज के सिद्धान्तों और कार्यों में अभिरुचि रखने लगे। तभी से श्री मस्करा जी का आर्यसमाज कलकत्ता से अनेक प्रकार से सम्बन्ध रहा है। श्री मस्कराजी आर्यसमाज कलकत्ता से अनेक प्रकार से सम्बन्ध रहा है। श्री मस्कराजी आर्यसमाज कलकत्ता के आर्य सभासद तो हैं ही साथ ही कई बार आर्यसमाज कलकत्ता के प्रधान भी निर्वाचित होते रहे हैं।

सन् १९४० ई० में श्री मस्कराजी अपने व्यावसायिक कार्य से हैदराबाद चले गये और लगभग १० वर्ष वहाँ रहे। वहाँ भी आर्य-समाज के प्रधान के रूप में कार्य करते रहे। हैदराबाद से लौटने पर मस्कराजी को आर्यसमाज कलकत्ता ने ३ वर्षों के लिए अपना प्रधान बनाया। श्री मस्कराजी आर्यसमाज के कई ट्रस्टों के ट्रस्टी हैं। 'आर्य महिला मण्डल ट्रस्ट, आर्य विद्यालय ट्रस्ट के आप ट्रस्टी हैं।

मस्कराजी आर्यसमाज के सभी कार्यों में उदारतापूर्वक भाग लेते रहते हैं। सन् १९५७ ई० में जब हिन्दी-रक्षा-आन्दोलन चल रहा था और कलकत्ता के आर्यसमाजियों ने लगभग एक लाख रुपया उस सत्याग्रह में दिया था, उस समय मस्कराजी ने पांच हजार रुपये की राशि एकमुस्त सहयोग में दी थी। कहते हैं कि सार्वदेशिक पत्र में यह किसी व्यक्ति द्वारा प्रदत्त सत्याग्रह के लिये सबसे बड़ी राशि थी।

श्री मस्कराजी अनाज के थोक व्यवसायी हैं। स्टील का फर्नीचर बनाने का कारखाना भी खोल रखा है। एक सफल व्यवसायी होने के साथ आप एक सफल सामाजिक कार्यकर्ता भी हैं। आपका सम्बन्ध मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी और मारवाड़ी सम्मेलन से भी रहा है। श्री मस्कराजी आध्यात्मिक विषयों पर बोलने-लिखने में बड़ी रुचि लेते हैं। दैनिक यज्ञ, सन्ध्या आपके जीवन के प्रिय कार्य हैं।

श्री कृष्णलालजी खट्टर

श्री कृष्णलालजी खट्टर का जन्म १२ जनवरी सन् १९१५ ई० में भेरा (सरगोधा) पश्चिमी पंजाब में हुआ था। पिताजी कट्टर पौरा-णिक व्यक्ति थे। श्री कृष्णलालजी के शिशु जीवन में पौराणिक कट्टरता पूर्ण रूप से थी। इस प्रकार खट्टरजी अपने स्कूल के दिनों में घोर निष्ठा के पौराणिक थे। घर में तथा मन्दिर में नियमित रूप से मूर्तिपूजा में भी भाग लिया करते थे। श्री खट्टरजी आरम्भ से ही बड़े मेधावी छात्र थे और अपने स्कूल के दिनों में ही उनकी संगठन-

क्षमता उनके नगर में प्रसिद्ध हो गई थी। उन्हीं दिनों में खट्टरजी ने अपने नगर में सनातन धर्म सभा तथा बाल भारत सभा की स्थापना की थी और इन संस्थाओं के आप संस्थापक मन्त्री थे। इस प्रकार खट्टरजी का जीवन सन् १६३२ ई० तक परिवार, नगर और स्कूल में एक श्रद्धा-निष्ठा से परिपूर्ण पौराणिक किशोर का जीवन था।

श्रीकृष्णलालजी खट्टर

उन दिनों डी० ए० वी० कालेज लाहौर की प्रतिष्ठा बहुत अधिक थी। पंजाब के मेधावी छात्र डी० ए० वी० कालेज में पढ़ने में गौरव बोध करते थे। यह कालेज आर्यसमाज का केन्द्र तो था ही राष्ट्रीयता, हिन्दी-भक्ति की भावना सब आर्यसमाज के साथ इस कालेज के वातावरण से जुड़ी हुई थी। खट्टरजी सन् १६३२ ई० से सन् १६३६ ई० तक डी० ए० वी० कालेज लाहौर के सम्पर्क में रहे। यहीं से आपने

बी० ए० पास किया और यहीं आप आर्यसमाज के साथ विशेष सम्पर्क में आये।

कट्टरता और निष्ठा तो खट्टरजी को अपने परिवार से पैतृक रूप में ही मिल गयी थी। जब आर्यसमाजी बने तो एक ही वर्ष में कट्टर आर्यसमाजी भी बन गये। सुधी, बुद्धिमान, निष्ठावान युवक आर्यसमाज के सम्पर्क में आकर अछूतोद्धार और सामाजिक कार्यों में विशेष रुचि लेने लगे। इसी समय आर्यसमाज के प्रसिद्ध मिशनरी अनुसन्धानकर्ता श्री पं० भगवद्दत्तजी से आपका सम्पर्क हुआ। पं० भगवद्दत्तजी के साथ श्री खट्टरजी लाहौर में हिन्दी प्रचार के कार्य में लग गये। पं० भगवद्दत्तजी के साथ महिला विद्यापीठ की सन् १९३६ ई० के स्थापना होने के साथ श्री खट्टरजी ने हिन्दी प्रभाकर तक की श्रेणियों को हिन्दी पढाना आरम्भ किया। सन् १९४४ ई० में खट्टरजी ने बी० टी० की परीक्षा पास की। पं० नरसिंह लाल प्रधानाध्यापक, सनातनधर्म हाई स्कूल, लाहौर तथा गोस्वामी गणेश दत्तजी की प्रेरणा से श्री रघुनाथ सनातन धर्म हाई स्कूल नूरपुर (सरगोधा) के प्रधानाध्यापक बने। अगस्त सन् १९४७ ई० तक श्री खट्टरजी के इसी स्कूल में प्रधानाध्यापक रहने के पीछे श्री खट्टरजी की व्यवस्था सम्बन्धी कुशलता ही कारण थी।

विभाजन के पश्चात् श्री खट्टरजी कलकत्ता आ गये और जून सन् १९४८ ई० में आर्य विद्यालय कलकत्ता के प्रधानाध्यापक नियुक्त हुए। आर्य विद्यालय का पीछे नामकरण रघुमल आर्य विद्यालय हो गया। श्री खट्टरजी ने ११ जनवरी सन् १९८० ई० को इस विद्यालय के प्रधानाध्यापक पद से अवकाश ग्रहण किया।

श्री खट्टरजी की व्यवस्था-कुशलता का मूर्तरूप श्री रघुमल आर्य विद्यालय है। जब श्री खट्टरजी आये तो यह विद्यालय घाटे में चलता था। हर महीने चन्दा करना पड़ता था। विद्यालय आर्यसमाज कलकत्ता के मन्दिर में ही लगता था। श्री खट्टरजी ने सर्वप्रथम

विद्यालय को सरकारी अनुदान के भीतर व्यवस्थित किया, फिर पीछे आर्य विद्यालय ट्रस्ट भी बना जिसके आप ट्रस्टी हैं। श्री खट्टरजी ने आर्य विद्यालय में सुव्यवस्था, अनुशासन, पठन-पाठन का एक अति स्पृहणीय स्तर बना दिया था।

श्री खट्टरजी आर्यसमाजी तो डी० ए० वी० कालेज लाहौर में सन् १६३२ ई० में ही बन गये थे। श्री खट्टरजी अपने को डी० ए० वी० कालेज के साथ जुड़ा हुआ रखने में गौरव वोध करते हैं और यह स्वीकार करते हैं कि डी० ए० वी० कालेज ने उनके जीवन के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

सन् १६४८ ई० में कलकत्ता आने पर श्री खट्टरजी का सम्बन्ध आर्य विद्यालय के साथ प्रधानाध्यापक का बना और साथ ही आप आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्य बने। ऐसे सुयोग्य व्यवस्था-कुशल व्यक्ति को पाकर आर्यसमाज कलकत्ता ने कई बार इन्हें अपना मन्त्री बनाया और खट्टरजी ने बड़ी योग्यता से समाज के कार्यों, कार्यालय की व्यस्थाओं और समाज की विधि-व्यवस्था को सुधारा एवं सँवारा। हिन्दी-रक्षा आन्दोलन के समय आर्यसमाज कलकत्ता ने जो आर्थिक और संगठनात्मक योगदान किया था उसमें खट्टरजी का सहयोग प्रशंसनीय था। श्री खट्टरजी ने अपने मन्त्रित्व काल में यह अनुभव किया कि अपने दानदाताओं और सहयोगियों के पास हर वर्ष में एक बार वार्षिकोत्सव के समय दान लाने के लिए जाते हैं, यह समाज की प्रतिष्ठा की दृष्टि से अच्छा नहीं है। उस समय उनके मन में एक मासिक पत्रिका निकालने की योजना आयी। श्री महाशय रघुनन्दन लालजी ने योजना पसन्द की और श्री खट्टरजी ने मुझ (उमाकान्त उपाध्याय) पर भरोसा करके 'आर्य-संसार' का प्रकाशन आरम्भ कर दिया। जब ठाकुर अमर सिंहजी ने महर्षि दयानन्दजी दातव्य औषधालय की योजना बनायी तो उस समय भी श्री खट्टरजी मन्त्री थे और इस औषधालय के चलाने में उन्होंने पूर्ण सहयोग किया।

खट्टरजी स्पष्टवादी, सिद्धान्तप्रेमी एवं व्यवस्थाकुशल व्यक्ति हैं। आपका जीवन उच्चकोटि के स्वाध्याय एवं आध्यात्मिक साधना का जीवन है। श्री खट्टरजी को देशाटन प्रिय है और जितना ही स्वाध्याय से प्रेम है उतना ही आध्यात्मिक साधना, साधु-सन्तों, योगियों के सम्पर्क का शौक है। विद्यालय से अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् आपके जीवन में स्वाध्याय-साधना का यह योग और अधिक निखर आया है।

श्री लक्ष्मण सिंहजी

श्री लक्ष्मण सिंहजी का जन्म सन् १९२० ई० में गोविन्दपुर, जिला बलिया (उ० प्र०) में एक जमींदार क्षत्रिय परिवार में हुआ। सन् १९३५ ई० तक आरम्भिक शिक्षा गाँव में प्राप्त की फिर कलकत्ता आकर नौकरी करने लगे। सन् १९६३ ई० में सिंह एण्ड सन्स के नाम से अपना स्वतन्त्र व्यवसाय आरम्भ किया जिसे आप सफलतापूर्वक चला रहे हैं। अभी दस-बारह वर्ष की ही अवस्था थी कि श्री लक्ष्मण सिंहजी आर्यसमाज बिलथरा रोड के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुये। वहीं से आपका आर्यसमाज से सम्पर्क हुआ और यह सम्पर्क धीरे-धीरे आर्यसमाज की भक्ति के रूप में परिवर्तित हो गया। सन् १९३९ ई० में आपका विवाह संस्कार श्रीमती विद्यावती देवी के साथ हुआ। श्रीमती विद्यावती देवीजी सात्विक धर्म-परायणा आर्य विचारों की महिला हैं और आर्य महिला समाज कलकत्ता की सभासद हैं। श्रीमती सिंहजी आर्यसमाज के हर

श्री लक्ष्मण सिंहजी

कार्य में श्री लक्ष्मण सिंहजी को सहयोग करती हैं और स्वयं भी यथाशक्ति-यथाभक्ति आर्यसमाज की सेवा में तत्पर रहती हैं।

श्री लक्ष्मण सिंहजी आर्य समाज कलकत्ता के हिसाब परीक्षक, मन्त्री और उप-प्रधान जैसे उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर जिम्मेदारी के साथ कार्य करते रहे हैं। आप रघुमल आर्य विद्यालय के प्राथमिक विभाग के मन्त्री हैं एवं श्री मद्दयानन्द बालिका विद्यालय की प्रबन्धक समिति के सदस्य भी हैं।

श्री लक्ष्मण सिंहजी का ज्येष्ठ पुत्र तो सन् १९७३ ई० में जर्मनी चला गया और वहीं बस गया। द्वितीय पुत्र श्री अशोक कुमार सिंह आर्यसमाज के उत्साही कार्यकर्त्ता, शिक्षित नवयुवक और उप-मन्त्री हैं। श्री सिंहजी ने अपनी पुत्रियों को उच्च शिक्षा दी और परिवार के सभी संस्कार वैदिक मर्यादा के अनुसार कराते रहे। आपने अपने पुत्र के विवाह में दहेज का बहिष्कार किया। आप कलकत्ता आयरन डीलर्स एसोसियेशन के अध्यक्ष भी रहे हैं।

श्री सिंहजी निष्ठावान् कट्टर आर्यसमाजी तो हैं ही, आपने स्वतन्त्रता की लड़ाई में कांग्रेस का साथ दिया। अब कई प्रकार के नीति सम्बन्धी विरोधों के कारण कांग्रेस से पृथक् रहकर भी राष्ट्रीय विचारों के समर्थक हैं और अपने व्यवसाय के साथ ही आर्यसमाज का प्रचार भी करते रहते हैं।

श्री छबीलदासजी सैनी

श्री छबीलदासजी सैनी का जन्म हरियाणा के प्रसिद्ध नगर हिसार में दिनांक २३/८/१९१९ ई० को हुआ था। आप के पिता स्व० चौ० लेखरातजी सैनी वहाँ के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। श्री सैनीजी अपने व्यावसायिक कार्य से कलकत्ता आये और घड़ियों का कारबार आरम्भ किया। इस समय आपका व्यावसायिक कार्य स्थल सैनी वाच कम्पनी १२६, राधा बाजार स्ट्रीट, कलकत्ता-१ है।

श्री छबीलदासजी सैनी सन् १९५२ई० में आर्यसमाज कलकत्ता के सम्पर्क में आये। हरियाणा और उसमें भी हिसार आर्यसमाज का गढ़ है। कट्टर पौराणिक स्थान होने के बावजूद भी हरियाणा के उदार लोगों में आर्यसमाज के लिये बहुत आदरभाव रहा है। श्री सैनीजी आर्य समाज कलकत्ता के सम्पर्क में आकर धीमे-धीमे उत्साही कार्यकर्ता का स्थान प्राप्त करने लगे। आप आर्यसमाज कलकत्ता के प्रधान मन्त्री, उप-प्रधान, उपमन्त्री इत्यादि अनेक दायित्वपूर्ण पदों पर बहुत दिनों से निष्ठापूर्वक कार्य करते चले आ रहे हैं।

श्री छबीलदासजी सैनी
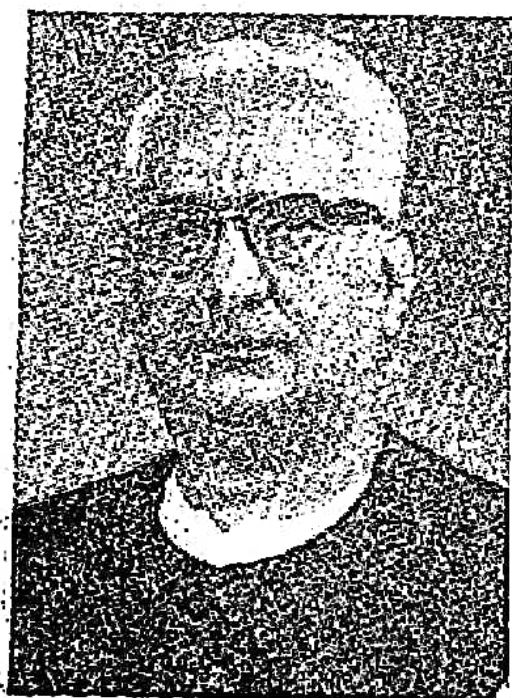
श्री सैनीजी अपने मन्त्रित्व काल में आर्यसमाज मन्दिर की साज-सज्जा, स्वच्छता-सफाई को मन्दिर के अनुरूप बनाने में पूरा योग दान किया था। यज्ञशालाके आसपास और सामनेकी भूमि को सुधारने-संवारने में सैनीजी का अच्छा कृतित्व था। सैनीजी के मन्त्रित्व काल की महत्त्वपूर्ण घटनाओं में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है हरिनघाटा सरकारी दुग्धकेन्द्र की गायों को कसाइयों के हाथों से छुड़वाकर खरीदना और उन्हें गोशालाओं में व्यवस्थापित करना। श्री सैनीजी ने अपने प्रभाव से और अपने साथियों के सहयोग से यह लाखों रुपये का कार्य करके आर्यसमाज की प्रतिष्ठा को गो-भक्तों के हृदय में बहुत बढ़ा दिया। श्री सैनीजी जब से अधिकारियों की श्रेणी में आये हैं, आर्यसमाज के हर कार्य में आगे रहते हैं। प्रचार हो या सहायता, सैनीजी पूरी तन्मयता से जुट जाते हैं। आर्यसमाज कलकत्ता के

वार्षिकोत्सव का नगर-कीर्तन सैनीजी की देख-रेख में अपनी सजधज से निकलता है। आर्यसमाज कलकत्ता के लिये श्री सैनीजी एक स्थायी व्यवस्थापक हैं। सैनीजी का जीवन आर्यसमाज के लिए समर्पित है।

श्री सुखदेवजी शर्मा

श्री सुखदेवजी शर्मा का जन्म अमृतसर में २५ जनवरी सन् १६२१ ई० को हुआ था। पिताजी पं० श्री शंकरदासजी शर्मा और माताजी श्रीमती सुभद्रा देवी शर्मा दोनों ही आर्य विचारों के निष्ठावान् ऋषि भक्त थे। माताजी श्री शर्माजी को ६ वर्ष की अल्पायु में छोड़ कर दिवंगत हो गयीं। पिताजी ने ही इस शिशु का पालन-पोषण किया। श्री शर्माजी का परिवार तो आर्यसमाजी था ही, इनकी शिक्षा भी डी० ए० वी० स्कूल और डी० ए० वी० कालेज में ही हुई। पिताजी व्यवसाय के सिलसिले में सपरिवार लाहौर आकर बस गये थे। शर्माजी के अग्रज श्री पं० सत्यदेवजी और मझली बहन गुरुकुल में उत्सवों पर जाते थे। श्री शर्माजीका सारा परिवार ऋषि-जन्म-शताब्दी, मथुरा में सम्मिलित हुआ था। इस प्रकार श्री सुखदेवजी को घर और बाहर सर्वत्र आर्यसमाज का ही वातावरण मिला।

श्री सुखदेवजी शर्मा

सन् १६४६ ई० में शर्माजी के पिताजी का देहान्त हो गया और सन् १६४७ई० में देश का विभाजन हुआ। लाहौर उस विभाजनकी आग में जलने लगा, विशेष कर हिन्दू अपना उपार्जित धन, व्यवसाय, मकान, जमीन सब छोड़कर अकिं-

चनों की तरह परिवार लेकर भारत को भागे थे। श्री शर्माजी भी आग, छुरे, और भयानक विपत्तियों को झेलकर किसी तरह अपने परिवार वालों को लेकर दिल्ली आ गये। व्यवसाय तो लाहौर में ही उखड़ गया था, अब दिल्लीमें फिर से योजना बनी। सन् १९४६ ई० में शर्माजी का श्रीमती सुनीति देवी वर्मा से विवाह हुआ और पति-पत्नी कलकत्ता आ गये। श्रीमती सुनीति देवी श्रद्धालु, निष्ठावान्, कर्मठ आर्य पिता की पुत्री थीं। अतः शर्मा दम्पती का आर्यसामाजिक स्नेह स्वाभाविक ही बहुत अधिक था। कलकत्ता आने पर जहाँ इन्होंने अपना व्यवसाय जमाया, वहीं ये आर्यसमाज की टोह में भी रहे। सन् १९५५ ई० में पति-पत्नी दोनों ही आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्य बन गये। श्री शर्माजी जन्म से ही आर्यसमाजी हैं और कलकत्ता आर्यसमाज का सदस्य बनने के पश्चात् थोड़े ही दिनों में यहाँ के कार्यों में पूर्णरूप से भाग लेने लगे। अन्तरंग के सदस्य बनने में तो देर ही क्या लगती थी, शर्माजी शीघ्र ही उपमन्त्री, मन्त्री, उपप्रधान और प्रधान सभी महत्त्वपूर्ण पदों पर निर्वाचित होते रहे हैं और पूरी निष्ठा, श्रद्धा और दायित्व की भावना से अपने उत्तरदायित्व को अच्छी तरह निभाते रहे हैं। श्री शर्माजी आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली के भी सदस्य रह चुके हैं।

श्री सुखदेवजी शर्मा आर्यसमाज के अतिरिक्त आर्यसमाज द्वारा संचालित विद्यालयों में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते आ रहे हैं। श्री शर्माजी रघुमल आर्य विद्यालय की प्रबन्धक समिति के सदस्य हैं और आर्य कन्या महाविद्यालय की प्रबन्धक समिति के मन्त्री हैं। शर्माजी ने अपने मन्त्रित्व काल में सन् १९७८ ई० में कन्या महाविद्यालय की हीरक-जयन्ती बड़ी धूम-धाम से मनायी थी। श्री शर्मा दम्पती सन् १९५६ ई० से ही गुरुकुल, पानपोस से सम्बन्धित हैं और श्री सुखदेवजी इस समय वहाँ की प्रबन्धक समिति के सदस्य हैं।

श्री सुखदेवजी कुशल व्यवसायी और व्यवस्थापक हैं। आप अखिल भारतीय पूर्वी बाल बेयरिंग ऐसोसियेशन के मन्त्री और प्रधान रह चुके हैं और फेडरेशन आफ इण्डियन चैम्बर आफ कामर्स ऐण्ड इण्डस्ट्रीज के प्रतिनिधि रहे हैं। आप लायन्स क्लब के सदस्य तथा मन्त्री रहे हैं और बंगला देश के शरणार्थियों की सेवा में सपत्नीक भाग लेते रहे हैं।

शर्माजी का परिवार वैदिक आदर्शों का है। सभी बच्चे वैदिक विचारों के हैं। शर्माजी का परिवार सब प्रकार की पौराणिक रूढ़ियों से ऊपर उठकर वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में लगा रहता है। शर्माजी के ज्येष्ठ पुत्र श्री पीयूष शर्मा बंगलौर में आर्यसमाज के संगठन के साथ सहयोग करते हुए अपने स्वतन्त्र व्यवसाय में लगे हुए हैं। शर्मा दम्पती आर्यसमाज और वैदिक धर्म के निष्ठावान् सिपाही मनसा-वाचा-कर्मणा वैदिक धर्म के प्रचारक तथा आर्यसमाज के भक्त हैं।

श्रीमती सुनीतिदेवी शर्मा

श्रीमती सुनीति देवी का जन्म २८ जून सन् १९३१ ई० को हनुमान रोड, नई दिल्ली में हुआ था। पिताजी श्री पं० शालिग्राम शर्मा और माताजी श्रीमती शान्ती देवी शर्मा थीं। सुनीतिजी का सारा परिवार कट्टर आर्यसमाजी निष्ठा का था और इनके जन्म के समय पिता जी हनुमान रोड आर्यसमाज के मन्त्री थे। श्रीशालिग्रामजी शर्मा रेलवे के आफिसर थे। जहाँ जाते थे वहीं आर्यसमाज की स्थापना करते थे। आर्यसमाज पहाड़गंज, दिल्ली की भी स्थापना श्री शर्माजी ने की थी। इस प्रकार श्रीमती सुनीतिजी जन्म से ही आर्यसमाजी हैं। शिक्षा का आरम्भ आर्य कन्या पाठशाला से हुआ था और शैशव से ही माताजी के साथ सत्संगों में जातीं और भजन बोला करती थीं। शिशु सुनीति के भजन भी बड़े प्यार से सुने जाते थे। घर का सारा

वातावरण आर्यसमाज के रंग में रंगा हुआ था। पिताजी रेलवे आफिसर के रूप में अच्छे स्तर से रहते थे आर्यसमाज में आने वाले उपदेशकों का आतिथ्य घर पर हुआ करता था। सुनीतिजी ने बड़ी श्रद्धा से यह संस्मरण लिखा है कि हैदराबाद सत्याग्रह के लिए परम पूज्य वीतराग संन्यासी श्री नारायण स्वामीजी गये थे तो उस समय प्रस्थान से पूर्व वे इन्हींके घर पर टिके हुए थे और यहीं से उन्हें विदाई दी गई थी। सुनीतिजी को हिन्दी, संस्कृत और संगीत से आरम्भ से ही बड़ा स्नेह रहा है। घर में यज्ञ, सत्संग का वातावरण रहता था। एक समय श्री लोकनाथजी तर्कवाचस्पति और उनकी पत्नी भी इनके मकान पर आकर रहने लगे थे और यह सारा वातावरण आर्यसमाजमय हो रहा था।

पिताजी कट्टर आर्यसमाजी तो थे ही, उन्होंने अपने दोनों पुत्रों का यज्ञोपवीत कराया था अपनी पुत्रियों का भी यज्ञोपवीत कराया था। ११ वर्ष की आयु में श्रावणी उपाकर्म के दिन सुनीतिजी का यज्ञोपवीत हुआ था। आपका विवाह श्री सुखदेवजी शर्मा के साथ आर्यसमाजी परिवार में हुआ और यह शर्मा दम्पती हर प्रकार की पौराणिक कट्टरताओं को दूर करके आर्यसमाज के काम में लगे रहते हैं। शर्मा दम्पती ने अपने विवाह की रजत-जयन्ती पर यजुर्वेद पारायण यज्ञ भी किया था। शर्मा दम्पती सन् १९५५ ई० में आर्यसमाज के सदस्य बने और आर्यसमाज के हर छोटे बड़े कार्य में पूर्ण रूप से सहयोग करते रहे। श्रीमती सुनीति देवी शर्मा आर्यसमाज कलकत्ता के मासिक मुखपत्र 'आर्य-संसार' की सह-सम्पादिका हैं। श्रीमती सुनीति देवी शर्मा बड़ी कुशल और सक्षम गायिका हैं। इनका स्वर और संगीत प्रभुप्रदत्त है। जिस समय गाने बैठ जाती हैं श्रोता इनकी संगीत लहरी में हिलोरें लेने लगते हैं। आर्यसमाज कलकत्ता ने इनकी संगीत साधना पर इनका सम्मान किया है और इन्हें 'संगीत भारती' की उपाधि से विभूषित किया है। एक आर्य गायिका के रूप में

सुनीतिजी की ख्याति अन्तर्राष्ट्रीय है। आपने अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन, नैरोबी में सन् १९७८ ई० में एक गायिका के रूप में बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की। उस ख्याति के फलस्वरूप सारे भारतवर्ष में आपके संगीत की प्रसिद्धि हुई। आर्यसमाज शान्ताक्रुज, बम्बई और अन्य आर्यसमाजों ने भी आपकी संगीत-कला का सम्मान किया है।

पिछले कुछ दिनों से श्रीमती सुनीति देवीजी कविताएँ लिखती रही हैं और उनकी कविताओं का संग्रह 'एक गुच्छा फूलों का' नाम से प्रकाशित हुआ है। इधर कुछ दिनों से सुनीतिजी केवल गायिका ही नहीं, अपितु एक आर्य उपदेशिका के रूप में प्रचार, पौरोहित्य, व्याख्यान आदि में बड़ी सफलता से रुचि लेने लगी हैं। इस दृष्टि से आर्यसमाज मध्य कलकत्ता आपका मुख्यकार्य क्षेत्र है॥

श्रीमती सुनीतिदेवी शर्मा

श्रीमती सुनीतिजी सुप्रसिद्ध गायिका तो हैं ही, इनके इस गुण से लाभ उठाने के लिए आर्यसमाज कलकत्ता ने अपने शताब्दी प्रोग्राम के भीतर एक संगीत कैसेट बनाने का निश्चय किया। १३ गीतों का वाद्य-संगीतमय सुललित सुन्दर कैसेट के गीतों को श्रीमती सुनीतिजी ने निरन्तर गाकर अपना एक रिकार्ड स्वयं ही स्थापित कर दिया। यह कैसेट आर्यसमाज कलकत्ता से उपलब्ध किया जा सकता है।

सुनीतिजी ने विदेश यात्राओं में टोरन्टो, कनाडा आदि में भी अपने संगीत प्रस्तुत किये हैं। आर्यसमाज कलकत्ता ने इन्हें संगीत शिरोमणि की उपाधि से विभूषित किया है। श्रीमती सुनीतिजी ने लायन्स

क्लब, पंजाब लेडीज कल्चरल आर्गेनाइजेशन तथा अन्य बहुत सारी सांस्कृतिक संस्थाओं में अपनी प्रतिष्ठा से ख्याति प्राप्त की है। श्रीमती सुनीतिजी वेदमन्त्रों का गान भी बहुत सुन्दर रीति से करती हैं। आपने कई वेद-मन्त्रों को संगीतबद्ध किया है। श्रीमती शर्मा कलकत्ता आर्यसमाज की श्रद्धालु विदुषी कार्यकर्त्री महिला हैं।

श्री प्यारेलालजी मनचन्दा

श्री प्यारेलालजी मनचन्दा का जन्म ७ दिसम्बर सन् १६१६ ई० को कूचा लाचीदाना, लाहौर में हुआ था। आपके पिताजी स्वर्गीय लाला बैजनाथजी अरोड़ा और माता स्व० बीरावाली थीं। मनचन्दा जी के माता-पिता दोनों ही लाहौर के प्रसिद्ध आर्यसमाज बच्छोवाली से सम्बन्धित थे। प्यारेलालजी भी डी० ए० वी० स्कूल के विद्यार्थी थे और आर्यसमाज बच्छोवाली, लाहौर में सक्रिय भाग लिया करते थे। प्रारम्भ में बच्छोवाली आर्यसमाज के ही सदस्य बने।

देश के विभाजन के पश्चात् लाला बैजनाथजी और उनका सम्पूर्ण परिवार कलकत्ता आ गया और प्यारेलालजी ने भी कलकत्ता में व्यवसाय कार्य आरम्भ किया। आरम्भ में छोटा-मोटा मौसमी व्यवसाय किया किन्तु अब स्टेनलेस स्टील का बड़ा अच्छा व्यवसाय चल रहा है।

प्यारेलालजी अपने पिताजी के साथ कलकलत्ता आ गये और प्रसिद्ध व्यावसायिक अंचल बड़ाबाजार में हरिसन रोड पर एक दूकान भी कर ली, किन्तु यह पता न था कि यहाँ आर्यसमाज कहाँ है। जो व्यक्ति पाकिस्तान बनने से पूर्व बच्छोवाली आर्यसमाज का कार्यकर्त्ता और गुरुदत्त भवन, लाहौर में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का सदस्य था, वह उखड़ कर कलकत्ता में आ बसा और इतने बड़े नगर में आर्यसमाज के सम्पर्क से भी वञ्चित हो गया।

प्यारेलालजी एक दिन शाम को अपनी दूकान पर बैठे थे कि

दूकान के सामने से आर्य प्रतिनिधि सभा का जुलूस हरिसन रोड से जा रहा था, उसमें उन्होंने लाहौर के प्रसिद्ध संन्यासी स्वामी वेदानन्दजी को देखा। उन्हें अपने घर लिवा ले गये और स्वामी वेदानन्दजी ने इन्हें आर्यसमाज का सदस्य बनाया। इनकी माताजी आर्य स्त्रीसमाज कलकत्ता की प्रधाना भी थीं और प्यारेलालजी भी

श्री प्यारेलालजी मनचन्दा

आर्यसमाज कलकत्ता के सभासद एवं अधिकारी, उप-मन्त्री, उप-प्रधान आदि रह चुके हैं। प्यारेलालजी अपने यौवन-काल में आर्यसमाज कलकत्ता के यज्ञ और ऋषिलंगर के कार्य को बड़े उत्साह और बड़ी तन्मयता से किया करते थे। आर्यसमाज के प्रति वह प्यार और भक्ति तो अभी भी है, किन्तु शरीर में वह शक्ति नहीं रह गयी है, फिर भी

आर्यसमाज और ऋषि के प्रति भक्ति-भावना, परिवार में दैनिक यज्ञ, रविवारीय सत्संग सब कुछ यथापूर्व ही चलता रहता है।

श्री सीतारामजी आर्य

श्री सीतारामजी आर्य का जन्म सम्वत् १९७६ विक्रमी दीपावली को ग्राम फूलपुर, जिला फैजाबाद (उ० प्र०) में हुआ था। पिताजी श्री रामनारायण जायसवाल और माताजी श्रीमती सुन्दरी देवी जायसवाल हैं। श्री सीतारामजी ने एक साधारण स्वल्प साधनसम्पन्न वैश्य परिवार में जन्म लिया। प्रारम्भिक शिक्षा वहीं जन्मभूमि में हुई। आर्थिक आढ्यता न होने पर भी आर्यजी के परिवार में सच्चरित्रता, ईमानदारी और तपस्या थी। यह सब गुण श्रीसीतारामजी को पिता से दायभाग में मिला था। तुक की बात थी कि अपने गाँव फूलपुर से टांडा दैनिक नंगे पाँव-पैदल दस मील की यात्रा करके पढ़ाई करनी पड़ी थी और वहीं श्री आर्यजी के ऊपर आर्यसमाज की छाप पड़ी। परिवार में सच्चरित्रता, ईमानदारी तो थी, किन्तु मांस इत्यादि भी चलता था। श्री सीतारामजी ने अपने जीवन में परिवर्तन किया और आर्यसमाज के संस्कार में उस छोटी-सी आयु में ही मांस इत्यादि स्वयं ने तो त्याग किया ही, साथ ही सारे परिवार के जीवन को आर्य मर्यादा के अनुकूल पवित्र बना डाला।

१५-१६ वर्ष की आयु में आर्थिक परिस्थितियों के कारण श्री सीतारामजी ने कलकत्ता में आकर नौकरी कर ली और उस समय इनका सम्पर्क आर्यसमाज मल्लिक बाजार से हुआ। महाशय श्री जगमोहनजी की प्रेरणा से सीतारामजी का आर्यसमाज से सम्पर्क बढ़ने लगा और मन के शुभ संस्कारों ने जोर मारा तो आदरणीय पं० शिवनन्दन प्रसादजी से यज्ञोपवीत ग्रहण किया। यह सन् १९४४ ई० के आसपास की बात है। यज्ञोपवीत संस्कार से दैनिक सन्ध्या वन्दन और आर्यसमाज से सन्निकटता बढ़ने लगी। यज्ञोपवीत लेने

के पश्चात् संयोगवश सीतारामजी किसी भयंकर बीमारी के शिकार हो गये। पौराणिक पण्डितों ने इसे यज्ञोपवीत ग्रहण करने का कुफल बताया। सीतारामजी के माता-पिता यज्ञोपवीत उतरवाने का हठ करने लगे, किन्तु सीतारामजी ने सुस्पष्ट कह दिया कि यज्ञोपवीत तो इस जीवन के साथ ही जायेगा। यह एक पारिवारिक एवं सामाजिक परीक्षा थी। उसमें उत्तीर्ण होकर सीतारामजी जीवन की हर परीक्षा में उत्तीर्ण होते जा रहे हैं।

श्री सीतारामजी आर्य

कुछ दिन बाद अपने स्वल्प साधनों को लेकर श्री सीतारामजी ने अपना स्वतन्त्र व्यवसाय आरम्भ किया। प्रभु कृपा से आपके सभी भाई और बच्चे आपके अनुशासन में रहते हुए कारबार आगे बढ़ाने लगे और लक्ष्मी की अद्भुत कृपा हुई। आज कलकत्ता, दिल्ली, टाण्डा, पानागढ़ कई जगहों से आपका मोटर पार्ट्स, ट्रकों, ट्रैक्टरों आदि का व्यवसाय बहुत अच्छी तरह चल रहा है।

अपना स्वतन्त्र व्यवसाय कर लेने के पश्चात् सीतारामजी आर्य-समाज कलकत्ता के सदस्य बने। इनके भाई लोग भी आर्यसमाज कल-कत्ता के ही सदस्य बने। धीरे-धीरे समाज से सम्पर्क बढ़ने लगा और सीतारामजी का सरल-सादा जीवन समाज में आना, यथाशक्ति सेवा करना, पीछे बैठकर साधारण श्रोताओं की तरह व्याख्यान सुनना और न कोई अधिकार की लिप्सा, न कोई नाम की आकांक्षा, यह सब सीता-रामजीमें सहज सुलभ था। ऐसे सरल, सीधे, साधनसम्पन्न व्यक्ति पर

समाज के कर्णधारों की निगाह पड़नी थी और एक समय जब ऐसा आया कि आर्यसमाज कलकत्ता भाषा, प्रान्तीयता और जातीयता के संघर्ष के कगार पर खड़ा हो गया तो निस्पृह सीतारामजी पर सबकी निगाह टिकी और उन्हें समाज का प्रधान बना दिया गया और सारे विरोध की लपटें स्वतः शान्त हो गयीं। इस समय सीतारामजी आर्यसमाज कलकत्ता के प्रमुख कार्यकर्ता हैं। स्वयं दान देते हैं, दूसरों से दिलवाते हैं, समाज की व्यवस्था संगठन को पूरी सतर्कता और उत्तरदायित्व से पूर्ण करते हैं। इस समय आप आर्य कन्या महाविद्यालय की प्रबन्ध-समिति, आर्य महिला-मण्डल-ट्रस्ट, रघुमल आर्य विद्यालय ट्रस्ट आदि ट्रस्टों के सदस्य एवं पदाधिकारी हैं। आपने स्वामी श्रद्धानन्दजी द्वारा संचालित गुरुकुल, पानपोस की व्यवस्था को भी सुचारु रूप दिया है और आप उसके भी प्रधान हैं।

श्री सीतारामजी के आर्थिक साधन जब अधिक नहीं थे तब भी आप अपने उपार्जन का एक निश्चित प्रतिशतक दान के लिये निकालते थे, वह धनराशि जब पर्याप्त हो गयी तब आपने अपने ग्राम फूलपुर में अपने पिताजी की स्मृति में एक हाई स्कूल का निर्माण कराया जिसके आप संचालक हैं। श्री सीतारामजी का जीवन जितना व्यक्तिगत है उतना ही सार्वजनिक भी है। आपने अपने जीवन में धन के विलास को स्थान नहीं लेने दिया है। सादा जीवन, ऊँचे आदर्श, आर्यसमाज और वैदिक धर्म की सेवा, ऋषि की भक्ति, इत्यादि सीतारामजी के जीवन के अभिन्न अंग हैं। इन्हीं गुणों से प्रेरित होकर आर्यसमाज कलकत्ता ने अपने शताब्दी वर्ष में इन्हें प्रधान बनाया है।

श्री पूनमचन्दजी आर्य

श्री पूनमचन्दजी का जन्म भिवानी हरियाणा में ता० २१ जुलाई सन् १६२१ ई० को हुआ था। भिवानी हरियाणा की काशी कहलाता

और यहाँ आर्यसमाज का भी अच्छा सम्पर्क है। श्री पूनमचन्दजी अपने शैशव से ही सुधारवादी प्रकृति के थे। सन् १९३८ई० में १७ वर्ष की किशोरावस्था में आपका आर्यसमाज से सम्बन्ध हुआ। ८ वर्ष की शिशु अवस्था में ही जुआ आदि सामाजिक बुराइयों के प्रति बालक पूनमचन्दजी ने पिकेटिंग की थी।

श्री पूनमचन्दजी सन् १९४० ई० से आर्यसमाज कलकत्ता के सम्पर्क में आये और आरम्भ से ही एक सक्रिय लगनशील कार्यकर्ता के रूप में रहे हैं। आर्यसमाज कलकत्ता के अन्तरंग सदस्य तो आप प्रायः सदा ही रहे हैं किन्तु कई बार आर्यसमाज कलकत्ता के मन्त्री एवं प्रधान भी निर्वाचित हुए हैं। पूनमचन्दजीकी एक विशेषता यह है कि ये पदाधिकारी रहें या न रहें, आर्यसमाज का कार्य उतनी ही निष्ठा और लगन से करते हैं जैसा कोई पदाधिकारी बननेपर करता है।

श्री पूनमचन्दजी आर्य

श्री पूनमचन्दजी आर्यसमाज कलकत्ता के सभी कार्यों में अपने समय के अग्रगण्य कार्यकर्ता हैं। आर्यसमाज कलकत्ता ने जब भी और जहाँ कहीं भी रिलीफ का काम आरम्भ किया, पूनमचन्दजी अपनी पूरी लगन से वहाँ के सेवाकार्य में जुट गये। आर्यसमाज कलकत्ता के मन्दिर का जब नवीनीकरण हुआ और सन् १९६५ ई० में गैलरी में भित्तिचित्रों पर चित्रावली का निर्माण हुआ, उस समय पूनमचन्दजी सारी योजना के प्राण बनकर कार्य कर रहे थे। रातोदिन जुटकर

पूरी तन्मयता से काम कराना, यह श्री हरिश्चन्द वर्मा और श्री पूनमचन्द आर्य का ही कार्य था। जब आर्यसमाज कलकत्ता ने गोरक्षा का आन्दोलन प्रारम्भ किया तो पूनमचन्दजी उसमें भी सर्वात्मना जुट गये। वस्तुतःकोई भी मंत्री हो, कोई भी प्रधान हो या कोई भी कोषाध्यक्ष हो, आर्यसमाज के हर काम में तत्पर रहना पूनमचन्दजी का स्वभाव बन गया है और ये हर समय बिना किसी निर्वाचन के भी आर्यसमाज कलकत्ता के वस्तुतः अर्थ-संयोजक हैं। आर्यसमाज के लिए दान लाना, चन्दा इकट्ठा करना, साधनों को इकट्ठा करना पूनमचन्दजी की विशेषता है।

पूनमचन्दजी की सहधर्मिणी पत्नी स्व० मेवादेवी आर्यसमाज के कार्योंमें पूनमचन्दजीका सहयोग करती रहती थीं। महीनों-महीने बाहर से आने वाले विद्वानों को अपने घर पर भोजन कराना, अमावस्या, पूर्णमासी का पक्षेष्टि दैनिक यज्ञों के साथ सब कुछ धार्मिक अनुष्ठान चलाते रहना, मेवादेवीजी जैसी सहधर्मिणी के रहते ही सम्भव हो सका था। वे महिलाओं के संगठन में पूरा योगदान करती थीं और हर कार्य में पूनमचन्दजी को सहयोग प्रोत्साहन देती रहती थीं।

श्री पूनमचन्दजी लोहे के थोक व्यवसायी हैं। आपके सुपुत्र लोग कलकत्ता के अतिरिक्त भावनगर और बम्बई से व्यवसाय करते हैं। पूनमचन्दजी का व्यवसायी जीवन तो अब गौण हो गया है। अब तो ये पूर्ण रूप से समाजसेवी बन गये हैं।

पूनमचन्दजी का कार्यक्षेत्र केवल कलकत्ता ही नहीं है। आपकी प्रतिष्ठा अधिकारी और कार्यकर्ता के रूप में भारतीय स्तर पर स्वीकारी जाती है। आप परोपकारिणी सभा के सदस्य तो रहे ही हैं, अब उपप्रधान के रूप में निर्वाचित हैं। आपकी अर्थ-संयोजन-क्षमता को देखकर परोपकारिणी सभा ने ऐतिहासिक ऋषि-निर्वाण-शताब्दी के महत्त्वपूर्ण आयोजन के अवसर पर श्री पूनमचन्दजी को अपनी अर्थ-उप-

समिति का संयोजक बनाया था और पूनमचन्दजी ने भी कई महीने घरबार को भुलाकर इस कार्य को इतनी सुन्दरता से सम्पन्न किया जो किसी भी सार्वजनिक कार्यकर्ता के लिए स्पृहणीय हो सकता है। वस्तुतः, ऋषि-निर्वाण-शताब्दी में पूनमचन्दजी का बड़ा भारी योगदान था।

श्री पूनमचन्दजी इस शताब्दी वर्ष में आर्यसमाज के मंत्री निर्वाचित हुए हैं और एक समर्पित जीवन कार्यकर्ता के रूप में आर्यसमाज कलकत्ता की सेवा में अहर्निश लगे रहते हैं।

श्री श्रीरामजी खट्टर

श्री श्रीरामजी खट्टर का जन्म पश्चिमी पंजाब के सरगोधा जिले में भेरा नामक स्थान पर सन् १९१८ ई० में हुआ था। ये श्री कृष्णलालजी खट्टर के अनुज हैं। श्री श्रीरामजी अपने बड़े भाई के प्रभाव से आर्य-समाज के क्षेत्र में आये। श्री श्रीरामजी स्वभाव से उदार और सामाजिक कार्यों में रुचि लेने वाले व्यक्ति हैं। जब हैदराबाद सत्याग्रह चालू हुआ तब श्री श्रीरामजी ने उसमें बड़ा सक्रिय योगदान किया। पंजाब के वरिष्ठ नेता महाशय कृष्णजी के साथ जब एक बहुत बड़ा जत्था हैदराबाद सत्याग्रह के लिए गया था तो उसमें श्री श्रीरामजी खट्टर सम्मिलित होकर जेल गये थे।

श्री श्रीरामजी आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब के सदस्य थे एवं आपने आर्यसमाज सन्तनगर (कालेज विभाग) की स्थापना में अग्रगन्ता के रूप में कार्य किया था।

श्री श्रीरामजी सन १९४२ ई० में व्यापार के सिलसिले में कलकत्ता आ गये और यहां आपका सम्पर्क आर्यसमाज कलकत्ता से हुआ। श्री श्रीरामजी उत्साही और उदार कार्यकर्ता तो हैं ही, ऐसे कुशल उत्साही युवक कार्यकर्ता को पाकर आर्यसमाज कलकत्ता के उस समय

के कार्यकर्त्ताओं ने उन्हें सर्वात्मना अपने सहयोग में ले लिया। इस प्रकार श्री श्रीरामजी आर्यसमाज कलकत्ता के प्रत्येक कार्य में अभिन्न सहयोगी की तरह रहने लगे। आप अपने कलकत्ता प्रवास के समय आर्यसमाज कलकत्ता के मन्त्री तो रहे ही, साथ ही अन्य पदों पर भी अनेक वर्षों तक कार्य करते रहे।

श्री श्रीरामजी खट्टर

श्री श्रीरामजी इस समय मद्रास में मोटर पार्ट्स तथा फाइनैन्स का कार्य कर रहे हैं। सन् १९६० ई० में आप स्थायी रूप से मद्रास में जाकर बस गये। वहाँ आर्यसमाज मद्रास, डी० ए० वी० हायर सेकेन्ड्री स्कूल, पंजाबी सभा आदि में श्री श्रीरामजी का सक्रिय सहयोग रहता है। वहाँ भी आप आर्यसमाज के हर काम में सहयोगी बने रहते हैं। मद्रास में भी आपने विभिन्न पदों पर आर्यसमाज की सेवा की है।

श्री किशोरीलालजी दवे

श्री किशोरीलालजी का जन्म मार्गशीर्ष कृष्ण २ विक्रम सम्वत् १६८१ तदनुसार दिनांक २६-१२-१६२५ ई० को बांसवाड़ा (राजस्थान) में हुआ। आप गुजराती नागर ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुये। और स्वभावतः परिवार की कट्टर निष्ठावान पौराणिक परम्परा विरासत में प्राप्त हुई। श्री किशोरी लालजी धार्मिक अभिरुचि के व्यक्ति हैं और आध्यात्मिक कार्यों में विशेष रुचि रखते हैं।

श्री दवेजी का आर्यसमाज से परिचय सन् १६५५ ई० में आर्यसमाजके बालक सत्संग के पुरोगम के माध्यम से हुआ। आर्यसमाज कलकत्ता बालकों में धार्मिक भाव जगाने की दृष्टि से प्रति रविवार को प्रातःकाल बाल सत्संग का आयोजन करता है। श्री दवेजी को इस बाल सत्संग से बड़ी प्रेरणा मिली और ये आर्यसमाज के सम्पर्क में आये। आर्यसमाज से सम्पर्क होने पर श्रीदवेजी कट्टर निष्ठावान वैदिक विचारों के आर्य सभासद बन गये। आपकी लगन और कार्य-कुशलता से प्रभावित होकर आर्यसमाज कलकत्ता ने श्री दवेजी को सन् १६६० ई० में अपना कोषाध्यक्ष बनाया। श्री दवेजी अनेकों बार आर्यसमाज कलकत्ता के अन्तरंग सभा के सदस्य रहे हैं। प्रचार उप-समिति के भी आप सदस्य हैं।

श्री किशोरीलालजी दवे

श्री किशोरी लालजी को वैदिक साहित्य पढ़ने का शौक है और अपने साधनों से वैदिक साहित्य खरीदना और उनका वितरण करना

आपकी अभिरुचि है। इस प्रकार दवेजी का जीवन स्वाध्याय एवं साहित्य का जीवन है। आप और आपकी पत्नी श्रीमती दवे को भजन गाने का भी अच्छा शौक है और इस प्रकार दवेजी की जोड़ी आर्य-समाज के कामों में सदा तत्पर रहती है।

श्री किशोरी लालजी आजीविका के रूप में बैंक की सेवा में नियुक्त हैं। इस प्रकार आजीविका से निश्चिन्त होकर भी किशोरी लालजी अपने अवकाश के समय में वैदिक धर्म का प्रचार सार्वजनिक जीवन में चारित्रिक उत्थान की भावना को सदा प्रोत्साहन देते रहते हैं और वैदिक धर्म के प्रचार में दत्तचित्त रहते हैं।

श्रीमती लोचनमणि दवे

श्रीमती लोचनमणि दवे

श्रीमती लोचन मणि दवे गुजराती नागर ब्राह्मण परिवार, बांसवाड़ा, राजस्थानमें चैत्र शुक्ल विक्रम संवत् १९४४ दिनांक ५-४-१९२७ ई० को उत्पन्न हुई। आपका विवाह श्री किशोरीलाल-जी दवे के साथ सम्पन्न हुआ।

श्रीमती लोचनमणि दवे अपने पति श्री किशोरीलाल दवे के साथ पूरी निष्ठा और श्रद्धा के साथ आर्यसमाज की सेवामें लगी रहती हैं। अपने पतिदेव के साथ सन् १९५५ ई० से ही आप आर्यसमाज कलकत्ता के सम्पर्क में हैं। श्रीमती दवे आर्यसमाज के प्रत्येक कार्य में सेवाभावना से कार्यरत रहती हैं। विशेष रूप से आपका कार्यक्षेत्र आर्य महिला-समाज कलकत्ता की सेवा करना है। श्रीमती दवे को भजन बहुत प्रिय हैं। आपको वैसा ही मधुर स्वर और सुरीला कण्ठ भी

मिला है। श्रीमती दवे अपने भजनों के माध्यम से आर्यसमाज और वैदिक धर्म के प्रचार में सचेष्ट रहती हैं। आपका कार्यक्षेत्र घर-गृहस्थी है और उसे आप आदर्श वैदिक परिवार के रूप में रखती हैं जो दूसरे गृहस्थियों के लिये भी प्रेरणा-स्रोत है। जहाँ कहीं पारिवारिक सम्मेलन होते हैं, अपने भजनों और वार्ताओं के माध्यम से आप सदा आर्य-समाज के प्रचार में लगी रहती हैं। आपने अपने बच्चों को वैदिक धर्म की प्रेरणा से ओतप्रोत कर रखा है और यथाशक्ति साधन-सुविधा के अनुकूल वेद-धर्म के प्रचार में निरन्तर लगी रहती हैं।

श्री जगदीश तिवारीजी

श्री जगदीश तिवारीजी का जन्म ग्राम धमवलि, जिला भोज-पुर (बिहार) में दिनांक २० अगस्त, सन् १९१९ ई० को हुआ था। तिवारीजी की प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में ही हुई थी। ये सन् १९३९ ई० में कलकत्ता आ गये। ये कट्टर पौराणिक परिवार के थे। मूर्ति-पूजा आदि करते थे किन्तु मन में यह सन्देह था कि ये राम और कृष्ण इत्यादि परमेश्वर कैसे हो सकते हैं। एक दिन इनके मित्र इन्हें आर्यसमाज बड़ाबाजार, ९४, चितपुर रोड में ले गये। वहाँ आर्यसमाज के सत्संग में तिवारीजी पहली बार सम्मिलित हुये थे। उसका इनके ऊपर अच्छा प्रभाव पड़ा। वहीं एक व्यक्ति के हाथ में सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ देखा, उसे पढ़ने का मन हुआ। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश पढ़ा और आर्यसमाज बड़ाबाजार के उसी समय सदस्य बन गये। तब से अब

श्री जगदीश तिवारीजी

तक बराबर आर्यसमाज के सत्संग और वार्षिकोत्सवों में सम्मिलित होते रहते हैं।

श्री जगदीश तिवारीजी आर्यसमाज और स्वामी दयानन्दजी के कट्टर भक्त हैं। अपने गाँव में भी इन्होंने वेद पारायण यज्ञ कराया और आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वानों, भजनोपदेशकों को बुलाकर उपदेश कराया। तिवारीजी को भजन लिखने और गाने का शौक है। तिवारीजी ने पटना ट्रान्सपोर्ट के नाम से रोड ट्रान्सपोर्ट का काम किया और प्रचुर धन कमाया, अभी भी कमाते हैं। भजन बनाकर पुस्तकें छपाना और उसे देहातों में बाँट देना यह तिवारीजी का विशेष शौक है। आपके आदर्शगीत, दोहावली और पाखण्ड खण्डिनी तीन भजन की पुस्तकें छप चुकी हैं। अनुपम ज्ञानसागर नामक चौथी पुस्तक छप रही है। आपने अपने गाँव में यज्ञशाला बनवायी है और अनेक बार उत्सव किया। आपने योरोप और अमेरिका की विदेश यात्रा भी की है। आप अपने परिवार में संस्कार इत्यादि वैदिक रीति से करवाते हैं। तिवारीजी कलकत्ता में भी कुछ न कुछ प्रचार का कार्य करते रहते हैं। आप सदस्य तो बड़ाबाजार आर्यसमाज के हैं किन्तु कलकत्ता आर्यसमाज के हर कार्य में आपका सहयोग सदा बना रहता है।

श्री रामलखन सिंहजी

श्री रामलखन सिंहजी का जन्म डेढुवाना, जौनपुर (उ० प्र०) में ५ जनवरी सन् १६२६ में रघुवंशी क्षत्रियों के कुल में हुआ था। श्री सिंह जी छात्र जीवन से ही बड़े अध्यवसायी और गम्भीर व्यक्तित्व से सम्पन्न हैं। आपने अपने परिश्रम एवं अध्यवसाय से बड़ी उच्चकोटि की शिक्षा प्राप्त की। आप एम० ए०, बी० टी०, साहित्यरत्न, आयुर्वेदरत्न और विद्यावाचस्पति उपाधियों से सम्पन्न हैं। कलकत्ता आने के पश्चात् अपने बड़े भाई श्री रामविलास सिंह के माध्यम से आपका आर्यसमाज

कलकत्ता के साथ सन् १९४७ ई० में सम्पर्क हुआ और तभी से आप आर्यसमाज के सदस्य हैं और आर्य सभासद हैं। आप अनेक वर्षों से आर्यसमाज कलकत्ता की अन्तरंग सभा के सदस्य भी हैं।

श्री रामलखन सिंहजी सादा जीवन उच्च विचार जीवन में सरलता और आदर्शोन्मुखता की मूर्ति हैं। अपने विद्यार्थी जीवन में ही आप उच्च आदर्शों की ओर आकृष्ट हो गये थे। बालचर शिक्षण और प्राथमिक चिकित्सक का कार्य आपने सीखा एवं बड़ी सफलतासे किया। आपको आर्यवीर दल से भी अच्छा लगाव रहा है। आर्यसमाज कलकत्ता की ओर से आपने डी० ए० वी० कालेज, वाराणसी में आर्य वीरदल शिक्षण-शिविरमें सफलता-पूर्वक प्रशिक्षण प्राप्त किया। इस प्रकार एक अध्यापक के नाते आर्य वीरदल, बालचर, प्राथमिक चिकित्सा आदि गुणों से सम्पन्न होकर श्री सिंहजी अपने विद्यार्थियों में आर्यसमाज के उपयोगी सूत्र हैं।
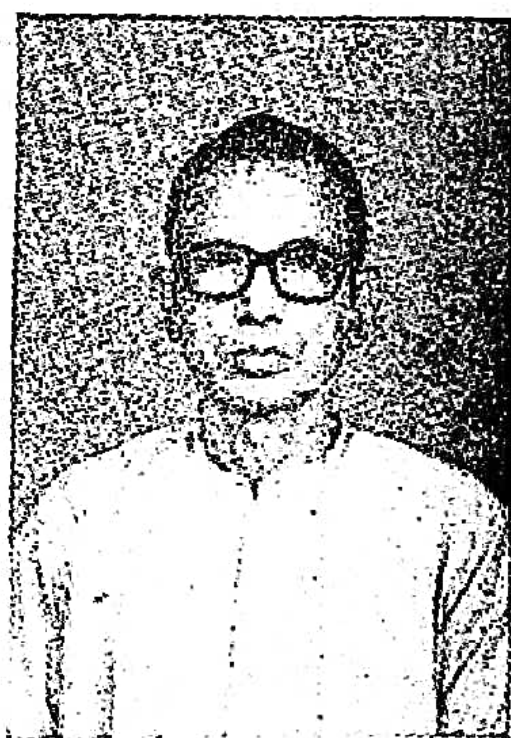
श्री रामलखन सिंहजी

श्री रामलखन सिंहजी ने ३७-३८ वर्ष पूर्व आर्य विद्यालय में एक अध्यापक के रूप में प्रवेश किया। आप निष्ठावान सफल अध्यापक के रूप में अपने विद्यार्थियों में ख्यातिप्राप्त हैं। जब श्री कृष्णलालजी खट्टर प्रधानाध्यापक के पद से श्री रघुमल आर्य विद्यालय से अवकाश प्राप्त कर रहे थे उस समय श्री रामलखन सिंहजी बहुत दिनों से रघुमल आर्य विद्यालय के सहायक प्रधानाध्यापक के रूप में कार्य करते आ रहे थे। श्री खट्टरजी के अवकाश प्राप्त करने पर श्री सिंहजी

स्थानापन्न प्रधानाध्यापक का दायित्व सम्भाल रहे हैं। आर्य विद्यालय इस समय कई प्रकार की संगठनात्मक कठिनाइयों और कानूनी दावपेंच के दौर से गुजर रहा है किन्तु श्री रामलखन सिंहजी के स्थानापन्न प्रधानाध्यापक रहते आर्यसमाज और विद्यालय का स्वार्थ सुरक्षित रहेगा। श्री सिंहजी शान्त प्रकृति के समझदार व्यवस्थापक हैं। एक प्रकार से सर्वप्रियता आपके स्वभाव का अंग है।

श्री यशपालजी वेदालंकार

श्री यशपालजी का जन्म एक जनवरी सन् १९२८ ई० को जामपुर, जिला डेरागाजी खान (पश्चिमी पाकिस्तान) में हुआ था। श्री यशपाल
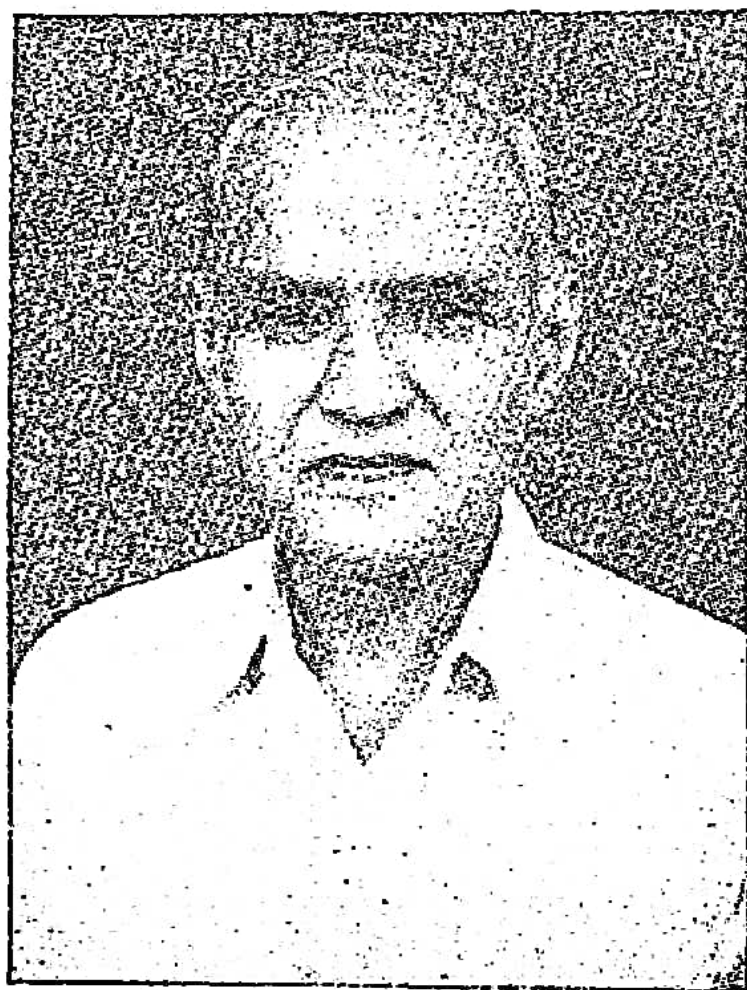
श्री यशपालजी वेदालंकार

जी का जन्म आर्यसामाजी परिवार में हुआ था। इस प्रकार आर्यसमाज और स्वामी दयानन्द, यशपालजी को उनके जन्म से ही प्राप्त हो गये

थे। परिवार में आर्य सामाजिक निष्ठा कुछ इस सीमा तक थी कि यशपालजी की शिक्षा गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार में हुई और इस प्रकार यशपालजी गुरुकुल से स्नातक होकर कलकत्ता आये।

शान्त प्रकृति, विद्या का वैभव, जीवन में सरलता ये यशपालजी के सुस्पष्ट गुण हैं। कलकत्ता आने पर यशपालजी आर्यसमाज कलकत्ता के सम्पर्क में आये और समय-समय पर उप-प्रधान जैसे दायित्वपूर्ण पद पर भी आपने कार्य किया। हिसाब परीक्षक भी आप रहे। अन्तरंग के सदस्य तो आप आठ वर्षों तक रहे हैं।

श्री यशपालजी का सारा परिवार ही आर्यसमाजी निष्ठा का है। आप सागर सिलाई मशीन के निर्माता एवं बिक्रेता हैं। कलकत्ता, गौहाटी, रांची, आदि कई जगहों से आप के संस्थान ने पर्याप्त ख्याति प्राप्त की है। श्री यशपालजी गुरुकुल के स्नातक हैं, अतः विद्वान् तो हैं ही, आप विद्या और सत्संग में अभिरुचि भी रखते हैं। श्री यशपालजी की कार्यक्षमता, मौन निष्ठा और लगन को देखकर ,आर्यसमाज कलकत्ता ने समय-समय पर इन्हें उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सौंपा है। जब श्री मद्दयानन्द बालिका विद्यालय की स्थापना हुई तो यशपालजी उसके मन्त्री निर्वाचित हुए। यशपालजी आर्यसमाज के भरोसे के कार्यकर्ता हैं।

श्री राधाकृष्णजी ओझा

श्री राधाकृष्णजी ओझा का जन्म जिला भोजपुर (बिहार) के देवकुली ग्राम में एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार में दिनांक २३-७-१६२४ ई० को हुआ था। आपके पिताजी पं० बालेश्वर ओझा थे। ओझाजी हिन्दी, संस्कृत के अच्छे विद्वान् हैं। आप साहित्याचार्य, काव्यतीर्थ, व्याकरण शास्त्री, साहित्यरत्न, एम० ए०, बी० टी० की उपाधियों से अलंकृत हैं। आप रघुमल आर्य विद्यालय कलकत्ता के वरिष्ठ अध्यापक हैं।

श्री ओझाजी की संस्कृत शिक्षा राजकीय संस्कृत महाविद्यालय मुजफ्फरपुर, बिहार में हुई। इस विद्यालय में प्रधानाचार्य ओझाजी के पितृव्य पं० श्री धर्मराज ओझा एम० ए० द्वय काव्यतीर्थ थे। इन्हीं की प्रेरणा से राधाकृष्णजी ने साहित्याचार्य औरव्याकरण शास्त्री की परीक्षाएँ पास कीं। ओझाजी ने प्राइवेट रूप से एम० ए० और बी० टी० की परीक्षाएँ दीं और कलकत्ता की काव्यतीर्थ एवं प्रयाग की साहित्यरत्न परीक्षाएँ भी उत्तीर्ण कीं।

श्री राधाकृष्णजी ओझा

सन् १९४४ ई० में आर्यसमाज द्वारा स्थापित, संचालित आर्य विद्यालय में आपने सहायक अध्यापक का कार्य प्रारम्भ किया। स्व० आचार्य रमाकान्त उपाध्याय की प्रेरणा से आर्यसमाज कलकत्ता के सक्रिय सदस्य बने और अनेकों बार अन्तरंग के सदस्य, उपमन्त्री, पुस्तकाध्यक्ष आदि पदों पर निर्वाचित होकर योग्यतापूर्वक इन कार्यों का संचालन किया। श्री ओझाजी ने बालकों में वैदिक धर्म प्रचारार्थ वैदिक धर्म-शिक्षा एवं बालधर्म शिक्षा नामक पुस्तकें लिखी हैं, जो आर्यसमाज के विद्यालयों में पढ़ाई जाती हैं। श्री ओझाजी ने संस्कृत में कुछ पुस्तकें लिखी हैं जिनका छात्र समाज में अच्छा सम्मान है। श्री ओझाजी अभी रघुमल आर्य विद्यालय के वरिष्ठ अध्यापक तथा आर्यसमाज कलकत्ता के सम्माननीय सभासद हैं।

श्रीमती ओमवती देवी

श्रीमती ओमवती देवीजी का जन्म सन् १९२० ई० में गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश में हुआ था। आपके पिताजी का नाम श्री हरिराम गुप्त था। श्री हरिरामजी गुप्त मेरठ के ज़मींदार थे और गाजियाबाद में व्यवसाय करते थे। ये विचारों से कट्टर आर्यसमाजी थे। इस प्रकार

श्रीमती ओमवती देवी

ओमवतीजी को आर्यसमाज के संस्कार पितृपक्ष से जन्म के साथ ही प्राप्त हो गये थे।

ओमवतीजीका विवाह श्री गोपाल स्वरूपजी के साथ हुआ था। श्री गोपाल स्वरूपजी जगीराबाद, जिला बुलन्दशहर, उत्तर प्रदेश के थे। ओमवतीजी की ससुराल पौराणिक परिवार में हुई थी, किन्तु आपके

पति श्री गोपाल स्वरूपजी बड़े उदार थे। इसलिये ओमवतीजी को अपने धार्मिक कृत्यों में कोई अड़चन नहीं आयी। श्री गोपाल स्वरूपजी व्यवसाय के सिलसिले में कलकत्ता आ गये, किन्तु बहुत थोड़ी उम्र में स्वर्गवासी हो गये। ओमवतीजी ने स्वामी दयानन्द और उनकी शिक्षाओं के अनुकूल अपने पुत्र और पुत्रियों को पाला।

ओमवतीजी आर्यसमाज कलकत्ता के सम्पर्क में आरम्भ से ही रही हैं। पं० अयोध्या प्रसादजी और पं० रमाकान्तजी शास्त्री जैसे विद्वानों से सम्पर्क रखकर आपने अपने परिवार में आर्यसमाज के संस्कारों को सुदृढ़ किया। आपके पुत्र बड़े सफल व्यवसायी निकले और कलकत्ता में अपनी कैपिटल एलेक्ट्रानिक्स में व्यावसायिक प्रतिष्ठा जमायी।

श्रीमती ओमवतीजी स्वभाव से दयालु, आर्यसमाज के हर काम में रुचि लेने वाली हैं। यज्ञों से आपको विशेष श्रद्धा है और वेद के पारायण पाठ में आप बड़ी रुचि और तन्मयता से भाग लेती हैं।

श्री शिवदासजी जायसवाल

श्री शिवदास जायसवाल की जन्मभूमि फतहगंज बाजार, पुष्पनगर आजमगढ़, उत्तर प्रदेश है। आपका जन्म पुष्पनगर में हुआ था। आपके पिताजी पौराणिक निष्ठा के कट्टर शिवशंकर भक्त, साधु-सन्तों के परमसेवक, व्यवसायी थे। शिवदासजी के जीवन में पौराणिक रूप में इनकी पौराणिक भूमिका थी तो दूसरी ओर ईश्वर भक्ति थी।

आर्यसमाज कलकत्ता के आचार्य पं० रमाकान्तजी के सम्पर्क में श्री शिवदासजी का झुकाव आर्यसमाज की ओर हुआ। आपने आचार्य जी से यज्ञोपवीत ग्रहण किया और बड़ी निष्ठा और कट्टरता से सन्ध्या एवं अग्निहोत्र को दैनिक जीवन में अपना लिया। पौराणिक कट्टरता वैदिक कट्टरता में बदल गयी। आपने अपनी जन्मभूमि में कई वर्षों तक नियमित रूप से वेदपारायण यज्ञ और वैदिक धर्म के प्रचार का

आयोजन कराया। आप शिवशंकर इण्टर कालेज के मैनेजर हैं। आपने पुष्पनगर में आचार्य उमाकान्तजी उपाध्याय के हाथों आर्यसमाज की स्थापना करायी। अपने चाचा मेवालालजी और अन्य सहयोगियों के साथ पुष्पनगर आर्यसमाज का संरक्षण सदा करते रहते हैं।

श्री शिवदासजी वर्षों तक आर्यसमाज कलकत्ता के सक्रिय सदस्य और प्रचार मन्त्री भी रहे। जायसवाल लोहा सोसायटी, जायसवाल विद्या मन्दिर, जायसवाल ऐजूकेशन ट्रस्ट, आर्यसमाज मानिक तल्ला इत्यादि सार्वजनिक संस्थाओं में आपका सक्रिय सहयोग रहता है। जायसवाल धर्मशाला और दातव्य औषधालय में भी आप सहयोग करते रहते हैं। श्री शिवदासजी सार्वजनिक संस्थाओं के माध्यम से जनसेवा और वैदिक यज्ञों के भक्त व्यक्ति हैं।

श्री लालचन्दजी बाहरी

श्री लालचन्दजी बाहरी

श्री लालचन्दजी बाहरी मूलरूप से पेशावर के रहने वाले थे। आपने अपने जीवन के आरम्भिक दिनों में सरकारी नौकरी भी की थी, जंगल की ठेकेदारी भी की थी, किन्तु सन् १९२९ ई० में इन्होंने लाहौर में एक इन्जीनियरिंग का कारखाना खरीद लिया था और उसका नाम 'बाहरी इन्जीनियरिंग कम्पनी रख दिया था। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय सरकार ने आपको कारखाना टाटानगर में ले जाने का आदेश कर दिया था। वहां से सन् १९४६ ई० में आप अपना कारखाना शिवपुर, हावड़ा में लाये और तभी से श्री लालचन्दजी आर्य-

समाज कलकत्ता के सम्पर्क में आये, सदस्य बने और आर्यसमाज कलकत्ता की हर कार्य में सहायता करते रहे। श्री लालचन्दजी बाहरी पूर्ण आर्यसमाजी निष्ठा के व्यक्ति थे। दान देने में आपकी बड़ी भारी रुचि थी। आपने लालचन्द बाहरी चैरिटेबल एण्ड रेलिजस ट्रस्ट बनाया था। उससे धार्मिक संस्थाओं और दुखिया, पीड़ित, जरूरतमन्द लोगों को सहायता दी जाती है। श्री लालचन्दजी कभी झेलम में थे तो वहाँ भी आर्यसमाज में सक्रिय कार्य करते रहते थे। दानशीलता के प्रति आपकी भारी निष्ठा थी। उन्होंने अपनी वसीयत में अपने परिवार के सदस्यों के लिये निर्देश दिया है :—

'मैं अपने वंशज को यह बता देना चाहता हूँ कि दान के प्रति मेरा विश्वास ही मेरी धन-सम्पति का कारण है। मुझे विश्वास है कि उदारतापूर्वक दान किये बिना कोई परिवार समृद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। मुझे इस बात की एकांत आकांक्षा है कि मेरे वंशज किसी न किसी रूप में मेरी दानशीलता को कायम रखें। दान समृद्धि का वाहन है। जरूरतमन्दों के प्रति सहायक होना, मुक्तहस्त उन्हें दान देना ही मेरे वंशजों की मेरे प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।'

श्री लालचन्दजी बाहरी के सुपुत्र श्री चिरंजीव लालजी बाहरी ने अपने पिताजी की इच्छाओं का पूर्ण रूप से आदर किया था। श्री लालचन्दजी ने एक बार पं० अयोध्या प्रसादजी को यह वचन दिया था कि कलकत्ता के पास कोई गुरुकुल और वानप्रस्थ आश्रम के लिये जगह खरीद ली जाय। सारा रुपया श्री लालचन्दजी स्वयं देने के लिये तैयार थे, किन्तु यह कार्य उस समय न हो पाया। श्री लालचन्द जी सम्पूर्ण जीवन आर्यसमाज कलकत्ता के सहयोगी रहे और हर काम में भरपूर सहायता करते रहे।

श्री चिरंजीवलालजी बाहरी

श्री चिरंजीवलालजी बाहरी, श्री लालचन्दजी बाहरी के सुपुत्र थे और योग्य पिता के योग्य पुत्र की तरह इन्होंने अपने पिताजी का नाम सब प्रकार से रोशन किया था। 'बाहरी इन्जीनियरिंग कम्पनी' इनका खानदानी कारखाना है और श्री चिरंजीवलालजी ने उस कारखाने को अच्छी तरह से सम्भाला, चलाया। श्री लालचन्दजी ने जब लाहौर में कारखाना खरीदा था, उस समय श्री चिरंजीवलालजी देहरादून में 'कोलोनल ब्राउन स्कूल' में पढ़ते थे। वहाँ से सीनियर कैम्ब्रिज की परीक्षा पास कर अपने पिता के साथ कारबार में लग गये। श्री चिरंजीवलालजी ने अपने पिताजी की दानशीलता को पूरे जीवन निभाया था।
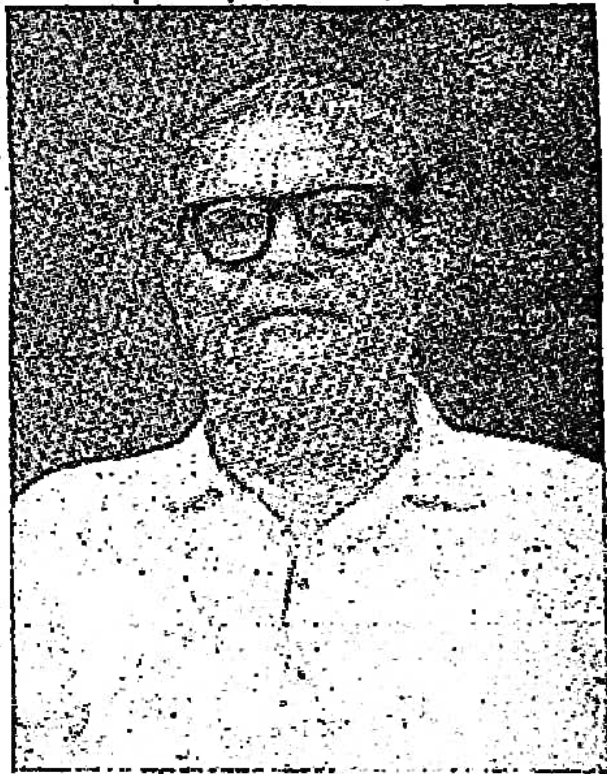
श्री चिरंजीवलालजी बाहरी

श्री चिरंजीवलालजी आर्यसमाज कलकत्ता के मौन, निस्पृह, पद-पोस्ट से अलग रहने वाले भक्त व्यक्ति थे। दान और सहयोग में सदा यथाशक्ति जुटे रहते थे किन्तु समाज में कभी किसी अधिकार या पद पर नहीं जाते थे। श्री चिरंजीवलालजी अपने ट्रस्ट के हजारों रुपये महीने की आय को दान में खर्चते रहते थे। यज्ञ और हवन के प्रति उन्हें बड़ी भारी श्रद्धा थी। वे और उनकी पत्नी श्रीमती कौशल्या देवी बाहरी, दोनों ही प्रतिदिन सन्ध्या, हवन, यज्ञ करने वाले थे। दान में उन्हें पूर्ण विश्वास था। श्री चिरंजीवलालजी अपने पिताजी के सच्चे

अनुगामी थे। सम्पूर्ण जीवन उन्होंने भरपूर कार्य किया, अपनी शक्ति के अनुसार भरपूर दान दिया और सम्पूर्ण जीवन आर्यसमाज और स्वामी दयानन्द के लिये समर्पित रहे। सितम्बर, सन् १९८२ ई० में श्री चिरंजीवलालजी बाहरी का देहान्त हो गया। उनकी विधवा पत्नी श्रीमती कौशल्या देवी बाहरी पहले की तरह ही आर्यसमाज के प्रति भक्ति रखती हैं और सन्ध्या, हवन और समाज के सत्संग में कभी नागा नहीं करती हैं। आपके पुत्र श्री शतीशचन्द्रजी बाहरी आर्यसमाज के कार्यों में सहयोग की भावना रखते हैं।

श्री ब्रह्मानन्दजी गोयल

श्री ब्रह्मानन्दजी गोयल का जन्म हिसार के पास वालसमन्द नामक ग्राम में श्री छबीलदासजी गोयल के घर हुआ था। श्री ब्रह्मानन्दजी के बड़े भाई श्री घनश्यामदासजी गोयल आर्यसमाज के सम्पर्क में थे। आपके मामा श्री बद्रीप्रसादजी भोडुका आर्यसमाज के बड़े भक्त और सक्रिय कार्यकर्त्ता थे। श्री ब्रह्मानन्दजी आजीविका के सिलसिले में ट्रान्सपोर्ट के कार्य में लगे और आपके ट्रान्सपोर्ट का काम सारे देश में फैला हुआ है। उच्चकोटि के सम्पन्न व्यवसायी होने के साथ ही श्री ब्रह्मानन्दजी आर्यसमाज के बड़े भक्त और सहयोगी थे। आप प्रायः कलकत्ता में ही रहते थे और आर्यसमाज की अन्य संस्थाओं के साथ आर्यसमाज कलकत्ता को आप बड़ी उदारता से सहयोग दिया करते थे। आर्यसमाज कलकत्ता ने जब भी कोई सार्वजनिक कार्य हाथ में लिया, श्री ब्रह्मानन्दजी सदा आगे बढ़कर सहयोग करते रहते थे। जब आर्यसमाज कलकत्ता ने हरिनघाटा की गायों को कसाइयों के हाथों नीलाम होने से बचाने के लिये कार्यक्रम बनाया, उस समय श्री ब्रह्मानन्दजी ने बड़ी उदारता से उस कार्य में आर्थिक सहयोग किया। बंगलादेश से विस्थापित शरणार्थियों की सेवा के लिये जब आर्यसमाज कलकत्ता ने रिलीफ सोसाइटी बनायी तो ब्रह्मानन्दजी ने

बहुत बड़ी मात्रा में शरणार्थियों को कम्बल दिये और रिलीफ सोसाइटी की आर्थिक सहायता भी की। श्री गोयलजी की सहायता हमेशा बड़े उदार भाव से आर्यसमाज कलकत्ता को मिला करती थी। श्री श्रद्धानन्दजी के असामयिक देहावसान हो जाने से आर्यसमाज कलकत्ता का एक समर्थ श्रद्धालु सहयोगी उठ गया।

श्री रामयशजी आर्य

श्री रामयशजी आर्य का जन्म १ जून सन् १६१३ ई० को फैजाबाद जिले में टाण्डा नामक शहर में हुआ था। आपके पिता श्री महावीर प्रसादजी जायसवाल थे। श्री रामयशजी को आर्यसमाज का सम्पर्क और संस्कार अपने पूज्य पिताजी से ही मिल गया था। श्री रामयशजी के पिताजी आर्यसमाज के भक्त थे। श्री रामयशजी सन् १६३० ई० में ही आर्यसमाज टाण्डा के सदस्य बन गये और आर्यसमाज के कार्यों में सक्रिय भाग लेने लगे। आप १० वर्षों तक आर्य वीरदल के दल-नायक के रूप में रहे और जनसेवा करते रहे।

श्री रामयशजी आर्य

सन् १६५० ई० में आप कलकत्ता आये और तभी से आप आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्य एवं सक्रिय कार्यकर्ता रहे। आप व्यवसाय के साथ आर्यसमाज के हर कार्य में यथाशक्ति सहयोग देते रहे। आप बहुत दिनों तक अन्तरंग सदस्य रहे और कई वर्षों तक आर्यसमाज

कलकत्ता के उपमन्त्री एवं कोषाध्यक्ष के दायित्वपूर्ण पदों पर कार्य करते रहे। श्री रामयशजी बड़ी लगन और भरोसे के कार्यकर्ता थे, किन्तु हठात् १० नवम्बर, सन् १६८४ ई० को आपका देहान्त हो गया। श्री रामयशजी के निधन से आर्यसमाज कलकत्ता का एक विश्वासी कार्यकर्ता सदा के छीन गया।

श्री गोपालदासजी गुप्त

श्री गोपालदासजी गुप्त

श्री गोपालदासजी गुप्त का जन्म अगहन बदी पंचमी सम्वत् १६५५ विक्रमी में बनारस (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। इनके पिता श्री मूलचन्द साव जायसवाल थे। श्री गोपाल दासजी कलकत्ता आने पर आर्य-समाज के प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता श्री हरिगोविन्दजी गुप्त के सम्पर्क में आये।

उन्हींकी प्रेरणा से गोपाल दासजी सन् १६२८ ई० के आसपास आर्य-समाज के सदस्य बने। ये बहुत दिनों तक आर्यसमाज कलकत्ता के अन्तरंग सदस्य एवं अन्य विभिन्न पदों पर कार्य करते रहे। श्री गोपाल दासजी का सार्वजनिक जीवन आर्यसमाज के अतिरिक्त स्वजाति-सेवा में भी संलग्न रहा है। वहाँ आप कई शिक्षा-संस्थाओं की सेवा में लगे रहे।

श्री गोपाल दासजी आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्य तो रहे ही, इनके परिवार का भी आर्यसमाज के साथ घना सम्बन्ध रहा। व्यव-साय की दृष्टि से ये लाख चपड़े की दलाली और आढ़तदारी का काम करते हैं। आजकल तो वृद्धावस्था है और लगभग अवकाश प्राप्त भी हैं। आपके तीन लड़के हैं जो अपने व्यवसाय में लगे हुए हैं। पुत्रों को व्यवसाय का कार्य सम्हलवा कर श्री गोपाल दासजी निश्चिन्त होकर वृद्धावस्था में प्रभुभजन कर रहे हैं।

स्व० नलिन बिहारी लालजी

स्व० अनिल विहारी लालजी स्व० पं० अवधविहारी लालजी के सबसे कनिष्ठ भ्राता थे। उनका जन्म सन् १६१६ ई० हुआ था तथा निधन केवल २२ वर्ष की आयु में सन् १६४१ की २८ फरवरी को हो गया। आपने कलकत्ता विश्वविद्यालय में अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन करते हुए आर्यसमाज के प्रचार-कार्य में बड़े सक्रिय रूप से भाग लिया। आप अंग्रेजी एवं हिन्दी में बड़े सारगर्भित भाषण देते थे। हैदराबाद सत्याग्रह सम्बन्धी प्रचार कार्य में अपने ज्येष्ठ भ्राता स्व० पं० अवधबिहारी लालजी के सहयोगी के रूप में बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। देहान्त से कुछ मास पूर्व आप आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल-आसाम के प्रचार-मन्त्री निर्वाचित हुए थे। स्व० हरगोविन्द गुप्त के आप बड़े विश्वासपात्र सहयोगी थे।

श्री भीमसेनजी कपूर

श्री भीमसेनजी कपूर का जन्म सिन्ध प्रदेश के शेखर नामक नगर में २ जनवरी सन् १६१६ ई० को हुआ था। श्री कपूरजी में व्यावसायिक प्रतिभा लड़कपन से ही थी। १० वर्ष की अल्प आयु में आपने मिठाई की फेरी करना आरम्भ किया और मातृभूमि में 'करांची
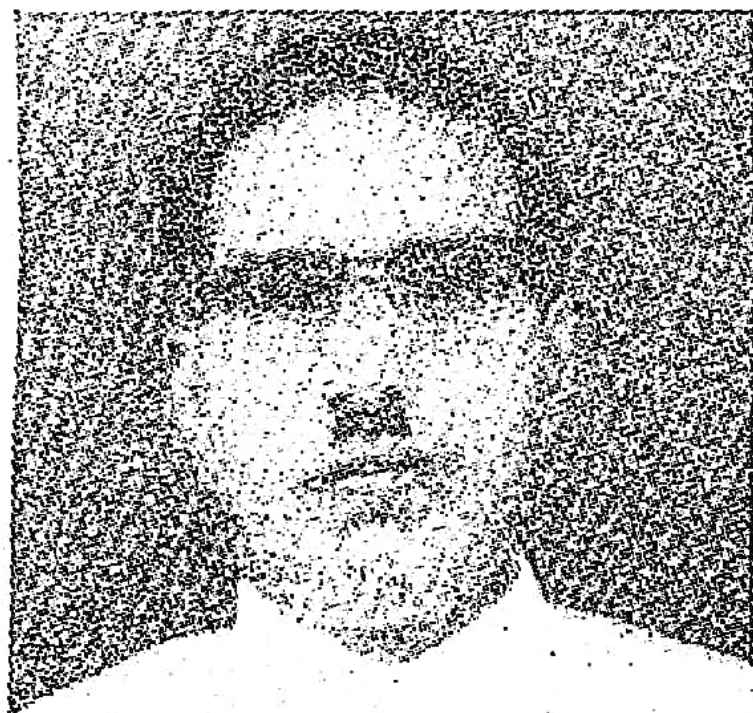
श्री भीमसेनजी कपूर

स्वीट्स' नामक दूकान खोली। इसी समय महात्मा खुशहालचन्द (महात्मा आनन्द स्वामी) के सम्पर्क में आये, फिर धीरे-धीरे आर्यसमाज के भक्त बन गये।

देश-विभाजन के पश्चात् भीमसेनजी ने कलकत्ता में पंजाब स्वीट्स नामक प्रतिष्ठान चलाया। धीरे-धीरे बड़ाबाजार में भीमसेन नामक

भोजनालय और हावड़ा स्टेशन के पास भीमसेन नामक आवासीय भेजनालय की स्थापना की।

श्री भीमसेनजी ने कलकत्ता आने पर आर्यसमाज कलकत्ता से सम्पर्क किया और यह सम्पर्क यावज्जीवन बना रहा। कपूरजी बड़ी उदारता से आर्यसमाज की सेवा करते थे। वार्षिकोत्सव पर कपूरजी के ही पाचक-कारीगर समाज-मन्दिर में आमन्त्रित विद्वानों के भोजन की व्यवस्था करते थे। भीमसेनजी आर्यसमाज के अधिकारियों का अनुरोध टालते न थे और सदा यथाशक्ति आर्यसमाज की सहायता करते रहते थे। ऐसे भक्त साथी का शाश्वत वियोग ४ अगस्त सन् १९६४ ई० को हो गया।

श्री प्रकाशचन्द्रजी पोद्दार

श्री प्रकाशचन्द्रजी पोद्दार का जन्म १४ अगस्त, सन् १९२६ ई० को हरियाणा प्रान्त के भिवानी जिले में पिन्जोखरा नामक स्थान में हुआ था। आपने प्रारम्भिक शिक्षा भिवानी हाई स्कूल में प्राप्त की और सन १९४५ ई० में भिवानी हाई स्कूल से हाई स्कूल परीक्षा पास कर कलकत्ता आ गये। सन १९४५ ई० से ही कलकत्ता में रहने लगे और तब से आप कलकत्ता में ही रहते हैं।

श्री प्रकाशचन्द्रजी पोद्दार

आर्यसमाज से आपका सम्पर्क भिवानी में ही सन् १९४२ ई० में हो गया था। कलकत्ता आने पर भिवानी आर्यसमाज की भूमिका पूरी सक्रिय रही तथा आप आर्यसमाज कलकत्ता, आर्यसमाज बड़ाबाजार

और आर्य वीरदल कलकत्ता से पूर्ण सहयोग करने लगे। आप कई वर्षों तक कलकत्ता में आर्य वीरदल नायक के रूप में कार्य करते रहे। आप एकाधिकबार कलकत्ता आर्यसमाज के कोषाध्यक्ष एवं उप-मन्त्री रहे। श्री प्रकाशचन्द्रजी पोद्दार का कार्य आर्य वीरदल नायक के रूप में विशेष रूप से स्मरणीय है। जब कलकत्ता षष्ठ आर्य महासम्मेलन हुआ था, उस समय आपने आर्य वीरदल का संचालन किया था और बड़े उत्तरदायित्व से सम्मेलन का प्रबन्ध कराया था।

सन् १९८५ ई० में कलकत्ता में अचानक ही आपका देहान्त हो गया और एक सक्रिय कार्यकर्ता अचानक हमारे बीच से उठ गया।

श्री यशवन्तरायजी चोपड़ा

श्री यशवन्तरायजी चोपड़ा

श्री यशवन्तराय चोपड़ा का जन्म ७ सितम्बर सन् १९२१ ई० को

हुआ था। आपके पिता श्री सौदागरमलजी चोपड़ा आर्यसमाज के अति श्रद्धालु एवं उत्साही कार्यकर्ता थे। श्री यशवन्तरायजी चोपड़ा को आर्यसमाज की श्रद्धा-भक्ति अपने पूज्य पिताजी एवं माताजी से विरासत में ही मिल गयी थी। श्री यशवन्तरायजी अपने सम्पूर्ण परिवार के साथ आर्यसमाज की सेवा में लगे रहते थे। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सत्या चोपड़ा आर्यसमाज कलकत्ता एवं आर्य स्त्री-समाज कलकत्ता में सक्रिय सहयोग करती रहती हैं।

श्री यशवन्तरायजी चोपड़ा ने अपने पैतृक व्यवसाय को अपनाया। इनका पैतृक व्यवसाय धानकल का निर्माण करना रहा है। इस धानकल के निर्माण में चोपड़ा ब्रादर्स ने अच्छी ख्याति प्राप्त की और इस क्रियाशीलता में श्री यशवन्तराय चोपड़ा का महत्त्वपूर्ण योगदान था। श्री यशवन्तरायजी अपने सम्पूर्ण जीवन भर आर्यसमाज और स्वामी दयानन्द के भक्त बने रहे। सदा आर्यसमाज कलकत्ता की सेवा-सहायता करते रहे। श्री यशवन्तरायजी चोपड़ा का अचानक ही २३ नवम्बर सन् १९८३ ई० को देहान्त हो गया और आर्यसमाज कलकत्ता का एक सहयोगी उठ गया।

श्री रामप्रतापजी अग्रवाल

श्री रामप्रतापजी का जन्म सन् १९१३ ई० में नलवा हरियाणा में हुआ था। श्री रामप्रतापजी आर्यसमाज के कट्टर समर्थक थे। उनका प्रतिभाशाली व्यक्तित्व और जीवन परोपकारमय था। कोई २५ वर्ष की आयु में वे आर्यसमाज से प्रभावित हुए और जब से आर्यसमाज में आये, तन-मन-धन से आर्यसमाज की सेवा करते रहे। जिस समय हैदराबाद का सत्याग्रह चल रहा था उस समय श्री रामप्रतापजी ने सत्याग्रह की सहायता में सक्रिय भूमिका निभायी थी। श्री रामप्रताप-जी के जीवन में दैनिक सन्ध्या, हवन, स्वाध्याय सब कुछ अनिवार्य था। हावड़ा का प्रसिद्ध आर्यसमाजी भोरुका परिवार रामप्रतापजी

की प्रेरणा से ही आर्यसमाज का भक्त बना हुआ है। रामप्रताजी पाखण्ड और कुरीतियों से कभी कोई समझौता करने को तैयार नहीं होते थे। वे यावज्जीवन आर्यसमाज के समर्पित भक्त रहे। सन्

श्री रामप्रतापजी अग्रवाल

१९६९ ई० में उनका आकस्मिक निधन हो गया और इस प्रकार आर्यसमाज का एक निष्ठावान कार्यकर्ता हमारे बीच से उठ गया।

श्री अतुलकान्त गुप्त

श्री अतुलकान्त गुप्त का जन्म ९ अप्रैल, सन् १९४६ ई० को हुआ था। इनका जन्म स्थान जौनपुर (उत्तर प्रदेश) जिले में मडियाहू में आर्यसमाज के प्रभाव से प्रभावित वैश्य परिवार में हुआ था। इनके पिताजी श्री श्रीनाथ दासजी गुप्त आर्यसमाज के निष्ठावान कार्यकर्ता

हैं। इस प्रकार अतुलकान्तजी को आर्यसमाज और स्वामी दयानन्द के प्रति श्रद्धाभक्ति पैतृक रूप में प्राप्त हुई थी और उसीसे अतुलकान्तजी के जीवन को दिशादान मिला था।

अतुलकान्तजी आर्यसमाजी परिवार से तो थे ही और उन्हीं पैतृक संस्कारों के कारण सन् १९६५ ई० में आर्यसमाज के सदस्य बने। सन् १९६७ ई० से सन् १९६९ ई० तक आप आर्यसमाज कलकत्ता के उपमन्त्री-पद पर बड़ी सफलता से कार्य करते रहे। श्री अतुलकान्तजी में कार्य करने की निष्ठा थी तो संगठन को संभालने की क्षमता भी थी। अतुलकान्तजी को लिखने का भी अच्छा शौक था। यह साहित्यिक अभिरुचि भी इन्हें अपने पिता श्री श्रीनाथ दास गुप्त से प्राप्त हुई थी। अतुलकान्तजी ने आर्यसमाज बड़ाबाजार की भी सदस्यता स्वीकार की थी। इनका कार्यक्षेत्र विविध रूपोंमें आर्यसमाज ही रहा। सहयोगी, अधिकारी, लेखक, संगठनकर्ता सब रूपों में ये आर्यसमाज के क्षेत्र में सक्रिय रहे। इनका पारिवारिक व्यवसाय काठगोले का है। श्री अतुलकान्तजी एक प्रशंसनीय प्रतिभा के छात्र एवं युवक रहे। इनके व्यावहारिक जीवन में घर हो या बाहर, परिवार हो या समाज, एक अविस्मरणीय मधुरिमा छाई रहती थी।

श्री अतुलकान्त गुप्त

माता विद्यावती सभरवाल

सामाजिक संगठनों में ऐसे सौभाग्यशाली दम्पती कम ही मिलते हैं कि पति-पत्नी दोनों किसी मिशन के प्रति समर्पित हों। श्री जाइयांशाह जी सभरवाल और श्रीमती विद्यावती सभरवाल का एक ऐसा ही दम्पती जोड़ा है जो दोनों ही आर्यसमाज और स्वामी दयानन्दजी के लिए पूर्ण रूप से अपने जीवन में समर्पित रहे हैं। बहुधा पति पत्नी से अधिक सक्रिय सामाजिक कार्यकर्ता देखे जाते हैं, किन्तु सभरवाल दम्पती में विशेष बात यह थी कि माता सभरवाल प्रत्येक सामाजिक कार्य में जाइयांशाहजी को सहायता और प्रेरणा ही नहीं देती थीं बल्कि अपनी श्रद्धा, निष्ठा एवं धार्मिक भावना के कारण धार्मिक कार्यों में एवं सामाजिक कार्यों में सदा अग्रिम पंक्ति में सुशोभित रही हैं। माता सभरवालजी जितने दिन कलकत्ता में रहीं सदा नेतृत्व की प्रथम पंक्ति में शोभा पाती रहीं।

श्री जाइयांशाहजी सभरवाल पंजाब के रहने वाले थे। अपने व्यावसायिक सिलसिले में जब कलकत्ता आये तो उनकी धर्मपत्नी श्रीमती विद्यावती सभरवाल उनके साथ ही कलकत्ता आ गयीं। जाइयांशाहजी सामान्य रूप से जीविका उपार्जन करते हुए अपना सुन्दर-सा परिवार चलाने लगे और माता विद्यावती सभरवाल एक आदर्श गृहिणी और आदर्श माता की तरह अपने परिवार को संभालने, सवांरने लगीं। माताजी अपने बच्चों को आर्य माता की तरह पालती रहीं। कहते हैं माताजी अपने बच्चों को गायत्री मन्त्र और अन्य मन्त्रों की लोरियाँ भी देती थीं। लड़के-लड़कियाँ सभी अपने जीवन में उच्च स्थानों पर प्रतिष्ठित हैं। बच्चों ने अपने माता-पिता के लिये नासिक के पास देवलाली में एक निवास स्थान बनवा दिया और दोनों वहीं वानप्रस्थ का-सा जीवन बिताने लगे। कुछ वर्ष हुए श्री जाइयांशाह जी भी साथ छोड़ गये और अब माताजी घर में ही वानप्रस्थ का-सा जीवन बिता रही हैं।

माता विद्यावती सभरवाल कलकत्ता के संगठन में श्रद्धालु देवियों में गिनी जाती हैं। सन्ध्या, अग्निहोत्र, गायत्री जप और स्वाध्याय इत्यादि इनके जीवन का अनिवार्य कार्यक्रम रहा है। माता सभरवाल आर्यसमाज कलकत्ता की सदस्या थीं और यहाँ के हर कार्य में पूर्ण सहयोग करती रहती थीं। सेवा, सहायता, रिलीफ कार्य, हर कार्य में माताजी का स्थान आगे ही था। कलकत्ता में आर्य स्त्री-समाज, भवानीपुर में सर्वप्रथम बनाया गया। भवानीपुर कलकत्ता के दक्षिण अंचल में है। और कलकत्ता के कई उत्तरी अंचल की महिलाओं को वहाँ जाने में पर्याप्त कष्ट उठाना पड़ता था। उत्तर कलकत्ता की कई अन्य महिलाओं के साथ माताजी ने विचार-विमर्श करके आर्यसमाज कलकत्ता में स्त्री-समाज की स्थापना कर डाली। यद्यपि इसके कारण दक्षिण कलकत्ता में स्त्री-समाज का नेतृत्व क्षुब्ध हो गया था, किन्तु माता सभरवालजी अपनी अन्य महिला सहयोगिनी सदस्याओं के साथ निश्चल रहीं और आर्य स्त्री-समाज कलकत्ता की स्थापना हो गयी। बहुत दिनों तक माता सभरवालजी स्वयं इस स्त्री-समाज की प्रधाना रहीं। माताजी का जीवन सक्रिय नेतृत्व और परम धार्मिक निष्ठा का जीवन रहा है। इस समय देवलाली में अपने ही घर में विरक्त वानप्रस्थ का जीवन बिता रही हैं।

माता विद्यावती सभरवाल

श्रीमती केकनवती बंसल

श्रीमती केकनवती बंसल का जन्म हिसार में कार्तिक बदी अष्टमी सं० १९७४वि०को हुआ था। आपके पिताजी का नाम व्रजराजजी था। ये सनातनधर्मी पौराणिक परिवार के थे। पति भी सनातनधर्मी परिवार के ही थे। किन्तु, उनकी रुचि आर्यसमाज की ओर हो गई थी। उन्होंने हैदराबाद सत्याग्रह में सहयोग किया था और हिन्दी सत्याग्रह

श्रीमती केकनवती बंसल

में तो तीन महीना अम्बाला जेल में सजा भोग चुके थे। श्रीमती केकनवतीजी और उनके पति दोनों ही आर्यसमाजी निष्ठा के भक्त बने। आपने पुत्रों को गुरुकुल में पढ़ाया और सम्पूर्ण घर को वैदिक विचार-धारा का बना दिया। पचीसों वर्षों से इनके घर में दैनिक यज्ञ होता है। इनके पति तीस वर्ष हाँसी, ग्वालियर और जयपुर में आर्यसमाज के मन्त्री रहे और केकनवतीजी ने सदा उनका साथ दिया।

केकनवतीजी का परिवार पूर्ण वैदिक निष्ठा का परिवार है। हर काम में आर्यसमाज के साथ जुड़ा रहने वाला परिवार है। श्री केकनवतीजी आर्य स्त्री-समाज कलकत्ता की सदस्या हैं। माता विद्यावती सभरवाल के कलकत्ता से चले जाने के पश्चात् आपने स्त्री आर्यसमाज कलकत्ता के कार्य को बड़ी लगन से संचालित कर रखा है। पिछले दस वर्षों से आप स्त्री आर्यसमाज कलकत्ता की प्रधाना हैं।

श्री घनश्यामदासजी गोयल

श्री घनश्यामदासजी गोयल का जन्म २२ जुलाई सन् १९२२ ई० को हरयाणा में हिसार के समीप बालसमन्द नामक गाँव में हुआ था। आपके पिता श्री छबीलदासजी थे और वे गाँव में ही रहते थे। श्री घनश्यामदासजी की प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में ही हुई। उसके पश्चात् आप कराँची चले गये। कराँची में आजीविका की उपलब्धि तो चाहे साधारण रूप की बनी किन्तु, कराँची निवास की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह हुई कि श्री घनश्यामदासजी कराँची में आर्यकुमार सभा के सम्पर्क में आये। आपने आर्यकुमार सभा में नियमित रूप से भाग लेना आरम्भ किया। यहीं से श्री घनश्यामदासजी के जीवन में स्वामी दयानन्दजी और आर्यसमाज के प्रति आकर्षण उत्पन्न हुआ और आपके जीवन में देश, धर्म, जाति के सेवा के आदर्शों का उदय हुआ। धीरे-धीरे आर्यसमाज के प्रति कट्टर भक्तिभावना श्री घनश्यामदासजी के जीवन में समा गयी।

श्री घनश्यामदासजी गोयल ने अपने व्यावसायिक जीवन में पूर्ण सफलता प्राप्त की। आपने समूचे देश में अपने प्रतिष्ठानों की सुन्दर शृंखला का निर्माण कर दिया। आपने रोड ट्रांसपोर्ट का कार्य आरम्भ किया और उनके द्वारा संचालित रोड ट्रांसपोर्ट कार्पोरेशन, साउथ इस्टर्न रोडवेज़ लि० से सारा देश परिचित है। दिल्ली के समीप

सोनीपत के पास इन्होंने एक विशाल स्टील संयन्त्र की स्थापना की, जो, हरयाणा स्टील एण्ड एलायड के नाम से विख्यात है। आपने आयात-निर्यात व्यवसाय में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की।

श्री घनश्यामदासजी गोयल का जीवन सार्वजनिक जीवन है। सार्वजनिक सेवा के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में आपका व्यक्तित्व और कृतित्व उजागर हुआ है। श्री गोयलजी में सहृदयता की मात्रा भरपूर विद्यमान

श्री घनश्यामदासजी गोयल

है। मानव का उत्पीड़न और शोषण आपके लिये असह्य हो उठता है। प्रारम्भ से ही आप महर्षि दयानन्द और महात्मा गाँधी की विचारधारा के प्रबल समर्थक और पोषक रहे हैं। धार्मिक विचारों में आप वैदिक धर्म के अनुयायी एवं सादगी, सरलता, स्वदेश-भक्ति के व्रती व्यवसायी हैं। आपकी गुणग्राहकता, देश और समाज की सेवा एवं राष्ट्रभक्ति की भावना इत्यादि ऐसे गुण हैं जिनके कारण भारत सरकार ने आपको

२६ जनवरी १९७० ई० को 'पद्मश्री' की सम्माननीय राष्ट्रीय उपाधि से विभूषित किया है। आप हरयाणा के ही नहीं, व्यवसायी समाज के लोकप्रिय श्रेष्ठी एवं तपस्वी व्यक्तियों में परिगणित होते हैं।

श्री घनश्यमदासजी का जीवन 'सादा जीवन उच्च विचार' का प्रतीक है। आपकी सीधी-सादी खादी की वेश-भूषा में एक समृद्ध-सम्पन्न व्यवसायी की जगह सेवाव्रती समाजसेवी का सरल व्यक्तित्व झाँकता दिखायी पड़ता है। आपकी निगाहों में इतनी आत्मीयता है कि सामने वाले के हृदय पर बरबश अधिकार हो जाता है।

श्री गोयलजी कर्मपुरुष हैं और विपरीत परिस्थितियों में संघर्ष करना, हिम्मत न हारना और परमेश्वर का स्मरण रखना आपके जीवन के सिद्धान्त हैं। आपने सार्वजनिक सेवा के उद्देश्य से गोयल फाउण्डेशन ट्रस्ट और गोयल चेरिटेबल ट्रस्ट की स्थापना की है। इन ट्रस्टों के माध्यम से आप सार्वजनिक सहायता करते रहते हैं। दान देकर मञ्च पर स्वागत कराना आपके स्वभाव के विरुद्ध है। श्री गोयलजी राष्ट्र-सेवा, धर्म-सेवा ओर मानव-सेवा के प्रबल आदर्शवादी हैं।

श्री गजानन्दजी आर्य

श्री गजानन्दजी आर्य का जन्म राजस्थान के शेरड़ा नामक ग्राम में ९ अगस्त १९३० ई० को हुआ था। आपके पिता श्री लालमनजी आर्य कट्टर वैदिक निष्ठा के लिये समर्पितजीवन सेठ थे। इस प्रकार श्री गजानन्दजी के जीवन में उनके जन्म से ही आर्यसमाज और वैदिक धर्म के आदर्श आ गये हैं। प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में हुई और आपने पंजाब विश्वविद्यालय की हिन्दीरत्न परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। आपने कलकत्ता से मैट्रिक की शिक्षा पूर्ण की। पिताजी के स्वास्थ्य में क्षीणता आने के कारण आप अपने पारिवारिक व्यवसाय भारत टेक्सटाइल का कार्य सम्भालने लगे। एक सफल व्यवसायी के रूप में आपने अपने भाइयों के साथ इकोनॉमिक ट्रांसपोर्ट ऑर्गनाइजेशन की स्थापना की

और इसका सञ्चालन किया। सड़क-परिवहन के क्षेत्र में प्रसंशनीय उपलब्धि प्राप्त की।

श्री गजानन्दजी सफल व्यवसायी हैं, समृद्ध सेठ हैं, इसीके साथ आर्यसमाज के कार्यों के प्रति आपके हृदय में उच्चकोटि की श्रद्धाभक्ति है। श्री गजानन्दजी व्यवसायी सेठ होते हुए भी स्वाध्याय-प्रिय और

श्री गजानन्दजी आर्य

साहित्यनिर्माण में अच्छा योगदान करते रहते हैं। वेदधर्म और वैदिक आदर्श आपके रोम-रोम में समाया हुआ है।

श्री गजानन्दजी १९५० ई० में आर्यसमाज बड़ाबाजार के सदस्य बने। शीघ्र ही उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर कार्य करने लगे। आप आर्य-समाज बड़ाबाजार में वर्षों तक कोषाध्यक्ष, प्रचार-मन्त्री, मन्त्री, उप-प्रधान और प्रधान पदों पर प्रतिष्ठापूर्वक कार्य करते रहे हैं। श्री गजा-

नन्दजी १९७७ ई० में आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल व आसाम के प्रधान के रूप में सर्वसम्मति से निर्वाचित हुए। १९८० ई० तक आप इस पद पर रहे। आपने प्रतिनिधि सभा में आजीवन सदस्यों की संख्या में वृद्धि की, सभा का लेखाजोखा व्यवस्थित किया और सफलतापूर्वक आर्य महासम्मेलन आयोजित किया। अपने पिता श्री लालमनजी आर्य की प्रेरणा पर आपने संस्कार विधि का बंगला अनुवाद प्रकाशित करवाया। १९७७ ई० में बंगाल की प्रचण्ड बाढ़ के समय आप आर्य रिलीफ सोसाइटी के प्रधान बनाये गये। उस समय आपने स्वयं स्थान-स्थान पर जाकर पीड़ित लोगों की सेवा की।

श्री गजानन्दजी वैदिक अनुसन्धान ट्रस्ट, कलकत्ता के ट्रस्टी हैं। आप आर्यसमाज बड़ाबाजार ट्रस्ट के ट्रस्टी हैं। आप परोपकारिणी सभा के सदस्य हैं। श्री गजानन्दजी स्थानीय और प्रान्तीय स्तर से उठकर सार्वदेशिक स्तर पर प्रतिष्ठाप्राप्त विचारशील कार्यकर्ता हैं। आप सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के उपप्रधान रहे हैं।

श्री गजानन्दजी सफल व्यवसायी होने के साथ ही अध्ययनशील हैं। इस प्रौढ़ावस्था में भी संस्कृत व्याकरण का अभ्यास करते रहते हैं। आपमें लेख और कहानियाँ लिखने की सुन्दर अभिरुचि है। आपके लेख, कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओं में छपती रहती हैं। आपने कुछ पुस्तकें लिखीं और प्रकाशित की हैं—

१. आर्यसमाजोदय—यह आर्यसमाज की उन्नति के लिये पठनीय पुस्तक है।
२. वीरांगना महारानी कैकेयी—यह कैकेयी के चरित्र पर नूतन प्रसंशनीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है।
३. यादें—स्वर्गीय श्री लालमनजी आर्य के जीवन के प्रेरणापूर्ण संस्मरण पर आधारित यह सम्पादित सुपठनीय पुस्तक है।

श्री गजानन्दजी समृद्ध, सेठ और दानीवृत्ति के हैं। आपके परिवार

ने अपने गाँव में स्कूल, अस्पताल, सरोवर, कुआँ आदि बनवाया है। स्थान-स्थान पर आपकी उदार दानशीलता प्रकाश में आती रहती है। वैदिक संस्कार, आर्यसमाज के आदर्श श्री गजानन्दजी के सम्पूर्ण परिवार में पूरी निष्ठा से विद्यमान हैं। श्री गजानन्दजी के रूप में पूर्वाञ्चल में आर्यसमाज का एक सावधान सजग प्रहरी विद्यमान है।

श्री रघुवीर प्रसादजी गुप्त

श्री रघुवीर प्रसादजी गुप्त का जन्म उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले में खिरिद्दीपुर नामक गाँव में मिती बैशाख सुदी ७ शनिवार सम्वत् १९७४ विक्रमी को हुआ था। आपकी आरम्भिक शिक्षा गाँव में हुई और वहीं पूज्य पिताजी के सहयोग से कुछ कार्य आरम्भ किया। आपका सम्पर्क कबीरपन्थी साधुओं से हो गया था और इस प्रकार जीवन में परिवर्तन का आरम्भ तभी से हो गया था। सन् १९४२ ई० में आपने 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के क्रान्तिकारी प्रोग्राम में जम कर भाग लिया था। आपका खादी और स्वदेशी प्रेम तब से निरन्तर चला आ रहा है। सन् १९४२ ई० की क्रान्ति की शिथिलता के पश्चात् श्री रघुवीर प्रसादजी कलकत्ता आ गये और अति सामान्य रूप से अपना व्यावसायिक जीवन आरम्भ किया। यहाँ इनका सम्पर्क आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य पं० रमाकान्तजी शास्त्री से हुआ और इनमें आर्यसामाजिक निष्ठा दृढ़ होने लगी।

श्री रघुवीर प्रसादजी ने व्यवसाय में बड़ी अच्छी उन्नति की और आर्यसमाज में उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर कार्य करते रहे। आप आचार्य पं० रमाकान्तजी शास्त्री की प्रेरणा से आर्यसमाज बड़ाबाजार के सदस्य बने। कालक्रम से आप आर्यसमाज बड़ाबाजार के मन्त्री और प्रधान भी बने। कुछ दिनों के लिये आप आर्यसमाज कलकत्ता के भी सदस्य रहे, फिर जोड़ासांकू आर्यसमाज के सदस्य बने और आर्यसमाज जोड़ासांकू के प्रधान भी रहे। व्यावसायिक उन्नति के साथ आर्थिक

आढ्यता आती गयी और श्री रघुवीर प्रसादजी का कार्यक्षेत्र स्थानीय इकाइयों से ऊपर उठ कर प्रान्तीय स्तर पर चला गया। आप बंगाल प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान बने। आर्यसमाज बड़ाबाजार के ट्रस्ट के ट्रस्टी एवं बंगाल के गुरुकुलों के ट्रस्ट के भी ट्रस्टी हैं। श्री रघुवीर प्रसादजी रघुमल आर्य विद्यालय के बहुत दिनों से मन्त्री
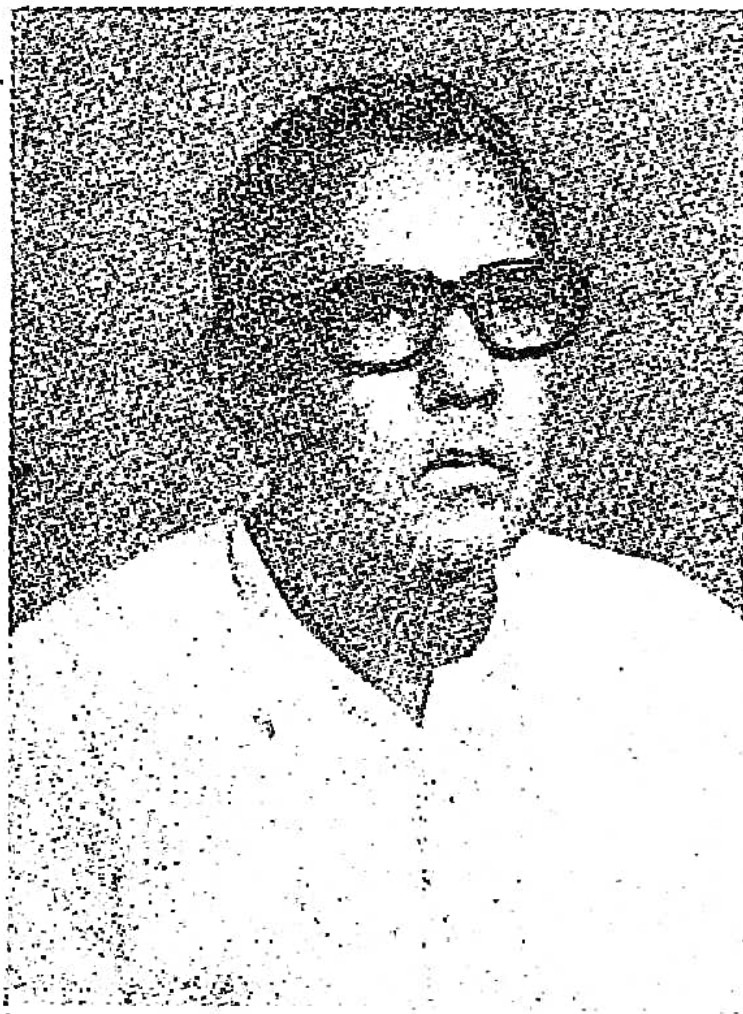
श्री रघुवीर प्रसादजी गुप्त

चले आ रहे हैं। आप रघुमल आर्य विद्यालय ट्रस्ट के भी ट्रस्टी हैं। श्री रघुवीर प्रसादजी में स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज के सिद्धान्तों के प्रति पूर्ण कट्टरता है। आपके संस्कार में सन्ध्या, स्वाध्याय, स्वदेशी-भावना सभी कुछ विद्यमान हैं। आपने अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन, नैरोबी में बड़े उत्साह से भाग लिया था।

श्री ओम् प्रकाशजी गोयल

श्री ओम्प्रकाशजी गोयलका जन्म श्री छबीलदासजी गोयलके घर, हिसार जिले में बालसमन्द नामक गाँव में हुआ। श्री ओम् प्रकाशजी की शिक्षा कलकत्ता विश्वविद्यालय में हुई। आपके अग्रज श्री घनश्यामदास जी गोयल और श्री श्रद्धानन्दजी गोयल आर्यसमाज के सम्पर्क में थे।

श्री ओम् प्रकाशजी गोयल

इस प्रकार श्री ओम् प्रकाशजी को आर्यसमाज शैशव में ही प्राप्त हो गया। श्री ओम् प्रकाशजी अपने विद्यार्थी जीवन से ही पारिवारिक सम्पर्क के कारण आर्यसामाजिक निष्ठा के बन गये। आरम्भ में श्री ओम् प्रकाशजी ने अपने रोड ट्रान्सपोर्ट के व्यवसाय की कलकत्ता शाखा का कार्यभार सम्भाला। उस समय आप सक्रिय रूप से आर्यसमाज कलकत्ता के कार्यकर्त्ता के रूप में उजागर हुए। श्री ओम्

प्रकाशजी गोयल कई वर्षों तक आर्यसमाज कलकत्ता के बड़े क्रियाशील उप-प्रधान रहे। आपकी प्रेरणा से आर्यसमाज कलकत्ता ने कई प्रकार के कार्य आरम्भ किये जिनमें एक कार्य वेद-प्रचार-ट्रस्ट की स्थापना था।

श्री ओम् प्रकाशजी कलकत्ता से दिल्ली चले गये और वहाँ उन्होंने अपने व्यवसाय के साथ आर्यसमाज के कार्य में सहयोग करना आरम्भ किया। श्री ओम् प्रकाशजी की गतिविधियाँ आर्यसामाजिक क्षेत्र में कई दिशाओं में हैं। आप सार्वदेशिक सभा के सक्रिय कार्यकर्त्ता एवं उप-प्रधान रहे हैं। आप दयानन्द-सालवेशन मिशन के प्रधान रहे और इन सब कार्यों को बड़ी उदारता से करते रहते हैं। श्री ओम् प्रकाशजी गोयल ने अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन, नैरोबी में बड़े उत्साह से अंश ग्रहण किया था। श्री ओम् प्रकाशजी अखिल भारतीय स्तर पर सक्रिय हैं। केन्द्र स्थान दिल्ली में रहने के कारण इनको जो सुविधा और सहूलियत प्राप्त है उसका ये अच्छा उपयोग करते हैं।

श्री शिवचन्दरायजी अग्रवाल

सेठ शिवचन्दरायजी अग्रवाल का जीवन संघर्षों का जीवन है। धरती की धूल से उठकर शिवचन्दरायजी अथक परिश्रम और संघर्षों से जूझते हुए लाखों के दानदाता दानवीर सेठ हैं।

श्री शिवचन्दरायजी का जन्म भिवानी (हरयाणा) जिले के लेघा ग्राम में ज्येष्ठ सुदी एकादशी सम्वत् १९८० विक्रम को हुआ था। आपके पिता का नाम श्री किशनलालजी तथा माता का नाम गौरा देवी था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में आरम्भ तो अवश्य हुई, किन्तु घर में निर्धनता अधिक थी और चौथी कक्षा की परीक्षा भी न दे सके। थोड़ी बहुत मुनीमी का अभ्यास करके नौकरी करने लगे।

नियति का चक्र! श्री शिवचन्दजी नौकरी के सिलसिले में ही जालन्धर आये। यहाँ शिवचन्दजी की भेंट अपने सगे फूफा सेठ

खेमचन्दजी से हुई। यहीं से शिवचन्दजी के भाग्य ने पलटा खाया। शिवचन्दजी अत्यन्त परिश्रमी और कठोर तपस्वी थे। खेमचन्दजी ने शिवचन्दजी को समीप से पहचाना और उन्हें अपना लिया। सेठ खेमचन्दजी ने १९४२ ई० में अपने देहान्त से पूर्व शिवचन्दजी को अपना चौथा लड़का घोषित कर दिया। सेठ खेमचन्द के उत्तराधिकार से तपस्वी, परिश्रमी और कठोर साधना करने वाले शिवचन्दरायजी सेठ शिवचन्दराय के रूप में प्रसिद्ध हो गये।

श्री शिवचन्दरायजी अग्रवाल

खेमचन्दजी नित्य यज्ञ करते थे। स्वाभाविक ही सेठ शिवचन्दराय ने उनकी सम्पत्ति में ही वसीयत नहीं ली, बल्कि उनकी धार्मिकता, परोपकारप्रियता को बहुत आगे बढ़ाकर स्वयं दानवीर बन गये। आपने अपने गाँव में बालक-बालिकाओं के लिए दो स्कूल और आर्यसमाज मन्दिर बनवाये। आप श्री गुरु विरजानन्द स्मारक ट्रस्ट, करतारपुर के प्रधान हैं। अनेकों सभासमितियों और संस्थाओं में उत्तरदायित्वपूर्ण

पदों पर हैं। इस समय आप आर्यसमाज कलकत्ता के उपप्रधान हैं। सेठ शिवचन्द्राय अग्रवाल के रूप में आर्यसमाज कलकत्ता को एक समर्थ एवं उदार सहयोगी मिल गया है।

श्रीमती विद्यावती दत्त

श्रीमती विद्यावती दत्त

श्रीमती विद्यावती दत्त का जीवन पीड़ितों की सेवा, वेदधर्म और सेवाव्रत का जीवन है। विद्यावतीजी का जन्म स्यालकोट, पाकिस्तान में १३ सितम्बर, १९०८ ई० को हुआ था। आपके पिताजी श्री ब्रजलालजी वैद्य अपने नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। श्री वैद्यजी की आर्य सिद्धान्तोंमें कट्टर निष्ठा थी। वे स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज के श्रद्धावान भक्त थे, पचासों वर्ष अपने नगर के आर्यसमाज के सक्रिय कार्यकर्ता थे, स्वयं सन्ध्या, हवन के बड़े भक्त थे, उनके सब पुत्र-

पुत्रियाँ, पुत्रवधुएँ आर्यसमाज के कार्य को अपना कार्य समझती हैं और सब कामों में आग्रणी रहती हैं। श्री वैद्यजी ने मृत्युभोज, स्यापा, सिठनी आदि को बन्द कराया, अछूतोद्धार का प्रचार किया। श्रीमती विद्यावती दत्त को ये सब आदर्श अपने पिता से विरासत में मिल गये। विद्यावतीजी की शिक्षा आर्य स्कूल में हुई और इस प्रकार आर्यसमाज के आदर्शों और कार्यों में इन्हें सदा से अच्छी रुचि रही है।

आपके पति श्री नन्दगोपालजी दत्त का गलीचा (कार्पेट) का सुन्दर व्यवसाय है। दत्त परिवार का पंजाब में आर्यसमाज के साथ और कांग्रेस के ऊँचे नेताओं के साथ अच्छा सम्पर्क रहा है। सुभद्रा जोशी दत्तजी की बहन हैं। सरोजिनी नायडू, डा० राजेन्द्र प्रसाद, सरदार पटेल आदि उच्च नेताओं के साथ इस परिवार का घरेलू सम्बन्ध था। देश-विभाजन के समय श्रीमती दत्त ने रिलीफ के कार्य में स्वयंसेविका बनकर कष्ट उठाकर कार्य किया। महात्मा गाँधीजी की स्वदेशभक्ति और राजनीतिक आदर्श श्रीमती दत्त के आदर्श हैं। इन्होंने स्वामी दयानन्द, महात्मा गाँधी और अपने पिताजी के आदर्शों की प्रेरणा से अनेक तरह के सामाजिक कार्य किये हैं। जाति-पाँति का बन्धन तोड़ कर बिना किसी लेन-देन के वैवाहिक सम्बन्ध इनके आदर्श रहे हैं।

सेवाकार्य माता दत्तजी के जीवन का आदर्श है। खादी पहनना, जरूतमन्दों की सेवा करना, लोगों के घरों से अवशिष्ट दवाइयाँ, कपड़े इत्यादि ग़रीबों को पहुँचाने में माता दत्तजी आनन्द का अनुभव करती हैं। स्वयं अच्छे सम्पन्न परिवार में रहकर भी क्रियाशीलता, अपने कामों को अपने हाथों करना, और सब प्रकार से ग़रीबों की सहायता करते रहना, माताजी के जीवन का आदर्श है। आर्यसमाज में रिलीफ के कार्यों के समय सर्वात्मना सेवा के कार्य में जुट जाना, स्वयं अपनी शक्ति से भरपूर देना और दूसरों के यहाँ से कपड़े आदि इकट्ठे करके रिलीफ में पहुँचाना इनके जीवन का व्रत-सा रहा है।

आर्यसमाज कलकत्ता में सदा से माता विद्यावती दत्त का सहयोग अग्रगण्य है। आप अनेक बार महत्त्वपूर्ण पदों पर अन्तरंग सभा में रहती हैं। श्रीमद्दयानन्द दातव्य औषधालय के लिये दानसंग्रह करने में माता दत्तजी का प्रेरणादायक योगदान रहता है। माता दत्त परम ईश्वर-विश्वासी और परस्वार्थी वृत्ति की महिला हैं। ईश्वर-विश्वास, धर्मकार्य, निर्धन-सेवा, यही इनका जीवन है।

श्री फूलचन्दजी आर्य

श्री फूलचन्दजी आर्य का जन्म हरियाणा प्रान्त के जिला हिसार के ग्राम गुरेरा में १४ मई १९३२ ई०, शनिवार को हुआ था। श्री फूलचन्दजी का बाल्य-काल गाँव में ही बीता था। आपके ज्येष्ठ भ्राता श्री चन्दू-लालजी व्यावसायिक सिल-सिले में कलकत्ता आये और फूलचन्दजी भी उन्हींके साथ कपड़े के व्यवसाय में लग गये। फूलचन्दजी का सम्बन्ध प्रतिष्ठित आर्य परिवार के श्री लालमनजी आर्य से था और उन्हींके सम्पर्क से यह सम्पूर्ण परिवार आर्यसमाज के सम्पर्क में आकर निष्ठावान् आर्यसमाजी बन गया। श्री फूलचन्दजी विचारों से कट्टर और हृदय से बड़े सरल हैं। आप आर्यसमाज बड़ाबाजार के सक्रिय कार्यकर्ता, कई वर्षों तक मन्त्री और कई वर्षों तक प्रधान रहे हैं। आप वैदिक अनुसन्धान ट्रस्ट के ट्रस्टी हैं। आप बड़ाबाजार आर्यसमाज ट्रस्ट के भी ट्रस्टी हैं। कलकत्ता में आर्यसमाज का कोई भी कार्य आरम्भ होता

श्री फूलचन्दजी आर्य

है तो श्री फूलचन्दजी उसे अपना कार्य समझकर सहयोग देने लगते हैं। आर्यसमाज कलकत्ता के कार्य में फूलचन्दजी का उदार सहयोग बना रहता है। आप आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल के भी उप-प्रधान रहे हैं।

श्री फूलचन्दजी हरियाणा नागरिक संघ, कलकत्ता के अध्यक्ष रहे हैं। आप दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय, हिसार के सदस्य हैं। आपने अपने गाँव में हाई स्कूल, हॉस्पिटल, कन्या पाठशाला जैसे सार्वजनिक सेवा के अनेकों कार्य किये हैं।

श्री फूलचन्दजी आर्य का समस्त परिवार—सभी भाई और पुत्र आर्यसमाजी निष्ठा के हैं। आपने वस्त्र उद्योग में अच्छा नाम कमाया है। आप आर्यसमाज के अति समर्थ एवं समर्पित स्तम्भ हैं।

श्री शान्तिस्वरूपजी गुप्त

श्री शान्तिस्वरूपजी गुप्त में विद्या और संचालन व्यवस्था दोनों प्रतिभाएँ प्रभूत रूप में विद्यमान हैं। आपको संस्कृत विद्या से प्रेम रहा है और इस प्रेम के कारण आपने वैदिक साहित्य और परवर्ती साहित्य का विशेष रूप से अध्ययन किया है। आप आर्यसमाज कलकत्ता के स्वाध्यायशील कार्यकर्ताओं में रहे हैं। श्री शान्तिस्वरूपजी की वैदिक निष्ठा अपनेमें दृढ़ रही है। आप आर्यसमाज कलकत्ता के प्रधान, मन्त्री, उपमन्त्री, संयुक्त मन्त्री जैसे उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर रहे हैं। आप आर्यसमाज कलकत्ता द्वारा संचालित आर्य विद्यालय की कार्यकारिणी में उत्तरदायित्वपूर्ण भूमिका निभाते हुये विद्यालय के मन्त्री भी रहे हैं। श्री शान्तिस्वरूपजी आर्यसमाज बड़ाबाजार के सदस्य बने और वहाँ भी प्रधान आदि पदों पर रहे हैं। श्री शान्तिस्वरूपजी प्रान्तीय संगठन आर्य प्रतिनिधि सभा वंग-आसाम में भी अधिकारी रहे हैं। जिस समय सन् १९५९ ई० में कलकत्ता में षष्ठ आर्य महासम्मेलन हुआ था, उस समय श्री शान्तिस्वरूपजी गुप्त स्वागत कारिणी समिति के अर्थमन्त्री थे।

श्री शान्तिस्वरूपजी गुप्त एक सफल व्यवसायी हैं। आपने प्रभूत धनोपार्जन द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त की है। अध्ययन, यज्ञ, वेदपाठ, यह सब श्री गुप्तजी की अभिरुचि में हैं। श्री शान्तस्वरूपजी को देशाटन से भी स्नेह है। आपने एकाधिकवार विदेशों की यात्रा की है और अपने विदेशों के संस्मरण इन्होंने पुस्तक रूप में प्रकाशित किये हैं। इन

श्री शान्तिस्वरूपजी गुप्त

संस्मरणों में इनकी साहित्यप्रियता, रसिकता और लेखनप्रियता सुस्पष्ट प्रदर्शित होती है। श्री शान्तिस्वरूपजी ने विदेशी जीवन पर अन्तर्दृष्टि से भी संस्मरणात्मक विवेचन किया है। सन् १९७८ ई० में जब नैरोबी में आर्य महासम्मेलन हुआ था तो उसमें भी आपने उत्साह से भाग लिया था। श्री शान्तिस्वरूपजी ने दक्षिण कलकत्ता आर्य विद्यालय की स्थापना में योगदान किया था और बहुत दिनों तक आप उसके अध्यक्ष एवं मन्त्री जैसे पदों पर रहे हैं।

श्री ईश्वरचन्दजी आर्य

श्री ईश्वरचन्दजी आर्य का जन्म फैज़ाबाद (यू० पी०) ज़िले के टाण्डा नामक नगर में १० मार्च, १६४३ ई० को हुआ था। आपके पिता जी श्री धर्मचन्द जायसवाल और माताजी श्रीमती डंगरा देवी थीं। श्री ईश्वरचन्दजी सामान्य शिक्षा अपनी जन्मभूमि में प्राप्त कर आजीविका के लिये कलकत्ता आ गये। यहाँ आपने कुछ परिचितों, सम्बन्धियों के यहाँ नौकरी आरम्भ की और फिर अपने अध्यवसाय से एक प्रतिष्ठित सुसम्पन्न व्यवसायी बन गये। ईश्वरचन्द जी का जीवन परिश्रम, ईमानदारी, सदाचार, सद्-व्यवहार का वरदान है।

श्री ईश्वरचन्दजी आर्य

श्री ईश्वरचन्दजी आर्य-समाज कलकत्ता के कार्य-कर्त्ता श्री सीतारामजी के परिचय से आर्यसमाज की ओर आकृष्ट हुए। श्री पूनमचन्दजी आर्य के सम्पर्क से आपकी सक्रियता और अधिक बढ़ गयी। श्री ईश्वरचन्दजी स्वभाव से सरल, मिलनसार और परम भरोसे के व्यक्ति हैं। ईश्वरचन्दजी के रूप में आर्यसमाज को ऐसा धार्मिक उत्साही कार्यकर्त्ता मिल गया है जिसे न नाम चाहिये न पद। विज्ञापनबाजी से कोसों दूर रहकर आर्यसमाज में मुस्तैदी के साथ सेवाकार्य करना, अपनी शक्तिभर पूर्णरूप से सहयोग करना, जीवन में वैदिक धर्म की निष्ठा का पालन करना, समाजसुधार के कार्यों में सहयोग करना, अपनी

बिरादरी के लोगों में भी उच्च आदर्शों का प्रचार करते रहना, ईश्वरचन्द्जी का आदर्श है। ईश्वरचन्द्जी के रूप में आर्यसमाज कलकत्ता को एक निस्पृह युवक सेवाव्रती मिल गया है।

श्री दिनेशचन्द्रजी शर्मा

कभी-कभी संगठन में कोई-कोई व्यक्ति ऐसे भी आ जाते हैं जो जितना दीखते हैं उससे कहीं अधिक होते हैं। आयुर्वेद भास्कर श्री दिनेशचन्द्रजी शर्मा दशाब्दियों तक आर्यसमाज कलकत्ता में इसी रूप में रहे। श्री दिनेशचन्द्रजी की जन्मभूमि पूर्वी उत्तर प्रदेश है किन्तु आपकी शिक्षा-दीक्षा गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में हुई। श्री दिनेशचन्द्रजी शर्मा ने गुरुकुल का स्नातक होने के साथ आयुर्वेद की अच्छी योग्यता प्राप्त की थी। वहीं से आप आर्यसमाज कलकत्ता में आ गये।

श्री दिनेशचन्द्रजी शर्मा

आर्यसमाज कलकत्ता में श्री दिनेशचन्द्रजी शर्मा का स्थान तो वैतनिक था, किन्तु वे किस रूप में कितने महत्त्वपूर्ण थे, यह थोड़े में नहीं कहा जा सकता। श्री दिनेशचन्द्रजी शर्मा कार्यालय के अध्यक्ष थे, आर्यसमाज कलकत्ता के पंडित, पुरोहित और प्रचारक थे। अधिकारी आर्यसमाज कलकत्ता के सारे कार्यों को बड़े भरोसे के साथ इनके ऊपर छोड़ देते थे। इनकी सूझ-बूझ ऐसी थी कि आफिस के लेखा-रजिस्टरों आदि को सुव्यवस्थित करने में इन्होंने बड़ा अच्छा सहयोग किया था।

श्री दिनेशचन्द्रजी शर्मा संस्कृत के अच्छे विद्वान् हैं। धाराप्रवाह

संस्कृत बोलने और लिखने की क्षमता है। श्री दिनेशचन्द्रजी हिन्दी में भी अच्छा लिखते-बोलते रहे हैं। सत्यार्थ प्रकाश की कथा हो या उपदेश, कोई संस्कार हो या अन्य कर्मकाण्ड, श्री दिनेशचन्द्रजी में इन सब कार्यों के करने की अद्भुत क्षमता है। जब ठाकुर अमर सिंहजी कलकत्ता आये और उन्होंने महर्षि दयानन्द दातव्य औषधालय की व्यवस्था बनायी तो कविराज दिनेशचन्द्रजी शर्मा इसके कविराज वैद्य भी नियुक्त हो गये। आपकी सूझ-बूझ और सफल प्रयोगों के कारण दातव्य औषधालय की अच्छी सफलता हुई। पीछे श्री दिनेशचन्द्रजी शर्मा यहाँ से चले गये, किन्तु आर्यसमाज कलकत्ता में उनके जैसे सफल व्यवस्थापक कार्यकर्ता का अभाव सदा बना रहा है और उनके स्नेही बन्धुओं और भक्तों में उनकी मधुर स्मृतियाँ आज भी संजोयी हुई हैं।

श्री दयानन्दजी आर्य

श्री दयानन्दजी आर्य का जन्म राजस्थान में शेरड़ा नामक ग्राम में श्री भूपालजी आर्य के घर ८ सितम्बर १९४१ ई० को हुआ था। श्री भूपालजी अपने जीवन में पूर्ण आर्यसमाजी निष्ठा के व्यक्ति थे। श्री भूपालजी आर्यसमाज के प्रचार में सदा सहयोग करते रहते थे। श्री रामानन्दजी आर्य, श्री भूपालजी आर्य और श्री लालमनजी आर्य— यह आर्यबन्धुओं का त्रिक अपनी आर्यसमाजी निष्ठा के लिये विख्यात रहा है। इस प्रकार श्री दयानन्दजी आर्य को आर्यसमाज और आर्यसमाज के सिद्धान्त एवं मिशन दायभाग में अपने पिताजी से मिल गये हैं।

श्री दयानन्दजी आर्य ने आरम्भिक शिक्षा जन्मभूमि में प्राप्त की और व्यावसायिक कार्य के सिलसिले में अपने पिताजी के पास कलकत्ता आ गये। यहाँ भारत टेक्सटाइल के साथ आपलोग 'इकानमिक ट्रान्सपोर्ट आर्गनाइज़ेशन' और 'आर्याज सेन्ट्रल ट्रांसपोर्ट

आफ इण्डिया' जैसी बड़ी परिवहन कम्पनियों का संचालन करने लगे। आर्य परिवार आर्यसमाज के प्रति अपने सहयोग के लिये सारे देश में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। श्री दयानन्दजी आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्य हैं और सदा से सहयोगी रहे हैं। आर्यसमाज के हर कार्य को अपना समझकर अपना लेते हैं। अपने परिवार में, व्यावसायिक प्रतिष्ठानों में सदा आर्यसामाजिक भावना का पूर्णरूप से आदर करते हैं।

श्री दयानन्दजी आर्य

श्री दयानन्दजी आर्य 'गुड्स ट्रान्सपोर्ट एसोसियेशन' के बहुत वर्षों तक प्रधान रहे हैं। आपमें सामाजिक संगठन और व्यावसायिक संगठन की अच्छी प्रतिभा है। श्री दयानन्दजी हरियाणा चेरिटेबुल ट्रस्ट के ट्रस्टी, हरियाणा सेवासदन के सदस्य एवं कलकत्ता गुड्स ट्रान्स-

पोर्ट एसोसियेशन के परामर्श दाता हैं। श्री दयानन्दजी आर्यसमाज और स्वामी दयानन्दजी के प्रति पूर्ण आदरभाव और उदारतापूर्वक दानशीलता का व्यवहार रखते हैं। इस प्रगतिशील युग में सामाजिक और धार्मिक संगठनों में भी नवयुग की तकनीक और नई पद्धतियों से प्रचार-प्रसार एवं संगठन की व्यवस्था आवश्यक हो गयी है। श्री दयानन्दजी इस प्रकार की क्षमता से भी परिपूर्ण हैं और आर्यसमाज के प्रति अपने कर्तव्य को सदा स्मरण रखते हैं।

श्री मोहनलालजी अग्रवाल

श्री मोहनलालजी अग्रवाल का जन्म २४ जून सन् १९३६ ई० को अलीगढ़ जिले में श्री सर्वदानन्द साधु आश्रम के पास कलाई गांव में हुआ। गाँव की प्रारम्भिक शिक्षा में स्कूल के शिक्षक की प्रेरणा से आर्यसमाज के सम्पर्क में आये। आपके पिता श्री चोखेलालजी और माता श्रीमती चमेली देवीजी परम धार्मिक और सबके सुख-दुख में हाथ बँटाने वाले थे। श्री मोहनलालजी सन् १९५० ई० में कलकत्ता आये और अपने अग्रज के पास रहकर अपना स्वतन्त्र व्यवसाय आरम्भ किया। आप आर्यसमाज बड़ाबाजार के सदस्य बने और कई बार आर्यसमाज बड़ाबाजार के मन्त्री एवं प्रधान पदों पर रहकर आर्य-समाज की सेवा करते रहे। श्री मोहनलालजी आचार्य रमाकान्तजी के सम्पर्क में आये और आचार्यजी के सम्पर्क में आपकी आर्य सामा-जिक निष्ठा और कार्यक्षमता अधिक बलवती हुई। श्रीमोहनलालजी आर्य प्रतिनिधि सभा के उप-प्रधान एवं सार्वदेशिक सभा के अन्तरंग सदस्य रहे।

बंगला देश से विस्थापित शरणार्थियों के लिये जब आर्यसमाज कलकत्ता में रिलीफ सोसाइटी बनी तो उस समय श्री मोहनलालजी ने रिलीफ कार्य को बड़ी योग्यता से निवाहा था। आर्यसमाज स्थापना शताब्दी के विशाल समारोह के आप मन्त्री थे। श्रीमोहनलालजी ने

एक विदेश यात्रा का संयोजन किया एवं योरोप और अमेरिका के कई देशों में सुविधानुसार आर्यसमाज के प्रचार का प्रयास करते रहे। श्री मोहनलालजी बड़े सफल संयोजक हैं। आपने कलकत्ता के पूरे दल के साथ अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन लन्दन में बड़े उत्साह से भाग

श्री मोहनलालजी अग्रवाल

लिया। आप आर्यसमाज बड़ाबाजार के कार्यकर्ता तो हैं ही, आर्य-समाज कलकत्ता के भी हर कार्य में सहयोग करते रहते हैं।

प्रो० श्यामकुमार राव (स्वामी अग्निवेशजी)

प्रोफेसर श्यामकुमार राव का जन्म दिनांक २१-९-१९३९ ई० को आन्ध्र प्रदेश के ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आपके पिता बृटिश काल में बड़े पुलिस आफिसर थे, किन्तु इतने राष्ट्रभक्त थे कि पुलिस की नौकरी करते हुए भी घर में खादी पहनते थे। प्रोफेसर रावजी को राष्ट्रभक्ति के संस्कार जन्म से ही मिले थे। इनके पिताजी अल्पायु में ही दिवंगत हो गये और इस प्रकार श्याम कुमारजी हाई स्कूल पास

करने से पूर्व ही पिता की छाया से रहित हो गये। बिलासपुर (मध्य प्रदेश) में शैशव के दिन काटकर हाई स्कूल की पढ़ाई समाप्त कर श्री श्यामजी राव कालेज की पढ़ाई के लिये अपने मामाजी के पास कलकत्ता आ गये। यहाँ अकस्मात् एक सभा में स्वर्गीय आचार्य पं० रमाकान्तजी शास्त्री के सम्पर्क में आये यह सम्भवतः सन् १९५५-५६ ई० की घटना है। उस समय श्यामकुमार रावजी कलकत्ता के प्रसिद्ध सिटी कालेज में आई० काम० के विद्यार्थी थे। आचार्यजी से इनका सम्पर्क श्यामजी के जीवन में एक नया मोड़ सिद्ध हुआ। आचार्यजी ने इन किशोर विद्यार्थी को सब प्रकार से अपना अन्तेवासी शिष्य बना लिया। श्यामजी आचार्यजी के परिवार में ही पुत्रवत् रहने लगे और शिष्य के रूप में आर्यसमाज के सिद्धान्तों का भी अध्ययन करने लगे। श्री श्यामजी आरम्भ से ही चरित्र के बलवान, विचारों के कट्टर और अपने आदर्श के प्रति परम निष्ठावान् थे। आपने कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम० काम०, एल-एल० बी० की परीक्षा पास की और कलकत्ता के अति प्रतिष्ठित कालेज सेन्ट जेवियर्स में कामर्स विभाग में प्राध्यापक नियुक्त हुए। कुछ दिनों तक कलकत्ता विश्वविद्यालय में एम० काम० की कक्षाओं को भी आपने पढ़ाया था।

प्रोफेसर श्यामकुमार रावजी ने वयस्क होते ही आर्यसमाज कलकत्ता की सदस्यता ग्रहण की और कई वर्षों तक आप आर्य-समाज के उपमंत्री रहे। प्रो० श्यामकुमार रावजी का जीवन आरम्भ से ही क्रान्ति का जीवन था। आर्यसमाज कलकत्ता में एक सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में आपने साहित्य प्रकाशन, विवाद-सभाओं का संगठन और विशेष रूप से विदेशी ईसाई पादरियों के विरुद्ध उन्होंने बड़ा सुन्दर प्रचार किया था। यह इसलिये और भी क्रान्तिमूलक है कि यह सारा प्रोग्राम उन्होंने उन वर्षों में अपनाया था जब वे सेन्ट जेवियर्स कालेज के एक प्रतिष्ठित प्राध्यापक थे और उनके इन कामों में सेन्ट जेवियर्स कालेज के विद्यार्थी भी

सहयोग देते थे। कई बार धोती, कुर्ता, जैकेट, शुद्ध खादीधारी राष्ट्र-भक्त के रूप में सेन्ट जेवियर्स कालेज में पढ़ाने पहुँच जाते थे। यह सब उनके क्रान्तिकारी जीवन का अंग था। यहाँ रहते हुए उन्होंने मैक्स-मूलर एक्सपोज्ड (Maxmullar Exposed) नामक एक पुस्तक का प्रकाशन आर्यसमाज कलकत्ता से किया था। जिसको लेकर जर्मन कॉन्सुलेट बहुत नाराज़ हुआ था। प्रोफेसर श्यामकुमार राव अपनी क्रान्तिमयी निष्ठा में इतने दृढ़ थे कि कभी किसी की प्रसन्नता-अप्रसन्नता की परवाह न करते थे।
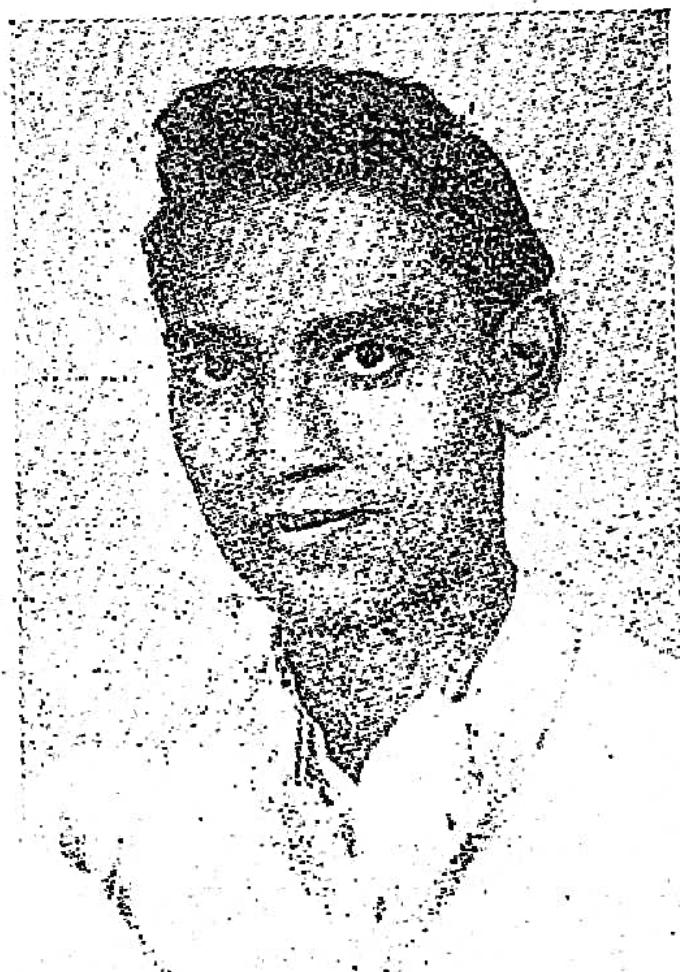
प्रो श्यामकुमार राव (स्वामी अग्निवेशजी)

प्रोफेसर श्यामकुमार राव पर पं० बुद्धदेवजी विद्यालंकार (स्वामी समर्पणानन्द) का और उनके साहित्य का बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा था। उनके सान्निध्य में श्याम रावजी ने वर्ण-व्यवस्था और कम्यूनिज्म का गहरा अध्ययन किया। उन्हींकी प्रेरणा से प्रो० श्यामकुमार रावजी गुरुकुल झज्झर देखने गये और वहाँ इतने प्रभावित हुये कि

नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की दीक्षा ले ली। यहाँ से श्याम रावजी का सम्बन्ध आर्यसमाज कलकत्ता से विछिन्न हुआ और वे पंजाब-हरियाणा में आर्यसमाज का कार्य करने लगे। कुछ ही दिनों में उन्होंने संन्यास की दीक्षा ली और उनका 'स्वामी अग्निवेश' नामकरण हुआ। स्वामी अग्निवेश ने पंजाब-हरियाणा में आर्यसामाजिक जगत् में क्रान्ति का स्वर बुलन्द किया। वैदिक आदर्शों के राजनीतिक स्वरूप के लिये इन्होंने आर्यसभा का गठन किया। आपातकालीन स्थिति में छिप कर कार्य करते रहे। जनता सरकार की लहर आने पर हरियाणा के शिक्षा मन्त्री बने और अब सर्वात्मना बन्धुवा मज़दूरों के उद्धार के कार्य में इस प्रकार लगे हुये हैं कि अन्य सब कुछ उपेक्षित हो गया है।

श्री कुलभूषणजी आर्य

श्री कुलभूषणजी आर्य

श्री कुलभूषणजी का जन्म २० फ़रवरी सन् १९४१ ई० को पश्चिमी पाकिस्तान में पिड़ी सेत-पुर ग्राम में हुआ था। आपके पिताजी अध्यापक थे। देश-विभाजन के पश्चात् पिताजी अपना परिवार लेकर भारत में आ गये और आर्य हाई स्कूल कुरु-क्षेत्र में अध्यापक नियुक्त हुये। कुलभूषणजी की प्रारम्भिक शिक्षा यहीं आर्य हाई स्कूल, कुरुक्षेत्र में हुई।

आरम्भ से ही आप आर्यसमाज के सम्पर्क में रहे। अजमेर की धर्म-शिक्षा की परीक्षा पास की और आर्यसमाज कुरुक्षेत्र के सत्संग में उत्साहपूर्वक भाग लेते रहे। इस प्रकार कुलभूषणजी अपने विद्यार्थी जीवन में सन् १९४८ ई० से ही आर्यसमाज के सम्पर्क में हैं। आपने कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी० काम० और गौहाटी विश्वविद्यालय से

एम० काम० पास किया। सन् १९६५ ई० में आप गौहाटी में रहते हुए आर्य परिवारों में सत्संगों का उत्साहपूर्वक संयोजन करते रहे। आर्य समाज गौहाटी की स्थापना के समय आप आर्यसमाज गौहाटी के सदस्य थे।

श्री कुलभूषणजी आर्य ने सन् १९६५ ई० में अपना निजी व्यवसाय आरम्भ किया जो प्रभुकृपा से सुचारु रूप से सफलतापूर्वक चल रहा है। श्री कुलभूषणजी आर्यसमाज के लिए पूर्णरूपेण समर्पित हैं। आप सन् १९६५ ई० के पश्चात् कलकत्ता समाज के सम्पर्क में आये। जीवन की ऊँची-नीची मंजिलों पर चलते हुए अपने जीवन को स्वाध्यायशील, वेदभक्त बनाये रखते हैं। आत्मा-परमात्मा, आध्यात्मिकता आपके प्रिय विषय हैं। आपका सामाजिक कार्यक्षेत्र आर्यसमाज ही है। आर्य विचारों का प्रचार और प्रसार ही आपके जीवन का प्रिय व्रत है।

श्री सत्यनारायणजी सेठ आर्य

श्री सत्यनारायणजी सेठ आर्य

श्री सत्यनारायणजी सेठ आर्य का जन्म उत्तर प्रदेश के जौनपुर शहर में मछरटा नामक मोहल्ला में मार्गशीर्ष सन् १९३१ ई० को हुआ। आप आजीविका के सिलसिले में कलकत्ता आये और व्यावसायिक कार्य में लग गये। सन् १९५८ ई० में श्री सत्यनारायणजी का सम्पर्क महाशय रघुवीर प्रसादजी गुप्त से हुआ और श्री गुप्तजी ने श्री सत्यनाराण सेठ का सम्पर्क आचार्य पं० रमाकान्तजी शास्त्री से करा दिया। पं० रमाकान्तजी के सम्पर्क में आकर श्री सत्यनारायणजी सेठ कट्टर आर्य-

समाजी बन गये। आप आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्य बने और बहुत दिनों से आर्यसमाज कलकत्ता के पुस्तकाध्यक्ष जैसे पदों पर अधिकारी रहे। अनेक वर्षों से आप अन्तरंग के सदस्य रहते आ रहे हैं।

श्री सत्यनारायणजी सेठ आर्यसमाज के सदस्य ही नहीं, एक छोटे-मोटे प्रचारक भी हैं। विधवा विवाह और शुद्धि जैसे कार्यों में आपकी बड़ी रुचि रहती है। श्री सत्यनारायणजी में हिन्दू, हिन्दुत्व और हिन्दू राष्ट्रीयता के भाव बहुत अधिक हैं। आप राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और अन्य कई प्रकार की सामाजिक संस्थाओं से सम्बन्धित हैं। श्री सेठजी आर्यसमाज के दीवाने भक्त हैं।

श्री रामधनीजी जायसवाल

श्री रामधनीजी जायसवाल

श्री रामधनी जायसवाल का जन्म सम्वत् १९८५ में चैत्र मास की शुक्ला चतुर्दशी, मंगलवार के दिन हुआ था। आप कैलाश बोस स्ट्रीट, कलकत्ता में रहकर अपने व्यवसाय में लगे हैं। श्री रामधनीजी सन् १९४२ ई० में आचार्य पं० रमाकान्तजी शास्त्री के सम्पर्क में आये। उन्हींकी प्रेरणा से आप आर्यसमाज के सदस्य बने। श्री रामधनीजी प्रोफेसर श्यामकुमार राव की प्रेरणा से आर्यसमाज में सक्रिय रहने लगे। आपकी पत्नी श्रीमती रामदुलारी जायसवाल आर्य स्त्री-समाज कलकत्ता की बड़ी उत्साही एवं सक्रिय कार्यकर्त्री हैं। श्री रामधनी एवं श्रीमती रामदुलारी की युगल-जोड़ी आर्यसमाज कलकत्ता के हर कार्य में सहयोगी बनी रहती है। आप दोनों ही आर्यसमाज कलकत्ता के सभासद् हैं और श्रद्धाभक्ति से आर्यसमाज के कार्य में लगे रहते हैं।

श्री अमरसिंहजी सैनी

श्री अमरसिंहजी सैनी की जन्मभूमि हिसार, हरियाणा प्रान्त है। आपका परिवार हिसार में सामाजिक प्रतिष्ठा से बढ़ा-चढ़ा है। सैनी परिवार के लोग कलकत्ता में घड़ियों के व्यवसायी हैं और अमरसिंहजी सैनी ने भी कलकत्ता में आकर घड़ियों का काम सीखा और अमर वाच कम्पनी के नाम से आपने राधाबाजार कलकत्ता में घड़ियों की दूकान खोल ली। श्री सैनीजी बड़ी सफलता और उत्साह से अपने व्यावसायिक जीवन में सफलता के मार्ग पर बढ़ते जा रहे हैं।

हिसार तो हरियाणा में आर्यसमाज का अच्छा केन्द्र है ही। श्री अमरसिंहजी कलकत्ता आने के पश्चात् सन् १९५२ ई० से आर्य-समाज में सक्रिय भाग लेने लगे। श्री अमरसिंहजी नवयुवक हैं और आर्यसमाज के निष्ठावान् सिपाही हैं। आर्यसमाज के किसी भी कार्य में श्री अमरसिंहजी स्वयंनियुक्त स्वयंसेवक की तरह सेवाकार्य में लग जाते हैं। चाहे साप्ताहिक सत्संग हो या वार्षिकोत्सव, यज्ञ की

वेदी हो या नगरकीर्तन की शोभायात्रा, अमरसिंहजी पूरे उत्साह और लगन के साथ आर्यसमाज की सेवा में तत्पर रहते हैं।

श्री अमरसिंहजी आर्यसमाज कलकत्ता के भरोसे के साथी कार्यकर्ता हैं। आप कई वर्षों तक आर्यसमाज कलकत्ता के उप-मन्त्री रहे हैं। आप आर्य वीर दल के अधिष्ठाता भी रह चुके हैं। श्री अमरसिंहजी में जहाँ काम के प्रति उत्साह है वहीं आध्यात्मिक साधना के

श्री अमरसिंहजी सैनी

प्रति पूरा आग्रह है। आर्यसमाज कलकत्ता द्वारा संचालित आध्यात्मिक शिविर में श्री अमरसिंहजी ४-५ मील दूर से चलकर भी प्रातः काल आध्यात्मिक शिविर में लगभग महीने भर निरन्तर योगदान करते रहे हैं। एक कुशल व्यवसायी, उत्साही कार्यकर्ता होने के साथ ही अमरसिंहजी में आध्यात्मिक अभिरुचि भी पर्याप्त है। आप साप्ताहिक सत्संगों में श्रद्धापूर्वक सम्मिलित होते हैं। इनके सामाजिक कार्यों में इनकी धर्मपत्नी श्रीमती सैनी भी सदा सहयोग करती रहती हैं।

श्री शीतल प्रसादजी आर्य

श्री शीतल प्रसादजी आर्य का जन्म १५ अगस्त सन् १९३५ ई० को ग्राम मझवा, जिला मिर्जापुर (उ० प्र०) में हुआ था। आपके पिता स्वर्गीय काशीराम सावजी गाँव में रहते थे। श्री शीतलप्रसादजी की आरम्भिक शिक्षा गाँव में ही हुई। आप व्यवसाय के सिलसिले में कलकत्ता आये।

श्री शीतल प्रसादजी आर्य

सन् १९७२ ई० में आर्यसमाज बड़ा-बाजार का वार्षिकोत्सव हो रहा था। उस वार्षिकोत्सव में प्रवचनों को सुनकर शीतल प्रसादजी इतने प्रभावित हुए कि आर्यसमाज के सदस्य बन गये। आर्य-समाज के प्रभाव से शीतल प्रसादजी के हृदय में सत्य, निष्ठा और ईमान के भाव ऐसे जगे कि आपने राशन की कन्ट्रोल की दूकान छोड़ दी और मकान सम्बन्धी रंग और हार्डवेयर की दूकान आरम्भ कर दी। श्री शीतल प्रसादजी बड़े श्रद्धालु भक्त हैं। दैनिक यज्ञ के व्रत के साथ श्री शीतल प्रसादजी आर्यसमाज कलकत्ता के सभी वेद पारायण यज्ञों में बड़ी श्रद्धाभक्ति से यज्ञ की व्यवस्था किया करते हैं। आप आर्यसमाज के सक्रिय सेवक हैं।

श्री सत्यानन्दजी आर्य

श्री सत्यानन्दजी आर्य का जन्म १२ अक्टूबर सन् १९४९ ई० को राजस्थान के शेरड़ा नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता श्री लालमनजी आर्य आर्यसमाज के परम भक्त और निष्ठावान् कार्यकर्त्ता थे। इस प्रकार सत्यानन्दजी का जन्म ही आर्यसमाजी परिवार में हुआ। श्री सत्यानन्दजी की शिक्षा कलकत्ता में हुई। यहां कालेज

श्री सत्यानन्दजी आर्य

शिक्षा के दिनों में परिवार की आर्यसामाजिक भूमिका के साथ श्री सत्यानन्दजी के साथ एक और संगठनात्मक सुयोग बैठ गया। सत्यानन्दजी मेधावी छात्र थे और सेण्टजेवियर्स कालेज के विद्यार्थी थे। पारिवारिक रूप से आप आचार्य उमाकान्तजी उपाध्याय के सम्पर्क में आये और कालेज में प्रोफेसर श्यामकुमार राव (स्वामी अग्निवेशजी)

के संपर्क में आये। दोनों ओर से आर्यसामाजिक निष्ठा ज़ोर पकड़ने लगी। एक ओर अध्ययन, स्वाध्याय, सन्ध्या, सत्संग की दीक्षा बढ़ने लगी तो दूसरी ओर आर्यसमाज के कार्यों में जीवन अर्पित करने की भावना बलवती होने लगी। उस समय आर्य परिवार के दो युवक— श्री सत्यानन्दजी आर्य और श्री चन्द्रमोहनजी आर्य ने प्रो० श्यामकुमार राव के साथ आर्यसमाज के मिशनरी कार्य को बहुत आगे बढ़ाया था। आर्यसमाज का साहित्य वितरण करने में, विदेशी पादरियों के विरुद्ध मोर्चा लगाने में इन आर्य युवकों का सहयोग आदर्श रूप में था। इतने आढ्य सुसम्पन्न परिवार के समर्थ व्यवसायी होकर भी सत्यानन्दजी में सेवा की भावना और आर्यसमाज के लिये समर्पण की भावना आदर्श रूप में विद्यमान है। श्री सत्यानन्दजी आर्यसमाज कलकत्ता के सक्रिय सदस्य थे। कई वर्षों तक आप आर्यसमाज कलकत्ता के कोषाध्यक्ष भी रहे। श्री सत्यानन्दजी आजकल दिल्ली में हैं और वहाँ आर्यसमाज की सेवा में लगे रहते हैं। श्री सत्यानन्दजी में जहाँ आर्यसमाज के प्रति श्रद्धाभक्ति और समर्थन का भाव है, वहीं आपकी सूझबूझ और संगठनात्मक क्षमता भी उच्च कोटि की है। आप आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली के उप-प्रधान निर्वाचित हुए हैं। आप अपनी निर्माण भूमि आर्यसमाज कलकत्ता के प्रति पूरा स्नेह भाव रखते हैं। आर्यसमाज के प्रति समर्पण तो आपकी नस-नस में समाया हुआ है।

श्री राजेन्द्र प्रसादजी जायसवाल

श्री राजेन्द्र प्रसादजी जायसवाल का जन्म ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी सम्वत् १९९८ विक्रम को उत्तर प्रदेश में फैजाबाद जनपद के पूर्वी भाग में नरवा पीताम्बरपुर नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता श्री अलगूरामजी और माता श्रीमती गंगा देवीजी थीं।

श्री राजेन्द्र प्रसादजी बड़े ही बुद्धिमान विद्यार्थी थे। आप अपने जीवन और स्वभाव पर अपनी पूजनीया माताजी के स्वभाव, चरित्र

एवं प्रभाव को विशेष श्रद्धा के साथ स्मरण करते हैं। आप प्रथम श्रेणी एवं मेरिट लिस्ट के विद्यार्थी थे। आपने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की और पीछे आप कलकत्ता आ गये।

सन् १९६३-६४ ई० में आप कलकत्ता आये और कलकत्ता विश्व-विद्यालय से ही एल-एल० बी० की पढ़ाई आरम्भ की और साथ ही व्यवसाय भी आरम्भ किया। कानून की पढ़ाई तो न चल सकी किन्तु श्री राजेन्द्र प्रसादजी अपने व्यावसायिक जीवन में अच्छी सफलता प्राप्त करते जा रहे हैं।

श्री राजेन्द्र प्रसादजी बुद्धिमान विद्यार्थी तो थे ही, अतः पुस्तकें पढ़ने का अच्छा शौक है। श्री मिश्रीलालजी जायसवाल के स्वाध्याय की पुस्तकों में इन्हें स्वामी दयानन्द का युगान्तरकारी ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने को मिला। वहीं आपने मूर्तिपूजा के विरुद्ध भी कोई पुस्तक पढ़ी। इस प्रकार श्री राजेन्द्र प्रसादजी की उत्सुकता आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द के संन्देशों की ओर बड़ी तीव्रता से उन्मुख होने लगी। इसी उत्सुकता के आलम में श्री राजेन्द्र प्रसादजी का सम्पर्क गोआबगान के उत्साही आर्यसमाजी सदस्य श्री सत्यनारायण आर्य से हुआ और उन्हींकी प्रेरणा से आप आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्य भी बने और धीरे-धीरे अति सक्रिय और भरोसे के उत्तरदायित्वपूर्ण अधिकारी भी बने। आर्यसमाज कलकत्ता के कार्य की गरिमा की दृष्टि से यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि श्री राजेन्द्र प्रसादजी ने इतने सक्रिय एवं विशाल संगठन के मंत्रित्व के उत्तरदायित्व को बड़ी सूझबूझ और कुशलता से निभाया है। श्री राजेन्द्र प्रसादजी आर्य-समाज कलकत्ता के मन्त्री रहे और शताब्दी-वर्ष में कार्य की गुरुता और आपकी क्षमता को ध्यान में रखकर आप सर्वसम्मति से संयुक्त मन्त्री भी निर्वाचित हुए हैं।

श्री राजेन्द्र प्रसादजी स्वाध्यायशील, कट्टर एवं कर्मठ कर्मकाण्डी, सन्ध्या, स्वाध्याय, अग्निहोत्र आदि में दृढ़ता एवं निष्ठा रखनेवाले कुशल

कार्यकर्त्ता हैं। आपकी सूझबूझ पैनी और दूरगामी है। आप दूर के परिणामों को बड़ी आसानी से भाँप कर अपने कर्तव्य का निर्णय करते हैं। समाज के कार्यालय को सुव्यवस्थित रूप में विधिपूर्वक संचालित करने का आपका अच्छा अनुभव है।

श्री राजेन्द्र प्रसादजी आर्यसमाज के भक्त तो हैं ही, अपनी क्षमता के अनुसार आर्यसमाज में आप आर्थिक सहयोग भी करते रहते हैं। आपने शताब्दी वर्ष के उपलक्ष में अपनी आदरणीया माताजी की स्मृति में पाँच हजार रुपयों की 'श्रीमती गंगा देवी जायसवाल स्थिर निधि' आर्यसमाज कलकत्ता में निधि बनायी। श्री राजेन्द्र प्रसादजी को कवि और कविताओं से प्रेम है। आपमें स्वाध्याय के साथ साहित्यिक अभिरुचि भी है। आप नवयुवक संगठन गोआ बगान के संरक्षक एवं प्रेरक हैं। ऐसे उत्साही कार्यकुशल अधिकारी एवं कार्यकर्ता किसी भी संगठन की मूल्यवान निधि हैं।

श्री राजेन्द्र प्रसादजी जायसवाल

श्री श्रीरामजी आर्य

श्री श्रीरामजी आर्य का जन्म फैजाबाद ज़िले में टाण्डा के पास फूलपुर नामक ग्राम में, १९४२ ई० की आषाढ़ मास की पूर्णिमा शनिवार के दिन हुआ। पिताजी का नाम श्री रामनारायण जायसवाल था। श्री श्रीरामजी की प्राथमिक शिक्षा गाँव में और टाण्डा में हुई। इनकी कालेज की सम्पूर्ण शिक्षा कलकत्ता में हुई। कलकत्ता विश्व-

विद्यालय से ही इन्होंने सन् १९६२ ई० में बी० काम० की परीक्षा उत्तीर्ण की और सन् १९६६ ई० में एल०-एल० बी० की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् १९६७ ई० में 'बार काउन्सिल ऑफ वेस्ट बंगाल की परीक्षा उत्तीर्ण कर ऐडवोकेट बने और अगस्त सन् १९६८ ई० में कलकत्ता हाई कोर्ट में प्रवेश लेकर आप कलकत्ता हाई कोर्ट के ऐडवोकेट नियुक्त हुये।

सन् १९५८ ई० में श्रीरामजी कलकत्ता आये और अपने पारिवारिक व्यवसाय 'नॉर्थ इण्डिया ऑटोमोबाइल्स' में सहयोग करने लगे। अध्ययन और व्यवसाय दोनों का सुयोग एक साथ ही मिलता रहा और श्री श्रीरामजी ने एक ओर उच्च कोटि की शिक्षा प्राप्त की और दूसरी ओर आप व्यवसाय की सफलता में आगे बढ़ते रहे।

आपके ज्येष्ठ भ्राता श्री सीतारामजी आर्य निष्ठावान्, श्रद्धालु आर्य-समाजी हैं और बड़े कुशल एवं दूर दृष्टि के व्यवसायी हैं। इनके अभि-भावकत्व में श्री श्रीरामजी को व्यवसाय की दीक्षा और आर्यसमाज की प्रेरणा प्राप्त होती रही। सन् १९५८ ई० में १६ वर्ष की किशोर अवस्था में ही श्री श्रीरामजी अपने ज्येष्ठ भ्राता की प्रेरणा पाकर आर्यसमाज में आने लगे और उसी समय आपका सम्पर्क आर्यसमाज कलकत्ता के प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य पं० रमाकान्तजी शास्त्री से हुआ। श्री आचार्यजी ने श्री श्रीरामजी को धार्मिक, आध्यात्मिक शिक्षा एवं दीक्षा दी, साथ ही उन्हें एक कर्मठ निष्ठावान् आर्यसमाज के सेवक के रूप में तैयार किया। श्री श्रीरामजी वयस्क होने पर आर्यसमाज के सदस्य, सभासद् एवं अन्तरंग के सदस्य बने। आर्यसमाज कलकत्ता में आप सक्रिय उत्साही नवयुवक कार्यकर्ता के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं। आप उपमन्त्री, प्रचार-मन्त्री, आर्य युवक संगठन के अधिष्ठाता आदि उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर वर्षों से निर्वाचित होते आ रहे हैं। आर्य-समाज कलकत्ता ने अपनी स्थापना-शताब्दी-समारोह के गुरुतर भार को देखते हुये श्री श्रीरामजी को आर्यसमाज कलकत्ता के स्थापना-शताब्दी-महोत्सव का संयोजक निर्वाचित किया।

श्री श्रीरामजी सम्पूर्णतः एक आर्य जीवन निर्वाह करते हैं। आपका विवाह १९७० ई० में इसरी के प्रसिद्ध व्यवसायी श्री लालजी भगत की सुपुत्री गीता भगत के साथ हुआ। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती गीता भगत (जायसवाल) सुशिक्षिता बी०ए० ऑनर्स हैं और इनके प्रत्येक आर्य समाजी दायित्व में पूर्ण सहयोग करती रहती हैं। श्री श्रीरामजी अपने जन्मस्थान में 'श्री रामनारायण हाई स्कूल' जिसे आपलोगों ने अपने पिता की स्मृति में बनवाया था, के उपाध्यक्ष हैं और आर्यकन्या इण्टर कालेज टाण्डा के मैनेजिंग कमेटी के सदस्य हैं। श्री श्रीरामजी आर्यसमाज के बाहर जनसेवा के कार्य में लगे रहते हैं। वस्तुतः आपने अपना जीवन आर्यसमाज के आदर्शों और उसकी उन्नति के लिये समर्पित कर रखा है।

श्री श्रीरामजी आर्य

श्री ओम प्रकाशजी धीया

श्री ओमप्रकाशजी धीया का जन्म शिवरात्रि के दिन सम्वत् १९९२ विक्रम को राजस्थान में श्री माधोपुर नामक स्थान में हुआ था। आप के पिता श्री सूरजमल धीया आर्यसमाज कलकत्ता के बहुत दिनों तक कोषाध्यक्ष रहे। श्री ओमप्रकाशजी ने बी० काम०, एफ० सी० ए० एवं चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट की परीक्षाएँ पास कीं और सन् १९५८ ई० से एक चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट के रूप में 'ओ० पी० धीया एण्ड कम्पनी' के नाम से प्रैक्टिस कर रहे हैं।

श्री ओमप्रकाशजी के पिताजी श्री सूरजमलजी धीया का जन्म नसीराबाद, अजमेर में हुआ था। श्री सूरजमलजी अपने जन्मस्थान में ही आर्यसमाज के सदस्य बन गये थे। आप आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्य बने और बहुत दिनों तक आप आर्यसमाज कलकत्ता के कोषाध्यक्ष रहे।

श्री ओम प्रकाशजी धीया
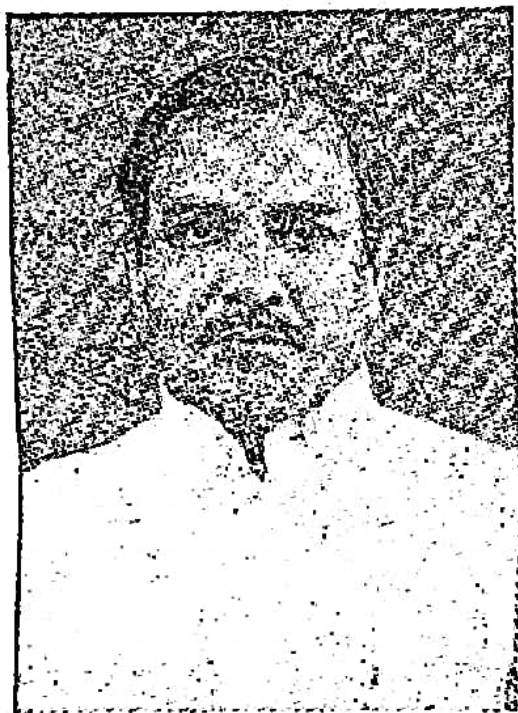
श्री ओमप्रकाशजी धीया स्वयं आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्य हैं। आर्यसमाज के कार्यों में सहयोग देते रहते हैं। श्री ओमप्रकाशजी धीया बड़ाबाजार आर्य युवकसभा के आजीवन सदस्य, भारतीय संस्कृति संसद् के सदस्य हैं और साथ ही कई प्रोफेशनल संगठनों के भी सदस्य एवं कार्यकर्ता हैं।

श्री सोमदेवजी गुप्त

श्री सोमदेवजी गुप्त का जन्म १० जनवरी सन् १९४७ ई० को कलकत्ता में श्री रघुवीर प्रसादजी गुप्त के घर में हुआ। श्री रघुवीर प्रसादजी कट्टर आर्यसमाजी निष्ठा के हैं। अतः श्री सोमदेवजी को आर्यसमाज अपने पिता से दायभाग के रूप में ही प्राप्त हो गया। श्री रघुवीर प्रसादजी पर आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य पंडित रमाकान्तजी शास्त्री का अच्छा प्रभाव था, अतः श्री रघुवीर प्रसादजी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र सोमदेव की शिक्षा-दीक्षा आचार्य पण्डित रमाकान्तजी शास्त्री के सम्पर्क में आरम्भ की। इस प्रकार श्री सोमदेवजी को आर्यसमाजी पिता के साथ आर्यसमाजी आचार्य और उसीके साथ आर्य विद्यालय जैसा आर्यसमाजी विद्यालय भी

मिल गया। फलतः श्री सोमदेवजी जन्म से ही आर्यसमाज की छत्र-छाया में बड़े हुए। आपने कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम० काम०, एल-एल० बी० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं और व्यवसाय के क्षेत्र में तो आये ही, आर्यसमाज के क्षेत्र में भी आप सक्रिय रूप से भाग लेने लगे।

श्री सोमदेवजी गुप्त

श्री सोमदेवजी गुप्त आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्य बने और आर्य सभासद् बनकर अनेक वर्षों तक उप-मन्त्री और कोषाध्यक्ष इत्यादि पदों पर कार्य करते रहे। श्री सोमदेवजी के परिवार में उनके पिताजी आर्यसमाज के नेतृत्व में प्रान्तीय स्तर पर सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित हो चुके हैं यह नेतृत्व का दायभाग भी श्री सोमदेवजी में

पूर्ण रूप से निखरा और आप प्रान्तीय संगठन आर्य प्रतिनिधि सभा के महामन्त्री भी बने। श्री सोमदेवजी गुरुकुल विद्यालय वैद्यनाथ धाम और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के भी सदस्य हैं।

श्री दशरथजी गुप्त

श्री दशरथजी गुप्त का जन्म चन्दमारी, जिला आजमगढ़, उत्तर प्रदेश में फाल्गुन कृष्ण १४ सम्वत् २००० को हुआ। आपके पिताजी श्री वासुदेव साह और माताजी कट्टर आर्यसमाजी हैं। इनके पितामह श्री केदारनाथजी गुप्त आर्यसमाजी थे। इनकी नानीजी भी आर्यसमाज से पूर्ण प्रभावित थीं। इस प्रकार दशरथजी को आर्यसमाज विरासत में प्राप्त हो गया। ये आर्य विद्यालय के छात्र थे और विद्यार्थी काल में ही पं० रमाकान्तजी शास्त्री एवं ठाकुर अमरसिंहजी के सम्पर्क में आ गये। श्री दशरथजी अपने पिता श्री वासुदेवजी साव के साथ आर्य-समाज बड़ाबाजार के सत्संगों में जाने लगे। स्कूल में श्री कृष्णलालजी खट्टर की आर्यसमाजी कट्टरता ने पूरा प्रभाव डाला। श्री दशरथजी पं० रमाकान्तजी की प्रेरणा से सन् १९६२ ई० में आर्यसमाज के सदस्य बन गये। श्री दशरथजी बावा सीताराम आर्य, बनमाली रावजी पारिख आदि के साथ आर्यसमाज के सहायता कार्यों में जाने लगे। श्री दशरथजी आर्यसमाज कलकत्ता के कई वर्षों तक उप-मन्त्री एवं प्रचार-मन्त्री रहे। आजकल श्री दशरथजी आर्यसमाज धर्मतल्ला के मन्त्री हैं।

श्रीमती सरोज अरोड़ा

श्रीमती सरोज अरोड़ा का जन्म एक आर्य परिवार में हुआ और इस प्रकार श्रीमती सरोजजी आर्यसमाज से जन्म से ही परिचित हो गईं। आपकी शिक्षा भी आर्य कन्या महाविद्यालय से ही शुरू हुई और छात्रजीवन से ही आपने वैदिक धर्म के गीत, आर्यसमाज के मञ्च से गाने आरम्भ कर दिये। श्रीमती अरोड़ाजी को स्वतन्त्रता की लड़ाई,

चीन और पाकिस्तान के साथ युद्ध आदि घटनाओं आदि से प्रेरणा मिलती रही। चीन के युद्ध के पश्चात् आर्यसमाज कलकत्ता में जब महिला समाज का फिर संगठन हुआ तब श्रीमती अरोड़ा को कोषाध्यक्ष बनाया गया। आपकी ससुराल पौराणिक परिवार में हुई, किन्तु आपके पतिदेव उदार और आर्यसमाज के भक्त हैं। सदा वे यज्ञों पर यजमान बनने के लिए अरोड़ा दम्पती सदा उत्साहित रहते हैं। आजकल श्रीमती अरोड़ाजी आर्य स्त्री-समाज कलकत्ता की मन्त्रिणी हैं।

श्रीमती सरोज अरोड़ा

श्रीमती सरोजजी को भजन और कविताएँ लिखने की रुचि है। आप इन्हें छपवाकर बाँटने का विचार रखती हैं। श्रीमती अरोड़ा अपने जीवन से सन्तुष्ट एवं पूर्ण निष्ठा से आर्यसमाज के कार्यों में समर्पित रहती हैं। सत्संगों में आना-जाना और आर्यसाहित्य से प्रेरणा लेते रहना इनके जीवन का अंग है।

श्री अशोक कुमारजी सिंह

श्री अशोक कुमारजी सिंहजी का जन्म ६ अक्टूबर, सन् १६५५ ई० को कलकत्ता में हुआ था। आपके पिता श्री लक्ष्मण सिंहजी हैं। श्री अशोककुमार सिंह जन्म से ही आर्यसमाज के संस्कारों में पालेपोषे गये। आपके पिताजी एवं माताजी आर्यसमाज के सक्रिय निष्ठावान् कार्यकर्ता हैं। इस प्रकार श्री अशोककुमार सिंह ने आर्य संस्कारों की छाया में पढ़ना-लिखना आरम्भ किया। आप बी० काम०, विद्या विशारद हैं।

आर्यसमाज से आपका सम्पर्क तो बचपन से ही है। २० वर्ष की आयु में आप आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्य बने और तीन वर्ष पश्चात् सभासद भी बन गये। श्री अशोकजी भी अपने माता-पिता की तरह आर्यसमाज के हर कार्य में सक्रिय सहयोग देने लगे। आर्यसमाज कलकत्ता ने सन् १९७८ ई० में श्री अशोककुमार सिंहजी को अपना उप-पुस्तकाध्यक्ष निर्वाचित किया और दो वर्ष पश्चात् सन् १९८० में आप आर्यसमाज कलकत्ता के उप-मन्त्री निर्वाचित हुये। तभी से श्री अशोककुमार सिंहजी किसी न किसी रूप में आर्यसमाज कलकत्ता के संगठन में अपनी उत्तरदायित्वपूर्ण भूमिका अदा करते रहे हैं। श्री अशोककुमार सिंहजी को लिखने-बोलने का शौक है और आर्यसमाज के हर कार्य में पूरी तन्मयता और दायित्व से लगे रहते हैं।

श्री अशोक कुमार सिंह

श्री मनीरामजी आर्य

श्री मनीरामजी आर्य का जन्म फैजाबाद जिले में टाण्डा तहसील में फूलपुर नामक ग्राम में सन १९४६ ई० में हुआ। आपके पिता श्री रामनारायणजी जायसवाल थे। आपने प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में प्राप्त की और होबर्ट त्रिलोकनाथ इण्टर कालेज से इण्टर की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् आप अपने पारिवारिक व्यवसाय के सिलसिले में कलकत्ता आ गये और अपने ज्येष्ठ भ्राता श्री सीतारामजी जायसवाल की देख-रेख में अपने मोटर पार्ट्स के व्यवसाय में लग गये।

श्री मनीरामजी आर्य के ज्येष्ठ भ्राता श्री सीतारामजी आर्य-आर्यसमाज कलकत्ता के श्रद्धालु और समर्थ कार्यकर्ता हैं और उनकी देख-रेख में और प्रेरणा से श्री मनीरामजी को आर्यसमाज का सम्पर्क शैशव से ही प्राप्त हो गया। सन् १९६२ ई० में आपने आचार्य पं० रमाकान्तजी शास्त्री से यज्ञोपवीत की दीक्षा ली और एक दृढ़ आर्यसमाजी निष्ठावान् युवक के रूप में आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्य एवं कार्यकर्ता हुए। श्री मनीरामजी ने सन् १९७५ ई० में आर्यसमाज की सदस्यता ग्रहण की। आपके उत्साह को देखते हुए आर्यसमाज कलकत्ता ने सन् १९८२ ई० में आपको अपना प्रचार-मन्त्री नियुक्त किया और सन् १९८५ तक आप आर्यसमाज कलकत्ता के प्रचार-मन्त्री रहे। श्री मनीरामजी कट्टर आर्यसमाजी निष्ठा के युवक हैं और आपने अपने गाँव में अपने साथियों के साथ तिथि-त्यौहारों पर माँस-भक्षण के विरोध में प्रभात-फेरी निकाल कर जहाँ बहुत सारे पशुओं की रक्षा की, वहीं अपने साथियों का माँस-भक्षण छुड़ा दिया।

श्री मनीरामजी आर्य

श्री राजकुमारजी जायसवाल

श्री राजकुमारजी जायसवाल का जन्म ३ सितम्बर, सन् १९५३ ई० को कलकत्ता में हुआ। आपके पिता श्री राधेश्यामजी जायसवाल मोटर टायर के प्रतिष्ठित व्यवसायी हैं। आपकी शिक्षा-दीक्षा सब कलकत्ता

में हुई। आपने कलकत्ता विश्वविद्यालय से ही बी० एस-सी० की परीक्षा उत्तीर्ण की।

श्री राजकुमारजी की अभिरुचि विद्यार्थी जीवन से ही धार्मिकता की ओर थी। साइन्स के विद्यार्थी और चिन्तन में धार्मिक बेचैनी, धीरे-धीरे आप आर्यसमाज कलकत्ता के सत्संग में आने लगे। यहाँ आपका सम्पर्क आर्यसमाज कलकत्ता के आचार्य पं० उमाकान्तजी उपाध्याय के साथ हुआ। यह सम्पर्क धीरे-धीरे बढ़ता गया और राजकुमारजी एक धार्मिक निष्ठावान् शिष्य के रूप में वैदिक विचारधारा के कट्टर परिपोषक बन गये। श्री राजकुमार-जी ने आचार्यजी के सम्पर्क में सन्ध्या, प्राणायाम से आरम्भ कर सन्ध्या, अग्निहोत्र, स्वाध्याय का व्रत रूप में पालन आरम्भ कर दिया। धीरे-धीरे आपकी आर्यसमाजी निष्ठा बढ़ती गयी और वयस्क होने पर आप आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्य एवं सभासद् बन गये। आर्यसमाज कलकत्ता ने श्री राजकुमारजी को कई वर्षों तक अपना पुस्तकाध्यक्ष निर्वाचित किया। श्री राजकुमारजी ने आर्यसमाज के पुस्तकालय को सुव्यवस्थित करने की भरपूर चेष्टा की। आर्यसमाज कलकत्ता ने पुस्तक प्रदर्शिनी में जब आर्यसमाज का पुस्तक मंच खोला, तो राजकुमारजी ने अपने नवयुवक साथियों के साथ उसमें बहुत अच्छा योगदान किया।

श्री राजकुमारजी जायसवाल

श्री राजकुमारजी जीवन में सात्त्विक आचारसंहिता के साथ स्वाध्याय-प्रेमी हैं और आपने वैदिक आदर्शों के लिये अपना जीवन समर्पित कर रखा है। अपने पैतृक व्यवसाय की देख-रेख करते हुए आप यथाशक्ति आर्यसमाज की सेवा में तत्पर रहते हैं।

श्री महेन्द्र प्रतापजी आर्य

श्री महेन्द्र प्रतापजी का जन्म ३ फरवरी, सन् १९३३ ई० में हुआ था। आपके पिताजी श्री नन्दलालजी आर्य आर्यसमाज कलकत्ता के निष्ठावान् भक्त कार्यकर्ता थे। इस प्रकार श्री महेन्द्र प्रतापजी का जन्म से ही आर्यसमाज से सम्पर्क है। आपके पिता श्री नन्दलालजी बहुत दिनों तक आर्यसमाज कलकत्ता के पुस्तकाध्यक्ष थे और श्री महेन्द्र प्रतापजी भी कई वर्ष निरंतर आर्यसमाज के पुस्तकाध्यक्ष रहे हैं।

श्री महेन्द्र प्रतापजी आर्य

श्री महेन्द्र प्रतापजी आजीविका के रूप में टेलीग्राफ आफिस, कलकत्ता में सेवारत हैं, किन्तु सामाजिक कार्य के नाते आर्यसमाज के विविध कार्यों में भाग लेते रहते हैं और अधिक से अधिक समय परोपकार में बिताते हैं। आर्यसमाज और इसका मिशन आपको अपने पिताजी से विरासत में मिला हुआ है।

श्री मनसारामजी वर्मा

श्री मनसारामजी का जन्म २६ जुलाई सन् १९५० ई० को 'ग्राम माडरव' जिला फैजाबाद (उ० प्र०) में हुआ था। इनके पिता श्री

उदयराजजी वर्मा आर्यसमाज के सदस्य न होते हुए भी आर्यसमाज के विचारों से ओतप्रोत थे। श्री उदयराजजी अपने पुत्र को फैजाबाद के प्रसिद्ध आर्यसमाज टाण्डा के उत्सवों पर ले जाते थे। इस प्रकार श्री मनसारामजी को आर्यसमाज के संस्कार शैशव से ही प्राप्त हो गये।

श्री मनसारामजी वर्मा

सन् १९७० ई० में बी०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् श्री मनसारामजी व्यवसाय के सिलसिले में कलकत्ता आ गये। श्री वर्माजी कलकत्ता में लोहे के व्यवसाय में उतरे। यहाँ इनका सम्पर्क आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्यों से हुआ। श्री वर्माजी के जीवन में पूर्व से आर्यसमाज भूमिका तो थी ही, श्री राजेन्द्र प्रसादजी जायसवाल एवं श्री सत्यनारायणजी सेठ की प्रेरणा से ये सन् १९७८ ई० में आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्य बने। श्री वर्माजी सन् १९८३ ई० में आर्यसमाज कलकत्ता के उपमन्त्री निर्वाचित हुये। श्री वर्माजी आर्यसमाज के प्रचार में सदा लगे रहते हैं। इनके हर कार्य में इनकी पत्नी श्रीमती साधना वर्मा सहयोग देती रहती हैं। इस समय श्री मनसारामजी वर्मा आर्यसमाज कलकत्ता के उपमन्त्री हैं।

श्री सुरेश कुमारजी अग्रवाल

श्री सुरेश कुमारजी का जन्म भिवानी (हरियाणा) लोहारू नामक स्थान में ५ जुलाई सन् १९६० ई० को हुआ। आपके पिता श्री बाबूलाल जी अग्रवाल कलकत्ता में बाल्टी बनाने का कारखाना चलाते हैं। श्री सुरेशजी की प्रारम्भिक शिक्षा लोहारू में ही हुई। ये बचपन में भूतों से बहुत डरते थे। और इनके शिशु मन में एक हताशा-सी समा गयी थी। एक दिन इनके एक मित्र ने इन्हें आर्यसमाज लोहारू के वार्षिकोत्सव पर जाने की प्रेरणा दी। संयोग की बात थी कि उस रात एक चिमटे वाले भजनोपदेशक संन्यासी ने भूतों का ही खण्डन किया और सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने की प्रेरणा दी। अब आर्यसमाज और स्वामी दयानन्द एवं उनकी प्रसिद्ध पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश की कृपा से सुरेशजी एक उत्साही महत्त्वाकांक्षी युवक के रूप में अपने व्यवसाय का भी कार्य देखते हैं और आर्यसमाज की सेवा में लगे रहते हैं। कहाँ जीवन में निराशा थी, कहाँ अब। सन् १९८३ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी० काम० पास किया। और एक होनहार युवक की तरह आपने व्यावसायिक और सामाजिक कार्यों में हाथ बँटाया है।
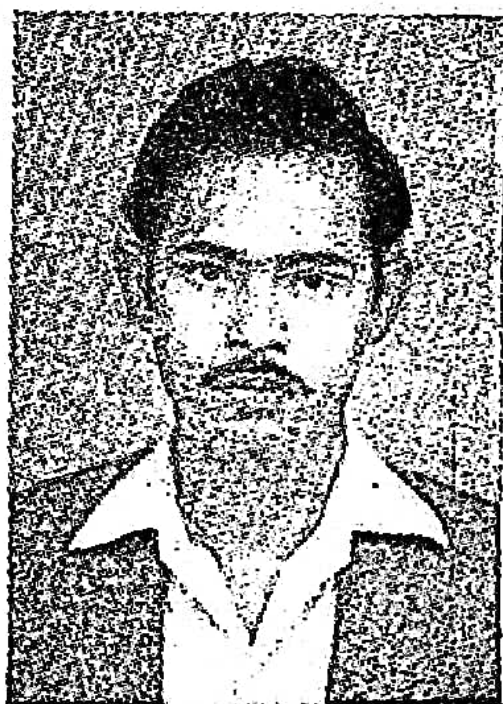
श्री सुरेश कुमारजी अग्रवाल

सन् १९७७ ई० में सुरेशजी कलकत्ता आ गये। यहाँ आर्य-समाज के सत्संगों का विज्ञापन तो पढ़ते थे किन्तु अपरिचिति के संकोच से कभी समाज में न आते थे। सन् १९७८ ई० में

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के शिविर में श्री शीतल प्रसादजी आर्य और श्री जगदीश प्रसादजी शुक्ल से सम्पर्क हुआ। तब से आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्य बने।

श्री सुरेशजी सन् १९८१-८२ ई० में आर्यसमाज कलकत्ता के उप-पुस्तकाध्यक्ष निर्वाचित हुये और सन् १९८५-८६ ई० के वार्षिक निर्वाचन में आर्य वीरदल के अधिष्ठाता बनाये गये। पुस्तक मेला के अवसर पर एवं वार्षिकोत्सव और अन्य उत्सवों के अवसर पर नवयुवक सुरेशजी रातोदिन आर्यसमाज के सहयोग में लगे रहते हैं। आप लोहारू सेवा-समिति और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के भी सदस्य हैं। श्री सुरेशजी अपने व्यावसायिक कार्य में बाल्टी के कारखाने को बड़ी अच्छाई से चलाते हुए आर्यसमाज के हर कार्य में सेवा करने को उद्यत रहते हैं।

श्री घनश्यामजी मौर्य
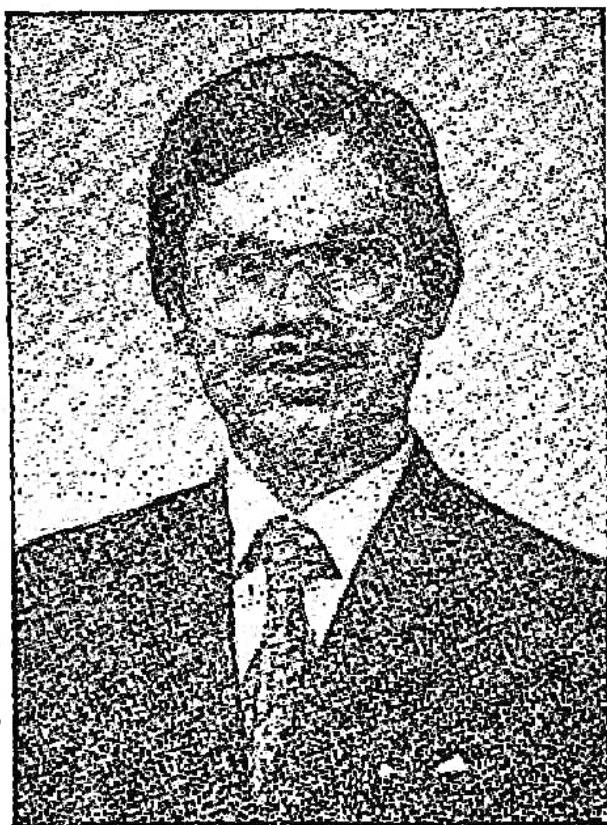
श्री घनश्यामजी मौर्य

श्री घनश्यामजी मौर्य का जन्म आजमगढ़ जिले में २३ जुलाई सन् १९५१ ई० को हुआ। आपकी शिक्षा-दीक्षा कलकत्ता में ही हुई। स्कूल स्तर पर आप रघुमल आर्य विद्यालय के छात्र थे और तभी से आपका आर्यसमाज की विचारधारा से सम्पर्क हो गया। आपने कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी० काम० की परीक्षा उत्तीर्ण की। श्री मौर्यजी का आर्यसमाज से सम्पर्क तो स्कूल के दिनों से ही हो गया

था। आप अपने विद्यार्थी जीवन में आर्यसमाज के वार्षिकोत्सवों और सत्संगों में रुचि लेते रहे और धीरे-धीरे आर्यसमाज से सम्पर्क बढ़ता गया। कालेज की शिक्षा के पश्चात् आप व्यवसाय में लग गये। आप दस वर्षों से आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्य हैं और इस समय आप आर्यसमाज कलकत्ता के पुस्तकाध्यक्ष हैं।

श्री अच्छेलालजी जायसवाल

श्री अच्छेलालजी का जन्म १९५० ई० में सुल्तानपुर (उ० प्र०) जिले के दोस्तपुर कस्बे में हुआ। ये १५ वर्ष की अवस्था में कलकत्ता आ गये और रघुमल आर्य विद्यालय से स्कूली शिक्षा पूर्ण की। यहीं से आपका सम्पर्क आर्यसमाज में हुआ। परिवार में पौराणिक
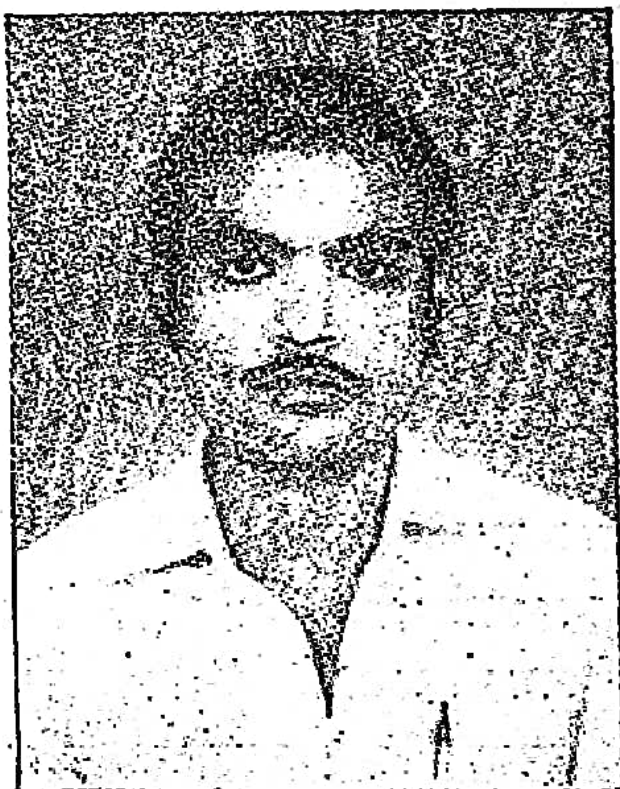
श्री अच्छेलालजी जायसवाल

विचारधारा थी किन्तु श्री अच्छेलालजी ने अपना खानपान सदा पवित्र रखा। यों तो इनके पिताजी भी आर्यसमाज के विचारों से प्रभावित थे किन्तु अच्छेलालजी पर आर्यसमाज का प्रभाव वार्षिकोत्सव के व्याख्यानों को सुनकर पड़ा और विचारों में दृढ़ता आयी। पं० प्रकाशवीरजी शास्त्री और पं० रमाकान्तजी शास्त्री के व्याख्यानों से आपमें आर्यसमाज के प्रति आकर्षण बढ़ गया। श्री सत्यनारायण सेठ के सम्पर्क से आर्यसमाज के सत्संग में आने लगे और श्री मनसा-

राम वर्मा और श्री राजेन्द्र प्रसादजी जायसवाल की प्रेरणा से आर्य-समाज के सदस्य बने। आप आर्यसमाज कलकत्ता के अन्तःलेखा-परीक्षक जैसे उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर रह चुके हैं। आजकल आप आर्यसमाज कलकत्ता के उपमन्त्री हैं।

श्री लाला हंसराजजी गुप्त

श्री लालाजी का जन्म २२ फरवरी १६०५ ई० को रेवारी (हरयाणा) में हुआ था। आरम्भिक शिक्षा फरुखाबाद, उत्तर प्रदेश में हुई। श्री हंसराजजी के पिताजी रेलवे में इञ्जीनियर थे, अतः पिताजी के साथ विद्यार्थी हंसराज भी कई जगहों पर अध्ययन करते रहे और अंत में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से आपने एम० ए०, एल-एल० बी० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं।

श्री हंसराजजी का विवाह लाला रघुमलजी की एकमात्र पुत्री अंगिराजी के साथ हुआ। लाला रघुमलजी आर्यसमाज के श्रद्धालु, निष्ठावान, दानवीर पुरुष थे और कलकत्ता में रहकर अपना बहुत बड़ा व्यवसाय चलाते थे। १६२५-२६ ई० में श्री हंसराजजी अपने श्वसुरजी के व्यवसाय को सम्हालने के लिए कलकत्ता आ गये। थोड़े दिनों बाद लाला रघुमलजी का देहान्त हो गया और व्यवसाय का सारा उत्तर-दायित्व श्री हंसराजजी पर आ पड़ा। श्री हंसराजजी का सार्वजनिक एवं व्यावसायिक जीवन अति महान् है। हम यहाँ आर्यसमाज कलकत्ता के सम्पर्क को ही लिख रहे हैं।

जब श्री हंसराजजी कलकत्ता आये उस समय लाला रघुमलजी आर्यसमाज कलकत्ता के मूर्धन्य नेताओं में थे। श्री हंसराजजी ने आर्यसमाज कलकत्ता में आर्य कुमार सभा को सुव्यवस्थित किया। १६२५ से १६२७ तक वे आर्यसमाज कलकत्ता की कुमार सभा के प्रधान भी रहे। आर्य कुमार सभा ने उस समय बंगाली नवयुवकों में आर्य-समाज का अच्छा प्रचार किया और कई बंगाली नवयुवक इधर आकृष्ट

हुए। इस अवधि के मध्य अमर शहीद श्री भगत सिंहजी दो बार कलकत्ता आये, आर्यसमाज मन्दिर में छद्मरूप से रहे। दूसरी वार की यात्रा में सेठ रघुमलजी के भी अतिथि रहे और श्री रघुमलजी ने ही भगत सिंहजी को छद्मरूप से रखने की व्यवस्था की थी। इतिहास मौन है, किन्तु अनुमान यह संकेत देता है कि इस अवधि के मध्य युवक हंसराजजी का बंगाली युवकों, आर्यकुमार सभा, आर्यसमाज

श्री लाला हंसराजजी गुप्त

से घनिष्ठ सम्बन्ध था। हंसराजजी के सम्पर्क से आर्यसमाज कलकत्ता को केन्द्र करके यदि कुछ क्रान्ति के अंकुर उगे हों तो अधिक आश्चर्य की वात नहीं है।

कलकत्ता-निवास के समय श्री हंसराजजी ने १९२६ ई० में आर्य-समाज का वेद प्रचार सप्ताह बड़े विशाल रूप से मनाया था। प्रतिदिन विशिष्ट एवं लोकप्रिय नेता वेदप्रचार सभा की अध्यक्षता करते थे।

इस आयोजन ने आर्यसमाज को पर्याप्त लोकप्रिय बनाया और बंगाली नवयुवक आर्यसमाज के कार्यों में भाग लेने लगे।

श्री रघुमलजी आर्यसमाज कलकत्ता के कर्णधार स्तम्भ थे ही। श्री हंसराजजी गुप्त और अंगिरादेवीजी ने भी सदा आर्यसमाज कलकत्ता का उदारतापूर्वक सहायता की है—रघुमल चैरिटी ट्रस्ट के दान से ही रघुमल आर्य विद्यालय का भवन बना और आर्य कन्या विद्यालय का दूसरा नवीन भवन भी इसी ट्रस्ट के दान से बनाया गया। श्री हंसराज गुप्त और श्रीमती अंगिरादेवीजी सदा आर्यसमाज कलकत्ता के हर कार्य में आगे बढ़कर सहयोग करते रहे। श्री सुवादेवी पोद्दार हॉल और रानी बिड़ला आर्य अतिथिशाला का उद्घाटन श्री हंसराजजी गुप्त ने दिल्ली से आकर अभी कुछ वर्ष पूर्व ही किया था। ३ जुलाई १९८५ ई० को श्री हंसराजजी के निधन से आर्यसमाज कलकत्ता का एक समर्थ सहयोगी इस संसार से चल बसा।

विंश अध्याय

समापन

आर्यसमाज कलकत्ता संगठन की दृष्टि से मात्र एक स्थानीय इकाई है। किन्तु कार्य और महत्त्व की दृष्टि से इस समाज की स्थिति बहुत भिन्न है। बहुत वर्षों तक यह कलकत्ता जैसे विशाल नगर का एकमात्र समाज था। और इस विशाल नगर के सभी आर्यसमाजी यहीं एकत्र हो जाते थे। कलकत्ता ही नहीं, सारे बंगाल के आर्य-समाजियों के गौरव के प्रतीक के रूप में यह समाज रहा है। आरम्भ से ही आर्यसमाज कलकत्ता की गतिविधियाँ इतनी विस्तृत और व्यापक रही हैं कि यह सम्पूर्ण पूर्वाञ्चल का केन्द्र रहा है। बहुत दिनों तक प्रतिनिधि सभा का प्रान्तीय संगठन बना ही न था। जब बंगाल-बिहार की संयुक्त प्रान्तीय प्रतिनिधि सभा बनी भी तो, बहुत वर्षों तक उसका कार्यालय दानापुर, पटना और राँची में रहा। सम्मिलित प्रान्तीय प्रतिनिधि सभा का कार्यालय इसके पश्चात् एकबार कलकत्ता भी आया और तब बिहार के प्रतिनिधियों को बड़ी कठिनाई का अनु-भव हुआ। जिस समय प्रान्तीय संगठन का कार्यालय बिहार में था उस समय बंगाल का सारा कार्य आर्यसमाज कलकत्ता को केन्द्र बना-कर होता रहा तथा बिहार में प्रान्तीय कार्यालय होने से यहाँ अधिक कठिनाई नहीं आयी।

कलकत्ता यों ही सारे बंग-प्रान्त का हृदय है। आर्यसमाज कलकत्ता भी अपने इस गौरव की रक्षा करता रहा है। यों तो यह सामाजिक

संगठन की वैधानिक रूप में मात्र एक इकाई है। किन्तु, वस्तुतः यह सारे भारत का हृदय है। पीड़ा या कष्ट किसी भी अंश में होता है, वेदना का स्पन्दन इस समाज में होने लगता है। भूचाल, तूफान, दंगा इत्यादि सारे कष्टकारी मुद्दों पर यह समाज व्याकुल हो उठता है और यह व्याकुलता सक्रियता में बदल जाती है। एकबार महात्मा आनन्द स्वामीजी ने आर्यसमाज कलकत्ता के सम्बन्ध में लिखा था—

"कलकत्ता आर्यसमाज एक शक्तिशाली आर्यसमाज है। जितना सुन्दर कार्य यह समाज कर रहा है, इतना कार्य कोई बड़ी सभा भी नहीं कर रही है। अतः आर्यसमाज कलकत्ता को चाहिए कि वो नये प्रचारक बनाने की ओर ओर ध्यान दे।[1]"

यह तो हुआ एक निस्पृह यावज्जीवन प्रचार कार्य में लगे रहने वाले संन्यासी का अभिमत, अथवा यूँ कहें कि यह एक संन्यासी की आर्यसमाज कलकत्ता के प्रति आकांक्षा है। पिछले सौ वर्षों में आर्यसमाज कलकत्ता ने इस आकांक्षा की पूर्ति की चेष्टा भी की है। उपदेशक विद्यालय तो नहीं बन सका, किन्तु प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप में उपदेशक तैयार करने का कार्य होता ही रहा है। इतिहास के इस समापन प्रसंग पर हम एक विहंगम दृष्टि विगत शताब्दी पर डालने का प्रयास कर रहे हैं।

आर्यसमाज कलकत्ता सन् १८८५ ई० में स्थापित हुआ। स्थापना की निश्चित तिथि का पता नहीं है किन्तु इतना अवश्य ज्ञात है कि आर्यसमाज की स्थापना का प्रस्ताव स्वामी दयानन्दजी की मृत्युतिथि पर आया था। स्वामीजी का देहान्त दीपावली के दिन हुआ था, उस

---

१. आर्य-संसार का अक्टूबर १९७१ ई० का अंक—आनन्द स्वामीजी का संवेदना-सन्देश।

दिन श्रद्धांजलि सभा के पश्चात् स्थापना का परामर्श किया गया था और कुछ ही दिनों के भीतर राजा तेजनारायणजी के आफिस में बाबू महावीर प्रसादजी ने आर्यसमाज की स्थापना के निमित्त परामर्श सभा बुलायी और श्री राजनारायण वसु महोदय की अध्यक्षता में आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना हो गयी। दीपमालिका का पर्व अक्टूबर-नवम्बर के महीने में आता है, अतः आर्यसमाज की स्थापना सन् १८८५ ई० में सम्भवतः नवम्बर-दिसम्बर के महीने में हुई होगी। इस समय सन् १९८५ ई० का अन्तिम भाग है। इस प्रकार आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना तिथि चाहे भले ही न ज्ञात हो, किन्तु आर्यसमाज कलकत्ता के इतिहास में १०० वर्ष पूरे होने को आ गये, इसमें अधिक ननु-नच का अवकाश नहीं है।

आर्यसमाज कलकत्ता का यह १०० वर्षों का ऐतिहासिक-काल विस्तार एवं प्रगति का काल रहा है। सन् १८८५ ई० में आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना हुई। सन् १९०२ ई० में आर्य कन्या महाविद्यालय का आरम्भ हुआ। सन् १९१० ई० में जब आर्यसमाज कलकत्ता अपनी रजत-जयन्ती मना रहा था, उस समय तक आर्यसमाज कलकत्ता का विशाल मन्दिर बन चुका था और कन्या महाविद्यालय के अपने भवन की व्यवस्था हो चुकी थी। आर्यसमाज कलकत्ता की स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर सन् १९३५ ई० में आर्य विद्यालय कलकत्ता की स्थापना हुई और उसके लिये भाड़े का भवन ले लिया गया। १९३७ में कन्या विद्यालय का रानी बिड़ला भवन बना। सन् १९५८ ई० में कन्या विद्यालय का दूसरा भवन बन गया। सन् १९६२ ई० में आर्य विद्यालय का अपना निजि का बहुत सुन्दर भवन बन गया। इस अवधि के मध्य महिला मण्डल ट्रस्ट और आर्य विद्यालय ट्रस्ट जैसे महत्त्वपूर्ण ट्रस्टों का भी निर्माण हुआ। आर्यसमाज मन्दिर का नवीनीकरण हुआ। रानी बिड़ला आर्य अतिथिशाला का निर्माण हुआ। आर्यसमाज के मन्दिर की छत के ऊपर श्रीमती

सुवादेवी पोद्दार हॉल का निर्माण हुआ, और रानी बिड़ला आर्य अतिथि शाला के दूसरे तल्ले का निर्माण हुआ। इस प्रकार सम्पूर्ण शताब्दी भर, आरम्भ से लेकर अन्ततक, आर्यसमाज कलकत्ता मन्दिर, विद्यालय, अतिथिशाला, संस्कार-कक्ष, यज्ञशाला आदि का निरन्तर निर्माण करता रहा। यह भवन-निर्माण और संस्था-निर्माण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण उपलब्धि का अंग कहा जा सकता है।

आर्यसमाज कलकत्ता आरम्भ से ही प्रगतिशील, आदर्शोन्मुख व्यक्तियों का केन्द्र रहा है। यहाँ एक ओर श्रीमान, धनवान् व्यवसायी रहे हैं तो दूसरी ओर उच्चकोटि के विद्वान् भी रहे हैं। धनवानों के धन और विद्वानों की विद्या ने मिलकर बड़ा प्रशंसनीय कार्य किया है। आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना के पश्चात् जब संगठन कुछ बद्धमूल होने लगा तो उस समय राजा तेजनारायणजी और पं० शंकरनाथजी का ऐतिहासिक महत्त्व का कृतित्व सामने आता है। राजा तेजनारायण जी ने २०,००० रुपये देकर आर्यावर्त प्रेस बनाया। पं० शंकर-नाथजी ने अपने निवास-गृह में दो कमरे देकर प्रेस को जगह दी और विद्या की दिशा में अद्भुत कार्य होने लगा। पं० शंकरनाथजी ने सत्यार्थ प्रकाश का बंगला अनुवाद किया और उसे प्रकाशित किया। योगदर्शन का व्यास-भाष्य हिन्दी अनुवाद समेत प्रकाशित हुआ। स्वामी दयानन्द के अन्य कई ग्रन्थों का बंगला अनुवाद प्रकाशित हुआ। आर्यावर्त नामक पत्र प्रकाशित होना आरम्भ हुआ। राजा तेजनारायण ने १०,००० रुपये श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय को स्वामी दयानन्द की जीवनी की सामग्री संग्रह करने के लिये दिया। यह सब आरम्भिक युग का उत्साह है। इतिहास के दूसरे चरण में सेठ छाजू-राम चौधरी, सेठ जयनारायण पोद्दार, सेठ रघुमल खण्डेलवाल, श्री तुलसीदास दत्त आदि का विद्या प्रेमी कृतित्व सामने आता है। उसी समय श्री आर्य मुनिजी एवं श्री शिवशंकर शर्मा द्वारा कृत वेद-भाष्य का प्रसंग भी सामने आता है। तृतीय चरण में गोविन्दराम

ह्रासानन्द की साहित्य-सेवा, प० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री के साहित्यिक कार्य सामने आते हैं। चतुर्थ चरण में पं० प्रियदर्शनजी के साहित्यिक कार्य, आर्य-संसार का प्रकाशन और अन्य कई छोटे-मोटे प्रकाशन सामने आये। इस बीच बंगला सत्यार्थ प्रकाश के कई संस्करण भी प्रकाश में आये और इन सब कार्यों में आर्यसमाज कलकत्ता के ऐतिह्य के उत्साहवर्धक स्वरूप को सराहना ही पड़ता है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह सारी साहित्य-सेवा किसी सरकारी अनुदान से नहीं, बल्कि दानदाताओं के दान से ही होती रही है।

निर्माण और विद्या की दृष्टि के साथ ही समाज सुधार का एक पक्ष है। उस सामाजिक क्रान्ति की दृष्टि से भी आर्यसमाज कलकत्ता का इतिहास प्रगतिशील एवं उत्साह वर्धक रहा है। आर्यसमाज कलकत्ता क्रियात्मक रूप में क्रान्तिकारी संगठन की भूमिका निभाता रहा है। यहाँ के इतिहास में विधवा-विवाह करने के कारण श्री नागर मल लील्हा और उनके साथ कई लोगों को जाति से बहिष्कृत होना पड़ा था। श्री जयनारायणजी पोद्दार को अपनी पुत्रवधू का अन्त्येष्टि संस्कार कराने के कारण सामाजिक बहिष्कार के सम्मुख खड़ा होना पड़ा था। अछूतोद्धार, बालविवाह का विरोध, मृतक श्राद्ध-भोज का विरोध इत्यादि यहाँ के इतिहास का अंग है। आर्यसमाज के इन पूर्व-पुरुषों ने न कभी अपने आदर्शों को झुकने दिया, न कभी अपने सिद्धान्तों को छोड़ा। ये लोग बड़ी कट्टरता और निष्ठा के साथ अपने आदर्शों पर डटे रहे और उनका प्रचार करते रहे। इस प्रकार आर्यसमाज कलकत्ता माडरेट (Moderate) नहीं, रेडिकल (Radical) रहा है।

इसीके साथ एक कड़ी अबला अनाथ विभाग और गोरक्षा के प्रसङ्ग की भी जुड़ जाती है। आर्यसमाज कलकत्ता ने अन्य गैर-आर्य-समाजी संगठनों की सहायता भी ली और इन कार्यों को उत्साहपूर्वक किया। आरम्भ से ही जब कभी कोई दैवी या राजनीतिक आपत्ति

आयी तो आर्यसमाज सेवाकार्य में अपनी पूरी शक्ति से अग्रसर रहा। बिहार का भूकम्प, मिदनापुर का समुद्री तूफान, आसाम का भूकम्प, बंगाल का दुर्भिक्ष, नोआखाली का साम्प्रदायिक दंगा, कलकत्ता में मुस्लिम लीगी सरकार का सीधी कार्यवाही के रूप में नरसंहार जैसे सभी अवसरों पर आर्यसमाज कलकत्ता ने सहायता-कार्यों की सुन्दर भूमिका निभायी है।

आर्यसमाज कलकत्ता आरम्भ से ही विद्वानों का भी केन्द्र रहा है। पं० शंकरनाथजी और सम्पादकाचार्य पं० रुद्रदत्तजी शर्मा के आरम्भिक काल के पश्चात् ही पं० अयोध्याप्रसादजी वैदिक मिशनरी जैसे विश्व-विश्रुत विद्वान् का काल आ जाता है। उन्होंने भारतवर्ष में तो वेदधर्म का प्रचार किया ही, साथ ही देश-देशान्तर और द्वीपद्वीपान्तर में भी आर्यसमाज का प्रचार किया। तृतीय चरण में पं० अयोध्याप्रसादजी के साथ पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री, आचार्य रमाकान्तजी शास्त्री, पं० सदाशिवजी शर्मा की सेवाएँ इस आर्यसमाज को सुलभ रहीं। पं० शिवनन्दन प्रसादजी वैदिक एवं पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण तृतीय चरण से ही विद्या और साहित्य के कार्य में सक्रिय हैं और चतुर्थ चरण में उन्हींके साथ पं० रामनरेशजी शास्त्री, पं० उमा-कान्तजी उपाध्याय और विद्याभास्कर पं० आत्मानन्दजी शास्त्री की सेवाएँ इस समाज को अबाध रूप से मिलती जा रही हैं।

भवन-निर्माण या साहित्य-निर्माण, विद्यालयों का संचालन, दातव्य औषधालय आदि की व्यवस्था, यह सब आर्यसमाज कलकत्ता के शत वर्षीय इतिहास की गौरवमयी गाथा है। किन्तु, इसीके साथ कुछ ऐसे पक्ष भी हैं जिन्हें ऐतिहासिक उपलब्धि की दृष्टि से आँखों से ओझल नहीं किया जा सकता।

कलकत्ता विद्या की नगरी है। विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों का केन्द्र है, फिर भी आर्यसमाज ने यहाँ न कोई कालेज बनाया और न ही कोई संस्कृत विद्या का उच्च शिक्षा-केन्द्र बनाया। उपदेशक

विद्यालय एकाधबार आरम्भ भी हुए, तो वे चल न सके। ऐसे बड़े नगर में इतने बड़े-बड़े विद्वानों के रहते हुए भी कलकत्ता में आर्यसमाज के पास शोधकार्य या अनुसन्धान-कार्य करने का साधन न बन सका। 'वैदिक अनुसन्धान ट्रस्ट' नामक एक ट्रस्ट अवश्य बना है। उसने सत्यार्थ प्रकाश का बंगला अनुवाद प्रकाशित भी कराया है, किन्तु शोध या अनुसन्धान की दृष्टि से कुछ आशाव्यंजक कथनीय नहीं हैं।

आर्यसमाज की पिछली शताब्दी ने प्रायः सभी दिशाओं में गौरवपूर्ण कार्य किया है। वेदों का प्रचार कुरीतियों का निवारण, अछूतोद्धार, विधवा-विवाह का प्रचार, विदेश-गमन, जन्मना वर्ण-व्यवस्था का विरोध, यह सब आर्यसमाज ने सर्वत्र बड़ी सफलता से किया है और उसका यथास्थान सफलतापूर्वक प्रयास कलकत्ता आर्य-समाज ने भी किया है। दूसरी शताब्दी विज्ञान के उत्कर्ष का काल है। विज्ञान और तकनीक की उन्नति इतनी तीव्रता से आ रही है कि भूतकाल की उपलब्धियाँ बड़ी प्राचीन-सी दिखाई पड़ रही हैं। याता-यात और संचार साधनों के कारण सम्पूर्ण देश ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण संसार अपनी सीमाओं में सिमट कर अपेक्षाकृत बहुत छोटा हो गया है। सम्पर्क साधन बहुत उन्नत हो गये हैं। पुराने ढर्रे के प्रचार माध्यम अपने पिछड़ेपन के कारण प्रायः व्यर्थता की कोटि में आ गये हैं। पिछली शताब्दी देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तरों को जोड़ने वाली थी, भावी शताब्दी ग्रह-उपग्रहों को जोड़ने वाली है। पिछली शताब्दी ने पशु-युग, वाष्प-युग और विद्युत-युग का अतिक्रमण कर दिया है। यह परमाणु ऊर्जा, कम्प्युटर और स्वयंचालित यन्त्रों का युग आ गया है। चिन्तन का धरातल, विद्या का धरातल, सामान्य ज्ञान का धरातल, इतना अधिक ऊँचा हो गया है कि आगामी शताब्दी में मध्यम मार्गियों के लिये कोई नेतृत्व का स्थान न बन सकेगा। उच्चकोटि के आर्थिक साधन, उच्च-कोटि की शिक्षा, उच्चकोटि की तकनीक के साथ युग की प्रगति के

चरणों से चरण मिलाकर चलने वाले ही चल सकेंगे। भावी शताब्दी की ओर से यह सरल-सी सुस्पष्ट आकांक्षा है। भावी शताब्दी शीर्ष-स्थानीय नेतृत्व की आकांक्षा करती है। विगत शताब्दी में बिखरे हुये एकाकी एवं एकल प्रयत्नों का कुछ मूल्य था, किन्तु भावी शताब्दी सामूहिक, संगठित, योजनाबद्ध, सुचिन्तित शैलियों और पद्धतियों की आकांक्षा रखती है। वर्तमान इतिहास का समापन भावी इतिहास के लिये एक वसीयत लिखता है, उससे एक आकांक्षा, एक आशा और विश्वास रखता है। वेद और धर्म का कार्य सार्वकालिक है। आर्य-समाज के नियम भी सार्वदेशिक, सार्वजनिक और सार्वकालिक हैं। वर्तमान शताब्दी के इतिहास का समापन भावी शताब्दी की प्रगति का दिशा-निर्देश 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' के शाश्वत सिद्धान्त को ही सामने उपस्थित करता है। यों तो भविष्य ही अपनी कार्य-सरणि का निर्धारण करेगा, किन्तु पूर्व पुरुषों की पुण्य वेदी पर विगत शताब्दी जो आशा-आकांक्षा करती है, उसे सम्पूर्ण विश्व की प्रार्थना के प्रतीक के रूप में निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

असतो मा सद्गमय,
तमसो मा ज्योतिर्गमय,
मृत्योर्मा अमृतम् गमय।

सन्दर्भ-सूची

१. सत्यार्थ प्रकाश : स्वामी दयानन्द सरस्वती

२. ऋषि दयानन्द का जीवन-चरित्र : पं० लेखरामजी

३. ऋषिदयानन्द का जीवन-चरित्र : देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय

४. नव जागरण के पुरोधा : डॉ० भवानीलाल भारतीय

५. आर्यसमाज के पत्र और पत्रकार : डॉ० भवानीलाल भारतीय

६. अग्रवाल जाति का इतिहास : श्री बालचन्द मोदी

७. बड़ाबाजार के कार्यकर्त्ता : श्री राधाकृष्ण नेवटिया

८. अमरशहीद भगत सिंह और उनके मृत्युञ्जय पुरुषे : वीरेन्द्र सिन्धु

९. एक विन्दु : एक सिन्धु : श्री देवदत्त शास्त्री

१०. दीप चरण : दीप किरण : ऋषि जैमिनी कौशिक बरुआ

११. आनन्दीलाल स्मृति पुष्पी : ,, ,, ,,

१२. आर्यसमाज का इतिहास : पं० नरदेव शास्त्री

१३. आर्यसमाज का इतिहास : श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

१४. आर्यसमाज का इतिहास : डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार

१५. योगी का आत्मचरित्र : पं० दीनबन्धु वेदशास्त्री

१६. सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का इतिहास :

१७. सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का सत्ताईस वर्षीय कार्य-विवरण :

१८. आर्य-संसार और उसके विशेषांक :

१९. आर्यसमाज स्थापना शताब्दी समारोह कलकत्ता की स्मारिका :

२०. रघुमल आर्य विद्यालय का रजत प्रतिष्ठा विशेषाङ्क :

२१. आर्य कन्या महाविद्यालय की रिपोर्ट :

••••••OO••••••

लेखक

भारद्वाज कुलोत्पन्न यजुर्वेदाध्यायी प्रो० उमाकान्त उपाध्याय वृत्ति से प्राचीन एवं आधुनिक अर्थशास्त्र के निष्णात अध्यापक एवं गहन अध्येता, तथा प्रवृत्ति से वैदिक धर्म एवं ऋषि दयानन्द प्रतिपादित कल्याण मार्ग के पथिक एवं अथक प्रचारक हैं। आध्यात्मिक अभिरुचि एवं ईश्वर के प्रति समर्पित भाव आपको दाय में मिला है। आपको पूज्य पिता पण्डित श्री नागेश्वर प्रसादोपाध्याय एवं अग्रज पण्डित रमाकान्त शास्त्री से जीवनसाधना के प्रकाश का उन्मेष मिला। लगभग तीन दशक से प्रतिष्ठित महाविद्यालय श्री सेठ आनन्दराम जयपुरिया कालेज में अर्थशास्त्र के अध्यापन के साथ-साथ अपनी सशक्त लेखनी से आर्यसमाज के सत्साहित्य के निर्माण में आपने अयन्त इध्म आत्मा के भाव को साक्षात् धारण किया है।

आपने १९७८ ई० में केनिया की राजधानी नैरोबी में अन्ताराष्ट्रिय आर्य महासम्मेलन में आर्यसमाज विचारधारा का प्रतिनिधित्व किया। १९८० ई० में लण्डन में समायोजित अन्ताराष्ट्रिय आर्य महासम्मेलन में हिन्दू वैदिक धर्म का प्रतिनिधित्व किया। आर्यसमाज कलकत्ता के शतवर्षीय इतिहास के लेखक प्रो० उपाध्याय विगत २८ वर्षों से आर्यसमाज कलकत्ता के मुखपत्र 'आर्य संसार' के सम्पादक एवं आर्यसमाज के प्रमुख सिद्धान्तों से सम्बद्ध अनेक ट्रैक्टों के लेखक हैं।